संत सुधा सार
वियोगी हरि

इस ग्रंथ में

हर संत की ऐसी 'बानी' को मैंने लिया है, जिसमें प्रेम-प्रीति और विरह का गहरा रंग पाया, सत् और श्वेत करनी की निर्मल झांकी मिली, चेतावनी और बैराग की ऊँची लहरें देखीं।

प्रत्येक संत का 'चोला-परिचय' और 'बानी-परिचय' भी संक्षेप में देने का प्रयत्न किया है।

प्राय: हरेक साखी, सबद और पद्य के कठिन शब्दों का अर्थ, बौद्ध सिद्धों, जैन मुनियों, गुरु-बानी के अनेक पदों का शेख फरीद के सलोकों का पूरा भावार्थ दिया है ।

—वियोगी हरि

मुझे लगता है कि यह एक काफी प्रतिनिधिक संग्रह है और थोड़े में हिन्दी संत-साहित्य का जो व्यापक अध्ययन करना चाहते हैं, उनको इसका बहुत उपयोग होगा, इसमें मुझे संदेह नहीं ।

—विनोबा
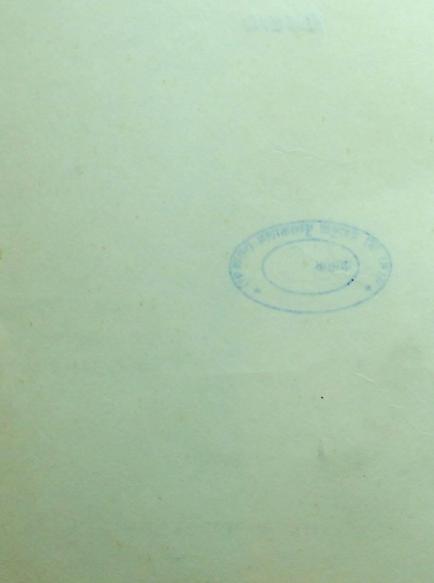
संत-सुधा-सार

संतों के वचनों का संग्रह

आचार्य विनोबा की सारगर्भित भूमिका सहित

•

संकलन-संपादन

वियोगी हरि

•

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

ISBN 81-7309-105-6 (HB)

•

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल
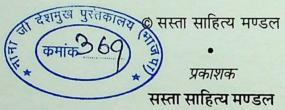
एन-77, पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001

Publisher

Sasta Sahitya Mandal

N-77, First Floor, Connaught Circus, New Delhi-110 001

फोन / Phone : 23310505, 41523565

Visit us at : www.sastasahityamandal.org

E-mail : sastasahityamandal@gmail.com

manager@sastasahityamandal.org,

शाखा : 124-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद-211003

फोन : 0532-2400034

•

चौथी बार : 2013

मूल्य : 300/-

•

मुद्रक : युनिटेक ग्राफिक प्वाईंट, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

प्रकाशकीय

'मण्डल' ने अबतक जितना साहित्य प्रकाशित किया है, वह मूल्य-परक है। उसका स्पर्श मानव-जीवन के सभी प्रमुख पहलुओं से तो होता ही है, साथ ही मानव-चेतना भी उससे प्रबुद्ध होती है। इस दृष्टि से जहां 'मण्डल' ने राजनैतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा आर्थिक साहित्य निकाला है, वहां उसने बहुत-सी ऐसी पुस्तकों का भी प्रकाशन किया है, जो पाठकों की आध्यात्मिक क्षुधा को शांत कर सके।

हमें हर्ष है कि उसी शृंखला में पाठकों को प्रस्तुत विशद ग्रंथ उपलब्ध हो रहा है। इस ग्रंथ में प्रमुख भारतीय संतों की वाणियां संकलित हैं। यह कार्य किया है संत-साहित्य के विख्यात मर्मज्ञ श्री वियोगी हरि ने, जिन्होंने न केवल संतों के साहित्य का मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया था, अपितु उसकी मूल भावना में डुबकी लगाकर उसके मर्म को भी समझा था।

संतों की वाणियां वैसे ही बड़ी बोधगम्य होती हैं, किन्तु इस ग्रंथ में यदि कहीं कठिन शब्दावली आई है तो संकलन-कर्ता तथा संपादक ने उनका सरल भाषा में अर्थ देकर सामान्य पाठकों के लिए ग्रंथ को सुबोध तथा उपयोगी बना दिया है।

यह ग्रंथ आज से लगभग अर्धशती पूर्व प्रकाशित हुआ था। उस समय कागज, छपाई, बाइंडिंग आदि बहुत सस्ते थे, इसलिए इसका मूल्य बहुत कम रखा था।

ग्रंथ का पहला संस्करण समाप्त हो जाने पर उसकी मांग बराबर होती रही, लेकिन उस समय पुनर्मुद्रण की सुविधा नहीं हो सकी। जब सुविधा हुई तो महंगाई का दौर आरभ हो चुका था। पाठकों के बार-बार आग्रह करने पर भी इतने बड़े ग्रंथ को लोक-सुलभ मूल्य में निकालना संभव नहीं था। शायद अब भी संभव नहीं होता, यदि सत्साहित्य के अनन्य प्रेमी श्री बिशन शंकर तथा श्री राजेन्द्र कुमार अग्रवाल ने आर्थिक सहयोग प्राप्त करके और कुछ स्वयं सहायता देकर इस दिशा में पहल न की होती। उनके आग्रह से ही ग्रंथ का मूल्य इतना कम रखा जा सका है कि सामान्य हैसियत के पाठक भी इसे खरीद सकें। हम इन सब बंधुओं, विशेषकर सर्वश्री बिशन शंकर तथा राजेन्द्र कुमार के हृदय से आभारी हैं। अब इसकी बढ़ती हुई मांग एवं पाठकों के अनुरोध पर तीसरा संस्करण उपलब्ध हो रहा है।

पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे इस दुर्लभ ग्रंथ को अवश्य खरीदें, इसका स्वाध्याय करें तथा अपने बंधु-बांधवों और मित्रों को भी इसका लाभ लेने के लिए प्रेरित करें। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस विशाल तथा पावन रत्नाकर में जो जितनी गहरी डुबकी लगावेंगे, उन्हें उतने ही अनमोल रत्न प्राप्त होंगे। इससे उनका जीवन ऊर्ध्वगामी बनेगा और समाज तथा राष्ट्र का भी उत्कर्ष होगा।

–मंत्री

दो शब्द

आचार्य विनोबा ने संतवाणी पर प्रस्तावना में अधिकारपूर्वक जो लिखा है उसके बाद मुझे, संपादक के नाते, इस ग्रंथ के संबंध में बहुत थोड़ा लिखने को रह जाता है। संतवाणी का विश्लेषण-विवेचन करने की न मुझमें वैसी सामर्थ्य है, न योग्यता। तथापि, कुछ सांकेतिक-सा वक्तव्य मात्र दे देता हूं, जो संभवतः आवश्यक है और कदाचित् सहायक भी।

दस-बारह बरस पहले संत-साहित्य देखने का मेरा चाव बहुत बढ़ गया था। समय निकालकर नित्य उसका कुछ-न-कुछ अध्ययन व चिंतन किया करता था। उन्हीं दिनों बुद्धवाणी को भी कुछ देखा। कहना चाहिए कि मेरी अध्ययन-यात्रा की यह एक नई मोड़ थी। पहले तो सगुण-साकार का मधुर-मधुर रसगान करने वाले भक्तों की वाणी की ओर ही मेरा रुझान रहता था, जिसका एक परिणाम हुआ 'ब्रज-माधुरी-सार' का संकलन-संपादन।

सूरदास आदि अष्टछाप की ब्रजवाणी में गहरे अनुराग की अरुणिमा मैंने दूर से तब कुछ-कुछ देखी थी। पीछे, तुलसी की 'विनय-पत्रिका' पाई, तो मानो मंदाकिनी की धवलता पर दृष्टि दौड़ने लगी।

और जब बुद्धवाणी के साथ-साथ निर्गुण-निराकारी संतों के 'सबद' सामने आये, तो जैसे हिमाचल की शुभ्र रजत-रेखा किसी ने मानस-क्षितिज पर खींच दी।

कबीर, रैदास, धर्मदास, नानक, दादू, पलटू आदि की बानी को छूते ही ऐसा लगा कि अलौकिक महारस का पूर्ण परिपाक तो यहीं पर हुआ है। साहित्यालोचकों के यह कथन अर्थशून्य-से जंचे कि 'इन संतों की अटपटी रचनाओं में न तो साहित्यिक सरसता है, न संगीत की लय है और न कला की ऊंची अभिव्यंजना ही और भाषा भी उनकी ऊबड़-खाबड़-सी है।' मैंने देखा कि रीति ग्रंथों का फीता लेकर वे साहित्यालोचक संतवाणी का असीम क्षेत्रफल निर्धारित करने गये थे—चौकोर बंधे हुए तालाब पर धीरे-धीरे सरकती हुई नौका जैसे असीम अनन्त सागर के बिखरे वैभव को मापने पहुंची थी।

'मसि-कागद' से नाता न रखने वाले जुलाहों, शिल्पियों और खेतिहरों की अटपटी

'बाउल-बानी' की अथाह गहराई में उतरा जाये, तो वहां वेद, उपनिषद और त्रिपिटक की झीनी-झीनी झांकी तो मिलेगी ही, सूफी औलियों की मौज-मस्ती भी वहां लहराती नजर आयेगी। वेदान्त, भागवत-भक्ति, ब्रह्मविहार और तसव्वुफ इन सब धाराओं का सहज-सुन्दर संगम वहां देखने को मिलेगा।

२

मन में उठा कि संतवाणी का संग्रह-संकलन किया जाये। बहुत-सी पुस्तकों में की जो साखियां और सबद बहुत प्रिय लगे थे, और जिनका अर्थ लगाने में अधिक अड़चन नहीं पड़ी थी, उन सब पर निशान लगा लिये और संग्रह लिख डाला। आदि में दो बौद्ध सिद्धों सरहपाद और तिल्लोपाद तथा दो जैन मुनियों देवसेन और रामसिंह की कुछ सूक्तियां बानगी रूप में दी हैं, जो अपभ्रष्ट हिन्दी में हैं। उनका अर्थ भी दे दिया है। संतों की इस मुक्त रस-धारा का उद्गम यहां स्पष्ट दिखता है।

कबीर की बानी को सबसे अधिक संख्या में लिया, फिर भी तृप्ति नहीं हुई। हो भी कैसे और किसे उस रस-निर्झरिणी की एक भी बूंद को छोड़कर, जिसके कण-कण में सांई का नौरंगा नूर झिलमिल-झिलमिल करता हो?

गुरु नानक के पद पहले मैंने कुछेक संग्रह-ग्रंथों में देखे थे। सर्व हिन्द-सिक्ख मिशन, अमृतसर द्वारा प्रकाशित नागरी लिपि में 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' जब देखा, तो ऐसा लगा कि गुरु-बानी के बिना सचमुच यह संग्रह अपूर्ण ही रह जाता। 'जपुजी' का नाम-ही-नाम सुना था, रसास्वादन उसका नहीं किया था। नानक के जो पद पहले देखे थे वे असल में सब-के-सब नवें गुरु तेगबहादुर के थे। 'सुखमनी' का भी पाठ करते हुए सुना था। दूसरे तीन गुरुओं की बानी का तो पता भी नहीं था। गुरु ग्रंथ साहिब कितनी अनमोल सिद्ध-संपदा है हमारी, जिसे एक ही संप्रदाय के अंदर बंद करके आज तक रखा गया। बिगूचन में पड़ गया कि इस महान् रत्नाकर में किस रत्न को तो लिया जाये और किसे छोड़ा जाये। लगभग २०० पृष्ठों में गुरुबानी को मैंने लिया है, फिर भी तृष्णा बुझी नहीं।

गुरु ग्रंथ साहिब में से महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध संत नामदेव महाराज के कुछ हिन्दी पदों को भी लिया है; और उसी से शेख फरीद की अनूठी और अमृत-सी मीठी बानी भी ली है।

दादू-बानी और दादूजी के कई शिष्यों की बानी भी खूब रसवन्ती है, अन्तर पर सीधे चोट करती है। रज्जब, बषना और वाजिन्द की साखियां और सबद बहुत अनूठे और गहरे हैं। इनका चुनाव करते समय भी रत्न-राशि देखकर मेरी महालोभी की जैसी गति हुई।

गोरखनाथ की, सदियों से घिसी-पिसी, बानी कम-से-कम भावरूप में प्रगटाने का श्रेय स्व. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल को है। उन्हीं के संपादित ग्रंथ से प्रस्तुत संग्रह में गोरखनाथ की कुछ सूक्तियां मैंने ली हैं, और अर्थ भी प्रायः उसी ग्रंथ के आधार पर किया है।

नाथ-संप्रदाय के एक संत लालनाथ की भी कुछ सूक्तियां उनकी 'जीव-समझोत्तरी' नाम की पुस्तक से ली हैं, जिसका प्रकाशन पारीक-सदन, रतनगढ़ (राजस्थान) से हुआ है।

धनी धरमदास, जगजीवन साहब, दरिया साहब, बुल्ला साहब, यारी साहब, चरणदास, सहजोबाई व दयाबाई, पलटू साहब, तुलसी साहब आदि अनेक संतों की बानियों का संकलन प्रयाग के बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित 'संत-बानी-पुस्तक-माला' में से किया गया है।

हर संत की ऐसी ही बानी को मैंने इस ग्रंथ में लिया है, जिसमें प्रेम-प्रीति व विरह का गहरा रंग पाया, सत् और श्वेत करनी की निर्मल झांकी मिली, चेतावनी और वैराग की ऊंची-ऊंची लहरें देखीं। योग की–त्रिवेणी के तट की और अनहद बांसुरी की, और रिमझिम-रिमझिम रस-झड़ी का संकेत करने व खोलने वाली साखियां व सबद इसमें नहीं लिये–बिना अधिकार के उधर, उस घाट की ओर जाने और दूसरों को ले जाने की हिम्मत नहीं हुई, यद्यपि अनेक संतों की अनोखी सैर की वही ऊंची-से-ऊंची ठौर है।

प्रत्येक संत का 'चोला-परिचय' व 'बानी-परिचय' भी संक्षेप में देने का मैंने प्रयत्न किया है, हालांकि कबीर की यह साखी सदा सामने रही–

''जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजियो ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥''

तो भी हम सबका स्वभावतः देह के प्रति अति लगाव रहने के कारण, संतों का भी यथाप्राप्त शरीर-परिचय थोड़े में दे दिया है। बहुत ऊहापोह में नहीं पड़ा, ऐतिहासिक शोध के विवाद में नहीं उतरा। ऐसा करना आवश्यक और रुचिकर भी नहीं लगा।

बानी-परिचय भी सबका कुछ-कुछ दिया है, जिसे मैं अपनी अनधिकार चेष्टा ही कहूंगा। सभी संतों की बानी सरस और आनन्ददायिनी ही लगी है। तुलना की तरफ मन नहीं लगा। तोलने के बाट भी नहीं थे, और यह अच्छा ही हुआ।

ऐतिहासिक एवं साहित्यिक गवेषणा पाठकों को देखनी हो, तो संत-साहित्य के मर्मज्ञ पं. परशुराम चतुर्वेदी के 'उत्तरी भारत की संत-परंपरा' नामक बृहद्ग्रंथ में देखें। इस पाण्डित्यपूर्ण ग्रंथ का मैंने कितने ही स्थलों पर सहारा लिया और आभार माना है।

प्रायः हरेक साखी, सबद और पद्य के कठिन शब्दों का अर्थ, और बौद्ध सिद्धों और

जैन मुनियों तथा गुरु-बानी के अनेक पदों व शेख फ़रीद के सलोकों का पूरा भावार्थ देने का मैंने प्रयत्न किया है अनेक टीकाओं के आधार पर। कुछ शब्दों का अर्थ फिर भी कुछ अस्पष्ट-सा रहा है।

संत-सुधा-सार दो ढाई वर्ष तक छपता रहा। पू. ठक्कर बापा के देहावसान के बाद बार-बार, हरिजन-कार्य के सिलसिले में, प्रवास करना पड़ा, जिसके कारण ग्रंथ के प्रकाशित होने में इतना अधिक विलम्ब भी हुआ है।

इस संत-वाणी-संग्रह से यदि संत-साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन की लोगों में कुछ भी अभिरुचि बढ़ी—विशेषकर विद्यार्थियों की, तो मैं अपने आपका कृतकृत्य मानूंगा।

विनीत

वियोगी हरि

प्रस्तावना

१

संतों की परंपरा अति प्राचीन काल से आजतक चली आ रही है। जब से मानवता का उद्‌गम हुआ, संतों का आविर्भाव हुआ है। संतों की वाणी का प्रथम नमूना हमें ऋग्वेद में देखने को मिलता है। ऋग्वेद के कुछ कथानक पर सूक्तों को हम छोड़ दें, तो बाकी सारा ऋग्वेद संतों की वाणी ही है।

बहुतों का यह खयाल है कि वेदों में कर्मकांड ही भरा है। यजुर्वेद आदि में कर्मकांड भी मौजूद है, लेकिन ऋग्वेद के मंत्र भक्तिपर संत-गाथा हैं। उनका संबंध जो भिन्न-भिन्न कर्मों के साथ जोड़ा गया है, उसका उद्देश्य इतना ही है कि उन-उन कर्मों के निमित्त उन-उन प्रसंगों पर अच्छे-अच्छे वचन लोगों के कंठ में रहें। मेरी मां सुबह आटा पीसने के साथ तुकाराम के भजन गाया करती थी। उन भजनों का आटा पीसने के साथ क्या संबंध था सिवा इसके कि आटा पीसने में उसे कुछ उत्साहवर्धन होता होगा। इसी प्रकार बहुत सारे ऋग्वेद के सूक्तों का कर्मों के साथ संबंध गिना जा सकता है। सामवेद तो ऋग्वेद में के ही भजनों का चुनाव है, जिनकी एक विशेष ढंग से सामपाठियों ने स्वरलिपि बना रखी थी।

कुछ लोगों का यह खयाल है कि वेदों में भक्ति है भी, तो वह बहुदेवताभक्ति है। लेकिन इसका उत्तर तो स्वयं ऋग्वेद ने ही दिया है। वेद कहता है कि, सत्‌नाम एक ही है; उपासना के लिए उपासक भिन्न-भिन्न रूप पसंद करते हैं :

''एकं सत्, विप्राः बहुधा वदंति।
अग्निं यमं मातरिश्वानं आहुः॥''

अग्नि, यम, वायु ये सारे एक ही परमेश्वर के भिन्न-भिन्न गुणवाचक भिन्न-भिन्न नाम हैं। परमेश्वर परिशुद्ध निर्गुण है, अर्थात् अनंत गुणवान् है। जिस उपासक को अपने में जिस गुण के विकास के आवश्यकता अनुभव होती है, वह उस गुणवाले भगवान की भक्ति करता है। जैसे, तुलसीदास ने विनय-पत्रिका में मंगलमूरति गणनायक, प्रेरक सूर्यनारायण, औढरदानी शंकर, विरक्तिरूपिणी दुर्गा आदि अनेक देवताओं का स्तवन किया, पर हरेक से मांगा यही कि 'रामचरण-रति देहु'। ऐसा ही ऋग्वेद के संतों

का है। संतों की वाणी में जो भावना की उत्कटता, अंदर की छटपटाहट, भूतमात्र के लिए आदर आदि विशिष्ट भाव दीख पड़ते हैं, वे सारे वैदिक ही हैं।

"स नः पिताइव सूनवे, अग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥"

"हे अग्निदेव, ज्योतिर्मय प्रभु, जैसे पिता के पास पुत्र सहज पहुंच जाता है, वैसे ही हम तेरे पास पहुंचें। हमारे मंगल के लिए निरंतर तू हमारे साथ रह।" यह है आर्षवाणी। इसे हम संतवाणी न कहें तो क्या कहें?

संतवाणी का दूसरा आविर्भाव हमें मिलता है, बुद्ध भगवान् की गाथाओं में। वेदवाणी और बुद्धवाणी में वैसा ही फरक है जैसा कि तुलसीदास और कबीर में। तुलसीदास है प्रतिमा वेदवाणी की, और कबीर बुद्धवाणी की। वियोगी हरिजी के **संत-सुधा-सार** का बहुत सारा हिस्सा जो मैंने देखा, बुद्धवाणी का नमूना है।

"मनो पुब्बंगमा धम्मा, मना सेट्ठा मनोमया" यह है धम्मपद का पहला वचन।

इसके साथ देखिए जपुजी में गुरु नानक का वचन :

"मन्ने मोख दुवारु मन्नी परवारै साधारु।"

मैं तो इन दोनों में कुछ भी फरक नहीं देखता, चाहे अर्थ करनेवाले कितने ही भिन्न-भिन्न अर्थ क्यों न करें। कबीर, नानक, दादू सब एक ही माला के मणि हैं, जिनमें मेरुमणि तो मैं बुद्ध को ही समझता हूं। बुद्ध ने लोक-भाषा में लिखा, यही पीछे के संतों ने भी किया। वेदवाणी भी उस जमाने की लोकभाषा में याने वैदिक संस्कृत में प्रगट हुई। वेदवाणी स्वयं यह प्रगट कर रही है :

"अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्"

"मैं हूं सब राष्ट्र की वाणी, सबकी वासनाओं का संगम करने वाली" अगर वैदिक ऋषि लोक-भाषा में न गाते होते, तो **'अहं राष्ट्री'** ऐसा दावा वे नहीं कर पाते।

संतवाणी का तीसरा आविर्भाव हमें मिलता है दक्षिण के शैव और वैष्णव भक्तों में। **पेरिय आळ्वार, आंडाळ, नम्माळवार, कुलशेखरर्** आदि वैष्णव, और **संबंधर, अप्पर्, सुंदरर्, माणिक्कवाचकर्** आदि शैव भक्तों ने जो परममधुर भजन गाये हैं वे विश्व-साहित्य में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। वेदवाणी और बुद्धवाणी जो उत्तर भारत से दक्षिण भारत में पहुंचीं, उनका ऋण चुकाने के लिए शंकर, रामानुज आदि वैष्णव-आचार्यों ने भक्ति का प्रवाह दक्षिण भारत से उत्तर भारत में बहाया। उन आचार्यों को यह स्फूर्ति तमिल भाषा में गाने वाले वैष्णव और शैव संतों से ही मिली। यहां एक भ्रम दूर करने की जरूरत है। लोगों का खयाल है कि रामानुज तो वैष्णव थे, पर शायद शंकर वैष्णव नहीं थे। यह गलत है। जहां-जहां शंकर प्रतीक-उपासना का दृष्टान्त देते हैं वहां **"शालग्रामे इव विष्णुः"** ऐसा ही देते हैं। **'अविनयमपनय विष्णो'** यह विष्णुस्तोत्र

शंकराचार्य के मठों में प्रतिदिन गाया जाता है। शंकर ने अपनी माता को दर्शन कराया था...**'मम भक्तु कृष्णोक्षिविषयः'** इस स्तोत्र से। और भाष्य भी उन्होंने लिखा है भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम पर, जो कि वैष्णव ग्रंथ हैं। हां, अद्वैती के नाते वे शिव, विष्णु आदि में भेद नहीं करते थे, और **'चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोऽहं'** गाते थे। शिव और विष्णु का यही अभेद हम तुलसीदास तक में पाते हैं, जो कि श्रीराम के अनन्य उपासक थे।

वेदवाणी, बुद्धवाणी और तमिल भक्तवाणी यह मूलत्रयी है, जिसमें से बाद को सारी भारतीय संतवाणी प्रसृत हुई। ज्ञानदेव, नामदेव और तुकाराम, पुरंदरदास और त्यागराज; नरसी मेहता और अखाभगत; तुलसीदास, सूरदास और मीराबाई; कबीर, नानक, दादू; शंकरदेव और चैतन्य ये सारे मध्ययुगीन संत विविध पुष्प हैं उस वल्ली के, जिसका मूल उक्त त्रयी में है।

२

संतों की सामान्य सिखावन सर्वलोक-सुलभ और सादी-सी होती है। उनकी जीवन-योजना के मूल में जो बुनियादी विचार पाये जाते हैं वे थोड़े में यह हैं :

(अ) देह की आजीविका के लिए कौटुम्बिक सरणी के या परिस्थिति के अनुसार जिसे जो उद्योग प्राप्त हो वह निरंतर करते रहना चाहिए। समाज पर भाररूप होकर जीवन बिताना भक्ति के अनुकूल नहीं हो सकता। बल्कि अपने सहजप्राप्त उद्योग की क्रियाओं का ब्रह्मरूप देखने का अभ्यास करना चाहिए। शुद्ध आजीविका के बिना शुद्ध विचार और विवेक संभव नहीं है। इसी विश्वास के कारण हम देखते हैं कि नामदेव **'सोने की सुई'** और **'रूपे का धागा'** लेकर भक्ति-भाव से सीवन सीता रहा और चित्त को हरि में पिरोता रहा। कबीर **'झीनी झीनी चदरिया'** बुनता रहा। और दूसरे संत भी इसी तरह अपना-अपना काम करते रहे। उन कामों को उन्होंने कभी बोझ समझा हो तो ऐसा नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि अपने-अपने उद्योग की परिभाषा में वे अपने अध्यात्म के विचारों को प्रगट करते हुए दीख पड़ते हैं। यद्यपि यह मैं नहीं कह सकता कि **'निष्काम कर्म=भक्ति'** इस गीतोपदेशित समीकरण को वे मान्य करते थे, या **'निष्काम-कर्म + भक्ति'** ऐसा समुच्चय उनके मन में था। यह बारीक भेद है। इसका निर्देशमात्र करके यहां छोड़ देता हूं।

चाहे समीकरण मानो, चाहे समुच्चय, भक्ति के साथ अकर्मण्यता नहीं टिकती यह बात सभी संतों के अनुभव पर से निश्चित है। जहां भक्ति का ही टिकाव न लगे ऐसी किसी अंतिम अवस्था में कर्म गिर पड़े यह संभव है। लेकिन उस स्थिति में तो शरीर ही गिर जाने की बात है। इसलिए यहां उसके विचार करने की जरूरत नहीं।

दुर्दैव इस बात का है कि वह अंतिम स्थिति मानो प्राप्त ही हो चुकी ऐसे भ्रम में

जानबूझकर कर्म छोड़ने की घातक मनोवृत्ति, बावजूद संतों के जीवन और उपदेश के, हमारे समाज में फैली हुई है, और कभी-कभी किसी संतवचन का असंबद्ध आधार भी उसे मिल जाता है।

(आ) अपने शरीर से जितना हो सके उतना परोपकार करना चाहिए। परोपकार का मौका कभी खोना नहीं चाहिए। संतों के जीवन की यह बहुत ही बुनियादी बात है; बल्कि यही कहना चाहिए कि उनका सारा जीवन ही परोपकारमय होता है। **'उपकार'** शब्द में हम लोगों को कुछ अहंकार का आभास आता है। वास्तव में ऐसा नहीं है। **'उप'** का अर्थ ही **'अल्प'** होता है। मनुष्य को अपने पांवों पर ही खड़ा रहना होता है, उसे हम गौणरूप से कुछ मदद पहुंचा देते हैं—यह अर्थ 'उपकार' शब्द में निहित है।

आजतक हमने सार्वजनिक सेवा का एक आडम्बर-सा बना रखा है। अपने पड़ौसी की और आसपास के लोगों की, सहजभाव से और स्वभाव से, छोटी-मोटी सेवाएं करते रहना यह मनुष्य का सहज लक्षण होना चाहिए। मीमांसकों की भाषा में, परोपकार एक नित्यकर्म है, जिसके करने में कोई पुण्य लाभ नहीं होगा, लेकिन न करने में पाप होगा। दाहिने हाथ से किये उपकार का बायें हाथ को पता न लगे, और दोनों हाथों से किये उपकार का मन को पता न लगे।

(इ) **'अहिंसासत्यदीनि चारित्र्याणि परिपालनीयानि'** यह है नारद की आज्ञा, जो थे सब संतों के आदिगुरु। संतों की चारित्र्य-पद्धति में और नीति-शास्त्र वेत्ताओं की विचार-सरणी में एक बड़ा अंतर यह है कि संतों की श्रद्धा में अहिंसा-सत्यादि का पालन जाति-देश-काल-समय-निरपेक्ष करना होता है। अर्थात् यह लक्ष्मण की खींची रेखा है, जिसका उल्लंघन सीता भी बिना खतरे के नहीं कर सकतीं। विद्वान् नीति-शास्त्री भी अहिंसा आदि को मानते तो हैं, लेकिन इनको वे अविचल या शाश्वत धर्म नहीं मानते, बल्कि परिस्थिति-सापेक्ष या सुभीते के अनुसार मानते हैं। कुछ समाज-शास्त्री भी कहते हैं कि ये यम-नियम व्यक्ति के लिए निरपवाद माने भी जायें, तो भी समाज के लिए इनका निरपवाद पालन न सिर्फ अशक्य है, बल्कि अयोग्य भी है। इस विचार से संतों का घोर विरोध है।

''आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, होसी भी सच।'' इस तरह की थी उनकी सत्य-निष्ठा और हमेशा उनकी आतुरतापूर्वक रटन थी :

''किऊ सचियारा होइये, किऊ कूडे तुट्टे पाल।' कैसे हम सच्चे बनेंगे और कैसे असत्य का पर्दा टूटेगा। निरपेक्ष-नीति और सापेक्ष-नीति का झगड़ा लोक-जीवन में तो जब मिटेगा तब मिटेगा, लेकिन भगवान् की जिसपर कृपा होगी उसके लिए तो वह झगड़ा इसी क्षण मिटेगा। और जिसके मन में यह झगड़ा मिट गया उस पर भगवान् की कृपा हुई ऐसा समझना चाहिए। भक्ति का यह आरंभमात्र है।

(ई) सब संतों की सिखावन में और सब धर्म-ग्रंथों में भगवन्नाम की महिमा एक सर्वमान्य वस्तु है। इसपर अधिक लिखने की जरूरत नहीं। लेकिन नाम-जप के साथ अर्थ-भावन भी करना होता है। उसमें अपनी-अपनी धारणा के अनुसार अनेक प्रकार हो जाते हैं।

कुछ ज्ञानी निर्गुण-निराकार का ध्यान करते हैं, जो सब कल्पनाओं से रहित है। उसका ध्यान करने वाले अक्सर 'ओंकार' को पसंद करते हैं। लेकिन राम, गोविंद, नारायण, हरि आदि नाम लेकर भी निर्गुण-निराकार का भावन कर सकते हैं। कबीर, नानक आदि में ही नहीं, तुलसीदास तक में यह पाया जाता है। दुनिया के सारे साहित्य में निर्गुण-निराकार का सबसे श्रेष्ठ प्रतिपादन उपनिषदों में मिलता है।

कुछ ध्यानी नाम के साथ सगुण-निराकार का ध्यान करते हैं। अक्सर हम जहां निर्गुण-निराकार को छोड़ते हैं, सगुण-साकार में आ जाते हैं। लेकिन दोनों के बीच सगुण-निराकार की भी एक भूमिका होती है। इसमें भगवान् को, निराकार मानते हुए दया, वात्सल्य आदि अनंत गुणों के परम आदर्श के तौर पर माना जाता है। उपनिषद् में निर्गुण-निराकार के साथ सगुण-निराकार की पुष्टि करने वाले वचन भी पाये जाते हैं, जिनको रामानुज आदि भाष्यकार विशेष महत्त्व देते हैं। इस्लाम और ईसाई-मत इसी को मानते हैं। ब्रह्मसमाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज इत्यादि आधुनिक समाज सगुण-निराकार की भूमिका पर खड़े हैं।

कुछ भक्त नाम के साथ सगुण-साकार की कल्पना करते हैं। इसके भी तीन पंथ हो जाते हैं :

(१) सांकेतिक रूप की उपासना, जैसे शेषशायी विष्णु, अर्धनारी-नटेश्वर इत्यादि।

(२) विश्वरूप की उपासना, जिससे अर्जुन घबड़ा गया था, लेकिन **'खुले नयन पहचानों, हंसि हंसि सुन्दर रूप निहारों'** कहकर कबीर आनन्दित होता है। अर्जुन इसलिए घबड़ा गया था कि उसके ध्यान-दर्शन में तीनों काल और तीनों स्थल एकत्र प्रगट हुए थे। कबीर इसलिए आह्लादित है कि वह विश्वरूप का एक भाग ही देख रहा है, जो कि उसके नेत्रों के अनुकूल है।

(३) विशिष्ट श्रेष्ठरूप की अवताररूप में उपासना। इस उपासना के करने वालों के फिर दो विभाग हो जाते हैं। एक अकल रखे हुए, जो कि अपने पूज्य पुरुष को ईश्वर का अंशावतार मानते हैं। दूसरे अकल खोये हुए, या अकल को ही शून्य समझने वाले, जो **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं'** कहकर लीला-विभोर हो जाते हैं। इस विवेचन का चित्र इस प्रकार होगा :
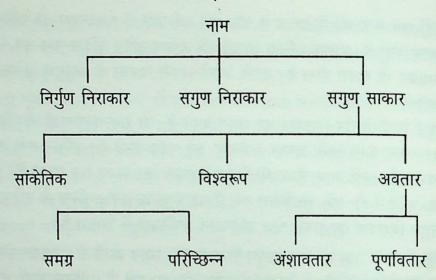
लेकिन खूबी यह है कि हमारे संतों की पाचन-शक्ति प्रखर होने के कारण ये सारे भिन्न-भिन्न दर्शन उनको विरोधी नहीं मालूम होते, बल्कि इन सबको वे एकसाथ हज़म कर लेते हैं। मिसाल के तौर पर, तुलसीदासजी पक्ष तो लेंगे सगुणसाकार का, लेकिन निर्गुण-निराकार से पूर्णावतार तक की सब तालिका वे स्वीकार करेंगे। शंकराचार्य अभिमानी बनेंगे निर्गुण-निराकार के, लेकिन **'नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभावं'** के साथ त्रिपुरसुन्दरी का भी स्रोत गा सकेंगे। हां, शायद पूर्णावतार की कल्पना वे नहीं निगल सकेंगे। क्योंकि **'अंशेन कृष्णः किल संबभूव'** ऐसा वे लिख चुके हैं। फिर भी भाविकों के साथ पूर्णावतार के भजन में भी वे लीन हो जायें तो आश्चर्य की बात नहीं; क्योंकि जब वे सारा ही मिथ्या समझते थे, तो किसी चीज़ के लिए क्यों हिचकिचाना?

कुछ विचारक और उपासक ऐसे जरूर होते हैं जो अपना-अपना आग्रह रखते हैं, जैसे मोहम्मद पैगम्बर सगुण-निराकार मानने वाले थे। यद्यपि निर्गुण निराकार का वे निषेध नहीं करेंगे, किंतु सगुण-साकार का अवश्य निषेध करते हुए वे दीख पड़ते हैं। वैसे कुरान में वज्हुल्लाह याने 'अल्लाह का चेहरा' ये शब्द कई जगह आये हैं, जिनके आधार पर मूर्तिपूजा की अतिशयता का तो बचाव नहीं होगा, लेकिन सगुण-साकार का प्रवेश हो जायेगा। कुरान का कुल मिलाकर भाव मैं यही समझा हूं कि मोहम्मद के सामने विकृत मूर्तिपूजा खड़ी है, जिसके साथ अनेक भ्रष्टाचार जुड़ गये हैं; उस सबका वे निषेध करना चाहते हैं। आखिर, ईश्वर का शब्द वे सुनते थे, **'वही'** उन्हें प्राप्त होती थी, उससे वे भावित होते थे, उसका उनके शरीर पर असर होता था; कुछ रूह, कुछ प्रभा, कुछ आभास, जो भी कहो, उनके अंतर-मानस में प्रगट होती थी। यह सब देहधारी मनुष्य कैसे टालेगा? सारांश, जो शब्दातीत वस्तु है उसको शब्द में प्रगट करने के प्रयत्न में ही दोष आ जाता है। विष्णुसहस्रनाम में तो भगवान् के दो नाम ही यों दिये हैं, **'शब्दातिगः शब्दसहः'** शब्द से परे, किन्तु शब्द को सहन करने वाला।

इसलिए अचिंत्य विषय में सर्व आग्रह छोड़कर नम्र हो जाना यही सर्वोत्तम लक्षण है।

(उ) संतों की जीवन-योजना में आखिरी बात है सत्संग की चाह। सामान्य व्यावहारिक विद्या की प्राप्ति के लिए भी जब उस विद्या के जानकार का सहारा लेना पड़ता है, तब आध्यात्मिक साधन में प्रवेश की इच्छा रखने वाले को अनुभवी संतपुरुषों की संगति ढूंढ़नी ही पड़ेगी। यह बात सहज समझ में आती है। इसीलिए शंकराचार्य ने मनुष्यत्व और मुमुक्षुत्व के बाद महापुरुष संश्रय को तीसरा महद्भाग्य माना है। आत्मा स्वयं-सिद्ध और अपना निजरूप ही होने के कारण हम ऐसा आग्रही विचार तो नहीं रख सकते कि सूर्योदय के पहले उषोदय के समान आत्मदर्शन के पहले महापुरुष-संश्रय या स्थूल सत्संगति आवश्यक है। और हम यह भी नहीं कह सकते कि सत्संग के लोभ में, ऐसे किसी वेषधारी को सत्पुरुष या सद्गुरु के स्थान पर बिठा दें। लेकिन यह जरूर मानना पड़ेगा कि जहां सद्विचार के श्रवण-मनन का मौका मिलेगा वहां पहुंचने की या वैसी संगति ढूंढ़ने की अभिलाषा साधक में होनी चाहिए। मैं तो कहूंगा कि सत्संगति की अभिलाषा सत्संगति से भी बढ़कर है। या, अधिक समीचीन भाषा में यों कह सकते हैं कि सत्संगति की अभिलाषा ही सच्ची सत्संगति है।

यह है संत-सुधा-सार, जिसका संग्रह एक संस्कृत श्लोक बनाकर मैंने इस तरह रख दिया है :

''स्वकर्मणि-समाधानं, परदुःख-निवारणम्।
नामनिष्ठा, सतां संगः, चारित्र्य-परिपालनम्॥''

३

अब वियोगी हरिजी के इस संग्रह के बारे में मुझे कुछ कहना चाहिए।

पहली बात तो मैं यह कहूंगा कि हिन्दी के बहुत सारे संतों की वाणी का अध्ययन मैं नहीं कर सका हूं। सिर्फ़ चार कृतियां मेरे नसीब में आई हैं, जिनको कुछ बारीकी से देखने का मौका मुझे मिला है। **रामायण** और **विनयपत्रिका,** ये तुलसीदास की दो कृतियां। इन दोनों कृतियों का मुझ पर बहुत गहरा असर पड़ा है। तुलसीदास की शैली में बोलना हो तो यही कहना पड़ेगा कि, एक है **'रा'** और दूसरा है **'म'** और दोनों मिलकर तुलसीदास का **'राम'** बनता है। दोनों कृतियां परस्पर-पूरक हैं। इनके अलावा, गुरु नानक का **जपुजी** और गुरु अर्जुन की **सुखमनी**। इस संग्रह में जपुजी का, अर्थ के साथ, पूरा उद्धरण किया गया है। यह मुझे अच्छा लगा। मैं जब पांच-छह महीने शरणार्थियों के काम में लगा था तब रोज़ सुबह जपुजी का पाठ किया करता था। कुछ दिन नागरी लिपि में किया, फिर गुरुमुखी में पढ़ता रहा। यह एक परिपूर्ण कृति है। याने साधनामार्ग का पूरा चित्र, आदि से अंततक, इसमें थोड़े में मिल जाता है। इसकी तुलना ज्ञानदेव के मराठी हरिपाठ से हो सकती है। जिसको वर्णमाला का परिचय है, ऐसा हरेक

देहाती हरिपाठ को पढ़ ही लेता है। बल्कि जो अक्षर भी नहीं सीखा वह भी दूसरों से सीखकर उसे कंठ करता है। गुरु अर्जुन की सुखमनी यद्यपि एक छोटी ही पुस्तक है, तथापि सूत्ररूप नहीं वह विवरणरूप है। उसमें पुनरुक्ति काफी है। लेकिन उसकी शक्ति भी उस पुनरुक्ति में है। उसका यह एक सलोक जेल में कई दिनों तक भोजन के पहले मैं बोलता था, जैसा कि सिक्खों में रिवाज है :

काम क्रोध अरु लोभ मोह विनसि जाय अहमेव,

नानक प्रभु शरणगती कर प्रसाद गुरुदेव।

भोजन के लिए **'प्रसाद'** संज्ञा हिंदुस्तान की हर भाषा में मिलती है।

इन चार कृतियों के अलावा, बाकी का मेरा सारा हिन्दी-अध्ययन भ्रमरवत् है, याने थोड़ा इधर देख लिया, थोड़ा उधर देख लिया। नामदेव के मराठी भजनों में से कुछ चयन मैंने किया था, उसकी पूर्ति में उनके हिन्दी पद्यों का भी अवलोकन **ग्रन्थ साहिब** से किया था।

बहरे के कानों तक भी जो पहुंच गई है उस **कबीर-वाणी** का मुझे कुछ सहज परिचय न हुआ हो, यह कैसे हो सकता है? तुकाराम की वाणी पर कबीर का बहुत असर पड़ा है। और वह ऋण तुकाराम ने स्वयं प्रगट किया है। तुकाराम का एक भी ऐसा वचन नहीं होगा, जिसे मैं घोलकर पी न गया होऊं, इसलिए कबीर तो मुझे मुफ्त में मिल गया।

मीराबाई तो एक अद्वितीय व्यक्तित्व है, जिसके मधुरतम भजन आश्रम की प्रार्थना में मैंने सतत सुने, गाये और ध्याये हैं। सूरदास हिंदी महासागर हैं। उसमें से 'आश्रम-भजनावली' में जो कुछ दस-पांच अमृत बिन्दु आये हैं उतने ही मेरे लिए पर्याप्त हो गये हैं।

गोरखनाथ एक ऐसे महान् संत हैं जिनकी वाणी का तो नहीं, किन्तु करनी का स्पर्श समस्त भारत को हुआ है। वे कहां और कब जन्मे थे, निश्चित रूप से कोई नहीं जानता, लेकिन वे जन्मे थे इसमें किसी को संदेह नहीं है। गूढ़वादी बंगाल उनपर अपना दावा करता है। तमिल लोग कहते हैं, सारा नाथसंप्रदाय तमिलनाड का है। और तमिल भाषा में नाथ-पंथी साहित्य भी बहुत है। उसका परिचय तो राष्ट्रभाषावालों को तब होगा, जब वे आलस्य छोड़कर तमिल सीखेंगे। जलंधरवाले पंजाबी जालंदरनाथ के पंथ पर क्यों नहीं अपना अधिकार रखेंगे? और गोरखपुर तो गोरख का पुर है। ज्ञानदेव ने **ज्ञानेश्वरी** में अपनी गुरु-परम्परा का कथन करते हुए मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ का निर्देश किया है, इसलिए महाराष्ट्र के लोग अपना हक़ पेश कर ही सकते हैं। इस संग्रह में पृष्ठ ५० पर दिया हुआ भजन **'कैसे बोलौं पंडिता देव कौंनै ठांई'** सारा-का-सारा शुद्ध मराठी भजन है। मत्स्येन्द्र और गोरख की कहानियां जिसने बचपन में नहीं सुनीं, ऐसा कौन बच्चा है?

रैदास का नाम महाराष्ट्र में बहुत प्रसिद्ध है। उनको मराठी में रोहिदास कहते हैं। चोखामेला महार और रोहिदास 'चांभार' (चमार) इन दो हरिजन संतों की कथा हमारी मां बहुत सुनाती थी। मुझे लगता था कि चोखामेला के समान रोहिदास भी कोई मराठी संत होंगे। **भजनावली** में रैदास का एक हिंदी भजन साबरमती-आश्रम में जब मैंने पहली बार सुना, तब मुझे इस बात का पता चला कि रोहिदास का नाम रैदास है और वे एक हिंदी के संत हैं।

एक और हिंदी-संत का नाम अहिंदी प्रांतों को परिचित है, जिसने साहित्य का एक नया विभाग खोल दिया है। वे हैं भक्तमाल के लेखक नाभाजी। जैसे पश्चिमी साहित्य में प्लूटार्क, दक्षिण में शेक्किलार, वैसे ही उत्तर हिंदुस्तान में नाभाजी अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं। महाराष्ट्र में महिपति ने संत-चरित्र पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं जिनमें नाभाजी की भक्तमाल का बहुत उपयोग किया है।

दादू की **भक्त मंडली** की ओर से **दादूवाणी और सुन्दर ग्रन्थावली** भेंट में मिली थीं, उन्हें देख जाना जरूरी ही था। लेकिन दादू-पंथी निश्चलदासजी का **विचार-सागर** अपने ढंग का एक विशिष्ट ग्रंथ है। कबीर के **बीजक** में उनकी स्वतंत्र प्रतिभा का दर्शन होता है। निश्चलदास के विचार-सागर में पारिभाषिक वेदांत का गहरा अध्ययन दीख पड़ता है। विचार-सागर का इस संग्रह के साथ कोई संबंध नहीं है। मैंने तो उसका प्रसंगेन उल्लेखमात्र कर दिया है।

हिंदी अब राष्ट्र-भाषा बनी है, तो उसके साहित्य का अध्ययन हिंदुस्तानभर में होने वाला है। जैसे अंग्रेजी में **गोल्डन ट्रेज़री** एक सर्वांगीण और सर्वमान्य संग्रह हुआ है, वैसा कोई संग्रह हिंदी के लिए ज़रूर चाहिए। हरिजी के इस संत-सुधा-सार का वैसा दावा तो नहीं है, लेकिन मुझे लगता है कि यह भी एक काफ़ी प्रातिनिधिक संग्रह है और थोड़े में हिंदी-संत-साहित्य का जो व्यापक अध्ययन करना चाहते हैं उनको इसका बहुत उपयोग होगा इसमें मुझे संदेह नहीं।

पवनार **(आचार्य विनोबा भावे)**

अनुक्रम

संत-सुधा-सार

सिद्ध सरहपाद

चोला-परिचय

वज्रयानी चौरासी सिद्धों में सरहपाद को आदिम सिद्ध माना गया है। इन्हें सरहपा भी कहते हैं। इनके दूसरे दो नाम राहुलभद्र और सरोज-वज्र भी हैं।

पूर्वी प्रदेश के थे किसी 'राज्ञी' नगरी के निवासी। पता नहीं, इस नाम की नगरी कहाँ पर थी।

जन्म सिद्ध सरहपाद का किसी ब्राह्मण वंश में हुआ था। यह अच्छे विद्वान् पंडित थे। नालन्दा में भी यह कितने ही वर्षों तक रहे थे।

पश्चात यह विद्वान् बौद्ध भिक्षु कालान्तर में मंत्र-तंत्र-प्रधान वज्रयान की ओर आकृष्ट हो गया।

श्रीपर्वत (आन्ध्र देश) पर भी सरहपाद ने वज्रयान तंत्र की कठिन साधना की थी।

सरहपाद पालवंशीय राजा धर्मपाल के समकालिक थे। धर्मपाल का समय ई. ७६८-८०६ माना जाता है।

डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य ने सरहपाद का काल ६३३ ई. माना है। किन्तु किसी परिपुष्ट प्रमाण से सरहपा का काल यह सिद्ध नहीं होता।

भोटिया भाषा में सिद्धाचार्य सरहपा के ३२ ग्रन्थों का अनुवाद खोज में मिला है।

बानी-परिचय

सरहपादीय दोहा एवं **सरहपाद दोहा-कोष** से प्रस्तुत संग्रह में सरहपाद की सिद्ध-बानी संकलित की गई है।

भाषा सरहपा की मगही अपभ्रंश है, जो निश्चय ही हिन्दी का पूर्वरूप है। डा. बी. भट्टाचार्य ने इसे बंगला का पूर्वरूप सिद्ध करने की असफल चेष्टा की है।

वज्रयान के परवर्ती सिद्धों की बानी में जो प्रायः अति स्वच्छन्दाचार दिखाई देता है वह सरहपाद की बानी में लगभग नहीं के जैसा है।

सहज शून्यावस्था से प्राप्त महासुख का, सहज में स्थित महारस का, बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है।

समरस सहज अवस्था में स्थित हो जाना ही, सरहपाद के मतानुसार, साधक का परम पुरुषार्थ है। उस अवस्था में कुछ भी भेद-भाव शेष नहीं रह जाता है।

वर्ण-व्यवस्था का, उच्च-नीच-भाव का तथा धर्म के नाम पर चलनेवाले बाह्याचारों का सरहपाद ने बड़ा ज़ोरदार खण्डन किया है। ब्राह्मणों की ही नहीं, जैन यतियों की भी खबर ली है, लोमोत्पाटन और पिच्छी-ग्रहण की हँसी उड़ाई है।

सरहपाद के **दोहा-कोष** पर श्री अद्वयवज्र की संस्कृत-पंजिका खोज में मिली है, जो कलकत्ता-यूनिवर्सिटी के जर्नल ऑफ दि डिपार्टमैंट ऑफ लेटर्स (खंड २८) में प्रकाशित हुई है।

प्रस्तुत संग्रह में संकलित दोहों का अर्थ उसी संस्कृत-पंजिका के अनुसार किया गया है।

आधार

१. महापंडित राहुल सांकृत्यायन के "वज्रयान और चौरासी सिद्ध" तथा "प्राचीनतम कवि" शीर्षक निबन्ध

२. कलकत्ता-यूनिवर्सिटी से प्रकाशित "जर्नल ऑफ दि डिपार्टमैंट ऑफ लेटर्स" (खंड २८)

●

सरहपाद

मन्तह मन्ते स्सन्ति ण होइ।
पड़िल भित्ति के उट्ठिअ होई ॥१॥

तरुफल दरिसणे णउ अग्घाइ।
वेज्ज देक्खि किं रोग पसाइ ॥२॥

जाव ण अप्पा जाणिज्जइ ताव ण सिस्स करेइ।
अन्धँ अन्ध कढ़ाव तिम वेण वि कूव पड़ेइ ॥३॥

बह्मणेहि म जाणन्त भेउ।
एवइ पढ़िअउ एच्चउ वेउ ॥
मट्टी पाणी कुस लइ पढ़न्त।
घरहिं वइसी अग्गि हुणन्त ॥
कज्जे विरहइ हुअवह होमें।
अक्खि डहाविअ कडुएँ धुम्में ॥४॥

---

१. मंत्र-जाप करने से शान्ति मिलने की नहीं। जो दीवार गिर चुकी वह क्या उठ सकती है?

२. वृक्ष में लगा हुआ फल देखना उसकी गन्ध लेना नहीं है। वैद्य को देखने मात्र से क्या रोग दूर हो जाता है?

३. जबतक अपने आप को नहीं जान लिया, तबतक किसी को शिष्य नहीं करना चाहिए। यह तो वह बात हुई कि एक अन्धा दूसरे अन्धे को साथ ले चला, और दोनों ही कुएं में गिर पड़े!

कबीर ने भी यही कहा है-

''अंधै अंधा ठेलिया, दून्यूँ कूप पड़न्त।''

४. (अद्वयवज्र की संस्कृत टीका के अनुसार) ब्राह्मण भेद-प्रभेद नहीं जानते। पहले जातिभेद ही लेलो। कहते हैं, ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए थे। पहले कभी हुए होंगे। किन्तु आज प्रत्यक्ष में तो वे भी दूसरे लोगों की तरह योनि से ही पैदा होते हैं।

जइ णग्गा विअ होइ मुत्ति ता सुणह सिआलह।
लोमु पाड़णें अत्थि सिद्धि ता जुवइ णिअम्वह ॥५॥

पिच्छी गहणे दिट्ठि मोक्ख ता मोरह चमरह।
उञ्छें भोअणें होइ जाण ता करिह तुरंगह ॥६॥

आइ ण अन्त ण मज्झ णउ णउ भव णउ णिव्वाण।
एहु सो परम महासुह णउ पर णउ अप्पाण ॥७॥

घोरान्धारें चन्दमणि जिम उज्जोअ करेइ।
परम महासुह एक्कुखणे, दुरिआसेस हरेइ ॥८॥

जव्वें मण अत्थमण जाइ तणु तुट्टइ वन्धण।
तव्वें समरस सहजे वज्जइ णउ सुद्द ण वम्हण ॥९॥

तब फिर ब्राह्मणत्व कैसा? और यदि संस्कार से ब्राह्मणत्व होता है, तो अंत्यज भी संस्कार लेकर ब्राह्मण हो सकता है। अतः इससे जाति सिद्ध नहीं होती।

वे चारों वेद पढ़ते हैं जाति-भेद जानते हुए। वेदों को अंत्यज चांडाल भी तो पढ़ सकते हैं।

फिर ये ब्राह्मण हाथ में कुश-जल लेकर घर बैठे हवन करते हैं। आग में घी इत्यादि डाल देने से मोक्ष मिलता हो, तो क्यों नहीं सबको, अन्त्यजों को भी, डालने देते? होम करने से मोक्ष मिले या नहीं, कड़ुवा धुआँ लगने से आँखों को पीड़ा अवश्य होती है।

५. यदि नग्न हो जाने से मुक्ति मिलती हो, तो स्यार-कुत्तों को पहले ही मुक्त हो जाना चाहिए!

और केश-लुंचन से मुक्ति होती हो, तो नितंबों को मुक्ति मिलनी चाहिए, जिनका लोमोत्पाटन होता रहता है!

६. यदि पिच्छी ग्रहण करने से मुक्ति मिलती हो, तो मोर को पहले ही मुक्ति हो जाना चाहिए।

यदि उञ्छ-भोजन से मुक्ति होती हो तो हाथी-घोड़े मुक्ति के पहले अधिकारी हैं। (उञ्छ का अर्थ है खेत का सीला, अर्थात् अन्न का एक-एक दाना चुनना)

७. (सहज शून्यावस्था का) न तो आदि है, न अन्त और न मध्य। न वहाँ जन्म है, न निर्वाण। यह अलौकिक महासुख है। न इसमें पराये का मान रहता है, न अपना।

८. जैसे घोर अंधकार में चन्द्रमणि उजेला कर देती है, इसी तरह यह अपूर्व महासुख एक क्षण में ही संपूर्ण दुश्चरितों का नाश कर देती है।

९. जिस क्षण यह मन अस्त या विलीन हो जाता है, उस समय सारे बन्धन टूट जाते हैं। उस समरस सहज अवस्था में कुछ भी भेद नहीं रहता- न शूद्र न ब्राह्मण।

चीअ थिर करि धरहु रे नाइ।
आन उपाये पार ण जाइ॥
नौवा ही नौका टानअ गुणे।
मेलि मेलि सहजे जाउ ण आणे ॥१०॥
मोक्ख कि लब्भइ ज्झाण पविट्ठो।
किन्तह दीवें किन्तह णिवेज्जं॥
किन्तह किज्जइ मन्तह सेब्वं॥
किन्तह तित्थ तपोवण जाइ।
मोक्ख कि लब्भइ पाणी न्हाइ ॥११॥

परऊआर ण कीअऊ अत्थि ण दीअउ दाण।
एहु संसारे कवण फलु वरुच्छडुहु अप्पाण ॥१२॥

●

---

१०. हे नाविक, चित्त को स्थिर कर सहज के किनारे अपनी नौका लिये चल, रस्सी से खींचता चल—और कोई दूसरा उपाय नहीं।

११. भला, ध्यान धरने से कहीं मुक्ति होती है? दीपक दिखाने और नैवेद्य चढ़ाने, तथा मंत्र पाठ से क्या मुक्ति मिल सकती है?

तीर्थ-सेवन और तपोवन में जाने से, और पानी में नहाने से कहीं मोक्ष-लाभ होता है?

१२. यदि परोपकार नहीं किया और न दान दिया, तो इस संसार में आने का फल ही क्या, इससे तो अपने आपका उत्सर्ग कर देना ही अच्छा है।

सिद्ध तिल्लोपाद

चोला-परिचय

सिद्ध तिल्लोपाद या तिलोपा का भिक्षु-नाम प्रज्ञाभद्र था। कहते हैं, सिद्धचर्या में तिल कूटने के कारण इनका नाम तिलोपा पड़ गया था।

गुरु का नाम विजयपाद था, जो कण्हपा या कृष्णापाद के शिष्य के शिष्य थे।

तिल्लोपाद का जन्म-प्रदेश बिहार था। यह ब्राह्मण थे।

समय इनका १० वीं शताब्दी माना गया है। इनके शिष्य सिद्धाचार्य नारोपा राजा महीपाल (९७४-१०२६ ई०) के समकालीन थे।

वज्रयानी चौरासी सिद्धों में यह एक ऊँचे सिद्ध माने जाते हैं।

मगही हिन्दी में सिद्ध तिल्लोपाद के ४ ग्रन्थ मिले हैं।

बानी-परिचय

प्रस्तुत-संग्रह ग्रन्थ में तिल्लोपाद के **दोहा-कोष** से १२ दोहे संकलित किये गये हैं। **दोहा-कोष** में कुल ३४ दोहे हैं। भाषा इन दोहों की प्राचीन मगही हिन्दी है।

सहज-साधना को तिल्लोपाद की बानी में बड़ा महत्त्व दिया गया है। कहा है कि चित्त-विशुद्धि का एकमात्र साधन सहज-साधना ही है।

अद्वैतवादियों की भाँति इन्होंने भी कहा है—"मैं जगत् हूँ, मैं बुद्ध हूँ और मैं ही निरंजन हूँ।"

तीर्थ-सेवन तथा तपोवन-वास को अन्य सिद्धों और संतों की तरह तिल्लोपाद ने भी मोक्ष-लाभ का साधन नहीं माना है। देव-प्रतिमा के पूजन को भी निरर्थक बतलाया है।

शून्य भावना का आनन्द लेते हुए सिद्ध तिल्लोपाद कहते हैं—

"हउ सुण, जगु सुण तिहुअण सुण।
णिम्मल सहजे ण पाप ण पुण॥"

अर्थात्, मैं भी शून्य हूँ; जगत् भी शून्य है; त्रिभुवन भी शून्य है। महासुख निर्मल सहज स्वरूप है—न वहाँ पाप है, न पुण्य।

महासिद्ध तिल्लोपाद के **दोहा कोष** पर संस्कृत में एक पंजिका है, जिसका नाम

'सारार्थ पंजिका' है। इसी टीका की सहायता से संकलित दोहों का अर्थ किया गया है।

आधार

१. महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के ''वज्रयान और चौरासी सिद्ध'' तथा ''प्राचीनतम कवि'' शीर्षक निबन्ध

२. कलकत्ता-यूनिवर्सिटी से प्रकाशित ''जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स'' (खंड २८)

●

तिल्लोपाद

वढ़ अणं लोअअ गोअर तत्त पण्डित लोअ अगम्म।
जो गुरूपाअ पसण तंहि कि चित्त अगम्म ॥१॥

सहजें चित्त विसोहहु चङ्ग।
इह जम्महि सिद्धि मोक्ख भङ्ग ॥२॥

सचल णिचल जो सअलाचर।
सुण णिरंजण म करु विआर ॥३॥

हंउ जगु हंउ बुद्ध हंउ णिरंजण।
हंउ अमणसिआर भवभंजण ॥४॥

तित्थ तपोवण म करहु सेवा।
देह सुचिहि ण स्सन्ति पावा ॥५॥

देव म पूजहु तित्थ ण जावा।
देव पूजाहि ण मोक्ख पावा ॥६॥

---

१. जो तत्त्व, जो सत्य मूढ़जनों के लिए अगोचर है वह पण्डितों के लिए भी अगम्य है; (क्योंकि वे शास्त्राध्ययन में उलझे रहते हैं) सत्य का साक्षात्कार तो उसी पुण्यवान व्यक्ति को होता है, जिसपर कि सद्गुरु प्रसन्न होते हैं।

२. सहज की साधना से चित्त को तू अच्छी तरह विशुद्ध कर ले। इसी जीवन में तुझे सिद्धि प्राप्त होगी और मोक्ष भी।

३. जितने सब आचार-व्यवहार हैं, वे या तो सचल हैं या निश्चल। किन्तु शून्य निरंजन सकल विकल्पों से रहित है। उसका विचार नहीं करना चाहिए, विचार से वह परे है।

४. मैं जगत् हूं, मैं बुद्ध हूं, और मैं ही निरंजन हूं। मैं ही मानसिक अकर्ता हूं और भव का भंजन करनेवाला भी मैं ही हूं।

५. न तीर्थ-सेवन करो, न तपोवन को जाओ। तीर्थों में स्नानादि करने से मोक्ष-लाभ होने का नहीं।

६. न देव-प्रतिमा की पूजा करो, न तीर्थ यात्रा; देवाराधन से तुम्हें मोक्ष मिलने का नहीं।

जिम विस भक्खइ विसहि पलुत्ता।
तिम भव भुञ्जइ भवहि ण जुत्ता ॥७॥

परम आणन्द भेउ जो जाणइ।
खणहि सोवि सहज बुज्झइ ॥८॥

गुण दोस रहिअ एहु परमत्थ।
सह संवेअण केवि णत्थ ॥९॥

चित्ताचित्त विवज्जहु ण णित्त।
सहज सरूएं करहु रे थित्त ॥१०॥

आवइ जाइ कहवि ण णइ।
गुरु उपएसें हिअहि समाइ ॥११॥

हउ सुण जुग सुण तिहुअण सुण।
णिम्मल सहजे ण पाप ण पुण ॥१२॥

●

---

७. जिस प्रकार विष का शोधक विष खाकर भी मरता नहीं है, उसी प्रकार योगी सांसारिक विषयों को भोगता हुआ भी संसार के बंधनों में नहीं पड़ता।

८. अपूर्व आनन्द के भेद को जो जानता है, उसे सहज का ज्ञान एक क्षण में प्राप्त हो जाता है।

९. परमार्थ अर्थात् परमसत्य यही है, जिसमें न गुण है, न दोष। स्वसंबंध कुछ भी नहीं है, न गुण, न दोष।

१०. चित्तं और अचित्त को सदा के लिए त्याग दे, और सहज स्वरूप में स्थित हो जा।

११. (वह परम तत्त्व) न कहीं से आता है, न कहीं जाता है, न किसी स्थान पर ठहरता है। तथापि गुरु के उपदेश से वह हृदय में प्रविष्ट होता है।

१२. मैं भी शून्य हूं, जगत भी शून्य है, त्रिभुवन भी शून्य है। महासुख निर्मल सहजस्वरूप है, न वहां पाप है, न पुण्य।

मुनि देवसेन

चोला-परिचय

मुनि देवसेन का इतिवृत्त अज्ञात-सा ही है। इतना ही कहा जा सकता है कि यह एक उच्चकोटि के जैन-संत थे। **'सावय धम्म दोहा'** का रचयिता कौन था यह प्रश्न विवादास्पद था। लक्ष्मीचन्द्र या लक्ष्मीधर को इस ग्रन्थ का कर्ता मान लिया गया था और कुछ विद्वानों ने सुप्रसिद्ध जैन मुनि योगीन्द्रदेव को इसका रचयिता माना था। विद्वद्वर हीरालाल जैन ने अपनी शोध के परिणामस्वरूप **'सावय धम्म दोहा'** का कर्ता मुनि देवसेन को सिद्ध किया है। उनका निर्णय अनेक दृष्टियों से प्रामाणिक है। योगीन्द्रदेव की रचनाओं और **सावय धम्म दोहा** में, भाषा और विषय दोनों ही दृष्टियों से अंतर पाया जाता है, जबकि देवसेन-रचित **भाव संग्रह** तथा **सावय धम्म दोहा** में विशेष सादृश्यताएं मिली हैं।

मुनि देवसेन मालवा प्रदेश, के निवासी थे, और १०वीं शताब्दी में विद्यमान थे। **दर्शन सार** ग्रन्थ की रचना देवसेन ने धारा नगरी के पार्श्वनाथ मंदिर में बैठकर संवत् ६६० में की थी।

बानी-परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ में हमने **'सावय धम्म दोहा'** से केवल ११ दोहे संकलित किये हैं। इस ग्रन्थ का विषय श्रावक का धर्म अथवा आचार है। सामान्य गृहस्थों के लिए **सावय धम्म दोहा** की रचना की गई है। श्रावक का भी जीवन-ध्येय विषय-भोगों का सेवन नहीं है, किन्तु आत्मदर्शन से उपलब्ध आनन्द ही उसका साध्य है, जिसके साधन हैं सत्य, अहिंसा, शील, सदाचार तथा इन्द्रियजन्य सुखों से उपराम।

श्रावक-धर्म, मुनि देवसेन के कथनानुसार, सबके लिए है उसका साधक चाहे ब्राह्मण हो चाहे शूद्र, अथवा जैन हो या अजैन। एक दोहा है–

"एहु धम्म जो आयरइ बंभणु सुद्दुवि कोई।
सो सावउ किं सावयहं अण्णु कि सिर मणि होइ॥"

अर्थात् इस धर्म का जो भी आचरण करता है, फिर चाहे ब्राह्मण हो चाहे शूद्र, कोई

भी हो, वही श्रावक है। श्रावक के सिर पर क्या कोई मणि चिपकी रहती है?

अवहट्ठा याने अपभ्रष्ट भाषा का यह अति प्राचीन ग्रन्थ है। इसका अच्छा प्रचार और आदर था। लक्ष्मीचन्द्र ने **'सावय धम्म'** पर एक पंजिका और मुनि प्रभातचन्द्र ने 'तत्त्वदीपिका' नाम की वृत्ति लिखी है।

आधार

मुनि देवसेन और उनकी सरस बानी का यह संक्षिप्त परिचय **'सावय धम्म दोहा'** के विद्वान् संपादक श्री हीरालाल जैन की शोधपूर्ण भूमिका के आधार पर लिखा गया है।

सावय धम्म दोहा कारंजा जैन पब्लीकेशन सोसायटी, कारंजा (बरार) से प्रकाशित हुआ है।

●

मुनि देवसेन

एहु धम्मु जो आयरइ बंभणु सुद्दु वि कोइ।
सो सावउ किं सावयह अण्णु कि सिरि मणि होइ ॥१॥

धम्मु करउं जइ होइ धणु इहु दुव्वयणु म बोल्लि।
हक्कारउ जमभडतणउ आवइ अज्जु कि कल्लि ॥२॥

जं दिज्जइ तं पावियइ एउ ण वयणु विसुद्धु।
गाइ पइरणइ खडभुसइं किं ण पयच्छइ दुद्धु ॥३॥

काइं बहुत्तइं जंपयइं ज अप्पहु पडिकूलु।
काइं मि परहुण तं करहि एहु जि धम्हु ममूलु ॥४॥

धम्मु विसुद्धउ तं जि पर जं किज्जइ काएण।
अहवा तं धणु उज्जलउ जं आवइ णाएण ॥५॥

फरसिंदिउ मा लालि जिय लालिउ एहु जि सत्तु।
करिणिहिं लग्गउ हत्थिमउ णिमलंकुसदुहु पत्तु ॥६॥

---

१. इस धर्म का जो भी आचरण करता है, फिर चाहे वह ब्राह्मण हो चाहे शूद्र, कोई भी हो, वही श्रावक है। श्रावक के सिर पर क्या कोई मणि चिपकी रहती है?

२. मत ऐसा दुर्वचन कह कि यदि धन प्राप्त हो जाय तो मैं धर्म करूं। कौन जाने यमदूत आज बुलाने आ जाय या कल।

३. यह कहना सही नहीं है कि जो दिया जाता है वही मिलता है। गाय को घास-भूसा खिलाते हैं, तो क्या वह दूध नहीं देती?

४. अधिक क्या कहें, जो अपने प्रतिकूल हो उसे दूसरों के प्रति कभी न करो; धर्म का यही मूल है।

५. धर्म विशुद्ध वही है, जो अपनी काया से किया जाता है; और धन भी वही उज्ज्वल है, जो न्याय से प्राप्त होता है।

६. हे जीव, स्पर्शेन्द्रिय का लालन मत कर। लालन करने से यह शत्रु बन जाता है। हथिनी के स्पर्श से हाथी सांकल और अंकुश के वश में पड़ा है।

जिब्भिदिउ जिय संवरहि सरस ण भल्ला भक्ख।
गालइं मच्छु चडप्फडिवि मुउ विसहइ थल दुक्ख ॥७॥

घाणिंदिय वड वसि करहि रक्खहु विसयकसाउ।
गंधहं लंपडु सिलिमुहु विहुड कंजइं विच्छाउ ॥८॥

रूवहु उप्परि रइ म करि णयण णिवारहि जंत।
रूवासत्त पयंगडा पेक्खहि दीखि पडंत ॥९॥

मणगच्छहं मणमोहणहं जिय गेयहं अहिलासु।
गेयरसें हियकण्णडा पत्ता हरिण विणाहु ॥१०॥

एक्कहिं इंदियमोक्कलउ पावइ दुक्खसयाइं।
जसु पुणु पंच वि मोक्कला तसु पुच्छज्जर काइं ॥११॥

●

---

७. हे जीव, जिह्वेन्द्रिय का संवरण कर। स्वादिष्ट भोजन अच्छा नहीं होता। गल से मछली स्थल का दुःख सहती और तड़प-तड़पकर मरती है।

८. अरे मूढ़, घ्राणेन्द्रिय को वश में रख और विषय-कषाय से बच। गंध का लोभी भ्रमर कमल-कोष के अन्दर मूर्च्छित पड़ा है।

९. रूप से प्रीति मत कर। रूप पर खिंचते हुए नेत्रों को रोक ले। रूपासक्त पतिंगे को तू दीपक पर पड़ते हुए देख।

१०. हे जीव, अच्छे मनमोहक गीत सुनने की लालसा न कर। देख, कर्ण-मधुर संगीत-रस से हरिण का विनाश हुआ।

११. जब एक ही इन्द्रिय के स्वच्छन्द विचरण से जीव सैकड़ों दुःख पाता है, तब जिसकी पांचों इन्द्रियां स्वच्छन्द हैं, उसका तो फिर पूछना ही क्या।

मुनि रामसिंह

चोला-परिचय

इतिवृत्त इतना ही केवल कि यह एक जैन मुनि थे, और सुप्रसिद्ध प्राकृत वैयाकरण हेमचन्द्राचार्य के यह पूर्ववर्ती थे। अर्थात्, ११ वीं शताब्दी में यह विद्यमान थे।

'करहा' अर्थात् ऊंट शब्द का अनेक बार प्रयोग इनके दोहों में मिला है, इससे अनुमान कर लिया गया है कि मुनि रामसिंह कदाचित् राजपूताने के निवासी रहे होंगे। पर इस अनुमान के पीछे कोई और पुष्ट प्रमाण नहीं।

'पाहुड़-दोहा' की एक हस्तलिखित प्रति के अंत में 'योगीन्द्रदेव' नाम भी आया है, और अनुमान किया गया था कि 'योगसार' के रचयिता योगीन्द्रदेव का परंपरागत नाम रामसिंह रहा हो। पर इसका भी कोई प्रबल प्रमाण नहीं।

अनुमान है कि मुनि रामसिंह 'सिंह' नामक संघ के अनुयायी रहे होंगे, जिसे आचार्य अर्हद् बलि ने स्थापित किया था।

'पाहुड़-दोहा' से पता चलता है कि मुनि रामसिंह स्वतंत्र प्रकृति के एक ऊंचे रहस्यवेत्ता संत थे।

बानी-परिचय

'पाहुड' का संस्कृत रूपान्तर 'प्राभृत' किया गया है, जिसका अर्थ 'उपहार' होता है, अतः **'पाहुड़-दोहा'** का अर्थ हुआ दोहों का उपहार। कुन्द-कुन्दाचार्य के भी अधिकांश ग्रन्थ 'पाहुड़' कहलाते हैं।

भाषा इनकी 'अवहट्ठा' अर्थात् अपभ्रष्टा है। हिन्दी का यह एक पूर्वरूप है।

मुनि रामसिंह की पाहुड़-बानी में उच्चकोटि का अनुभवगम्य अध्यात्मरस मिलता है। कई दोहों को पढ़ते हैं तो ऐसा लगता है मानों उपनिषदों की सूक्तियां पढ़ रहे हैं।

स्वानुभवशून्य कोरे ज्ञानवाद और निस्सार क्रिया-काण्ड को पाहुड़-बानी में कुछ भी महत्त्व नहीं दिया गया है।

धर्म के नाम पर जो अनेक बाह्याडंबर और पाखंड प्रचलित हुए उन सबका इस जैन संत ने प्रबल खंडन किया है। कहता है—"घट के अंतर में बसनेवाले देव का दर्शन

करो। क्यों व्यर्थ तीर्थों में भटकते हो? क्यों पत्थर के बड़े-बड़े मन्दिर बनवाते हो?''

और–''यह देह ही देवालय है; इसमें वह परमदेव अधिष्ठित है, जिसकी अनेक शक्तियां हैं। उसीकी आराधना करो।''

पाहुड़-बानी में योग-साधन की निर्मल झांकी मिलती है, लगभग वैसी ही, जैसी कि ब्राह्मण एवं बौद्ध-काव्यों में।

उपमाएं अनूठी हैं। शैली सरल और सरस है। काव्य-रस अनुभवगम्य है, जो कोरे शब्द-पाण्डित्य में कहीं खोजने पर भी नहीं मिलता।

सांप्रदायिक संकीर्णता तथा भेद-भावना को मुनि रामसिंह ने अपनी बानी में कहीं भी स्थान नहीं दिया। तभी तो यह स्वानुभवी संत इस निर्मल पद को गा सका–

''कासु समाहि करउं को अंचउं।
छोपु अछोपु भणिवि को वंचउं॥
हल सहि कलह केण सम्माणउं।
जहिं जहिं जोवउं तहिं अप्पाणउं॥''

अर्थात्, समाधि किसकी लगाऊं? पूजूं किसे? छूत-अछूत कहकर किसे छोड़ूं? भला, किसके साथ कलह करूं? जहां भी देखता हूं, सर्वत्र अपनी ही आत्मा दिखाई देती है।

आधार

यह संक्षिप्त परिचय **'पाहुड़-दोहा'** के विद्वान् संपादक श्री हीरालाल जैन, एम॰ ए॰ लिखित शोधपूर्ण भूमिका के आधार पर लिखा गया है।

यह ग्रन्थ कारंजा जैन पब्लीकेशन सोसायटी, कारंजा (बरार) से प्रकाशित हुआ है।

●

मुनि रामसिंह

धंधइ पडियउ सयलु जगु कम्मइं करइ अयाणु।
मोक्खहं कारणु एक्कु खणु ण वि चिंतइ अप्पाणु ॥१॥

जं दुक्खु वि तं सुक्खु किउ जं सुहु तं पि य दुक्खु।
पइं जिय मोहहिं वसि गयइं तेण ण पायउ मुक्खु ॥२॥

मूढा सयलु वि कारिमउ मं फुडु तुहुं तुस कंडि।
सिवपइ णिम्मलि करहि रइ घरु परियणु लहु छंडि ॥३॥

सप्पिं मुक्की कंचुलिय जं विसु तं ण मुएइ।
भोयहं भाउ ण परिहरइ लिंगग्गहणु करेइ॥४॥

ण वि तुहुं कारणु कज्जु ण वि णवि सामिउ ण वि भिच्चु।
सूरउ कायरु जीव ण वि ण वि उत्तमु ण वि णिच्चु ॥५॥

उपलाणहिं जोइय करहुलउ दावणु छोडहि जिम चरइ।
जसु अखइणि रामइं गयउ मणु सो किम बुहु जगि रइ करइ ॥६॥

---

१. सारा जगत् धंधे में फंसा पड़ा है। अज्ञानवश कर्म करता है, किन्तु एक क्षण भी मोक्ष के लिए वह आत्म-चिन्तन नहीं करता।

२. जीव, मोह-वशात् दुःख को सुख, और सुख को दुःख मान बैठा है; यही कारण है कि तुझे मोक्ष-लाभ नहीं हो रहा।

३. अरे मूढ़, यह सारा ही कर्म-जंजाल है। मत कूट तू भूसी को। गृह और परिजनों को तुरंत त्यागकर, तू निर्मल शिव-पद में अनुरक्त हो जा।

४. सांप केंचुल तो त्याग देता है, किन्तु विष को नहीं त्यागता। ऐसे ही मनुष्य मुनि का वेश तो धारण कर लेता है, किन्तु वह भोगों की भावना को नहीं छोड़ता।

५. तू न तो कारण है, न कार्य; तू न स्वामी है, न सेवक; न शूरवीर है, न कायर। हे जीव, तू न उत्तम है, न नीच।

६. जैसे हस्ति-कुमार कमलों को देखते ही बन्धन को तोड़-ताड़कर विचरने लगते हैं, वैसे ही जिसका मन अक्षयिनी रामा अर्थात् मुक्ति-रमणी-पर चला गया वह जगत् के प्रति फिर कैसे प्रीति कर सकता है?

ढिल्लउ होहि म इंदियहं पंचहं विण्णि णिवारि।
एक्क णिवारहि जीहडिय अण्ण पराइय णारि॥७॥

मणु जाणइ उवएसडउ जहिं सोवेइ अचिंतु।
अचित्तहु चित्तु जो मेलवइ सोइं पुणु होइ णिचिंतु॥८॥

मणु मिलियउ परमेसरहो परमेसरु जि मणस्स।
विण्णि वि समरसि हुइ रहिय पुज्ज चडावउं कस्स॥९॥

देहादेवलि जो वसइं सत्तिहिं सहियउ देउ।
को तहिं जोइय सत्तिसिंउ सिग्घु गवेसहि भेउ॥१०॥

सइं मिलिया सइं विहडिया जोइय कम्म णिं भंति।
तरलसहावहिं पंथियहिं अण्णु कि गाम वसंति॥११॥

ताम कुतित्थइं परिभमइं धुत्तिम ताम करंति।
गुरुहुं पसाएं जाम ण वि देहहं देउ मुणंति॥१२॥

पंडिय पंडिय पंडिया कणु छंडिवि तुस कंडिया।
अत्थे गथे तुट्ठो सि परमत्थु ण जाणहि मूढो सि॥१३॥

णाण तिडिक्की सिक्खि वढ कि पढ़ियइं बहुएण।
जा सुंधुक्की णिड्डहइ पुण्णु वि पाउ खणेण॥१४॥

---

७. इन्द्रियों के विषय में तू ढील मत दे। पांच में से इन दो का तो अवश्य निवारण कर—एक तो जिह्वा और दूसरी पर स्त्री।

८. मन तभी उपदेश को समझता है, जब वह निश्चिंत होकर सो जाता है। और निश्चिंत वही होता है, जो चित्त को अचित् से अलग कर लेता है।

९. मन मिल गया है परमेश्वर से और परमेश्वर मिल गया है मन से, दोनों एकाकार हो गये हैं। अब पूजा मैं किसे अर्पण करूं?

१०. हे योगी, इस देह के देवालय में शक्तियों के साथ जो देव रह रहा है, वह शक्तिसंयुक्त शिव कौन है? शीघ्र खोज इस भेद को।

११. हे योगी, कर्म स्वयं मिलते हैं, और स्वयं विलग हो जाते हैं, इसमें कोई भ्रांति नहीं। चंचल प्रकृति के पथिकों से और क्या गांव बसते हैं!

१२. कुतीर्थों का परिभ्रमण तभी तक किया जाता है, और धूर्तता भी तभी तक चलती है, जबतक कि गुरु के अनुग्रह से देह में स्थित देव का परिज्ञान नहीं हो जाता।

१३. पण्डित-श्रेष्ठ, कणों को छोड़कर तूने भूसी को ही कूटा है। ग्रन्थ और उसके अर्थ में तुझे संतोष है, किन्तु रे मूढ़, परमार्थ से तेरा परिचय नहीं!

१४. मूर्ख, बहुत पढ़ लिया तो क्या? ज्ञान की चिनगारी को पढ़, जो प्रज्वलित होते ही पुण्य और पाप को एक क्षण में भस्म कर देती है।

तूसि म रूसि म कोहु करि कोहें णासइ धम्मु।
धम्मि नट्ठिं णरयगइ अह गउ माणुसजम्मु ॥१५॥

बहुयइं पढियइं मूढ पर तालू सुक्कइ जेण।
एक्कु जि अक्खरु तं पढहु सिवपुरि गम्मइ जेण ॥१६॥

अन्तो णत्थि सुईणं कालो थाओ वयं च दुम्मेहा।
तं णवर सिक्खियव्वं जिं जरमरणक्खयं कुणहि ॥१७॥

हउं सगुणी पिउ णिग्गुणउ णिल्लक्खणु णीसंगु।
एकहिं अंगि वसंतयहं मिलिउ ण अंगहिं अंगु ॥१८॥

जीव वहंतिं णरयगइ अभयपदाणें सग्गु।
वे पह जव ला दरिसियइं जहिं भावइ तहिं लग्गु ॥१९॥

हलि सहि काइं करइ सु दप्पणु।
जहिं पडिबिंबु ण दीसइ अप्पणु॥
धंधवालु मो जगु पडिहासइ।
घरि अच्छंतु ण घरवइ दीसइ ॥२०॥

भिण्णउ जेहिं ण जाणियउ णियदेहहं परमत्थु।
सो अंधउ अवरहं अंधयहं किम दरिसावइ पंथु ॥२१॥

---

१५. न त्वेष कर, न रोष कर, न क्रोध कर। क्रोध धर्म को नष्ट कर देता है। और धर्म नष्ट होने से नरक-वास। मनुष्य-जन्म ही नष्ट हो गया।

१६. इतना अधिक पढ़ा कि तालू सूख गया, पर रहा तू मूर्ख ही। उस एक ही अक्षर को पढ़ कि जिससे तू शिवपुरी जा सके।

१७. श्रुतियों का अन्त नहीं, काल थोड़ा, और हम दुर्बुद्धि। अतः तू केवल वही सीख, जिससे कि जरा और मरण का क्षय कर सके।

१८. मैं सगुण हूं, और प्रियतम मेरा निर्गुण, निर्लक्षण और निस्संग। एक ही अंग में, एक ही कोठे में, हम दोनों रहते हैं, फिर भी अंग से अंग नहीं मिल पाया।

१९. प्राणियों के वध से नरक और अभय-दान से स्वर्ग मिलता है। ये दो पंथ हैं, चाहे जिसपर चला जा।

२०. अयि साखी, उस दर्पण को लेकर क्या करूं, जिसमें अपना प्रतिविम्ब न दीखे? लगता है कि यह जगत् मुझे लज्जित कर रहा है। गृह में रहते हुए भी गृहस्वामी का दर्शन नहीं होता।

२१. परमतत्त्व से जिसने अपनी देह को पृथक् नहीं जाना, वह अंधा दूसरे अंधों को कैसे रास्ता दिखा सकता है?

मुंडिय मुंडिय मुंडिया। सिरु मुंडिउ चित्तु ण मुंडिया।
चित्तहं मुंडणु जिं कियउ। संसारहं खंडणु तिं कियउ ॥२२॥

पुण्णेण होइ विहओ विहवेण मओ मएण मइमोहो।
मइमोहेण य णरयं तं पुण्णं अम्ह मा होउ ॥२३॥

कासु समाहि करउं को अंचउं।
छोपु अछोपु भणिवि को वंचउं ॥
हल सहि कलह केण सम्माणउं।
जहिं जहिं जोवउं तहिं अप्पाणउं ॥२४॥

दया विहीणउ धम्मडा णाणिय कह विण जोइ।
बहुएं सलिल विरोलियइं करु चोपडा ण होइ ॥२५॥

मुंडु मुंडाइवि सिक्ख धरि धम्महं वद्धी आस।
णवरि कुडुंबउ मेलियउ छुडु मिल्लिया परास ॥२६॥

अम्मिय इहु मणु हत्थिया विंझह जंतउ वारि।
तं भंजेसइ सीलवणु पुणु पडिसइ संसारि ॥२७॥

देवलि पाहणु तित्थि जलु पुत्थइं सब्वइं कब्बु।
वत्थु जु दीसइ कुसुमियउ इंधणु होसइ सब्बु ॥२८॥

---

२२. हे मुंडितों में श्रेष्ठ! सिर जो अपना तूने मुंड़ा लिया, पर चित्त को नहीं मुंड़ाया। संसार का खण्डन चित्त को मुंड़ानेवाला ही कर सकता है।

२३. छोड़ा ऐसा पुण्य जिससे विभव प्राप्त होता हो, और विभव से मद, फिर मद से मति-मोह और मति-मोह से नरक।

२४. समाधि किसकी लगाऊं? पूजूं किसे? छूत-अछूत कहकर किसे छोड़ूं? भला, किसके साथ कलह करूं? जहां भी देखता हूं, सर्वत्र अपनी ही आत्मा दिखाई देती है।

२५. हे ज्ञानवान् योगी, बिना दया के धर्म हो नहीं सकता। कितना ही पानी बिलोया जाये, उससे हाथ चिकना होने का नहीं।

२६. मूंड़ मुंड़ाकर शिक्षा ग्रहण की और धर्म की आशा बढ़ी। किन्तु कुटुंब के त्याग का तभी कोई अर्थ है, जब (यति) दूसरे की आशा छोड़ दे।

२७. अरे, इस मनरूपी हाथी को विन्ध्य (पर्वत) की ओर जाने से रोक। वह शील के वन को उजाड़ देगा, और फिर संसार में फंसेगा।

२८. देवालय में पत्थर हैं, तीर्थ में जल, और पुस्तकों में काव्य; जो भी वस्तुएं फूली-फली दीख रही हैं, वह सब ईंधन हो जानेवाली हैं।

तित्थइं तित्थ भमंतयहं कि ण्णेहा फल हूव।
वाहिरु सुद्धउ पाणियहं अब्भिंतरु किम हूव ॥२९॥

तित्थइं तित्थ भमेहि वढ धोयउ चम्मु जलेण।
एहु मणु किम धोएसि तुहुं मइलउ पावमलेण ॥३०॥

जोइय हियडह जासु ण वि इक्कु ण णिवसइ देउ।
जम्मणमरणविवज्जियउ किम पावइ परलोउ ॥३१॥

मूढ़ा जोवइ देवलइं लोयहिं जाइं कियाइं।
देह ण पिच्छइ अप्पणिय जहिं सिउ संतु ठियाइं ॥३२॥

वामिय किय अरु दाहिणय मज्झइं वहइ णिराम।
तहिं गामडा जु जोगवइ अवर वसावइ गाम ॥३३॥

अप्पापरहं ण मेलयउ आवागमणु ण भग्गु।
तुस कंडंतहं कालु गउ तंदुलु हत्थि ण लग्गु ॥३४॥

वेपंथेहिं ण गम्मइ वेमुह सूई ण सिज्जए कंथा।
विण्णि ण हुंति अयाणा इंदियसोक्खं च मोक्खं च ॥३५॥

●

---

२९. अनेक तीर्थों में भ्रमण करनेवालों को कुछ भी फल नहीं मिलती। बाहर तो पानी डालकर शुद्ध हो गया, पर अभ्यंतर? वह तो वैसा ही रहा।

३०. मूर्ख, तूने एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ का भ्रमण किया, और चमड़े को जल से धोता रहा, पर इस पाप से मलिन मन को तू कैसे धोयेगा?

३१. योगी, जिसके हृदय में जन्म-मृत्यु-रहित देव निवास नहीं करता, उसे परलोक कैसे प्राप्त हो सकता है?

३२. मूर्ख, उन देवालयों का तो तू दर्शन करने जाता है, जिनका मनुष्योंने निर्माण किया है, किन्तु अपनी काया को नहीं देखता, जहां सदा ही शिव विराजमान हैं!

३३. बायीं ओर ग्राम बसाया, और दाहिनी ओर, किन्तु मध्य को तूने सूना ही रखा; योगी, वहां भी एक ग्राम बसा।

(अर्थात्, इड़ा और पिंगला नाड़ियों के बीच सुषुम्ना में अपने चित्त का निरोध कर।)

३४. न आत्मा और परमतत्त्व का मिलन हुआ, न आवागमन का भंग। भूसी कूटते-कूटते ही काल चला गया, चावल एक भी हाथ न लगा।

३५. एकसाथ दो मार्गों से जाना नहीं बनता। दो मुंहवाली सूई से कंथा नहीं सिया जाता। मूर्ख, एकसाथ दो-दो बातें नहीं सधतीं—इन्द्रिय-सुख भी और मोक्ष भी।

गोरखनाथ

चोला-परिचय

गोरखनाथ या गोरक्षनाथ के विषय में इतना ही निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि भारतवर्ष की धर्माचार्य-परम्परा में यह एक महान् योगी और सुप्रसिद्ध महापुरुष थे।

विक्रम-संवत की दशवीं शती के अंत में, अथवा ग्यारहवीं शती के आदि में इस योगिराट् का प्राकट्य हुआ था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा स्व॰ डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने अपनी विद्वत्तापूर्ण शोधों के परिणामस्वरूप इस आविर्भाव-काल को निश्चित किया है।

स्व॰ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गोरखनाथ का आविर्भाव-काल पंद्रहवीं शताब्दी को माना है, जो निस्सन्देह भ्रान्तिपूर्ण मत है। उनके इस निष्कर्ष का आधार शायद कबीर और गोरखनाथ का तथाकथित संवाद रहा होगा। कहा तो यह भी जाता है कि कबीर के भी परवर्ती गुरु नानक के तथा सत्रहवीं शताब्दी के जैन साधु बनारसीदास के साथ भी गोरखनाथ का वाद-विवाद हुआ था।

जन्म-स्थान भी निश्चित रूप से स्थिर नहीं हो सका। कोई इनका जन्म-स्थान गोदावरी-तट का प्रदेश बतलाता है तो कोई बंगाल और कोई पंजाब।

इसी प्रकार न इनके कुल का निश्चित पता चल सका है, और न जाति का ही। इन बातों का कुछ खास महत्त्व भी नहीं।

पर इतना तो निस्सन्दिग्ध है कि सुप्रसिद्ध कौलज्ञानी मत्स्येन्द्रनाथ या मछन्दरनाथ इनके गुरु थे। मत्स्येन्द्रनाथ ही नाथ-परंपरा के सबसे प्रथम आचार्य हैं। यह जालंधरपाद के गुरुभाई थे, जिनका सिद्ध-परंपरा में बड़ा ऊंचा स्थान है। इनका एक नाम हाड़िपा या हाड़िफा भी है।

प्रसिद्ध है कि ''जाग मछन्दर गोरख आया।'' यह यों कि, किंवदन्तियों के अनुसार योगीश्वर मत्स्येन्द्रनाथ एक बार आसाम के किसी कदली प्रदेश या 'त्रिया-देश' में जाकर 'परकाय-प्रवेश' के सिद्धि-बल से ऐहिक भोग-विलास में लिप्त हो गये थे, शिष्य गोरखनाथ ने वहीं जाकर इन्हें चेताया, और भोग के फन्दे से छुड़ाया था।

निष्कर्ष यह कि योगीश्वर मस्येन्द्रनाथ ने, बाद में, कौलज्ञान स्वीकार कर लिया,

और उनके समर्थ शिष्य गोरखनाथ पुनः उन्हें योग-मार्ग पर ले लाये थे।

कौलाचार की साधना के आदिकाल में 'पंचपवित्र'—बाद को 'पंच मकार' का आध्यात्मपरक अर्थ लगाया जाता था। पीछे, वामाचार में उसका स्थूल अर्थ किया जाने लगा। परिणामतः सहजयानियों, वज्रयानियों और नाथपंथियों का भी अधःपतन हुआ।

गोरखनाथ के योग-मार्ग में हठयोग का प्राधान्य है सही, किन्तु परवर्ती कौलाचार योग की क्रियाओं का प्रवेश उसमें नहीं हो पाया था। उन्होंने अपने उपदेशों में अखंड ब्रह्मचर्य और शील-सदाचार पर ही सदा बल दिया।

किन्तु, पीछे चमत्कारपूर्ण प्रवादों और मनोरंजक किंवदन्तियों ने गोरखनाथ और मछन्दरनाथ के नामों को इतना अधिक उलझा दिया कि शोधकों के लिए ऐतिहासिक एवं तात्त्विक तथ्योंतक पहुंचना दुरूह हो गया। यहांतक कि उलझन का एक नाम 'गोरख-धन्धा' भी पड़ गया।

तथापि, गोरखनाथ का पवित्र नाम आज भी भारत के एक छोर से दूसरे छोरतक वैसा ही प्रसिद्ध है, जैसा कि शताब्दियों पूर्व था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन सही है कि, ''शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित महापुरुष भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भक्ति-आन्दोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन गोरखनाथ का योगमार्ग ही था।''

बानी-परिचय

प्रस्तुत संग्रह-ग्रन्थ में डॉक्टर बड़थ्वाल द्वारा संपादित **गोरख-बानी** से कुछ सबदियां और कुछ पद लिये गये हैं। विद्वान् संपादक ने बानी में 'सबदी' को सबसे प्राचीन माना है। फिर भी, भाषा की दृष्टि से इसे दसवीं या ग्यारहवीं शती की रचना मानने में संदेह के लिए कुछ-न-कुछ स्थान तो रहता ही है। वह काल अपभ्रंश भाषाओं का था। गोरख-बानी में जिन अनेक शब्दों के प्रयोग हुए हैं, वे परवर्ती काल के हैं।

समाधान यों हो सकता है कि गोरखनाथ की मूल बानी का, शताब्दियों से घिसते-घिसते, काफी रूपान्तर तो हो गया, फिर भी उसकी मौलिकता का सर्वथा लोप नहीं हो पाया। जीर्ण हो जाने पर भी अनेक परिवर्तनों के बाद भी रंग सबदियों पर का आज भी वैसे-का-वैसा ही है।

योगमार्ग के गहनतम सिद्धान्तों एवं क्रियाओं का विशद निरूपण लोकभाषा में गोरखनाथ ने जिस शैली में किया है, वह उनकी अपनी मौलिक शैली है। गोरख की बानी में हम स्वानुभूति की ऊंची दृढ़ता, आध्यात्मिक साधना की पारदर्शी निर्मलता, और थोड़े में अधिक कह डालने की तीव्र अभिव्यंजना-शक्ति पाते हैं।

गोरखनाथ की लिखी हुई कही जानेवाली संस्कृत की भी २८ पुस्तकों की सूची

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने **'नाथ-संप्रदाय'** नामक ग्रन्थ में दी है। स्पष्ट ही अधिकांश पुस्तकें, जो गोरखनाथ के नाम से प्रचलित हैं, गोरखनाथ-रचित नहीं हैं। **गोरक्षनाथ-सिद्धान्त संग्रह** नाथ-संप्रदाय के योगमार्ग पर संस्कृत का एक अत्यंत प्रामाणिक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, जिसका संपादन महामहोपाध्याय पं॰ गोपीनाथ कविराज ने किया है।

प्रस्तुत संग्रह-ग्रन्थ में संकलित सवदियों तथा पदों के कठिन और गूढ़ शब्दों का अर्थ हमने विद्वद्वर डॉ॰ बड़थ्वाल द्वारा संपादित 'गोरखबानी' की संपूर्ण सहायता से किया है। यदि यह अत्यंत शोधपूर्ण ग्रन्थ हमारे सामने न होता, तो बानी में आये हुए अनेक गूढ़ एवं रहस्यात्मक पदों का अर्थ लगाना हमारे लिए संभव नहीं था।

आधार

१ **गोरख-बानी,** डॉ॰ पीतांबरदत्त बड़थ्वाल
२ **नाथ-संप्रदाय,** आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

●

गोरखनाथ

बसती न सुन्यं सुन्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिषर महिं बालक बोलै ताका नांव धरहुगे कैसा ॥१॥

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं। अहनिसि कथिबा ब्रह्म नियानं।
हंसै षेलै न करै मन भंग। ते निहचल सदा नाथ कै संग ॥२॥

महंमद महंमद न करि काजी, महंमद का विषम विचारं।
महंमद हाथि करद जे होती लोहै घड़ी न सारं ॥३॥

सबदैं मारी सबदैं जिलाई ऐसा महंमद पीरं।
ताकै भरमि न भूलौ काजी सो बल नहीं सरीरं ॥४॥

कोई बादी कोई बिबादी जोगी कौं बाद न करनां।
अठसठि तीरथ समंदि समावैं यूं जोगी कौं गुरुमुषि जरनां ॥५॥

अहनिसि मन लै उनमन रहै, गम की छांड़ि अग की कहै।
छाड़ै आसा रहै निरास, कहै ब्रह्मा हूं ताका दास ॥६॥

---

१. बसती=बसा, हुआ, अर्थात् 'है'। सुन्यं=शून्य। गगन-सिषर=शून्य; ब्रह्मान्ध्र से आशय है। बालक=परमवस्तु अर्थात् विशुद्ध आत्मा।

२. नाथ=ब्रह्म से तात्पर्य है।

३. महंमद=मोहम्मद पैगंबर। विषम=बहुत कठिन, अगम्य। हाथि=हाथ में। करद=छुरी (ज़िबह करने के लिए)। सारं=इस्पात।

विशेष–मोहम्मद की छुरी थी वस्तुतः शब्द की छुरी, जिससे वह वासना को ज़िबह करते थे।

४. सबदैं.....जिलाई=शब्द से जिज्ञासु की विषय-वासना को नष्ट कर देते थे, और शब्द से ही तत्त्वज्ञान का अमृत पिलाते थे।

सो बल नहीं सरीरं=वह शक्ति आध्यात्मिक थी, भौतिक नहीं।

५. बाद=शास्त्रार्थ। अठसठि=अड़सठ; एक मानी हुई संख्या। समंदि=समुद्र। जरना=पचाना, आत्मसात् करना।

६. उनमन=उन्मनावस्था, मन की वृत्तियों की अंतर्मुख कर लेने की स्थिति। अग=अगम्य; अध्यात्म का देश।

अरधै जाता उरधै धरै, काम दग्ध जे जोगी करै।
तजै अल्यंगन काटै माया, ताका बिसनु पषालै पाया ॥७॥

अजपा जपै सुंनि मन धरै, पांचों इन्द्री निग्रह करै।
ब्रह्म-अगनि मैं होमैं काया, तास महादेव बंदै पाया ॥८॥

मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा ॥९॥

हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा, धीरैं धरिबा पावं।
गरब न करिबा सहजैं रहिबा भणत गोरष रावं ॥१०॥

स्वामी बनषंडि जाउं तो षुध्या ब्यापै, नग्री जाउं त माया।
भरिभरि षाउं त बिन्द बियापै, क्यों सीझ ते जल ब्यंद की काया ॥११॥

धाये न षाइबा, भूषे न मरिबा, अहनिसि लेबा ब्रह्म अगनि का भेवं।
हठ न करिबा पड्या न रहिबा यूं बोल्या गोरषदेवं ॥१२॥

अति अहार यंद्री बल करैं, नासै ग्यांन मैथुन चित धरैं।
ब्यापै न्यंद्रा झंपै काल, ताके हिरदै सदा जंजाल ॥१३॥

पावडियां पग फिलसै अवधू लोहै छीजंत काया।
नागा मूनी दूधाधारी एता जोग न पाया ॥१४॥

---

७. अरधै.....धरै=नीचे को पतित होनेवाले वीर्य को जो ऊपर की ओर खींचता है। अल्यंगन=आलिंगन। बिसनु=विष्णु। पषालै पाया=पैर पखारता है।

८. सुंनि=शून्य, ब्रह्म-रन्ध्र।

९. वे=हे। दीठा=देखा; आत्म-साक्षात्कार किया। मरणी=जीवन्मुक्ति से आशय है।

१०. हबकि=फट से बिना विचारे। ठबकि=ज़ोर से पटक-पटककर। भणत=कहता है। रावं=नाथ।

११. षुध्या=क्षुधा, भूख। नग्री=नगरी, बस्ती। बिंद=वीर्य-विन्दु; काम-वासना से आशय है। क्यों=कैसे, किस साधन से। सीझति=सिद्ध हो। जल-ब्यंद=वीर्य और रज।

१२. धाये न षाइबा=ठूंस-ठूंसकर नहीं खाना चाहिए। मेवं=भेद, रहस्य।

१३. यंद्री=इन्द्रियां। न्यंद्रा=निद्रा। झपै=चढ़ बैठता है।

१४. पावड़ियां=पांवड़ियों याने खड़ाऊं से। फिलसै=फिसल जाता है। लाहै=लोहै की जंजीरों से। मूनी=मौनी। दूधाधारी=केवल दूध का आहार करनेवाले। एता=इतनों ने।

दूधाधारी परिधरि चित। नागा लकड़ी चाहै नित।
मोनी करै म्यंत्र की आस। बिन गुर गुदड़ी नहीं बेसास ॥१५॥

यंडै होइ तौ पद की आसा, बंनि निपजै चौतारं।
दूध होइ तौ घृत की आसा, करणीं करतब सारं ॥१६॥

मन मैं रहिणां भेद न कहिणां बोलिबा अमृतं बाणी।
आगिला अगनी होइबा अबधू, तौ आपण होइबा पांणीं ॥१७॥

हिन्दू ध्यावै देहुरा मूसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परमपद जहां देहुरा न मसीत ॥१८॥

हिन्दू आषैं रांम कौं, मूसलमान षुदाइ।
जोगी आषै अलष कौं तहां राम अछै न षुदाइ ॥१६॥

गोरष कहैं सुणहुरे अवधू जग मैं ऐसैं रहणां।
आंषैं देषिबा काणैं सुणिबा मुष थैं कछू न कहणां ॥२०॥

नाथ कहै तुम आपा राषौ, हठ करि बाद न करणां।
यहु जग है कांटे की बाड़ी देषि देषि पग धरणां ॥२१॥

देवल जात्रा सुंनि जात्रा तीरथ जात्रा पांणीं।
अतीत जात्रा सुफल जात्रा बोलै अंमृत बाणी ॥२२॥

सुनि गुणवंता सुनि बुधिवंता अनंत सिधां कीं बांणीं।
सीस नवावत सतगुर मिलिया जागत रैंणिं विहांणीं ॥२३॥

---

१५. लकड़ी चाहै=धूनी जलाने के लिए लकड़ी चाहता है, जिससे नग्न शरीर सदा गरम बना रहे। म्यंत्र=मित्र, साथी, जिसके द्वारा अपने आशय को समझा सके। बेसास=विश्वास।

१६. प्यंडै=पिंड में, शरीर में। बंनि=वन में। चौतारं=चौपायों में।
करणी-करतब=सच्ची योग-साधना।

१७. मन मैं रहिणां=मन को बहिमुर्ख वृत्तियों को अन्तमुर्ख करके उन्मनावस्था में लीन रहना। आगिला=सामने का आदमी। अगनी होइबा=गरम पड़े। पाणी होइबा=पानी हो जाये, क्षमा दिखाये।

१८. देहुरा=देवालय। मसीत=मसजिद।

१६. आषैं=कथन करते हैं। अछै=है।

२१. आपा राषौ=आत्मा की रक्षा करो।

२२. सुंनि=शून्य, निस्सार, निष्फल। अतीत-जात्रा=संत-समागम से तात्पर्य है।

२३. जागत रैंणि विहाणी=जागते-जागते अर्थात् आत्मज्ञान की अवस्था में भवरात्रि बीत गई।

भिष्या हमारी कामधेनि बोलिये, संसार हमारी बाड़ी।
गुरपरसादे भिष्या षाइबा अंतिकालि न होइगी भारी ॥२४॥

हिरदा का भाव हाथ मैं जाणिये यहु कलि आई षोटी।
बदंत गोरष सुणौं रे अवधू, करवै होइ सु निकसै टोटी ॥२५॥

आसण दिढ अहार दिढ जे न्यंद्रा दिढ होई।
गोरष कहै सुणौं रे पूता, मरै न बूढा होई ॥२६॥

षांयें भी मरिये अणषांयें भी मरिये। गोरष कहै पूता संजमि ही तरिये।
मधि निरंतर कीजे वास। निहचल मनुवा थिर होइ सास ॥२७॥

अवधू मन चंगा तौ कठौती ही गंगा। बांध्या मेल्हा तौ जगत्र चेला।
बदंत गोरष सति सरूप॥ तत बिचारैं ते रेष न रूप ॥२८॥

जोगी होइ परनिंद्यां झषै। मदमास अरु भांगि जो भषै।
इकोतरसै पुरिषा नरकहि जाई। सति सति भाषंत श्री गोरषराई ॥२९॥

अवधू मांस भंषत दया धरम का नाश। मद पीवंत तहां प्रांण निरासा !
भांगि भषंत ग्यांन ध्यांन षोवंत। जम दरबारी ते प्रांणी रोवंत ॥३०॥

एकाएकी सिध नांउ, दोइ रमति ते साधवा।
चारि पंच कुटंब नांउ, दस बीस ते लसकरा ॥३१॥

---

२४. बाड़ी=खेती। गुर...षाइबा=भिक्षान्न भी गुरु का प्रसाद है, गुरु को अर्पण करके ही उसे ग्रहण करते हैं—"तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।"

भारी=दुःखदायी।

२५. हाथमैं=हाथ से किये हुए कर्म में। करवै-टोटी=करवे याने गडुवे में जो कुछ भरा होगा, वही तो टोटी से बाहर निकलेगा।

२६. पूता=पुत्रो अर्थात् शिष्यो!

२७. मधि=मध्यम रहनी। सास=श्वास।

२८. बांध्या=बंधन में पड़ा हुआ मन। मेल्हा=छुड़ा दिया। जगत्र=जगत्। ते रेष न रूप रें=नाम और रूप से मुक्त हैं।

२९. झषै=बके। इकोतर सै=इकहत्तर सौ।

३०. दरबारी=दरबार में।

३१. एकाएकी=अकेला। सिध=सिद्ध। लसकरा=जमात।

महमां धरि महमां कूं मेटै, सति का सबद बिचारी।
नांन्हां होय जिनि सतगुर षोज्या, तिन सिर की पोट उतारी ॥३२॥

जीव क्या हतिये रे प्यंडधारी। मारि लै पंचभू म्रगला।
चरै थारी बुधि बाड़ी। जोग का मूल है दया-दाण।
कथंत गोरष मुकति लै मानवा, मारिलै रै मन द्रोही।
जाकै बप बरण मास नहीं लोही ॥३३॥

जे आसा ते आपदा, जे संसा ते सोग।
गुरमुषि बिना न भाजसी (गोरष) ये दून्यों बड़ रोग ॥३४॥

जपतप जोगी संजम सार। बाले कंद्रप कीया छार।
येहा जोगी जग मैं जोय। दूजा पेट भरै सब कोय ॥३५॥

कथणी कथै सो सिष बोलिये, बेद पढ़ै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरू हमारा, हम रहता का साथी ॥३६॥

पद

राग रामगिरि

रहता हमारै गुरु बोलिये, हम रहता का चेला।
मन मानै तौ संगि फिरै, निंहतर फिरै अकेला ॥

---

३२. धरि=धारणकर, प्राप्त करके। मेटैं=मान नहीं देते हैं।
नांन्हां=नम्र, निरहंकार। पोट=कर्मों की गठरी।

३३. प्यंडधारी=शरीरधारी। पंचभू मृगला=पांचभौतिक मनरूपी मृग।
थारी=तेरी। बुधि-बाड़ी=बुद्धिरूपी खेती। दाण=दान। बप=शरीर।
लोही=लोहू, रक्त।

३४. संसा=संशय; द्वैत-बुद्धि। सोग=शोक। गुरमुषि बिना=सतगुरु का उपदेश लिये बिना।
भाजसी=भागेंगे, नष्ट होंगे।

३५. बाले=बालकपन में। कंद्रप=कदर्प; काम-वासना।
जोय=समझना चाहिए।

३६. नाती=शिष्य का शिष्य, और भी छोटा।

पद

१. रहता=तद्नुसार आचरण करनेवाला। निंहतर=नहीं तो।

अवधू ऐसा ग्यांन बिचारी, तामैं झिलिमिलि जोति उजाली।
जहां जोग तहां रोग न ब्यापैं, ऐसा परषि गुर करनां।
तन मन सूं जे परचा नांही, तौ काहे को पचि मरनां॥
काल न मिट्या जंजाल न छुट्या, तप करि हूवा न सूरा।
कुल का नास करै मति कोई, जै गुर मिलै न पूरा॥
सप्त धात का काया पींजरा, ता महिं जुगति बिन सूवा।
सतगुर मिलै तो ऊबरै बाबू, नहीं तौ परलै हूवा॥
कंद्रप रूप काया का मंडण, अंबिरथा कांइ उलींचौ।
गोरष कहै सुणौं रे भौंदू, अरंड अंमीं कत सींचौ॥१॥

राग असावरी

जीव सीव ना संगे बासा, ना बधि षाइवा रे रुध्र मासा।
घाव न घातिबा हंस गोतं, बदंत गोरषनाथ निहारि पोतं॥
मारिबा रे नरा, मन द्रोही, जाकै बप बरण नहीं मांस लोही॥
सब जग ग्रासिया देव दाणं, सो मन मारीबा रे गहि गुरु ग्यांन बांणं॥
पसू क्या हतिये रे प्यंडधारी, मारिये पंच भू मृघंला जे चरै बुधि बाड़ी
जोग का मूल है दया दांनं, भणत गोरषनाथ ये ब्रह्म ग्यांनं॥२॥

जोति=आत्म-ज्योति। उजाली=प्रकाश। परचा=परिचय, ब्रह्म का साक्षात्कार। जहां... करना=स्वयं-सिद्ध है कि योगाभ्यास सिद्ध होने पर दैहिक अथवा मानसिक कोई भी रोग नहीं रहता। अतः परखकर ऐसा ही गुरु बनाना चाहिए। ऐसा नहीं बनाना चाहिए कि जिसका आश्रय लेकर साधा तो जाये योग, पर हो जाये उलटे रोग।

सूरा=शूरा, सप्त धात=रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, तथा वीर्य से सात धातुएं हैं, जिनसे शरीर का निर्माण हुआ है।

जुगति बिन सूवा=मुक्त होने की युक्ति से अनभिज्ञ तोते के समान बन्द है। परलै=प्रलय, सर्वनाश। मंडण=सजावट, शोभा। अंविरथा=वृथा ही। कांइ=क्यों। भौंदू=मूर्ख। अरंड=रेंडी का पेड़। अमीं=अमृत से।

२. सीव=शिव, ब्रह्म। ना=का (गुजराती प्रयोग) बधि=हत्या करके। रुध्र=रुधिर, रक्त। घाव-घातिवा=प्रहार नहीं करना चाहिए। हंस गोत=ब्रह्म का सगोत्री जीवात्मा। पोतं=अपने आपको, अपने पुत्र को। बप=शरीर। दाणं=दानव। प्यंडधारी=हे शरीरधारी मनुष्य! पंचभू मृघला=पांचभौतिक मनरूपीमृग। बुधिबाड़ो=बुद्धिरूपी खेती।

राग असावरी

कैसें बोलौं पंडिता, देव कौंनै ठांई,
निज तत निहारतां अम्हें तुम्हें नाहीं।
पषांणची देवली पषांण चा देव, पषांण पूजिला कैसे फीटीला सनेह।
सरजीव तोड़िला निरजीव पूजिला, पाप ची करणीं कैसें दूतर तिरीला
तीरथि तीरथि सनांन करीला, बाहर धोये कैसें भीतरि भेदीला॥
आदिनाथ नाती मछींद्रंनाथ पूता, निज तात निहारै गोरष अवधूता॥३॥

आरती

नाथ निरंजन आरती गाऊं। गुरदयाल अग्यां जो पाऊं॥
जहां अनंत सिधां मिलि आरती गाई। तहां जम की बाव न नैड़ी आई।
जहां जोगेसुर हरि कूं ध्यावैं। चंद सूर तहां सीस नवावैं।
मछींद्र प्रसादे जती गोरखनाथ आरती गावै।
नूर झिलमिल दीसै तहां अनत न आवै॥४॥

नरवै-बोध

सुणौ हो नरवै, सुधि बुधि का विचार। पंच तत ले उतपनां सकल संसार
पहलै आरंभ घट परचा करौ निसपती। नरवै बोध कथंत श्री गोरषजती॥१॥
पहलै आरंभ छांड़ौ काम क्रोध अहंकार। मन माया बिषै विकार।
हंसा पकड़ि घात जिनि करौ। तृस्नां तजौ लोभ परहरौ॥२॥

---

३. ठांई=स्थान। निज....नाहीं=आत्मतत्त्व का साक्षात्कार हो जाने पर न तो हम रहते हैं, और न तुम। पषांणची देवली=पत्थर का देवालय। ची, चा=की, का=(मराठी प्रयोग) फीटीला=फूटता है, पसीजता है। सरजीव=सजीव, फूल-पत्ती आदि। दूतर=दुस्तर। सनांन=स्नान। भेदीला=भेद सकता है, निर्मल कर सकता है।

४. बाव=वायु, हवा; स्पर्शतक। नैड़ी=निकट। प्रसादे=प्रसाद अर्थात् कृपा से। नूर=आत्मा का प्रकाश। अनत=अन्यत्र; अन्य अवस्था।

नरवै-बोध

१. नरवै=नृपति। आरंभ....निसपती=योग की चार अवस्थाएं हैं—आरंभ, घट, परिचय और निष्पत्ति। उतपनां=उत्पन्न हुआ है।

२. हंसा=प्राणी।

छांडो दंद रहौ निरदंद। तजौ अल्यंगन रहौ अवंध।
सहज जुगति ले आसण करौ। तन मन पवनां दिढ करि धरौ ॥३॥

संजम चितओ जुगत अहार। न्यंद्रा तजौ जीवन का काल।
छांड़ौ तंत मंत बेदंत। जंत्र गुटिका धात पाषंड ॥४॥

जड़ी बूटी का नांव जिनि लेहु। राज दुवार पाव जिनि देहु।
थंभन मोहन बिसिकरन छाड़ौ औचाट।
सुणौ हो जोगेसरो जोगारंभ की बाट ॥५॥

और दसा परहरौ छतीस। सकल बिधि ध्यावो जगदीस।
बहु विधि नाटारंभ निबारि। काम क्रोध अहंकारहि जारि ॥६॥

नैंण महा रस फिरौ जिनि देस। जटा भार बंधौ जिनि केस।
रूष बिरष बाड़ी जिनि करौ। कूवा निवांण षोदि जिनि मरौ ॥७॥

टूटै पवनां छीजे काया। आसण दिढ करि वैसौ राया।
तीरथ बर्त कदे जिनि करौ। गिर परबतां चढि प्रान मति हरौ ॥८॥

पूजा पाति जपौ जिनि जाप। जोग माहि बिटंबौ आप।
छांडौ बैद बणज व्यौपार। पढ़िबा गुणिबा लोकाचार ॥९॥

बहुचेला का संग निबांरि। उपाधि मसांण बाद बिष टारि।
येता कहिये प्रतच्छि काल। एकाएकी रहौ भुवाल ॥१०॥

---

३. दंद=द्वन्द्व, द्वैतभाव, प्रपंच। अल्यंगन=आलिंगन, काम-वासना। पवनां... धरौ=श्वास को प्राणायाम द्वारा निश्चल करो।

४. संजम चितओ=संयम, साधना में चित्त लगाओ। जुगत=युंक्त, नियंत्रित। न्यंद्रा=निद्रा। बैदंत=बैद्यक। गुटिका=गोली। धात=पारा आदि धातु भस्मों का सिद्ध करना।

५. थंभन=स्तंभन। औचाट=उच्चाटन। बाट=मार्ग।

६. छतीस=क्षितीश, नृपति। नाटारंभ=बाहरी प्रदर्शन, पाखण्ड। निवारि=दूर करके।

७. रूष=पेड़। निवांण=गहरा।

८. बर्त=व्रत। कदे=कभी।

९. बिटंबो=बिडंबना कराते हो। बैद=बैद्य का धंधा।

१०. उपाधि मसांण=उपाधि है मानो श्मशान। बाद बिष टारि=शास्त्रार्थ को विष के समान समझकर टाल दो। एकाएकी=अकेले ही।

सभा देषि मांडौ मति ग्यांन। गूंगा गहिला होइ रहौ अजांण।
छाड़व राव रंक की आस। भिछ्या भोजन परम उदास ॥११॥
रस रसाइंन गोटिका निवारि। रिधि परहरौ सिधि लेहु बिचारि।
परहरौ सुरापांन अरु भंग। तातैं उपजै नांना रंग ॥१२॥
नारी, सारी, कींगुरी। तीन्यूं सतगुर परहरी।
आरंभ घट परचै निसपती। नरवै बोध कथंत श्री गोरख जती ॥१३॥

ग्यान-तिलक

दरपन माहीं दरसन देष्या, नीर निरंतरि झांई।
आपा मांही आपा प्रगट्या, लखै तौ दूर न जाई ॥१॥
चकमक ठरकै अगनि झरै यूं दधि मथि घृत करि लीया।
आपा मांहीं आपा प्रगट्या, तब गुरू संदेसा दीया ॥२॥
सुरति गहौ संसै जिनि लागौ, पूंजी हांन न होई।
एक तत सूं एता निपजै, टार्‌या टरै न सोई ॥३॥
निहिचा है तौ नेरा निपजै, भया भरोसा नेरा।
परचा है ततषिन निपजै, नहींतर सहज नबेरा ॥४॥

●

---

११. गहिला=पागल।

१३. सारी=मैना, मैना पालकर उससे राम का नाम जपवाते हैं। कींगुरी=सारंगी।

ग्यान-तिलक

१. दरपन=अपने आपमें। दरसन देख्या=ब्रह्म का साक्षात्कार किया। झाईं=प्रतिबिम्ब।

२. ठरकै=रगड़ने से। संदेसा दिया=पते की बात बतला दी।

३. सुरति=ध्यान, लय। जिनि लागौ=मत पड़ो। पूंजी=आत्मारूपी निधि। एता=इतना अखूट धन। निपजै=पैदा होता है।

४. निहिचा=निश्चय। भरोसा=परम विश्वास। नेरा=वहीं-का-वहीं। तर्तांषन=तत्क्षण, तुरंत ही। नबेरा=निबटारा।

नामदेव महाराज

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१३२७ वि.
जन्म-स्थान—नरुसी बमनी (सातारा ज़िला)
जाति—छीपी
पिता—दामा शेट
माता—गोणाई
गुरु—खेचरनाथ नाथपंथी
योगमार्ग-प्रेरक—ज्ञानदेव महाराज
निवार्ण-संवत्—१४०७ वि.
निर्वाण-स्थान—पंढरपुर

महाराष्ट्र के सुविख्यात कृष्ण-भक्त वामदेव इनके नाना थे। नामदेव पर भी, स्वभावतः, कृष्ण-भक्ति का प्रभाव बाल्यपन से पड़ा था। सगुणोपासना-विषयक इनके अनेक अभंग मराठी में प्रसिद्ध हैं। हिन्दी में भी इनके कृष्ण-भक्ति सम्बंधी कई पद मिलते हैं। एक पद है—

धनि धनि मेघा रोमावली, धनि धनि कृष्ण ओढ़े कांवली।
धनि धनि तू माता देवकी, जेहि गृह रमैया कंवलापती।
धनि धनि बनखंड बृन्दावना, जहं खेलें श्री नारायणा।
बेनु बजावैं, गोधन चारैं, नामे का स्वामी आनंद करै॥

इन पदों और मराठी के अभंगों से सिद्ध होता है कि नामदेव आरंभ में सगुणोपासक थे। पश्चात्, गोरखनाथ की शिष्य-परंपरा के सुप्रसिद्ध सन्त ज्ञानदेव महाराज ने इन्हें, कहा जाता है, निर्गुणोपासना की ओर मोड़ने का प्रयत्न किया, और उन्हें सफलता भी मिली। कहते हैं कि एक बार श्री ज्ञानदेव इन्हें अपनी संत-मण्डली में लेकर तीर्थाटन को निकले। नामदेव अपने इष्टदेव बिठोबा (भगवान् विट्ठलनाथ) के वियोग में व्याकुल रहते थे। ज्ञानदेव ने बहुत समझाया कि, 'यह तुम्हारा मोह है, भगवान् तो सर्वत्र हैं। तुम्हारी यह कच्ची भक्ति है। पक्की भक्ति तो निर्गुण-पक्ष की ही होती है। सो तुम उसीका अभ्यास करो।' एक दिन एक गांव में सब संतों की परीक्षा हुई। परीक्षक था एक

कुम्हार। कुम्हार ने घड़ा पीटने का पिटना हाथ में लिया, और सब के सिर उससे ठोकने लगा। सब संत चोटें खाकर भी अचल बैठे रहे। पर नामदेव अपना सिर पिटवाने को तैयार नहीं हुए, उसपर बिगड़ भी पड़े। कुम्हार बोला—'और संत तो सब पक्के घड़े हैं। यही एक कच्चा घड़ा है।' नाथपंथ का अनुयायी बनाने के लिए ज्ञानदेवजी ने और भी कितने ही प्रयत्न किये। पश्चात् ज्ञानदेव के देहावसान के उपरांत, नामदेव ने खेचरनाथ नाम के एक नाथपंथी योगी को अपना गुरु बना लिया, जैसा कि प्रसिद्ध है

''मन मेरी सूई, तन मेरा धागा।
खेचरजी के चरण पर नामा सिंपी लागा॥''

योगमार्ग पर पैर रखने के पश्चात् नामदेवजी ने निर्गुणोपासना के अनेक अभंगों और पदों की रचना की। किन्तु निर्गुणोपासक अथवा नाथपंथी या योगमार्गी हो जाने पर भी पंढरपुर के बिठोबा के प्रति इनकी भक्ति में अन्तर नहीं पड़ा। नामदेव का देहावसान विट्ठल-मन्दिर के महाद्वार की सीढ़ी पर संवत् १४०७ में ८० वर्ष की अवस्था में हुआ।

नामदेव के सम्बन्ध में भक्तमाल तथा अन्य ग्रन्थों में अनेक चमत्कारों का वर्णन मिलता है; जैसे, बचपन में विठोबा की मूर्ति का प्रत्यक्ष होकर इनके हाथ से दूध पीना, बादशाह के सामने एक मरी हुई गाय को जिला देना*, नागनाथ महादेव के मन्दिर का द्वार इनकी ओर घूम जाना आदि।

---

*मरी हुई गाय को जिला देने की कथा नामदेवरचित निम्न पद पर आधारित हैः-

''सुलतानु पूछै सुनु बे नामा। देखउं राम तुम्हारे कामा॥
नामा सुलताने बांधिला। देखउं तेरा हरि बीठुला॥
बिसमिलि गऊ देहु जीबाइ। नातरु गरदनि मारउं ठांइ॥
बादिसाह, ऐसी क्यूं होइ। बिसमिलि किया न जीवै कोइ॥
मेरा किया कछू ना होइ। करिहै रामु होइहै सोइ॥
बादिसाहु चढ्यो अहंकारि। गज हसती दीनों चमकारि॥
रुदनु करै नामे की माइ। छोड़ि राम किन भजहि खुदाइ॥
न हौं तेरा पूंगड़ा न तू मेरी माइ। पिंडु पड़ै तौ हरिगुन गाइ॥
करै गजिंदु सुंड की चोट। नामा उबरै हरि की ओट॥
काजी मुल्लां करहि सलामु। इनि हिंदु मेरा मल्या मानु॥
पायहु बेड़ी, हाथहु ताल। नामा गावै गुन गोपाल॥
गंग जमुन जौ उलटी बहै। तौउ नामा हरि कहता रहै॥
सात घड़ी जब बीती सुणी। अजहुं न आयो त्रिभुवन-धणी॥
पाखंतण बाज बजाइला। गरुड़ चढे गोबिन्द आइला॥
अपने भगत परि की प्रतिपाल। गरुड़ चढ़े आए गोपाल॥

बानी-परिचय

जैसाकि ऊपर कहा गया है सगुण-भक्ति एवं निर्गुण-भक्ति दोनों ही प्रकार के पद इनके हिन्दी में मिलते हैं। गुरु ग्रन्थसाहब में नामदेव के ६० से अधिक पद संकलित हैं। पंजाब में १५ वर्षतक भगवद्भक्ति का प्रचार करते रहने के कारण इनकी मराठीयुक्त हिन्दी में पंजाबी का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। सगुणोपासना के पदों की भाषा जहां कुछ-कुछ ब्रज की जैसी है वहां निर्गुणोपासना की बानी पर खड़ी हिन्दी का प्रभाव पड़ा है।

नामदेव की बानी यद्यपि सीधी-सादी भाषा में है, तथापि वह भक्तिरसमयी और अन्तर को भेदनेवाली है। उसमें हम योग-साधना की निर्मलता के साथ-साथ भक्ति की विह्वलता भी पाते हैं। हिन्दी के संत-साहित्य को नामदेव महाराज की अनुभवपूर्ण बानी पर गर्व है।

आधार

१ नाभाकृत भक्तमाल—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
२ साध-संग्रह—स्वामीबाग, आगरा
३ गुरु ग्रन्थ साहिब—सर्व हिन्दी सिक्ख मिशन, अमृतसर
४ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल

●

कहहि त धरणी इकोड़ी करउं। कहहि त लेकरि ऊपरि धरउं ॥
कहिह त मूइ गऊ देउं जियाइ। सभु कोई देखैं पतियाइ ॥
नामा प्रणवै सेलमसेल। गऊ दुहाई बुछरा मेलि ॥
दूधहि दुहि जब मटुकी भरी। ले बादिसाह के आगे धरी ॥
बादिसाहु महल महिं जाइ। औघट की घट लागी आइ ॥
काजी मुल्लां विनती फुरमाइ। बखसी हिंन्दू मैं तेरी गाइ ॥
नामदेव सभु रह्या समाइ। मिलि हिंदू सभ नामे पहिं जाहि ॥
जौ अब की बार न जीवै गाइ। त नामदेव का पतिया जाइ ॥
नामे की कीरति रही संसारि। भगत जनां ले उधर्‍या पारि ॥
सगल कलेसा निदंक भया खेदु। नामे नारायन नाहीं भेदु ॥"

नामदेव महाराज

राग आसा

एक, अनेक सु व्यापक पूरक जित देखौं तित सोई।
माया चित्र-विचित्र विमोहिनि बिरला बूझै कोई॥
सब गोबिंदु है सब गोबिंदु है, गोबिंदु बिनु नहिं कोई।
सूतु एक मनि सत सहस्र जैसे, ओतिपोति प्रभु सोई॥
जल, तरंग अरु फेन, बुदबुदा जल ते भिन्न न होई।
इहु प्रपंच ब्रह्म की लीला बिचरत आन न होई॥
मिथ्या भ्रम अरु सुपन मनोरथ सत्ति पदारथु जान्या।
सुकिरत-मनसा गुरु-उपदेसै जागत ही मन मान्या॥
कहत नामदेव हरि की रचना देखहु रिदै धिचारी।
घट-घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी॥१॥

राग आसा

मन मेरो गज, जिहवा मेरी काती।
मपि-मपि काटौं जम की फांसी॥
कहा करौं जाती कहा करौं पांती।
राम को नाम जपौं दिन राती॥
भगति-भाव सूं सीवनि सीवौं।
राम नाम बिनु घरी न जीवौं॥
भगति करौं हरि के गुन गावौं।
आठ पहर अपने खसम को ध्यावौं॥
सोने की सूई, रूपे का धागा।
नामे का चित हरि सूं लागा॥२॥

---

१. सूतु......सोई=एक धागे में जैसे सैकड़ों-हज़ारों मणियां गूंथी जा सकती हैं, वैसे ही परमात्मा जगत् की प्रत्येक वस्तु में और प्रत्येक वस्तु उसमें समाई हुई है। ओति-पोति=ओतप्रोत, परस्पर इतना उलझा या मिला हुआ कि अलग-अलग करना असंभव-सा हो। बुदबुदा=बुलबुला। विचरत=विचार करने पर। आन=अन्य, भिन्न। सुकिरत मनसा=पवित्र मन से। रिदै=हृदय में।

२. काती=कैंची। मपि-मपि=माप-मापकर। खराम=स्वामी।

सारंग

काहे रे मन, विषया-बन जाइ।
भूलौ रे ठग मूरी खाइ॥
जैसे मीन पानी महिं रहै।
काल-जाल की सुधि नहिं लहै॥
जिहवा-स्वादी लीलति लोह।
ऐसे कनक कामिनी बांध्यो मोह॥
ज्यूं मधु माखी संचै अपार।
मधु लीनों, मुख दीर्नी छार॥
गऊ बाछ को संचै खीर।
गला बांधि दुहि लेइ अहीर॥
माया कारन स्रमु अति करै।
सो माया लै गाड़ै धरै॥
अति संचै समझै नहिं मूढ़।
धन धरती तनु होइ गयो धूड़॥
काम क्रोध तृसना अति जरैं।
साध-संगति कबहूं नहिं करैं।
कहत नामदेव सांची मान।
निरभै होइ भजिलै भगवना॥३॥

सारंग

बदहु कि न होड़ माधौ, मोसूं।
ठाकुर ते जन जन ते ठाकुर ख्याल पर्‌यो है तोसूं॥
आपन देव देहुरा आपन, आप लगावै पूजा।
जल ते तरंग तरंग ते है जल, कहन सुनन को दूजा॥
आपहि गावै आपहि नाचै, आप बजावै तूरा।
कहत नामदेव तूं मेरो ठाकुर, जन ऊरा तूं पूरा॥४॥

---

३. विषया-बन जाइ=विषय-वासनाओं के वन में भटक रहा है। ठगमूरी=एक ऐसी नशीली जड़ी-बूटी, जिसे ठगलोग राहगीरों को बेहोश करके उन्हें लूटने के लिए खिलाते थे। लीलति=निगल जाती है। संचै=इकट्ठा करती है। मुख दीनी छार=धता बतला देते, या नष्ट कर देते हैं। खीर=दूध। धूड़=धूल, नष्ट।

४. देहुरा=देवालय। तूरा=तुरही, सिंघा। ऊरा=अधूरा, न्यून।

मलार

मो को तूं न बिसारि, तूं न बिसारि, तूं न बिसारि रमैया।
तेरे जन की लाज जाहिगी, मुझ ऊपरि सब कोपिला।
सूदु सूदु करि मारि उठायो कहा करौं बाप बीठुला॥
मूए परि जौ मुकति देहुगे, मुकति न जानै कोई।
ए पंडिया मो को ढेढ़ कहत तेरी पैज पिछौडी होई॥
तू जु दयालु कृपालु कहियतु हैं अति भुज भयो अपारला।
फेरि दिया देहुरा नामे कौ पंडियन को पिछवारला॥५॥

राग भैरव

मैं बौरी मेरा राम भतार।
रचि-रचि ताकों करौं सिंगार॥
भले निंदौं भले निंदो भले निंदौ लोग।
तन मन मेरा राम प्यारे जोग॥
बाद बिबाद काहू सूं न कीजै।
रसना राम-रसायन पीजै॥
अब जिय जानि ऐसी बनि आई।
मिलौं गुपाल नीसान बजाई॥
अस्तुति निंदा करै नर कोई।
नामे श्रीरंगु भेटल सोई॥६॥

राग भैरव

जैसी भूखे प्रीति अनाज।
त्रिषावंत जल सेती काज॥
जैसे मूढ़ कुटंब परायण।
ऐसी नामे प्रीति नारायण॥

---

५. कोपिला=कुपित हैं, नाराज़ हैं। सूद=शूद्र। बीठुला=बिट्ठल (विष्णु); पंढरीनाथ भी कहते हैं, जो नामदेव के इष्टदेव थे। मुए परि=मरने पर। ढेढ़=अंत्यज, अछूत। पैज पिछौंडी होई=तेरा प्रण पीछे पड़ जायगा। अति.....अपारला=भुजा बहुत बढ़ा दी। फेरि.....पिछवारला=मंदिर का मुंह (द्वार) नामदेव की ओर कर दिया, ताकि वह दर्शन ले सके, क्योंकि उसे मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया था, और मंदिर की पीठ पंडों की ओर कर दी।

६. भतार=भर्त्ता, स्वामी। श्रीरंग=लक्ष्मीपति विट्ठलनाथ।

नामे प्रीति नरायण लागी।
सहज सुभाय भयो बैरागी॥
जैसी परपुरषारत नारी।
लोभी नर धन का हितकारी॥
कामी पुरष कामिनी प्यारी।
ऐसी नामे प्रीति मुरारी॥
सोई प्रीति जि आपे लाए।
गुरपरसादी दुबिधा जाए॥
कबहुं न तूटसि रह्या समाइ।
नामे चित लाया सचि भाइ॥
जैसी प्रीति बालक अरु माता।
ऐसा हरि सेती मन राता॥
प्रणवै नामदेउ लागी प्रीति।
गोबिंदु बसै हमारे चीति॥७॥

रामकली

माइ न होती बापु न होता करम न होती काया।
हम नहिं होते, तुम नहिं होते, कवन कहां ते आया॥
राम कोइ न किसही केरा।
जैसे तरवर पंखि-बसेरा॥
चंद न होता, सूर न होता, पानी पवनु मिलाया।
सास्त्र न होता बेद न होता, करमु कहां ते आया॥
खेचरि भूचरि तुलसी माला गुरपरसादी पाया।
नामा प्रणवै परम तत्त कूं सतगुर मोहि लखाया॥८॥

माली गौड़

मेरो बाप माधौ तूं धन केसौ, सांवलियो बीठुलराइ।
कर धरे चक्र बैकुंठ ते आयो, तूं रे गज के प्रान उधार्यो॥

---

७. सेती=प्रति, से। पुरषा=पुरुष। हितकारी=लोभी। परसादी=कृपा। तूटसि=टूटा। सचि भाइ=सच्चे भाव से। राता=अनुरक्त, लगा हुआ। चीति=चित्त।

८. खेचरि=योग-शास्त्र के अनुसार खेचरी नाम की मुद्रा। भूचरि=योगशास्त्र के अनुसार भूचरी नाम की मुद्रा।

दुहसासन की सभा द्रोपदी अंबर लेत उबार्‌यो।
गोतम नारि अहल्या तारी, पापिन केतिक तार्‌यो॥
ऐसा अधम अजाति नामदेउ तव सरनागति आयो॥९॥

बिलावल

सफल जनम मो को गुर कीना।
दुख बिसारि सुख अंतर लीना॥
ग्यान-अंजन मो को गुर दीना।
राम नाम बिनु जीवन मनिहीना॥
नामदेव सिमरन करि जाना।
जगजीवन सूं जीव समाना॥१०॥

राग गौड

मोहि लागति तालाबेली।
बछरा बिनु गाइ अकेली॥
पानी बिनु ज्यूं मीन तलफैं।
ऐसे रामनाम बिनु नामा कलपै॥
जैसे गाइ का बाछा छूटला।
थन चोखता माखन घूटला॥
नामदेउ नारायन पाया।
गुर भेटत ही अलख लखाया॥
जैसे बिषै हेत परनारी।
ऐसे नामे प्रीति मुरारी॥
जैसे ताप ते निरमल घामा।
तैसे रामनाम बिनु बापुरो नामा॥११॥

राग गौड़

भैरों भूत सीतला धावैं।
खर बाहन उहु छार उड़ावैं॥

---

९. केसौ=केशव। दुहसासन=दुःशासन। अंबर लेत=वस्त्र खींचते हुए। पापिन...तार्‌यो=कितने ही पापियों को पवित्र किया और तार दिया।

१०. हीन=तुच्छ, व्यर्थ। जगजीवन...समाना=जगत्पति विट्ठल में मेरा चित्त लीन हो गया।

११. तालाबेली=बेचैनी। कलपै=व्याकुल हो रहा है। बापुरो=बेचारा।

हौं तो एक रमैया लैंहौं।
आन देव बदलावनि दैंहौं॥
सिव-सिव करते जो नर ध्यावै।
बरद चढ़े डौरूं ढमकावै।
महामाई की पूजा करै॥
नर सो नारि होइ औतरै।
तू कहियत ही आदि भवानी॥
मुकति की बिरियां कहां छपानी॥
गुर मति रामनाम गहु मीता।
प्रणवैं नामा औ कहे गीता॥१२॥

राग गौड़

हमरो करता राम सनेही।
काहे रे नर गरब करत है, बिनसि जाइ झूठी देही॥
मेरी मेरी कैरव करते दुरजोधन से भाई।
बारह जोजन छत्र चलैंथा, देही गिरझन खाई॥
सरब सोने की लंका होती, रावन से अधिकाई।
कहा भयो दर बांधे हाथी, खिन महिं भई पराई॥
दुरबासा सूं करत ठगौरी, जादव वे फल पाये।
कृपा करी जन अपने ऊपर नामा हरिगुन गाये॥१३॥

राग धनाश्री

मारवाड़ि जैसे नीर बालहा, बेलि बालहा करहला।
ज्यूं कुरंग निसि नाद बालहा त्यूं मैरे मनि रमइया॥
तेरा नाम रूड़ो रूपु रूड़ो अति रंग रूड़ो मेरो रमइया।
ज्यूं धरणी को इन्द्र बालहा कुसम वास जैसे भवंरला।
ज्यूं कोकिल को अंबं बालहा, त्यूं मैरे मनि रमइया॥

---

१२. बदलावनि=बदले में। बरद=बैल। डौरूं=डमरू। ढमकावै=बजाता है। बिरियां=समय। छपानी=छिप गई। गीता=विट्ठल का गुण-गान।

१३. गिरझ=गीध। खिन=क्षण, पल। ठगौरी=धोखा।

चकवी कौं जैसे सूर बालहा, मानसरोवर हंसला।
ज्यूं तरुणी कौं कन्त बालहा, त्यूं मैरे मनि रमइया॥
बारक कौं जैसे खीर बालहा, चातक मुख जैसे जलधरा।
मछली कौं जैसे नीर बालहा, त्यूं मैरैं मनि रमइया॥
साधिक सिद्ध सगल मुनि चाहहिं, बिरले काहू डीठुला।
सगल भवन तेरो नाम बालहा त्यूं नामे मनि बीठुला॥१४॥

राग धनाश्री

पतितपावन माधौ बिरदु तेरा।
धनि धनि ते मुनिजन जिन ध्यायो हरि प्रभु मेरा॥
मेरे माथे लागीले धूरि गोबिंद चरनन की।
सुरि नर मुनि जन तिनहु ते दूरि॥
दीन को दयालु माधौ गरब प्रहारी।
चरन सरन नामा लि बलि तिहारी॥१५॥

भाई रे, इन नैनन हरि देखौ।
हरि की भगति साध की संगति सोई दिन धनि लेखौ॥
चरन सोइ जे नचत प्रेमसूं कर सोई जे पूजा।
सीस सोइ जो नवे साधकूं रसना अवर न दूजा॥
यह संसार हाट का लेखा, सब कोइ बनिजहिं आया।
जिन जस लाद्या तिन तस पाया, मूरख मूल गंवाया॥
आतमराम देह धरि आया तामें हरि कूं देखौं।
कहत नामदेव बलि बलि जैहौं, हरि भजि और न लेखौं॥१६॥

परधन परदारा परिहरी। ताके निकट बसहिं नरहरी॥
जे न भजंते नारायना। तिनका मैं न करौं दर्सना॥

---

१४. बालहा=प्रिय। करहला=फूल की कली। कुरंग=मृग। रूडों=सुन्दर। अंब=आम। सूर=सूर्य। बारक=बालक। जलधरा=स्वाति नक्षत्र के मेघ से अभिप्राय है। डीठला=देखा।

१५. बिरद=बड़ा नाम, यश।

१६. रसना....दूजा=वही जिह्वा या वाणी धन्य है, जो हरिनाम ही जपती है, दूसरा शब्द नहीं बोलती। लेखा=समान। लाद्या=कर्म किया। मूल=पूंजी। आत्मरूप=आत्मस्वरूपी ब्रह्म।

जिनके भीतर रहै अंतरा। जैसा पसु तैसा वह नरा॥
प्रनमत नामदेव ताके बिना। ना सोहै बत्तीस लच्छना॥१७॥

किसू हूं पूजूं दूजा नजर न आई।
एके पाथर किज्जे भाव। दूजे पाथर धरिये पाव॥
जो वो देव तो हम बी देव। कहै नामदेव हम हरि की सेव॥१८॥

अंबरीष कूं दियो अभयपद,
राज बिभीषन अधिक कर्‌यो।
नौ निधि ठाकुर दई सुदामहिं,
ध्रूव जो अटल अजहूं न टर्‌यो॥
भगत हेत मार्‌यौ हरनाकुस,
नृसिंह रुप है देह धर्‌यो।
नामा कहै भगति बस केसव,
अजहूं बलि के द्वार खर्‌यौ॥१६॥

साखी

हिन्दू पूजै देहुरा, मूसलमान मसीत।
नामा सोई सेविया, जहं देहुरा न मसीत॥१॥
मन मेरा सुई, तन मेरा धागा।
खेचरजी के चरण पर नामा सिंपी लागा॥२॥

●

---

१७. अंतरा=मंदबुद्धि, द्वैतभाव। किज्जे=करते हैं।

१८. भाव=भक्ति-भावना। बी=भी।

१६. खर्‌यो=खड़ा है; खड़ा पहरा देता है।

साखी

१. देहुरा=देवालय। मसीत=मसजिद।

२. खेचर=खेचरनाथ नामक नाथपंथी साधु, जिसे नामदेव ने अपना गुरु बनाया था। सिंपी=छींपी, दरजी।

कबीर साहब

चोला परिचय

जन्म-संवत्–१४५६ वि.

जन्म-स्थान–काशी

भारत का तत्कालीन शासक–सिकंदर लोदी

माता-पिता के नाम अज्ञात; नीरू जुलाहे और उसकी पत्नी नीमा द्वारा पालित।

गुरु–स्वामी रामानन्द।

सत्यलोक-प्रयाण-संवत्–१५७५ वि.

कहते हैं कि नीरू जुलाहा जब अपनी स्त्री का गौना कराकर घर को वापस आ रहा था, तब रास्ते में उसे काशी के पास लहरतारा तालाब पर एक हाल का जन्मा बालक पड़ा हुआ दिखाई दिया। उस नवजात बालक को उठाकर वह घर ले आया, यद्यपि लोकापवाद के डर से नीमा ने पति को ऐसा करने से रोका। यही परित्यक्त बालक कबीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कबीरदास का पालन-पोषण जिस जुलाहे-कुल में हुआ था वह नवधर्मान्तरित मुसलमान-कुल था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी अपनी 'कबीर' पुस्तक में गहरी गवेषणा के परिणामस्वरूप निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुंचे हैं:–

"(१) आज की वयनजीवी जातियों में से अधिकांश किसी समय ब्राह्मण-श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करती थीं।

(२) जोगी नामक आश्रमभ्रष्ट घरबारी की एक जाति सारे उत्तर और पूर्व भारत में फैली थी। ये नाथपंथी थे। कपड़ा बुनकर और सूत कातकर या गोरखनाथ और भरथरी के नाम पर भीख मांगकर ये जीविका चलाया करते थे।

(३) इनमें निराकार भाव की उपासना प्रचलित थी, जाति-भेद और ब्राह्मण-श्रेष्ठता के प्रति इनकी कोई सहानुभूति नहीं थी, और न अवतारवाद में ही इनकी कोई आस्था थी।

(४) आसपास के बृहत्तर हिन्दू-समाज की दृष्टि में ये नीच और अस्पृश्य थे।

(५) मुसलमानों के आने के बाद ये धीरे-धीरे मुसलमान होते रहे।

(६) पंजाब, युक्त प्रदेश, बिहार और बंगाल में इनकी कई बस्तियों ने सामूहिक रूप

से मुसलमानी धर्म ग्रहण किया था।

(७) कबीरदास इन्हीं नव धर्मान्तरित लोगों में पालित हुए थे।

कबीर यद्यपि नाथपंथी योगमत के अनुयायी नहीं थे, तथापि ऐसे कुल में पालन-पोषण होने के कारण उक्त योगमत का कुछ-न-कुछ प्रभाव उनकी युक्तियों और तर्क-शैली में रह गया है।''*

स्वामी रामानन्दजी को कबीरदास ने अपना गुरु स्वीकार किया था—''काशी में हम प्रगट भये हैं, रामानन्द चेताये।'' सद्गुरु के प्रति कबीर ने ज्वलन्त श्रद्धाभाव अनेक साखियों व शब्दों में प्रकट किया है।

मगर मुसलमान कबीर-पंथी मानते हैं कि कबीर ने सूफी फकीर शेख तकी से गुरु-दीक्षा ली थी। इसके प्रमाण में यह वाक्य प्रस्तुत किया जाता है—''घट-घट है अविनासी सुनहु तकी तुम शेख।'' पर इससे यह बात सिद्ध नहीं होती कि शेख तकी कबीर के गुरु थे। 'शेख' शब्द का प्रयोग यहां विशेष आदरभाव से नहीं किया गया है, बल्कि शेख तकी को उलटे उपदेश-सा दिया गया है। हां, यह सम्भव है कि उंची के पीर शेख तकी का सत्संग कुछ कालतक उन्होंने किया हो।

ज्ञानभक्ति की सतत साधना करते हुए भी अपना घरेलू व्यवसाय नहीं छोड़ा-'हम घर सूत तनहिं नित ताना।' किन्तु कपड़ा बुनते समय भी लौ उनकी राम से ही लगी रहती थी। ताने-बाने के रूपक के अनेक सुन्दर शब्द कबीर के मिलते हैं।

एक लोक-प्रचलित कथा है। कहते हैं कि एक दिन एक थान बुनकर कबीर साहब उसे बाज़ार में बेचने के लिए घर से निकले। रास्ते में एक साधु मिल गया और उसने कहा—'बाबा, ला कुछ दे।' इन्होंने आधा थान फाड़कर दे दिया। 'पर इतने से तो बाबा मेरा काम नहीं चलेगा।' कबीर साहब ने दूसरा आधा थान भी उसे दे दिया, और प्रसन्नचित्त घर लौट आये[1]।

कबीर ने विवाह किया था या नहीं इस विषय में थोड़ा मतभेद-सा है। पर मानते अधिकतर यही हैं और उनकी बानी से भी सिद्ध होता है कि वे गृहस्थ थे, और उनकी स्त्री का नाम लोई था :—

रे, या में क्या मेरा क्या तेरा,
लाज न मरहिं कहत घर मेरा।
कहत कबीर सुनहु रे लोई,
हम तुम बिनसि रहेगा सोई॥

---

*कबीर, पृष्ठ २२

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय द्वारा संपादित कबीर-वचनावली

'लोई का अर्थ, मतांतर से, ''हे लोगों'' यह भी होता है, पर यहां यह अर्थ संभवतः अभिप्रेत नहीं है। अधिकांश प्रमाणों से कबीर का गृहस्थ होना ही सिद्ध होता है।

अन्य अनेक संत-महात्माओं की तरह कबीर साहब के विषय में भी कितनी ही अलौकिक चमत्कारपूर्ण लोक-कथाएं प्रसिद्ध हैं, जैसे–व्यापारी के भेष में भगवान् का कबीर के घर पर, सन्तों के भण्डारे के लिए, आटा, घी, शकर आदि बैलों पर लादकर ले जाना[१], दिव्यदृष्टि से यह देखकर कि जगन्नाथपुरी में जगन्नाथजी का कपड़ा आग से जलना चाहता है, कबीर का दूर से ही पानी लाकर आग को बुझा देना[२], और जब बादशाह सिकन्दर लोदी ने पाया कि कबीर स्वयं अपने को ईश्वर कहता है, तो क्रोध में आकर उन्हें आग में फेंकवाना, पर उनका उससे साफ बच जाना, फिर उन्हें चिरवाने के लिए हाथी भेजवाना, पर उनके सामने से मारे डर के हाथी का भाग जाना, इत्यादि।

आयु का प्रायः सारा ही भाग मोक्षदायिनी काशीपुरी में कबीर साहब ने बिताया, पर मृत्यु के समय वे मगहर चले आये–

सकल जन्म सिवपुरी बिताया,
मरति बार मगहर उठि धाया।

प्रसिद्ध है कि काशी में प्राण छोड़ने से मुक्ति मिलती है, और मगहर में मरने से नरक। पर कबीर इस लोकप्रचलित अन्ध धारणा के कायल नहीं थे। उन्होंने कहा–

जो कासी तन तजै कबीरा।
तो रामहिं कौन निहोरा?

कहते हैं कि मगहर में कबीर साहब के हिन्दू और मुसलमान शिष्यों में उनके शव को लेकर झगड़ा खड़ा हो गया–हिन्दू कहते थे कि हम दाह-संस्कार करेंगे, और मुसलमान चाहते थे कि उन्हें वे दफनायेंगे। मगर जब कफन को उठाकर देखा तो वहां कबीर साहब का शव नहीं था, उसकी जगह कुछ फूल बिखरे पड़े थे। हिन्दू-मुसलमानों ने उन फूलों को आपस में आधा-आधा बांट लिया।

भक्तवर हरिराम व्यास (रचना-काल संवत् १६२०) ने एक पद में कहा है–

कलि में सांचो भक्त कबीर।
पांच तत्त तें देह न पाई, ग्रस्यौ न काल सरीर ॥

कबीर साहब की जैसी बानी अलौकिक, वैसे ही उनकी लोक-प्रसिद्ध जीवन-कथा भी अलौकिक। कबीर एवं उनकी कोटि के अन्य सन्तों की जीवन-कथाएं तथाकथित इतिहास की वस्तु नहीं हैं। उन्होंने कहां, कब, किस कुल में पंचरंग चोला धारण किया,

---

१. नाभाकृत भक्तमाल-प्रियादास की टीका
२. नाभाकृत भक्तमाल-प्रियादास की टीका

और कहां और कब उसे उतारकर रख दिया इस सबकी खोज में उलझना व्यर्थ-सा लगता है। उनका जीवन-दर्शन तो उनकी रसवंती बानी के पद-पद में झलकता है। तो फिर उसीको साधना के सहारे गहरे उतरकर क्यों न खोजा जाये?

बानी-परिचय

भक्तमाल में नाभाजी ने कहा है—

'आरूढ़ दसा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिंन भनी'

कबीर ने जो कुछ भी कहा अपने खुद के जीवित-जागृत अनुभव से कहा, दूसरों के मुंह की कही बात उन्होंने नहीं कही! पढ़-पढ़कर भी कोई बात नहीं कही—

'मसि कागद छूयौ नहीं, कलम गही नहिं हाथ।'

जो कहा अनूठा कहा, किसीका जूठा नहीं। इसीलिए जिस किसीने केवल शास्त्रीय पांडित्य का सहारा लेकर कबीर के सिद्धांतों की गवेषणा और आलोचना की, वह अपने प्रयत्न में प्रायः सफल नहीं हुआ। कबीर के तत्त्वदर्शन की थाह दार्शनिक विवेचन और विश्लेषण के द्वारा नहीं, प्रत्युत सत्य की सहज साधना के द्वारा ही किया जा सकता है। कबीर की बानी में जहां हम ज्ञान-विज्ञान का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म निरूपण पाते हैं, वहां योग का गूढ़ातिगूढ़ भेद भी हमें मिलता है और भक्ति का गहरे-से-गहरा रहस्यवाद भी। वेदान्त भी उसमें पूरा-पूरा उतरा है, और साथ ही सूफी सिद्धांत भी। किन्तु वहां उनकी तत्त्वदर्शन की विविध विवेचनाएं तथा मान्यताएं उन्हीं सब अर्थों में नहीं मिलेंगी जिन अर्थों में कि उन्हें हम अनेक शास्त्रों में सामान्यतया स्थिर पाते हैं, परिणामतः उनके आधार पर कबीर के स्वानुभूत तत्त्व-दर्शन का विवेचन और विश्लेषण एकांगी या अधूरा रहता है।

कबीर की निपट गहरी और ऊंचे घाट की बानी के विषय में ऊपर-ऊपर से कुछ कहा जा सकता है, तो केवल इतना ही कि—

१. उसमें निरपेक्ष ज्ञान-विज्ञान की ओर पद-पद पर गूढ़ संकेत हैं। पर वह लोगों को धोखे में नहीं रखना चाहती। वह 'गुन में निरगुन की और निरगुन में गुन' की बाट बताती है—निर्गुण भी उसका अनूठा और सगुण भी उसका अनूठा। उसका प्रतिपाद्य ब्रह्म इसी प्रकार द्वैत और अद्वैत दोनों से परे और ऐसा ही उसका राम भी।

२. उस बानी में जगह-जगह पर योगमार्ग का उल्लेख आया है। पर रास्ता वह वैसा टेढ़ा-मेढ़ा और विकट नहीं है। तथापि योगी तो उसे फिसलता हुआ ही दिखाई देता है, योग उसका सहज-ही-सहज है, वैसा ही जैसा कि आत्मा का परमात्मा से मिलन। खुद ही थके-मांदे मार्गदर्शक प्रियतम के निकट क़ैसे पहुंचा सकते हैं?

३. भक्ति-मार्ग पर चलने की वह सलाह देती है। कहती है बड़े चाव से, 'जतन करो

सखि पिया मिलन का।' राह रपटीली है, उसपर गिर-गिरकर और उठ-उठकर बड़े जतन से चलना पड़ता है, और जब उस ठौर पर पहुचते हैं, लाल की लाली में सब कुछ रंगा हुआ दीखता है। सो, 'भक्तिमार्ग' भी उसका अपना ही है।

४. बाह्याचारों की उसे तनिक भी अपेक्षा नहीं—उसकी दृष्टि में वह कुबाट है। भले ही चला करें पंडित-पांडे और शेख-मुल्ले उस रास्ते से; वह अपने साधु भाई को उसपर कभी नहीं चलने व भटकने देगी।

५. हिन्दू और मुसलमान दोनों ही, उसकी नज़र में, सही रास्ते नहीं जा रहे, दोनों ही अहं या खुदी को गले से लगाये उलटी राह जा रहे थे, तो उन्हें तो उसे फटकारना ही था, उन्हें ही जो वेद और कुरान की गहराई में न पैठकर उनके पन्नों के उलटने-पलटने में अपनी पंडिताई और मुल्लाई को खर्च कर रहे थे।

६. सत्य की राह में जो भी आड़े आया, उसे उसने बख्शा नहीं। कर्मकांड, जात-पांत और छूत-छात को चिपटाये जिसे भी उसने देखा गुमराह पाया, और उसे झकझोर डाला। उसके प्रखर प्रवाह में तिनके की तरह बह गये सारे बाह्याचार, सारे मिथ्याचार।

७. कुछ उलटबांसियां भी उस बानी में आई हैं—मौज के अटपटे उद्गार हैं वे। 'सहज'-साधना में उनका वैसे खास महत्त्व नहीं।

८. भाषा को उस बानी का 'अधिनायकत्त्व' स्वीकार करना पड़ा। उसके विद्युत-वेग को देखकर वह दिङ-मूढ़-सी हो गई। उसके एक-एक इंगित पर मोहित भाषा ने अपने रूप को कांपते हुए साधा और संवारा।

ऐसी है कबीर की अनूठी बानी! कौन और कैसे उसका बखान करे! बेचारा पंगु साहित्य-समीक्षक कहां पहुंच सकेगा उस अत्यन्त ऊंचे घाट तक!

प्रस्तुत सार-संग्रह में थोड़े-से शब्द और साखियां ही हमने ली हैं, रमैनी नहीं; उलटबांसी एक भी नहीं ली। बानी में ऐसे ही अंगों को लिया है, जिनमें सतगुरु और नाम की महिमा, प्रेम और विरह का निरूपण, शील और सदाचार का विवेचन तथा बाह्याचारों और मूढ़ग्राहों का खण्डन किया गया है।

'कबीर-ग्रन्थावली' तथा **'कबीर-वचनावली'** में से सबदों और साखियों का संग्रह किया गया है। कुछ सबद **'गुरु ग्रन्थ साहब'** में से भी लिये गये हैं। तीनों ही ग्रन्थों की भाषा में स्पष्ट अंतर है। **'कबीर-ग्रन्थावली'** के सबदों और साखियों की भाषा में पंजाबी और राजस्थानी का रूप दिखाई देता है, और **'कबीर-वचनावली'** में संगृहीत बानी की भाषा अधिकांशतः काशी के आसपास बोली-जानेवाली पूर्वी हिन्दी है। कौन पाठ कितना सही है इस विवाद में न पड़कर हम इतना ही कहेंगे कि संतों की बानी गंगा के समान है, जिसमें अनेक प्रदेशों या जनपदों में व्यवहृत शब्द जगह-जगह के जल की तरह समय-समय पर मिलते रहते हैं, फिर भी बानी के सहज स्वरूप में कोई उल्लेखनीय अंतर

नहीं पड़ता, निज में वह वैसी की वैसी ही रहती है।

कबीर ग्रन्थावली—श्यामसुन्दरदास द्वारा संपादित तथा काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित।

कबीर वचनावली—अयोध्यासिंह उपाध्याय द्वारा संपादित तथा काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित।

गुरु ग्रन्थसाहब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर से प्रकाशित।

कबीर—हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, मुम्बई द्वारा प्रकाशित।

कबीर-पदावली—रामकुमार वर्मा, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित।

भक्तमाल—नाभाकृत।

●

कबीर साहब

सबद

दुलहनी गावहु मंगलचार
हम घरि आये हो राजा राम भरतार ॥
तन रत करि मैं मन रत करिहूं, पंचतत मोर बराती।
रामदेव मोरै पांहुने आये, मैं जोबन मैं माती ॥
सरीर सरोबर वेदीं करिहूं, ब्रह्मा बेद उचारा।
रामदेव संगि भांवरि लैहूं, धंनि धंनि भाग हमारा ॥
सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनियर सहस अठासी।
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी ॥१॥

अब हम सकल कुसल करि मानां,
स्वान्ति भई तब गोव्यंद जानां ॥
तन मैं होती कोटि उपाधि, उलटि भई सुख सहज समाधि ॥
जम थै उलटि भया है राम, दुख बिसर्‍या सुख कीया विस्राम ॥
बैरी उलटि भये हैं मीता, साषत उल्लटि सजन भये चीता ॥
आपा जांनि उलटि ले आप, तौ नहीं ब्यापै तीन्यूं ताप ॥
अब मन उलटि सनातन हूवा, तब हम जांनां जीवत मूवा ॥
कहै कबीर सुख सहज समाऊं, आप न डरौं न और डराऊं ॥२॥

सबद

१. भरतार=स्वामी; रस=अनुरक्त; पाहुनैं=अतिथि; वर, भांवरि=फेरे, अग्नि की परिक्रमा, जो विवाह के समय वर और वधू मिलकर देते हैं। कौतिग=कौतुक। मुनियर=मुनिवर।

२. कुसल=अच्छा ही अच्छा। स्वांति=स्वात्मस्थ। जम थैं.....राम=मृत्यु अब राम की तरह प्रिय और आनन्ददायी हो गई। साषत=शाक्त, शत्रु। सजन=बन्धु। चीता=चित्त में। आपा....ले आप=देहाभिमान को दूरकर आत्मभाव साधले। सनातन=नित्य, अचंचल, आत्मा से भी अभिप्राय है।

तननां बुनना तज्या कबीर, रांम नांम लिखि लिया सरीर ॥
जब लग भरौं नही का बेह, तब लग टूटै राम सनेह ॥
ठाढी रोवै कबीर की माय, ऐ लरिका क्यूं जीवै खुदाय ॥
कहै कबीर सुनहुं री माई, पूरणहारा त्रिभुवनराई ॥३॥

चलन चलन सबको कहत हैं, नां जानों बैकुंठ कहां है ॥टेक॥
जोजन एक प्रमिति नहीं जानैं, बातनि ही बैकुंठ बषानैं ॥
कहे सुने कैसैं पतिअइये, जब लग तहां आप नहीं जइये ॥
कहे कबीर यहु कहिये काहि, साध-संगति बैकुंठहि आहि ॥४॥

अपनै मैं रंगि आपनपौ जानूं,
जिहि रंगि जानि ताही कूं मांनू ॥टेक॥
अभिअंतरि मन रंग समानां, लोग कहैं कबीर बौरानां ॥
रंग न चीन्हैं मूरखि लोई, जिहि रंगि रंग रह्या सब कोई ॥
जे रंग कबहूं न आवै न जाई, कहै कबीर तिहिं रह्या समाई ॥५॥

कैसैं होइगा मिलावा हरि सनां,
रे, तू बिषै-बिकारन तजि मनां ॥टेक॥
तैं रे, जोग जुगति जान्यां नहीं, तैं गुर का सबद मान्यां नहीं ॥
गंदी देही देखि न फूलिये, संसार देखि न भूलिये॥
कहै कबीर मन बहुगुनी, हरिभगति बिनां दुख फुन फुनी ॥६॥

जो पैं करता बरण बिचारै,
तौ जनमत तीनि डांडि किन सारै ॥टेक॥
उतपति ब्यंद कहां थैं आया, जोति धरी अरु लागी माया ॥
नहीं को ऊंचा नहीं को नींचा, जा का प्यंड ताही का सींचा ॥
जो तूं बांभन बंभनी जाया, तौ आंन बाट ह्वै काहे न आया ॥

---

३. नली=नाल, ढरकी के अन्दर की नली, जिसपर तार लपटा रहता है। बेह=छेद। खुदाय=या खुदा। पूरणहारा=पालनेवाला।

४. प्रमिति=परमिति। पतिअइये=विश्वास करे। आदि=है।

५. आपनपौ=आत्मस्वरूप। लोई=लोग।

६. हरिसनां=हरि से। सबद=उपदेश, मंत्र। बहुगुनी=अनेक वृत्तियोंवाला। फुनफुनी=पुनः पुनः, बारबार।

जो तूं तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतरि खतनां क्यूं न कराया।
कहै कबीर मधिम नहीं कोई, सो मधिम जा मुखि रांम न होई ॥७॥

हम न मरैं मरिहै संसारा, हम कूं मिल्या जियावनहारा ॥टेक॥
अब न मरौं, मरनैं मन मानां, तेई मुए जिनि रांम न जानां ॥
साकत मरै सन्त जन जीवै, भरि भरि रांम रसांइन पीवै ॥
हरि मरिहैं तौ हमहूं मरिहैं, हरि न मरै हम काहे कूं मरिहैं ॥
कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुखसागर पावा ॥८॥

कौंन मरै कहु पंडित जनां, सो समझाइ कहौ हम सनां ॥टेक॥
माटी माटी रही समाइ, पवनैं पवन लिया संगि लाइ ॥
कहै कबीर सुनि पंडित गुनी, रूप मूवा सब देखै दुनी ॥९॥

लोका जांनि न भूलौ भाई।
खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रह्यौ समाई ॥टेक॥
अला एकै नूर उपनाया, ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थैं सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा ॥
ता अला की गति नहीं जांनी, गुरि गुड़ दीया मींठा।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहिब दीठा ॥१०॥

हंम तौ एक एक करि जानां।
दोइ कहैं तिनहीं कौं दोजग, जिन नांहिंन पहिचांनां ॥टेक॥
एकै पवन एक ही पानीं, एक जोति संसारा।
एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजनहारा ॥
जैसें बाढ़ी काष्ठ ही काटै, अगिनि न काटै कोई।
सब घटि अंतरि तूं ही व्यापक, धरै सरूपैं सोई ॥

---

७. जोपै....सारै=यदि सरजनहार ने चार वर्णों के भेद का विचार किया है, तो जन्म से ही एकसमान सबके साथ वह भौतिक, दैहिक और दैविक ये तीन दण्ड क्यों लगा देता? खतना=सुन्नत, एक मुस्लिम संस्कार, जिसमें मूत्रेन्द्रिय का अगले भाग का चमड़ा काट देते हैं। भीतर=गर्भ में ही। मधिम=हलका, उतरकर।

८. साकत=शाक्त, वाममार्गी। रसांइन=प्रेम की मदिरा।

९. सनां=से।

१०. खालिक=सृष्टिकर्त्ता, परमात्मा। खलक=सृष्टि। अला=अल्लाह, ईश्वर। नूर=आदिज्योति; ईश्वर-अंश जीवात्मा। उपनाया=पैदा किया। दीठा=देखा।

माया मोहे अर्थ देखि करि, काहे कूं गरबानां।
नरभै भया कछू नहीं ब्यापै, कहै कबीर दिवानां ॥११॥

अब का डरौं, डर डरहि समानां, जब थैं मोर तोर पहिचानां ॥टेक॥
जब लग मोर तोर करि लीन्हा, भै भै जनमि जनमि दुख दीन्हा।
आगम निगम एक करि जानां, ते मनवां मन माहिं समांनां।
जब लग ऊंच नींच करि जांना, ते पसुवा भूले भ्रम नानां।
कहि कबीर मैं मेरी खोई, तबहि रांम अवर नहीं कोई ॥१२॥

बागड़ देश लूवन का घर है,
तहां जिनि जाइ दाझन का डर है ॥टेक॥
सब जग देखौं कोई न धीरा, परस धूरि सिरि कहत अबीरा ॥
न तहां सरवर न तहां पाणी, न तहां सतगुर साधू बांणी ॥
न तहां कोकिल न तहां सूवा, ऊंचै चढ़ि चढि हंसा मूवा ॥
देस मालवा गहर गंभीर, डग डग रोटी पग पग नीर ॥
कहै कबीर घरहीं मन मानां, गूंगे का गुड़ गूंगै जानां ॥१३॥

हरि ठग जग कौं ठगौरी लाई,
हरि कै बियोग कैसैं जीऊं मेरी माई ॥टेक॥
कौन पुरिष को काकी नारी, अभिअंतरि तुम्ह लेहु बिचारी ॥
कौन पूत को काकौ बाप, कौन मरै कौन करै संताप ॥
कहै कबीर ठग सों मनमानां, गई ठगौरी ठग पहिचानां ॥१४॥
का मांगूं कुछ थिर न रहाई, देखत नैंन चल्या जग जाई ॥टेक॥
इक लष पूत सवा लष नाती, ता रांवन घरि दीवा न बाती ॥

---

११. एक-एक करि=अभेद रूप से। दोजग=दोजख, नरक, दुर्गति। बाड़ी=बढ़ई। दिवानां=दीवाना, मस्त।

१२. जबथैं....पहिचानां=जबसे 'मेरा-तेरा' की हकीकत जान ली, जो निश्चय ही मिथ्या है; जब से अभेद का ज्ञान पा लिया। भै भै=भ्रम-भ्रमकर, अनेक योनियों में चक्कर लगाकर। पसुवा=मनुष्यरूपी पशु, अत्यंत मूढ़।

१३. बागड़=मरुभूमि, यहां त्रिताप-संतप्त संसार से अभिप्राय है। लूवन का घर=जहां दिन-रात लुवें (गरम हवा) चलती हों। दाझन का=जलने का। मालवा=प्रियतम के हरेभरे लोक से अभिप्राय है।

१४. ठग=मन को चुरा लेनेवाला, यहां प्रियतम प्रभु को प्रेमातिरेक से 'ठग' कहा है। ठगौरी=मोहिनी।

लंका सा कोट समंद सी खाई, ता रांवन की षबरि न पाई ॥
आवत संग न जात संगाती, कहा भयौ दरि बांधे हाथी ॥
कहै कबीर अंत की बारी, हाथ झाड़ि जैसें चले जुवारी ॥१५॥

काहे कूं माया दुख करि जोरी,
हाथि चूंन, गज पांच पछेवरी ॥टेक॥
नां को बंध न भाई साथी, बांधे रहे तुरंगम हाथी ॥
मैंड़ी महल बावड़ी छाजा, छाड़ि गये सब भूपति राजा ॥
कहे कबीर राम ल्यौ लाई, धरी रही माया काहू खाई ॥१६॥

हरि जननी मैं बालिक तेरा, काहे न औगुंण बकसहु मेरा ॥टेक॥
सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहैं न तेते ॥
कर गहि केस करै जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता ॥
कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥१७॥

गोब्यंदे तुम्ह थैं डरपौं भारी ।
सरणाई आयौ क्यूं गहिये, यहु कौंन बात तुम्हारी ॥टेक॥
धूप दाझतैं छांह तकाई, मति तरवर सचिपाऊं ।
तरवरमांहैं ज्वाला निकसै, तौ क्या लेइ बुझाऊं ॥
जे बन जलै त जल कूं धावै, मति जल सीतल होई ।
जलही मांहि अगिनि जे निकसै, और न दूजा कोई ॥
तारणतिरण तिरण तूं तारण, और न दूजा जानौं ।
कहै कबीर सरनांई आयौं, आंन देव नहीं मानौं ॥१८॥

मैं गुलाम मोहि बेचि गुसाईं, तन मन धन मेरा रांमजी कै ताईं ॥
आनि कबीरा हाटि उतारा, सोई गाहक सोई बेचनहारा ॥
बेचै राम तौ राखै कौन, राखै राम तौ बेचै कौन ॥
कहै कबीर मैं तन मन जार्‌या, साहिब अपना छिन न विसार्‌या ॥१६॥

---

१५. देखत नैंन=आंखों के देखते-देखते । संगाती=साथी । दरि=दर, द्वार ।

१६. पछेवरी=पिछौरी, छोटा-सा दोपट्टा । बंध=बंधु । मैड़ी=मेड़, राज्य की सीमा । छाजा=छज्जा ।

१७. बकसहु=माफ करो । न हेत उतारै=स्नेहभाव में कमी नहीं करती है ।

१८. सरणाई....गहिये=शरणागत को कैसे अपनाया जाय इस प्रकार का सोच-विचार करना । दाझतैं=जलते हुए । मति=नहीं । रुचि=चैन, शान्ति । तरुवर और जल से यहां सांसारिक आश्रय-स्थान अथवा शान्ति पाने के उपायों से अभिप्राय है ।

अब मोहि राम भरोसा तेरा, और कौन का करौं निहोरा ॥टेक॥
जाकै राम सरीखा साहिब भाई, सो क्यूं अनत पुकारन जाई ॥
जा सिरि तीनि लोक कौ भारा, सो क्यूं न करै जन का प्रतिपारा ।
कहै कबीर सेवौ बनवारी, सींचौ पेड़ पीवैं सब डारी ॥२०॥

हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव,
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ॥टेक॥

हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लहुरिया ॥
किया स्यंगार मिलन कै ताईं, काहे न मिलौ राजा रांम गुसाईं ॥
अब की बेर मिलन जो पाऊं, कहै कबीर भौ-जलि नहीं आऊं ॥२१॥
राम बान अन्ययाले तीर, जाहि लागैं सो जानैं पीर ॥टेक॥
तन मन खोजौं चोट न पाऊं, औषध मूली कहां घसि लाऊं ॥
एकहीं रूप दीसै सब नारी, ना जानौं को पीयहि पियारी ॥
कहै कबीर जा मस्तकि भाग, ना जानूं काहू देई सुहाग ॥२२॥

राम बिन तन की ताप न जाई,
जल मैं अगिनि उठी अधिकाई ॥टेक॥

तुम्ह जलनिधि मैं जलकर मीनां,
जल मैं रहौं जलहि बिन षींना ॥

तुम्ह प्यंजरा मैं सुवनां तोरा,
दरसन देहु भाग बड़ मोरा ॥

तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला,
कहैं कबीर रामं रमूं अकेला ॥२३॥

राम भंणि राम भंणि राम चिंतामणि,
भाग बड़े पायो छाडै जिनि ॥टेक॥

असंत संगति जिनि जाइ रे भुलाइ,
साध संगति मिलि हरि गुंण गाइ ॥

---

२०. निहोरा=विनती, चिरौरी। अनत=अन्यत्र, दूसरी जगह। प्रतिपारा=प्रतिपाल। बनवारी=वनमाली, परमात्मा।

२१. बहुरिया=वधू। लहुरिया=उम्र में छोटी। स्यंगार=शृंगार।

२२. अन्ययाले=अनियारे, तेज नोकवाले। नारी=स्त्री, जीवात्मा। काहू=किसको।

२३. षीनां=क्षीण, दुर्बल। सुवनां=तोता। नौतम=बिलकुल नया।

रिदा कवल मैं राखि लुकाइ,
प्रेम गांठ दे ज्यूं छूटि न जाइ ॥
अठ सिधि नव निधि नांव मंझारि,
कहै कबीर भजि चरन मुरारि ॥२४॥

रांम बिनां ध्रिग ध्रिग नर नारी, कहा तैं आइ कियो संसारी ॥टेक॥
रज विनां कैसो रजपूत, ग्यांन बिनां फोकट अवधूत ॥
गनिंका कौ पूत पिता कासौं कहै, गुर बिन चेला ग्यांन न लहै ॥
कवारी कंन्या करै स्यंगार, सोभ न पावै बिन भरतार ॥
कहै कबीर हूं कहता डरूं, सुषदेव कहै तो मैं क्या करूं ॥२५॥

डगमग छाड़ि दे मन बौरा।
अब तौ जरें बरें बनि आवै, लीन्हों हाथ सिंधौरा ॥टेक॥
होइ निसंक मगन ह्वै नाचौ, लोभ मोह भ्रम छाडौ।
सूरौ कहा मरन थैं डरपै, सती न संचै भांडौ।
लोक बेद कुल की मरजादा, इहै गलै मैं पासी।
आधा बलिकरि पीछा फिरिहै, ह्वैहै जग मैं हासी ॥
यहु संसार सकल है मैला, राम कहैं ते सूचा।
कहै कबीर नाव नहीं छाड़ौं, गिरत परत चढ़ि ऊंचा ॥२६॥

ते हरि के आवैहिं किहि कामां, जे नहीं चीन्हैं आतमरामां ।टेक।
थोरी भगति बहुत अहंकारा, ऐसे भगता मिलैं अपारा ॥
भाव न चीन्हैं हरि गोपाला, जांनि क अरहट कै गलि माला ॥
कहै कबीर जिनि गया अभिमांनां, सो भगता भगवंत समांनां ॥२७॥

जौ पैं पिय के मनि नहीं भायें, तौ का परोसनि कैं हुलरायें ॥
का चूरा पाइल झमकांयैं कहा भयो बिछवा ठमकांयैं ॥

---

२४. भंणि=कह, जप। रिदा कवल=हृदय-कमल। राखि लुकाइ=छिपाकर रख। ज्यूं=जिससे कि। नांव मंझारि=रामनाम में ही।

२५. रज=राज्य। अवधूत=संन्यासी। सुषदेव... करूं=यह मैं नही कहता हूं, यह तो परमहंस शुकदेवने भागवत में कहा है।

२६. डगमग=दुविधा। सिंधौरा=सिंदोरा, सौभाग्य-सूचक सिंदूर रखने की डिबिया, जिसे लेकर सती अपने पति के शव के साथ जाती थी। न संचै भांडौ=शरीर को रखने का लोभ नहीं करती हैं। पासी=फांसी। सूचा=पवित्र। चढ़ि ऊंचा=ऊंचे ब्रह्मपद पर पहुंच जाओ।

का काजल स्यंदूर कै दीयैं, सोलह स्यंगार कहा भयौ कीयैं ॥
अंजन मंजन करै ठगौरी, का पचि मरै निगौड़ी बौरी ॥
जौ पैं पतिब्रता है नारी, कैसें ही रहौ सो पियहि पियारी ॥
तन मन जोबन सौंपि सरीरा, ताहि सुहागनि कहै कबीरा ॥२८॥

है हरिजन थैं चूक परी, जे कछु आहि तुम्हारौ हरी ॥टेक॥
मोर तोर जब लग मैं कीन्हां, तब लग त्रास बहुत दुख दीन्हां ॥
सिध साधिंक कहैं हम सिधि पाई, रांम नाम बिन सवै गंवाई ।
जे बैरागी आस पियासी, तिनकी माया कदे न नासी ॥
कहै कबीर मैं दास तुम्हारा, माया खंडन करहु हमारा ॥२९॥

सब दु नी संयांनी मैं बौरा, हंम बिगरे बिगरौ जिनि औरा ॥टेक॥
मैं नहीं बौरा राम कियौ बौरा, सतगुर जारि गयौ भ्रम मोरा ॥
बिद्या न पढूं बाद नहीं जानूं, हरि गुन कहत सुनत बौरानूं ॥
कांम क्रोध दोऊ भये बिकारा, आपहिं आप जरैं संसारा ॥
मींठो कहा जाहि जो भावै, दास कबीर रांम गुन गावै ॥३०॥

बहुरि हम काहे कूं आवहिंगे ।
बिछुरे पंचतत्त की रचनां, तब हम रांमहि पावहिंगे ॥टेक॥
पृथी का गुण पांणी सोष्या पांणी तेज मिलावहिंगे ।
तेज पवन मिलि, पवन सबद मिलि, सहज समाधि लगा वहिंगे ।
जैसैं बहुकंचन के भूषन, ये कहि गालि तवांवहिंगे ।
ऐसै हम लोकं बेद के बिछुरें सुन्निहि मांहिं समांवहिंगे ॥
जैसैं जलहि तरंग तरंगनी ऐसैं हम दिखलांवहिंगे ।
कहै कबीर स्वांमीं सुखसागर हंसहि हंस मिलांवहिंगे ॥३१॥

---

२८. तौ का....हुलराये=तब पड़ोसिन के पुत्र को दुलार प्यार करने से क्या होता है? चूरा=चूड़ा, कड़ा। पाइल=पाजेब। झमकायैं=बजाना और चमकाना। बिछुवा=पैर की अंगुलियों में पहनने का गहना। ठगौरी=मोहिनी। निगौड़ी=जिसके आगे-पीछे कोई न हो, अभागिनी।

२९. कदे=कभी।

३०. बौरा=बावला, पागल। औरा=और कोई। बौरांनूं=पागल हो गया।

३१. सबद=आकाश से तात्पर्य है। गालि तबांवहिंगे=तपकर गल जायेंगे। सुन्निहि मांहिं=शून्य में ही। समांवहिंगे=लय हो जायेंगे। हंसहि हंस मिलांवहिंगे=मुक्तात्मा को मुक्तात्मा से मिला देंगे।

कहा करौं कैसै तिरौं भौजल अति भारी।
तुम्ह सरणागति केसवा राखि राखि मुरारी ॥टेक॥
घर तजि बनखंडि जाइये, खनि खइये कंदा।
बिषै बिकार न छूटई, ऐसा मन गंदा॥
बिष बिषिया की वासना, तजौं तजी नहीं जाई।
अनेक जतन करि सुरझिहौं, फुनि फुनि उरझाई॥
जीव अछित जोबन गया, कछू कीया न नीका।
यहु हीरा निरमोलिका, कौड़ी पर बीका॥
कहै कबीर सुनि केसवा, तूं सकल बियापी।
तुम्ह समांनि दाता नहीं, हम से नहीं पापी ॥३२॥

पषा-पषी कै पेषणैं सब जगत भुलांनां।
निरपष होइ हरि भजै, सो साध सयांनां ॥टेक॥
ज्यूं षर सूं षर बंधिया यूं बंधे सब लोई।
जाकै आत्म द्रिष्टि है साचा जन सोई॥
एक एक जिनि जाणियां, तिनही सचुपाया।
प्रेमप्रीति ल्यौलीन मन ते बहुरि न आया।
पूरे की पूरी द्रिष्टि पूरा करि देखै॥
कहै कबीर कछू समझि न परई या कछू बात अलेखै ॥३३॥

तेरा जन एक आध है कोई।
कांम क्रोध अरु लोभ बिबर्जित हरिपद चीन्हैं सोई ॥टेक॥
राजस तांमस सातिग तीन्यूं, ये सब तेरी माया।
चौथै पद कौं जे जन चीन्हैं तिनहि परमपद पाया॥
असतुति निंद्या आसा छाडै, तजै मांन अभिमांनां।
लोहा कंचन समि करि देखै, ते मूरति भगवानां॥
च्यतै तो माधो च्यंतामणिं, हरिपद रमै उदासा।
त्रिस्नां अरु अभिमांन रहित है, कहै कबीर सो दासा ॥३४॥

---

३२. खनि=खोदकर। विष-विषिया=इन्द्रियों के विषैले भोग। फुनि-फुनि=पुनः पुनः, फिर-फिर।

३३. पषापषी के पेषणें=पक्ष और विपक्ष के विचार में। निरपष=निष्पक्ष। षर=तिनका, घास। लोई=लोग। एक-एक=अभेदरूप। बहुरि न आया=पुनर्जन्म नहीं हुआ। अलेपै=जिसका चिंतन न किया जा सके।

३४. विवर्जित=रहित। सतिग=सात्त्विक। चौथा पद=गुणातीत, समाधि-अवस्था। उदासा=अनासक्त।

तूं माया रघुनाथ की खेलण चली अहेड़ै।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे, कोई न छोड़्या नेडै ॥टेक॥
मुनियर पीर डिगम्बर मारे, जतन करंता जोगी।
जंगल महिं के जगम मारे, तूरे फिरै बलिवंती॥
बेद पढंता बांम्हण मारा, सेवा करतां स्वांमी।
अरथ करंतां मिसर पछाड़्या, तूरे फिरै मैंमंती॥
साषित कै तूं हरता करता, हरि-भगतन कै चेरी।
दास कबीर रांम कै सरनैं, ज्यूं लागी त्यूं तोरी॥३५॥

जग सूं प्रीति न कीजिये, संभझि मन मेरा।
स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा॥
एक कनक अरु कांमिर्नी जग मैं दोइ फंदा।
इनपै जो न बंधावई ताका मैं बंदा॥
देह धरें इन मांहि बास कहु कैंसैं छूटे॥
सीव भये ते ऊबरे जीवत ते लूटे॥
एक एक सूं मिलि रह्या तिनहीं सचुपाया।
प्रेम मगन लैलीन मन सो बहुरि न आया॥
कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया।
संसा ता दिन का गया, सतगुर समझाया॥३६॥

माधौ, मैं ऐसा अपराधी। तेरी भगति हेत नहीं साधी॥टेक॥
कारनि कवन आइ जग जनम्यां जनमि कवन सचुपाया।
भौजल-तिरण चरण च्यंतामंणि ता चित घड़ी न लाया॥
परनिंद्या परधन परदारा परअपवादे सूरा।
ताथैं आवागमन होइ फुनि फुनि ता पर संग न चूरा॥
कांम क्रोध माया मद मंछर ए संतति हम मांहीं।
दया धरम ग्यांन गुर सेवा ए प्रभु सुपिनैं नांही॥

---

३५. अहेड़ै=अहेर, शिकार। चिकारा=छिकरा, हिरन की जाति का एक फुर्तीला जानवर। नेड़ै=पास। डिगंवर=दिगंबर, नग्न साधु। जंगम=चलता-फिरता साधु। मिसर=कथावाचक से अभिप्राय है। मैमंती=मतवाली। साषित=वाममार्गी; हरि-विमुख। ज्यूं लागी त्यूं तोरी=आसक्ति को तत्काल तोड़ दिया।

३६. सीव भये ते ऊबरे=जो शव अर्थात् जीवन-मृतक हो गये, वे ही बचे। सचुपाया=शान्ति पाई।

तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर, भगत-बछल भौ-हारी।
कहै कबीर धीर मति राखहु, सासति करौ हमारी ॥३७॥

कब देखूं मेरे राम सनेही। जा बिन दुख पावै मेरी देहीं ॥टेक॥
हूं तेरा पंथ निहारूं स्वामी, कब रमि लहुगे अंतरजामीं ॥
जैसे जल बिन मींन तलपै, ऐसै हरि बिन मेरा जियरा कलपै ॥
निसदिन हरि बिन नींद न आवै, दरसपियासी रांम क्यूं सचुपावै ॥
कहै कबीर अब विलंब न कीजे, अपनौं जानिं मोहिं दरसन दीजै ॥३८॥

मैं जन भूला तूं समझाइ।
चित चंचल रहै न अटक्यौ विषै-बन कूं जाइ ॥
संसार सागर माहिं भूल्यो थक्यौ करत उपाइ।
मोहिनी माया बाघिनी थैं, राखिलै रांमराइ ॥
गोपाल सुनि एक बीनती, सुमति तन ठहराइ।
कहै कबीर यह काम रिपु है, मारै सबकूं ढाइ ॥३९॥

जाइ रे दिन ही दिन देहा। करिलै वौरी रांम सनेहा ॥टेक॥
बालापन गयौ, जोबन जासी। जुरा मरण भौ संकट आसी ॥
पलटे केस नैन जल छाया। मूरिख चेति बुढ़ापा आया ॥
राम कहत लज्या क्यूं कीजे। पल पल आउ घटै तन छीजै ॥
लज्या कहै हूं जम की दासी। एकैं हाथि मुदिगर, दूजैं हाथि पासी ॥
कहै कबीर तिनहूं सब हार्‍या। रांम नांम जिनि मनहु बिसार्‍या ॥४०॥

कहु पांड़े सुचि कवन ठावं, जिहि घरि भोजन बैठि खाव ॥टेक॥
माता जूठी पिता पुनि जूठा, जूठे फल चित लागे।
जूठा आंवन जूठा जानां, चेतहु क्यूं न अभागे ॥
अंन जूठा पांनी पुनि जूठा, जूठे बैठि पकाया।
जूठी कड़छी अंन परोस्या, जूठे जूठा खाया ॥
चौका जूठा गोबर जूठा, जूठी सभी पसारा।
कहै कबीर तेइ जन सूचे, जे हरि भज तजहिं बिकारा ॥४१॥

---

३७. मंछर=मत्सर, डाह। संतति=सतत, सदा। धीर मति राखहु=देर न करो, माफ न करो। सासति=यातना, दंड।

३८. रमि लहुगे=हृदय में बसकर मुझे अपनाओगे। कलपै=विलखता है।

४०. जासी=जायेगा। जुरा=जरा, बुढ़ापा। भौ=भय। आसी=आयेगा। पलटे केस=काले बाल सफेद हो गये। आउ=आयु। छीजै=क्षीण होता जाता है।

४१. आंवन=जन्म। जानां=मरण। कड़छी=चम्मच। पसारा=सृष्टि। सूचे=पवित्र।

अलह रांम जीऊं तेरे नाईं, बंदे ऊपरि मिहर करौ मेरे सांई ॥टेक॥
क्या ले माटी भुंइ सूं मारैं, क्या जल देह न्हवायें।
जोर करै मसकीन सतावै, गुन हीं रहै छिपायें ॥
क्या तु जू जप मंजन कीयें, क्या मसीति सिर नायें।
रोजा करैं निमाज गुजारैं, क्या हज काबे जायें॥
बांम्हंण ग्यारसि करै चौबीसौं, काजी मुहरम जांन।
ग्यारह मास जुदे क्यूं कीये, एकहि मांहि समांन ॥
जौ रे खुदाइ मसीति बसत हैं, और मुलिक किस केरा।
तीरथ मूरति रांम-निवासा, दुहु मैं किनहूं न हेरा ॥
पूरब दिसा हरी का बासा, पच्छिम अलह मुकामां।
दिल ही खोजि दिलै दिल भींतरि, इहां रांम रहिमांनां ॥
जेती औरति मरदां कहिये, सब मैं रूप तुम्हारा।
कबीर पंगुड़ा अलह रांम का, हरि गुर पीर हमारा ॥४२॥

मन रे, जब तैं राम कह्यौ,
पीछै कहिबे कौं कछू न रह्यौ ॥टेक॥
का जोग जगि तप दानां, जौ तैं रांम नांम नहीं जांनां ॥
कांम क्रोध दोऊ भारे, ताथैं गुर प्रसादि सब जारे ॥
कहै कबीर भ्रम नासी, राजा रांम मिले अबिनासी ॥४३॥

तुम्ह घरि जाहु हमांरी बहनां, बिष लागैं तुम्हारे नैनां ॥
अंजन छाड़ि निरंजन राते, नां किसहीं का दैनां!
बलि जाउं ताकी जिनि तुम्ह पठई, एक माइ एक बहनां ॥
राती खांडी देखि कबीरा, देखि हमारा सिंगारौ।
सरग लोक थैं हम चलि आई, करन कबीर भरतारौ ॥
सर्ग लोक मैं क्या दुख पड़िया, तुम आई कलि मांहीं।
जाति जुलाहा नाम कबीरा, अजहूं पतीज्यौ नांहीं ॥

---

४२. नाईं=नाम पर। जोर=जुल्म। मसकीन=गरीब, बेचारा। तु जू=तो जो। मसीति=मसजिद। ग्यारसि=एकादशी। मुहरम=मोहर्रम। ग्यारह....समांन=यदि एक रमज़ान का महीना ही धर्म का महीना है, तो फिर अलग ग्यारह महीने क्यों रचे, फिर तो एक ही मास होना चाहिए था! हेरा=देखा, समझा। पंगुड़ा=मूर्ख शिष्य।

४३. जगि=यज्ञ। भारे=भारी (शत्रु)। प्रसादि=कृपा से।

४४. बहनां=बहिन; मोहिनी माया से अभिप्राय है। अंजन=नाशवान संसार। निरंजन=अक्षय पुरुष; माया से निर्लिप्त ईश्वर। एक माइ एक बहनां=तुम मां और बहिन के बराबर

तहां जाहु जहां पाट पटंबर, अगर चंदन घसि लीनां।
आइ हमारैं कहा करौगी, हम तौ जाति कमीनां॥
जिनि हम साजे साज्य निवाजे, बांधे काचै धागै।
जे तुम्ह जतन करौ बहुतेरा, पांणीं आगि न लागै॥
साहिब मेरा लेखा मांगै, लेखा क्यूं करि दीजै।
जे तुम जतन करौ बहुतेरा, तौ पाहंण नीर न भीजै॥
जाकी मैं मछी सो मेरा मछा, सो मेरा रखवालू।
टुक एक तुम्हारै हाथ लगाऊं, तौ राजा रांम रिसालू॥
जाति जुलाहः नाम कबीरा, बनि बनि फिरौं उदासी।
आसिपासि तुम्ह फिरि फिरि वैसौ, एक माउ एक मासी॥४४॥

रे सुख इब मोहि बिष भरि लागा।
इनि सुख डहके मोटे मोटे केतिक छत्रपति राजा॥टेक॥
उपजै-बिनसै जाइ बिलाई, संपति काहू कै संगि न जाई॥
धन-जोबन गरब्यौ संसारा, यहु तन जरिबरि ह्वैहै छारा॥
चरन कवल मन राखिले धीरा, रांम रमत सुख, कहै कबीरा॥४५॥

रांम राइ भई बिगूचनि भारी,
भले इन ग्यांनियन थैं संसारी॥टेक॥
इक तप तीरथ औगाहैं, इक मांनि महातम चाहैं॥
इक मैं-मेरी मैं बीझैं, इक अहमेव मैं रीझैं॥
इक कथि-कथि भरम लगावैं, संमिता सी बस्त न पावैं॥
कहै कबीर का कीजैं, हरि सूझै सो अंजन दीजै॥४६॥

बिरहिनी फिरै है नाथ अधीरा।
उपजि बिनां कछू समझि न परई, बांझ न जांनैं पीरा॥

हो। राती खांडी=रक्त से रंगी तलवार, घातक मोहिनी डालनेवाली। पतीज्यौ नाहीं=विश्वास नहीं करती हो। जिनि....धागै=जिसने हमें रचा, और सब कुछ देकर हमें उपकृत किया, उसीके प्रेम के कच्चे धागे से हम बंधे हुए हैं; हम उसी मालिक के अनन्य सेवक हैं। पाहंण नीर न भीजै=पत्थर के अंदर पानी नहीं पैठ सकता; मोहिनी माया की दाल गलने की नहीं। उदासी=विरक्त। रिसालू=नाराज़ होंगे। वैसौ=बैठती हो। एक माउ एक मासी=तुम मां और मौसी के बराबर हो।

४५. इब=अब। विष भरि=विष के जैसा। डहके=ठग लिये।

४६. बिगूचनि=अड़चन, असमंजस। संसारी=दुनियादार। औगाहैं=अवगाहन अर्थात् स्नान करते हैं। बीझैं=लिप्त होते हैं, फंसते हैं।

या बड़ बिथा सोई भल जांनैं, रांम-बिरह-सर मारी।
कै सो जांनैं, जिनि यहु लाई, कै जिनि चोट सहा री॥
संग की बिछुरी मिलन न पावै, सोच करै अरु काहै।
जतन करै अरु जुगति बिचारै, रटै रांम कूं चाहै॥
दीन भई बूझै सखियन कौं, कोई मोहि रांम मिलावै।
दास कबीर मीन ज्यूं कलपै, मिलैं भलै सचु पावैं॥४७॥

तुम्ह बिन राम कवन सौं कहिये, लागी चोट बहुत दुख सहिये॥
बेध्यौ जीव बिरह कै भालै, राति दिवस मेरे उर सालै॥
को जांनैं मेरे तन की पीरा, सतगुर सबद बहि गयौ सरीरा।
तुम्ह से बैद न हम से रोगी, उपजी बिथा कैसैं जीवै बियोगी॥
निस बासुरि मोहि चितवत जाई, अजहूं न आइ मिले रांमराई॥
कहत कबीर हमकौं दुख भारी, बिन दरसन क्यूं जीवहि मुरारी॥४८॥

चलौ सखी जाइये तहां जहं गयें पाइये परमानंद॥टेक॥
यहु मन आमन धूमनां, मेरौ तन छीजत नित जाइ।
च्यंतामणि चित चोरियौ, ताथैं कछू न सुहाइ॥
सुनि सखि सुपिनैं की गति ऐसी, हरि आये हम पास।
सोवत ही जगाइया, जागत भये उदास॥
चलु सखी बिलम न कीजिये, जब लग सांस सरीर।
मिलि रहिये जगनाथ सूं, यूं कहै दास कबीर॥४९॥

हौं बलियां कब देखौंगी तोहि।
अहनिस आतुर दरसन कारनि ऐसी ब्यापै मोहि॥टेक॥
नैन हमारे तुम्ह कूं चाहैं, रती न मानैं हारि।
बिरह-अगिन तन अधिक जरावै, ऐसी लेहु बिचारि॥
सुनहु हमारी दादि गुसांई, अब जिन होहु बधीर।
तुम्ह धीरज मैं आतुर स्वामीं, काचै भांडै नीर॥

---

४७. उपजि=आत्मज्ञान की उपलब्धि। काहै=कराहती है। भल=भली भांति।

४८. सालै=कसकता है, चुभता है। बहि गयौ=बेध गया, आरपार हो गया। बासुरि=वासर, दिन। चितवत जाई=राह देखते जाता है।

४९. आमन=अनमना, खिन्न। धूमनां=मलिन। च्यंतामणि=सब चिंताओं को हर लेनेवाले स्वामी से अभिप्राय है।

५०. बलियां=बलैयां, कुर्बान। रती=ज़रा भी। दादि=न्याय कराने की प्रार्थना। बधीर=बधिर,

बहुत दिनन के बिछुरे माधौ, मन नहीं बांधै धीर।
देह छतां तुम्ह मिलहु कृपाकरि, आरतिवंत कबीर ॥५०॥

वै दिन कब आवैंगे माइ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंगि लगाइ ॥टेक॥
हौं जांनूं जे हिलमिलि खेलूं, तन मन प्रांन समाइ।
या कामनां करौ परपूरन, समरथ हौ रांमराइ ॥
मांहिं उदासी माधौ चाहै, चितवत रैनि बिहाइ।
सेज हमारी स्यंघ भई है, जब सोऊं तब खाइ ॥
यहु अरदास दास की सुनिये, तन की तपति बुझाइ।
कहै कबीर मिलै जो सोई मिलि करि मंगल गाइ ॥५१॥

बाल्हा आव हमारे ग्रेह रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे ॥टेक॥
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौं इहै अंदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तबलग कैसा नेह रे ॥
आंन न भावै नींद न आवै ग्रिह बिन धरै न धीर रे।
ज्यूं कांमीं कौं कांम पियारा, ज्यूं प्यासे कूं नीर रे ॥
हैं कोई ऐसा पर-उपगारी, हरि सूं कहै सुनाइ रे।
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखें जीव जाइ रे ॥५२॥

चलत कत टेढौ रे।
नऊं दुवार नरक धरि मूंदे, तू दुरगंधि कौ बेढौ रे ॥टेक॥
जे जारै तौ होइ भसम तन, रहित किरम उहिं खाई।
सूकर स्वांन काग को भखिन, तामैं कहा भलाई॥
फूटे नैंन हिरदै नहीं सूझै, मति एकै नहीं जांनीं।
माया मोह ममिता सूं बांध्यो, बूड़ि मूवौ बिन पांनी ॥
बारू के घरवा मैं बैठो, चेतत नहीं अयांनां ॥
कहै कबीर एक रांम भगति बिन, बूडे बहुत सयांनां ॥५३॥

बहरा। छतां=रहते हुए (गुजराती प्रयोग)

५१. मांहि=अंतर में। स्यंघ=सिंह। अरदास=अर्ज़दास्त, विनती।

५२. बाल्हा=प्यारे। अंदेह=अंदेशा, संदेह। आंन=अन्न, भोजन।

५३. टेढ़ौ-टेढ़ौ=ऐंठता हुआ। बेढ़ौ=घेरा, स्थान। रहित=यदि रखा रहे, या गाड़ दिया जाये। किरम=कृमि, कीड़े। भखिन=भक्ष्य, भोजन।

भयौ रे मन पांहुनड़ौ दिन चारि।
आजिक काल्हिक मांहि चलैगौ, ले कि न हाथ संवारि ॥टेक॥
सौंज पराई जिनि अपनावै, ऐसी सुणि कि न लेह।
यहु संसार इसौ रे प्राणी, जैसो धूंवरि मेह ॥
तन धन जोबन अंजुरी को पांनीं, जात न लागै बार।
सैंबल के फूलन परि फूल्यौ, गरब्यौ कहा गंवार ॥
खोटी साटै खरा न लीया, कछू न जांनी साटि।
कहै कबीर कछू बनिज न कीयौ, आयौ थौ इहि हाटि ॥५४॥

कहूं रे जे कहिबे की होहिं।
नां को जांनैं नां को मांनैं, ताथैं अचिरज मोहि ॥टेक॥
अपने-अपने रंग के राजा, मांनत नांही कोइ।
अति अभिमांन लोभ के घाले, चले अपनपौ खोइ ॥
मैं-मेरी करि यहु तन खोयौ, समझत नहीं गंवार।
भौजलि अधफर थाकि रहे हैं बूड़े बहुत अपार ॥
मोहि आग्या दई दयाल दया करि, काहू कूं समझाइ।
कहै कबीर मैं कहि-कहि हार्‍यौ, अब मोहि दोस न लाइ ॥५५॥

राग मारू

मन रे रांम सुमिरि रांम सुमिरि, रांम सुमिरि, भाई।
रांम नांम सुमिरन बिना, बूड़त है अधिकाई ॥टेक॥
दारा सुत ग्रेह नेह, संपति अधिकाई।
यामैं कछु नांहिं तेरौ, काल अवधि आई ॥
अजामेल गज गनिका, पतित करम कीन्हां।
तेऊ उतरि पारि गये, रांम नांम लीन्हां ॥
स्वांन सूकर काग कीन्हौं, तऊ लाज न लाई ॥
रांम नांम अमृत छाड़ि, काहे बिष खाई ॥
तजि भरम करम बिधि नखेद, रांम नांम लेही।
जन कबीर गुर प्रसादि, राम करि सनेही ॥५६॥

---

५४. पांहुनड़ौ=मेहमान। सौंज=साज-सामान। धूंवरि=धुवें का। साटि=बेच-खरीद, मोलतोल। हाटि=पैंठ; संसार से अभिप्राय है।

५५. घाले=मारे हुए। अपनपौ=आत्मा का स्वरूप। अधफर=बीचोबीच।

५६. पतित=पापमय। नखेद=निषिद्ध, वे कर्म जिनके करने से रोका गया है, जैसे चोरी, हिंसा, व्यभिचार आदि। प्रसादि=कृपा से।

राग भैरूं

भलैं नींदौ भलैं नींदौ, भलैं नींदौ लोग,
तन मन रांम पियारे जोग ॥टेक॥
मैं बौरी मेरे रांम भरतार, ता कांरनि रचि करौं स्यंगार ॥
जैसें धुबिया रज मल धोवै, हरत परत सब निंदक खोवै ॥
न्यंदक मेरे माई बाप, जन्म जन्म के काटे पाप ॥
न्यंदक मेरे प्रांन अधार, बिन बेगारि चलावै भार ॥
कहै कबीर न्यंदक बलिंहारी, आप रहै, जन पार उतारी ॥५७॥

क्या ह्वै तेरे न्हांई धोई, आतम रांम न चीन्हां सोई ॥टेक॥
क्या घट ऊपरि मंजन कीयैं, भीतरि मैल अपारा।
रांम नांम बिन नरक न छूटै, जे धौवै सौ बारा ॥
का नट भेष भगवां बस्तर, भसम लगावै लोई।
ज्यूं दादुर सुरसुरी जल भीतरि, हरि बिन मुकति न होई ॥
परहरि काम रांम कहि बौरै, सुनि सिख बंधू मोरी।
हरि कौ नांव अभै-पद-दाता, कहै कबीरा कोरी ॥५८॥

आसण पवन कियैं दिढ रहु रे, मन का मैल छाड़िदे बौरे ॥टेक॥
क्या सींगी मुद्रा चमकायैं, क्या भिभूति सब अंगि लगायैं ॥
सो हिंदू सो मुसलमांन, जिसका दुरस रहै ईमांन ॥
सो ब्रह्मा जो कथै ब्रह्म गियांन, काजी सो जानैं रहिमांन ॥
कहै कबीर कछू आंन न कीजे, रांम नांम जपि लाहा लीजे ॥५९॥

तायैं कहिये लोकाचार, बेद कतेब कथैं ब्यौहार ॥टेक॥
जारि बारि करि आवै देहा, मूवां पीछै प्रीति-सनेहा ॥
जीवत पित्रहि मारहि डंगा, मूवां पित्र ले घालै गंगा ॥
जीवत पित्र कूं अंन न ख्वांवैं, मूवां पीछैं प्यंड भरांवैं ॥

---

५७. भलैं नींदौ=भले ही निंदा करें। ता कारनि=उसी स्वामी को रिझाने के लिए। हरत-परत=मैल के दाग व शिकन याने कपट। आप रहै जन पार उतारी=पर-निंदा के पाप से खुद तो संसार सागर में पड़ा रहता है, पर जिन हरि-भक्तों की वह निंदा करता है उन्हें सहिष्णु बना-बनाकर पार उतार देता है।

५८. भगवां वस्तर=संन्यासी का गेरुवा कपड़ा। सुरसुरी=सुरसरि, गंगा। दादुर=मेढ़क। काम=विषय-वासना। कोरी=जुलाहा।

५९. सींगी=हरिन के सींग का बना बाजा, जिसे मुहं से बजाते हैं। दुरस=दुरुस्त। ब्रह्मा=ब्राह्मण से आशय है। लाहा=लाभ।

जीवत पूत्र कूं बोलै अपराध, मूवा पीछे देहि सराध ॥
कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कऊवा खाइ पित्र क्यूं खावै ॥६०॥

रैंनि गई मति दिन भी जाइ, भवर उड़े बग बैठे आइ ॥
काचै करवै रहै न पांनी, हंस उड्या काया कुमिलांनीं ॥
थरहर थरहर कंपै जीव, नां जांनूं का करिहैं पीव ॥
कऊवा उड़ावत मेरी बहियां पिरांनीं,
कहै कबीर मेरी कथा सिरांनीं ॥६१॥

काहे कूं भीति बनांऊं टाटी, का जानूं कहां परिहै माटी ॥टेक॥
काहे कूं मंदिर महल चिणांऊं, मूवां पीछैं घड़ी एक रहण न पाऊं।
काहे कूं छांऊं ऊच उसेरा, साढ़े तीनि हाथ घर मेरा ॥
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेती भुंइ लीजै ॥६२॥

राग बिलावल

रांम भजै सो जांनिये, जाकै आतुर नांही।
संत संतोष लीयै रहै, धीरज मन मांही ॥टेक॥
जन कौं कांम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णां न जरावैं।
प्रफुलित आनंद मैं रहै, गोव्यंद गुण गावै ॥
जन कौं परनिंद्या भावै नहीं, अरु असति न भाषै।
काल कलपनां मेटि करि, चरनूं चित राषै ॥
जन समद्रिष्टि सीतल सदा, दुविधा नहीं आनैं।
कहै कबीर ता दास सूं, मेरा मन मानैं ॥६३॥

माधौ सो न मिलै जासौं मिलि रहिये।
ता कारनिवर बहु दुख सहिये ॥टेक॥
छत्रधार देखत ढहि जाइ, अधिक गरब थैं खाक मिलाइ ॥

---

६०. प्रीति=प्रेत। डंगा=डंक। मूंवा....गंगा=मरने के बाद पिता की अस्थियां गंगा में डालते हैं। ख्वावैं=खिलाते हैं। प्यंड भरावैं=पिंडदान देते हैं। बोलैं अपराध=दुर्वचन कहते हैं।

६१. काचा करवा=अनपका मिट्टी का टोटीदार लोटा; यहां अनित्य देह से अभिप्राय है। हंस=जीव, प्राण। कऊवा....पिरांनी=बिना प्राण की देह पर से कौए उड़ाते-उड़ाते मेरी बांह दर्द करने लगी। सिरांनी=समाप्त हो गई।

६२. टाटी=छप्पर। माटी=शरीर से अभिप्राय है। साढ़े....मेरा=मेरा असली घर याने कब्र या मरकट तो साढ़े तीन हाथ लंबा है।

६३. आतुर=अधीरता। सत=सत्य। जनकौं=हरि-भक्त को। दुविधा=द्वैतभाव।

अगम अगोचर लखी न जाइ, जहां का सहज फिरि तहां समाइ ॥
कहै कबीर झूठे अभिमांन, सो हम सो तुम्ह एक समांन ॥६४॥

रांम चरन जाकै रिदै बसत है, ता जंन को मन क्यूं डोले ॥
मानौं अठ सिधि नवनिधि ताकै, हरषि हरषि जस बोलै।
जहां जहां जाइ तहां सचुपावै, माया ताहि न झोलै।
बारंबार वरजि बिषिया तैं, लै नर जौ मन तोलै ॥
ऐसी जे उपजै या जीय कै, कुटिल गांठि सब खोलै।
कहै कबीर जब मन परचौ भयौ, रहै रांम कै बोलै ॥६५॥

राग ललित

रसनां रांम गुन रमि रस पीजै,
गुन अतीत निरमोलिक लीजै ॥टेक॥
निरगुन ब्रह्म कथौ रे भाई, जा सुमिरत सुधि बुधि मति पाई ॥
विष तजि रांम न जपसि अभागे, का बूड़े लालच के लागे ॥
ते सब तिरे रामरस स्वादी, कहै कबीर बूड़े बकवादी ॥६६॥

नहीं छाडौं बाबा रांम नांम,
मोहिं और पढ़न सूं कौन कांम ॥टेक॥
प्रहलाद पधारे पढ़न साल, संग सखा लीयें बहुत बाल ॥
मोहि कहा पढ़ावे आल जाल, मेरी पाटी मैं लिखि दे श्रीगोपाल ॥
तब संनां मुरकां कह्यौ जाइ, प्रहिलाद बंधायौ बेगि आइ ॥
तूं रांम कहन की छाड़ि बांनि, बेगि छुड़ाऊं मेरौ कह्यौ मांनि ॥
मोहि कहा डरावे बारबार, जिनि जलथल गिर कौ कियो प्रहार ॥
बांधि मारि भावै देह जारि, जे हूं रांम छाड़ौं तौ मेरे गुरहि गारि ॥
तब काढ़ि खड़ग कोप्यौ रिसाइ, तोहि राखनहारौ मोहि बताइ ॥
खंभा मैं तैं प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मार्‍यौ नख बेदारि ॥
महापुरुष देवाधिदेव, नरस्यंघ प्रगट कियौ भगति भेव ॥
कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद उबार्‍यौ अनेक बार ॥६७॥

---

६४. कारनिवर=कारण से।

६५. रिदै=हृदय में। जस बोलै=हरि कीर्तन करता है। सचु=शान्ति। झोलै=जलाती है। बोलै=आज्ञा में।

६६. गुन अतीत=मायात्मक त्रिगुण से परे, निर्गुण। विष=विषय-भोग।

६७. साल=पाठशाला। आल जाल=झंझट-बखेड़ा। संना मुरकां=शंडा और मर्क, शुकाचार्य के

राग सारंग

धंनि सो घरी महूरत्य दिनां।
जब ग्रिह आये हरि के जनां ॥टेक॥
दरसन देखत यहु फल भया, नैंनां पटल दूरि ह्वै गया ॥
सब्द सुनत संसा सब छूटा, स्रवन कपाट बजर था तूटा ॥
परसत घाट फेरि करि घड़्या, काया कर्म सकल झड़ि पड़्या ॥
कहै कबीर संत भल भाया, सकल-सिरोमनि घट मैं पाया ॥६८॥

राग धनाश्री

कहा नर गरबसि थोरी बात।
मन दस नाज, टका दस गंठिया, टेढौ टेढौ जात ॥टेक॥
कहा लै आयौ यहु धन कोऊ, कहा कोऊ लै जात।
दिवस चारि की है पतिसाही, ज्यूं बनि हरियल पात ॥
राजा भयौ गांव सौ पाये, टका लाख दस ब्रात।
रावन होत लंक कौ छत्रपति, पल मैं गई बिहात ॥
माता पिता लोक सुत बनिता, अंति न चले संगात।
कहै कबीर रांम भजि बौरे, जनम अकारथ जात ॥६९॥

लोका मति के भोरा रे।
जौ कासी तन तजै कबीरा, तौ रांमहिं कहा निहोरा रे ॥
तब हम वैसे अब हम ऐसे, इहै जनम का लाहा।
ज्यूं जल मैं जल पैसि न निकसै, यूं ढुरि मिल्या जुलाहा ॥
रांम-भगति परि जाकौ हित चित, ताकौ अचिरज काहा।
गुर प्रसाद साध की संगति, जग जीते जाइ जुलाहा ॥
कहै कबीर सुनहु रे सन्तो, भरमि परै जिनिं कोई।
जस कासी तस मगहर ऊसर, रिदै रांम सति होई ॥७०॥

पुत्र जो असुरों के पुरोहित थे। बांनि=आदत। गिलारि=सिंह से आशय हैं। नख बिदारि=नखों से चीरकर। भेव=भेद, रहस्य।

६८. महूरत्य=मुहूर्त्त। पटल=अज्ञान का परदा। बजर=वज्र। परसत......घड़्या=हाथ लगाकर मिट्टी के शरीर को कंचन का बना दिया।

६९. पतिसाही=बादशाही। हरियल पात=हरे पत्ते। संगात=साथ।

७०. निहोरा=एहसान। लाहा=लाभ। पैसि=पैठकर, मिलकर। मगहर=एक स्थान, जो बस्ती ज़िले में है; मगहर को मगध का भी अपभ्रंश माना जाता है। ऊसर=यहां निष्फल से अभिप्राय है।

अग्नि न दहै पवन नहीं झुरवै तस्कर नेरि न आवै।
रांम नांम धन करि संचौनी सो धन कतही न जावै॥
हमरा धन माधव गोबिंद, धरनीधर इहै सार धन कहियै।
जो सुख प्रभु गोबिंद की सेवा, सो सुख राज न लहियै॥
इसु धन कारन सिव सनकादिक, खोजत भये उदासी।
मन मुकुंद जिह्वा नारायन परै न जम की फांसी॥
निज धन ग्यांन भगति गुर दीनीं तासु सुमति मन लागी।
जलत अंग थंभि मन धावत भरम बंधन भौ भागी॥
कहै कबीर मदन के माते हिरदै देखु बिचारी।
तुम घर लाख कोटि अस्व हस्ती, हम घर एक मुरारी॥७१॥

अब मोहि जलत राम जल पाइया।
राम उदक तन जलत बुझाइया॥
मन मारन कारन बन जाइयै।
सो जल बिन भगवंत न पाइयै॥
जेहि पावक सुर नर हैं जारे।
राम उदक जन जलत उवारे॥
भवसागर सुखसागर मांहीं।
पीव रहे जल निखुटत नांहीं॥
कहि कबीर भजु सारिंगपानी।
राम उदक मेरी तिषा बुझानी॥७२॥

अवर मुये क्या सोग करीजै। तौ कीजै जो आपन जीजै॥
मैं न मरौं मरिबो संसारा। अब मोहि मिल्यो है जियावनहारा॥
या देही परमल महकंदा। ता सुख बिसरे परमानंदा॥
कुअटा एकु पंच पनिहारी। टूटी लाजु भरै मतिहारी॥
कहि कबीर इकु बुद्धि बिचारी। ना ऊ कुअटा ना पनिहारी॥७३॥

---

७१. झुरवै=सुखाती है। तस्कर=चोर। नेरि=पास। संचौनी=संचय। उदासी=वैरागी। भौ=भय। मन धावत=मन के वेग से दौड़ते हैं।

७२. उदक=जल। मन मारन=मन को जीतने। निखुटतं नाहीं=घटता नहीं है। सारिंगपानी=धनुषधारी राम। तिषा=प्यास।

७३. अवर मुये=और के मरने पर। सोग=शोक। जीजै=जीवें। परमल=सुगंध। महकंदा=महकती है। कुअटा=कुआं, मन से आशय है। पंच पनिहारी=पांचों इन्द्रियों से अभिप्राय है। लाजु=रस्सी।

इसु तन मन मध्ये मदनचोर। जिन ग्यांनरतन हरि लीन मोर ॥
मैं अनाथ प्रभु कहौं काहि। की कौन बिगूतो मैं को आहि ॥
माधव दारुन दुख सह्यो न जाइ। मेरो चपल बुद्धि स्यों कहा बसाइ ॥
सनक सनंदन सिव सुकादि। नाभि कमल जाने ब्रह्मादि ॥
कविजन जोगी जटाधारि। सब आपन औसर चले सारि ॥
तू अथाह मोहि थाह नाहि। प्रभु दीनानाथ दुख कहौं काहि ॥७४॥

क्या जप क्या तप क्या व्रत पूजा। जाकै रिदै भाव है दूजा ॥
रे जन, मन माधव स्यों लाइयै। चतुराई न चतुर्भुज पाइयै ॥
परिहरि लोभ अरु लोकाचार। परिहरि काम क्रोध अहंकार ॥
कर्म करत बद्धे अहमेव। मिल पाथर की करहीं सेव ॥
कहि कबीर भगति कर पाया। भोले भाइ मिले रघुराया ॥७५॥

गंगा के संग सलिता बिगरी। सो सलिता गंगा होइ निबरी ॥
बिगर्‌यो कबीरा राम दुहाई। साचु भयो अन कतहि न जाई ॥
चन्दन कै संगि तरबर बिगर्‌यो। सो तरवर चन्दन ह्वै निबर्‌यो ॥
पारस के संग तांबा बिगर्‌यो। सो तांबा कंचन ह्वै निबर्‌यो ॥
संतन संग कबीरा बिगर्‌यो। सो कबीर रांम ह्वै निबर्‌यो ॥७६॥

जो मैं रूप किये बहुतेरे, अब फुनि रूप न होई।
तागा तंत साज सब थाका, रांम नांम बसि होई ॥
अब मोहि नाचनो न आवै। मेरा मन मंदरिया न बजावै ॥
काम क्रोध काया लै जारी, तृष्णा-गागरि फूटी।
काम-चोलना भया है पुराना, गया भरम सब छूटी ॥
सर्वभूत एकै करि जान्या, चूके बाद-बिबादा ॥
कहि कबीर मैं पूरा पाया, भये राम-परसादा ॥७७॥

---

७४. मदन=कामदेव। बिगूतो=अड़चन, दिक्कत। बसाइ=वश, काबू। चले सारि=समाप्त करके चले।

७५. रिदै=हृदय। चतुराई=पांडित्य। बद्धे=बंधन में पड़े। भाइ=भाव।

७६. सलिता=सरिता, नदी। बिगरी=संगति में अपना रूप खो दिया। निबरी=परिणत हो गई। अन कतहि=कहीं दूसरी जगह।

७७. फुनि=पुनः, फिर। मंदरिया=एक प्रकार का बाजा। चोलना=चोला, लंबा ढीला कुरता; शरीर से भी आशय है।

निरधन आदर कोइ न देई। लाख जतन करै ओहु चित न धरेई ॥
जौ निरधन सरधन कै जाई। आगे बैठा पीठ फिराई ॥
जो सरधन निर्धन कै जाई। दीया आदर लिया बुलाई ॥
निरधन सरधन दोनों भाई। प्रभु की कला न मेटी जाई ॥
कहि कबीर निरधन है सोई। जाकै हिरदै नामन होई ॥७८॥

पाती तौरै मालिनी, पाती पाती जीउ।
जिसु पाहन को पाती तौरै सो पाहनु निरजीउ ॥
भूली मालिनी है एउ। सतिगुरू जागता है देउ ॥
ब्रह्म पाती बिस्नु डारी फूल संकर देव।
तीन देव प्रतख्य, तोरहिं करहि किसकी सेव ॥
पषान गढिकै मूरति कीनी देकै छाती पाउ।
जे एइ मूरति साची है तो गड़णहारे को खाउ ॥
भातु पहिति और लापसी करकरा कासारु।
भोगनुहारे भोगिया इसु मूरति के मुख छारु ॥
मालिन भूली जग भुलाना हम भुलाने नाहिं।
कहि कबीर हम राम राखे कृपाकरि हरिराइ ॥७९॥

राजा रांम तू ऐसा निर्भव तरनतारन रांमराया ॥
जब हम होते तब तुम नाहीं अब तुम हहु हम नाहीं।
अब हम तुम एक भये हहिं एकै देखति मन पतियाहीं ॥
जब बुधि होती तब बल कैसा, अब बुधि बल न खटाई।
कहि कबीर बुधि हरि लई मेरी, बुधि बदली सिधि पाई ॥८०॥

संत मिलैं किछु सुनियै कहियै। मिलैं असंत मष्ट करि रहियै ॥
बाबा बोलना क्या कहियै। जैसे रामनाम रमि रहियै ॥
संतन स्यों बोले उपकारी। मूरख स्यों बोले झख मारी ॥

---

७८. चित न धरेई=ध्यान में नहीं लाता। सरधन=धनी। कला=लीला।

७९. पाहन=पत्थर की मूर्ति। जागता=सजीव। देउ=देव। प्रतख्य=प्रत्यक्ष। सेव=सेवा-पूजा। देकै=रखकर। गड़णहारा=गढ़नेवाला, शिल्पी। पहिति=दाल। करकरा=खरा, अच्छा भुना हुआ। कासारु=कसार, एक प्रकार का पकवान। भोगनुहारे भोगिया=पुजारी खा गये।

८०. निर्भव=निर्भय; अजन्मा से भी अभिप्राय है। हहु=हो। न खटाई=ठहरता नहीं। बुधि. ....पाई=चतुराई के बदले में सिद्धि प्राप्त हुई; चतुराई का यहां अभिमानपूर्ण पंडिताई अर्थ है।

८१. मष्ट=चुप। स्यों=से। विकारा=बिगाड़, झगड़ा। छूछा=खाली।

बोलत बोलत बढ़हि बिकारा। बिनु बोले क्या करहि बिचारा॥
कहि कबीर छूछा घट बोलै। भरिया होइ सु कबहुं न डोलै॥८१॥

स्वर्ग बास न बाछियै, डरियै न नरक-निबासु।
होना है सो होइहै, मनहिं न कीजै आसु॥
रमय्या गुन गाइयै, जाते पाइयै परमनिधानु॥
क्या जप क्या तप संयमो क्या ब्रत क्या इस्नानु॥
जब लग जुक्ति न जानियै भाव भक्ति भगवान॥
सम्पै देखि न हर्षियै बिपति देखि न रोइ।
ज्यों सम्पै त्यों बिपत है बिधि ने रच्या सो होइ॥
कहि कबीर अब जानिया संतन रिदै मंझारि।
सेवक सो सेवा भले जिह घट बसै मुरारि॥८२॥

संतन जात न पूछो निरगुनियां।
साध ब्राह्मन, साध छत्तरी, साधै जाती बनियां।
साधन मां छत्तीस कौम है, टेढ़ी तोर पुछनियां।
साधै नाऊ, साधै धोबी, साध जाति है बरियां।
साधन मां रैदास संत है सुपच रिषी सो भंगियां।
हिन्दु-तुर्क दुइ दीन बने हैं, कछू नहीं पहचनियां॥८३॥

निसदिन खेलत रही सखियन संग, मोहि बड़ा डर लागै।
मोरे साहब की ऊंची अटरिया, चढ़त में जियरा कांपैं॥
जो सुख चहै तो लज्जा त्यागै, पिया सूं हिलमिल लागै।
घूंघट खोल अंगभर भेटे, नैन आरती साजै॥
कहै कबीर सुनो सखि मोरी, प्रेम होय सो जानै।
निज प्रीतम की आस नहीं है, नाहक काजर पारै॥८४॥

घर घर दीपक बरै, लखै नहिं अन्ध है।
लखत लखत लखि परै कटै जम-फंद है॥

---

८२. बाछिये=इच्छा करे। सम्पै=संपत्ति, खुशहाली। रिदै=हृदय।

८३. पुछनियां=पूछना, प्रश्न। बरियां=बारी, एक जाति जो पत्ते-दोने और सेवा का काम करती है। सुपच रिषि=सुदर्शन नामक श्वपच ऋषि से अभिप्राय है, जिनका उल्लेख महाभारत में आया है।

८४. अंग=अंक, छाती। काजर पारे=दीपक के धुवें की कालिख को किसी बरतन में जमाये; व्यर्थ सोहाग दिखाये।

कहन-सुनन कछु नाहिं, नहीं कछु करन है।
जीते-जी मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है॥
जोगी पड़े बियोग कहैं घर दूर है।
पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर है॥
बाह्मन दिच्छा देत सो घर घर घालिहै।
मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहै॥
ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है।
नहीं जोग नहिं जाप, पुन्न नहिं पाप है॥८५॥

सतगुर सोइ दया करि दीन्हा। ताते अन-चिन्हार मैं चीन्हा॥
बिन पग चलना, बिन पर उड़ना, बिना चूंच का चुगना।
बिना नैन का देखन-पेखन, बिन सरवन का सुनना॥
चंद न सूर दिवस नहिं रजनी, तहां सुरत लौ लाई।
बिना अन्न अंमृत-रस भोजन, बिन जल तृषा बुझाई॥
जहां हरष तहां पूरन सुख है, यह सुख कासूं कहना।
कहै कबीर बल बल सतगुर की, धन्न सिष्य का लहना॥८६॥

नाचु रे मेरे मन, मत्त होइ।
प्रेम को राग बजाय रैंन-दिन, सब्द सुनै सब कोइ।
राहु-केतु यह नवग्रह नाचैं, जन्म जन्म आनंद होइ।
गिरी समुन्दर धरती नाचैं, लोक नाचैं हंस रोइ।
छापा तिलक लगाइ बांस चढ़, हो रहा जग से न्यारा।
सहस कला कर मन मेरौ नाचै, रीझै सिरजनहारा॥८७॥

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।
हीरा पायो गांठ गंठियायो, बारबार बाको क्यों खोले।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले॥
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
हंसा पाये मानसरोवर, ताल-तलैया क्यों डोले॥

---

८५. दीपक=आत्मज्योति से आशय है। पाहन पालिहै=पत्थर की मूर्तियों को पूजता है। सलोना=सुन्दर।

८६. चिन्हार=जान-पहचान। लहना=लाभ।

८७. बांस चढ़=प्रेम की सबसे ऊंची सीढ़ी पर चढ़कर; निर्विकल्प समाधि की शून्यावस्था पर पहुंचकर।

८८. सुरत कलारी=ध्यान वा लौरूपी कलवारी। तिल-ओले=आंख के तिल की ओट में।

तेरा साहब है घर माहीं, बाहर नैना क्यौं खोले।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गये तिल-ओले ॥८८॥

मोहिं तोहिं लागी कैसे छूटे।
जैसे कमलपत्र जल-बासा, ऐसे तुम साहिब हम दासा॥
जैसे चकोर तकत निस चंदा, ऐसे तुम साहिब हम बंदा॥
मोहि तोहि आदि अंत बन आई, कैसेकै लगन हम दुराई॥
कहै कबीर हमरा मन लागा, जैसे सरिता सिंध समाई ॥८९॥

जाग पियारी, अब का सोवै। रैन गई दिन काहेको खोवै॥
जिन जागा तिन मानिक पाया। तैं बौरी सब सोय गंवाया॥
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी। कबहुं न पिय की सेज संवारी॥
तैं बौरी बौरापन कीन्ही। भर-जोबन पिय अपन न चीन्ही॥
जाग देख पिय सेज न तेरे। तोहि छांडि उठि गये सवेरे॥
कहै कबीर सोई धन जागै। सब्द-बान उर-अंतर लागै ॥९०॥

सन्तो, सहज समाधि भली।
सांईं तें मिलन भयो जा दिन तें, सुरत न अन्त चली॥
आंख न मूंदूं कान न रूंधूं, काया कष्ट न धारूं।
खुले नैन मैं हंस-हंस देखूं, सुन्दर रूप निहारूं॥
कहूं सो नाम, सुनूं सो सुमिरन, जो कछु करूं सो पूजा।
गिरह-उद्यान एक सम देखूं, भाव मिटाऊं दूजा॥
जहं जहं जाऊं सोई परिकरमा, जो कछु करूं सो सेवा।
जब सोऊं तब करूं दण्डवत, पूजूं और न देवा॥
सब्द निरन्तर मनुआ राता, मलिन बचन को त्यागी।
ऊठत-बैठत कबहुं न बिसरै, ऐसी तारी लागी॥
कहै कबीर यह उन्मुनि रहनी, सो परगट कर गाई।
सुख-दुख के इक परे परमसुख तेहि में रहा समाई ॥९१॥

---

८९. लागी=लगन, प्रीति। तकत=एकटक देखती है। दुराई=छिपे।

९०. मानिक=लाल रंग का एक रत्न; यहां प्रियतम से आशय है। धन=स्त्री।

९१. अन्त=अनत, अन्यत्र। रूंधूं=बंद करता हूं। कहूं सो नाम=जो कुछ बोलता हूं, वही नाम-जप हो जाता है। गिरह-उद्यान=घर और वन। भाव दूजा=द्वैतभाव। परिकरमा=परिक्रमा, प्रदक्षिणा। जब सोऊं.....दण्डवत=पैर फैलाकर सो जाना ही मेरा दण्डवत् प्रणाम हैं। तारी=समाधि, ध्यान। उन्मुनि योग=उन्मुनी मुद्रा; मौनावस्था। सुख-दुख=सांसारिक सुख-दुःख। परमसुख=ब्रह्म-सुख।

भक्ति का मारग झीना रे।
नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौ-लीना रे॥
साधन के रस-धार में, रहै निस-दिन भीना रे।
राग में स्रुत ऐसे बसै, जैसे जल मीना रे॥
सांई-सेवन में देत सिर, कुछ बिलम न कीना रे।
कहै कबीर मत भक्ति का, परगट कर दीना रे॥९२॥

सांई से लगन कठिन है भाई।
जैसे पपीहा प्यासा बूंद का, पिया पिया रट लाई।
प्यासे प्राण तड़फै दितराती, और नीर ना भाई।
जैसे मिरगा सब्द-सनेही, सब्द सुनन को जाई।
सब्द सुनै और प्रानदान दे, तनिको नाहिं डराई।
जैसे सती चढी सत-ऊपर, पिया की राह मन भाई।
पावक देख डरै वह नाहीं, हंसत बैठे सदा माई।
छोडो तन अपने की आसा, निर्भय ह्वै गुन गाई।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, नाहिं तो जन्म नसाई॥९३॥

जब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरु जुगत लखाई।
किरिया-करम-अचार मैं छांडा, छांडा तीरथ का न्हाना।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक्र बौराना।
ना मैं जानूं सेवा-बंदगी, ना मैं घंट बजाई।
ना मैं मूरत धरि सिंघासन, ना मैं पुहुप चढ़ाई।
ना हरि रीझै जप तप कीन्हे, ना काया के जारे।
ना हरि रीझै धोती छांड़े, ना पांचों के मारे।
दाया राखि धरम को पालै, जगसूं रहै उदासी।
अपना-सा जिब सबकौ जानै, ताहि मिलै अविनासी।
सहै कुसब्द बाद को त्यागै, छांडै गर्व गुमांना।
सत्तनाम ताही को मिलिहै कहै कबीर दिवांना॥९४॥

---

९२. झीना=बड़ा बारीक। भीना=भीगा हुआ, विभोर। राग=अनुराग, परम प्रेम। स्रुत=सुरत, ध्यान, लौ।

९३. माई=उमाह या उमंग से।

९४. जुगत=योग-युक्ति। अचार=आचार। धोती छांड़े=धोती उतारकर लंगोटी लगाने से। पांचों के मारे=पांचों ज्ञानेन्द्रियों को वश में करने से। उदासी=अनासक्त।

मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपरा।
आसन मारि मंदिर में बैठे, ब्रह्म छाड़ि पूजन लागे पथरा॥
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौले, दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैले बकरा।
जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले, काम जलाय जोगी होइ गैले हिजरा॥
मथवा मुंडाय जोगी कपरा रंगैले, गीता बांचके होइ गैले लबरा।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, जम-दरवजवा बांधल जैबे पकरा॥९५॥

जो खोदाय मसजीद बसतु है और मुलुक केहिकेरा।
तीरथ-मूरत रांम-निवासी, बाहर केहिका डेरा।
पूरब दिसा हरी कौ बांसा, पच्छिम अलह मुकांमा।
दिल में खोज दिलहिमें खोजौ इहैं करीमा रांमा।
जेते औरत-मरद उपानी सो सब रूप तुम्हारा।
कबीर पोंगड़ा अलह-राम का सो गुरु पीर हमारा॥९६॥

बेद कहे सरगुन के आगे निरगुन का बिसराम॥
सरगुन-निरगुन तजहु सोहागिन, देख सबहि निज धाम।
सुख-दुख वहां कछू नहिं व्यापै, दरसन आठों जाम॥
नूरै ओढ़न नूरै डासन, नूरै का सिरह्रान।
कहै कबीर सुनो भई साधो, सतगुरु नूर तमाम॥९७॥

कहैं कबीर सुनो हो साधो, अंमृत-बचन हमार।
जो भल चाहो आपनो, परखो, करो विचार॥
जे करता तें ऊपजे, तासों परि गयो बीच।
अपनी बुद्धि बिवेक-बिन सहज बिसाही मीच॥
यहिमेंते सब मत चलै, यही चल्यौ उपदेस।
निस्चय गहि निर्भय रहो सुन परम तत्त संदेस॥
केहि गावो केहि धावहू, छोड़ो सकल धमार।
यहि हिरदे सबकोइ बसैं, क्यों सेवो सुन्न उजाड़॥
दूरहि करता थापिकै, करी दूर की आस।
जो करता दूरै हुते, तो को जग सिरजै आन॥

---

९५. धुनिया रमौले=धूनी रमा ली, सामने आग जलाकर शरीर को तपाने या तप करने बैठ गये। लबरा=झूठा, बकवादी।

९६. डेरा=निवास। करीम=कृपालु, परमेश्वर। उपानी=उत्पन्न हुए। पोंगड़ा=मूर्ख चेला।

९७. सरगुन=सगुण। बिसराम=नित्यस्थान। नूर=दिव्यज्योति। डासन=बिछौना। सिरहान=तकिया।

जो जानो यहं है नहीं, तो तुम धावो दूर।
दूर से दूरहि भ्रमि-भ्रमि निष्फल मरो बिसूर ॥
दुरलभ दरसन दूर के, नियर सदा सुख बास।
कहै कबीर मोहिं व्यापिया, मति दुख पावै दास ॥
आप अपनपौ चीन्हहू नखसिख सहित कबीर।
आनंद मंगल गावहू, होहि अपनपौ थीर ॥९८॥

सत्त नाम है सवतैं न्यारा। निर्गुन सर्गुन सब्द पसारा ॥
निर्गुन बीज सर्गुन फल फूला। साखा ग्यान, नाम है मूला ॥
मूल गहे तें सब सुख पावै। डाल पात में मूल गंवावै ॥
सांई मिलानी सुक्ख दिलानी। निर्गुन-सर्गुन भेद मिटानी ॥९९॥

नैहर से जियरा फाट रे।
नैहर-नगरी जिसकी बिगड़ी, उसका क्या घर-बाट रे।
तनिक जियरवा मोर न लागै, तनमन बहुत उचाट रे।
या नगरी में लख दरवाजा, बीच समुन्दर घाट रे।
कैसेकै पार उतरिहैं सजनी, अगम पंथ का पाट रे।
अजब तरह का बना तंबूरा, तार लगे मन मात रे।
खूंटी टूटी तार बिलगाना, कोउ न पूछत बात रे।
हंस हंस पूछै मातुपितासों, भोरें सासुर जाब रे।
जो चाहैं सो वोही करिहैं, पत वाही के हाथ रे।
न्हाय-धोय दुल्हिन होय बैठी, जोहै पिय की बाट रे।
तनिक घुंघटवा दिखाव सखी री, आज सोहाग की रात रे।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, पिया-मिलन की आस रे।
भोरे होत बंदे याद करोगे, नींद न आवे खाट रे ॥१००॥

अवधू, बेगम देस हमारा।
राजा-रंक फकीर-बादसा, सबसे कहौं पुकारा।
जो तुम चाहो परम-पद को, बसिहो देस हमारा।

९८. जे करता तैं=जिस सिरजनहार से। बीच=अंतर, प्रेम। बिसाही=मोल लेली। केहि धावहू=किसकी आशा में दौड़ते हो? धमार=धमा-चौकड़ी, उछल-कूद। सुन्न उजाड़=निर्जन वन में। बिसूर=चिंता और दुःख करके। अपनपौ=आत्मस्वरूप। थीर=स्थिर, प्रशान्त।

१००. नैहर=मायका; इस लोक से एवं शरीर से अभिप्राय है। पाट=चौड़ाव, फैलाव। खूंटी. ...बिलगाना=देह से प्राण अलग होने पर। भोरें=सवेरे ही। सासुर=ससुराल, प्रियतम का घर। पत=लाज।

जो तुम आये झीने होके, तजदो मन की वारा।
ऐसी रहन रहो रे प्यारे, सहजै उतर जावो पारा॥
धरन-अकास-गगन कछु नांहीं, नहीं चन्द्र नहिं तारा।
सत्त-धर्म की हैं महताबें, साहेब के दरबारा।
कहैं कबीर सुनो हो प्यारे, सत्त-धर्म है सारा॥१०१॥

माया महा ठगनी हम जानी।
तिरगुन फांसि लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी।
केसव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत होइ बैठी, तीरथहू में पानी।
जोगी के जोगिन होइ बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कौड़ी कानी।
भक्तन के भक्तिन होइ बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी॥१०२॥

बहुरि नहिं आवना या देस।
जो-जो गये बहुरि नहिं आये, पठवत नाहिं संदेस।
सुर-नर-मुनि और पीर औलिया, देवी-देव गनेस।
धरि-धरि जन्म सवै भरमे हैं, ब्रह्मा-बिस्नु-महेस।
जोगी जंगम और संन्यासी, दीगम्बर दरबेस।
चुंडित-मुंडित-पंडित लोई, सुर्ग रसातल सेस।
ग्यानी गुनी चतुर औ कबिना, राजा रंक नरेस।
कोइ रहीम कोइ राम बखानै, कोइ कहै आदेस।
नाना भेष बनाय सबै मिलि, ढूंढि फिरे चहुं देस।
कहै कबीर अंत ना पैहो, बिन सतगुरु उपदेस॥१०३॥

पांडे, बूझि पियहु तुम पानी।
जिहि मटिया के घरमहं बैठे, तामहं सिस्टि समानी।
छपन कोटि यादव जहं सीजे, मुनिजन सहस अठासी।

---

१०१. अवधू=अवधूत, साधु। बेगम=जहां गति या पहुंच न हो। झीने हो के=सूक्ष्म अर्थात् अहंकारशून्य होकर। धरन=धरणी, पृथिवी। महताब=एक प्रकार की रंगीन रोशनी, जो काठ की नली में मसाले भरकर जलाई जाती है।

१०२. तिरगुन=सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण। कमला=लक्ष्मी। कानी=फूटी, झंझी, छेदवाली।

१०३. औलिया=पहुंचा हुआ फकीर। जंगम=घूमनेवाले साधु। दरवेस=फकीर। चुंडित=चोटीवाला। लोई=लोग। आदेस=ईश्वर की आज्ञा; इलहाम।

पैग पैग पैगंबर गाड़े, सो सब सरि भौ माटी।
तेहि मटिया के भांड़े पांड़े, बूझि पियहु तुम पानी।
कच्छ मच्छ-घरियार बियाने, रुधिर नीर जल भरिया।
नदिया नीर नरक बहि आवै, पसु-मानुस सब सरिया॥
हाड़ झरी-झरि गूद गरी-गरि, दूध कहांतें आया।
सो लै पांडे जेंवन बैठे, मटियहिं छूति लगाया॥
बेद-कितेब छांडि देउ पांडे, ई सब मन के भरमा।
कहहिं कबीर सुनहु हो पांडे, ई तुम्हरे हैं करमा॥१०४॥

साधो, पांडे निपुन कसाई।
बकरी मारि भेड़ि को धाये, दिल में दरद न आई।
करि अस्नान तिलक दै बैठे, विधि सों देवि पुजाई।
आतम मारि पलक में बिनसे, रुधिर की नदी बहाई।
अति पुनीत ऊंचे कुल कहिये, सभा माहिं अधिकाई।
इनसे दिच्छा सब कोई मांगै, हंसि आवै मोहिं भाई।
पाप-कटन को कथा सुनावैं, करम करावैं नीचां।
बूड़त दोउ परस्पर दीखे, गहे बांहि जम खींचा।
गाय बधै सो तुरुक कहावै, यह क्या उनसे छोटे॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, क केलि बाम्हन खोटे॥१०५॥

दुलहिन, अंगिया काहे न धोवाई।
बालपने की मैली अंगिया बिषय-दाग परि जाई।
बिन धोये पिय रीझत नाहीं सेज ते देत गिराई।
सुमिरन ध्यान कै साबुन करिले, सत्तनाम दरियाई।
दुबिधा के भेद खोल बहुरिया, मन कै मैल धोवाई।
चेत करो तीनों पन बीते, अब तो गवन नगिचाई।
पालनहार द्वार हैं ठाड़े अब काहे पछिताई।
कहत कबीर सुनो री बहुरिया, चित अंजन दे आई॥१०६॥

---

१०४. सिस्टि=सृष्टि। सीजे=गल गये, खप गये। पैग पैग=पग-पग पर। बूझि=जाति पूछकर। बियाने=पैदा हुए। नरक=मल-मूत्र। सरिया=सड़ गये। झरी-झरि=झर-झरकर। गूद=गूदा, हड्डी के भीतर का भेजा। गरी-गरि=गल-गलकर।

१०५. पांडे=पशु-बलि देनेवाले शाक्त पुजारी से अभिप्राय है। अधिकाई=आदर-प्रतिष्ठा। दिच्छा=मंत्र-दीक्षा। खोटे=नीच।

१०६. अंगिया=चोली; यहां मन की मलिन वृत्ति या वासना से आशय है। गवन नगिचाई=गौना; अर्थात् मरण समीप आ गया है। बहुरिया=बहू, वधू।

साधो, देखो जग बौराना।
सांची कहौ तौ मारन धावै, झूंठे जग पतियाना॥
हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपसमें दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोइ नहि जाना॥
बहुत मिले मोहिं नेमी धर्मी, प्रात करैं असनाना।
आतम-छोड़ि पषानैं पूजैं, तिनका थोथा ग्याना॥
आसन मारि डिंभ धरि बैठे मन में बहुत गुमाना।
पीपर पाथर पूजन लागे, तीरथ बर्त्त भुलाना॥
माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप-तिलक अनुमाना।
साखी सब्दै गावत भूले, आतम खबर न जाना॥
घर-घर मंत्र जो देत फिरत हैं माया के अभिमाना।
गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े अंतकाल पछिताना॥
बहुतक देखे पीर-औलिया पढ़ैं किताब-कुराना।
करैं मुरीद कबर बतलावैं, उनहूं खुदा न जाना॥
हिन्दु की दया मेहर तुरकन की दोनों घर से भागी।
वह करै जिबह वां झटका मारैं, आग दोऊ घर लागी।
या विधि हंसी चलत है हमको आप कहावै स्याना।
कहै कबीर सुनो भई साधो, इनमें कौन दिवाना॥१०७॥

वै क्यूं कासी तजैं मुरारी। तेरी सेवा-चोर भये बनवारी॥
जोगी जती तपी संन्यासी! मठ-देवल बसि परसैं कासी॥
तीन वार जे नितप्रति न्हावैं। काया भीतरि खबरि न पावैं॥
देवल देवल फेरी देहीं। नाम निरंजन कबहुं न लेहीं॥
तरन-बिरद कासी कों न देहूं। कहै कबीर भल नरकहिं जैहूं॥१०८॥

तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया, तलफ-तलफके भोर किया॥

---

१०७. पतियाना=विश्वास करता है। मरम=असल भेद। पषानैं=पत्थर की मूर्ति को। थोथा=सारहीन। डिंभ=दंभ, पाखंड। बर्त=व्रत। मुरीद=चेला। स्याना=सयाना, समझदार। दिवाना=दीवाना, पागल, मूर्ख।

१०८. बनवारी=वनमाली; विष्णु का एक नाम। काया..पावैं=पता नहीं कि शरीर के भीतर कितना मल-मूत्र भरा है। फेरी=परिक्रमा। तरन-विरद=संसार से मुक्त होने का यश।

१०९. छिया=मलिन, घृणित, धिक्कार; क्षीण हो रहा है—यह अर्थ भी किया जा सकता है।

तन मन मोर रहंट-अस डोलै, सून सेज पर जनम छिया।
नैत थकित भये पंथ न सूझै, सांई बेदरदी सुध हू न लिया।
कहत कबीर सुनो भई साधो, हरो पीर दुख जोर किया ॥१०९॥

नाम अमल उतरै ना भाई।
और अमल छिन-छिन चढ़ि उतरै, नाम-अमल दिन बढै सवाई।
देखत चढ़ै सुनत हिय लागै, सुरत किये तन देत घुमाई।
पियत पियाला भये मतवाला, पायो नाम, मिटी दुचिताई ॥
जो जन नाम अमल रस चाखा, तर गई गनिका सदन कसाई।
कहै कबीर गूंगे गुड़ खाया, बिन रसना का करै बड़ाई ॥११०॥

करो जतन सखी सांई मिलन की।
गुड़िया गुड़वा सूप सुपलिया, तजिदे बुधि लरिकैयां खेलन की ॥
देवता पित्तर भुइयां भवानी, यह मारग चौरासी चलन की।
ऊंचा महल अजब रंग वंगला, साईं की सेज वहां लागी फूलन की ॥
तन मन धन सब अर्पन कर वहां, सुरत सम्हार परूं पइयां सजन की।
कहै कबीर निर्भय होय हंसा, कुंजी बताद्यों ताला खुलन की ॥१११॥

दरस-दिवाना बावरा अलमस्त फकीरा।
एक अकेला है रहा अस मत का धीरा ॥
हिरदे में महबूब है हरदम का प्याला।
पीयेगा कोई जौहरी गुरुमुख मतवाला ॥
पियत पियाला प्रेम का सुधरे सब साथी।
आठ पहर झूमत रहैं जस मैगल हाथी ॥
बंधन काटे मोह के बैठा निरसंका।
वाके नजर न आवना क्या राजा क्या रंक ॥
धरती आसन किया, तंबू असमाना।
चोला पहिरा खाक का, रह पाक समाना ॥

---

११०. अमल=नशा। सुरत किये=ध्यान या स्मरण करने पर। देत घुमाई=चक्कर खिला देता है। दुचिताई=चित्त की अस्थिरता, दुविधा।

१११. गुड़िया.....सुपलिया=लड़कियों के खेलने के खिलौने। बुधि=बुद्धि, स्वभाव। चौरासी चलन की=चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने की। अजबरँग=अद्भुत शोभा। सजन=स्वामी। हंसा=मुक्त जीवात्मा से अभिप्राय है।

सेवक को सतगुरु मिले कछु रही न तबाही।
कहै कबीर निज घर चलो, जहं काल न जाही॥११२॥

सोच-समुझ अभिमानी, चादर भई है पुरानी॥
टुकडे-टुकडे जोड़ि जगत सों, सींके अंग लिपटानी।
कर डारी मैली पापन सों, लोभ-मोह में सानी॥
ना यहि लग्यो ग्यानकै साबुन, ना धोई भल पानी।
सारी उमिर ओढ़ते बीती, भली बुरी नहिं जानी।
संका मान जान जिय अपने, यह है बसतु बिरानी।
कहत कबीर धरि राखु जतन ते, फेर हाथ नहिं आनी॥११३॥

पीले प्याला हो मतवाला, प्याला नाम-अमीरस का रे।
वालपना सव खेलि गंवाया, तरुन भया नारी-बस का रे।
बिरध भया कफ बायने घेरा, खाट पड़ा न जाय खसका रे।
नाभिकंवल बिच है कस्तूरी, जैसे मिरग फिरे बन का रे।
बिन सतगुरु इतना दुख पाया, वैद मिला नहिं इस तन का रे।
मात-पिता बंधू सुत तिरिया, संग नहिं कोई जाय सका रे।
जबलग जीवै गुरु गुन लेगा, धन जोबन है दिन दस का रे।
चौरासी जो उबरा चाहे, छोड कामिनी का चसका रे।
कहै कबीर सुनो भई साधो, नखसिख पूर रहा बिस का रे॥११४॥

खेल ले नैहरवा दिन चार।
पहिली पठौनी तीन जन आये, नौवा बाम्हन वारि।
बाबुलजी, मैं पैयां तोरी लागौं अबकी गवन दे टारि॥
दुसरी पठौनी आपै आये, लेके डोलिया कहार।
धरि बहियां डोलिया बैठारिन, कोउ न लागै गोहार॥
ले डोलिया जाइ बन में उतारनि, कोइ नहीं संगी हमार।
कहै कबीर सुनो भई साधो, इक घर हैं दस द्वार॥११५॥

---

११२. अलमस्त=मतवाला, बेहोश, निर्द्वन्द्व। महबूब=प्रियतम। हरदम का प्याला=हर साँस से छलकता हुआ प्रेम-रस। रह पाक समाना=पवित्र आत्मा में लीन हो रहा है।

११३. चादर=देह से अभिप्राय है। बिरानी=पराई। धरि राखु जतन ते=हरिभजन करके इसे जरा-मरण से बचाले। फेर हाथ नहिं आनी=फिर यह मनुष्य-देह मिलने की नहीं।

११४. बाय=वायु। गुरु गुन लेगा=परमात्मा लगान या कर्मों का लेखा लेगा। चसका=चाट, लत।

११५. नैहरवा=पीहर, मायका; इहलोक एवं शरीर से अभिप्राय है। बाबुल=बाबू, पिता।

तोको पीव मिलैगें घूंघट के पट खोल रे।
घट-घट में वही साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे॥
धन जोबन का गरब न कीजै, झूठा पंचरंग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बार ले, आसन सों मत डोल रे॥
जोग जुगत सों रंगमहल में, पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर आनंद भयौ है, बाजत अनहद ढोल रे॥११६॥

साहेब है रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी।
स्याही रंग छुड़ायके रे दियो मजीठा रंग।
धोये से छूटे नहीं रे, दिन दिन होत सुरंग॥
भाव के कुण्ड नेह के जल में प्रेमरंग दई बोर।
दुख देइ मैल छुटाय दे रे, खूब रंगी झकझोर॥
साहिबने चुनरी रंगी रे, पीतम चतुर सुजान।
सब कुछ उनपर बारदूं रे, तन मन धन औ प्रान॥
कहैं कबीर रंगरेज पियारे मुझपर हुए दयाल।
सीतल चुनरी ओढ़िके रे, भई हौं मगन निहाल॥११७॥

अरे, इन दोहुन राह न पाई॥
हिन्दू अपनी करै बड़ाई, गागर छुवन न देई।
बेस्या के पायन तर सोवै यह देखो हिन्दूआई॥
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहै घरहिं में करै सगाई॥
बाहर से इक मुर्दा लाये धोय-धाय चढ़वाई।
सब सखियां मिलि जेमन बैठीं, घर-भर करै बड़ाई॥
हिंदुन की हिंदुवाई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, कौन राह है जाई॥११८॥

गवन=गौना; यहाँ मरण-यात्रा से अभिप्राय है। धरि बहियाँ=बाँह पकड़कर। गोहार=पुकार। घर=शरीर से आशय है।

११६. पंचरंग चोल=पंचतत्त्व का रचा शरीर।

११७. मजीठा=एक लता जिसकी सूखी जड़ और डंठलों को उबालकर पक्का लाल रंग तैयार किया जाता है। सुरंग=लाल; अनुरागमय। सीतल=शान्ति देनेवाली, ताप दूर करनेवाली।

११८. खाला केरी=मौसी की। मुर्दा=हलाल किया हुआ जानवर। चढ़वाई=देगची में पकाया।

दुई जगदीस कहां ते आया, कहु कवने भरमाया।
अल्लह राम करीमा केसौ, हरि हजरत नाम धराया॥
गहना एक कनक तें गढ़ना, इनि महं भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइ करि थापिन, इक निमाज इक पूजा॥
वही महादेव वही महंमद ब्रह्मा-आदम कहिये।
को हिन्दू को तुरक कहावै, एक जिमीं पर रहिये।
बेद-किताब पढ़े वे कुतुबा, वे मोलनां वे पांडे।
बेगरि-बेगरि नाम धराये एक मटिया के भांडे॥
कहहि कबीर वे दूनौं भूले, रामहिं किनहुं न पाया।
वै खस्सी वे गाय कटावैं बादहिं जन्म गंवाया॥११९॥

यह जग अंधा मैं केहि समुझावों॥
इक-दुइ होय उन्हैं समुझावौं सब ही भुलाना पेट के धंधा।
पानी के घोड़ा पवन असवरवा ढरकि परै जस ओस के बुंदा॥
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवनहारा पड़िगा फंदा।
घर की वस्तु निकट नहिं आवत दियना वारिके ढूंढ़त अंधा॥
लागी आग सकल बन जरिगा बिन गुरुग्यान भटकिया बंदा।
कहै कबीर सुनो भई साधो, एक दिन जाय लंगोटी झार बंदा॥१२०॥

तेहि साहब के लागो साथा। दुइ-दुख मेटिके होइ सनाथा॥
दसरथ-कुल अवतरि नहिं आया। नहिं लंका के राय सताया॥
नहिं देवकि के गर्भहिं आया। नहीं जसोदा गोद खिलाया॥
पृथ्वीरमन दमन नहिं करिया। बैठि पताल नहीं बलि छलिया॥
नहिं बलिराय सों मांडी रारी। नहिं हिरनाकुस बधल पछारी॥
रूप बराह धरणि नहिं धरिया। छत्री मारि निछत्री न करिया॥
नहिं गोवर्धन कर पर धरिया। नहीं ग्वाल संग वन-वन फिरिया॥

---

११९. कवने भरमाया=किसने भ्रम में डाल दिया। केसो=केशव। कनक=सोना। दुइ करि थापिन=दो बनाकर खड़े कर दिये। बेगरि-बेगरि=अलग-अलग। खस्सी=बकरा। बादहिं=व्यर्थ ही।

१२०. असवरवा=सवार। पानी के घोड़ा=क्षणभंगुर देह से आशय है। पवन असवरवा=प्राण-वायु से आशय है। धरवा=धार। बंदा=सेवक, जीव।

१२१. दुइ-दुख=द्वैतभाव-जनित दुःख। पृथ्वी-रमन...करिया=राजाओं को पराजित नहीं किया। बधल पछारी=पछाड़कर मारा। गंडक.....शीला=गंडकी नदी में पाई जानेवाली शालग्राम-शिला; वह स्वामी नहीं है। हीला=प्रवेश किया। थूल=स्थूल; वह रूप जिसका निरूपण मन व

गंडक सालग्राम न सीला। मत्स्य कच्छ है नहिं जल हीला॥
द्वारावती सरीर न छांडा। लै जगनाथ पिंड नहिं गाड़ा॥
कहहि कबीर पुकारिकै, वा पंथे तू मत भूल॥
जेहि राखे अनुमान करि थूल नहीं असथूल॥१२१॥

राम-गुण न्यारो न्यारो न्यारो।
अबुझा लोग कहांलौं बूझैं बूझनहार बिचारो॥
केते रामचंद्र तपसी-से जिन जग यह बिरमाया।
केते कान्ह भये मुरलीधर, तिन भी अंत न पाया॥
मच्छ कच्छ, बाराहस्वरूपी, बामन नाम धराया।
केते बौध भये निकलंकी, तिन भी अंत न पाया॥
केतिक सिध साधक संन्यासी जिन बनबास बसाया।
केते मुनिजन गोरख कहिये, तिन भी अंत न पाया॥
जाकी गति ब्रह्मै नहिं पाये सिव सनकादिक हारे।
ताके गुन नर कैसे पैहौ, कहै कबीर पुकारे॥१२२॥

मोको कहां ढूंढ़ो बंदे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरी गंड़ास में॥
नहीं खाल में नहीं पोंछ में, ना हड्डी ना मांस में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में॥
ना तो कौनो क्रिया-कर्म में, नहीं जोग-बैराग में।
खोजी होय तौ तुरतै मिलिहौं पलभर की तालास में॥
मैं तो रहौं सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो सब सांसों की सांस में॥१२३॥

चल सतगुरु की हाट, ग्यान बुधि लाइए।
कर साहब सों हेत, परमपद पाइए॥
सतगुरु सब कछु दीन, देन कछु नहिं रह्यो।
हमहिं अभागिन नारि, छोरि सुख दुख लह्यो॥

वाणी से हो सकता है। असथूल=सूक्ष्मतम; वह रूप जहाँ मन-वाणी की गति नहीं।

१२२. न्यारो=निराला, अलौकिक। अबुझा=मूढ। बिरमाया=मोहित करके फँस रखा। बौध=बुद्ध; बोधिसत्त्व। निकलंकी=निष्कलंक, कल्कि, विष्णु का भावी दसवाँ अवतार।

१२३. गँडास=गंडासा, घास के टुकड़े करने का हथयार। खोजी=सत्य-शोधक। मवास=दुर्गम गढ़; अंतरात्मा से आशय है। सहर के बाहर=पंच-भौतिक सृष्टि से परे।

गई पिया के महल, हिया अंग ना रची।
रह्यो कपट हिय छाय मान लज्जा भरी॥
जहां गैल सिलहिली, चढ़ौं गिरि-गिरि परौं।
उहुंठ सम्हारि सम्हारि, चरण आगे धरौ॥
पिया-मिलन की चाह कौन तेरे लाज है।
अधर मिलो किन जाय भला दिन आज है॥
भला बना संजोग प्रेम का चोलना।
तन मन अरपौं सीस साहब हंस बोलना॥
जो गुरु रुठे होंय तो तुरत मनाइए।
हुइए दीन अधीन चूकि बगसाइए॥
जो गुरु होंय दयाल दया दिल हेरिहैं।
कोटि करम कटि जायं पलक छिन फेरिहैं॥
कह कबीर समुझाय समुझ हिरदे धरो।
जुगन-जुगन करु राज, कुमति अस परिहरो॥१२४॥

जेहि कुल भगत भाग बड़ होई।
अबरन बरन न गनिय रंक धनि, बिमल बास निज सोई॥
बाम्हन छत्री बैस सूद्र सब भगत समान न कोई।
धन वह गांव ठांव असथाना है पुनीत संग लोई॥
होत पुनीत जपै सतनामा, आपु तरै तारै कुल दोई।
जैसे पुरइन रह जल भीतर, कह कबीर जग में जन सोई॥१२५॥

कैसे दिन कटिहैं जतन बताये जइयो।
एहि पार गंगा वोही पार जमुना,
बिचवां मढ़इया हमका छवाये जइयो॥
अंचरा फारिके कागद बनाइन,
अपनी सुरतिया हियरे लिखाये जइयो॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
बहियां पकरि के रहिया बताये जइयो॥१२६॥

---

१२४. छोरि=छोड़कर। रची=प्रेम में रँगी। गैल=राह। सिलहिली=फिसलनेवाली, रपटीली। अधर=निराधार, शून्य-मंडल; समाधि की सहज अवस्था। चोलना=चोला।

१२५. लोई=लोग। पुरइन=कमल का पत्ता जो जल में रहते हुए जल से अलिप्त रहता है। जन सोई=वही सच्चा हरि-भक्त है।

१२६. एहि पार.....छवाये जइयो=गंगा का अर्थ यहाँ इड़ा नाड़ी है, और जमुना का अर्थ है

हूं बारी, मुख फेरि पिया रे। करवट दे मोहिं काहे को मारे॥
करवत भला, न करवट तेरी। लाग गरे सुन बिनती मेरी॥
हम तुम बीच भया नहिं कोई। तुमहि सो कंत, नारि हम सोई॥
कहत कबीर सुनो नर लोई। अब तुम्हरी परतीत न होई॥१२७॥

पंडित बाद बदौ सो झूठा।
राम के कहे जगत गति पावै, खांड कहे मुख मीठा॥
पावक कहे पांव जो दाझै, जल कहे तृखा बुझाई।
भोजन कहे भूख जो भागै, तो दुनियां तरि जाई॥
नर के संग सुवा हरि बोलै, हरि-प्रताप नहिं जानै।
जो कबहूं उड़िजाय जंगल को, तौ हरि-सुरति न आनै॥
बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु, नाम लिये का होई।
धन के कहे धनिक जो होतो, निरधन रहत न कोई॥
सांची प्रीति विषय-माया सों, हरि-भगतन की हांसी।
कह कबीर एक राम भजे बिन बांधे जमपुर जासी॥१२८॥

फिरहु का फूले फूले फूले।
जो दस मास अरधमुख झूले, सो दिन काहे भूले।
ज्यों माखी स्वादै लहि बिहरै सांचि-सांचि धन कीन्हा।
त्यौं ही पीछे लेहु लेहु करि भूत रह न कछु दीन्हा॥
देहरी लौं वर नारि संग है, आगे संग सहेला।
मृतक-थान संग दियो खटोला, फिरि पुनि हंस अकेला॥
जारे देह भसम ह्वै जाई, गाड़े माटी खाई।
कांचे कुम्भ उदक ज्यों भरिया, तन की इहै बड़ाई॥
राम न रमसि मोह में माते, पर्यो काल बस कूवा।
कह कबीर नर आप बंधायो ज्यों नलिनी भ्रम सूवा॥१२९॥

पिंगला नाड़ी। इन दोनों के बीच है सुषुम्णा। यह योगियों की सहज शून्यावस्था है, यहीं पर मढ़ैया छा देने के लिए कहा गया है। सुरतिया=सुध, लौ। रहिया=राह; सुरत-मार्ग।

१२७. हूँवारी=मैं बलैंयां लेती हूँ। करवत=लकड़ी चीरने का बड़ा आरा। बीच=भेद डालनेवाला। लोई=लोगो।

१२८. गति=मोक्ष। दाझै=जले। अरस=मिलन। हाँसी=मज़ाक, अपमान। जासी=जाओंगे।

१२९. अरधमुख=अधोमुख, नीचे को मुहँ। झूले=लटकते रहे। साँचि-साँचि=संचय कर-कर। सहेला=साथी, मित्र। खटोला=अरथी। हंस=जीव। कुंभ=घड़ा। उदक=पानी। कूवा=भ्रम का कुआँ।

मेरा तेरा मनुआं कैसे इक होइ रे।
मैं कहता हौं आंखिन देखी, तूं कागद की लेखी रे।
मैं कहता सुरझावनहारी, तूं राख्यो अरुझाइ रे॥
मैं कहता तूं जागत रहियो, तूं रहता है सोइ रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो, तूं जाता है मोहि रे॥
जुगन-जुगन समझावत हारा, कहा न मानत कोइ रे।
तू तो रंडी फिरे बिहंडी, सब धन डार्‌या खोइ रे॥
सतगुरु-धारा निरमल बाहै, वा में काया धोइ रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तबही वैसा होइ रे॥१३०॥

अरे मन, समझ कै लादु लदनियां।
काहे क टटुवा काहे क पाखर, काहे क भरी गवनियां।
मन कै टटुवा सुरति कै पाखर, भर पुन-पाप गवनियां॥
घर के लोग जगाती लागे, छीन लेयं कर धनिवां।
सौदा करु तो यहिं करु भाई, आगे हाट न बनियां॥
पानी-पियै तो यहीं पी भाई, आगे देस निपनियां।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, सत्तनाम का बनियां॥१३१॥

नैहर में दाग लगाय आई चुनरी।
ऊ रंगरेजवा कै मरम न जानै,
नहिं मिलै धोबिया कवन करै उजरी॥
तन कै कूंडी ग्यान कै सउंदन,
साबुन महंग विकाय या नगरी॥
पहिरि-ओढिकै चली ससुररिया,
गौवां के लोग कहैं बड़ी फुहरी॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
बिन सतगुरु कबहूं नहिं सुधरी॥१३२॥

---

१३०. बिहंडी=नाश करनेवाली। बाहै=बहती है। वैसा होई रे=अरे, तभी तू सद्‌गुरु के समान निर्मल होगा।

१३१. टटुवा=छोटा घोड़ा, जिसपर माल लादते हैं! पाखर=टाट की झूल। गवनियाँ=गोन, टाट का थैला, खास। पुन=पुण्य, सत्कर्म। जगाती=महसूल उगाहनेवाला। कर धनियाँ=हाथ का धन या पूँजी। निपनियाँ=बिना पानी का।

१३२. कूँडी=छोटी नाँद। सउँदन=रेह-मिला पानी, जिसमें धोने से पहले धोबी कपड़ों को भिगोता है। फुहरी=फूहड़, गँवार।

कौन ठगवा नगरिया लूटल हो।
चंदन-काठ कै बनल खटोलना ता पर दुलहिन सूतल हो॥
उठो सखी मोरी मांग संबारो, दुलहा मोसे रूसल हो।
आये जमराज पलंग चढ़ि बैठे नैनन आंसू टूटल हो॥
चारि जने मिलि खाट उठाइन चहुं दिसि धूधू ऊठल हो।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो जग से नाता छूटल हो॥१३३॥

रमैया कै दुलहिन लूटा बजार।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा, तीन लोक मचा हाहाकार॥
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारद मुनि कै परी पिछार।
स्रिंगी की मिंगी करि डारी, पारासर कै उदर बिदार॥
कनफूंका चिदकासी लूटे, लूटे जोगेसर करत विचार।
हम तो बचिगे साहब-दया से, सब्द-डार गहि उतरे पार॥१३४॥

साखी

गुरुदेव कौ अंग

राम नाम कै पंटतरै, देवै को कुछ नांहिं।
क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन मांहिं॥१॥

सतगुर लई कमांण करि, बांहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति सूं, भीतर रह्या सरीर॥२॥

हंसै न बोलै उनमुनीं, चंचल मेल्या मारि।
कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर कै हथियारि॥३॥

गूंगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान।
पाऊं थैं पंगुल भया, सतगुर मार्‍या बाण॥४॥

---

१३३. नगरिया=नगरी, देह से आशय है। दुलहिन=जीव। सूतल=सोगई। रूसल=रूठ गया। टूटल=निकल पड़े। धूधू=आग के दहकने का शब्द।

१३४. रमैया कै दुलहिन=माया से अभिप्राय है। स्रिंगी=शृंगी ऋषि। मिंगी=गिरी, चूरचूर। चिदकासी=आकाश के समान निर्लिप्त चेतनरूप।

गुरुदेव कौ अंग

१. पटंतरै=तुलना, उपमा। हौंस=साहसरूपी इच्छा, हौसला।

२. कमांण=धनुष। बांहण लागा=चलाने लगा।

३. उनमुनीं=मौन, चुपचाप।

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुणां, बहुरि न आवौं हट्ट ॥५॥

ग्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ।
जब गोबिंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ ॥६॥

चौसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा मांहिं।
तिहिं धरि किसकौ चानिणौं, जिहि घरि गोबिंद नांहिं ॥७॥

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि-भ्रमि इवैं पडंत।
कहै कबीर गुर-ग्यान थैं, एक आध उबरंत ॥८॥

गुर गोबिंद तौ एक है, दूजा यहु आकार।
आप मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार ॥९॥

कबीर सतगुर नां मिल्या, रही अधूरी सीष।
स्वांग जती का पहरि करि, धरि-धरि मांगै भीष ॥१०॥

पासा पकड्या प्रेम का, सारी किया सरीर।
सतगुर दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥११॥

कबीर बादल प्रेम का हम परि बरष्या आइ।
अंतरि भीगी आत्मां, हरी भई बनराइ ॥१२॥

पूरे सूं परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि।
निर्मल कीन्हीं आत्मां, ताथैं सदा हजूरि ॥१३॥

गुरु गोविंद दोऊ खडे, काके लागौं पांय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय ॥१४॥

तन मन दिया तो क्या भया, निज मन दिया न जाय।
कह कबीर ता दास सों, कैसे मन पतियाय ॥१५॥

---

५. अघट्ट=जो कभी न घटे, अक्षय। बिसाहुणां=सौदा लेना। हट्ट=हाट, पेठ।

७. चानिणों=चाँदना, उँजेला।

८. इवैं=इस तरह। उबरंत=बच जाता है।

९. आप मेट जीवत मरे=अहंभाव को नष्टकर देहभाव की भूल जाये।

१०. जती=यति, संन्यासी। स्वांग=भेष।

११. सारी=चौपड़।

१३. मेल्या=फेक दिया।

गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरति-सिला पर धोइए, निकसै जोति अपार ॥१६॥

कबिरा ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठै गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥१७॥

कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाय।
कह कबीर गुरु रुठते, हरि नहिं होत सहास ॥१८॥

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तौ भी सस्ता जान ॥१९॥

ताका पूरा क्यों परै, गुरु न लखाई बाट।
ताको बेड़ा बूड़िहै, फिर फिर औघट घाट ॥२०॥

सुमिरण कौ अंग

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस।
राम नांव ततसार है, सब काहू उपदेस ॥१॥

तत्त-तिलक तिहुं लोक मैं, राम नांव निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार ॥२॥

मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहिं ॥३॥

कबीर सूता क्या करै, उठि ना रोवै दुक्ख।
जाका बासा गोर मैं, क्यूं सोवै सुक्ख ॥४॥

---

१६. सुरति=ध्यान, लय।

१९. बेलरी=लता।

२०. औघट=अड़बड़, विकट।

सुमिरण कौ अंग

१. तत सार=तत्त्व का सार; इसका एक अर्थ "तपाने का स्थान" भी होता है, जैसे, "कसनी दे कंचन किया, ताय लिया ततसार।"

३. रामहिं आहि=राम के ही लिए है।

४. गोर=क़ब्र।

जिहि घटि प्रीति न प्रेमरस, फुनि रसना नहीं राम।
ते नर इस संसार मैं, उपजि षये बेकाम॥५॥

जिहि हरि जैसा जांणियां, तिनकूं तैसा लाभ।
ओसों प्यास न भाजई, जबलग धसै न आभ॥६॥

राम पियारा छाड़िकरि, करै आन का जाप।
बेस्वा केरा पूत ज्यूं, कहै कौन सूं बाप॥७॥

लूटि सकै तो लूटियौ, राम नाम भंडार।
काल कंठ तैं गहैगा, रूंधै दसूं दुवार॥८॥

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अंमृत गुण गाइ।
फूटा नग ज्यूं जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ॥९॥

सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद।
कह कबीर ता दास की कौन सुनै फरियाद॥१०॥

सुमिरन सुरत लगाइके मुख तें कछू न बोल।
बाहर के पट देइके अंतर के पट खोल॥११॥

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डारिदे, मन का मनका फेर॥१२॥

कबिरा माला मनहिं की, और संसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलैं, गले रहंट के देख॥१३॥

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवां तो दहुंदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥१४॥

जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी सब्द में, ताहि काल नहिं खाय॥१५॥

---

५. फुनि=पुनः, फिर। षये=क्षय हो गये।

६. आभ=आब, पानी।

७. बेस्वा=वेश्या।

८. दसूँ दुवार=दसों इन्द्रियों से अभिप्राय है।

९. संधे संधि=जोड़ से जोड़।

११. बाहर......खोल=विषयों के लिए इन्द्रियों के द्वार बंद करदे और अंतर के किवाड़ स्वरूप-दर्शन के लिए खोलदे।

१२. फेर=(१) भेद, द्वैतभाव (२) माला जपना। मनका=गुरिया, सुमिरनी।

१४. दहुँ=दसों।

तूं तूं करता तूं भया, मुझमें रही न हूं।
वारी तेरे नाम पर जित देखूं तित तूं ॥१६॥

बिरह कौ अंग

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुटे राम सूं, ते दिन मिले न राति ॥१॥

बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैंगे आइ ॥२॥

बिरहनि ऊठै भी पड़ै, दरसन कारनि राम।
मूवां पीछैं देहुगे, सो दरसन किहि काम ॥३॥

अंदेसड़ा न भाजिसी, संदेसौ कहियां।
कै हरि आयां भाजिसी, कै हरि ही पासि गयां ॥४॥

जबहूं मार्‌या खैंचिकरि, तब मैं पाई जांणि।
लागी चोट मरम्म की, गई कलेजा छांणि ॥५॥

जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूं मारि, सर बिन सचु पाऊं नहीं ॥६॥

बिरह-भुवंगम तन बसै, मन्त्र न लागै कोइ।
राम-बिवोगी ना जिवै, जिवै त बीरा होइ ॥७॥

सब रग तंत रबाव तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सकै, कै सांईं कै चित्त ॥८॥

---

१६. वारी=बलिहारी।

बिरह कौ अंग

१. बिछुटी=बिछड़ी। परभाति=प्रभात, सवेरे।

२. ऊभी=खड़ी। पंथ सिरि=प्रेम-पथ की चोटी पर।

४. अंदेसड़ा ना भाजिसी=अंदेशा नहीं जायेगा।

५. गई छांणि=भेदकर पार कर गई।

६. सर=सद्‌गुरु के शब्द-वाण से आशय है। सचु=चैन।

७. बिवोगी=वियोगी।

८. तंत=तार। रबाब=एक प्रकार का बाजा; इसरार।

अंषड़ियां झांई पड़ी, पंथ निहारि-निहारि।
जीभड़ियां छाला पड़्या, राम पुकारि-पुकारि ॥९॥

इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूं जीव।
लोही सीचौं तेल ज्यूं, कब मुख देखौं पीव ॥१०॥

अंषड़ियां प्रेम कसाइयां, लोग जांणैं दुखड़ियां।
सांईं अपणैं कारणैं, रोइ-रोइ रतड़ियां ॥११॥

जौ रोऊं तौ बल घटै, हंसौं तौ राम रिसाइ।
मनही मांहिं बिसूरणां, ज्यूं घुण काठहि खाइ ॥१२॥

हंसि-हंसि कंत न पाइए, जिनि पाया तिनि रोइ।
जे हांसेही हरि मिले, तौ नहीं दुहागनि कोइ ॥१३॥

नैंनां अंतरि आचरूं, निसदिन निरखौं तोहिं।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहिं ॥१४॥

कै बिरहनि कूं मीच दै, कै आपहिं दिखलाइ।
आठ पहर का दाझणां, मोपै सह्या न जाइ ॥१५॥

हौं बिरहा की लाकड़ी, समझि समझि धूंधाउं।
छूटि पड़ौं या बिरह तैं, जे सारीही जलि जाउं ॥१६॥

सुखिया सब संसार है, खाये अरू सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै ॥१७॥

बिरहिन देय संदेसरा, सुनो हमारे पीव।
जल बिन मच्छी क्यों जियै, पानी में का जीव ॥१८॥

नैनन तो झरि लाइया, रहंट बहै निसु-वास।
पपिहा ज्यों पिउ-पिउ रटै, पिया मिलन की आस ॥१९॥

---

९. झाँई=अँधेरा।

११. कसाइयाँ=कसक रही हैं, पीड़ा दे रही हैं। दुखड़ियाँ=दुखने को आई हैं। रतड़ियाँ=लाल हो रही हैं।

१२. बिसूरणां=मन में दुःख मानना, चिंता करना।

१३. दुहागनि=अभागिनी, विधवा।

१५. दाझणां=जलना।

१९. बास=वासर, दिन।

बिरह भुवंगम पैठिकै किया कलेजे घाव।
बिरही अंग न मोड़िहै, ज्यों भावे त्यों खाव ॥२०॥

बिरहिन ओदी लाकड़ी, सपचै औ धुंधुआय।
छूट पड़ौं या बिरह से, जो सगरो जरि जाय ॥२१॥

हिरदे भीतर दव वलै, धुआं न परगट होय।
जाके लागी सो लखै, की जिन लागी सोय ॥२२॥

सांई सेवत जल गई, मांस न रहिया देह।
सांई जबलगि सेइहौं, यह तन होइ न खेह ॥२३॥

मूए पाछे मत मिलौ, कहै कबीरा राम।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस केहि काम ॥२४॥

बिरह अगिन तन मन जला, लागि रहा तत जीव।
कै वा जाने बिरहिनी, कै जिन भेंटा पीव ॥२५॥

कबिरा बैद बुलाइया, पकरिके देखी बाहिं।
वैद न वेदन जानई, करक कलेजे माहिं ॥२६॥

ग्यान बिरह कौ अंग

दौं लागी साइर जल्या, पंषी बैठे आइ।
दाधी देह न पालवै, सतगुर गया लगाइ ॥१॥

अहेंड़ी दौं लाइया, मृगा पुकारे रोइ।
जा बन मैं क्रीला करी, दाझत है बन सोइ ॥२॥

---

२१. ओदी=गीली। सपचै=सुलगे।

२२. दव=आग। लागी=(१) लगी है (२) लगाई है।

२३. सेवत=राह देखते-देखते। खेह=भस्म, मिट्टी।

२६. वेदन=वेदना, पीड़ा। करक=कसक, दर्द।

ग्यान बिरह कौ अंग

१. दौं=वन की आग। साइर=जलाशय। दाधी=जली। न पालवै=पल्लवित अर्थात् हरी नहीं होती।

२. अहेड़ी=अहेरी, शिकारी; काल से तात्पर्य है। क्रीला=क्रीड़ा। दाझत है=जल रहा है। वन=देह से आशय है।

परचा कौ अंग

कबीर तेज अनंत का, मानौं ऊगी सूरज सेणि।
पति संगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेणि ॥१॥

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कूं सोभा नहीं, देख्याही परवान ॥२॥

अगम अगोचर गमि नहीं, तहां जगमगै जोति।
जहां कबीरा बंदिगी, (तहां) पाप पुन्य नहीं छोति ॥३॥

अंतरि-कंवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहां होइ।
मन-भंवरा तहां लुवधिया, जाणैगा जन कोइ ॥४॥

देखौ कर्म कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख ॥५॥

पाणीं ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कह्या न जाइ ॥६॥

भली भई जो भै पड़्या, गई दसा सब भूलि।
पाला गलि पाणी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि ॥७॥

अंक भरे भरि भेटिया, मन मैं नांहीं धीर।
कहै कबीर ते क्यूं मिलैं, जबलग दोइ सरीर ॥८॥

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नांहिं।
सब अंधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या मांहिं ॥९॥

परचा कौ अंग

१. सेणि=श्रेणी। सुन्दरी=प्रेम-लक्षणा भक्ति की साधिका जीवात्मा से आशय है। कौतिग=कौतुक, लीला।

२. उनमान=अनुमान, उपमा। परवान=प्रमाण। सोभा=उपमा।

३. छोति=छूत, प्रवेश।

५. दोसत=दोस्त, मित्र। अलेख=अलख, जिसका वर्णन न किया जा सके।

६. पाणी.....बिलाइ=आशय यह है कि जीवात्मा परमात्मा का अंश थी, सो उसीमें लीन हो गई, जैसे पानी से बनी बरफ़ और वह गलकर पानी में ही मिल गई, पानी ही हो गई।

७. दसा=जीव-दशा। पाला=बरफ़।

८. मांहि=घट के अंदर।

जा कारणि मैं ढूंढता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकौं पाइ ॥१०॥

जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाई ठौर।
सोई फिरि आपण भया, जासूं कहता और ॥११॥

लाली मेरे लाल की जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥१२॥

उलटि सामना आप में, प्रगटी जोति अनंत।
साहेब सेवक एक संग खेलैं सदा बसंत ॥१३॥

पंजर प्रेम प्रकासिया, अंतर भया उजास।
सुख करि सूती महल में, बानी फूटी बास ॥१४॥

कबीरा देखा एक अंग, महिमा कही न जाइ।
तेजपुंज परसा धनी, नैनों रहा समाइ ॥१५॥

गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहरि गंभीर।
चहुंदिसि दमकै दामिनी, भींजै दास कबीर ॥१६॥

कबिरा भरम न भाजिया, बहुबिधि धरिया भेख।
सांईं के परिचय बिना, अंतर रहिया रेख ॥१७॥

रस कौ अंग

कबीर हरि-रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुंभार का, बहुरि न चढ़ई चाकि ॥१॥

राम-रसाइन प्रेम-रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवन दुलभ है, मांगै सीस कलाल ॥२॥

---

१०. धन=स्त्री, जीवात्मा।

१४. पंजर=शरीर। उजास=प्रकाश।

१५. परसा=भेंटा। धनी=स्वामी।

१६. गगन=समाधि की शून्यास्थिति से आशय है। गरजि=अनाहत नाद से अभिप्राय है।

१७. रेख=भ्रम अर्थात् भेद-बुद्धि की रेखा।

रस कौ अंग

१. थाकि=अतृप्ति, भूख।

२. सीस=अहंभाव से तात्पर्य है। कलाल=सद्गुरु से आशय है।

कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहीं तौ पिया न जाइ ॥३॥

सबै रसांइण मैं किया, हरि सा और न कोइ।
तिल इक घट मैं संचरै, तौ सब तन कंचन होइ ॥४॥

लांवि कौ अंग

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूंद समानी समंद मैं, सो कत हेरी जाइ ॥१॥

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समंद समाना बूंद मैं, सो कत हेर्‍या जाइ ॥२॥

जर्णा कौ अंग

दीठा है तौ कस कहूं, कह्यां न को पतियाइ।
हरि जैसा तैसा रहौ, तूं हरिष-हरषि गुण गाइ ॥१॥

करता की गति अगम है, तूं चलि अपणें उनमान।
धीरै-धीरैं पाव दे, पहुंचैंगे परवान ॥२॥

निहकर्मी पतिब्रता कौ अंग

कबीर प्रीतड़ी तौ तुझसौं, बहु गुणियाले कंत।
जे हंसि बोलौं और सौं, तौं नील रंगाऊं दंत ॥१॥

नैनां अतंरि आव तूं, ज्यूं हौं नैन झंपेऊं।
ना हौं देखौं औरकूं, ना तूझ देखन देऊं ॥२॥

लांबि कौ अंग

१. गया हिराइ=खो गया, लीन हो गया। बूँद=जीवात्मा। समँद=परमात्मा। हेरी जाइ=खोजी जाये।

जर्णा कौ अंग

२. परवान=प्रमाण, लक्ष्य-स्थान।

निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

१. नील रँगाऊँ दंत=मुहँ काला करूँ, अपने आपको कलंक लगाऊँ।

२. झँपेउँ=मूँद लूँ।

कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूं रमइया रमि रह्या, दूजा कहां समाइ ॥३॥

कबीर एक न जांणिया, तौ बहु जांण्यां क्या होइ।
एक तैं सब होत है, सब तैं एक न होइ ॥४॥

मन प्रतीति न प्रेम रस, ना इस तन मैं ढंग।
क्या जाणौं उस पीव सूं, कैसैं रहसी रंग ॥५॥

उस संम्रथ का दास हौं, कदे न होइ अकाज।
पतिब्रता नांगी रहै, तौ उसही पुरिस कौं लाज ॥६॥

पतिवरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
पतिबरता के रूप पर वारों कोटि सरूप ॥७॥

पतिबरता पति कों भजै, और न आन सुहाय।
सिंह वचा जो लंघना तो भी घास न खाय ॥८॥

सुंदरि तो सांई भजै, तजै आन की आस।
ताहि न कबहूं परिहरै, पलक न छांडै पास ॥९॥

पतिबरता मैली भली, गले कांच की पोत।
सब सखिंयन में यों दिपै ज्यों रवि-ससि की जोत ॥१०॥

नाम न रटा तो क्या हुआ जो अंतर है हेत।
पतिबरता पति कों भजै, मुख से नाम न लेत ॥११॥

सती बिचारी सत किया, कांटों सेज विछाय।
लै सूती पिया आपना, चहुंदिस अगिन लगाय ॥१२॥

चितावर्णी कौ अंग

कबीर नौबति आपर्णी, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पट्टन ए गर्ली, बहुरि न देखन आइ ॥१॥

---

५. कैसैं रहसी रंग=कैसे प्रेम रहेगा या मिलेगा।

६. पुरिस=पुरुष, स्वामी।

७. कुचिल=मैले वस्त्रवाली।

८. बचा=बच्चा। लंघना=भूखा।

सातों सबद जु बाजते, घरि-घरि होते राग।
ते मंदिर खाली पड़े, वैसण लागे काग ॥२॥

कबीर कहा गरबियौ, इस जोवन की आस।
केसू फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास ॥३॥

कबीर कहा गरबियौ, देही देखि सुरंग।
बीछड़ियां मिलिवो नहीं, ज्यूं कांचली भुवंग ॥४॥

कबीर कहा गरबियौ, चाम लपेटे हड्ड।
हैवर ऊपरि छत्र सिरि, ते भी देवा खड्ड ॥५॥

यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल।
दिन दस के ब्यौहार कौं, झूठे रंगि न भूल ॥६॥

हाड़ जलैं ज्यूं लाकड़ी, केस जलैं ज्यूं घास।
सब तन जलता देखिकरि, भया कबीर उदास ॥७॥

कबीर मंदिर लाप का, जड़िया हींरैं लालि।
दिवस चारि का पेषणां, बिनस जाइगा काल्हि ॥८॥

आजि कि काल्हि कि पंचे दिन, जंगल होइगा बास।
ऊपरि ऊपरि फिरहिंगे, ढोर चरंदे घास ॥९॥

कहा कियौ हम आइकरि, कहा कहैंगे जाइ।
इतके भए न उतके, चाले मूल गंवाइ ॥१०॥

कबीर हरि की भगति बिन, ध्रिग जीमण संसार।
धूवां केरा धौलहर, जात न लागै वार ॥११॥

चितावणीं कौ अंग

२. सातों सबद=सातों स्वर। वैसण लागे=बैठने लगे।

३. केसू=टेसू के फूल। खंखर=खंखड़, उजाड़।

५. हैंवर=बढ़िया घोड़ा। खड्ड=क़ब्र से मतलब है।

६. सैंबल=सेमल, एक बड़ा पेड़, जिसमें बड़े-बड़े लाल फूल लगते हैं, और जिसके फलों या डोंडों में केवल रूई होती हैं, गूदा नहीं होता; यौवन और सौन्दर्य तत्त्वतः निस्सार हैं यह अभिप्राय है।

७. उदास=बिरक्त।

११. जीमण=जीवन। धौलहर=ऊँचा मीनार। जात न लागै बार=मिटते देर नहीं लगती।

इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यूं पाली देह।
रामनाम जाण्या नहीं, अंति पड़ी मुख पेह ॥१२॥

मनिषा जनम दुलभ है, देह न बारंबार।
तरवर थैं फल झड़ि पड़्या, बहुरि न लागै डार ॥१३॥

कबीर यहु तन जात है, सकै तौ ठाहर लाइ।
कै सेवा करि साध की, कै गोबिंद गुण गाइ ॥१४॥

कबीर यहु तन जात है, सकै तौ लेहु बहोड़ि।
नागे हाथूं ते गये, जिनकै लाप करोड़ि ॥१५॥

यहु तन काचा कुंभ है, लियां फिरै था साथि।
ढबका लागा फूटि गया, कछू न आया हाथि ॥१६॥

खंभा एक गइंद दोइ, क्यूं करि बंधिसि बारि।
मानि करै तौ पीव नहीं, पीव तौ मानि निवारि ॥१७॥

दुनियां के धोखै मुवा, चलै जु कुल की कांणि।
तब कुल किसका लाजसी, जब ले धर्‌या मसांणि ॥१८॥

काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोइम धोइ।
ऊजल हुवा न छूटिए, सुख नींदड़ीं न सोइ ॥१९॥

ऊजल कपड़ा पहरिकरि, पान सुपारी खांहिं।
एकै हरि का नांव बिन, बांधे जमपुरि जांहि ॥२०॥

मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तौ निकसौं भाजि।
कबलग राखौं हे सखी, रुई-लपेटी आगि ॥२१॥

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास।
मेरी पग का पैंषड़ा, मेरी गल की पास ॥२२॥

---

१२. षेह=धूल।

१४. ठाहर लाइ=अच्छे ठौर पर लगा दे।

१५. लेहु बहोड़ि=लौटाले, सफल करले।

१६. ढबका=धक्का, ठोकर।

१७. मानि=मान, अहंभाव।

२२. मेरी मूल बिनास=ममता विनाश का मूल है। पैंषड़ा=पैरों की बेड़ी। पास=फाँसी।

कबीर नाव जरजरी, कूड़े खेवणहार।
हलके-हलके तिरि गये, बूड़े जिनि सिर भार ॥२३॥

कबीर नांव जरजरी, भरी बिराणै भारि।
खेवट सौं परचा नहीं, क्योंकरि उतरैं पारि ॥२४॥

झूंठे सुख को सुख कहै, मानत हैं मन मोद।
जगत्त चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥२५॥

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥२६॥

आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियां चुग गईं खेत ॥२७॥

पाव पलक की सुध नहीं, करै काल्ह का साज।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज ॥२८॥

माटी कहै कुम्हार को, तूं क्या रूंदै मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूंदूंगी तोहिं ॥२९॥

मोर मोर की जेवरी, बटि बांधा संसार।
दास कबीरा क्यों बंधै, जाके नाम अधार ॥३०॥

आये हैं सो जायंगे, राजा रंक फकीर।
इक सिंघासन चढ़ि चले, इक बंधि जात जंजीर ॥३१॥

तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आइ।
कोउ काहू का है नहीं, देखा ठोंक बजाइ ॥३२॥

दीन गंवायो संग दुनी, दुनी न चाली साथ।
पांव कुल्हाड़ी मारिया मूरख अपने हाथ ॥३३॥

---

२३. कूड़े=अनाड़ी।

२४. बिरांणे=दूसरे, पराये। खेवट=केवट, खेनेवाला।

२८. साज=तैयारी।

२९. रूँद=परों से कुचलता है।

३०. जेवरी=रस्सी।

३२. मनसा=कामना, इच्छा।

मैं, भंवरा तोहिं बरजिया, बन वन बास न लेइ।
अटकैगा कहुं बेल से, तड़पि-तड़पि जिय देइ ॥३४॥

इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहि ॥३५॥

चलती चक्की देखिके दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइके साबित गया न कोय ॥३६॥

माली आवत देखिके कलियां करै पुकार।
फूली फूली चुनि लई काल्हि हमारी बार ॥३७॥

दव की दाही लाकड़ी ठाढ़ी करै पुकार।
अब जो जाउं लोहारघर डाहै दूजी बार ॥३८॥

कबिरा रसरी पांव में कह सोवै सुख चैन।
स्वांस-नगाड़ा कूंच का बाजत है दिन-रैन ॥३९॥

दस द्वारे का पींजरा, ता में पंछी पौन।
रहिबे को आचरज है, जाइ तो अचरज कौन ॥४०॥

मन कौ अंग

कबीर मारूं मन कूं, टूक-टूक ह्वै जाइ।
विष की क्यारी बोइकरि लुणत कहा पछिताइ ॥१॥

मन जाणैं सब बात, जाणत ही औगुण करै।
काहे की कुसलात, कर दीपक कूवैं पडै ॥२॥

हिरदा भीतरि आरसी, मुख देषणां न जाइ।
मुख तौ तौपरि देखिए, जे मन की दुविधा जाइ ॥३॥

---

३४. बरजिया=मना किया। बेल=काम-वासना से तात्पर्य है।

३५. नारी=(१) स्त्री (२) नाड़ी।

३८. दव=जंगल की आग। डाहै=जलायेगा।

४०. पंछी पौन=प्राणरूपी पक्षी।

मन कौ अंग

१. लुणत=फसल काटते हुए।

३. आरसी=दर्पण।

पाणी ही तैं पातला, धूवां ही तैं झीण।
पवनां बेगि उतावला, सो दोसत कबीरै कीन्ह ॥४॥

कबीर तुरी पलांणियां, चाबक लीया हाथि।
दिवस थकां सांई मिलौं, पीछैं पड़िहै राति ॥५॥

मैमंता मन मारि रे, घटहीं मांहैं घेरि।
जबही चालै पीठि दे, अंकुस दे-दे फेरि ॥६॥

मैमंता मन मारि रे, नांन्हां करि-करि पीसि।
तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झलक्कै सीसि ॥७॥

कबीर मन पंषी भया, बहुतक चढ़्या अकास।
उहां हीं तैं गिरि पड़्या, मन माया के पास ॥८॥

मनह मनोर्थ छाड़िदे, तेरा किया न होइ।
पाणी मैं घीव नीकसै, तौ रूखा खाइ न कोइ ॥९॥

मन-मुरीद संसार है, गुरु-मुरीद कोइ साध।
जो मानै गुरु-वचन को ताको मता अगाध ॥१०॥

मन पांचों के बसि पड़ा, मन के बस नहिं पांच।
जित देखूं तित दौ लगी, जित भागूं तित आंच ॥११॥

मन के मारे बन गए, बन तजि बस्ती माहिं।
कह कबीर क्या कीजिए, यह मन ठहरै नाहिं ॥१२॥

पहले यह मन काग था, करता जीवन-घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुगि चुगि खात ॥१३॥

मन के बहुतक रंग हैं, छिन-छिन बदलै सोय।
एकै रंग में जो रहै, ऐसा बिरला कोय ॥१४॥

अपने-अपने चोर को सब कोइ डारै मार।
मेरा चोर मुझे मिलै, सरबस डारूं वार ॥१५॥

---

४. झीण=महीन। दोसत=दोस्त।
५. तुरी पलांणियां=(मनरूपी) घोड़े पर पलान कस लिया।
६. मैमंता=मतवाला (हाथी)।
१०. मुरीद=शिष्य। मता=सिद्धान्त।
११. पाँचों के=पाँचों ज्ञान-इन्द्रियों के। दौ=आग।
१५. मेरा चोर=मेरा प्रियतम, जिसने मन को चुरा लिया है।

मन कुंजर महमंत था, फिरता गहिर गंभीर।
दोहरी तेहरी चौहरी परि गइ प्रेम-जंजीर ॥१६॥

कबिरा मनहिं गयंद है, आंकुस दै-दै राखु।
विष की बेली परिहरी, अंमृत का फल चाखु ॥१७॥

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कह कबीर पिउ पाइए मनहीं की परतीत ॥१८॥

मन-गयंद मानै नहीं, चलै सुरति कै साथ।
दीन महावत क्या करै अंकुस नाहीं हाथ ॥१९॥

सूषिम मारग कौ अंग

उतीथैं कोइ न आवई, जाकूं बूझौं धाइ।
इतथैं सबै पठाइये, भार लदाइ-लदाइ ॥१॥

चलौ चलौ सबको कहै, मोहि अंदेसा और।
साहिब सूं पर्चा नहीं, ए जाहिंगे किस ठौर ॥२॥

कबीर मारिग कठिन है, कोई न सकई जाइ।
गए ते बहुड़े नहीं, कुसल कहै को आइ ॥३॥

जहां न चींटी चढि सकै, राई ना ठहराइ।
मन पवन का गमि नहीं, तहां पहूंचे जाइ ॥४॥

सुर नर थाके मुनिजनां, जहां न कोई जाइ।
मोटे भाग कबीर के, तहां रहे घर छाइ ॥५॥

यार बुलावै भाव सों, मोपै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सक्कों पाय ॥६॥

---

१६. गहिर=गह्वर, बन। गंभीर=घना, विकट।

१९. सुरति=यहाँ विषयों की सुध अर्थात् आसक्ति से आशय है।

सूषिम मारग कौ अंग

३. बहुड़े=लौटे।

५. मोटे=बड़े। तहाँ...छाइ=वहाँ, अर्थात् निर्विकल्प समाधि की सहज शून्य अवस्था में जाकर रम गये।

६. भाव=प्रेम। धन=स्त्री।

नांव न जानू गांव का, बिन जानें कित जांव।
चलता-चलता जुग भया, पाव कोस पर गांव ॥७॥

बाट बिचारी क्या करै, पथी न चलै सुधार।
राह आपनी छांड़िकै, चलै उजार-उजार ॥८॥

माया कौ अंग

कबीर माया पापणीं, फंध ले बैठी हाटि।
सब जग तौ फंधै पड़्या, गया कबीरा काटि ॥१॥

जाणौं जे हरि कू भजौं, मो मनि मोटी आस।
हरि बिचि घालै अंतरा, माया बड़ी बिसास ॥२॥

कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घांणि।
कोई एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की कांणि ॥३॥

माया मुई न मन मुवा, मरि-मरि गया सरीर।
आसा त्रिसणां नां मुई, यौं कहि गया कबीर ॥४॥

आसा जीवै जग मरै, लोग मरे मरि जाइ।
सोइ मूवे धन संचते, सो उबरे जे खाइ ॥५॥

कबीर सो धन संचिये, जो आगैं कूं होइ।
सीस चढांयें पोटली, ले जात न देख्या कोइ ॥६॥

माया तरबर त्रिबिध का, साखा दुख संताप।
सीतलता सुपिनैं नहीं, फल फीकौ तनि ताप ॥७॥

कबीर माया डाकर्णीं, सब किस ही कूं खाइ।
दांत उपाडौं पापर्णीं, जे संतौं नेड़ी जाइ ॥८॥

---

८. उजार=उजाड़, ऊबड़-खाबड़, वीरान।

माया कौ अंग

१. फंध=फंदा, फाँसी।
२. घालै अंतरा=भेद डाल देती है। बिसास=विश्वासघातिनी।
३. घाल्या घांणि=घानी (कोल्हू) में डाल दिया।
५. संचते=जमा करते हैं। उबरे=बच गये।
७. त्रिविध का=सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों का।
८. डाकर्णीं=डाइन, चुड़ैल। उपांड़ौं=उखाड़ लूँगा। नेड़ी=पास।

माया की झल जग जल्या, कनक कांमिणीं लागि।
कहु धौं किहि बिधि राखिये, रुई-लपेटी आगि ॥९॥

माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगतां के पीछैं फिरै, सनमुख भागै सोय ॥१०॥

माया तो है राम की, मोदी सब संसार।
जाकी चिट्ठी ऊतरी, सोई खरचनहार ॥११॥

आंधी आई ग्यान की, ढही भरम की भीति।
माया टाटी उड़ि गई, लागी नाम से प्रीति ॥१२॥

जिनको सांई रंग दिया, कभी न होइ कुरंग।
दिन-दिन बानी आगरी, चढ़ै सवाया रंग ॥१३॥

माया-दीपक नर-पतंग, भ्रमि-भ्रमि मांहि परंत।
कोइ एक गुरु-ग्यान तें उबरे साधू-संत ॥१४॥

चांणक कौ अंग

इही उदर कै कारणैं, जग जांच्यौ बसु जाम।
स्वांमींपणौ जु सिरि चढ्यो, सर्या न एको काम ॥१॥

स्वांमीं हूंणां सोहरा, दोद्धा हूंणां दास।
गाडर आंणीं ऊन कूं, बांधी चरै कपास ॥२॥

कबीर कलि खोटी भई, मुनियर मिलै न कोइ।
लालच लोभी मसकरा, तिनकूं आदर होइ ॥३॥

---

९. झल=ज्वाला।

१३. बानी=आभा, दमक। आगरी=बढ़कर, अधिक-अधिक।

१४. परंत=पड़ते हैं, गिरते हैं। गुरु ग्यान से=गुरु के शब्द-उपदेश से।

चांणक कौ अंग

१. बसु जाम=आठों पहर। सर्या=पूरा हुआ।

२. हूंणां=होना, बनना। सोहरा=सरल। दोद्धा=दुर्लभ, कठिन। गाडर=भेड़; अर्थात् आशा यह की थी कि स्वामीजी ज्ञानोपदेश देंगे, पर वे उलटे दूसरों को लूट रहे और मौज कर रहे हैं।

३. मुनियर=मुनिवर, श्रेष्ठ ज्ञानी। मसकरा=मसखरा।

चारिउं बेद पढ़ाइकरि, हरि सूं न लाया हेत।
बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूंढै खेत ॥४॥

बांह्मण गुरू जगत का, साधू का गुरु नाहिं।
उरझि-पुरझिकरि मरि रह्या, चारिउं बेदां मांहिं ॥५॥

चतुराई सूवै पढी, सोई पंजर मांहिं।
फेरि प्रमोधै आंन कूं, आपण समझै नांहिं ॥६॥

तारां-मंडल बैसिकरि, चंद बड़ाई खाइ।
उदै भया जब सूर का, स्यूं तारां छिपि जाइ ॥७॥

कासी कांठै घर करैं, पीवैं निरमल नीर।
मुकति नहीं हरि-नांव बिन, यूं कहै दास कबीर ॥८॥

कथर्णीं बिना करर्णीं कौ अंग

कबीर पढ़िबा दूरि करि, पुसतक देइ बहाइ।
बांवन आषिर सोधिकरि, ररै ममैं चित लाइ ॥१॥

कबीर पढ़िबा दूरि करि, आथि पढ़्या संसार।
पीड़ न उपजी प्रीति सूं, तौ क्यूं करि करै पुकार ॥२॥

कथनी मीठी खांड सी, करनी बिष की लोइ।
कथनी तजि करनी करै, बिष से अमृत होइ ॥३॥

पानी मिलै न आपको, औरन बकसत छीर।
आपन मन निसचल नहीं, और बंधावत धीर ॥४॥

पद जौरैं साखी कहैं, साधन परि गई रौस।
काढ़ा जल पीवै नहीं, काढ़ि पियन की हौस ॥५॥

---

६. प्रमोधै=प्रवोध अर्थात् ज्ञानोपदेश करता है।

७. स्यूँ=समेत।

८. काठैं=किनारे, पास।

कथर्णी बिना करण कौ अंग

१. आपिर=अक्षर। ररै ममै=रकार और मकार ये दो अक्षर, अर्थात् राम।

२. आथि=(अस्ति) है, होना।

३. लोइ=गोली।

५. जौरै=रचता है। रौस=चाल ढाल, रंग ढंग।

कहता तो बहुता मिला, गहता मिला न कोइ।
सो कहता बहि जानदे जो नहिं गहता होइ ॥६॥

एक एक निरवारिया जो निरवारी जाइ।
दुइ-दुइ मुख का बोलना, घने तमाचा खाय ॥७॥

कार्मी नर कौ अंग

परनारी-राता फिरैं, चोरी बिढ़ता खांहिं।
दिवस चारि सरसा रहैं, अंति समूला जांहिं ॥१॥

नर नारी सब नरक है, जबलग देह सकाम।
कहै कबीर ते रांम के, जे सुमिरैं निहकाम ॥२॥

एक कनक अरु कांमनी, बिष फल कै ये उपाइ।
देखैं हीं थैं बिष चढ़ै, खांयें सूं मरि जाइ ॥३॥

एक कनक अरु कांमनी, दोऊ अगनि की झाल।
देखें हीं तन प्रजलै, परस्यां है पैमाल ॥४॥

भगति बिगाड़ी कांमियां, इन्द्री केरै स्वादि।
हीरा खोया हाथ थै, जनम गंवाया बादि ॥५॥

कांमीं लज्या नां करै, मन माहैं अहिलाद।
नींद न मांगै सांथरा, भूष न मांगै स्वाद ॥६॥

कबीर कहता जात हौं, चेतैं नहीं गंवार।
बैरागी गिरही कहा, कांमीं वार न पार ॥७॥

---

६. गहता=सच्चे अर्थ को ग्रहणकर उसके अनुसार आचरण करनेवाला।

कार्मी नर कौ अंग

१. राता=अनुरक्त। चोरीविढ़ता=चोरी से कमाते हुए। सरसा=प्रसन्न।

२. सकाम=काम-वासना से युक्त।

३. झाल=ज्वाला। पैमाल=नष्ट।

५. बादि=अर्थ।

६. अहिलाद=आह्लाद, आनन्द। सांथरा=बिस्तर।

७. वार न पार=न इस लोक में ठिकाना, न परलोक में।

ग्यांनी मूल गंवाइया, आपण भये करता।
ताथैं संसारी भला, मन मैं रहै डरता ॥८॥

चलौं चलौं सब कोइ कहै, पहुंचै बिरला कोइ।
एक कनक औ कामिनी, दुरगम घाटी दोइ ॥९॥

परनारी पैनी छुरी, मति कोइ लाओ अंग।
रावन के दस सिर गए परनारी के संग ॥१०॥

सांच कौ अंग

लेखा देणां सोहरा, जे दिल सांचो होइ।
उस चंगे दीवांन मैं, पला न पकड़ै कोइ ॥१॥

काजी मुंलां भ्रंमयां, चल्या दुनीं कै साथि।
दिलथैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि ॥२॥

जोरी करि जिबहै करै, कहते हैं ज हलाल।
जब दफतर देखैगा दई, तब ह्वैगा कौंण हवाल ॥३॥

सांईं सेती चोरियां, चोरां सेती गुझ।
जांणैंगा रे जीवड़ा, मार पड़ैगी तुझ ॥४॥

खूब खांड है खीचड़ी, मांहिं पड़ै टुक लूंण।
पेड़ा रोटी खाइकरि, गला कटावै कूंण ॥५॥

झूठे कूं झूठा मिलै, दूणां बधै सनेह।
झूठे कूं सांचा मिलै, तब ही तूटै नेह ॥६॥

---

८. आपण भये करता=अहंकारवश अपने आपको सबका कर्ता मान बैठे। ताथै=उससे।

साँच कौ अंग

१. सोहरा=सहल। दीवान=दरबार, कचहरी।

२. दीन=धर्म। करद=बड़ी छुरी।

३. जोरी=जुल्म। जिबहै=प्राणियों का वध। हलाल=मुस्लिम धर्मशास्त्रोक्त पशु-वध। दफतर=कर्मों की मिसल।

४. गुझ=गुह्य, गुप्त भेद या सलाह।

५. खूब=बड़ी बढ़िया, स्वादिष्ट। टुक लूँण=ज़रा-सा नमक। कूँण=कौन।

६. बधै=बढ़े। तूटै=टूट जाये।

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे सांच है, ता हिरदे गुरु आप ॥७॥

प्रेम-प्रीति का चोलना, पहिरि कबीरा नाच।
तन मन तापर वार हूं, जो कोई बोलै सांच ॥८॥

सांच कहूं तो मारिहैं, झूठे जग पतियाइ।
ये जग काली कूकरी, जो छेड़ै तो खाइ ॥९॥

भ्रम बिधौंसण कौ अंग

जेती देषौं आत्मा, तेता सालिगरांम।
साधू प्रतषि देव हैं, नहीं पाथर सूं काम ॥१॥

सेवै सालिगरांम कूं, मन की भ्रांति न जाइ।
सीतलता सुपिनै नहीं दिन दिन अधिकी लाइ ॥२॥

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाणि।
दसवां द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछाणि ॥३॥

कबीर दुनियां देहुरै, सीस नवांवण जाइ।
हिरदा भीतरि हरि बसै, तूं ताही सूं ल्यौ लाइ ॥४॥

पाथर ही का देहुरा, पाथर ही का देव।
पूजणहारा अंधला, लागा खोटी सेव ॥५॥

भेष कौ अंग

कबीर माला मन की, और संसारी भेष।
माला पहर्‌यां हरि मिलै, तौ अरहट कै गलि देष ॥१॥

---

८. चोलना=लंबा ढीला-ढाला कुरता, जिसे फकीर पहनते हैं।

भ्रम बिधौंसण कौ अंग

१. प्रतषि=प्रत्यक्ष, सजीव।
२. लाइ=आग।
३. दसवां द्वारा=ब्रह्म-रन्ध्र से आशय है। देहरा=देवालय।
५. खोटी सेव=झूठी सेवा पूजा।

भेष कौ अंग

१. अरहट=रहँट। गलि=गले में।

सांईं सेती सांच चलि, औरां सूं सुध भाइ।
भावै लंबे केस करि, भावै घुरड़ि मुड़ाइ ॥२॥

तन कौं जोगी सब करैं, मन कौं बिरला कोइ।
सब सिधि सहजैं पाइए, जे मन जोगी होइ ॥३॥

पष ले बूड़ी पृथमीं, झूठी कुल की लार।
अलष बिसार्‌या भेष मैं, बूड़े काली धार ॥४॥

चतुराई हरि नां मिलै, ए बातां की बात।
एक निसप्रेही निरधार का गाहक गोपीनाथ ॥५॥

जबलग पीव परचा नहीं, कन्या कंवारी जांणिं।
हथलेवा हौंसैं लिया, मुसकल पड़ी पिंछाणिं ॥६॥

मन माला तन मेखला, भय की करैं भभूत।
अलख मिला सब देखता, सो जोगी अवधूत ॥७॥

हम तो जोगी मनहिं के, तन के हैं ते और।
मन का जोग लगावते दसा भई कछु और ॥८॥

संगति कौ अंग

देखादेखी भगति है, कदे न चढ़ई रंग।
बिपति पड़्यां यूं छाड़सी, ज्यूं कंचुली भवंग ॥१॥

कबीर तन पंषी भया, जहां मन तहां उड़ि जाइ।
जो जैसी संगति करै, सो तैसे फल खाइ ॥२॥

---

२. औरा सूँ=दूसरों के साथ। सुधि भाइ=शुद्ध या सरल भाव। घुरड़ि मुड़ाइ=घुटाकर मुँडादे।

४. पष=पक्ष, संप्रदायवाद। बूड़ी पृथमीं=दुनिया डूब गई। लार=साथ, संबंध।

५. बातां की बात=सौ बात की एक बात। निसप्रेही=निस्पृह, जिसे कोई इच्छा नहीं, कोई स्वार्थ नहीं।

६. हथलेवा=विवाह में वर द्वारा कन्या का हाथ अपने हाथ में लेने की रीति; पाणिग्रहण। हौंसैं=साहसपूर्ण इच्छा या हौसले से।

७. मेखला=कमर में लपेटने की मूँज क़ी डोरी; कफनी या अलफी भी अर्थ होता है। अवधूत=योगी।

काजल केरी कोठड़ी, तैसा यहु संसार।
बलिहारी ता दास की, पैसि ज निकसणहार ॥३॥

कबिरा संगत साध की हरै और की ब्याधि।
संगत बुरी असाध की, आठों पहर उपाधि ॥४॥

कबिरा संगत साधु की, जौ की भूसी खाइ।
खीर खांड भोजन मिलै, साकट संग न जाइ ॥५॥

कबिरा खाई कोट की, पानी पिवै न कोइ।
जाइ मिलै जब गंग से, सब गंगोदक होइ ॥६॥

तोहिं पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल।
कांची सरसों पेरिकै खली भया ना तेल ॥७॥

दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोइ।
कोटि जतन परबोधिए, कागा हंस न होइ ॥८॥

केरा तबहि न चेतिया, जब ढिग लागी बेर।
अब के चेते क्या भया, कांटन लीन्हों घेरि ॥९॥

साध कौ अंग

मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगनाथ।
साध संगति हरिभगति बिन, कछू न आवै हाथ ॥१॥

मेरे संगी दोइ जणां, एक बैष्णों एक रांम।
यो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नांम ॥२॥

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं।
अंक भरे भरि भेंटिया, पाप सरीरौं जांहिं ॥३॥

जांनि बूझि सांचहि तजैं, करैं झूंठ सूं नेहु।
ताकी संगति रांमजी, सुपिनैं, ही जिनि देहु ॥४॥

संगति कौ अंग

३. पैसि ज निकसणहार=जो पैठकर बिना कालिख लगाये बाहर निकल आये।
५. साकट=शाक्त, वाममार्गी जो मद्य-मांस आदि का सेवन करते थे; हरिविमुख।
७. पाका सेती खेल=पक्के साधु की संगति कर। पेरिकै=पेलकर।

साध कौ अंग

१. भावै=चाहे।

काजल केरी कोठड़ी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, जे रहै रांम की ओट ॥५॥

सिहों के लेंहड़े नहीं, हंसों की नहिं पांत।
लालों की नहिं बोरियां, साध न चलैं जमात ॥६॥

साध कहावन कठिन है, लंबा पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेमरस, गिरै तो चकनाचूर ॥७॥

गांठी दाम न बांधई, नहिं नारी सों नेह।
कह कबीर ता साध की हम चरनन की खेह ॥८॥

बृच्छ कबहुं नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधु न धरा सरीर ॥९॥

जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ग्यान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥१०॥

हरि सेती हरिजन बड़े, समझि देखु मन माहिं।
कह कबीर जग हरि बिषे, सो हरि हरिजन माहिं ॥११॥

हद्द चलै सो मानवा, बेहद चलै सो साध।
हद बेहद दोनों तजै, ता का मता अगाध ॥१२॥

साध साषीभूत कौ अंग

संत न छाड़ै संतई, जे कोटिक मिलैं असंत।
चंदन भुवंगा बैठिया, तउ सीतलता न तजंत ॥१॥

कबीर हरि का भावता, दूरै थै दीसंत।
तन षीणां मन उनमनां, जग रूठड़ा फिरंत ॥२॥

---

५. ओट=शरण में।
६. लेंहडे=झुंड।
८. खेह=धूल।
९. संचे=जमा करके रखती है।
११. विषे=बीच में।

साध साषीभूत कौ अंग

२. दीसंत=दीख जाता है। भावता=प्यारा भक्त। षीणां=क्षीण, कृश। उनमनां=उदासीन। रूठड़ा=विरक्त।

कबीर हरि का भावता, झीणां पंजर तास।
रैणि न आवै नींदड़ी, अंगि न चढ़ई मांस ॥३॥

रांम-बियोगी तन विकल, ताहि न चीन्हैं कोइ।
तंबोली के पांन ज्यूं, दिन दिन पीला होइ ॥४॥

जदि बिषै पियारी प्रीति सूं तब अन्तरि हरि नांहिं।
जब अंतर हरिजी बसै, तब बिषिया सूंचित नाहिं ॥५॥

जिहि हिरदैं हरि आइया, सो क्यू छांनां होइ।
जतन-जतन करि दाबिये, तऊ उजाला सोइ ॥६॥

सब घटि मेरा सांइयां, सूनी सेज न कोइ।
भाग तिन्हों का हे सखी, जिहि घटि परगट होइ ॥७॥

पावकरूपी रांम है, घटि-घटि रह्या समाइ।
चित चकमक लागै नहीं, ताथैं धूंवां ह्वैह्वै जाइ ॥८॥

साधमहिमा कौ अंग

जिहिं घर साध न पूजिये, हरि की सेवा नांहिं।
ते घर मड़हट सारषे, भूत बसैं तिन मांहिं ॥१॥

है गै गैंवर सघन धन, छत्र धजा फरराइ।
ता सुख थैं भिष्या भली, हरि-सुमिरत दिन जाइ ॥२॥

है गै गैंवर सघन धन, छत्रपती की नारि।
तास पटंतर ना तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥३॥

---

३. पंजर=देह।

६. छांनां=छिपा, गुप्त।

८. चकमक=एक प्रकार का कड़ा पत्थर, जिसपर चोट पड़ने से फौरन आग निकलती है।

साधमहिमा कौ अंग

१. मड़हट=मरघट। सारषे=समान।

२. है=हय, घोड़ा। गै=गज। गैंबर=गजराज। सघन=अत्यधिक, अखूट। फरराइ=फहराये। भिष्या=भिक्षा।

३. पटंतर=तुलना, उपमा। पनिहारि=पानी भरनेवाली नौकरानी।

कबीर कुल तौ सो भला, जिहि कुल उपजै दास।
जिहिं कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक-पलास ॥४॥

साषत बांभण मति मिलै, बैसनौं मिलै चंडाल।
अंकमाल दे भेंटिये, मानौं मिले गोपाल ॥५॥

बिचार कौ अंग

आगि कह्यां दाझै नहीं, जे नहीं चंपै पाइ।
जबलग भेद न जांणिये, रांम कह्या तौ कांइ ॥१॥

कबीर सोचि बिचारिया, दूजा कोई नांहिं।
आपा पर जब चीन्हियां, तब उलटि समाना मांहिं ॥२॥

कबीर पांणी केरा पूतला, राख्या पवन संवारि।
नांनां बांणी बोलिया, जोति धरी करतारि ॥३॥

एक सब्द में सब कहा, सब ही अर्थ विचार।
भजिए निर्गुन नाम को, तजिए बिषै-विकार ॥४॥

सहज तराजू आनिकरि सब रस देखा तोल।
सब रस माहीं जीभ-रस, जो कोइ जानै बोल ॥५॥

मन दीया कहिं और ही, तन साधन के संग।
कह कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥६॥

---

४. दास=भगवान् का सेवक, भगवद्भक्त। आक-पलास=आक का पेड़।

५. साषत=शाक्त, वाममार्गी। अंकमाल=आलिंगन, गले लगाना।

विचार कौ अंग

१. आगि......पाइ=आग कहदेने मात्र से वह जलाती नहीं है, जबतक कि पैर से दब नहीं जाती। कांइ=क्या होता है।

२. तब उलटि समाना माहिं=विषयों की ओर से मुड़कर अंतर्मुखी तथा ब्रह्म लीन हो जाता है।

३. पवन=प्राण। जोति=आत्मा से आशय है।

५. जीभ-रस=सच्ची मीठी वाणी; प्रभु-नाम का उच्चारण।

६. गजी=खादी।

उपदेस कौ अंग

बैरागी बिरकत भला, गिरहीं चित्त उदार।
दुहूं चूकां रीता पड़े, ताकूं बार न पार॥१॥

कबीर हरि के नांव सूं, प्रीति रहै इकतारि।
तौ मुख तैं मोती झड़ैं, हीरे अंत न पार॥२॥

ऐसी बांणी बोलिये, मत का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरन कूं सुख होइ॥३॥

जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहिं फूल को फूल है वाको है तिरसूल॥४॥

दुरबल को न सताइए, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वांस से लोह भसम ह्वै जाय॥५॥

या दुनिया में आइके छांडि देइ तू ऐंठ।
लेना होइ सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ॥६॥

जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होय।
या आपा को डारिदे, दया करै सब कोय॥७॥

आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।
कह कबीर नहिं उलटिए, वही एक ही एक॥८॥

मांगन मरन समान है मति कोइ मांगो भीख।
मांगन ते मरना भला, यह सतगुरु की सीख॥९॥

उदर समाता अन्न लै तनहिं समाता चीर।
अधिकहि संग्रह ना करै, ताका नाम फकीर॥१०॥

बोलत ही पहिचानिये साहु चोर को घाट।
अंतर की करनी सबै निकसै मुख की बाट॥११॥

उपदेस कौ अंग

१. विरकत=विरक्त। गिरही=गृहस्थ। दुहूँ चूकां रीतां पड़े=यदि वैरागी में वैराग्य न हो और गृहस्थ में उदारता न हो, तो दोनों ही व्यर्थ है।

६. ऐंठ=अभिमान। पैंठ=हाट।

१०. चीर=कपड़ा। समाता=आवश्यकताभर।

११. घाट=रंगत, चालढाल।

पढ़ि-पढ़ि के पत्थर भये, लिखि-लिखि भये जो ईंट।
कबिरा अंतर प्रेम की लागी नेक न छींट ॥१२॥

न्हाए धोए क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै धोए वास न जाय ॥१३॥

ऊंचे गांव पहाड़ पर, औ मोटे की बांह।
ऐसो ठाकुर सेइए, उबरिय जाकी छांह ॥१४॥

वोहू तो वैसहि भया, तू मति होय अयान।
तू गुणवंत वे निरगुणी, मति एकै में सान ॥१५॥

बेसास कौ अंग

भूखा-भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग।
भांडा घड़ि जिनि मुख दिया, सोई पूरण जोग ॥१॥

च्यंतामणि मन मैं बसै, सोई चित मैं आंणि।
बिन च्यंता च्यंता करै, इहै प्रभू की बांणि ॥२॥

जाकौ जेता निरमया, ताकौं तेता होइ।
रंती घटै न तिल बधै, जो सिर कूटै कोइ ॥३॥

संत न बांधै गांठड़ी, पेट समाता लेइ।
सांई सूं सनमुष रहै, जहां मांगै तहां देइ ॥४॥

मीठा खांण मधूकरी, भांति-भांति कौ नाज।
दावा किसही का नहीं, बिन बिलाइति बड़ राज ॥५॥

मांगण मरण समान है, बिरला बंचै कोइ।
कहे कबीर रघुनाथ सूं मति रे मंगावै मोहि ॥६॥

---

१५. मति एकै में सान=सब को एक में ही न मिला; सभी धान बाईस पंसेरी न समझ।

बेसास कौ अंग

१. भांडा=बर्तन; शरीर से अभिप्राय है। तेता पूरण जोग=वही उसे भरने में समर्थ।

२. वांणि=स्वभाव।

३. निरमया=बनाया। तेता होइ=उतना मिलता है। रंती=रती। बधै=बढ़े।

५. मधुकरी=अनेक घरों से मिली हुई भिक्षा।

पद गांये लैलीन है, कटी न संसै पास।
सबै पिछोड़े थोथरे, एक बिनां बेसास ॥७॥

गाया तिनि पाया नहीं, अणगांयां थै दूरि।
जिनि गाया बिसवास सूं, तिन रांम रह्या भरपूरि ॥८॥

कबिरा क्या मैं चिंतहूं, मम चिंते क्या होय।
मेरी चिंता हरि करैं, चिंता मोहिं न कोय ॥९॥

पौ फाटी पगरा भया, जागे जीवा जून।
सब काहू को देत है चोंच-समाता चून ॥१०॥

सांई इतना दीजिये, जामें कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूं, साधु न भूखा जाय ॥११॥

विर्कताई कौ अंग

मेरै मन मैं पड़ गई, ऐसी एक दरार।
फाटा फटक पषाण ज्यूं, मिल्या न दूजी बार ॥१॥

नीर पिलावत क्या फिरै, सायर घर-घर बारि।
जो त्रिषावंत होइगा, सो पीवैगा झषमारि ॥२॥

सतगंठी कोपीन है, साध न मानै संक।
रांम अमलि माता रहै, गिणैं इंद्र कौं रंक ॥३॥

दावै दाझण होत है, निरदावै निसंक।
जे नर निरदावै रहैं, ते गिणैं इंद्र कौं रंक ॥४॥

---

७. संसै-पास=संदेह, अर्थात् दुविधा का फंदा। पिछोड़े थोथरे=फोकट भुस को ही अंततक फटकता रहा; जितने साधन किये सब बेकार गये।

१०. पगरा=सबेरा, तड़का। जून=(प्रभात) समय।

विर्कताई कौ अंग

१. फटक=स्फटिक, बिल्लौर; साधारण काँच भी अर्थ होता है।

२. सायर=सागर, जलाशय।

३. सतगंठी कोपीन=सौ गाँठवाली लंगोटी। अमलि=नशा।

४. दावै=स्वत्व या अधिकार से; 'दाव' यह द्रव्य का भी अपभ्रंश हो सकता है।

सम्रथाई कौ अंग

सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरिगुण लिख्या न जाइ ॥१॥

सांईं मेरा बांणियां, सहजि करै ब्यौपार।
बिन डांडी बिन पालड़ै, तोलै सब संसार ॥२॥

कबीर करणीं क्या करै, जे रांम न करै सहाइ।
जिहिं-जिहिं डाली पग धरै, सोई नवि-नवि जाइ ॥३॥

सांई सूं सब होत है, बंदे थैं कुछ नांहिं।
राई थैं परबत करै, परबत राई मांहिं ॥४॥

साहेब-सा समरथ नहीं, गरुआ गहिर गंभीर।
औगुन छोडै गुन गहै, छिनक उतारै तीर ॥५॥

जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कछु कीया नाहिं।
कहा-कही जो मैं किया, तुम ही थे मुझ माहिं ॥६॥

जाको राखै सांइयां मारि न सक्कै कोय।
बाल न बांका करि सकै, जो जग बैरी होय ॥७॥

सांई तुझसे बाहिरा कौड़ी नाहिं बिकाय।
जाके सिर पर धनी तू, लाखों मोल कराय ॥८॥

सबद कौ अंग

कबीर सबद सरीर मैं, बिनि गुण बाजै तंति।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, ताथैं छूटि भरंति ॥१॥

सम्रथाई कौ अंग

१. बनराइ=वृक्ष-समूह।

३. नवि-नवि जाइ=झुक-झुक जाती है।

८. बाहिरा=बिना, रहेत।

सबद कौ अंग

१. गुण=तार से तात्पर्य है। तंति=तंत्री, वीणा। भरंति=भ्रांति।

सतगुण ऐसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरिकरि, देह द्रपन करै सोइ ॥२॥

ज्यूं-ज्यूं हरिगुण सांभलौं, त्यूं-त्यूं लागै तीर।
लागैं थें भागा नहीं, साहणहार कबीर ॥३॥

सब्द-सब बहु अंतरा, सार सब्द चित देय।
जा सब्दै साहेब मिलै, सोइ सब्द गहि लेय ॥४॥

सब्द बराबर धन नहीं जो कोइ जानै बोल।
हीरा तो दामों मिलैं, सब्दहिं मोल न तोल ॥५॥

सीतल सब्द उचारिए, अहम् आनिए नाहिं।
तेरा प्रीतम तुज्झ में, सत्रू भी तुझ माहिं ॥६॥

जीवनमृतक कौ अंग

घर जालौं घर ऊबरै, घर राखौं घर जाइ।
एक अचंभा देखिया, मड़ा काल कौं खाइ ॥१॥

बैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार।
एक कबीरा ना मुवा, जिनिके राम अधार ॥२॥

जीवन थैं मरिबो भलौ, जौ मरि जानैं कोइ।
मरनैं पहली जे मरें, तौ कलि अजरावर होइ ॥३॥

आपा मेट्यां हरि मिलै, हरि मेट्यां सब जइ।
अकथ कहांणीं प्रेम की, कह्यां न को पताइ ॥४॥

---

२. सिकलीगर=छूरी, कैंची आदि की धार को पैनी करनेवाला। मसकला=हँसिया के आकार का एक औजार इससे रगड़ने से धातुओं पर चमक आ जाती है। द्रपन=दर्पण; अत्यंत स्वच्छ।

३. सांभलौं=स्मरण व ध्यान करता हूँ। साहणहार=सहनेवाला।

जीवनमृतक कौ अंग

१. घर जालौं घर ऊबरै=यदि देहभिमान को नष्ट कर दूँ, तो आत्मभाव सुरक्षित रहता है। अथवा, विषय-रस जला दे तो ब्रह्म-रस सुलभ हो जाता है। मड़ा=मरा हुआ, जिसने अपने अहंभाव को मार दिया है। काल कौं खाइ=अमर हो जाता है।

३. मरनैं...होइ=मरने से पहले ही जो देह को नाशान या मृत समझ ले, वह अजर और अमर हो जाये। कलि=कल, तुन्त।

कबीर चेरा संत का, दासनि का परवस।
कबीर ऐसें है रह्या, ज्यूं पाऊं तलि गस ॥५॥

मैं मरजीव समुन्द्र का, डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ग्यान की, जामें वस्तु अनेक ॥६॥

हरि हीरा क्यों पाइहै, जिन जीवे की आस।
गुरु दरिया सो काढ़सी कोइ मरजीवा दास ॥७॥

रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देय।
साधू ऐसा चाहिए, ज्यों पैंड़े की खेह ॥८॥

खेह भई तो क्या भया, उड़ि-उड़ि लागै अंग।
साधू ऐसा चाहिए, जैसे नीर निपंग ॥९॥

नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा जोय।
साधू ऐसा चाहिए, जो हरि जैसा होय ॥१०॥

हरि भया तो क्या भया, करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिए, हरि भज निरमल होय ॥११॥

निरमल भया तो क्या भया, निरमल मांगै ठौर।
मल निरमल से रहित है, ते साधू कोइ और ॥१२॥

गुरसिष हेरा कौ अंग

ऐसा कोई नां मिलै, हम कौं लेइ पिछानि।
अपना करि किरपा करै, ले उतारै मैदानि ॥१॥

ऐसा कोई नां मिलै, रांम भगति का मीत।
तन मन सौंपे मृग ज्यूं, सुनै बधिक का गीत ॥२॥

---

५. परदास=दास का भी दास।

६. मरजीव=जो कार्य-सिद्धि के लिए प्राण देने पर उतारू हो जाये।

८. पैंड़े की खेह=रास्ते की धूल।

९. निपंग=बिना पंक का; स्वच्छ।

१०. ताता-सीरा=गरम और ठंडा।

गुरसिष हेरा कौ अंग

२. बधिक=बहेलिया।

ऐसा कोई नां मिलै, जासौं रहिये लागि।
सब जग जलतां देखिये, अपर्णीं-अपर्णीं आगि ॥३॥

हम देखत जग जात है, जग देखत हम जांहिं।
ऐसा कोई नां मिलै, पकड़ि छुड़ावै बांहिं ॥४॥

सारा सूरा बहु मिलैं, घाइल मिलै न कोइ।
प्रेमीं कौं प्रेमीं मिलै, तब सब बिष अमृत होइ ॥५॥

हम घर जाल्या आपणां, लिया मुराड़ा हाथि।
अब घर जालौं तास का, जे चलै हमारे साथि ॥६॥

सूरातन कौ अंग

गगन दमांमां बाजिया, पड़्या निसांनैं घाव।
खेत बुहार्‍या सूरिवैं, मुझ मरणे का चाव ॥१॥

सूरा तबही परषिये, लड़ै धणीं कै हेत।
पुरिजा-पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाड़ै खेत ॥२॥

अब तौ झूझ्या हीं बणैं, मुड़ि चाल्यां घर दूरि।
सिर साहिब कौं सौपतां, सोच न कीजै सूर ॥३॥

जिस मरनैं थैं जग डरै, सो मेरे आनंद।
कब मरिहूं कब देखिहूं, पूरन परमानंद ॥४॥

कायर बहुत पमांवहीं, बहकि न बोलै सूर।
काम पड़्यां हीं जांणिये, किसके मुख परि नूर ॥५॥

दूरि भया तौ का भया, सिर दे नेड़ा होइ।
जबलग सिर सौंपै नहीं, कारिज सिधि न होइ ॥६॥

---

५. सारा सूरा=आहत न होनेवाले शूरवीर।

६. मुराड़ा=जलती हुई लकड़ी।

सूरातन कौ अंग

१. दमांमां=नगाड़ा। पड़्या निसांनैं घाव=डंके पर चोट पड़ी। सूरिवैं=शूरवीरों ने।

२. पुरिजा-पुरिजा=टुकड़ा-टुकड़ा।

३. झूझ्यां ही बणैं=जूझना ही होगा।

५. पमांवहीं=डींग मारते हैं।

६. नेड़ा=निकट।

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नांहिं।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैसै घर मांहिं ॥७॥

प्रेम न खेतौं नीपजै प्रेम न हाटि बिकाइ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ ॥८॥

भगति दुहेली रांम की, नहिं कायर का कांम।
सीस उतारै हाथि करि, सो लेसी हरि नांम ॥९॥

भगति दुहेली रांम की, जैसि खांडे की धार।
जे डोलै तौ कटि पड़ै, नहीं तौ उतरै पार ॥१०॥

भगति दुहेली राम की, जैसि अगनि की झाल।
डाकि पड़े ते ऊबरे, दाधे कौतिगहार ॥११॥

जेते तारे रैणि के, तेतै बैरी मुझ।
धड़ सूली सिर कंगुरै, तऊ न बिसारौं तुझ ॥१२॥

सिर साटै हरि सेविये, छाड़ि जीव की वांणि।
जे सिर दीयां हरि मिलै, तबलग हांणि न जांणि ॥१३॥

सती जलन को नीकली, पीव का सुमरि सनेह।
सबद सुनत जीव नीकल्या, भूलि गई सब देह ॥१४॥

हौं तोहि पूछौं हे सखी, जीवत क्यूं न मराइ।
मूंवा पीछै सत करै, जीवत क्यूं न कराइ ॥१५॥

सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की कटि उंजियारा होय ॥१६॥

खोजी को डर बहुत है, पल-पल पड़ै बिजोग।
प्रन राखत जो तन गिरै, सो तन साहेबजोग ॥१७॥

तीर तुपक से जो लड़ै, सो तो सूर न होय।
माया तजि भक्ती करै, सूर कहावै सोय ॥१८॥

---

७. खाला=मौसी। पैसै=पैठे।

९. दुहेली=कठिन।

११. झाल=ज्वाला। डाकि पड़े=फाँद जाये, लाँघ जाये। कौतिगहार=तमाशा देखनेवाले।

१२. मुझ=मेरे।

१३. साटै=मोल। बांणि=लोभ।

काल कौ अंग

काल सिहांणैं यौं खड़ा, जागि पियारे म्यंत।
रांम-सनेही बाहिरा, तूं क्यूं सोवै नच्यंत ॥१॥

आज कहै हरि काल्हि भजौंगा, काल्हि कहै फिरि काल्हि।
आज ही काल्हि करंतड़ां, औसर जासी चालि ॥२॥

कबीर पल की सुधि नहीं, करै काल्हि का साज।
काल अच्यंता झड़पसी, ज्यूं तीतर कों बाज ॥३॥

बारी बारी आपर्णी, चले पियारे म्यंत।
तेरी बारी रे जिया, नेड़ी आवै निंत ॥४॥

मालन आवत देखिकरि, कलियां करीं पुकार।
फूले-फूले चुणि लिए, काल्हि हमारी बार ॥५॥

फांगुण आवत देखिकरि, बन रूना मन मांहिं।
ऊंची डाली पात है, दिन-दिन पीले थांहिं ॥६॥

जो पहर्‌या सो फाटिसी, नांव धर्‌या सो जाइ।
कबीर सोई तन्त गहि, जो गुर दिया बताइ ॥७॥

जो ऊग्या सो आंथिवै, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिणियां सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ ॥८॥

पांर्णी केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति।
एक दिनां छिप जांहिंगे, तारे ज्यूं परभाति ॥९॥

कबीर यहु जग कुछ नहीं, षिन षारा षिन मींठ।
काल्हि जो बैठा माड़ियां, आज मसांणां दीठ ॥१०॥

काल कौ अंग

१. सिहाँणैं=सिरहाने; सिर के ऊपर। म्यंत=मित्र। नच्यंत=निश्चिंत, बेफिक्र।

२. करंतड़ां=करते-करते। जासी चालि=चला जायेगा।

३. अच्यंता=अचानक।

६. रूना=उदास, दुखी। थाहिं=हो रहे हैं।

८. जो...आँथिवै=जो उदय हुआ वह अस्त होगा। चिणिंया=चिना, बनाया।

१०. माडियां=मढ़ैया, छोटा-सा घर। मसांणा=मरघट।

पात पडंता यौं कहै, सुनि तरवर बनराइ।
अब के बिछुड़े नां मिलैं, कहिं दूर पड़ैंगे जाइ ॥११॥

मेरा बीर लुहारिया, तू जिनि जालै मोहिं।
इक दिन ऐसा होइगा, हूं जालौंगी तोहिं ॥१२॥

कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
नां जांणै कहां मारिसी, कै घर कै परदेस ॥१३॥

कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गये सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै, चला बजावणहार ॥१४॥

काएं चिंणावै मालिया, लांबी भीति उसारि।
घर तौ साढ़ी तीनि हथ, घणौं तौ पौणां चारि ॥१५॥

मंछी हुआ न छूटिए, झीवर मेरा काल।
जिहिं-जिहिं डाबर हूं फिरौं, तिहिं-तिहिं मांडै जाल ॥१६॥

सूकण लागा केवड़ा, तूटीं अरहट माल।
पांणीं की कल जांणतां, गया ज सीचणहार ॥१७॥

बरियां बीती बल गया, अरु बुरा कमाया।
हरि जिन छाड़े हाथ थैं, दिन नेड़ा आया ॥१८॥

कबीर हरि सूं हेत करि, कूड़ै चित्त न लाव।
बंध्या बार षटीक कै, ता पसु कितीएक आव ॥१९॥

बिष के वन मैं घर किया, सरप रहे लपटाइ।
ताथैं जियरै डर गह्या, जागत रैंणि बिहाइ ॥२०॥

काची काया मन अथिर, थिर-थिर कांम करंत।
ज्यूं-ज्यूं नर निधड़क फिरै, त्यूं-त्यूं काल हसंत ॥२१॥

---

१२. वीर=भाई।

१५. मालिया=धनी। उसारि=दालान, बरामदा। घर=कब्र या स्मशान से अभिप्राय है।

१६. झीवर=धीवर, मछली पकड़नेवाला। डाबर=पोखरा, तलैया। मांडै=डालता है।

१७. अरहट=रहँट। सीचणहार=जीव से अभिप्राय है।

१८. बरियां=अवसर। बुरा कमाया=बुरे कर्म किये। नेड़ा=पास।

१९. बार=द्वार। षटीक=कसाई। आव=आयु।

२१. थिर-थिर=धीरे-धीरे।

रोवणहारे भी मुए, मुए जलांवणहार।
हा हा करते ते मुए, कासनि करौं पुकार ॥२२॥

सजीवनि कौ अंग

जहां जरा मरण ब्यापै नहीं, मुवा न सुणिये कोइ।
चलि कबीर तिहि देसड़ै, जहां बैद विधाता होइ ॥१॥

कबीर हरि चरणौं चल्या, माया मोह थैं टूटि।
गगन-मंडल आसण किया, काल गया सिरकूटि ॥२॥

यहु मन पटकि पछाड़िलै, सब आपा मिटि जाइ।
पंगुल ह्वै पिव-पिव करै, पीछैं काल न खाइ ॥३॥

तरवर तास बिलंबिए, बारह मास फलंत।
सीतल छाया गहर फल, पंषी केलि करंत ॥४॥

अपारिष कौ अंग

एक अचंभा देखिया, हीरा हाटि बिकाइ।
परिषणहारे बाहिरा, कौड़ी बदले जाइ ॥१॥

पैंडें मोती बीखर्‌या, अंधा निकस्या आइ।
जोति बिनां जगदीस की, जगत उलंध्यां जाइ ॥२॥

पारिष कौ अंग

हरि हीरा जन जौहरी, ले-ले मांडिय हाटि।
जब रे मिलैगा पारिषू, तब हीरां की साटि ॥१॥

हीरा तहां न खोलिए, जहं खोटी है हाटि।
कसकरि बांधो गाठरी, उठकरि चालो बाटि ॥२॥

सजीवनि कौ अंग

२. गगन-मंडल=समाधि की शून्य अवस्था। सिरकूटि=पछताकर, अपना-सा मुँह लेकर।
३. पंगुल=निश्चल, परमशान्त।
४. गहर=अत्यधिक।

पारिष कौ अंग

१. पारिषू=जौहरी। साटि=मोल।

हंसा बगुला एक-सा मानसरोवर माहिं।
बगा ढंढोरैं माछरी, हंसा मोती खाहिं ॥३॥

चंदन गया बिदेसड़े, सब कोइ कहै पलास।
ज्यों-ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों-त्यों अधकी बास ॥४॥

अमृत केरी पूरिया, बहु बिधि लीन्ही छोरि।
आप सरीखा जो मिले, ताहि पियाऊं घोरि ॥५॥

ग्यान-रतन की कोठरी, चुप करि दीन्हों ताल।
पारखि आगे खोलिए, कुंजी बचन रसाल ॥६॥

हीरा परा बजार में, रहा छार लपटाय।
बहुतक मूरख चलि गए, पारखि लिया उठाय ॥७॥

उपजणि कौ अंग

सीष भई संसार थैं, चले जु सांईं पास।
अबिनासी मोहि ले चल्या, पुरई मेरी आस ॥१॥

कबीर सुपिनैं हरि मिल्या, सूतां लिया जगाइ।
आंषि न मीचौं डरपता, मति सुपिनां ह्वै जाइ ॥२॥

गोब्यंद के गुण बहुत हैं, लिखे जु हिरदै मांहिं।
डरता पांणीं नां पीऊं, मति वै धोये जांहिं ॥३॥

भौ-समंद विष-जल भर्‌या, मन नहीं बांधै धीर।
सबल सनेहीं हरि मिलै, तब उतरै पारि कबीर ॥४॥

कबीर केसौ की दया, संसा घाल्या खोहि।
जे दिन गये भगति बिन, ते दिन सालैं मोहि ॥५॥

---

३. ढँढ़ोरैं=खोजते हैं।

५. पूरिया=पुड़िया।

६. ताल=ताला। कुंजी वचन रसाल=मीठे वचन की चाभी से।

७. छार=धूल।

उपजणि कौ अंग

१. पुरई=पूरी की।

५. केसौ=केशव। संसा घाल्या खोहि=संशय अर्थात् द्वैतभाव को नष्ट कर दिया। सालैं=कष्ट देते हैं।

सुन्दरि कौ अंग

कबीर जे को सुन्दरी, जांणि करै विभचार।
ताहि न कबहूं आदरै, प्रेम पुरिष भरतार ॥१॥

जे सुन्दरि सांईं भजै, तजै आन की आस।
ताहि न कबहूं परहरै, पलक न छाड़े पास ॥२॥

हूं रोऊं संसार कौं, मुझे न रोवै कोइ।
मुझकौं सोई रोइसी, जे रामसनेही होइ ॥३॥

मूओं कौं का रोइए, जो अपणैं घर जाइ।
रोइए बंदीवान को, जो हाटैं हाट बिकाइ ॥४॥

कस्तूरिया मृग कौ अंग

कबीर खोजी रांम का, गया जु सिंघल दीप।
रांम तौ घर भीतरि रंमि रह्या, जौ आवै परतीत ॥१॥

घटि बधि कहीं न देखिये, ब्रह्म रह्या भरपूरि।
जिन जांन्यां तिनि निकटि है, दूरि कहैं ते दूरि ॥२॥

ज्यूं नैनूं मैं पूतली, त्यूं खालिक घट मांहिं।
मूरिख लोग न जांणही बाहरि ढूंढण जांहिं ॥३॥

निंद्या कौ अंग

दोष पराये देखिकरि चल्या हसंत हसंत।
अपनैं च्यंति न आवई, जिनकी आदि न अंत ॥१॥

सुन्दरि कौ अंग

३. रोइसी=रोयेगा।

४. बंदीवान=कैदी; दुनियादारी में फँसा हुआ।

कस्तूरिया मृग कौ अंग

२. घटि-बधि=कम-बढ़।

३. खालिक=सृष्टिकर्ता, परमात्मा।

निंद्या कौ अंग

१. च्यंति न आवई=ध्यान में नहीं आते हैं।

निंदक नेड़ा राखिये, आंगणि कुटी बंधाइ।
बिन सावण पांर्णी बिना, निरमल करै सुभाइ ॥२॥

कबीर घास न नींदिये, जो पाऊं तलि होइ।
उड़ि पड़ै जब आंखि मैं, खरा दुहेला होइ ॥३॥

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ।
आप ठग्यां सुख ऊपजै, और ठग्यां दुख होइ ॥४॥

अबकै जे सांई मिलै, तौ सब दुख आषौं रोइ।
चरनूं ऊपरि सीस धरि, कहूं ज कहणा होइ ॥५॥

सातो सायर मैं फिरा, जंबुदीप दै पीठ।
निंद पराई ना करै सो कोइ परला दीठ ॥६॥

निंदक एकहु मति मिलैं, पापी मिलौ हजार।
इक निंदक के सीस पर कोटि पाप को भार ॥७॥

निगुणां कौ अंग

हरिया जाणैं रूंखड़ा उस पांणीं का नेह।
सूका काठ न जांणईं, कबहूं बूठा मेह ॥१॥

सरपहि दूध पिलाइये, दूधैं विष ह्वै जाइ।
ऐसा कोई नां मिलै, स्यूं सरपैं विष खाइ ॥२॥

ऊंचा कुल कै कारणैं, बंस बध्या अधिकार।
चंदन बास भेदै नहीं, जाल्या सब परिवार ॥३॥

कबीर चंदन कै निड़ै, नींव भि चंदन होइ।
बूड़ा बंस बडाइतां, यौं जिनि बूड़ै कोइ ॥४॥

---

२. सुभाइ=सहज ही।
३. न नींदिये=निंदा न करे। खरा दुहेला=बहुत ही मुश्किल, भारी तकलीफ़।
५. आषौं=कहूँ।
६. जंबुदीप दै पीठ=जंबूद्वीप (अपने घर से) चलकर। परला=विरला।

निगुणां कौ अंग

१. रूँषड़ा=पेड़। बूठा=बरसा।
३. बंस=(१) वंश, कुल (२) बाँस का पेड़, जो लंबा ऊँचा होता है।
४. निड़ै=पास। बड़ाइतां=बड़ाई से, ऊँचा होने से।

बीनती कौ अंग

कबीर सांईं तौ मिलहिंगे, पूछहिंगे कुसलात।
आदि अंति की कहूंगा, उर अंतर की बात ॥१॥

करता केरे बहुत गुण, औगुण कोई नांहिं।
जे दिल खोजौं आपर्णी, तौ सब औगुण मुझ मांहिं ॥२॥

कबीर करत है वीनती, भौसागर कै ताईं।
बंदे ऊपरि जोर होत है, जम कूं बरजि गुसांईं ॥३॥

ज्यूं मन मेरा तुझ सौं, यौं जे तेरा होइ।
ताता लोहा यौं मिलै, संधि न लखई कोइ ॥४॥

सुरति करौ मेरे सांइयां, हम हैं भवजल माहिं।
आपे ही बहि जायंगे, जो नहिं पकरौ बाहिं ॥५॥

क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहिं।
तुम देखत अवगुन करौं, कैसे भावों तोहिं ॥६॥

अवगुन मेरे बापजी, बकस गरीब-निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता कों लाज ॥७॥

मेरा मन जो तोहिं सों, तेरा मन कहिं और।
कह कबीर कैसे निभै, एक चित्त दुइ ठौर ॥८॥

मन परतीत न प्रेमरस, ना कछु तन में ढंग।
ना जानौ उस पीव से क्योंकरि रहसी रंग ॥९॥

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर ॥१०॥

तुम तो समरथ सांइयां, दृढ़करि पकरो बाहिं।
धुरही लै पहुंचाइयो, जनि छांड़ो मग माहिं ॥११॥

बीनती कौ अंग

३. ताई=बीच में, प्रति। जोर=जुल्म। बरजि गुसांई=हे स्वामी, मना करदे।

४. ताता=गरम। संधि=जोड़।

९. रहसी रंग=प्रीति निभेगी।

११. धुरही=ठिकाने पर ही।

बेली कौ अंग

आगैं आगैं दौं जलै, पीछैं हरिया होइ।
बलिहारी ता विरष की, जड़ काट्यां फल होइ ॥१॥

जे काटौं तौ डहडही, सींचौं तौ कुमिलाइ।
इस गुणवंती बेलि का, कुछ गुण कह्या न जाइ ॥२॥

विविध

तरवर सरवर संतजन, चौथे वरसै मेंह।
परमारथ के कारने चारौं धारैं देह ॥१॥

ऊंची जाति पपीहरा, पियै न नीचा पीर।
कै सुरपति को जांचई, कै दुख सहै सरीर ॥२॥

कबीरा मैं तो तब डरौं, जो मुझ ही में होय।
मीच बुढ़ापा आपदा, सब काहू में सोय ॥३॥

सात दीप नौ खंड में, तीन लोक ब्रह्मंड।
कह कबीर सबको लगै देहधरे का दंड ॥४॥

देहधरे का दंड है, सब काहू को होय।
ग्यानी भुगतै ग्यान करि, मूरख भुगतै रोय ॥५॥

जूआ, चोरी, मुखबिरी, ब्याज, घूस, परनार।
जो चाहै दीदार को, एती वस्तु निवार ॥६॥

राज-दुवारे साधुजन तीनि वस्तु कों जाय।
कै मीठा, कै मान को, कै माया की चाय ॥७॥

बेली कौ अंग

१. दौं=जंगल की आग। बिरष=वृक्ष।
२. डहडही=लहलही, हरी।

विविध

२. सुरपति=इन्द्र; स्वाति नक्षत्र के मेघ से अभिप्राय है।
३. मीच=मौत।
६. मुखबिरी=भेद की खबर देने का काम, जासूसी। दीदार=ईश्वर का दर्शन। खारी=खड़िया मिट्टी।

नाचै गावै पद कहै, नाहीं गुरु सों हेत।
कह कबीर क्यों नीपजै बीज-बिहूनो खेत ॥८॥
बिन देखे वह देस की बात कहै सो कूर।
आपै खारी खात हैं, बेचत फिरत कपूर ॥६॥
तौलौं तारा जगमगै जौलौं उगै न सूर।
तौ लौं जिय जग कर्मबस, जौलौं ग्यान का पूर ॥१०॥
करु बहियां बल आपनी, छांड बिरानी आस।
जाके आंगन नदी है, सो कस मरै पिआस ॥११॥
गुणिया तो गुण को गहै, निर्गुण गुणहिं घिनाय।
बैलहिं दीजै जायफर क्या बूझै क्या खाय ॥१२॥
अपनी कह मेरी सुनै, सुनि मिलि एकै दोय।
मेरे देखत जग गया, ऐसा मिला न कोय ॥१३॥
लिखापढ़ी में परे सब, यह गुण तजे न कोइ।
सबै परे भ्रम-जाल में, डारा यह जिय खोइ ॥१४॥
मानुष तेरा गुण बड़ा, मांस न आवै काज।
हाड़ न होते आभरण, त्वचा न बाजे बाज ॥१५॥
घर कबीर का सिखर पर, जहां सिलिहिली गैल।
पायं न टिकै पिपीलिका, खलक न लादै बैल ॥१६॥
ऊपर की दोऊ गईं, हिय की गई हेराय।
कह कबीर चारिउ गईं, तासों कहा बसाय ॥१७॥
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो तू सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय ॥१८॥
सब काहू का लीजिये सांचा सब्द निहार।
पच्छपात ना कीजिए, कहै कबीर विचार ॥१६॥
रचनहार को चीन्हिले, खाने को क्यों रोय।
दिल-मंदिर में पैंठकरि तानि पिछौरा सोय ॥२०॥

●

---

१६. सिलिहिली गैल=पैर रपटनेवाला रास्ता। पिपीलिका=चींटी।
१७. चारिउ=दो चर्म-चक्षु और दो ज्ञान-चक्षु।
१६. सब्द=उपदेश।
२०. तानि पिछौरा सोय=चादर फैलाकर सो जा, निश्चिंत हो जा।

रैदास

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—अज्ञात; कबीरदास के सम-सामयिक

जन्म-स्थान—काशी

जाति—चमार

पिता—रग्घू

माता—घुरबिनिया

गुरु—स्वामी रामानन्द

आश्रम—गृहस्थ

इतिवृत्त केवल इतना ही कि रैदासजी जाति के चमार थे और काशी के रहनेवाले। रैदासजी ने स्वयं ही अपने को काशी-वासी चमार-कुल का कहा है—

''जाके कुटुंब सब ढोर ढोवंत फिरहिं अजहुं बानारसी आसपासा।
आचारसहित बिप्र करहिं डंडउति तिन तनै रैदास दासानुदासा॥

कबीरदास के यह गुरु-भाई थे, अर्थात् स्वामी रामानन्द के शिष्य। भक्तमाल में वर्णित इनकी कथा अनेक चमत्कारों से भरी हुई है। चमार-कुल में जन्म लेने की कथा तो बड़ी ही विचित्र है, नाभाजी के मूल छप्पय में यद्यपि वैसा कोई उल्लेख नहीं है। टीका में लिखा है कि स्वामी रामानन्दजी का एक शिष्य एक ऐसे बनिये के घर से भिक्षा ले आया था, जिसका कारबार एक चमार के साथ था। स्वामीजी के ठाकुरजी ने उस दिन थाल स्वीकार नहीं किया। पूछने पर जब पता चला कि उनका ब्रह्मचारी शिष्य उस बनिये के यहां से सीधा लाया था, तब स्वामीजी ने शाप दिया कि 'जा चमार के यहां जन्म ले।' बेचारे ब्रह्मचारी ने चमारिन के गर्भ से जन्म तो ले लिया, पर उस अछूत के स्तनों का दूध नहीं पिया। जब स्वामी रामानन्द ने पूर्वजन्म के ब्राह्मण ब्रह्मचारी को राममंत्र का उपदेश किया, तब कहीं उसने माता के स्तनों का दूध पिया! पूर्वजन्म में की हुई अपनी उस महाभूल का स्मरण कर शिशु रैदास को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। इस विचित्र कथा के पीछे जो कल्पना हैं उसका इतना ही अर्थ समझा जाये कि चमार-कुलोत्पन्न जीव भगवान् का भक्त हो नहीं सकता; भक्ति पर तो द्विजाति का ही एकमात्र अधिकार है। रैदास की गणना इसीलिए भक्तों में हुई कि वे पूर्वजन्म के शापित ब्राह्मण थे। अंत्यजों

के प्रति द्वेषभाव किस सीमातक पहुंचा था, इसका स्पष्ट प्रमाण इस विचित्र कल्पित कथा में मिलता है। एक ऐसी ही दूसरी कथा के अनुसार रैदासजी ने एक दिन अपने पूर्वजन्म का ब्राह्मणत्व सिद्ध करने के लिए अपने शरीर की त्वचा उधेड़कर 'स्वर्ण-यज्ञोपवीत' सबको दिखलाया था।

रैदासजी गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी उच्चकोटि के विरक्त संत थे। जूते सीते-सीते ही उन्होंने ज्ञान-भक्ति का ऊंचा पद प्राप्त किया था।

प्रसिद्ध है कि चित्तौर की झाली नाम की एक रानी ने काशी में जाकर रैदासजी से गुरु-मंत्र लिया था। उसकी प्रार्थना पर वे चित्तौर भी गये थे। कहते हैं कि झाली महाराणा उदयसिंह की रानी थी, किन्तु इसका कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

मीरां बाई को भी रैदासजी की शिष्या कहा जाता है उनके कुछ पदों के आधार पर, जैसे—

> ''मेरो मन लाग्यो गुरु सों, अब न रहूंगी अटकी।
> गुरु मिलिया रैदासजी म्हान, दीनीं ग्यान की गुटकी॥''
> ''सतगुरु संत मिले रैदासा, दीनीं सुरत सहदानी।''

मीरां की अधिक-से-अधिक पद-रचना सगुणोपासना की होने के कारण, तथा काल की दृष्टि से परवर्ती होने से भी यह कथानक विवादास्पद है। मीरां बाई ने चैतन्य महाप्रभु का भी एक-दो पदों में गुरुवत् स्तवन किया है, जैसे—

> ''अब तो हरीनाम लौ लागी।
> सब जग को यह माखनचोरा, नामे धर्‌यौ बैरागी॥''
> कित छांड़ी वह मोहन मुरली, कित छांड़ीं वे गोपी।
> मूंड़ मुंड़ाइ डोरि कटि बांधी, माथे मोहन-टोपी॥
> मात जसोमति माखन कारन, बांधे जाके पांव।
> स्याम किसोर सोइ तन गोरा, चैतन्य जाको नांव॥
> पीतांबर को भाव दिखावै, कटि कोपीन कसै।
> गौर कृष्ण की दासी मीरां, रसना कृष्ण बसै॥''

इसी प्रकार मीरां बाई को कुछ विद्वानों ने बल्लभ-कुल की भी शिष्या माना है। इसका समाधान इस प्रकार हो जाता है कि रैदासजी के परवर्ती काल में होते हुए भी मीरां ने उनका पुण्य स्मरण 'सद्‌गुरु' के रूप में किया है, अथवा किसी रैदासी साधु के प्रति उसका गुरुभाव रहा हो।

रैदास के समसामयिक तथा परवर्ती संतों ने रैदास को एक बहुत बड़े हरिभक्त के रूप में स्वीकार किया था। स्वामी दादूदयाल के शिष्य रज्जबजी ने भगवद्-भक्ति के संबंध में तो यहांतक कहा है—

"आदि मिली जयदेव कूं, रैदास समानीं।"

रैदासजी का प्रभाव दूर-दूरतक फैला हुआ था, और आज भी भारत के अनेक प्रदेशों में उनके पंथ के अनुयायी रविदासी लाखों की संख्या में मिलते हैं। रैदासजी 'रविदास' नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

बानी-परिचय

रैदासजी की बानी के संबंध में नाभाजी की यह पंक्ति प्रसिद्ध है—

"सन्देह-ग्रन्थि-खंडन-निपुन वानि बिमल रैदास की।"

यह उनकी 'विमल' बानीं का ही प्रभाव था कि—

"वर्नाश्रम-अभिमान तजि पद-रज बंदहिं जासकी।"

महात्मा रैदास की बड़े ऊंचे घाट की बानी है। प्रेमपराभक्ति का कई शब्दों में बड़ा ही विशद निरूपण उन्होंने किया है। समता और सदाचार पर बहुत बल दिया है। भक्ति-रस का ऐसा सुन्दर परिपाक अन्यत्र कम देखने में आता है। खंडन-मंडन की ओर उनका ध्यान नहीं था। सत्य की शुद्ध निर्मल अभिव्यक्ति ही, अपरोक्षानुभूति ही उनका परम ध्येय था। भाषा ने भी भाव का मूक अनुसरण किया है। अनेक जनपदों के शब्दों का उनकी बानी में समावेश हुआ है, फिर भी रस एकरस ही सर्वत्र प्रवाहित दीखता है।

आधार

१ श्री गुरु ग्रन्थ साहब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ रैदास—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
३ भक्तमाल—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
४ भगवान रविदास की सत्य कथा—महात्मा रामचरण कुरील, कानपुर

●

रैदास

शब्द

भैरव

बिनु देखे उपजै नहिं आसा।
जो दीसै सो होइ बिनासा॥
बरन सहित जो जापै नामु।
सो जोगी केवल निहकामु॥
परचै रामु रंवै जो कोई।
पारसु परसै न दुबिधा होई॥
सो मुनि, मन की दुबिधा खाइ।
बिनु द्वारे त्रैलोक समाइ॥
मन का सुभाव सब कोई करै।
करता होइ सु अनभै रहै॥
फल कारन फूली वनराइ।
फलु लागा तब फूल बिल्हाइ॥
ग्यानै कारन कर अभ्यासू।
ग्यान भया तहं करमह नासू॥
घृत कारन दधि मथै सयान।
जीवत मुकत सदा निरबान॥
कहि रविदास परम बैराग।
रिदै रामु को न जपिसि अभाग॥१॥

शब्द

१. दीसै=दीखता है। निहकामु=निष्काम, कामना-रहित। रँव=रमण करता है, प्रत्यक्ष अनुभव करता है। पारसु=ब्रह्मरस से तात्पर्य है। दुविधा=द्वैतभाव। सो मुनि...खाइ=जिसके मन में द्वैतभाव का लेश भी नहीं रहा, उसे ही 'मुनि' कहना चाहिए। बिनु...समाइ=उस मुनि को त्रिलोक का ज्ञान, बाह्य साधनों के बिना ही, प्राप्त हो जाता है। अनभै रहै=अनुभव-ज्ञान पर स्थित रहता है; अथवा, निर्भय रहता है। बनराइ=वृक्षावली। बिल्हाइ=लुप्त हो जाता है। निरबान=मुक्त। रिदै=हृदय में।

मलार

मिलत पियारो प्राननाथ कवनि भगति।
साध-संगति पाई परम गति॥
मैले कपरे कहां लउ धोवउ।
आवैगी नींद कहां लउ सोवउं॥
जोई-जोई जोर्‌यो सोई-सोई फाट्‌यो।
झूठे बनजि उठि ही गई हाट्‌यो॥
कहि रविदास भयो जब लेख्यो।
जोई-जोई कीन्यो सोई-सोई देख्यो॥२॥

बिलाबल

जिहि कुल साधु बैसनौ होइ।
बरन अबरन रंक नहीं ईस्वर, बिमल बासु जानिये जग सोइ॥
बांभन बैस सूद अरु ख्यत्री डोम चंडाल मलेच्छ किन सोइ।
होइ पुनीत भगवंत भजन ते आपु तारि तारै कुल दोइ॥
धनि सु गांउ धनि धनि सो ठाऊं, धनि पुनीत कुटंब सभ लोइ।
जिनि पिया सार-रस तजे आन रस होइ रसमगन डारे बिषु खोइ॥
पंडित सूर छत्रपति राजा भगत बराबरि औरु न कोइ।
जैसे पुरैन-पात जल रहै समीप भनि रविदास जनमे जगि ओइ॥३॥

राग मारू

ऐसी लाल, तुझ बिनु कौन करै।
गरीबनिवाजु गुसैयां, मेरे माथे छत्र धरै॥
जाकी छोति जगत कौं लागै, तापर तुही ढरै।
नीचहिं ऊंच करै मेरा गोबिंदु, काहू ते न डरै॥

---

२. परमगति=मोक्ष। जोर्‌यो=संबंध जोड़ा। फाट्‌यो=बिछड़ गया। बनजि=व्यापार। हाट्‌यो=हाट, पेठ।

३. बैसनौ=वैष्णव, हरि-भक्त। ईस्वर=राजा से अभिप्राय है। ख्यत्री=क्षत्रिय। किन=क्यों न। लोइ=लोग। सार-रस=प्रेम-लक्षणा भक्ति से आशय है। आन-रस=विषय-भोग। पुरैन-पात=कमल का पत्ता, जो जल में रहते हुए भी भींगता नहीं। जनमे जगि ओइ=जगत् में उसीका जन्म लेना सार्थक है।

नामदेव, कबीर, तिलोचन, सधना, सैनु तरै।
कहि रविदास सुनहु रे संतो, हरि-जीउ ते सभै सरै ॥४॥

सुखसागर सुरतरु, चिंतामनि कामधेनु बसि जाके, रे।
चारि पदारथ, असट महासिधि, नवनिधि करतल ताके, रे।
हरि हरि हरि न जपसि रसना।
अवर सभ छाड़ि वचन रचना ॥
नाना ख्यान पुरान बेद बिधि चौतीस अच्छर माहीं।
ब्यास बिचारि कह्यो परमारथ रांम-नांम सरि नाहीं ॥
सहज समाधि उपाधि-रहित होइ बड़े भागि लिव लागी।
कहि रविदास उदास दासमति जनम-मरन-भय भागी ॥५॥

राग सूही

सह की सार सुहागनि जानै।
तजि अभिमान सुख रलिया मानै ॥
तनु मनु देइ न सुनै अंतर राखैं।
अवरा देखि न सुनै न माखै ॥
सो कत जानै पीर पराई।
जाकै अंतर दरद न पाई ॥
दुखी दुहागनि दुइ पखहीनी।
जिनि नाह निरंतरि भगति न कीनी ॥
राम-प्रीति का पंथ दुहेला।
संगि न साथी गवन अकेला ॥
दुखिया दरदमंद दरि आया।
बहुते प्यास जबाब न पाया ॥
कहि रविदास सरनि प्रभु तेरी।
ज्यूं जानहु त्यूं करु गति मेरी ॥६॥*

---

४. गुसैयाँ=स्वामी। छत्र=राजछत्र। छोति=छूत। ढरै=कृपा करता है। तिलोचन=त्रिलोचन नामका एक भक्त। सदना=सदन नामका एक कसाई भक्त। सैन=सेन भक्त, जो जाति का नाई था।

५. बसि=वश में। करतल=हाथ में, अधीन। असट=अष्ट, आठ। ख्यान=आख्यान, कथाएँ। सरि=बराबर। लिव=लौ। उदास=विरक्त। दास-मति=भक्त-बुद्धि से।

६. सह=मिलन। सार=सेज का सुख; आनन्द-तत्त्व। सुख रलिया=एकाकार हो जाने का

सूही

जो दिन आवहि सो दिन जाही।
करना कूच रहन थिरु नाही॥
संगु चलत हैं हम भी चलना।
दूरि गवनु सिर ऊपरि मरना॥
क्या तू सोया जाग अयाना।
तै जीवन जगि सचु करि जाना॥
जिनि दिया सु रिजकु अंबरावै।
सभ घट भीतरि हाटु चलावै॥
करि बंदिगी छांडि मैं मेरा।
हिरदै नामु सम्हारि सवेरा॥
जनमु सिरानो पंथु न संवारा।
सांझ परी दह दिसि अंधियारा॥
कह रविदास नदान दिवाने!
चेतसि नाही दुनिया फनखाने॥७॥
ऊंचे मंदिर, सालि रसोई।
एक घरी पुनि रहन न होई॥
इह तनु ऐसा जैसे घास की टाटी।
जलि गयो घास रलि गयो माटी॥

आनन्द। अवरा=अन्य। दुहागनि=अभागिनी। दुइपखहीनी=लोक परलोक जिसके दोनों बिगड़ गये। नाह=नाथ, स्वामी। दुहेला=कठिन, दुःखदायी।

*इस पद का यह भी पाठ-भेद है :

सो कहा जानै पीर पराई। जाके दिल में दरद न आई॥
दुखी दुहागिनि होइ पिय हीना। नेह निरति करि सेवन कीना॥
स्याम प्रेम का पंथ दुहेला। चलन अकेला कोइ संग न हेला॥
सुख की सार सुहागिनि जानै। तन मन देय अंतर नहि आनै॥
आन सुनाय और नहिं भाषै। राम रसायन रसना चाषै॥
खालिक तौ दरमंद जगाया। बहुत उमेद जबाब न पाया॥
कह रैदास कवन गति मेरी। सेवा बंदगी न जानूँ तेरी॥

७. रिजक=रोज़ी, जीविका। अंबरावै=जुटाता है। हाटु=पेठ, लेन-देन। सम्हारि=स्मरण कर। सवेरा=जल्दी। दह=दस। नदान=नादान, मूर्ख। फनखाने=नाशवान्।

भाई बंधरु कुटंब सहेरा।
ओइ भी लागे काढु सवेरा॥
घर की नारि उरहि तन लागी।
उह तौ भूतु भूतु करि भागी॥
कहि रविदास सबै जग लूट्या।
हम तौ एक राम कहि छूट्या॥८॥

धनाश्री

चित सिमरन करौ नैन अवलोकनो,
स्रवन बानी सुजसु पूरि राखौं।
मनु सु मधुकरु करौं चरण हिरदे धरौं,
रसन अमृत रामनाम भाखौं॥
मेरी प्रीति गोबिंद सिउ जनि घटै।
मैं तौ मोलि महंगी लई जीउ सटै॥
साध संगति बिना भाव नहिं ऊपजै,
भाव बिन भगति नहिं होय तेरी।
कहै रविदास एक बेनती हरि सिउ
पैज राखहु राजाराम मेरी॥६॥

जैतिश्री

नाथ, कछुवै न जानउ।
मनु माया कै हाथि बिकानउ॥
तुम कहियत हो जगतगुर स्वामी।
हम कहियत कलिजुग के कामी॥
इन पंचन मेरो मन जु बिगार्‍यो।
पलु पलु हरिजी ते अंतरु पार्‍यो॥
जित देखौ तित दुख की रासी।
अजौं न पत्याइ निगम भये साखी॥
इन दूतन खलु बध करि मार्‍यो।
बड़ो निलाजु अजहु नहिं हार्‍यो॥

---

८. सालि=चावल; मधुर अन्न। रलिगयो=मिल गया। सहेरा=सहेला, सखा।

६. पूरि राखौं=भरलूँ। रसन=रसना, जिह्वा। जीव सटै=प्राणों के मोल। पैज=टेक।

कहि रविदास कहा कैसे कीजै।
बिनु रघुनाथ सरनि काकी लीजै ॥१०॥

गौरी

मेरी संगति पोच सोच दिनु राती।
मेरा करम-कुटिलता जनमु कुभांती ॥
राम गुसइयां जीउ के जीवना।
मोहिं न बिसारहु मैं जनु तेरा ॥
हरहु बिपति जन करहु सुभाई।
चरण न छाडौं सरीर कल जाई ॥
कहि रविदास परौं तेरी साभा।
बेगि मिलहु जन करि न बिलांबा ॥११॥

गौरी पूरबी

कूप पर्‌यो जैसे दादिरा कछु देसु बिदेसु न बूझ।
ऐसे मेरा मनु बिख्या बिमोह्या कछु आरापारु न सूझ ॥
सगल भवन के नायक इकु छिनु दरसु दिखाइ ॥
मलिन भई मति माधवा तेरी गति लखी न जाय।
करहु कृपा भ्रम चूकई मैं, सुमति देहु समझाय ॥
जोगीसुर पावहिं नहीं तुउ गुण कथनु अपार।
प्रेम-भगति कै कारणै कहि रबिदास चमार ॥१२॥

रामकली

गाइ गाइ अब का कहि गाऊं।
गावनहार को निकट बताऊं ॥
जबलगि है इहि तन की आसा, तबलगि करै पुकारा।
जब मन मिल्यौ आस नहिं तन की, तब को गावनहारा ॥
जबलगि नदी न समुंद्र समावे, तबलगि बढ़ै हंकारा।
जब मन मिल्यौ रामसागर सौं, तब यह मिटी पुकारा ॥

---

१०. अंतर पार्‌यौ=भेद डाल दिया। पत्याइ=विश्वास करता है। निगम=वेद। साखी=साक्षी, गवाह।

११. पोच=नीच। कल=भले कल ही।

१२. दादिरा=दादुर, मेंढ़क। आरापारु=आरपार। बिख्या=विषयों के। सगल=सकल।

जबलगि भगति मुकति की आसा, परमतत्त्व सुनि गावै।
जहं जहं आस धरत है इहि मन, तहं-तहं कछू न पावै॥
छांड़ै आस निरास परमपद, तब सुख सति कर होई।
कहि रैदास जासौं और करत है, परमतत्त्व अब सोई॥१३॥

राग रामकली

राम-भगत को जन न कहाऊं, सेवा करूं न दासा।
जोग जग्य गुन कछू न जानूं, ताते रहूं उदासा॥
भगत भया तो चढ़ै बड़ाई, जोग करूं जग मानै।
जो गुन भया तौ कहैं गुनी जन, गुनी आपको जानै॥
ना मैं ममता मोह न महिया, ये सब जाहिं बिलाई।
दोजख भिस्त दोउ सम करि जानूं, दुहुं ते तरक है भाई॥
मैं अरु ममता देखि सकल जग, मैं से मूल गवांई।
जब मन ममता एक-एक मन, तबहि एक है भाई॥
कृस्न करीम राम हरि राघव, जबलगि एक न पेखा।
बेद कितेब कुरान पुरानन, सहज एक नहिं देखा॥
जोइ-जोइ पूजिय सोइ-सोई कांची, सहज भाव सति होई।
कहि रैदास मैं ताहि को पूजूं, जाके ठांव नांव नहिं होई॥१४॥

राग रामकली

नरहरि, चंचल है मति मेरी। कैसे भगति करूं मैं तेरी॥
तूं मोहिं देखै हौं तोहि देखूं, प्रीति परस्पर होई।
तूं मोहिं देखै तोहि न देखूं, यह मति सब बुधि खोई॥
सब घट अंतर रमसि निरंतर, मैं देखन नहिं जाना।
गुन सब तोर मोर सब औगुन, कृत उपकार न माना॥
मैं तैं तोरि मोरि असमझि सों, कैसे करि निस्तारा।
कहि रैदास कृस्न करुनामय, जै जै जगत-अधारा॥१५॥

---

१३. हँकारा=अहंकार। सति कर=सत्य का, निश्चय ही। निरास=तृष्णा-रहित, अनासक्त।

१४. बड़ाई=महिमा। महिंया=मथा। भिस्त=बहिश्त, स्वर्ग। तरक=असहकार, त्याग।

१५. रमसि=रमता है, व्यापक है। कृत=किया हुआ। असमझि=अज्ञान, भ्रान्ति।

राग रामकली

जब राम नाम कहि गावैगा, तब भेद अभेद समावैगा ॥
जे सुख है इहि रस के परसे, सो सुख का कहि गावैगा ॥
गुरुपरसाद भई अनुभौ मति, विष अंम्रित सम धावैगा ॥
कहि रैदास मेटि आपा पर, तब उहि ठौरहिं पावैगा ॥१६॥

राग रामकली

भगती ऐसी सुनहु रे भाई। आइ भगति तब गई बड़ाई ॥
कहा भयो नाचे अरु गाये, कहा भयो तप कीन्हें।
कहा भयो जे चरन पखारे, जौंलौं तत्त्व न चीन्हें ॥
कहा भयो जे मूंड मुंड़ायो, कहा तीर्थ व्रत कीन्हें।
स्वामी दास भगत अरु सेवक, परम तत्त्व नहिं चीन्हें ॥
कहि रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सों पावै।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक है चुनि खावै ॥१७॥

राग जंगली गौड़ी

अब हम खूब वतन घर पाया। ऊंचा खेर सदा मेरे भाया।
बेगमपूर सहर का नाम। फिकर अंदेस नहीं तेहि ग्राम ॥
नहिं जहं सांसत लानत मार। हैफ न खता न तरस जवाल ॥
आव न जान, रहम औजूद। जहां गनी आप बसै माबूद ॥
जोई सैलि करै सोई भावै। महरम महल में को अटकावै ॥
कहि रैदास खलास चमारा। जो उस सहर सो मीत हमारा ॥१८॥

---

१६. भेद अभेद समावैगा=सारा मायाकृत द्वैतभाव तब अद्वैतभाव में लय हो जायेगा। इहिरस=अद्वैतभाव का आनन्द। धावैगा=समझेगा। आपापर=यह अपना है, और वह पराया; द्वैतभाव।

१७. पिपिलक=पिपीलिका, चींटी। धूल में शकर मिल गई हो तो चींटी ही शकर को अलग करके खा सकती है, यह कार्य हाथी नहीं कर सकता है। रस-प्राप्ति के लिए नन्हें-से-नन्हा बनने की आवश्यकता है।

१८. खेर=खेड़ा, गाँव। बेगमपूर=जहाँ पहुँचने की गति नहीं। अँदेस=डर। साँसत=पीड़ा। लानत=भर्त्सना। हैफ=अफसोस। खता=धोखा, चूक। जवाल=झंझट। औजूद=वजूद, अस्तित्व। गनी=धनी। माबूद=पूज्य, इष्टदेव। महरम=असली भेद का जाननेवाला, रहस्य से सुपरिचित।

राम मैं पूजा चढ़ाऊं। फल अरु फूल अनूप न पाऊं॥
थनहर दूध जो बछरू जुठारी। पुहुप भंवर जल मीन बिगारी॥
मलयागिरि बेधियो भुअंगा। विष अंम्रित दोउ एकै संगा॥
मनही पूजा मनही धूप। मनही सेऊं सहज सरूप॥
पूजा अरचा न जानूं तेरी। कहि रैदास कवन गति मेरी॥१६॥

राग सोरठ

जो तुम तोरौ राम मैं नहिं तोरौं।

तुम सों तोरि कवन सों जोरौं॥
तीरथ बरत न करौं अंदेसा। तुम्हरे चरनकमल का भरोसा॥
जहं-जहं जावौं तुम्हरी पूजा तुम सा देव और नहिं दूजा॥
मैं अपनो मन हरि सों जोर्‌यो। हरि सों जोरि सबन सों तोर्‌यो॥
सबहीं पहर तुम्हारी आसा। मन क्रम बचन कहै रैदासा॥२०॥

थोथो जनि पछोरौ रे कोई।

जोई रे पछोरौ जा में निज कन होई॥
थोथी काया थोथी माया। थोथा हरि बिन जनम गंवाया॥
थोथा पंडित थोथी बानी। थोथी हरि बिन सबै कहानी॥
थोथा मंदिर भोग बिलासा। थोथी आन देव की आसा॥
सांचा सुमिरन नाम-बिसासा। मन बच कर्म कहै रैदासा॥२१॥

राग भैरो

भेष लियो पै भेद न जान्यो। अमृत लेइ बिषै सों सान्यो॥
काम क्रोध में जनम गंवायो। साधु-संगति मिलि राम न गायो॥
तिलक दियो पै तपनि न जाई। माला पहिरे घनेरी लाई॥
कहि रैदास मरम जो पाऊं। देव निरंजन सत करि ध्याऊं॥२२॥

राग बिलावल

मैं बेदनि कासनि आखूं,

हरि बिन जिव न रहै कस राखूं॥

१६. थनहर=थन से दुहा हुआ। पुहप=पुष्प, फूल। मलयागिरि=मलयगिरि का चंदन।
२१. थोथो=पोला, निस्सार। पछोरना=फटकना, सूप में रखकर अन्न साफ़ करना। निजकन=आत्म-सुख-कणों से आशय है। बिसासा=विश्वास।

जिव तरसै ल्यौं आसरु तेरा, करहु संभाल न सुर मुनि मेरा ॥
बिरह तपै तन अधिक जरावै, नींद न आवै भोज न भावै ॥
सखी सहेली गरब गहेली, पिउ की बात न सुनहु सहेली।
मैं रे दुहागिनि अघ करि जानी, गया सो जोवन साध न मानी ॥
तूं सांई औ साहिब मेरा, खिजमतगार बंदा मैं तेरा।
कहि रैदास अंदेसा येही, बिन दरसन क्यों जिवहि सनेही ॥२३॥

राग कानड़ा

चल मन, हरि-चटसाल पढ़ाऊं।
गुरु की साटि ग्यान का अच्छर,
बिसरै तौ सहज समाधि लगाऊं ॥
प्रेम की पाटी सुरति की लेखनि,
ररौ ममौ लिखि आंक लखाऊं।
इहि बिधि मुक्त भये सनकादिक,
रिंदै विचार-प्रकास दिखाऊं ॥
कागद कंवल, मति मसि करि निर्मल,
बिन रसना निसिदिन गुन गाऊं।
कहि रैदास, राम भजु भाई,
संत साखि दे बहुरि न आऊं ॥२४॥

राग गौड़

आज दिवस लेऊं बलिहारा।
मेरे घर आया राम का प्यारा ॥टेक॥
आंगन बंगला भवन भयो पावन।
हरिजन बैठे हरिजस गाबन ॥
करूं डंडवत, चरन पखारूं।
तन मन धन उन ऊपरि वारूं ॥

---

२३. वेदनि=वेदना, पीड़ा। आखूँ=कहूँ। भोज=भोजन। आसरु=आश्रय, शरण। दुहागिनि=अभागिनी। अघ करि जानी=पाप करना ही जाना।

२४. चटसाल=पाठशाला। साटि=छड़ी। पाटी=तख्ती। ररौ ममौ=रकार, मकार यही दो अक्षर अर्थात् राम। कँवल=हृदय-कमल से आशय है। मति-मसि=बुद्धिरूपी स्याही। बहुरि न आऊँ=फिर जनम न लूँ।

राम मैं पूजा चढ़ाऊं। फल अरु फूल अनूप न पाऊं॥
थनहर दूध जो बछरू जुठारी। पुहुप भंवर जल मीन बिगारी॥
मलयागिरि बेधियो भुअंगा। विष अंम्रित दोउ एकै संगा॥
मनही पूजा मनही धूप। मनही सेऊं सहज सरूप॥
पूजा अरचा न जानूं तेरी। कहि रैदास कवन गति मेरी॥१६॥

राग सोरठ

जो तुम तोरौ राम मैं नहिं तोरौं।
तुम सों तोरि कवन सों जोरौं॥
तीरथ बरत न करौं अंदेसा। तुम्हरे चरनकमल का भरोसा॥
जहं-जहं जावौं तुम्हरी पूजा तुम सा देव और नहिं दूजा॥
मैं अपनो मन हरि सों जोर्‌यो। हरि सों जोरि सबन सों तोर्‌यो॥
सबहीं पहर तुम्हारी आसा। मन क्रम बचन कहै रैदासा॥२०॥

थोथो जनि पछोरौ रे कोई।
जोई रे पछोरौ जा में निज कन होई॥
थोथी काया थोथी माया। थोथा हरि बिन जनम गंवाया॥
थोथा पंडित थोथी बानी। थोथी हरि बिन सबै कहानी॥
थोथा मंदिर भोग बिलासा। थोथी आन देव की आसा॥
सांचा सुमिरन नाम-बिसासा। मन बच कर्म कहै रैदासा॥२१॥

राग भैरो

भेष लियो पै भेद न जान्यो। अमृत लेइ बिषै सों सान्यो॥
काम क्रोध में जनम गंवायो। साधु-संगति मिलि राम न गायो॥
तिलक दियो पै तपनि न जाई। माला पहिरे घनेरी लाई॥
कहि रैदास मरम जो पाऊं। देव निरंजन सत करि ध्याऊं॥२२॥

राग बिलावल

मैं बेदनि कासनि आखूं,
हरि बिन जिव न रहै कस राखूं॥

---

१६. थनहर=थन से दुहा हुआ। पुहप=पुष्प, फूल। मलयागिरि=मलयगिरि का चंदन।

२१. थोथो=पोला, निस्सार। पछोरना=फटकना, सूप में रखकर अन्न साफ़ करना। निजकन=आत्म-सुख-कणों से आशय है। बिसासा=विश्वास।

जिव तरसै ल्यौं आसरु तेरा, करहु संभाल न सुर मुनि मेरा ॥
बिरह तपै तन अधिक जरावै, नींद न आवै भोज न भावै ॥
सखी सहेली गरब गहेली, पिउ की बात न सुनहु सहेली।
मैं रे दुहागिनि अघ करि जानी, गया सो जोवन साध न मानी ॥
तूं सांईं औ साहिब मेरा, खिजमतगार बंदा मैं तेरा।
कहि रैदास अंदेसा येही, बिन दरसन क्यों जिवहि सनेही ॥२३॥

राग कानड़ा

चल मन, हरि-चटसाल पढ़ाऊं।
गुरु की साटि ग्यान का अच्छर,
बिसरै तौ सहज समाधि लगाऊं ॥
प्रेम की पाटी सुरति की लेखनि,
ररौ ममौ लिखि आंक लखाऊं।
इहि बिधि मुक्त भये सनकादिक,
रिंदै विचार-प्रकास दिखाऊं ॥
कागद कंवल, मति मसि करि निर्मल,
बिन रसना निसिदिन गुन गाऊं।
कहि रैदास, राम भजु भाई,
संत साखि दे बहुरि न आऊं ॥२४॥

राग गौड़

आज दिवस लेऊं बलिहारा।
मेरे घर आया राम का प्यारा ॥टेक॥
आंगन बंगला भवन भयो पावन।
हरिजन बैठे हरिजस गावन ॥
करूं डंडवत, चरन पखारूं।
तन मन धन उन ऊपरि वारूं ॥

---

२३. वेदनि=वेदना, पीड़ा। आखूँ=कहूँ। भोज=भोजन। आसरु=आश्रय, शरण। दुहागिनि=अभागिनी। अघ करि जानी=पाप करना ही जाना।

२४. चटसाल=पाठशाला। साटि=छड़ी। पाटी=तख्ती। ररौ ममौ=रकार, मकार यही दो अक्षर अर्थात् राम। कँवल=हृदय-कमल से आशय है। मति-मसि=बुद्धिरूपी स्याही। बहुरि न आऊँ=फिर जन्म न लूँ।

कथा कहैं अरु अर्थ विचारैं।
आप तरैं, औरन कों तारैं॥
कहि रैदास मिलैं निज दासा।
जनम-जनम कै काटैं पासा॥२५॥

राग केदारा

कहु मन रामनाम संभारि।
माया के भ्रम कहा भूल्यो, जाहुगे कर झारि॥
देखि धौं इहां कौन तेरो, सगा सूत नहिं नारि।
तोरि उतंग सब दूरि करिहैं, देहिंगे तन जारि॥
प्रान गये कहो कौन तेरा, देखि सोचि बिचारि।
बहुरि इहि कलिकाल माहीं, जीति भावै हारि॥
यहु माया सब थोथरी रे, भगति दिस प्रति हारि।
कहि रैदास सत बचन गुरु के, सो जिव ते न बिसारि॥२६॥

राग धनाश्री

मैं का जानूं देव, मैं का जानूं।
मन माया के हाथ बिकानूं॥
चंचल मनुवां चहूंदिसि धावै।
पांचौं इंद्री थिर न रहावै॥
तुम तौ आहि जगतगुरु स्वामी।
हम कहियत कलिजुग के कामी॥
लोक बेद मेरे सुकृत बड़ाई।
लोक लीक मोपै तजी न जाई॥
इन मिलि मेरा मन जो बिगार्‌यो।
दिन-दिन हरि सों अंतर पार्‌यो॥
सनक सनंदन महामुनि ग्यानी।
सुख नारद अरु ब्यास बखानी॥
गावत निगम उमापति स्वामी।
सेस सहसमुख कीरति-गामी॥

---

२५. पासा=(कर्म के) फंदे।

२६. कर धारि=हाथ झाड़कर खाली हाथ। सूत=सुत, पुत्र। उतंग=नाता। भावै=चाहे, अथवा। थोथरी=खोखली, सारहीन। भगति...हारि=अपना सर्वस्व भक्ति की बाजी पर हार दे।

जहं जाऊं तहं दुख की रासी।
जो न पतियाइ साधु हैं साखी॥
जमदूतन बहु बिधि करि मार्यो।
तऊ निलज अजहूं नहिं हार्यो॥
हरिपद-बिमुख आस नहिं छूटै।
ताते तृस्ना दिन दिन लूटै॥
बहु विधि करम लिये भटकावै।
तुम्हें दोष हरि कौन लगावै॥
केवल रामनाम नहिं लीया।
संतत विषय-स्वाद चित दीया॥
कहि रैदास कहांलगि कहिये।
बिन रघुनाथ बहुत दुख सहिये॥२७॥

राग धनाश्री

जन को तारि तारि बाप रमइया।
कठिन फंद पर्यो पंच जमइया॥
तुम बिन सकल देव मुनि ढूंढूं,
कहूं न पाऊं जमपास छुड़इया॥
हम से दीन दयाल न तुम से,
चरन-सरन रैदास चमइया॥२८॥

राग धनाश्री

दरसन दीजे राम दरसन दीजे।
दरसन दीजै बिलंब न कीजै॥
दरसन तोरा जीवन मोरा। बिन दरसन क्यूं जिवै चकोरा॥
माधो सतगुरु सब जग चेला। अब के बिछुरे मिलन दुहेला॥
धन जोबन की झूठी आसा। सत सत भाषै जन रैदासा॥२९॥

आरती

अब कैसे छूटै नामरट लागी।
प्रभुजी तुम चंदन हम पानी। जाकी अंग-अंग बास समानी॥

---

२७. लीक=मर्यादा, नियम। उमापति=शिव। गामी=यहाँ 'गायक' यह अर्थ लिया जायेगा। संतत=सदा।

२८. रमइया=राम। जमइया=यम। चमइया=चमार।

२९. दुहेला=कठिन।

प्रभुजी तुम घनबन हम मोरा। जैसे चितवत चंद चकोरा ॥
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरै दिनराती ॥
प्रभुजी तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहिं मिलत सुहागा ॥
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥३०॥

प्रभुजी तुम संगति सरन तिहारी।
जग जीवन राम मुरारी ॥
गली-गली को जल बहि आयो, सुरसरि जाय समायो।
संगति के परताप महातम, नाम गंगोदक पायो ॥
स्वांति बूंद बरसै फनि ऊपर, सोहि बिषै होइ जाई।
ओहि बूंद कै मोती निपजै, संगति की अधिकाई ॥
तुम चंदन हम रेंड बापुरे, निकट तुम्हारे आसा।
संगति के परताप महातम, आवै बास सुबासा ॥
जाति भी ओछी करम भी आछा, ओछा कसब हमारा।
नीचै से प्रभु ऊंच कियो है, कहि रैदास चमारा ॥३१॥

साखी

हरि-सा हीरा छांड़िकै, करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास ॥१॥
अंतरगति राचैं नहीं, बाहर कथैं उदास।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास ॥२॥
जा देखे घिन ऊपजै, नरककुण्ड में बास।
प्रेमभगति सों ऊधरे, प्रगटत जन रैदास ॥३॥
रैदास राति न सोइये, दिवस न करिये स्वाद।
अहनिसि हरिजो सुमिरिये, छांड़ि सकल प्रतिवाद ॥४॥
सब सुख पावैं जासुतें, सो हरिजू को दास।
कोउ दुख पावैं जासुतें, सो न दास हरिदास ॥५॥

---

३०. बास=सुगन्ध।

३१. फनि=साँप। विषै=विष ही। निपजै=पैदा होता है। अधिकाई=बड़ाई, महिमा। रेंड=रँडी, अरंड। कसब=पेशा।

साखी

२. राचै=प्रेम से रँगे। उदास=वैराग्य की बात।

३. ऊधरे=उद्धार हो गया।

४. प्रतिवाद=बकवास, झंझट।

गुरु-बानी

''आदि ग्रन्थ'' या ''गुरु ग्रन्थ साहिब'' में ६ सिक्ख गुरुओं की बानी संगृहीत है। पांचवें गुरु अर्जुनदेव ने आदिगुरु बाबा नानकदेव की बानी से लेकर अपनी निज की बानीतक को संग्रह कराके भाई गुरुदास के द्वारा गुरमुखी लिपि में लिखवाया था। इस महान् संग्रह को आदि ग्रन्थ अथवा गुरु ग्रन्थसाहिब नाम दिया गया। आदि ग्रन्थ का संकलन भादों सुदी १ संवत् १६६१ को संपूर्ण हुआ। कहते हैं कि कुछ कोरे पन्ने उन्होंने इस विश्वास से छोड़वा दिये थे कि नवें गुरु की जो रचनाएं होंगी, उनको उन पन्नों पर विभित्र रागों के अनुसार भविष्य में लिखा जायगा।

गुरु नानक के पश्चात् जिन परवर्ती गुरुओं ने समय-समय पर रचनाएं कीं उनके अंत में अति नम्रभावना से प्रेरित होकर अपने नाम न देकर 'नानक' ही सबने नाम दिया है। यह कठिनाई देखकर कि लोग आखिर कैसे पहचानेंगे कि कौन रचना किस गुरु की है, गुरु अर्जुनदेव ने उस-उस रचना के ऊपर 'महला १' 'महला २' 'महला ३' आदि संकेत लिखा दिये, जिनका अर्थ यह हुआ कि 'महला १' की बानी गुरु नानकदेव की है, 'महला २' की बानी गुरु अंगद की है, 'महला ३' की बानी गुरु अमरदास की है, 'महला ४' की बानी गुरु रामदास की है, 'महला ६' की बानी गुरु अर्जुन की है और 'महला ९' की बानी गुरु तेगबहादुर की है। छठे, सातवें और आठवें गुरु ने कोई रचना नहीं की। 'महला' या महल्ला आदिग्रन्थरूपी नगर के मानों भिन्न-भिन्न भाग हैं।

इन सब बानियों को गुरुओं के क्रमानुसार न देकर गुरु ग्रन्थ साहिब में निम्नलिखित ३१ रागों के अनुसार संकलित किया गया है—

सिरी (श्री), गउड़ी, आसा, गूजरी, देव गंधारी, बिहागड़ा, वड़हंस, सोरठि, धनासरी, टोडी, बैराड़ी, तिलंग, सूही, विलावलु, गौंड़, रामकली, नट-नाराइन, गाउड़ा, मारू, तुखारी, केदारा, भैरउ, बसंत, सारंग, मलार, कानड़ा, कलिआन, प्रभाती और जैजावंती।

किन्तु बाबा नानक-रचित जपुजी, सो दरु, सुणि वड्डा और सोहिला इनको रागों में नहीं बांधा गया है।

इन छह गुरुओं की बानी के अलावा कबीर, नामदेव, रविदास, त्रिलोचन, शेख फरीद आदि कुछ भगतों की भी बानियां प्रत्येक राग के अंत में संगृहीत हैं।

गुरु नानक, गुरु अंगद और गुरु अमरदास की रचनाएं प्रायः पंजाबी भाषाबहुल हैं।

गुरु रामदास की रचनाओं की भाषा कुछ पंजाबी और बहुत-कुछ हिन्दी है। गुरु अर्जुन की भाषा में अपेक्षाकृत हिन्दी के अधिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। नवें गुरु तेगबहादुर की सारी रचनाएं शुद्ध हिंदी में है। गुरु नानक के नाम से आज हिंदी-पद-संगृहों में जितने भी पद मिलते हैं, उनमें से अधिकांश नवें गुरु तेगबहादुर के रचे हुए हैं।

दसवें गुरु श्री गोविंद राय (सिंह) के भी नाम का एक 'ग्रन्थ' है, जिसे उनकी मृत्यु के पश्चात् भाई मानीसिंह ने संकलित किया था। इसमें गुरु गोविंदसिंह की इन रचनाओं को संगृहीत किया गया है—जापजी, अकाल उस्तत, वचित्तर नाटक, देवी माहात्म्य, ज्ञान परबोध, त्रिया चरित्तर और ज़फर नामा।

प्रस्तुत ग्रन्थ में हमने केवल गुरु ग्रन्थ साहिब में से ही उक्त छहों गुरुओं की बानियों से पदों व सलोकों का संकलन किया है।

गुरु नानकदेव का जपुजी सबसे अधिक प्रसिद्ध है और यह बड़ी उत्कृष्ट रचना है। इनका 'सो दरु' पद और 'सोहिला' भी बड़े भक्ति-भाव से गाये जाते हैं। गुरु नानक की 'आसा दी वार' भी काफी प्रसिद्ध है।

गुरु अंगद की रची केवल 'बारें' हैं, जो माझु, सोरठि, सूही, रामकली सारंग आदि कई रागों में गाई जाती हैं।

गुरु अमरदास की 'आनन्दु' नामक रचना बड़ी मनोहारिणी और आह्लाद-कारिणी है। उत्सवों पर 'आनन्दु' बड़े चाव से गाया जाता है।

गुरु रामदास के भी अनेक भावपूर्ण पद, वारें और छंद हैं। सो पुरखु पद इनका बहुत प्रसिद्ध है।

गुरु अर्जुन की 'सुखमनी' तो लाखों के कंठ की मणिमाला बनी हुई है। बड़ी ऊंची रचना है। इसके अतिरिक्त, गुरु अर्जुन के रचे हज़ारों भक्ति-भावपूर्ण पद हैं।

गुरु तेगबहादुर के पदों और सलोकों में संसार की अनित्यता एवं वैराग्य की तीव्र अभिव्यंजना हुई है। बड़े भाव से सिक्ख इन सलोकों का पाठ मृतक-संस्कार के अवसर पर करते हैं।

'जपुजी' का पाठ प्रातःकाल किया जाता है। इसके बाद प्रायः 'आसा दी बार' को कहते हैं।

संध्या समय 'रहिरास' के पद गाये जाते हैं, और 'कीर्तन सोहिला' का पाठ रात को सोते समय किया जाता है।

●

गुरु नानकदेव

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१५२६ वि०, वैशाख शु० ३
जन्म-स्थान—तलवंडी गांव
जाति—खत्री
पिता—कालूचंद
माता—तृप्ता
भेष—गृहस्थ
निर्वाण-संवत्—१५९५ वि०, आश्विन शु० १०
निर्वाण-स्थान—करतारपुर

नानकदेव का जन्म-स्थान तलवंडी गांव लाहौर के दक्षिण-पश्चिम लगभग ३० मील दूर है। यह स्थान आजकल नानकाना साहब के नाम से प्रसिद्ध है। सिक्खों का यह बहुत बड़ा तीर्थ-स्थान माना जाता है।

नानकदेव के पिता कालूचंद तलवंडी के पटवारी थे और खेती-बाड़ी भी करते थे।

गुरु नानक बचपन से ही बड़े प्रतिभावान् और शान्त स्वभाव के व्यक्ति थे। पिता ने इन्हें पंजाबी, हिंदी, संस्कृत और फारसी की शिक्षा दिलाई, और इन्होंने विद्याभ्यास में असामान्य योग्यता का परिचय दिया। किन्तु इनके चित्त का झुकाव तो एकान्त-सेवन, सत्संग और ईश्वर-चिंतन की ओर सदा रहता था।

पिता ने इन्हें विवाह-बन्धन में बांध दिया। पत्नी का नाम सुलक्खनी था। वह ज्यादातर मायके में रहती थीं। कालांतर में इन्हें दो पुत्र हुए—श्रीचंद और लक्ष्मीचंद। श्रीचंद ने संन्यास लेकर सुप्रसिद्ध 'उदासी संप्रदाय' चलाया।

कालू ने अपने पुत्र नानक को एक मोदी के यहां नौकरी में लगाया, पर उसने इनकी लापर्वाही देखकर इन्हें नौकरी से अलग कर दिया। कहते हैं कि एक दिन वह आटा तोल रहे थे। जब तोलते-तोलते 'तेरह' पर आये तो यह 'तेरा-तेरा' ही करते रह गये, और न जाने कितने सेर आटा ग्राहक को तोलकर दे दिया।

तब खेती-बाड़ी में लगाया, पर वहां भी मन नहीं लगा। पिता को उलटे सच्ची खेती करने का उपदेश करने लगे—

"इहु तनु धरती बीजु करमा करो,
सलिल आपाउ सारंगपाणी,
मनु किरसाणु हरि रिंदै जम्माइ लै,
इउ पावसि पदु निरबाणी ॥-(रागु सिरी)

फिर कुछ बनिज-व्यापार करने के लिए पिता ने कहा, जिसका उत्तर यह दिया गया–

"वणजु करहु वणजारि हो वक्खरु लेहु समालि।
तैसी वसतु विसाहीऐ जैसी निबहै नालि॥
अग्गै साहु सुजाणु हैं, लैसी वसतु समालि ॥-(रागु सिरी)

और कहा–"खोटे वणजि वणंजिऐ मनु तनु खोटा होइ।" खोटे बनिज-व्यापार पर उनका चित्त नहीं डोला; वे तो राम-नाम के सच्चे व्यापारी बन चुके थे। पुत्र की यह ऊंचे घाट की वैराग्य-वृत्ति देखकर पिता कालू हैरान थे।

नानकदेव घर से निकल पड़े। देश-विदेश में भ्रमण करने लगे। साथ में इनका एक पक्का साथी रवाब बाजे पर भजन गानेवाला हो लिया, जिसका नाम मर्दाना था। इनकी यात्रा के कई सुन्दर प्रसंग प्रसिद्ध हैं।

सैयदपुर में, जिसे आजकल अमीनाबाद कहते हैं, ये दोनों गुरु नानक और मर्दाना लालो नामक एक बढ़ई के घर पर जाकर ठहरे। एक शूद्र के घर की रोटी खाते हुए देखकर वहां के ब्राह्मण-खत्रियों में हलचल मच गई। पर गुरु नानक ने उस श्रमजीवी बढ़ई की रोटी को ही श्रेष्ठ ठहराया, और कहा कि, "इस गरीब की रोटी में दूध-ही-दूध हैं, क्योंकि यह इसके पसीने की कमाई की रोटी है। तुम्हारे ज़मींदार मलिक भागो की रोटी में यह स्वाद और यह पवित्रता कहां, वह तो जुल्म की कमाई की रोटी हैं, जो खून से सनी हुई है।"

कुरुक्षेत्र होते हुए गुरु नानक अपने साथी मर्दाना के साथ हरद्वार पहुंचे। वहां देखा कि लोग अपने पितरों को तर्पण कर रहे हैं। नानकदेव भी वहीं बैठकर जल उलीचने लगे, मगर पश्चिम की तरफ। पंडितों ने आपत्ति की कि तर्पण पश्चिम की तरफ नहीं, पूर्व की तरफ किया जाता है। गुरु नानकदेव ने इसपर जवाब दिया–"मैं पछाहं का रहनेवाला हूं; घर पर एक हरा लहलहा खेत छोड़कर आया हूं। उसे सींचनेवाला वहां कोई आदमी नहीं। सो मैं यहीं से खेत को सींच रहा हूं, जिससे वह सूख न जाये। जब तुम लोग लाखों कोस पर रहनेवाले अपने प्यासे पितरों को यहां से पानी पहुंचा सकते हो, तो मेरा खेत तो यहां से बहुत ही पास है।"

हरद्वार से यह काशी गये। वहां से गया और गया से कामरूप व जगन्नाथपुरी तक पूरब के देशों में घूमते रहे। इस यात्रा में गुरु नानक मुसलमान फकीरों या कलंदरों की जैसी टोपी पहनते थे, और माथे पर हिन्दू साधुओं की तरह तिलक भी लगाते थे। गले

में माला भी डाल लेते थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों की मिली-जुली विचित्र-सी वेश-भूषा रखते थे।

जब ये कामरूप से चले तब, कहते हैं, कलियुग इन्हें डराने व प्रलोभन देने वहां पहुंचा। मर्दाना बहुत भयभीत हो गया। गुरु नानक ने उसे धीरज बंधाया और कहा, 'तू कलियुग से डरता है? अरे, किसीसे डरना ही है, तो एक ईश्वर से डरना चाहिए।' और यह शब्द कहा—

"डरि धरु धरि डरु डरि डरु जाइ।
सो डरु केहा जितु डरि डरु पाइ।
तुधु बिनु दूजी नाही जाइ।
जो किछु बरतै सभ तेरी रजाइ॥
डरीऐ जे डरु होवै होरु।
डरि डरि डरणा मन का सोरु॥"—(रागु गउड़ी)

पंजाब वापस आकर ये दोनों यात्री शेख फरीद से मिलने अजोधन गये, जिसे आजकल पाकपट्टन कहते हैं। शेख़ फरीद इस पहुंचे हुए फकीर की उपाधि थी। असल नाम शेख़ ब्रह्म या इब्राहीम था। गुरु नानक और शेख फरीद ने जंगल में काफी देरतक अध्यात्म-विषय पर चर्चा की। दोनों महात्माओं ने घंटों खूब घनघोर ब्रह्म-रस बरसाया। मर्दाना ने रबाब का सुर छेड़ा और गुरु नानक ने यह शब्द कहा—

"जप तप का बंधु बेड़ुला जितु लंघहि वहेला।
ना सरवरु ना ऊछलै, ऐसा पंथु सुहेला॥
तेरा एको नामु मंजीठड़ा रता मेरा चोला सदरंग ढोला॥
साजन चले पिआरिआ किउ मेला होई।
जे गुण होवहि गंठडीऐ मेलेगा सोई॥
मिलिआ होइ न वीछुड़ै जे मिलिया होई।
आवागउणु निवारिआ है साचा सोई॥
हउमै मारि निवारिआ सीता है चोला।
गुर बचनी फलु पाइआ सह के अंमृत बोला॥
नानकु कहै सहेली हो सहु खरा पिआरा।
हम सह केरीआ दासीआ साचा खसमु हमारा॥—(रागु सूही)

अर्थात्, जप और तप का तू बेड़ा बनाले, और धार को पार कर जा।

न फिर झील है, न प्रवाह; ऐसा सहज पंथ है वह।
प्रभो, तेरा नाम ही वह मंजीठ है, जिसमें मैं अपना यह चोला रंग डालूं। प्यारे, वही रंग पक्का है।

साजन से तेरी भेंट कैसे होगी फिर?
तेरी गांठ में गुण होंगे, तभी तो वह तुझे मिलेगा।
और तुझसे मिलकर एकाकार होकर वह फिर बिछड़ेगा नहीं।
आवागमन से वह सच्चा स्वामी ही छुड़ा सकता है।
जिसने अहंकार को निकाल बाहर कर दिया, उस सखी ने अपने स्वामी को रिझाने के लिए अपना चोला सी लिया।
गुरु के उपदेश से उसे फल मिल गया अपने स्वामी के साथ अमृत बोल बोल-बोलकर।
नानक कहता है, हे सहेलियो, वह स्वामी पूरा प्यारा है।
हम सब उसकी दासियां हैं, वह हमारा सच्चा स्वामी है।

और फिर इसी मस्ती में शेख फरीदने कहा—

"दिलहु मुहबति जिन्ह सेई सचिआ।
जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढ़े कचिआ॥
रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के।
बिसरिआ जिन्ह नामु ते भुइ भारु थीए॥
आपि लीए लाड़ लाइ दर दरवेस से।
तिन्ह धंनु जणेदी माउ आए सफलु से॥
परवदगार अपार अगम बेअंत तूं।
जिन्हा पछाता सचु चुंमा पैर मूं॥
तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी।
सेख फरीदै खैरु दीजै बंदगी॥ —(रागु आसा)

अर्थात्, जिनकी दिली मुहब्बत है उस परमात्मा के लिए वे ही सच्चे हैं। जिनके मन में कुछ और है, और मुंह में कुछ और, उनकी गिनती कच्चों में की जायेगी।
वे भी सच्चे हैं, जो खुदा के इश्क में रंग गये हैं, और उसके दर्शन के प्यासे हैं।
जिन्होंने उसका नाम भुला दिया, वे भार हैं पृथिवी के।
जो उसके दर के दरवेश हो गये, उनको उस प्रियतम ने अपने दामन से बांध लिया।
धन्य है उन माताओं को जिन्होंने कि उन्हें जन्म दिया; उनका संसार में आना सफल है।
हे पालनकर्ता, तू अपार है, अगम है और अनंत है।
जिन्होंने तुझ सच्चे स्वामी को पहचान लिया, मैं उनके पैर चूमता हूं।
अय खुदा, मैं तेरी शरण चाहता हूं; तू बख्शदे मुझे।
शेख फरीद को अपनी सेवा तू खैरात में देदे।

शेख फरीद से गुरु नानक का इतना अधिक प्रेम हो गया था कि उनसे यह दोबारा

भी मिलने गये थे।

गुरु नानक और मर्दाना ने दक्षिण भारत की भी यात्रा की थी। सिंहल द्वीप भी वे पहुंचे थे। कहा जाता है कि 'प्राण-संगली' ग्रन्थ को उन्होंने सिंहल में बैठकर रचा था।

इसी प्रकार पश्चिम की यात्रा में गुरु नानक मक्केतक गये थे। प्रसिद्ध है कि वहां क़ाबे की तरफ़ पैर फैलाकर यह लेट गये थे। इस बेअदबी को देखकर जब वहां के मुल्ले ने डांटते हुए पूछा कि, ''अल्लाह की तरफ तुम क्यों अपने पैर फैलाये हुए हो?'' तब इन्होंने जवाब में उससे कहा—''अच्छा भाई, तो जिधर अल्लाह न हो उधर मेरे पैर घुमा दो।'' पर ऐसी कौन-सी दिशा थी, जहां अल्लाह का बास न हो! मुल्ला हैरान था।

गुरु नानकदेव ने इस प्रकार देश-देशान्तरों में सत्य और ईश्वर की भक्ति का प्रचार किया और मौज से हरिनाम का अनमोल रस लुटाया। हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उनके ऊंचे व गहरे उपदेशों को प्रेम से सुना और ग्रहण किया।

अपने प्रिय शिष्य लहिणा को, जो बाद को गुरु अंगद के नाम से प्रसिद्ध हुए, अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी बनाकर गुरु नानकदेव अंतिम समय में एक पेड़ के नीचे जा बैठे और प्रभु के नाम-स्मरण में लौलीन हो गये। गुरु अंगद चरणों पर गिर पड़े। सब शिष्य और कुटुम्बी विलाप कर रहे थे। गुरु तो आनन्दमग्न थे। हुक्म किया सिक्ख-मंडली को कि 'सोहिला' गाओ। सोहिला समाप्त होने पर 'जपुजी' का जब अंतिम सलोक कहा गया, चादर ओढ़ली, और 'वाह गुरु' कहते-कहते चोला छोड़ दिया, ब्रह्मलीन हो गये।

बानी-परिचय

'महला १' शीर्षक के जितने भी अनेक रागों में पद 'गुरु ग्रन्थ साहब' में संगृहीत हैं वे सब गुरु नानकदेव के रचे हुए हैं। ग्रन्थ साहब के आदि में जो 'जपुजी' है वह इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना है। सिक्खों का 'जपुजी' के प्रति वही श्रद्धा-भाव है जो हिन्दुओं का गीता के प्रति, अथवा बौद्धों का 'धम्मपद' के प्रति है। 'आसा दी बार' भी इनकी ऊंची रचना है। 'रहिरास' तथा 'सोहिला' नामक पद-संग्रहों में भी गुरु नानक के अनेक पद या पौड़ियां संकलित हैं। फुटकर तो सैकड़ों ही पद हैं। 'सोदरु' पद भी इनका बहुत प्रसिद्ध है, और इसी प्रकार 'गगन में थाल' यह आरती भी।

किंतु 'जपुजी का स्थान इनकी रचनाओं में सबसे ऊंचा है। इसे हरेक सिक्ख और पंजाब और सिन्ध के अनेक हिन्दू भी कण्ठस्थ कर नित्य प्रातःकाल इसका भक्तिपूर्वक मंगल-पाठ करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में 'जपुजी' को हमने पूरा उद्धृत किया है। अर्थ अधिकतर प्रोफेसर तेजासिंहजी की टीका के आधार पर किया है, कहीं-कहीं पर मॅकालीफ़ महोदय के अंग्रेजी भाषान्तर से भी हमने सहायता ली है। जपुजी के विषय में प्रोफेसर तेजासिंहजी ने नीचे जो लिखा है वह सर्वथा सही है। वस्तुतः यह बहुत ऊंची रचना है—

"जपुजी में मनुष्य-जीवन का सबसे उच्चकोटि का ज्ञान निहित है। इसमें हमारे जीवन के वास्तविक मनोरथ और इन्हें प्राप्त करने के साधन बतलाये हैं। इसमें, मन को ऐसे सांचे में ढालने और उसके ऊपर ऐसी अवस्था लाने का ढंग बतलाया है कि जो भी धार्मिक उलझनें आ पड़ें उन्हें हम सुगमता से सुलझा सकें।"

जपुजी की रचना सूत्रात्मक-सी है। गुरु नानक ने इसमें बहुत ही थोड़े शब्दों में ऊंचे-से-ऊंचे भावों को व्यक्त किया है। प्रो० तेजासिंह के शब्दों में "बड़े विस्तारवाले विचारों को ऐसा कसकर लिखा है कि मानो कूजे में दरिया बंद कर दिया है। पंजाबीभाषा से इतना कठिन काम पहले कभी नहीं लिया गया था, और न अबतक ही किसीने लिया है।"

दूसरे अनेक शब्द भी बड़े ऊंचे और गहरे भावों से भरे हुए हैं। अध्यात्म के विविध अंगों का विशद निरूपण चोट करनेवाली भाषा व शैली में किया गया है। प्रेम और विरह का वर्णन कहीं-कहीं बड़ा ही अनूठा मिलता है। नम्रता तो गुरु नानक की प्रसिद्ध ही है। उत्तरी भारत के संत-साहित्य में 'गुरु-बानी' का और उसमें भी गुरु नानकदेव की बानी का एक विशिष्ट स्थान है। अनमोल निधि है हमारी यह। हमें यह पछताव है कि 'गुरु ग्रन्थ साहब' में से गुरु नानक के जपुजी को छोड़कर, बहुत थोड़े पद और सलोक स्थान-संकीर्णता के कारण हम ले सके। हैरानी होती है कि इस गुरु-महोदधिं में से किस रत्न को उठा लें और किसे छोड़ दें।

आधार

१ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब—सर्व हिंद सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलिजन (भाग १) मॅकालीफ़—ऑक्सफोर्ड
३ श्री जपुजी साहिब (सटीक)—टीकाकार प्रो० तेजासिंह, स्थानिक कमेटी, श्री दरबार साहिब, अमृतसर

●

जपुजी

१ ॐकार सति नामु करता पुरुखु निरभउ
निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥*
आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥
सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार ॥
चुप्पै चुप्प न होवई जे लाइ रहा लिवतार ॥
भुखिआ भुख न उत्तरी जे वंना पुरीआ भार ॥
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चल्ले नालि ॥
किव सचिआरा होइऐ किव कूड़ै तुट्टै पालि।
हुकमि रजाई चल्लणा नानक लिखिआ नालि ॥१॥

---

*उस गुरु की कृपा से, जो एक ही है, जिसका नाम सत्य है अर्थात् जो सदा एकरस रहता है, जो सब का सृष्टा है, जो समर्थ पुरुष है, जिसे किसी का भी भय नहीं, न किसीसे जिसका वैर है, जिसका अस्तित्व काल की पहुँच से परे है, जिसका जन्म नहीं हैं, जो स्वयंभू है।

यह सिक्ख धर्म का मूल मंत्र है।

सब से पहले, जबकि और कुछ भी अस्तित्व में नहीं था, केवल सत्यरूप परमात्मा था। जबकि युगों का विभाग होने लगा, तब भी वह सत्य ही था। अब भी वह सत्य है। नानक, आगे भी वह सत्य ही रहेगा।

१. चिंतन करने से (सत्य) समझ में नहीं आ जाता, भले ही लाखों बार फिर-फिर उसका मैं चिन्तन करता रहूँ।

चुप या मौन रहने से भी मन में एक-न-एक प्रश्न का उठना रुकता नहीं है, चाहे मैं कितने ही एकाग्र चित्त से ध्यान करूँ।

भूखा रहने से उसके मिलन की भूख शान्त होने की नहीं, भले ही मैं सारे संसार को अपने काबू में करलूँ।

लाखों सयानपन हों, उस सत्यतक एक भी नहीं पहुँचता, तो फिर हम सत्यमय हों कैसे? और हमारे उसके बीच में जो दीवार खड़ी हैं वह कैसे टूटे? परदा कैसे हटे? (एक ही उपाय है) उस आदेश देनेवाले परमेश्वर के आदेश पर चलना, उसकी आज्ञा के अनुसार आचरण करना। और वह आज्ञा हमारे साथ ही लिखी हुई है।

हुकमी होवनि आकार, हुकमु न कहिआ जाई ॥
हुकमी होवनि जीअ, हुकमि मिलै वड़िआई ॥
हुकमी उत्तमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि ॥
इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि ॥
हुकमै अन्दरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ ॥
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ ॥२॥

गावै को ताणु होवै किसै ताणु। गावै को दाति जाणै नीसाणु ॥
गावै को गुण बड़िआईआ चार। गावै को विदिआ विखमु वीचारु ॥
गावै को गुण वड़िआईआ चार। गावै को विदिआ विखमु वीचारु ॥
गावै को साजि करे तनु खेह। गावै को जीअ लै फिरि देह ॥
गावै को जाये दिसै दूरि। गावै को वेखै हादरा हदूरि ॥
कथना कथी न आवै तोटि। कथि कथि कथी कोटी कोटि कोटि ॥
देदा दे लैदे थकि पाहि। जुगा जुंगतरि खाही खाहि ॥
हुकमी हुकमु चलाए राहु। नानक विगसै बेपरावाहु ॥३॥

---

२. उस आज्ञा से सृष्टि के सारे आकार बनते हैं। उस आज्ञा को कहा नहीं जा सकता – अनिर्वचनीय है वह।

उसी आज्ञा से जीवों का सृजन होता है, और उसीसे जीवों को मनुष्य की उँची श्रेणी प्राप्त होती है।

उसीसे मनुष्य उत्तम गति पाता है, और उसीसे नीच गति; वह आज्ञा जैसे कर्मों को लिख देती है वैसे ही दुःख और सुख सब पाते हैं।

उस आज्ञा से किसीको मुक्ति का दान मिल जाता है, तो कितने ही अनेक योनियों में चक्कर काटते रहते हैं।

सभी उसकी आज्ञा के अंदर हैं; कोई भी उसकी आज्ञा के बाहर नहीं है।

नानक कहते हैं – इस आज्ञा को यदि कोई अच्छी तरह समझले, तो फिर वह कभी यह नहीं कहेगा कि यह या वह मैंने किया है।

अर्थात्, 'अहंभाव' का उसमें लेश भी नहीं रहेगा।

३. कोई उसकी शक्ति को गाता है, उसका बखान करता है, जिसे कि उससे शक्ति मिली है;

कोई उसकी दी हुई वस्तुओं को गाता है उसके चिह्न समझकर;

कोई उसके गुणों और उसकी सुन्दर-सुन्दर महिमाओं को गाता है; और कोई कठिन-कठिन विद्याओं के द्वारा उसका गान करता है;

साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपारु ॥
आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु ॥
फेरि कि अग्गै रखीए जितु दिसै दरबारु ॥
मुहौ कि बोलणु बोलीए जितु सुणि धरे पिआरु ॥
अमृत वेला सचु नाउ वडिआई बीचारु ॥
करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु ॥
नानक एवै जाणीऐ सभु आपे सचिआरु ॥४॥

थापिआ न जाइ कीता न होइ। आपे आपि निरंजनु सोइ ॥
जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु। नानक गाविऐ गुणी निधानु ॥

कोई यह समझकर उसका गान करते हैं कि वह देह को बनाकर फिर उसे मिट्टी कर देता है; और कोई-कोई यह समझकर कि वह जीव लेकर फिर दे देता है।

कोई गाता है कि वह परमात्मा बहुत दूर, परे से परे, प्रतीत होता है; और कोई उसे अपने सामने, बिलकुल निकट, देखकर गाता है।

करोड़ों ने कहा, कहा और फिर कहा, पर उसकी कथनी—उसकी गुण-गाथा—कभी समाप्त नहीं हुई।

वह ऐसा दाता है कि दिये ही जाता है, पर लेनेवाला ही लेते-लेते थक जाता है। युगों-युगों से उसका दिया सब खाते ही आये हैं।

आज्ञा देनेवाले की आज्ञा यह सबकुछ चला रही है। नानक कहते हैं—वह लापरवाह हमेशा खुद आनन्दमग्न रहता है।

४. वह स्वामी 'सत्य' है; उसका नाम भी सत्य है। और उसका बखान करने के भाव या ढंग अनगिनती हैं।

लोग निवेदन करते हैं और माँगते हैं कि, 'स्वामी, तू हमें देदे।' और उन्हें वह दाता देता है।

फिर क्या उसके आगे रखें कि जिससे उसका (मेहर का) दरबार दीख पड़े? और इस मुख से हम क्या बोल बोलें कि जिन्हें सुनकर वह स्वामी हमसे प्रेम करे?

अमृत-वेला में—मंगलमय प्रभात-काल में, उसके सत्य नाम का, और उसकी महिमा का विचार करो, स्मरण करो।

कर्मों के अनुसार चोला तो बदल लिया जाता है; किन्तु मोक्ष का द्वार उसकी दया से ही खुलता है।

नानक कहते हैं—यों जानो तुम कि वह सत्यरूप प्रभु आप ही सब कुछ है।

गाविऐ सुणिऐ मनि रखी भाउ। दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ ॥
गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं। गुरमुखि रहिआ समाई ॥
गुरु ईसरु गोरखु बरमा गुरु पारबती माई ॥
जे हउ जाणा आखा नाही कहणा कथनु न जाई ॥
गुरा इक देहि बुझाई ॥
सभना जीआ का इकु दाता सो मै बिसरि न जाई ॥५॥

तीरथि नावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी ॥
जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई ॥
मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी ॥
गुरा इक देहि बुझाई ॥
सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई ॥६॥

---

५. न वह किसीके द्वारा स्थापित होता है, और न बनाया जाता है। वह तो स्वयं ही है, और निरंजन है—माया से परे है।
जिसने उसकी सेवा की है उसे मान-प्रतिष्ठा मिली है। सो हे नानक, उसी गुण-निधान का गुण-गान किया जाये।
उसके गुण गाने और सुनने चाहिए, और भावपूर्वक अपने मन में रखने चाहिए। वह प्रभु हमें दुखों से छुड़ाकर अपने सुखधाम में ले जायेगा।
गुरु की वाणी ही नाद अर्थात् आदि शब्द है, और वही वेद है; कारण कि गुरु के सुख में परमात्मा स्वयं वास करता है।
गुरु ही शिव हैं, गुरु ही विष्णु (गो अर्थात् पृथिवी के रक्षक) हैं और गुरु ही ब्रह्मा हैं। पार्वती भी गुरु हैं, और माता लक्ष्मी भी वही हैं।
जो मैं उसे जान लूँ तो उसका बखान नहीं कर सकता, क्योंकि वह कथनी से परे है। किंतु गुरु ने एक बार मुझे समझा दिया है कि जीव को देनेवाला एक परमात्मा ही है, और मुझे वह कभी नहीं भूलना चाहिए।

६. यदि मैं उसे रिझा सकूँ तो तीर्थों में स्नान करूँ; यदि उसे मैं रिझा नहीं सकता, तो तीर्थों में नहाने से मेरा क्या बनेगा?
देखता हूँ, जितनी भी सृष्टि सिरजी गई है। इसमें बिना कर्म या साधन किये क्या मिल सकता है, जिसे मैं लूँ? (फिर परमात्मा का मिलना तो बिना जतन के अत्यंत कठिन हैं।)
यदि गुरु का उपदेश (ध्यान से) सुनोगे तो तुम्हारी बुद्धि में से ही हीरे-मोती आदि सार रत्न अर्थात् ऊँचे-से-ऊँचे आध्यात्मिक गुण प्रकट हो पड़ेंगे। (तीर्थों में भटकने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।)
गुरु ने एक बार मुझे समझा दिया है कि जीव को देनेवाला एक परमात्मा ही है, और मुझे वह कभी नहीं भूलना चाहिए।

जे जुग चारे आरजा होर दसूणी होइ ॥
नवा खंडा विचि जाणीऐ नालि चलै सभु कोइ ॥
जे तिसु नदरि न आवई त बात न पुच्छै केइ ॥
चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ ॥
कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे ॥
नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे ॥
तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोइ करे ॥७॥

सुणिऐ सिद्ध पीर सुरिनाथ। सुणिऐ धरति धवल आकास ॥
सुणिऐ दीप लोअ पाताल। सुणिऐ पोहि न सकै कालु ॥
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥८॥

---

७. मनुष्य यदि चारों युग जीये, या इससे भी दसगुनी उसकी आयु हो जाये, और नवों खंडों में वह विख्यात हो जाये, सब लोग उसके साथ चलने लगें,

दुनियाभर के लोग उसे अच्छा कहें, और उसके यश का बखान करें, पर यदि परमात्मा के उसपर अपनी (कृपा) दृष्टि नहीं की, तो कोई उसकी बात भी पूछनेवाला नहीं—उसकी कुछ भी क़ीमत नहीं।

वह तब कीट से भी तुच्छ कीट माना जायेगा। दोषी भी उसपर दोषारोप करेंगे।

नानक कहते हैं—वह निर्गुणी को भी गुणी कर देता है, और जो गुणी है उसे और भी अधिक गुण बख़्श देता है।

पर ऐसा कोई भी दृष्टि में नहीं आता, जो परमात्मा को गुण दे सके।

८. गुरु का उपदेश सुनने से सिद्धों, पीरों और बड़े-बड़े नाथों की असलीयत का पता लग जाता है। (अथवा, असली सिद्धों, पीरों और बड़े-बड़े नाथों की अवस्था को वह प्राप्त कर लेता है।)

गुरु का उपदेश सुनने से पृथिवी का, उसे टिकाये रखनेवाले (कल्पित) बैल का, और आकाश का सही-सही ज्ञान हो जाता है।

(**विशेष**—'जपुजी' की १६वीं पौड़ी में इस 'धवल' अर्थात् बैल का स्पष्टीकरण किया गया है।)

गुरु की शिक्षा सुनने से द्वीपों, लोकों और पातालों का ठीक-ठीक पता लग जाता है।

और तब काल की दाल नहीं गल पाती।

नानक कहते हैं—(गुरु का उपदेश सुननेवाले) भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते हैं। (गुरु का उपदेश) सुनने से उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं।

सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु। सुणिऐ मुखि सालाहण मंदु ॥
सुणिऐ जोग-जुगति तनि भेद। सुणिऐ सासत सिमृति वेद ॥
नानक भगता सदा बिगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥९॥

सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु। सुणिऐ अठिसठि का इसनानु ॥
सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु। सुणिऐ लागै सहजि धिआनु ॥
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥१०॥

सुणिऐ सरा गुणा के गाह। सुणिऐ सेख पीर पातिसाह ॥
सुणिऐ अंधे पावहि राहु। सुणिऐ हाथ होवै असगाहु ॥
नानक भगता सदा बिगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥११॥

---

९. गुरु का उपदेश सुनने से शिव, ब्रह्मा और इन्द्र की दशा का असली पता लग जाता है। और मन्दबुद्धि की भी प्रशंसा होने लगती है।

उसे सुनने से योग की युक्ति या मार्ग, और घट के रहस्य खुल जाते हैं।

गुरु का उपदेश सुनने से शास्त्रों, स्मृतियों और वेदों की वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है।

नानक कहते हैं—ऐसे भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते हैं। (गुरु-उपदेश) सुनने से उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं।

१०. गुरु का उपदेश सुनने से सत्य, संतोष और दिव्यज्ञान प्राप्त होता है।

उसे सुनना अड़सठ तीर्थों में स्नान करने के समान है।

गुरु का उपदेश सुनने से ज्यों-ज्यों उसे मनुष्य पढ़ता है, त्यों-त्यों वह मान-प्रतिष्ठा पाता है।

उसे सुनने से चित्त का निरोध होकर उसका सहज ध्यान लग जाता है।

नानक कहते हैं—गुरु का उपदेश सुननेवाले भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते हैं। उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं।

११. गुरु का उपदेश सुनने से मनुष्य गुणों के सागर की थाह पा लेता है—गहन-से-गहन गुणों को दृढ़तापूर्वक ग्रहण कर लेता है।

उसे सुनने से मनुष्य शेख, पीर और बादशाह बन जाते हैं। अथवा यह जान जाते हैं कि धार्मिक तथा सांसारिक क्षेत्रों का नेता एकसाथ कैसे बना जाता है।

गुरु का उपदेश सुनने से अन्धे को भी रास्ता सूझ जाता है।

उसे सुनने से वह अथाह की भी थाह पा जाता है।

नानक कहते हैं—ऐसे भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते हैं। उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं।

मंने की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताइ॥
कागदि कलम न लिखणहारु। मंने का बहि करनि विचारु॥
ऐसा नामु निंरजनु होइ। जे को मंनि जाणै मंनि कोइ॥१२॥

मंने सुरति होवै मनि बुधि। मंनि सगल भवण की सुधि॥
मने मुहि चोटा ना खाइ। मंने जम कै साथि न जाइ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ॥१३॥

मंने मारगि ठाक न पाइ। मंने पति सिउ परगटु जाइ॥
मंने मगु न चलै पंथु। मंने धरम सेती सनबंधु॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जो को मंनि जाणै मनि कोइ॥१४॥

---

१२. जो उसकी आज्ञा पर चलता है उसकी (पहुँची हुई) अवस्था का वर्णन नहीं हो सकता; यदि कोई वर्णन करने का यत्न करता है, तो उसे पीछे पछताना या लज्जित होना पड़ता है।

लिख़ने के लिए न कागज़ है, न क़लम, और न लिखनेवाला ही उस अवस्था का, जिसे कि उसकी आज्ञा को माननेवाला प्राप्त कर लेता है।

ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए है गुरु का नाम—

जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले।

१३. उसकी आज्ञा पर चलने से ऊँची (आध्यात्मिक) वृत्ति जागृत हो उठती है, अथवा पराबुद्धि विकसित हो जाती है।

उससे सारे लोकों का ज्ञान हो जाता है।

उसे मानने से मनुष्य को दण्ड नहीं मिलता; और वह यम के मार्ग पर नहीं जाता—काल की पकड़ से छूट जाता है।

ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए गुरु का नाम,—

जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले।

१४. उसकी आज्ञा पर चल़ने से रास्ते में कोई रोक-टोक नहीं रहती; मनुष्य फिर मान-प्रतिष्ठा के साथ (सन्मार्ग पर) चलता है।

उसे जो मानता है वह मामूली रास्ते पर नहीं, बल्कि राजपथ पर चलता है।

(**विशेष**—'मगुन' भी एक पाठ है। तब यह अर्थ किया गया है कि वह भगवत्प्रेम में मग्न होकर आगे बढ़ जाता है।)

उसका धर्म के साथ (दृढ़) संबंध हो जाता है।

ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए गुरु का नाम—

जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले।

मंने पावहि मोख दुआरु। मंनि परवारै साधारु॥
मंने तरै तारै गुरु सिख। मंनि नानक भवहि न भिख॥
ऐसा नामु निंरजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ॥१५॥

पंच परवाण पंच परधानु। पंचे पावहि दरगहि मानु॥
पंचे सोहहि दरि राजानु। पंचा का गुरु इकु धिआनु॥
जे को कहैं करै वींचारु। करते कै करणै नाहि सुमारु॥
धौलु धरमु दइआ का पूत। संतोखु थापि रखिआ जिनि सूत॥
जे को बुझै होवै सचिआरु। धवलै उपरि केता भारु॥
धरती होरु परे होरु होरु। तिसते भारु तलै कवणु जोरु॥
जीअ जाति रंगा के नाव। सभना लिखिआ बुड़ी कलाम॥
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ। लेखा लिखिआ केता होइ॥
केता ताणु सुआलिहु रूपु। केती दति जाणै कौणु कूतु॥
कीता पसाउ एको कवाउ। तिसते होए लख दरीआउ॥
कुदरति कवण कहा वीचार। वारिआ न जावा एक वार॥
जो तुधु भावै साई भली कार। तू सदा सलामति निरंकार॥१६॥

---

१५. उसकी आज्ञा मान लेने से मनुष्य मोक्ष के द्वार पर पहुँच जाता है। वह अपने परिवार का भी उद्धार कर लेता है।

उसकी आज्ञा पर चलने से वह स्वयं तर जाता है, और जिसे वैसा उपदेश देता है वह भी तर जाता है।

जो उसकी आज्ञा को मानता है, वह भीख नहीं माँगता फिरता।

ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए गुरु का नाम—

जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले।

१६. (ऐसे गुरु-उपदेश पाये हुए) पंच ही प्रमाणरूप हैं; अथवा, परमात्मा की दृष्टि में 'स्वीकृत' हैं, और वे ही सबमें प्रधान हैं, प्रतिष्ठित हैं। वे ही उस प्रभु के दरबार में मान पाते हैं।

(**विशेष**—ग्रन्थ साहब की टीका में भाई चंदासिंह ने 'पंच' का अर्थ इस प्रकार किया है—(१) जो ईश्वर की मरज़ी पर चलते हैं, (२) जो उसे सत्यरूप मानते हैं, (३) जो उसका गुण-गान करते हैं, (४) जो उसका नाम सुनते हैं, और (५) जो उसकी आज्ञा का पालन करते हैं।)

पंचों से ही राजा-महाराजाओं के दरबार शोभायमान होते हैं।

इनका गुरु केवल परमात्मा का ध्यान होता है।

यदि कोई मनुष्य कोई बात कहे, तो वे उसपर तात्त्विक विचार करते हैं, उसे बिना विचार

असंख जप असंख भाउ। असंख पूजा असंख तप ताउ॥
असंख गरंथ मुखि वेदपाठ। असंख जोग मनि रहहि उदास॥
असंख भगत गुण गिआन वीचार। असंख सती असंख दातार॥
असंख सूर मुह भख सार। असंख मोनि लिव लाइ तार॥
कुदरति कवण कहा वीचारु। वारिआ न जावा एक वार॥
जो तुधु भावै साई भलीकार। तू सदा सलामति निरंकार॥१७॥

किये तुरंत मान नहीं लेते।

सिरजनहार के कार्यों की कोई गिनती नहीं।

(जो यह विश्वास किया जाता है कि) नन्दी (शिवजी का बैल) पृथिवी को उठाये हुए है वह नन्दी वस्तुतः धर्म है, प्रभु की कृपा का रचा हुआ 'नियम' है, जिसने सारे ब्रह्मांड को धैर्य के सहारे थाम रखा है।

जिसने इसको समझ लिया, वह सत्य का साक्षात्कार कर सकता है।

नन्दी पर कितना बड़ा भार लदा होगा!
इस पृथिवी से परे पृथिवी है—उससे भी परे और उससे भी परे पृथिवी है।

यह सारा भार यदि उस नन्दी के ऊपर रखा हुआ है, तो वह नन्दी फिर किसके आधार पर स्थित है?

जीवों की अनेक जातियों और अनेक रंगों के नामों को एक चलती हुई क़लम ने लिखा है—अर्थात् लेखे-हिसाब का प्रवाह अनन्त है।
इनका कौन लेखा कर सकता है? और वह कितना बड़ा लेखा बनेगा!

उसकी कितनी बड़ी शक्ति है, और कैसा सलौना रूप है! उसकी बख़्शीसों का कोई पार! कौन कूत सकता है उन्हें?

एक ही शब्द से, एक ही आज्ञा से सृष्टि को विस्तृत कर दिया; उसकी आज्ञा से सृष्टि की लाखों नदियाँ बह निकलीं।

मेरी क्या बिसात जो मैं तेरा बखान कर सकूँ?

मैं तो तुझपर एक बार भी निछावर होनेलायक नहीं। अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे। हे निराकार! तू सदा सलामत रहता है।

१७. असंख्य प्रकार के तेरे मंत्र-जप हैं, और असंख्य ही भक्ति-भाव के मार्ग। असंख्य प्रकार की तेरी पूजा है, और असंख्य तप और साधन।

असंख्य लोग वेदों और अन्य पवित्र ग्रन्थों का मुख से पाठ करते हैं। और असंख्य योगी मन में जगत् की ओर से उदासीन रहते हैं।
असंख्य भक्तजन तेरे गुणों का और तत्त्व-दर्शन का चिंतन करते हैं।
ऐसे ही, सच्चे और दानी असंख्य लोग हैं। और असंख्य शूरवीर तलवार की चोटें सामने

असंख मूरख अंधवोर। असंख चोर हरामखोर ॥
असंख अमर करि जाहि जोर। असंख गलवढ हत्तिआं कमाहि ॥
असंख पापी पाप करि जाहि। असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि ॥
असंख मलेछ मलु भखि खाहि। असंख निंदक सिरि करहि भारु ॥
नानकु नीचु कहै वीचारु। वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार। तू सदा सलामति निरंकार ॥१८॥

असंख नाव असंख थाव।
अगंम अगंम असंख लोअ। असंख कहहि सिरि भारु होइ ॥
अखरी नामु अखरी सालाह। अखरी गिआनु गीत गुण गाह ॥
अखरी लिखणु बोलणु वाणि। अखरा सिरि संजोगु वखाणि ॥
जिनि एहि लिखे तिस सिरि नाहि। जिव फुरमाए तिव तिव पाहि ॥
जेता कीता तेता नाउ। विणु नावै नाही को थाउ ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु। वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार। तू सदा सलामति निरंकार ॥१९॥

खाते हैं।

असंख्य साधक मौन व्रत धारणकर तुझसे अपनी लौ लगाते हैं।

मेरी क्या बिसात, जो मैं तेरा बखान कर सकूँ?

मैं तो तुझपर एक बार भी निछावर होनेलायक नहीं। अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे।
हे निराकार! तू सदा सलामत रहता है।

१८. असंख्य लोग मूर्ख और घोर अन्धे हैं;

असंख्य चोर और पराया धन हरण करनेवाले हैं;

असंख्य लोग ऐसे हैं, जो बलात्कारपूर्वक राज्य स्थापित कर लेते हैं;

और गला काटनेवाले और हत्यारे भी असंख्य हैं;

असंख्य पापी हैं, जिन्हें पाप करते हुए गर्व होता है;

असंख्य असत्य बोलनेवाले असत्य में ही पड़े-पड़े चक्कर काटते हैं,
असंख्य गंदे लोग गंदी कमाई से ही अपने पेट भरते हैं;
और असंख्य निन्दक पराई निन्दा करते और सिर पर पापों की गठरी लादते हैं।

तुच्छ नानक कहता है, मैं तो तुझपर एक बार भी निछावर होनेलायक नहीं।

अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे। हे निराकार! तू सदा सलामत रहता है।

१९. असंख्य तेरे नाम हैं, और असंख्य तेरे धाम;
तेरे अगम्य लोक भी असंख्य, असंख्य हैं;

भरीऐ हथु पैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह॥
मूत पलीती कपड़ु होइ। दे साबुणु लईऐ ओहु धोइ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि। ओहु धोपै नावै के रंगि॥
पुंनी पापी आखणु नाहि। करि करि करणा लिखि लै जाहु॥
आपे बीजि आपे ही खाहु। नानक हुकमी आवहु जाहु॥२०॥

असंख्य कहते हुए भी सिर पर जैसे भार पड़ता है।

(अथवा, अपनी सारी बुद्धि समेटकर तेरा नाम जपनेवाले असंख्य हैं। अथवा, जो तेरा वर्णन करने का यत्न करते हैं, वे मानों सिर पर पाप ढोते हैं; यह उनका अहंकार ही है, जो वर्णनातीत के वर्णन करने का दम भरते हैं।)

अक्षरों के सहारे हम तेरा नाम लेते हैं, और अक्षरों के ही सहारे तेरी स्तुति करते हैं;

अक्षरों के द्वारा हम तत्त्व-विचार करते हैं, और अक्षरों के द्वारा ही तेरे गुण गाते हैं;

अक्षरों से हम वाणी को लिखते और बोलते हैं; अक्षरों के सहारे से ही तेरे साथ हमारा जो संबन्ध है उसका वर्णन करते हैं।

भाग्य पर जो अक्षर लिख दिये गये हैं उन्हींसे भाग्य का हिसाब लगाया जाता है।

किन्तु जिसने उन अक्षरों को लिखा है, वह उनकी सीमा से परे है।

तू जैसी आज्ञा देता है वैसा हम पाते हैं।

जैसी तेरी सृष्टि की रचना, वैसे ही तेरा नाम भी महान्।

ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ कि तेरा नाम न हो।

मेरी क्या बिसात, जो मैं तेरा बखान कर सकूँ!

मैं तो तुझपर एक बार भी निछावर होनेलायक नहीं। अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे। हे निराकार! तू सदा सलामत रहता है।

२०. जब हाथ, पैर और शरीर के दूसरे अंग धूल से सन जाते हैं, तो वे पानी से धोने से साफ़ हो जाते हैं।

मूत्र से जब कपड़े गंदे हो जाते हैं तो साबुन लगाकर उन्हें धो लेते हैं।

ऐसे ही यदि हमारा मन पापों से मलिन हो जाये, तो वह नाम के प्रेम-भाव से स्वच्छ हो सकता है।

केवल कह देने से मनुष्य न पुण्यात्मा बन जाते हैं, न पापी;

किंतु वे तुम्हारे कर्म हैं, जिन्हें तुम अपने साथ लिखते जाते हो तुम्हारे कर्म तुम्हारे साथ-साथ जाते हैं।

आप ही तुम जैसा बोते हो वैसा खाते हो।

नानक कहते हैं—यह तुम्हारा आवागमन उसकी आज्ञा से ही हो रहा है।

तीरथु तपु दइआ दतु दातु। जे को पावे तिल का मानु ॥
सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ। अंतरगति तीरथि मनि नाउ ॥
सभि गुण तेरे मै नाही कोइ। विणु गुण कीते भगति न होइ ॥
सुअसति आंथि बाणी बरमाउ। सति सुहाणु सदा मनि चाउ ॥
कवणु सु बेला वखतु कवणु, कवणु थिति कवणु वारु ॥
कवणि सि रुती माहु कबणु, जितु होआ आकारु ॥
बेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु ॥
वखतु न पाओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु ॥
थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु न कोई ॥
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई ॥
किवकरि आखा किव सालाही किउ वरनी किव जाण ॥
नानक आखणि सभु को आखै इकदू इकु सिआण ॥
वड्डा साहिबु वड्डी नाई कीता जाका होवै ॥
नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहै ॥२१॥

---

२१. तीर्थाटन, तप, दया और पुण्य-दान जो करता है, उसे भले ही तिलभर मान मिल जाये,– (अथवा, प्रभु के नाम का एक कण भी किसीको मिल जाये तो मानों उसने तीर्थाटन, तप, दया, और पुण्य-दान कर लिये।)

किंतु जो प्रभु का नाम सुनता है, उसपर चलता है, और अंतःकरण से उसकी भक्ति करता है, उसने सारे तीर्थों का स्नान कर लिया, और अपने सब पापों को धो डाला।

जितने भी गुण हैं सब तेरे ही हैं; मुझमें एक भी गुण नहीं।

आचरित गुण के बिना भक्ति हो नहीं सकती।

धन्य है उसे जो स्वतः माया है, वाणी है और ब्रह्म है!

वह सत्य है, सुंदर है, और अंतर में सदा आनन्द के रूप में रहता है।

वह कौन सा समय था, जब सृष्टि रची गई? वह क्या तिथि थी, और कौन-सा दिन? वह क्या ऋतु थी, और कौन-सा मास?

पंडितों को उसका पता नहीं लगा; यदि पता होता, तो वे उसका अवश्य पुराणों में उल्लेख करते।

क़ाज़ियों को भी उस वक्त का इल्म नहीं था; यदि उन्हें इल्म होता, तो कुरान में उन्होंने उसे दर्ज़ किया होता।

और न किसी योगी को उस तिथि, उस वार और उस ऋतु और उस मास का ज्ञान है।

उस करतार को ही उस समय का पता है कि उसने सृष्टि की रचना कब की थी।

मैं उसे क्या कहकर पुकारूँ, और कैसे उसकी स्तुति करूँ! उसका बखान कैसे करूँ,

पाताला पाताल लख आगासा आगास।
ओडक ओड़क भालि थके वेद कहनि इक बात।
सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु॥
लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु॥
नानक वड्डा आखीऐ आपे जाणै आपु॥२२॥

सालाही सालाहि एती सुरति न पाईआ।
नदीआ अतै वाह पवहि समुंदि न जाणी अहि॥
समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु॥
कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि॥२३॥

और कैसे उसे जानूँ?

नानक! एक-से-एक बुद्धिमान उसके विषय में अपनी-अपनी समझ से कहते हैं कि वह 'कैसा है' और 'कैसा नहीं।'

पर (समझ में तो इतना ही आया है कि) वह स्वामी महान् है, उसका नाम भी महान् है; उसीका किया-धरा सब कुछ होता है; और कोई कुछ नहीं कर सकता।

नानक! जो यह अभिमान करता है कि यह मैंने किया है, वह स्वामी के लोक में मान नहीं पायेगा।

२२. लाखों ही पाताल हैं और उनके भी पाताल हैं उसकी रचना में;
इसी प्रकार लाखों आकाश हैं और उनके भी आगे आकाश हैं।
उसका अंत खोजते-खोजते वेद थक गये—केवल एक ही बात वेदों ने कही (कि उसकी रचना का अंत नहीं।)
मुसलमानों की किताबों ने कहा है कि अठारह हज़ार आलम है उसकी रचना में।
पर असल में मतलब एक ही है दोनों का—(याने उसकी रचना का अंत नहीं।)
गिनती हो तो उसे लिखा जाये; लिखनेवाले का ही अंत हो जाता है, पर लेखे का अंत नहीं मिलता।
नानक कहते हैं—उसे महान् ही कहना चाहिए; वह कितना महान् है इसे वह खुद ही जानता है।

२३. स्तुति करनेवाले उसकी स्तुति करते हैं, पर उसकी महिमा का पता उन्हें भी नहीं।
जैसे, नदियाँ और नाले समुद्र में जाकर गिरते हैं, पर उसकी पूरी गंभीरता और विशालता का ज्ञान उन्हें नहीं होता।
जिन राजाओं और सम्राटों के पास संपत्ति के समुद्र और धन के पर्वत हों, वे उस कीड़ी के भी समान नहीं, जो अपने हृदय से परमात्मा को नहीं बिसारती।

अंतु न सिफती कहणि न अंतु। अंतु न करणै देणि न अंतु॥
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु। अंतु न जापै किआ मनि मंतु॥
अंतु न जापै कीता आकारु। अंतु न जापै पारावारु॥
अंत कारणि केते बिललाहि। ताके अंत न पाए जाहि॥
एहु अंतु न जाणै कोइ। बहुता कहीऐ बहुता होइ॥
वड्डा साबिहु ऊचा थाउ। ऊचे उपरि ऊचा नाउ॥
एवडु ऊचा होवै कोइ। तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ॥
जेवडु आपि जाणै आपि आपि। नानक नदरी करमी दाति॥२४॥

बहुता करमु लिखिआ न जाइ॥
वड्डा दाता तिलु न तमाइ। केते मंगहि जोध अपार॥
केतिआ गणत नही वीचारु। केते खपि तुटहि वेकार॥

---

२४. अंत नहीं परमात्मा के गुणों का, या स्तुति का; और न उसके गुणों के वर्णन का अंत है।

उसकी करणी या रचना का भी अंत नहीं, और न उसके दान का कोई अंत है।

उसकी रचना में जो कुछ देखने में और जो कुछ सुनने में आता है उस सबका भी कोई अंत नहीं।

इसका भी अंत नहीं कि उसके मन में इस सारी रचना के रचने का क्या रहस्य है।

न तो उसकी सृष्टि का अंत जाना जा सकता है, और न उसके इस पार का और न उस पार का अंत किसी को मिल सका है।

उसका अंत पाने के लिए कितने ही विलखते हैं, पर पा नहीं सकते।

उसे कोई नहीं जानता; जितना कि उसके विषय में कहा जाता है उससे भी कहीं अधिक कहने को रह जाता है।

वह स्वामी महान् है, उसका पद ऊँचा है, और उस प्रभु का नाम ऊँचे से भी ऊँचा है।

(**विशेष**—'नाउ' का अर्थ 'प्रकाश' भी किया गया है।)

हाँ, यदि कोई उसके जितना ऊँचा है तभी वह उस ऊँचे और महान् स्वामी को समझ सकता है।

वह आपही अपने आपको जानता है कि वह कितना बड़ा है, उसे और कोई नहीं जानता।

नानक, जो कुछ भी किसीको मिलता है, वह उसकी बख्शीस है और उसकी कृपा से वह मिलती है।

केते लै लै मुकरु पाहि। केते मूरख खाही खाहि॥
केतिंआ दूख भूख सद मार। एहि भि दाति तेरी दातार॥
बंदिखलासी भाणै होइ। होरु आखि न सकै कोइ॥
जे को खाइकु आखणि पाइ। ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ॥
आपे जाणै आपे देइ। आखहि सिभि केई केइ॥
जिसनो बखसे सिफति सालाह। नानक पातिसाही पातिसाह॥२५॥

अमुल गुण अमुल वापार। अमुल वापारीए अमुल भंडार॥
अमुल आवहि अमुल लै जाहि। अमुल भाइ अमुला समाहि॥
अमुलु धरमु अमुलु दीवाणु। अमुलु तलु अमुलु परवाणु॥
अमुलु वखसीस अमुलु नीसाणु। अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु॥
अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ। आखि आखि रहे लिव लाइ॥
आखहि वेद पाठ पुराण। आखहि पढ़े करहि वखिआण॥
आखहि वरमे आखहि इन्द। आखहि गोपी तै गोविन्द॥
आखहि ईसर आखहि सिद्ध। आखहि केते कीते बुद्ध॥

---

२५. उसकी मेहर और बख़्शीस का हिसाब लिखा नहीं जा सकता।
वह बहुत बड़ा दाता है; उसे तिलभर भी लोभ नहीं।
कितने ही, बल्कि अपार योद्धा उस दाता से माँगते रहते हैं।
और भी कितने ही, जिनकी गिनती का अनुमान भी नहीं लगा सकते।
कितने ही विकारों से भरे मनुष्य विषयों को भोग-भोगकर शरीर को क्षीण कर देते हैं!
कितने ही (कृतघ्न) ले-लेकर भी इनकार करते हैं (कि हमें परमेश्वर ने कुछ दिया ही नहीं।)
कितने ही मूढ़ मनुष्य ऐसे हैं, जो केवल पेट भरते रहते हैं!
और कितने ही दुःख और भूख की मार से मरा करते हैं—
दाता! यह भी तेरी बख़्शीस है।
बंधनों से छुटकारा तेरी मरज़ी से ही मिलता है; उसमें कोई दख़ल नहीं दे सकता।
कोई मूर्ख यदि उसमें दख़ल देने का यत्न करे तो वही जानेगा, कि उसे क्या सज़ा भोगनी पड़ेगी।
वह खुद ही हमारी आवश्यकताओं को जानता है कि उसे क्या-क्या देना है और वही-वही वह देता है।
पर बिरले ही (जो कृतज्ञ होते हैं) ऐसा मानते हैं।
नानक! वह बादशाहों का भी बादशाह है, जिसे कि उसने उसके गुण गाने और कृतज्ञता प्रकट करने की बख़्शीस दी है।

आखहि दानव आखहि देव। आखहि सुरि नर मुनि जन सेव॥
केते आखहि आखणि पाहि। केते कहि कहि उठि उठि जाहि॥
एते कीते होरि करेहि। ता आखि न सकहि केई केइ॥
जेवडु भावे तेवडु होइ। नानक जाणै साचा सोइ॥
जे को आखै बोलु विगाड़ु। ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु॥२६॥

सो दरु केहा सो घरु केहा। जितु बहि सरब समाले॥
वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे॥
केते राग परी सिउ कहिअनि केते गावणहारे॥
गावहि तुहनो पउणु पाणी वैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे॥

---

२६. अनमोल हैं तेरे गुण और अनमोल है तेरा लेन-देन;
अनमोल हैं तेरे व्यवहार और अनमोल तेरे गुणों के भंडार।
अनमोल हैं वे, जो उन्हें बिसाहने आते और बिसाहकर ले जाते हैं।
अनमोल है तेरा प्रेम, और अनमोल हैं वे, जो उसमें डूब गये हैं।
अनमोल है तेरा न्याय, और अनमोल ही तेरा न्यायालय।
अनमोल है तेरी तोल, और अनमोल तेरा पैमाना।
अनमोल है तेरी बख्शीसें, और अनमोल तेरी परवानगी का निशाना।
अनमोल है तेरी कृपा, और अनमोल है तेरी आज्ञाएँ।
अनमोल-ही-अनमोल है तू, कुछ बखान नहीं करते बनता।
बखान कर-करके भी अंत में चुप हो जाना पड़ा।
वेदों और पुराणों का पाठ करनेवाले तेरा बखान करते हैं,
और बड़े-बड़े पंडित उनकी व्याख्या करके समझाते हैं।
ब्रह्मा तेरा बखान करता है, और इन्द्र भी;
गोपियाँ और कृष्ण, और शिव तेरा वर्णन करते हैं;
इसी प्रकार गोरखनाथ और सिद्ध भी—
और जिन अनेक बुद्धों को तूने रचा वे भी तुझे बखानते हैं।
दैत्य और देवता भी तथा सुर, नर, मुनि और भक्तजन तेरे विषय में कहते हैं।
अनेक कह रहे हैं, और अनेक कहने का यत्न करते हैं—
और कितने ही कहते-कहते उठ जाते हैं।
जितने तूने रचे हैं, इतने ही यदि तू और रच डाले, तब भी कोई तेरा यथार्थ वर्णन नहीं कर सकेगा।
जितना बड़ा तू चाहे, उतना ही बड़ा हो सकता है।
नानक! वह स्वयं सत्यरूप ही जानता है कि वह कितना बड़ा है।
किंतु यदि कोई बकवादी कहने लगे कि तू इतना बड़ा है, तो उसे गँवार से भी गँवार लेखना चाहिए।

गावहि चितुगुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे ॥
गावहि ईसरु वरमा देवी सोहनि सदा सवारे ॥
गावहि इन्द इन्दासणि बैठे देवतिआ दरि नाले ॥
गावहि सिद्ध समाधी अन्दरि गावनि साध बिचारे ॥
गावहि जती सती संतोषी गावहि वीर करारे ॥
गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले ॥
गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मच्छ पइआले ॥
गावहि रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ॥
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे ॥
गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे ॥
सेई तुधुनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ॥
होरि केते गावहि से मै चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे ॥
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ॥
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ॥
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ॥
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई ॥
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई ॥
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई ॥२७॥

---

२७. तेरा वह कैसा द्वार होगा, और कैसा वह घर होगा, जहाँ तू बैठा-बैठा सारी सृष्टि की सार-सँभाल रखता है?

वहाँ अगणित और अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं। और उन्हें बजानेवाले भी कितने होंगे वहाँ!

कितने ही राग-रागिनियों के गान कितने ही गायक वहाँ गाये जा रहे हैं!

तेरा गुण-गान पवन, जल और अग्नि करते हैं;

धर्मराज तेरे द्वार पर बैठा वहाँ गा रहा है।

और चित्रगुप्त—मनुष्यों के कर्मों का लेखा रखनेवाला—तेरा गान गाता है।

शिव, ब्रह्मा और शक्ति, जिन्हें तूने सँवारा है, तेरा यश गाते हैं।

सिंहासन पर बैठा हुआ इन्द्र भी, देवगणों के साथ, तेरे गुण गा रहा है।

सिद्धजन समाधि लगाये हुए, और साधुजन ध्यान में मग्न तेरा ही गुणानुवाद करते हैं।

यति, सत्य-साधक, और संतोषी तथा भारी-भारी शूरवीर तेरी कीर्ति का गान करते हैं।

वेदपाठी बड़े-बड़े पंडित और ऋषि युग-युग से तेरा गुणगान करते आ रहे हैं।

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि विभूति ॥
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति ॥
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२८॥

मोहिनी सुन्दर स्त्रियाँ स्वर्गों की, मध्यलोकों की और पातालों की, तेरे गुण गाती हैं।
तूने जो रत्न उत्पन्न किये हैं वे, और अड़सठ तीर्थ तेरा गायन करते हैं।
बड़े-बड़े बलवान योद्धा तेरी महिमा गा रहे हैं;
और चारों ही प्रकार के जीव—अंडज, पिंज, स्वदेज और उद्‌भिज।
समस्त ब्रह्माण्ड, उसके खंड और लोक सभी गा रहे हैं, जिन्हें कि रचकर तूने सहारा दे रखा है।
वे ही तेरा गुण-गान करते हैं, जो कि तुझे भाते हैं, और जो तेरे अनुराग-रस में डूबे हुए है।
और भी कितने ही तेरा गुण-गान करते हैं, जो मुझे याद नहीं आ रहे हैं—
नानक उन्हें कैसे गिनाये?
सच्चा, सच्चे नामवाला वह स्वामी सदा वैसे-का-वैसा एकरस रहता है।
जिसने सारी सृष्टि को रचा है, वही अब है, और आगे भी वही रहेगा।
रंग-रंग की, तरह-तरह की यह रचना जिसने रची है, वह उसे रच-रचकर जैसा कि वह बड़ा है उसीके अनुसार उसकी सार-सँभाल कर रहा है।
वह वही करता है जो उसे भाता है; उसे यह नहीं कह सकते कि, 'ऐसा कर, और ऐसा न कर।'
वह स्वामी बादशाहों का भी बादशाह है।
सब-कुछ उसीकी इच्छा पर निर्भर है।

२८. मुद्राएँ तू संतोष और शील की बना, और (स्वमानयुक्त) उद्यम की झोली;
और (परमात्मा के) ध्यान की लगाले भस्म।
काल का (सतत) स्मरण ही तेरी कंथा हो;
और देह को-अपनी रहनी को—कुमारी कन्या की तरह पवित्र रख, और श्रद्धा को अपना दंड बनाले।
सबको तू अपनी ही जमात का समझ; मानों, सारे मनुष्य तेरे 'आई-पंथ' के ही हैं।
(**विशेष**—योगियों के बारह पंथों में से एक पंथ 'आई पंथ' है।)
और यह मान कि मन को जीत लिया तो जगत् को जीत लिया!
'आदेश' अर्थात् प्रणाम उसीको कर, जो 'आदि ईश' है।

भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद ॥
आपि नाथु नाथी सभ जा की रिद्धि सिद्धि अवरा साद ॥
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग ॥
आदेसु तिसै आदेसु।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२६॥

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ॥
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाइ दीवाणु ॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ॥
आहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु ॥
आदेसु तिसै आदेसु।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥३०॥

(**विशेष**—नाथपंथी योगी आपस में एक दूसरे को 'आदेश' कहकर प्रणाम करते हैं।)
जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि है, जिसका अंत नहीं, और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है।

२६. आध्यात्मिक ज्ञान का तू भोजन कर और दया को बनाले अपना भंडारी।
घट-घट में जो नाद बज रहा है वही तेरी सारंगी है।
जिसने सारी सृष्टि को (अपनी डोरी से) नाथ रखा है, वही है नाथ तेरा।
ऋद्धियों और सिद्धियों की (तुच्छ) करामात तेरे लिए नहीं, दूसरों के लिए है—
(वे प्रभु के रास्ते से दूर भटकाकर ले जाती हैं।)
संयोग और वियोग ये दोनों नियम जगत् का नियंत्रण कर रहे हैं-
हमारे भाग्य से हमें अपना भाग मिलता है। 'आदेश' अर्थात् प्रणाम उसीको कर, जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि हैं, जिसका अंत नहीं, और युग-युग से जो 'एकरूपी' ही है।

३०. एक माया को किसी युक्ति से प्रसव हुआ, और तीन चेले या पुत्र उससे जनमे—
एक तो संसार को रचनेवाला, दूसरा पालण-पोषण की सामग्री रखनेवाला भंडारी और तीसरा मृत्यु-दंड देनेवाला न्यायाधीश—अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव।
परमात्मा जैसा चाहता है, वैसी आज्ञा उन्हें देता है, और वैसे ही सारी सृष्टि को चलाता है।
वह तो उन्हें देखता है, पर वह उनको नहीं दीखता।
यह बहुत अद्भुत है।
'आदेश' अर्थात् प्रणाम उसीको कर,

आसणु लोइ लोइ भंडार। जो किछु पाइआ सु एका वार॥
करि करि वेखै सिरजणहारु। नानक सचे की साची कार॥
आदेसु तिसै आदेसु।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु॥३१॥

इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस॥
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस॥
एतु राहि पति पवड़ीआ चड़िऐ होइ इकीस॥
सुणि गल्ला आकास की कीटा आई रीस॥
नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस॥३२॥

आखणि जोरु चुपै नह जोरु। जोरु न मंगणि देणि न जोरु॥
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु। जोरु न राजि मालि मनि सोरु॥
जोरु न सुरती गिआनि विचारि। जोरु न जुगति छुटै संसारु॥
जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ। नानक उत्तमु नीचु न कोइ॥३३॥

जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि है, जिसका अंत नहीं, और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है।

३१. लोक-लोक में उसका आसन है; और लोक-लोक में उसका भंडार।
उनमें जो कुछ रखना था वह एक बार ही रख दिया है।
वह सिरजनहार सृष्टि को रच-रचकर उसे देखता और सँभालता है।
नानक! उस सच्चे (परमात्मा) का काम भी सच्चा है।

३२. एक जीभ की जगह यदि मेरी लाख जीभें हो जायें, और लाख से बीस लाख, तो भी एक-एक जीभ से मैं लाख-लाख बार एक जगदीश्वर का ही नाम जपूँगा।
इस प्रकार मैं उस स्वामी के मार्ग की सीढ़ियों से चढ़कर उसमें लीन हो जाऊँगा।
वहाँ की, उस गगन-मंडल की बातें सुन-सुनकर अधम-से-अधम जीव को भी उस स्वामी से मिलने की ईर्ष्या होने लगती है।
नानक! पर उससे मिलना तो उसकी कृपा-दृष्टि से ही होता है।
बाक़ी सब झूठी बकवास है झूठों की।

३३. न तो मेरी शक्ति कहने की है, और न चुप रहने की ही।
न माँगने की शक्ति है, और न देने की ही।
न जीने की शक्ति है, और न मरने की ही।
राज्य और संपत्ति को प्राप्त करने की भी मुझमें शक्ति नहीं है,
जिनके लिए चित्त इतना चंचल रहता है।

**राती रुती थिती वार। पवन पाणी अगनी पाताल॥
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल॥
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग। तिनके नाम अनेक अनंत॥
करमी करमी होइ वीचारु। सचा आपि सचा दरबारु॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु। नदरी करमी पवै नीसाणु॥
कच पकाई ओथै पाइ। नानक गइआ जापै जाइ॥३४॥**

**धरमखंड का एहो धरमु॥
गिआनखंड का आखहु करमु॥
केते पवण पाणी वैसंतर केते कान्ह महेस॥
केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस॥
केतीआ करमभूमी मेर केते केते धू उपदेस॥
केते इन्द चंद सूर केते केते मंडल देस॥**

न मेरे पास वह शक्ति है, जिससे कि ध्यान और ज्ञान का चिंतन कर सकूँ। और न उस युक्ति को खोज निकालने की ही शक्ति है, जिससे कि संसार के बन्धन से छूट जाऊँ।

जिस (प्रभु) के हाथ में शक्ति है, वही सब रचना रचता है, और वही उसे सँभालता है।

नानक! (ईश्वर के आगे) अपनी शक्ति से न तो कोई ऊँच हो सकता है, और न कोई नीच।

३४. रात्रियों, ऋतुओं, तिथियों और वारों तथा वायु, जल, अग्नि और पाताल के बीच में पृथिवी को मानों धर्म का मन्दिर बनाकर उसने रखा है।

उस पृथिवी में उसने नाना स्वभावों और नाना प्रकारों के जीव रख दिये हैं; उनके अनेक और अनंत नाम हैं।

उन सबको अपने-अपने कर्मों के अनुसार न्याय मिलता है।

वह सच्चा है, और न्यायालय उसका सच्चा है।

वहाँ, उसके दरबार में, उसके चुने हुए ही शोभा और प्रतिष्ठा पाते हैं।

उन्हें ही उसकी दया-दृष्टि और कृपा से वहाँ परवानगी मिलती है।

कच्चे और पक्के की परख भी वहीं पर होती है,

नानक! वहाँ पहुँचकर ही इसका पता लगता है।

'आदेश' अर्थात् प्रणाम उसीको कर,

जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि है, जिसका अंत नहीं, और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है।

केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस ॥
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद ॥
केतीआ खाणी केतीआ वाणी केते पात नरिंद ॥
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु ॥३५॥

गिआनखंडमहि गिआनु परचंडु ॥ तिथै नाद-बिनोद कोड अनंदु ॥
सरमखंडकी वाणी रूपु ॥ तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु ॥
ताकीआ गला कथीआ न जाहि ॥ जेको कहै पिछै पछुताइ ॥
तिथै घड़ीए सुरति-मति मनि-बुधि ॥ तिथै घड़ीऐ सूरा-सिधाकी सुधि ॥३६॥

---

३५. धर्मखंड का—कर्तव्य कर्म के पद का यह वर्णन है;

अब ज्ञानखंड अर्थात् तत्त्व-विचार के पद की दशा का वर्णन करता हूँ।

कितने पवन, कितने जल और कितने अग्नितत्त्व दीख रहे हैं!

कितने कृष्ण और कितने शिव और कितने ब्रह्मा दीखते हैं अनेक रूपों और रंगों की रचना रचते हुए!

कितनी ही कर्मभूमियाँ और कितने ही सुमेरु पर्वत दीख रहे हैं वहाँ!
कितने ध्रुव और कितने ज्ञानोपदेश लेनेवाले दीखते हैं!
वहाँ कितने ही इन्द्र, कितने ही चंद्र, कितने ही सूर्य और कितने ही नक्षत्र-मंडल और लोक दीख रहे हैं!
कितने सिद्ध, बुद्ध और नाथ!
कितनी ही देवियाँ और अनेक नाना रूप दीखते हैं वहाँ!
कितने ही देवता, दानव और मुनि,
तथा कितने ही समुद्र और उनमें से निकले हुए रत्न वहाँ दीख रहे हैं!
जीवों की कितनी ही खानें और कितनी ही उनकी बोलियाँ वहाँ दीख रही हैं! और राजाओं की कितनी ही वंशावलियाँ!
नानक! वहाँ कितने ही ध्यानावस्थित और भक्तजन दीखेंगे, जिनका कोई अंत नहीं।

३६. उस ज्ञानखंड में-आत्म-विचार की उस दशा में ज्ञान-ही-ज्ञान प्रज्वलित रहता है।
वहाँ ऐसा नाद सुनाई देता है, जिससे आनन्द की करोड़ों वृत्तियाँ विकसित होती हैं।
आनंद-खंड में पहुँचने से सुन्दर-सुन्दर वाणियाँ फूटती हैं।
वहाँ की, उस खंड की रचना अनुपम है।
वर्णनातीत है वह अवस्था। यदि कोई वर्णन करने का यत्न करेगा, तो उसे लज्जित होना पड़ेगा।
वहाँ ज्ञान-विज्ञान और मन की विशुद्ध वृत्तियों का सृजन होता है,
और सिद्धों और महात्माओं के ऊँचे मनोभावों का भी।

करमखंड की बाणी जोरु। तिथै होरु न कोई होरु॥
तिथै जोध महाबल सूर। तिनि महि रामु रहिआ भरपूर॥
तिथै सीतो सीता महिमा माहि। ताके रूप न कथने जाहि॥
ना ओहि मरहि न ठागे जाहि। जिनकै रामु वसै मन माहि॥
तिथै भगत वसहि के लोअ। करहि अनंदु सचा मनि सोइ॥
सचखंडि वसै निंरकारु। करि करि वेखै नदरि निहाल॥
तिथै खंड मंडल वरभंड। जे को कथै त अन्त न अन्त॥
तिथै लोअ लोअ आकार। जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार॥
वेखै विगसै करि वीचारु। नानक कथना करड़ा सारु॥३७॥

---

३७. कर्मखंड अर्थात् आचरित (अमली) अवस्था में पहुँचे हुए (साधक) के कार्य-कलाप सबल होते हैं।
उस अवस्था को और कोई नहीं पहुँचता; केवल महान् बली शूर-वीर ही वहाँ पहुँच पाते हैं।
उनमें राम (का बल) कूट-कूटकर भरा हुआ होता है।
(राम की) उस महिमा में सीता-ही-सीता रहती हैं, जिनके रूप का वर्णन नहीं हो सकता। (अर्थात्, जहाँ सच्चे पुरुषार्थ की महिमा है, वहाँ सीता-जैसी पवित्रता निवास करती है।)
वे न मारे जा सकते हैं, न उन्हें कोई ठग सकता है,
जिनके कि हृदय में राम बस रहा है।
वहाँ (प्रभु के) भक्तों की मंडली निवास करती है;
वे आनंदित रहते हैं, क्योंकि उनके हृदय में सत्यरूप परमात्मा वास करता है।
सत्यखंड में स्वयं निराकार परमेश्वर का वास है,
जो सृष्टि को रच-रचकर दया-दृष्टि से उसे निहाल करता है।
वहाँ पहुँचकर (सत्य का साधक) देखता है अनेक खंड, अनेक लोक और अनेक ब्रह्माण्ड।
कौन उसका वर्णन कर सकता है? कहीं उनका अंत ही नहीं।
वहाँ लोकों के ऊपर भी लोक हैं, और उनमें आकार-पर-आकार रचे हुए हैं।
परमात्मा जैसी-जैसी आज्ञा देता है, वैसे-वैसे ही काम वहाँ संपन्न होते हैं।
देख-देखकर और विचार-विचारकर वह प्रसन्न होता है।
नानक! उसका वर्णन करना असंभव है। (लोहे के जैसा कठिन है।)

जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु॥ अहरणि मति वेदु हथीआरु ॥
भउ खल्ला अगनि तपताउ॥ भांडा भांड अमृत तितु ढालि ॥
घड़ीऐ सबदु सचीटकसाल॥ जिनकउ नदरि करमु तिनि कार ॥
नानक नदरी नदरि निहाल ॥३८॥

सलोक

पवणु गुरु पाणी पिता माता धरति महतु ॥
दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु ॥
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि ॥
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ॥
जिनी नामु धिआइआ गए मसक्कति घालि ॥
नानक ते मुख उज्जले केती छुट्टी नालि ॥१॥*

---

३८. संयम को तू भट्ठी बना, और धैर्य को अपना सुनार;
बुद्धि को बना अहरण(निहाई) और आत्म-ज्ञान को हथौड़ा।
(**विशेष**—'वेदु' का अर्थ 'गुरु-वाणी' भी किया गया है।)
परमात्मा के भय की धोंकनी फूक, और तप की अग्नि जला।
प्रेम-भाव का साँचा बनाकर उसमें नाम का अमृत ढालले।
उसी सच्ची टकसाल में 'शब्द' अर्थात् ऊँचा आचरण घड़ा जा सकेगा।
ऐसा काम वही कर सकते हैं, जिनपर कि प्रभुने कृपा-दृष्टि कर दी है,
नानक! मेरा प्रभु एक ही कृपा-दृष्टि से निहाल कर देता है।

१. पवन गुरु है, जल हमारा पिता है, और इतनी बड़ी पृथिवी है हमारी माता;
(**विशेष**—पवन को गुरु यहाँ इसलिए कहा है कि वह परमात्म-ज्ञान का मंत्र फूकता है; जल का गुण जीवन-दान देना है, इसीलिए उसका एक नाम 'जीवन' भी है, अतः वह पितृतुल्य है; पृथिवी पोषण करती है माता के समान; दिन कर्म में लगाता है; और रात विश्राम देती है।)
दिन और रात ये दोनों हमारी धायें हैं, जिनकी गोद में सारा जगत् खेलता है।
धर्म हमारा न्यायाधीश है, जो अच्छे और बुरे कर्मों को अपने आगे जाँचता है, हमारे कर्म हममें से किसीको तो परमात्मा के निकट ले जाते हैं, और किसी को उससे दूर फेंक देते हैं।
जिन्होंने नाम का अभ्यास किया है, वे अपना श्रम सफल कर गये।
नानक! उनके मुख प्रकाशमान हैं, उनके सत्संग से कितने ही लोग (भव-बंधन से) मुक्त हो गये।

*यह सलोक 'माझ की वार' में गुरु अंगदकृत लिखा हुआ है; थोड़ा-सा ही पाठान्तर है।

रागु धनासरी

गगनमै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ॥
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती ॥
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती ॥ अनहता सबद वाजंत भेरी ॥
सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरति नना एकु तोही ॥
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही ॥
सभ महि जोति जोति है सोइ ॥ तिसदै चानणि सभ महि चानणु होइ ॥
गुर साखी जोति परगटु होइ ॥ जो तिसु भावै सु आरती होइ ॥
हरि चरण कवल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पिआसा ॥
कृपाजलु देहि नानक सारिंग कउ होइ जाते तेरै नाइ वासा ॥१॥

सुणि वड्डा

सुणि वड्डा आखै सभु कोइ ॥ केवडु वड्डा डीठा होइ ॥
कीमति पाइ न कहिआ जाइ ॥ कहणै वाले तेरे रहे समाइ ॥

---

१. आकाश-मंडल थाल है, और सूर्य और चंद्र उसमें दोनों दीपक; और उसमें जड़े हुए हैं, ताराओं के मोती।
मलयानिल तेरी धूप है, और पवन तुझे चँवर डुलाता है, और हे ज्योतिस्वरूप, सारे ही कानन तेरे फूल हैं।
हे भव-खंडन (जन्म-मरण से छुड़ानेवाले) यह तेरी कैसी आरती है! अनहद नाद की तुरुही बज रही है जहाँ।
तेरी सहस्रों आँखें हैं, और तोभी तू बिना आँख का है;
तेरे सहस्रों रूप हैं, और तोभी तू बिना रूप का है;
तेरे सहस्रों निर्मल चरण हैं, और तोभी तू बिना चरण का है;
तेरी सहस्रों नासिकाएँ हैं, और तोभी तू बिना घ्राण का है।
मैं तो मुग्ध हूँ तेरी इस लीला पर।
सब तेरी ही ज्योति से ज्योति पा रहे हैं; तेरे ही प्रकाश से सब प्रकाशित हो रहे हैं।
गुरु के उपदेश से वह ज्योति प्रकट होती है।
जो तुझे प्रिय लगे वही तेरी आरती है।
तेरे चरणारविन्दों के मकरंद से मेरा मन (मधुकर) लुब्ध हो गया है—नित्य ही मुझे उस मकरंद की प्यास लगी रहती है।
इस नानक-चातक को अपना कृपा-जल दे दे, जिससे कि वह तेरे नाम में रम जाये।

वड्डे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहीरा ॥
कोइ न जाणै तेरा केता केवडु चीरा ॥
सभि सुरती मिलि सुरति कमाई ॥ सभि कीमति मिलि कीमति पाई ॥
गिआनी धिआनी गुर गुरहाई ॥ कहणु न जाई तेरी तिलु वडिआई ॥
सभि सत सभि तप सभि चंगिआईआ ॥ सिद्धा पुरखा कीआ वडिआईआ ।
तुधु विणु सिद्धी किनै न पाईआ ॥ करमि मिलै नाही ठाकि रहाईआ ॥
आखणवाला किआ वेचारा ॥ सिफती भरे तेरे भंडारा ॥
जिसु तू देहि तिसै किआ चारा ॥ नानक सचु सवारणहारा ॥२॥*

---

२. सुन-सुनकर सब कोई कहते हैं कि, 'तू बड़ा है';
पर क्या किसीने देखा भी है कि तू कितना बड़ा है?
तेरा मोल न तो आँका जा सकता है, और न कहा जा सकता है;
जिन्होंने कहने का यत्न किया भी, वे तुझमें लीन हो गये।
हे मेरे महान् स्वामी! हे अथाह गंभीर! हे सर्वगुणवंत!
कोई नहीं जानता कि तेरी रूप-रेखा का कितना बड़ा विस्तार है।
सारे ध्यानी मिलकर तेरा ध्यान करें, और सारे मोल आँकनेवाले मिलकर तेरा मोल आँकें—
और तत्त्वज्ञानी और सब स्थितप्रज्ञ, और गुरु और बड़े-बड़े गुरु भी मिलकर वर्णन करने लगें,
तोभी तेरी बड़ाई का एक अणु भी वे वर्णन नहीं कर सकेंगे।
सारा सत्य, सारा तप, सारी भलाई और सिद्धपुरुषों की सारी श्रेष्ठता बिना तेरे कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता।
यदि तेरी कृपा प्राप्त हो जाये, तो प्राप्त होने को फिर रहा क्या?
बेचारे वर्णन करनेवाले की क्या गणना?
तेरे भंडार तेरी महिमाओं से भरे पड़े हैं।
जिसे तू देता है उसके आड़े कौन आ सकता है?
नानक! वह सच्चा स्वामी ही सबको सँभालनेवाला है।

*यह 'रहिरास' में से लिया गया है।

आसा

आखा जीवा विसरै मरि जाउ ॥ आखणि अउखा साचा नाउ ॥
साचे नाम की लागै भूख ॥ उतु भूखै खाइ चलीअहि दूख ॥
सो किउ विसरै मेरी माइ ॥ साचा साहिबु साचै नाइ॥
साचे नाम की तिलु वडिआई ॥ आखि थके कीमति नही पाई ॥
जे सभि मिलिकै आखण पाहि ॥ वडा न होवै घाटि न जाइ ॥
ना ओहु मरै न होवै सोगु ॥ देदा रहै न चूकै भोगु ॥
गुणु एहो होरु नाही कोइ ॥ ना को होआ ना को होइ ॥
जेवडु आपि तेवडु तेरी दाति। जिनि दिनु करि कै कीति राति ॥
खसमु विसारहि ते कमजाति ॥ नानक नावै बाझु सनाति ॥३॥*

---

३. यदि मैं नाम का जप करूँ, तो जीऊँ; यदि भूल जाऊँ, तो मर जाऊँ; उस सच्चे के नाम का जप बड़ा कठिन है।

यदि सच्चे नाम की भूख लग उठे, तो खाकर तृप्त हो जाने पर भूख की व्याकुलता चली जाती है।

तब हे मेरी माता! उसे मैं कैसे भुला दूँ?

स्वामी वह सच्चा है, उसका नाम सच्चा है।

उस सच्चे नाम की तिलमात्र भी महिमा बखान-बखानकर मनुष्य थक गये, फिर भी उसका मोल नहीं आँक सके।

यदि सारे ही मनुष्य एक साथ मिलकर उसके वर्णन करने का यत्न करें, तो भी उसकी बड़ाई न तो उससे बढ़ेगी, और न घटेगी।

वह न मरता है, और न उसके लिए शोक होता है।

वह देता ही रहता है नित्य सबको आहार, कभी चुकता नहीं देने से।

उसकी वही महिमा है, कि उसके समान न कोई है, न था, और न होगा।

तू जितना बड़ा है, उतना ही बड़ा तेरा दान है।

तूने दिन बनाया है, और रात भी।

वे मनुष्य अधम हैं, जो तुझ स्वामी को भुला बैठे हैं।

नानक, बिना तेरे नाम के वे विल्कुल नगण्य हैं।

*यह 'रहिरास' में से लिया गया है।

सोहिला-रागु गउड़ी दीपकी

जै घरि कीरति आखीऐ करते का होइ बीचारो।
तितु घरि गावहु सोहिला सिवरिहु सिरजणहारो॥
तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला॥
हउ वारी जितु सोहिलै सदा सुखु होइ॥
नित नित जीअड़े समालीअनि देखैगा देवणहारु॥
तेरे दानै कीमति ना पावै तिसु दाते कवणु सुमार॥
संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु॥
देहु सज्जण असीसड़ीआ जिउं होवै साहिब सिउ मेलु॥
घरि घरि एहो पाहुचा सदड़े नित पावन्ति॥
सद्दणहारा सिमरीऐ नानक से दिह आवन्ति॥४॥

रागु सारंग

हरि बिनु किउ रहिए दुखु व्यापै।
जिहवा सादु न, फीकी रस बिनु, बिनु प्रभ कालु सतापै॥

---

४. जिस घर में परमात्मा का गुण-गान होता है और उसका ध्यान किया जाता है, उस घर में सोहिला गाओ, और सिरजनहार का स्मरण करो।

तुम मेरे निर्भय प्रभु का सोहिला गाओ।

मैं उस आनन्द-गान पर बलि जाता हूँ, जिससे कि 'नित्य सुख' प्राप्त होता है।

नित्य-नित्य सब जीवों की सार-सँभाल रखी जाती है; वह दाता उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखता है।

जब कि तेरे दान का हिसाब नहीं रखा जा सकता, तब फिर तुझ दानी का हिसाब कौन रख सकता है?

विवाह का संवतु, और लग्न का समय आँक लिया जाता है; तब सब संबंधी मुझ दुलहिन पर तेल चढ़ाते हैं।

मेरे साजनो, मुझे आसीस दो कि मेरे स्वामी से मेरा मिलन हो।

यह संदेसा सदा घर-घर पहुँचाया जाता है; ऐसे न्योते हमेशा भेजे जाते हैं।

जिसे बुला भेजा है उसे याद कर लो; नानक, वह दिन आ रहा है।

५. किउ=क्योंकर, कैसे। सादु=स्वादु। रस=हरिभक्ति से आशय है। मानिआ=तृप्त हो गया। रसि=आनन्द-रस लेकर। विगासी=खिल गया। ऊनवि=घुमड़ आया। घनहरु=बादल। ऊनवि....वैरागै=बिना प्रियतम के पावस के घुमड़े बादलों का गरजना, बरसना और कोइल व मोर का बोलना यह सब वैराग्य या अनमनापन पैदा करते हैं। पिरु=प्रियतम।

जबलगु दरसु न परसै प्रीतम तबलगु भूखि पिआसी।
दरसनु देखत ही मनु मानिआ, जल रसि कमल बिगासी॥
ऊनवि घनहरु गरजै बरसै, कोकिल मोर बैरागै।
तरवर बिरख विहग भुअंगम घरि पिरु धन सोहागै॥
कुचिल कुरूप कुनारि कुलखनी पिर कउ सहजु न जानिआ।
हरिरस रंगि रसन नहीं तृपती, दुरमति दूख समानिंआ॥
आइ न जावै ना दुखु पावै, ना दुख दरदु सरीरे।
नानक प्रभ ते सहज सुहेली प्रभ देखत ही मनु धीरे॥५॥

रागु मलार

करउ बिनउ गुर अपने प्रीतम हरि वरु आणि मिलावै।
सुनि घनघोर सीतलु मनु मोरा, लाल-रती-गुण गावै॥
बरसु घना मेरा मनु भीना।
अमृत बूंद सुहानी हियरै गुरि मोहि मनु हरि रसि लीना।
सहजि सुखी वर कामणि पिआरी जिसु गुरवचनी मनु मानिआ॥
हरि वरि नारि भई सोहागणि, मनि तनि प्रेम सुखानिआ॥
अवगण तिआगि भई बैरागनि असथिरु वरु सोहागु हरी।
सोगु विजोगु तिसु कदे न विआपै, हरि प्रभ अपणी किरपा करी॥
आवण जाण नहीं मनु निहचलु पूरे गुर की ओट गही।
नानक रामनामु जपि गुरमुखि धनु सोहागणि साचु सही॥६॥

रागु सूही

अंतरि वसै न बाहरि जाइ। अंमृतु छोड़ि काहे बिखु खाइ॥
ऐसा गिआनु जपहु मन मेरे। होवहु चाकर साचे केरे॥

घर....सौहागै=जिस स्त्री के घर पर उसका प्रियतम है, वही असल में सुहागिन है। कुचिल=बुरे मैले कपड़े पहननेवाली। सुहेली=सुन्दर। सुहागिन। मनु धीरे=मन तृप्त या शान्त हो गया है।

६. करउ बिनउ=विनती करती हूँ। वरु=वर, प्रियतम। लालरती-गुण=प्रियतम की प्रीति का बखान। भीना=बिभोर या सराबोर हो गया। वरि=वरण करके। मनि....सुखानिआ=मन और तन में प्रेम-रस का आनन्द भर गया। असथिरु=स्थिर, अविनाशी। सोगु विजोगु=शोक और वियोग। तिसु=उसे। कदे=कभी। आवण-जाण=जन्म मरण से आशय है। ओट=शरण।

७. साचे केरे=सत्यरूप परमात्मा के। रवै=रमते हैं। बाँधनि....भवै=सारा जगत् माया के

गिआनु धिआनु सभु कोई रवै। बांधनि बांधिआ सभु जगु भवै॥
सेवा करे सुचाकर होइ। जलि थलि महीअलि रवि रहिआ सोइ॥
हम नही चंगे बुरा नही कोइ। प्रणवति नानकु तारे सोइ॥७॥

राग भैरउ

हिरदै नामु सरब धनु धारणु गुर परसादी पाईऐ।
अमर पदारथ ते किरतारथ सहज धिआनि लिव लाईऐ॥
मनरे, राम भगति चितु लाईऐ।
गुरमुखि राम नामु जपि हिरदै सहज सेती घरि जाईऐ॥
भरमु भेदु भउ कबहु न छूटसि आवत जात न जानी।
बिनु हरिनाम कोउ मुकति न पावसि डूबि मुए बिनु पानी॥
धंधा करत सगलि पति खोवसि भरमु न मिटसि गवारा।
बिनु गुरसबद मुकति नही कवही अंधुले धंधु पसारा॥
अकल निरंजन सिउ मनु मानिआ मनही ते मनु मूआ।
अंतरि बाहरि एको जानिआ नानक अवरु न दूआ॥८॥

रागु भैरउ

जगन होम पुंन तप पूजा देह दुखी नित दूख सहै।
रामनाम बिनु मुकति न पावसि मुकति नामि गुरमुखि लहै॥
रामनाम बिनु बिरथे जगि जनमा।
बिखु खावै बिखु बोलै बिनु नावै निहफलु मरि भ्रमना॥
पुसतक पाठ विआकरण वखाणै संधिआ करम तिकाल करै।
बिनु गुरसबद मुकति कहा प्राणी रामनाम बिनु उरझि मरै॥

बंधनों से बँधा चक्कर खा रहा है। महीअलि=महीतल। रवि रहिआ=रम रहा है। चंगे=भले।

८. गुरपरसादी=गुरुकृपा से। अमऱपदारथ=नामरूपी अविनाशी वस्तु पाकर। किरतारथ=कृतार्थ, सफल जीवन। सहज....जाईऐ=सहज साधना से ब्रह्मधाम प्राप्त कर लेना चाहिए। भरमु भेदु भउ=द्वैतभाव का भय। धंधा=प्रपंच। सगलि पति=सारी प्रतिष्ठा। गवारा=गँवार, मूर्ख। मुकति=मुक्ति, मोक्ष। अंधुले=अंधा। मनहीते मनुमूआ=प्रभु-भक्ति में लगे हुए मन ने विषय-रत मन को नष्ट कर दिया। दूआ=दूसरा, अन्य।

९. जगन=यज्ञ। जगन....सहै=यज्ञ, हवन, दान, पुण्य, तप, देव-पूजन आदि अनेक साधनों को कर-कर मनुष्य क्लेश और दुःख देह को देते हैं। मुकति...लहै=गुरु-उपदेश द्वारा प्रभु का नाम लेने से ही मुक्ति मिलती है। विखु=विष; इन्द्रिय-विषयों से तात्पर्य है।

डंड कमंडल सिखा सूत धोती तीरथि गवनु अति भ्रमनु करै।
रामनाम बिनु सांति न आवै जपि हरि हरि नामु सुपारि परै ॥
जटा मुकटु तनि भसम लगाई वसत्र छोडि तनि नगन भइआ।
जेते जीउ जंत जलि थलि महीअलि जत्र कत्र तू सरब जीआ ॥
गुरपरसादि राखिले जन कउ हरिरसु नानक झोलि पीआ ॥९॥

रागु बसंत

चंचल चीतु न पावै पारा। आवत जात न लागै बारा ॥
दूखु घणो मरीऐ करतारा। बिनु प्रीतम को करै न सारा ॥
सभ ऊतम किसु आखउ हीना। हरिभगती सचि नामि पतीना ॥
अउखध करि थाकी बहुतेरे। किउ दुख चूकै बिनु गुर मेरे ॥
बिनु हरिभगती दूख घणेरे। दुख सुख दाते ठाकुर मेरे ॥
रोगु बड़ो किउ बांधउ धीरा। रोगु बूझै सो काटै पीरा ॥
मैं अवगुण मन माहि सरीरा। ढूढत खोजत गुर मेले वीरा ॥
गुर का सबदु दारू हरिनाउ। जिउ तू राखहि तिवै रहाउ ॥
जगु रोगी कह देखि दिखाउ। हरि निरमाइलु निरमलु नाउ ॥
घर महि घरु जो देखि दिखावै। गुर महली सो महलि बुलावै ॥
मन महि मनुआ चित महि चीता। ऐसे हरि के लोग अतीता ॥
हरख सोग ते रहहि निरासा। अमृत चाखि हरिनामि निवासा ॥
आपुपछाणि रहै लिव लागा। जनमु जीति गुरमति दुख भागा ॥
गुर दीआ सचु अंमृत पीवउ। सहजि मरउ जीवत ही जीवउ ॥
अपणे करि राखउ गुर भावै। तुम्हरो होइ सु तुझहि समावै ॥
भोगी कउ दुखु रोग बिआपै। घटि घटि रवि रहिआ प्रभु जापै ॥
सुख दुख ही ते गुरसबदि अतीता। नानक रामु रवै हित चीता ॥१०॥

निहफलु=निष्फल, व्यर्थ। संधिआ=संध्या-वंदन। तिकाल=तीनों समय प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल। सूत=सूत्र, यज्ञोपवीत। वसत्र=वस्त्र। तनि=शरीर से। भइआ=हुआ। किरत कै=कृत्य अर्थात् नाना कर्म करके। महीअलि=महीतल। जत्र कत्र=जहाँ-तहाँ, सर्वत्र। सरब जीआ=सब जीवों में। झोलि=छानकर; मस्त होकर, अघाकर।

१०. चीतु=चित्त। बारा=देर। सारा=सँभाल, रक्षा। ऊतम=उत्तम, श्रेष्ठ। किस आखउ हीना=किसे नीच कहूँ। सचि नामि पतीना=सत्यनाम पर प्रतीति हो गई है। अउखध=औषधि, उपाय, साधन। चूकै=दूर हो। किउ=कैसे। मेले=मिल गये। दारू=दवा। तिवै=वैसे ही। निरमाइलु=निर्माण किया, रचा। घर....दिखावै=घर में ही, अर्थात् इस पिंड के अंदर ही जो असल घर को अर्थात् ब्रह्म-तत्त्व को स्वयं देखकर दूसरों को भी दिखा देता है।

सलोक*

जूठि न रागीं जूठि न वेदीं। जूठि न चंद सूरज की भेदी॥
जूठि न अंनी जूठि न नाई। जूठि न मीहु वसिऐ सभ थाई॥
जूठि न धरती जूठि न पाणी। जूठि न पउणै माहि समाणी॥
नानक निगुरिआ गुण नाही कोइ। मुहि फेरिऐ मुहु जूठा होइ॥१॥

नानक चुलीआ सुचीआ जे भरि जाणै कोइ॥
सुरते चुली गिआन की जोगी का जतु होइ॥
ब्राह्मण चुली संतोख की गिरही का सतु दानु।
राजे चुली निआव की पड़िआ सचु धिआनु॥
पाणी चितु न धोपई मुखि पीतै तिख जाइ।
पाणी पिता जगत का फिरि पाणी सभु खाइ॥२॥

महलि=ब्रह्मधाम से तात्पर्य है। अतीता=विषयों से विरक्त। निरासा=अनासक्त। आपु पछाणि=अपने स्वरूप को पहचानकर। जनमु जीति=जीवन को सफल करके। सहजि. ...जीवउ=सहज ही मृत्यु-भय जीतकर जीवन को अमर कर लूँ। तुझहि समावै=तुझमें ही लीन हो जाता है। रवि रहिआ=रमा हुआ, व्याप्त। भोगी=विषयासक्त। गुरसबदि अतीता=गुरु का उपदेश रहस्य परे है।

१. अपवित्रता न तो रागों में है, और न वेदों में;
न चंद्र और सूर्य की भिन्न-भिन्न गतियों में अपवित्रता है;
(यह मानना कि चंद्र अमुक नक्षत्रगत तथा सूर्य अमुक राशिगत होने पर शुचि तथा अशुचि या शुभ तथा अशुभ होते हैं।)
अपवित्रता न अन्न में है, और न अरस-परस में है;
न अपवित्रता मेह में है, जो सभी जगह बरसता है;
न धरती में अपवित्रता है, और न पानी में;
अपवित्रता पवन में भी नहीं समाई हुई है।
नानक, उस मनुष्य में, जो बिना गुरु का है, कोई भी गुण नहीं।
अपवित्र तो उस मनुष्य का मुख है, जो परमात्मा से विमुख है।

२. यदि कोई भरना जानता है तो चुल्लूभर भी पानी पवित्र है—
(कौन-कौन-सी चुल्लू? यह-यह—)
(अध्यात्म) ज्ञान पंडित के लिए, संयम योगी के लिए,
संतोष ब्राह्मण के लिए, और गृहस्थ के लिए अपनी कमाई में से दान,
राजा के लिए न्याय और विद्वान् के लिए सत्यरूप परमात्मा का ध्यान, पानी प्यास को तो बुझा देता है, पर उससे (मलिन) चित्त को नहीं धोया जा सकता।

*'सारंग की वार' में से

पानी को जगत् का पिता कहा गया है, और अंत में वही सबका विनाश कर देता है।

कलि होई कुते मुही खाजु होआ मुरदारु।
कूड़ु बोलि-बोलि भउकणा चूका धरमु बीचारु॥
जिन जीवंदिआ पति नही मुइआ मंदी सोइ।
लिखिआ होवै नानका करता करे सु होइ॥३॥

धृगु तिन्हा का जीविआ जि लिखि-लिखि वेचहि नाउ॥
खेती जिनकी उजड़ै खलवाड़े किआ थाउ॥
सचै सरमै बाहरे अगै लहहि न दादि॥
अकलि एह न आखीऐ अकलि गवाईऐ बादि॥
अकली साहिबु सेवीऐ अकली पाईऐ मानु।
अकली पढ़ि कै बूझिऐ अकली कीजै दानु॥
नानकु आखै राहु एहु होरि गलां सैतानु॥४॥

गिआन विहूणा गावै गीत। भुखे मुलां घरे मसीत॥
मखटू होइ कै कंन पड़ाए। फकरु करे होरु जाति गवाए॥
गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ। ताकै भूलि न लगीऐ पाइ॥
घालि खाइ किछु हथहु देइ। नानक राहु पछाणहि सेइ॥५॥

---

३. कलियुग में लोगों के मुँह हैं कुत्तों के जैसे, और मुर्दार खाते हैं।
वे झूठ बोल-बोलकर मानों भोंकतें हैं, और सचाई का कुछ भी विचार नहीं रखते।
जीते-जी उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं, और मरने पर भी उनकी बदनामी होती है।
जो भाग्य में लिखा है वही होता है, नानक; वह होकर रहता है, जो कर्त्तार करना चाहता है।

४. धिक्कार है उनके जीने को, जो प्रभु का नाम लिख-लिखकर बेचतें हैं।
जिनकी खेती उजड़ चुकी उनका क्या काम खलिहान में?
जिनके अंतर में सत्य और शील नहीं रहा, उनकी आगे सुनवाई नहीं होगी।
उसे अक्ल न कहो, जो कि वाद-विवाद में खर्च होती हो।
अक्ल से तो प्रभु की सेवा की जाती है; अक्ल से सम्मान मिलता है।
अक्ल से ही पढ़कर समझा जाता है, और उसीके द्वारा सही रीति से दान दिया जाता है।
नानक कहता—यही अक्ल के रास्ते हैं, और सब रास्ते शैतान के हैं।

५. गीत गाने लगते हैं लोग बिना ऊँचे ज्ञान के।
और भूखा मुल्ला मसजिद को ही अपना घर बना लेता है, दिन-रात मसजिद में ही पड़ा रहता है।
निखट्टू अपने कान फड़वा लेते हैं—कनफटे जोगी बन जाते हैं;

सलोक*

वैदु बुलाइआ वैदगी पकड़ि ढंढोले बाहिं।
भोला वैदु न जाणई करक कलेजे माहिं ॥६॥

पउड़ी

इकन्हा गलीं जंजीर बदि रबाणीऐ।
बंधे छुटहि सचि सचु पछाणीऐ ॥
लिखिआ पलै पाइ सो सचु जाणीऐ।
हुकमी होइ निबेड़ु गइआ जाणीऐ ॥
भउजल तारणहारु सबदि पछाणीऐ।
चोर जार जूआर पीड़े वाणीऐ॥
निंदक लाइतबार मिले हड़वाणीऐ ॥
गुरमुखि सचि समाइ सुदरगह जाणीऐ ॥७॥

और कुछ भिखारी बन जाते हैं, और अपनी जात गवाँ देते हैं।

भूलकर भी तुम उनके पैर न छूना, जो अपने आपको गुरु और पीर बतलाते हैं, फिर भी दर-दर भीख माँगते फिरते हैं।

नानक, सही रास्ता उन्होंने ही पहचाना है, जो अपने पसीने की कमाई खाते हैं और दूसरों को भी कुछ देते हैं।

६. पकड़ि...बाहिं=हाथ पकड़कर नाड़ी से रोग का पता लगाता है। करक=पीड़ा; भगवद्विरह की पीड़ा से आशय है।

*'**मलार** की वार' में से

७. कुछ लोगों के गले में जंजीरें पड़ी होती हैं, और उन्हें जेलखाने में ले जाते हैं; पर सच्चे से भी सच्चे प्रभु को पहचानकर वे बंधनों से मुक्त हो जायेंगे।
बड़भागी ही उस सत्यरूप प्रभु को जानता है।
परमात्मा की आज्ञा से मनुष्य के भाग्य का फैसला होता है; उसके सामने हाज़िर होनेपर ही मनुष्य इसे जानेगा।
पहचानले उस 'शब्द' को, जो कि भव-सागर से पार लगायेगा।
चोर, व्यभिचारी और जुआरी से सब-के-सब सरसों की तरह पेर दिये जायेंगे।
निन्दकों और विश्वासघातियों को बाढ़ बहा ले जायेगी।
प्रभु के न्यायालय में उन्हीं पवित्रात्माओं को पहचाना जायेगा, जोकि सत्य में लौलीन होंगे।

धनु सु कागमु कलम धनु धनु भांडा धनु मसु।
धनु लेखारी नानका जिनि नामु लिखाइआ सचु ॥८॥

रे मन डीगि न डोलिऐ सीधे मारगि धाउ।
पाछै बाघु डरावणो आगै अगनि तलाउ ॥१॥

सहसै जीअरा परि रहिओ मोकउ अवरु न ढंगु।
नानक गुरमुखि छूटिऐ हरि प्रीतम सिउ संगु ॥२॥

बाघु मरै मनु मारिऐ जिसु सतिगुर दीखिआ होइ।
आपु पछाणै हरि मिलै बहुड़ि न मरणा होइ ॥३॥

सरवरु हंस न जाणिआ काग कुपंखी संगि।
साकत सिउ ऐसी प्रीति है बूझहु गिआनी रंगि ॥४॥

जनमे का फलु किआ गणी जां हरिभगति न भाउ।
पैधा खाधा वादि है जां मनि दूजा भाउ ॥५॥

सभनि घटी सहु बसै सहबिनु घटु न कोइ।
नानक ते सोहागणी जिन्हा गुरमुखि परगटु होइ ॥६॥

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ। सिरु धरि तली गली मेरी आउ॥
इतु मारगि पैरु धरीजै। सिरु दीजै काणि न कीजै ॥७॥

●

---

८. धन्य वह कागज़, धन्य वह क़लम, धन्य वह दावात और धन्य वह स्याही,— और धन्य वह लिखनहार, नानक, जिसने कि उस सत्य-नाम को लिखा है।

१. डीगि न डोलिए=हिलना-डोलना नहीं, तनिक भी विचलित न होना। तलाउ=तालाब। बाघु=काम से आशय है। अगनि=संभवतः तृष्णा से आशय है।

२. सहसै....रहिओ=संशय में अर्थात् दुविधा में मन पड़ गया है। ढंगु=उपाय, सिउ=से।

३. आपु पछाणै=निजस्वरूप को पहचानले। बहुड़ि=फिर।

४. साकत=शाक्त; आशय है हरि-विमुख से।

५. पैधा खाधा बादि है=पीना-खाना व्यर्थ है। जां...भाउ=जहाँ मन में ईश्वर-भक्ति को छोड़कर सांसारिक विषय-भोगों पर ध्यान है।

६. सभनि...बसै=सभी घटों अर्थात् शरीरों में प्रभु बसा हुआ है। सह=स्वामी, ईश्वर। जिन्हा. ..होइ=जिसके हृदय में वह स्वामी सद्गुरु के उपदेश से प्रकट हो गया।

७. जउ तउ=जो तुझे। सिरु धरि तली=सिर को याने अपनी अहंता को पैरों के नीचे कुचलकर। काणि न कीजै=संकोच न करना।

गुरु अंगद

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१५६१ वि०, वैशाख ११
जन्म-स्थान—हरिके गांव
पिता—फेरू
माता—दयाकौंर
जाति—खत्री
गुरु—बाबा नानकदेव
भेष—गृहस्थ
मृत्यु-संवत्—१६०६ वि, चैत्र शु० १०

फीरोज़पुर जिले के अंतर्गत मुक्तसर से लगभग छह मील पर मत्ते दी सराय नाम के एक गांव में फेरू नाम का एक व्यापारी रहता था। बाद में वह हरिके नामक एक दूसरे गांव में जाकर बस गया। यहां उसका व्यापार बहुत अच्छा चला। फेरू ने यहां दयाकौंर के साथ अपना दूसरा विवाह कर लिया। इन्हीं दयाकौंर के गर्भ से गुरु अंगद का जन्म हुआ, और इनका नाम लहिणा रखा गया।

लहिणा ने मत्ते दी सराय की एक स्त्री के साथ अपना व्याह किया, जिसका नाम खीवी था। कालान्तर में खीवी से एक पुत्री और दो पुत्र हुए। लड़की का नाम था अमरो और लड़कों के नाम थे दासू और दातू।

ये लोग हरिके गांव से उठकर फिर मत्ते दी सराय में रहने लगे। मगर मुग़लों और बलूचियों के हमले से जब मत्ते दी सराय तबाह हो गया, तब ये लोग खडूर नामक गांव में चले आये। यह गांव अमृतसर ज़िले की तरनतारन तहसील में है।

लहिणा पहले दुर्गा के उपासक थे। जिस घटना से यह दुर्गा की उपासना छोड़कर बाबा नानक के अनन्य भक्त हो गये वह यह है। खडूर में जोधा नाम का एक सिक्ख रहता था। गुरु नानक का यह परमभक्त था। रात के पिछले पहर वह नित्यप्रति जपुजी का तथा आसा दी वार का पाठ किया करता था। एक सुंदर रात्रि को लहिणा ने जोधा के मुख से ये मधुर कड़ियां बड़े ध्यान से सुनीं और वह उधर आकृष्ट हो गये—

"जितु सेविऐ सुख पाईऐ सो साहिबु सदा समालीऐ।
जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ॥
मंदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरि निहालीऐ॥
जिउ साहिब नालि न हारीऐ तेवे हा पासा ढालीऐ॥
किछु लाहे उप्परि घालीऐ।"

अर्थात्—सदा याद रख तू उस मालिक को, जिसकी सेवा करने से ही तुझे सच्चा सुख मिलेगा।

ऐसे बुरे कर्म तूने किये ही क्यों, जिनके कारण तुझे ये सारे दुःख भोगने पड़े?

तू बुरा काम बिल्कुल न कर, अपनी ओर तू अच्छी तरह नज़र डाल;

ऐसा पांसा फेक, जिससे कि तू मालिक के साथ बाज़ी न हारे, बल्कि तुझे कुछ लाभ हो

सवेरा होते ही लहिणा ने जोधा से पूछा कि, 'वह किसका रचा भजन था, जो तुम बड़े प्रेम से रात को गा रहे थे?'

'बाबा नानक का रचा' जोधा ने कहा, 'परमात्मा के वे बड़े ऊंचे भक्त हैं। रावी के किनारे वे करतारपुर में विराजते हैं।'

सुनते ही लहिणा का गुरु-विरहातुर मन व्याकुल हो उठा बाबा नानक के दर्शन को, और वह संयोग भी आ गया। अपने कुटुंबियों और कुछ मित्रों को लेकर वे ज्वालामुखी की यात्रा करने जा रहे थे। रास्ते में करतारपुर पड़ता था। वहां ठहर गये बाबा नानक का दर्शन करने के लिए। दर्शन किया और बाबा के उपदेश भी सुने। अंतर का चोला पलट गया। दृष्टि खुल गई। इरादा बदल दिया। आगे नहीं बढ़े, हालांकि साथ के यात्रियों ने बहुत समझाया। बाबा के चरणों को पकड़ लिया, वहीं जमकर बैठ गये। पर सद्गुरु ने कहा—'अभी तू घर लौट ज़ा; बाल-बच्चों से मिलकर कुछ दिनों के बाद फिर मेरे पास आ जाना, तब तुझे मैं अंगीकार करूंगा।'

घर एक बार लौटकर चले तो गये, पर मन को वहीं छोड़कर। घरवालों को समझा-बुझाकर फिर करतारपुर चले आये। सांझ का समय था। बाबा नानक तब खेत पर थे। गाय-भैंसों के लिए घास लाने गये थे। वहींपर लहिणा सीधे पहुंचे और घास के तीन बड़े-बड़े गट्ठरों को एक साथ ही सिर पर लादकर गुरु के घर ले आये। पानी और गीली मिट्टी से सारे कपड़े सन गये थे। घास के इन गट्ठरों को एक-एक करके भी ले जाने के लिए बाबा के दोनों पुत्र भी तैयार नहीं हुए थे। गुरु-सेवा की यह लहिणा की पहली परीक्षा थी।

एक साल गुरु नानकदेव के घर की कच्ची दीवार अति वर्षा के कारण गिर पड़ी थी। गुरु की आज्ञा से उस दीवार को तीन बार गिरा-गिराकर इन्होंने अकेले ही उठाया था।

और भी कितने ही अवसरों पर गुरु नानक ने लहिणा की कठिन-से-कठिन परीक्षाएं लीं, और यह उनमें उत्तीर्ण हुए। आज्ञा-पालन में हमेशा सब शिष्यों और दोनों पुत्रों से भी आगे रहते थे। 'टिक्के दी वार' में आया है—'जिनि कीती सो मनणा को सालु जिवाहे साली।' अर्थात्, लहिणा ने गुरु नानक की हरेक आज्ञा का पालन किया, चाहे वह आज्ञा आवश्यक हो, या अनावश्यक—चाहे वह भटकँटैया हो, चाहे धान। इस पंक्ति का यह भी एक अर्थ किया जाता है कि, 'गुरु नानक के दोनों पुत्र भटकँटैया थे और लहिणा था धान।' गुरु नानकदेव ने अच्छी तरह परखकर देख लिया कि लहिणा ही उनका एक ऐसा शिष्य है, जो उनकी गद्दी का अधिकारी हो सकता है, और इन्हें ही उन्होंने अपनी जगह बिठलाकर भाई बुठ्डा के हाथ से तिलक करा दिया। गुरु की आज्ञा से यह खडूर में जाकर रहने लगे।

गुरु नानकदेव का शरीर छुट जाने पर गुरु अंगद को उनके वियोग का दुःख इतना अधिक असह्य हुआ कि वे एक बंद कोठरी के अंदर जाकर बैठ गये और वहां एकान्त में गुरु के ध्यान में निरन्तर लौलीन रहने लगे। गुरु नानक के एक प्रमुख शिष्य भाई बुठ्डा ने बड़ी मुश्किल से खोजते-खोजते इनका पता लगाया और उस बंद कोठरी से इन्हें बाहर निकाला। गुरु अंगद ने भाई बुठ्डा को छाती से लगाकर उस समय यह सलोक कहे:—

"जिसु पिआरे सिउ नेहु तिसु आगै मरि चल्लिऐ।
ध्रिगु जीवण संसार ताकै पाछै जीवणा॥
जो सिरु साई ना निवै सो सिरु दीजै डारि।
नानक जिसु पिंजर महि विरहा नहीं, सो पिंजरु लै जारि॥"

गुरु अंगद का नित्य का कार्यक्रम तबसे बराबर यह रहने लगा—बड़े सवेरे उठकर ठंडे पानी से नहाना, कुछ समयतक आत्म-चिंतन व जपुजी का पाठ करना, गायकों से आसा दी वार का गान सुनना, और फिर दीन दुखियों और रोगियों, खासकर कोढ़ियों को जाकर देखना और उनकी सेवा शुश्रूषा करना, लोगों को गुरु नानक की शिक्षाओं का उपदेश देना और लंगर में सबको, बिना किसी भेद-भाव के प्रेम के साथ भोजन कराना और किसी-किसी दिन छोटे-छोटे बच्चों के खेल देखना।

शेरशाह द्वारा परास्त हुमायूं बंगाल से जब पश्चिम की तरफ विवश होकर भागा, तब उसे रास्ते में मालूम हुआ कि गुरु नानकदेव की गद्दी पर गुरु अंगद, जो एक पहुंचे हुए फकीर हैं, उपदेश दे रहे हैं। उसने खडूर जाकर गुरु साहब के दर्शन किये, और उनसे आशीर्वाद मांगा, जो उसे मिला। कुछ दिन मुसीबतें झेलने के बाद वह विजयी हुआ।

गुरु अंगद ने ही सबसे पहले गुरु नानकदेव के पदों, पौड़ियों और सलोकों का संग्रह कराकर 'गुरुमुखी' नाम की एक नई लिपि में लिखवाया। इस लिपि का आविष्कार गुरु अंगद ने स्वयं ही किया। इसमें केवल ३५ अक्षर हैं।

परम गुरुभक्त शिष्य अमरू को गुरु-गद्दी पर बिठलाकर और पांच पैसे और एक

नारियल उसके आगे भेंटस्वरूप रखकर गुरु अंगद ने उसे अपना उत्तराधिकारी बना दिया। अमरू उस दिन से गुरु अमरदास के नाम से प्रख्यात हो गये।

चैत सुदी ३, संवत् १६०६ को गुरु अंगद ने सिक्खों को एक बहुत बड़ा भंडारा दिया, और सिक्ख धर्म के सिद्धांतों पर दृढ़ रहने के लिए उन्हें अच्छी तरह समझाया। दूसरे दिन चौथ को बड़े सवेरे स्नान करके जपुजी का पाठ किया, और 'वाह गुरु, वाह गुरु' कहते हुए चोला छोड़ दिया।

गुरु अमरदास को गोइंदबाल में जाकर रहने का आदेश दे गये।

बानी-परिचय

गुरु अंगद ने बहुत अधिक रचना नहीं की। गुरु नानकदेव की सेवा बंदगी करते और उनकी बानी का अपूर्व रस लेते-लेते ही उनका सारा समय बीता। जो थोड़ी-सी बानी गुरु अंगद की ग्रन्थ साहब में महला २ के अंतर्गत संगृहीत मिलती है, वह भिन्न-भिन्न रागों की 'वारों' के रूप में है। 'आसा की वार' में तो इनके अनेक सलोक हैं ही, रामकली, सारंग, मलार, सूही, सिरी, सोरठ और मांझ की भी वारों में इनके कई सलोक और पौड़ियां हैं।

गुरु अंगद ने सीधी-साधी मगर चुभती भाषा में प्रेम का और विरह और वैराग्य का बड़ा सुन्दर निरूपण किया है। गुरु-भक्ति की महिमा के कुछ सलोक तो इनके अनूठे हैं। पद-पद में आत्मानुभूति छलकती है। कुछ रचना तो इनकी ऐसी हैं, जो गुरु नानक की बानी से बिल्कुल मिल जाती है। मांझ और सारंग की वारें तो बहुत ही मधुर हैं। कहते हैं कि 'गुरुमुखी' लिपि का आविष्कार कर चुकने पर आनन्द-विह्वल होकर गुरु अंगद ने सारंग की वार की रचना की थी। हरि-नाम का आकंठ अमृत पीकर सारंग की वार में यह सलोक इन्होंने वस्तुतः परमतृप्ति की ऊंची अवस्था में कहा है—

> ''जिन बड़िआई तेरे नाम की यह रते मन माहि।
> नानक अंमृतु एक है दूजा अंमृतु नाहि॥
> नानक अंमृतु मनै माहि पाईए गुरपरसादि।
> तिनी पीता रंग सिउ जिन कउ लिखिआ आदि॥''

आधार

१ गुरु ग्रन्थ साहिब, सर्वहिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीज़न (भाग २), मॅकालीफ़

●

आसा की वार

सलोक

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार ॥
एते चानण होदिआं गुर बिनु घोर अंधार ॥१॥

इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु ॥
इकन्हा हुकमि समाइ लए इकन्हा हुकमे करे विणासु ॥
इकन्हा भाणै कढ़ि लए इकन्हा माइआ विचि निवासु ॥
एव भि आखि न जापई जि किसै आणे रासि ॥
नानक गुरमुखि जाणीऐ जाकउ आपि करे परगासु ॥

पउड़ी

नानक जीअ उपाइकै लिखि नावै धरमु बहालिआ ॥
ओथै सचो ही सचि निबड़ै चुणि वखि कढे जजमालिआ ॥
थाउ न पाइनि कूड़िआर मुह काल्है दोजकि चालिया ॥
तैरै नाइ रते से जिणि गए हारि गए सि ठगणा वालिआ ॥
लिखि नावै धरमु बहालिआ ॥२॥

---

१. यदि सौ चंद्र उदय हों, और हजार सूरज भी आकाश पर चढ़ जायें, तो भी इतने (प्रचंड) प्रकाश (पुंज) में भी बिना गुरु के घोर अंधकार ही छाया रहेगा।

२. जगत् यह सत्य की कोठरी है; इसके अंदर निवास सत्य का है।

किसी को तो वह अपनी आज्ञा से अपने आपमें लौलीन कर लेता है; और किसीको अपनी आज्ञा से नष्ट कर देता है।

किसीको अपनी मरज़ी से वह माया में से खींच लेता है, और किसी को माया में ही रहने देता है।

यह कहा भी नहीं जा सकता कि वह किसे लाभ पहुँचाता है।

नानक, उसी को पवित्रात्मा जानना चाहिए, जिसके अंतर में वह अपना प्रकाश भर दे।

नानक, उसने जीवों को जन्म देकर उनके नाम लिख लिये, और (उनके कर्मों के

सलोक

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि ॥
हउमै एई बंधना फिरि फ़िरि जोनी पाहि ॥
हउमै कित्थुहु ऊपजै कितु संजमि इह जाइ ॥
हउमै एहो हुकमु है पाइऐ किरति फ़िराहि ॥
हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि ॥
किरपा करे जि आपणी ता गुर का सबदु कमाहि ॥
नानकु कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि ॥

पउड़ी

सेव कीती संतोखई जिन्ही सचो सचु धिआइआ ॥
ओन्ही मंदै पैरु न रखिओ करि सुकृत धरमु कमाइआ ॥
ओन्ही दुनीआ तोड़े बंधना अंनु पाणी थोड़ा खाइआ ॥
तूं बखसीसा अगला नित देवहि चड़हि सवाइआ ॥
वड़िआई वड़ा पाइआ ॥३॥

अनुसार न्याय करने के लिए) धर्मराज को नियुक्त कर दिया।

उसके न्यायालय में सच्चों को ही न्याय मिलता है; जो जंजाल-ग्रस्त होते हैं, उन्हें वह चुन-चुनकर निकाल बाहर कर देता है,

वहाँ झूठे को जगह नहीं मिलती; वे मुहँ को काला करके नरक जाते हैं।

जो तेरे नाम में अनुरक्त हो गये, उन्हीं की जीत होती है; जो ठग होते हैं वे बाज़ी हार जाते हैं।

परमात्मा ने नाम लिख लिये हैं, और धर्मराज को नियुक्त कर दिया है।

३. अहंकार स्वभावतः अहंकार के ही कर्म कराता है।

अहंकार वह (भव) बन्धन है, जिससे बारबार जन्म लेना पड़ता है।

अहंकार यह उत्पन्न कहाँ से होता है, इसका मूल क्या है, और किस साधन से यह नष्ट हो सकता है?

अहंकार वह आदेश है कि मनुष्य अपने कृत कर्मों के अनुसार (संसारचक्र घर) घूमता ही रहे।

अहंकार जीर्ण रोग अवश्य है, पर उसकी एक औषधि भी है, और वह हमारे अंदर ही है।

यदि परमात्मा अपनी कृपा कर दे, तो गुरु का उपदेश सुलभ हो सकता है।

नानक कहता है कि, हे मनुष्यो! इसी एक साधन से दुःख का निवारण हो सकेगा।

सलोक

एह किनेही आसकी दूजै लग्गै जाइ ॥
नानक आसकु कांढ़ीऐ सदही रहै समाइ ॥
चंगै चंगा करि मंने मदै मंदा होइ ॥
आसकु एहु न आखीऐ जि लेखै बरतै सोइ ॥४॥
सलामु जवावु दीवै करे मुढहु घुत्था जाइ ॥
नानक दीवै कूडीआ थाइ न काई पाइ ॥५॥
चाकरु लगौ चाकरी नाले गरबु वादु ॥
मल्ला करे घणेरीआ खसम न पाए सादु ॥
आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु ॥
नानक जिसनो लग्गा तिसु मिलै लग्गा सो परवानु ॥६॥

उन्होंने ही सच्ची सेवा-बंदगी की है, और उन्हें ही संतोष प्राप्त हुआ है, जिन्होंने कि परम सत्य के रूप में परमात्मा का ध्यान किया है।

उन्होंने बुरे मार्ग पर कभी पैर नहीं रखा, सदा सुकर्म ही किया है, और धर्म की ही कमाई की है।

उन्होंने संसार के बंधन तोड़कर फेक दिये हैं, और थोड़े-से अन्न और जल पर उन्होंने अपना निर्वाह किया है।

तू बड़े-से-बड़ा दाता है; तू सदा ही देता है जो सवाया हो जाता है।

उसे उन्होंने ही पाया, जिन्होंने कि उसे बड़े-से-बड़ा भी माना।

४. वह आशिकी कैसी जो दुनिया की चीजों में उलझ जाये? नानक, तू तो उसीको आशिक कह, जो सदा प्रियतम की प्रीति में लौलीन रहता है।

जो मन में ऐसा लाता है कि अच्छा अच्छा है, और बुरा बुरा है, और इसी तरह बरतता है, वह सच्चा आशिक नहीं कहा जायगा।

५. जो मनुष्य मालिक की वंदना करता है और साथ-ही-साथ उसे जवाब भी देता है, या उसके कामों में दोष निकालता है, उसने शुरू से ही गलती की है।

उसकी वंदना और उसकी आलोचना दोनों ही अर्थहीन हैं; उसे, नानक, मालिक के दरबार में जगह मिलने की नहीं।

६. नौकर नौकरी करते हुए जब ग़रूर करता है, और झगड़ा भी,
और बहुत बकझक भी करता है, तो इससे वह अपने मालिक को खुश नहीं करता।
अपने आपको खोकर यदि वह सेवा करे, तो उसे कुछ आदर मिलेगा।
नानक, मालिक को वही पा सकेगा, जिसके मन में उससे मिलने की अभिलाषा होगी; और उसकी अभिलाषा अवश्य पूरी होगी।

जो जीइ होइ सु उग्गवै मुह का कहिआ वाउ ॥
बीजै बिखु मंगै अंमृतु देखहु एहु निआउ ॥७॥

नालि इआणे दोसती कदे न आवै रासि ॥
जेहा जाणै तेहो वरते वेखहु को निरजासि ॥
वसतू अंदरि वसतु समावै दूजी होवै पासि ॥
साहिब सेती हुकमु न चल्लै कही बणै अरदासि ॥
कूड़ि कमाणै कूड़ो होवै नानक सिफति विगासि ॥८॥

नालि इआणे दोसती वडारू सिउ नेहु ॥
पाणी अंदरि लीक जिउ तिसदा थाउ न थेहु ॥९॥

होइ इआणा रे कंमु आणि न सक्कै रासि ॥
जे इक अध चंगी करे दूजी भी वेरासि ॥

पउड़ी

चाकरु लग्गै चाकरी जे चल्लै खसमै भाइ ॥
हुरमति तिसनो अग्गली ओहु वजहु भि दूणा खाइ ॥
खसमै करे बराबरी फिरि गैरति अंदरि पाइ ॥
वजहु गवाए अग्गला मुहे मुहि पाणा खाइ ॥

---

७. जो मन में होता है, वही मुँह से निकलता है।
विष बोता है, और अमृत पाने की आशा करता है; देखो तो इस न्याय को!

८. मूर्ख के साथ मित्रता करने से कभी लाभ नहीं होगा।
वह अपनी समझ से काम करता है; देखे और परखे कोई उसका काम।
पहले (भांडे में से) दूसरी वस्तु निकाल देने पर ही कोई वस्तु उसमें रखी जा सकती है।
(अर्थात् सांसारिक प्रेम से हृदय खाली करने के बाद ही परमात्मा का प्रेम उसमें प्रवेश पायेगा।)
मालिक के ऊपर हुक्म नहीं चल सकेगा; वहाँ तो विनती से ही काम चलेगा।
झूठ की कमाई से झूठ ही हाथ आयेगा;
नानक! प्रभु की स्तुति में ही सच्चा आनन्द है।

९. अजान के साथ की मित्रता और बड़े आदमी के साथ का प्रेम पानी पर खींची हुई लकीरों की तरह हैं, जिनकी न रेख है, न चिह्न।

१०. यदि कोई आज अजान है और वह कोई काम करने बैठ जाये, तो उसे वह ठीक तरह से नहीं कर सकता;

जिसदा दित्ता खावणा तिसु कहीऐ साबासि ॥
नानक हुकमु न चल्लई नालि खसम चल्लै अरदासि ॥१०॥
एह किनेही दाति आपस ते जो पाईऐ ॥
नानक सा करमाति साहिब तुट्ठै जो मिलै ॥११॥
एह किनेही चाकरी जितु भउ खसम न जाइ ॥
नानकु सेवकु काढीऐ जि सेती खसम समाइ ॥

पउड़ी

नानक अंत न जापन्ही हरि ताके पारावार ॥
आपि कराए साखती फिरि आपि कराये मार ॥
इकन्हा गली जंजीरीआ इकि तुरी चड़हि बिसीआर ॥
आपि कराए करे आपि हउ कैसिउ करी पुकार ॥
नानक करणा जिनि कीआ फिरि तिसही करणी सार ॥१२॥

भले ही एकाध काम वह ठीक तरह से कर ले, पर बाकी का सारा काम तो वह बिगाड़ ही देगा।

यदि नौकर अपने मालिक की मरज़ी के अनुसार काम करता है, तो उसका अधिक मान होता है, और उसे दूनी तलब मिलती है।

यदि वह मालिक की बराबरी करता है, तो वह अपनी ईर्ष्या को बढ़ावा देता है, अपनी भारी तलब को गँवा बैठता है, और मुँह पर जूते खाता है।

धन्य है वह, जिसका दिया हुआ तू खाता है।

नानक, हुक्म तेरा नहीं चलेगा; मालिक के आगे तेरी एक विनती ही चलेगी।

११. वह दान कैसा, जो हमारे खुद के माँगने से हमें मिले?

नानक, दान वही अलौकिक है, जो परमात्मा के प्रसन्न होने से हमें मिलता है।

१२. वह कैसी नौकरी, जिसे करने से मालिक का भय नहीं चला जाता? (अर्थात्, जबकि मालिक और नौकर के बीच अविश्वास रहता है, और नौकरी बिना प्रेम के की जाती है।)

नानक, नौकर उसीको कहना चाहिए, जो सदा अपने मालिक के प्रेम में लौलीन रहता है।

नानक, हरि का अंत किसीने देखा नहीं, और उसका न इधर का पार पाया, न उधर का।

वह आपही रचता है, और फिर आपही नष्ट कर देता है।

किसीके गले में जंजीर पड़ी है, और कोई घोड़ों पर चढ़े फिरते हैं।

वह आप ही कराता है और आप ही करता है; शिकायत करें तो किससे?

सलोक

आपे साजे करे आपि जाई भि रक्खै आपि ॥
तिसु विचि जंत उपाइकै देखै थापि उथापि ॥
किसनो कहीऐ नानका सभु किछु आपे आपि ॥

पउड़ी

वडे कीआ वडिआईआ किछु कहणा कहणु न जाइ ॥
सो करता कादर करीसु दे जीआ रिजकु संबाहि ॥
साई कार कमावणी धुरि छोड़ी तिंनै पाइ ॥
नानक एकी बाहरी होर दूजी नाही जाइ ॥
सो करे जि तिसै रजाइ ॥१३॥

देंदे थावहु दित्ता चंगा मनमुखि ऐसा जाणीऐ।
सुरति मति चतुराई ताकी किआ करि आखि बखाणीऐ ॥
अंतरि बहिकै करम कमावै सो चहु कुंडी जाणीऐ।
जो धरमु कमावै तिसु धरम नाउ होवै पापि कमाणै पापी जाणीऐ ॥
तूं आपे खेल करहि सभि कते किआ दूजा आखि बखाणीऐ ॥
जिज्जर तेरी जोति तिच्चर जोती विचि तू बोलहि

नानक, जिसने यह सारी सृष्टि रची है, वही उसकी सार-सँभाल करे।

१३. आपही वह सजाता है; आपही जहाँ जिस वस्तु को बनाकर रखना है वहाँ रख देता है;

इस संसार में जीव-जंतुओं को पैदाकर वह स्वयं उनका जन्म और उनका मरण देखता रहता है।

किससे कहें हम, नानक, जबकि वह आपही सब कुछ करता है?

उस महान् की महामहिमा कुछ कहते नहीं बनती;

वही कर्ता है, वही सर्वशक्तिमान है, वही दाता है;

वही अपने पैदा किये जीवों को आहार पहुँचाता है।

मनुष्य को सिरे से ही वह कर्म करना चाहिए, जिसका कि परमात्मा ने उसे निर्देश कर रखा है।

नानक, एक वही ऐसा परमपद है जिसमें कि हम रम सकते हैं, दूसरा ऐसा और कोई भी पद नहीं।

जो उसे भाता है वही वह करता है।

१४. मनमुखी लोग (दुष्टजन) सोचते हैं कि दाता की अपेक्षा दान अच्छा है। क्या कहा जाये उनकी बुद्धि को, उनकी समझ को, और उनकी होशियारी को!

विणु जोती कोई किछु करिहु दिखा सिआणीऐ ॥
नानक गुरमुखि नदरी आइआ हरि इक्को सुघड़ु सुजाणीऐ ॥१४॥

अक्खी बाझहु वेखणा विणु कन्ना सुनणा ॥
पैरा बाझहु चल्लणा विणु हत्था करणा ॥
जीभै बाझहु बोलणा इउ जीवत मरणा ॥
नानकु हुकमु पछाणिकै तउ खसमै मिलणा ॥१५॥

दिस्सै सुणीऐ जाणीऐ साउ न पाइआ जाइ ॥
रुहला टुंडा अंधुला किउ गलि लग्गैं धाइ ॥
भै के चरण कर भाव के लोइण सुरति करेइ ॥
नानकु कहै सिआणीए इव कंत मिलावा होइ ॥१६॥

जो छिपकर कर्म करता है वह चारों ओर उजागर हो जाता है;

जो धर्म का साधन करता है वह धर्मात्मा कहा जाता है, और जो पाप करता है, वह पापी।

हे कर्तार, तू स्वयं ही सारी लीला रचता है।

जबतक इस घट के अंदर तेरी ज्योति जलती है, तबतक तू इसमें बोल रहा है—

तेरे बिना यदि किसीने कुछ किया हो तो मुझे वह दिखा दे जिससे कि मैं उसे पहचान लूँ।

नानक, गुरु के उपदेश से ही वह हरि दृष्टि में आता है, और चतुर और बुद्धिमान वही एक है।

१५. बिना आँख के देखना, बिना कान के सुनना,
बिना पैर के चलना, बिना हाथ के काम करना,
बिना जीभ के बोलना—यह जीते-जी मर जाना है।
नानक, जो परमात्मा के हुक्म को पहचानता है, वह उसमें लौलीन हो जायेगा।

१६. हम देखते हैं, सुनते हैं और जानते हैं कि परमात्मा सांसारिक विषय-भोगों के बीच प्राप्त नहीं किया जा सकता।

बिना पैर, बिना हाथ और बिना आँख के उसे गले लगाने के लिए कैसे दौड़ा जा सकता है?

(भाव यह है कि जबतक मनुष्य सांसारिक भोगों में लिप्त है, तबतक वह बिना पैर का, बिना हाथ का और बिना आँख का ही है।)

(ईश्वर-) भीरुता के बना तू चरण, भाव के बना हाथ, और सुरति के बना तू नेत्र।

नानक कहता है, इस प्रकार हे सयानी सखी, तू अपने कंत से मिल सकेगी।

रामकली की वार

सलोक

नानक चिंता मति करहु चिंता तिसही हेइ ॥
जल महि जंत उपाइअनु तिना भी रोजी देइ ॥
ओथै हटु न चलई ना को किरस करेइ ॥
सउदा मूलि न होवई ना को लए न देइ ॥
जीआ का आधारु जीअ खाणा एहु करेइ ॥
विचि उपाए साइरा तिना भि सार करेइ ॥
नानक चिंता मत करहु चिंता तिसही हेइ ॥१॥

साहिब अंधा जो कीआ करे सुजाखा होइ ॥
जेहा जाणै तेही वरतै जे सउ आखै कोइ ॥
जिथै सु वसतु न जापई आपे वरतउ जाणि ॥
नानक गाहकु किउ लए सकै न वसतु पछाणि ॥
सो किउ अंधा आखीऐ जि हुकमहु अंधा होइ ॥
नानक हुकमु न बुझई अंधा कहीऐ सोइ ॥२॥

अंधे कै राहि दसिऐ अंधा होइ सु जाइ ॥
होइ सुजाखा नानका सो किउ उझड़ि पाइ ॥
अंधे एहि न आखीअनि जिन मुखि लोइण नाहि ॥
अंधे सेई नानका खसमहु घुत्थे जाहि ॥३॥

---

१. तिसही हेइ=उसे (परमात्मा को) ही है। उपाइअनु=पैदा किये। तिना=उनको। ओथै=वहाँ। हटु=हाट; दुकान। ना को किरस करेइ=न कोई खेती (या व्यापार) करता है। आधारु=आहार। एहु=वही (परमात्मा)। करेइ=जुटाता है। विचि उपाए साइरा=सागर के बीच में जिनको पैदा किया है। तिना भी सार=उनकी भी सँभाल करता है।

२. साहिब...कोइ=जिसे परमात्मा ने अन्धा बना दिया उसे वह स्पष्ट दृष्टि दे सकता है। मनुष्य को जैसा वह जानता है, वैसा उसके साथ बर्ताव करता है, भले ही उसके विषय में मनुष्य सौ बातें कहे, अथवा कुछ भी कहे।

वसतु=वस्तु, परमात्मा से आशय है। न जाप=नहीं दिखाई देता। आपे बरतउ जाणि=जान लो कि अहंकार वहां प्रवृत्त है। किउ लए=क्यों खरीदे। आखिऐ=कहे। हुकमहु=(परमात्मा की) मरजी से। न बुझई=नहीं समझता।

३ अंधेकै.... जाइ=अंधे के दिखाये रास्ते पर जो चलता है, वह स्वयं ही अंधा है। सुजाखा=अच्छी दृष्टिवाला, जिसे अच्छी तरह सूझता या दीखता है। किउ उझड़ि

रतना केरी गुथली रतनी खोली आइ ॥
वखर तै वणजारिआ दूहा रही समाइ ॥
जिन गुणु पलै नानका माणक वणजहि सेइ ॥
रतना सार न जाणई अंधे वतहि लोइ ॥४॥

नानक अंधा होइकै रतन परखण जाइ ॥
रतना सार न जाणई आवै आपु लखाइ ॥५॥

जपु जपु सभु किछु मंनिऐ अवरि कारा सभि बादि ॥
नानक मंनिआ मंनीऐ बुझीऐ गुरपरसादि ॥६॥

सिफति जिन्हा कउ बखसीऐ सेई पोतेदार ॥
कुंजी जिन कउ दितीआ तिन्हा मिले भंडार ॥
जह भंडारी हू गुण निकलहि ते कीअहि परवाणु ॥
नदरि तिन्हा कउ नानका नामु जिन्हा नीसाणु ॥१॥

पाइ=क्यों उजाड़ में भटकने जाय। एहि=उनको। आखीअनि=कहा जाय। मुखि लोइण नाहि=चेहरे पर आंखें नहीं हैं। खसमहु घुत्थे जाहि=स्वामी से भटक गये, उसका रास्ता भूल गये।

४ यदि जौहरी आकर रत्नों की थैली खोलदे, तो वह रत्नों को और गाहक को मिला देता है।

(अर्थात् वह गुरु या संतपुरुष, गाहक या साधक से हरिनामरूपी रत्न को खरीदवा देता है।)

नानक, गुणवान (पारखी) ही ऐसे रत्नों को बिसाहेंगे; किन्तु जो लोग रत्नों का मोल नहीं जानते, वे दुनिया में अंधों की तरह भटकते हैं।

५ सार=कीमत। आवै आपु लखाई=अपना प्रदर्शन करके (अपना मजाक कराकर) लौट जायेगा।

६ जप, तप, सबकुछ उसकी आशा पर चलने से प्राप्त हो जाता है; और सब काम व्यर्थ है।

उसी (मालिक) की आज्ञा तू मान, जिसकी आज्ञा मानने-योग्य है। अथवा उस संतपुरुष की आज्ञा मान, जिसने स्वयं उसकी आज्ञा को माना है); गुरु की कृपा से ही उसे हम जान सकते हैं।

१ जिनको उसका गुण-गान बख्शीस में मिला है वे ही सच्चे हैं;
जिन्हें कुंजी दी गई है, उन्हें ही वे भंडार मिलते हैं।
वे ही भंडार मान्य या प्रमाणित हैं, जिनसे कि सुकर्म प्रकट होते हैं।
नानक, उन्हीं पर परमात्मा की कृपा-दृष्टि होती है, जिन्होंने कि उसके नाम को अपना निशान बना लिया है।

कीता किआ सालाहीऐ करे सोइ सालाहि ॥
नानक एकी बाहरा दूजा दाता नाहि ॥
करता सो सालीहीऐ जिनि कीता आकारु ॥
दाता सो सालाहीऐ जि सभासै दे आधारु ॥
नानक आपि सदीव है पूरा जिसु भंडारु ॥
वडा करि सासाहीऐ अंतु न पारा वारु ॥२॥

जिन वडिआई तेरे नाम की ते रते मन माहि ॥
नानक अंमृतु एकु है दूजा अंमृतु नाहि ॥
नानक अंमृतु मनै माहि पाईऐ गुरपरसादि ॥
तिनी पीता रंग सिउ जिन कउ लिखिआ आदि ॥३॥

आपि उपाए नानका आपे रखै वेक ॥
मंदा किसनौ आखीऐ जा सभना साहिबु एकु ॥
समना साहिबु एकु है वेखै धंधै लाइ ॥
किसै थोड़ा किसै अगला खाली कोई नाहि ॥
आवहि नंगे जाहि नंगे विचे करहि विथार ॥
नानक हुकमु न जाणीऐ अगै काई कार ॥४॥

---

२ सृष्टि की सराहना क्यों करता है तू? तू तो सिरजनहार की सराहना कर। नानक, सिवा उस मालिक के दूसरा कोई देनेवाला नहीं, जिसने सबको सहारा दे रखा है। नानक, वह परमात्मा ही सदा रहनेवाला है, जिसने कि सारे भंडारों को भर रखा है।

उसी बड़े-से-बड़े की तू सराहना कर, जिसका न तो अंत है न कोई पार।

३ जिन...मन माहि=जिन्होंने तेरी महिमा को जान लिया, उन्हें ही हार्दिक आनन्द मिला। गुरु परसादि=गुरु की कृपा से। तिनी....आदि=जिनके माथे पर आदि से ही लिख दिया गया है, वे ही आनन्द से उस अमृत का पान करते हैं।

४ आपि उपाए...वेक=नानक कहता है, तूने स्वयं ही सबको पैदा किया है, और तूने ही सब जीवों को उनके अलग-अलग स्थानों पर रख दिया है। मंदा किसनो आखीए=छोटा किसे कहें। जा=जबकि, क्योंकि। वेखै धंधै लाइ=भिन्न-भिन्न काम-धंधों में लगाकर वह देखता रहता है। अगला=बड़ा। विचे करहि विथार=जन्म और मृत्यु के मध्य-काल में; जीवन-काल में प्रपंच फैलाता है। अगै काईकार=आगे अर्थात् परलोक में—अथवा अगले जन्म में—किस काम में वह लगायेगा।

गुरु कुंजी पाहु निबलु मनु कोठा तनु छति ॥
नानक गुर बिनु मन का ताकु न उघड़े अवर न कुंजी हथि ॥५॥

कथा कहाणी वेदीं आणी पापु पुंनु बीचारु ॥
दे दे लैणा लै लै देणा नरकि सुरगि अवतार ॥
उतप मधिम जातीं जिनसी भरमि भवै संसारु ॥
अमृत वाणी ततु बखाणी गिआन धिआन विचि आई ॥
गुरुमुखि आंखी गुरमुखि जाती सुरतीं करमि धिआई ॥
हुकमु साजि हुकमै विचि रखै हुकमै अंदरि वेखै ॥
नानक अगहु हउमै तुटै तां को लिखए लेखै ॥६॥

मलार की बार

सलोक

नानक दुनीआ कीआं वडिआईआं अगी सेती जालि ॥
एन्ही जलीईं नामु विसारिआ इक न चलीआ नालि ॥१॥

---

५ ताले की कुंजी तो गुरु के ही पास है; मन तेरा कोठा है और यह शरीर है उसकी छत।

नानक, बिना गुरु के मन (हृदय) का द्वारा खुल नहीं सकता, क्योकि किसी दूसरे के पास उसकी कुंजी नहीं है।

६ वेद पढ़नेवाला (देवताओं की) कथा-कहानियां लेकर आये हैं और पाप-पुण्य की उन्होंने व्याख्या की है।

मनुष्य जो-जो देते हैं वही पाते हैं, और जो-जो वे पाते हैं वही देते हैं, और इसलिए अपने कर्मों के अनुसार वे स्वर्ग या नरक में जन्म लेते हैं।

दुनिया भ्रम में भूल रही है कि कौन तो उत्तम जातियां हैं और कौन मध्यम या नीची, और कितने प्रकार की हैं;

किंतु (गुरु की) अमृतवाणी तत्त्व (सत्यवस्तु) का वर्णन करती है, ऊंचे-से-ऊंचे ज्ञान और ध्यानतक पहुंचा देती है।

पवित्रात्मा उसका उच्चारण करते हैं, पवित्रात्मा उसे जानते हैं;

जिन्हें वह ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वे उसमें लौलीन हो जाते हैं, और तदनुसार उनके सब कर्म भी होते हैं।

उसने अपनी आज्ञा से सबको रचा है, और उसी आज्ञा से वह सबको देखता रहता है।

नानक, यदि मनुष्य के अहंकार का अंत हो जाय, तो वह 'उसके' लेखे में आ सकता है।

१ नानक, दुनिया की बड़ाइयों में लगादे आग;

नाउ फकीरै पातिसाहु मूरख पंडित नाउ ॥
अंधे का नाउ पारखू एवै करे गुआऊँ ॥
इलति का नाउ चउधरी कूड़ी परे थाउ ॥
नानक गुरमुखि जाणीऐ कलि का एहु निआउ ॥२॥

सावणु आइआ हे सखी जलहरु बरसनहारु ॥
नानक सुखिसबनु सोहागणी जिन्ह सह नालि पिआरु ॥३॥

सावणु आइआ हे सखी कंतै चिति करेहु ॥
नानक झूरि मरहि दोहागणी जिन अवरी लागा नेहु ॥४॥

सूही की बार

सलोक

जा सुखु ता सहु राविओ दुखि भी संम्हालिओइ ॥
नानकु कहै सिआणीए इउ कंत मिलावा होइ ॥१॥

किसही कोई कोइ मंञु निमाणी इकु तू ॥
किउ न मरीजै रोइ जा लगु चिति न आवही ॥२॥

इन्हीं आग-लगी बड़ाइयों ने तो उसका नाम बिसार दिया है; इनमें से एक भी तो (अंत में) तेरे साथ चलने की नहीं।

२ लो, भिखमंगे को तो कहा जाता है बादशाह, और मूर्ख को दे दिया है नाम पंडित का,

अंधे को कहते हैं पारखी—ऐसी बातें चलती हैं।

बदमाश को कहते हैं चौधरी, और झूठ बोलनेवाले को पूरा सिद्ध।

नानक, कलिकाल का यही न्याय है।

(अच्छे और बुरे की) पहचान कैसे की जाय, यह तो गुरु के मुख (उपदेश) से ही जाना जा सकता है।

३ जलहरु=जलधर, मेघ। नालि=साथ। पिआरु=प्रियतम।

४ कंतै चिति करेहु=पति का ध्यान करो। झूरि मरहि=जलकर मर जायगी। दोहागणी=अभागिनी, व्यभिचारिणी। अवरी लागा नेहु=दूसरे से प्रेम लगा रखा है।

१ जिसका नाम तू सुख में याद करता है, दुःख में भी उसे याद कर।

नानक कहता है, हे सयानी, इसी तरह स्वामी से तेरा मिलन होगा।

२ किसी का कोई मित्र है, तो किसी का कोई; पर मेरा तो—जिसे कोई मान नहीं देता—एक तू ही है।

जबतक कि तू मेरे मन में नहीं समाता, तबतक मैं क्यों न रो-रोकर मरूं।

तुरदे कउ तुरदा मिलै उड़ते कउ उड़ता ॥
जीवते को जीवता, मिलै मुए कउ मूआ ॥
नानक सो सालाहीऐ जिनि कारणु कीआ ॥३॥

जिना भउ तिन नाहि भउ मुचु भउ निभविआह ॥
नानक एहु पटंतरा तितु दीवाणि गइआह ॥४॥

राति कारणि धनु संचीऐ भलके चलणु होइ ॥
नानक नालि न चलई फिरि पछुतावा होइ ॥५॥

जिन्ही चलणु जाणिआ से किउ करहि विथार ॥
चलण सार न जाणनी काज सवारणहार ॥६॥

माझ की वार

सलोक

अट्ठी पहरी अठ खंड नावा खंडु सरीरु ॥
तिसु विचि नउ निधि नामु इकु भालहि गुणी गहीरु ॥
करमवंती सालाहिआ नानक करि गुरु पीरु ॥
चउथै पहरि सबाह कै सुरतिआ उपजै चाउ ॥
तिना दरीआवा सिउ दोसती मनि मुखि सच्चा नाउ ॥

---

३ तुरदे....उड़ना=चलनेवालों का मेल चलनेवालों के साथ और उड़नेवालों का मेल उड़नेवालों के साथ होता है।

सालाहीऐ=सराहना करनी चाहिए। कारणु कीआ=इस महान् नियम (कानून) को स्थापित किया।

४ जो परमात्मा से डरते हैं, उन्हें दूसरों से कोई डर नहीं; जो उससे नहीं डरते, उन्हें (पग-पग पर) बहुत डर है।

नानक, परमात्मा के न्यायालय में दोनों को सामने खड़ा होना होगा।

५ राति कारणि=रात के लिए। संचीऐ=जोड़ता है, जमा करता है। भलके=सवेरे। नालि=साथ में।

६ जो यह जानते हैं कि एक-न-एक दिन यहां से जाना ही है, वे प्रपंच में क्यों पड़ेंगे? अरे! वे अपने जाने की बात नहीं सोचते, बल्कि (अंततक) दुनिया के काम-काज संभालने में लगे रहते हैं।

१ आठ पहरों में मनुष्य दमन करके इन आठों को अपने वश में कर ले। पांचों भयंकर पापों अथवा पांचों इन्द्रियों, और तीनों गुणों को और नवें अपने शरीर को।

ओथै अंमृतु वंडीऐ करमी होइ पसाउ ॥
कंचन काइआ कस्सीऐ वन्नी चड़ै चड़ाउ ॥
जे होवै नदरी सराफ की बहुड़ि न पाई ताउ ॥
सत्ती पहरी सतु भला बहीऐ पड़िआ पासि ॥
ओथै पापु पुंनु वीचारीऐ कूड़ै घटै रासि ॥
ओथै खोटे सट्टीअहि खरे खीचहि साबासि ॥
बोलणु फादलु नानक दुख सुखु खसमै पासि ॥१॥

सोरठ की वार

नकि नथ खसम हथ किरतु धक्के दे ॥
जहां दाणे तहां खाणे नानक सचुहे ॥१॥

एक प्रभु के नाम में नौ निधियां भरी पड़ी हैं, जिसकी खोज में बड़े-बड़े धर्मात्मा रहते हैं।

नानक, भाग्यवानों ने अपने गुरुओं और पीरों के दिखाये मार्ग से उस प्रभु की स्तुति की है।

सवेरे चौथे पहर जो उसका स्मरण करते हैं उन्हें अत्यन्त आनन्द होता है;

उन नदी-नालों से वे प्रेम करते हैं, (जिनमें कि वे नहाते हैं।) और सत्यनाम उनके हृदय में, और उनके मुख में होता है।

वहां अमृत बांटा जाता है और कर्मों के अनुसार उसकी कृपा भी।

कसी जाने पर काया कंचन-सी हो जाती है, उसपर खरा रंग चढ़ जाता है।

सराफ की नजर में चढ़ जाने पर उसे फिर से ताव पर चढ़ाने की जरूरत नहीं रहती।

बाकी के सातों पहरों में अच्छा होगा कि मनुष्य सदा सत्य बोले और ज्ञानीजनों की संगति में बैठे।

वहां बुरे और भले कर्मों का विचार होता है, और असत्य की पूंजी घटती है;

वहां खोटों को रद कर दिया जाता है और सच्चों को शाबाशी दी जाती है।

नानक, अपना दुःख और सुख कहना व्यर्थ है स्वामी से, क्योंकि वह सब-कुछ जानता है।

१ नकेल मालिक के हाथ में है; मनुष्य अपने कर्मों के धक्के से चलता है।

नानक, यह सच है कि जहां वह देता है वहीं मनुष्य खाता है।

सिरी राग की बार

जिसु पिआरे सिउ नेहु तिसु आगै मरि चल्लिऐ ॥
ध्रिगु जीवण संसार ताकै पाछै जीवणा ॥१॥
जो सिरु साईं ना निवै सो सिरु दीजै डारि ॥
नानक जिसु पिंजर महि बिरह नहीं, सो पिंजर लै जारि ॥२॥

●

---

१ जिस प्रीतम से तू प्रेम करता है, उसके रहते ही मरजा; उसके पीछे इस संसार में जीना धिक्कार है।

२ काटकर फेकदे उस सिर को, जो प्रभु के आगे नहीं झुकता। नानक, जिस शरीर में विरह की वेदना नहीं, उसे लेकर तू जलादे।

गुरु अमरदास

चोला-परिचय

जन्म संवत्--१५३६ वि., वैशाख शु. १४

जन्म-स्थान—बसरका गांव, (अमृतसर के पास)

पिता—तेजभान

माता—बखतकौर

जाति—खत्री (भल्ला)

भेष—गृहस्थ

मृत्यु-संवत्—१६३१ वि., भादों पूर्णिमा

तेजभान भल्ला के चार पुत्र थे। अमरदास उनमें सबसे बड़े थे।

अमरदास का विवाह, २४ वर्ष की उम्र में, मनसा देवी के साथ हुआ। इनको मोहरी और मोहन नाम के दो पुत्र हुए, और दानी और भानी नाम की दो पुत्रियां।

अमरदास एक पक्के वैष्णव धर्मानुयायी थे। हर एकादशी को व्रत रखते और नित्यप्रति शालिग्राम की पूजा किया करते थे।

किन्तु इनका कोई गुरु नहीं था, और किसी ऐसे-वैसे को यह गुरु बनाना नहीं चाहते थे। बिना पूरे गुरु के हरि की बाट बताये तो कौन? सो सद्गुरु की खोज में वह व्याकुल रहने लगे।

एक दिन बड़े सबेरे इसी सोच-विचार में पड़े थे कि अपने छोटे भाई के घर से गुरु नानकदेव के एक पद की कुछ कड़ियां एक मधुर कंठ से निकलती हुई इन्होंने सुनीं। गुरु अंगद की पुत्री बीबी अमरो, जिनका ब्याह कुछ ही दिन पहले अमरदास के एक भतीजे के साथ हुआ था, उस पद को मारू राग में गा रही थीं। कड़ियां वे इस पद की थीं—

> ''करणी कागदु मनु मसवाणी बुरा भला दुइ लेख पए।
> जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीऐ तउ गुण नाहीं अंतु हरे॥
> चित चेतसि की नहीं बावरिआ। हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ॥''

इस शब्द-बाण से अमरदास बिंध गये। अंतर के पट उनके खुल गये। बीबी अमरो से उन्होंने इस आकर्षक पद को बार-बार दोहराने के लिए अनुरोध किया, और सुनकर

बहुत आनन्दित हुए। उन्हें अब गुरु के निकट पहुंचने की वह विकट बाट सहज ही हाथ लग गई। बीबी अमरो ने गुरु अंगद की शरण में उन्हें पहुंचा दिया। गुरु की सेवा-बंदगी में वे अब मौज से रहने लगे।

गुरु अंगद की आज्ञा से अमरदास गोइन्दवाल नगर में जाकर बैठ गये। गोविन्द नाम के एक मुकदमे में फंसे हुए व्यक्ति ने गुरु अंगद के आगे यह संकल्प किया था कि यदि वह मुकदमे को जीत गया तो एक नगर बसायेगा। भाग्य से वह मुकदमा जीत गया, और उसने व्यास नदी के तट पर उक्त नगर को बसाया। अमरदास ने उस नये नगर का नाम गोइन्दवाल रखा। अमरदास रात को रोज गोइन्दवाल में रहा करते, और दिन में खडूर आ जाया करते थे। पीछे बसरका छोड़कर स्थायी रूप से गोइन्दवाल में जाकर बस गये।

गोइन्दवाल में अमरदास की दिन-चर्या यह रहा करती थी। काफी वृद्ध थे, फिर भी खूब सवेरे उठते, और गुरु के स्नान के लिए व्यास नदी का जल लेकर नित्यप्रति खडूर जाया करते थे। गोइन्दवाल और खडूर के रास्ते में 'जपुजी' का पाठ करते जाते, जो प्रायः आधे मार्ग में ही समाप्त हो जाता था। खडूर में आकर 'आसा की वार' सुनते, रसोई के बर्तन साफ करते, पानी भरते और जंगल से लकड़ी भी लाकर देते थे। और सांझ को 'सोदरु' सुनते, और गुरु के पैर दबाकर और उन्हें सुलाकर गोइन्दवाल जाकर सोते थे। ऐसी ज्वलन्त गुरुभक्ति थी अमरदास की। यही कारण था कि गुरु अंगद ने इन्हें अपनी गद्दी का सच्चा अधिकारी माना।

गुरु अमरदास की अनूठी साधुता और ऊंची रहनी की अनेक सुन्दर कथाएं प्रसिद्ध हैं। सत्संग को इन्होंने खूब चेताया, और सैकड़ों साधकों को परमात्मा के नाम और भक्ति का ऊंचा उपदेश दिया। इनके उपदेश प्रायः इस प्रकार के हुआ करते थे–

"तुम एक प्रभु का ही नाम सदा सुमरो, हमेशा नम्र रहो और अहंकार को त्याग दो; दान-पुण्य और सारे जप-तप की यह अहंकार अग्नि की तरह जलाकर भस्म कर देता है।

"यह संसार स्वप्न अथवा छाया की तरह है। पुत्र, कलत्र और धन-संपदा सब अनित्य हैं। सपने में रंक हो जाता है राजा, और राजा हो जाता है रंक, पर जागने पर वह वस्तुतः जो होता है वही रहता है। फिर मनुष्य किसके लिए तो आनन्द मनाये, और किसका करे शोक?

"हमेशा तुम दूसरों का भला करते रहो। यह तीन प्रकार से किया जा सकता है : अच्छी सलाह देकर, सामने अच्छा उदाहरण, और हृदय में सदा लोक-कल्याण की कामना रखकर।

"नम्रता और क्षमाशीलता का अभ्यास करो। किसी के भी प्रति अपने मन में द्वेष-भावना न आने दो। यदि कोई तुम्हें कटु या अनादरसूचक शब्द कह जाये, तो उस पर नाराज न होओ, बल्कि उसके साथ नम्रता का व्यवहार करो।

"साधुजनों की सेवा करो; भूखे को भोजन और नंगे को वस्त्र दो। बड़े सबेरे उठकर जपुजी का पाठ करो। अपना कुछ समय जरूर परमात्मा की सेवा-बंदगी में खर्च करो। किसी का भी मन न दुखाओ। नम्र बनो, और अहंकार छोड़ दो। और केवल उस सिरजनहार को ही अपना मालिक मानो।"

गुरु अमरदास की ऊंची साधुता और सहनशीलता इस एक घटना से प्रकट होती है। दातू ने अपने पिता गुरु अंगद के खडूरवाले स्थान को खाली पाकर उसपर अपना अधिकार जमा लिया। उसने कहा कि, बुड्ढा अमरू गुरु-गद्दी पर कैसे बैठ सकता है, वह तो हमारे घर का एक नौकर था। वह गोइन्दवाल भी पहुंचा, और गुरु अमरदास को गालियां देते हुए ठोकर मारकर नीचे गिरा दिया। पर उन्होंने उठकर दातू के पैर पकड़ लिये और हाथ जोड़कर कहा, 'महाराज, आपके चरणों में चोट तो नहीं लगी? कृपाकर मुझे क्षमा कर दीजिए।' गोइन्दवाल की यह घटना क्या भृगु और विष्णु की सुप्रसिद्ध कथा की पुनरावृत्ति नहीं थी?

बादशाह अकबर भी गुरु अमरदास का दर्शन करने एक बार गोइन्दवाल गया था, और लंगर में सबके साथ बैठकर उसने भोजन भी किया था।

गुरु अमरदास ने सिक्ख धर्म के प्रचार के लिए २२ मंजे अर्थात् केन्द्र खोले थे।

अपने दामाद शिष्य जेठा को, जो इनकी सेवा-बंदगी में आठों पहर रहा करते थे, वरदान के रूप में अपनी गद्दी देकर संवत् १६३१ के भादों की पूर्णिमा के दिन वाह गुरु और सतनाम का उच्चारण करते हुए गुरु अमरदास ने शरीर छोड़ा। जेठा चतुर्थ गुरु रामदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। यहां से अब गुरु गोविन्दसिंह तक क्रमशः जो सात गुरु हुए उनकी परंपरा गुरु अमरदास की पुत्री बीबी भानी और उनके पति जेठा के वंश से चली।

गुरु अमरदास की मृत्यु का वर्णन उनके पौत्र आनन्द के पुत्र सुन्दरदास ने पांचवें गुरु अर्जुनदेव के अनुरोध पर लिखा था। इस रचना का नाम 'सदु' है, और यह रामकली राग में गाई जाती है।

बानी-परिचय

गुरु ग्रन्थ साहिब में महला ३ के अंतर्गत जितनी भी रचनाएं हैं वे सब गुरु अमरदास की रची हैं। 'आनन्दु' इनकी सबसे प्रख्यात और सुन्दर रचना है। 'आनन्दु' को उन्होंने अपने एक पौत्र के जन्म पर रचा था, और उस पौत्र का नाम भी 'आनन्दु' रखा था। 'आनन्दु' को आज भी सिक्ख संप्रदाय आनंद उत्सवों पर गाया करता है। यह है भी बड़ी आनन्द-प्रदायिनी रचना।

गुरु अमरदास के भक्ति-रसपूर्ण पद भी सैकड़ों हैं और वारें भी इनकी कई रागों में हैं। बानी इनकी सरस और ऊंचे घाट की है, भाषा तथा भाव दोनों ही दृष्टियों से।

आधार

१ गुरु ग्रन्थ साहिब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन—(भाग ३) मॅकालीफ़

●

आनंदु

रागु रामकली

अनंदु भइआ मेरी माए सतिगुरु मैं पाईआ ॥
सतिगुरु त पाईआ सहज सेती मनि बजीआ बधाईआ ॥
राग रतन परवार परीआ सबद गाबण आईआ ॥
सबदो त गाबहु हरी केरा मनि जिनी वसाईआ ॥
कहै नानकु अनंदु होआ सतिगुरु मैं पाइआ ॥१॥

ए मन मेरिआ तू सदा रहु हरि नाले ॥
हरि नालि रहु तू मंन मेरे दूख सभि बिसारणा ॥
अंगीकारु ओहु करे तेरा कारज सभि सवारणा ॥
सभना गला समरथु सुआमी सो किउ मनहु बिसारे ॥
कहे नानकु मंन मेरे सदा रहु हरि नाले ॥२॥

साचे साहिब किआ नाही घरि तैरै ॥
घरी त तैंरै सभु किछु है जिसु देहि सु पावए ॥
सदा सिफति सलाह तेरी नामु मनि बसाबए ॥
नामु जिनकै मनि वसिआ वाजे सबद घनेरे ॥
कहै नानकु सचे साहिब किआ नाही घरि तैंरै ॥३॥

---

१ सहज सेती=सहज ही, आसानी से। मनि=मन में, हृदय में। राग रतन...आईआ=उत्तम राग और स्वर्ग की अप्सराएं गुण-गान करने के लिए आई हैं। सबदो=स्तुति, गुण। केरा=का (पूर्वी हिन्दी का प्रयोग)। मनि जिनी वसाइआ=हृदय में परमात्मा को बसा लिया है।

२ मेरिआ=मेरे। नाले=पास। सवारणा=संवार लेगा, सुधार देगा। समना गला समरथु सुआमी=वह प्रभु सब वस्तुओं में व्यापक तथा शक्तिमान् है।

३ किआ...तेंरै=तेरे घर में क्या नहीं है? घरि=घर में। जिसु=जिसे। सदा सिफति सलाह तेरी=वह सदा तेरे गुणों की सराहना करेगा। वाजे सबद घनेरे=खूब आनन्द-बधाई बजेगी।

साचा नामु मेरा आधारो ॥
साचु नामु अघारु मेरा जिनि भुखा सभि गवाईआ ॥
करि सांति सुख मनि आइ वसिआ जिनि इच्छा सभि पुजाईआ ॥
सदा कुरबाणु कीता गुरू बिटहु जिस दीआ एहि वडिआईआ ॥
कहै नानकु सुणहु संतहु सबदि घरहु पिआरो ॥
साचा नामु मेरा आधारो ॥४॥

वाजे पंच सबद तितु घरि सभागै ॥
घरि सभागै सबद बाजे कला जितु घरि धारीआ ॥
पंचदूत तुधु वसि कीते कालु कंटकु मारीआ ॥
धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ सि नामि हरि कै लागे ॥
कहे नानकु तह सुख होआ तितु धरि अनहद बाजे ॥५॥

साची लिवै बिनु देह निमाणी ॥
देह निमाणी लिबै बाझहु किआ करे बेचारिआ ॥
सुधु बाझु समरथ कोइ नाही कृपा करि बनिवारिआ ॥
एस नउ होरु थाउ नाही सबदि लागि सवारिआ ॥
कहै नानकु लिवै बाझहु किआ करे बेचारिआ ॥६॥

आनंदु आनंदु सभु को कहै आनंदु गुर से जाणिआ ॥
जाणिआ आनंदु सदा गुर ते कृपा करे पिआरिआ ॥
करि किरपा किलविख कटे गिआन अंजनु सारिआ ॥

---

४ आधारो=अवलंबा। भुखा सभि गवाईआ=मेरी सारी भूख को तृप्त या शांत करता है। पुजाईआ=पूरा करता है। कीता=किया है।

५ तितु घरि सभागै=उस भाग्यवान या सुखी घर में; आशय, उस आनंदमय अंतःकरण में वह परमात्मा निवास करता है। कला=शक्ति, तेज। पंचदूत तुधु बसि कीते=पांचों इन्द्रियों के विषयों को, अथवा काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को वश में कर लिया। धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ=जिनपर तूने आदि से ही कृपा की। अनहद=अनाहत शब्द, जिसे योगी निर्विकल्प समाधि की शून्यावस्था में सुना करता है।

६ साची....निमाणी=सच्चे प्रेम के बिना मनुष्य की देह का कोई आदर नहीं; कौड़ी मोल की भी नहीं। लिबै-बाझहु=बिना प्रेम के। बाझु=बिना, सिवाय। बेचारिआ=बेचारा, अभागा। बनिवारिआ=वनमाली; विष्णु का एक नाम। एस...सवारिआ=उस शब्द के सिवाय दूसरा कोई शरण का स्थान नहीं; उस शब्द में अनुरक्त होकर ही मनुष्य शोभा पाता है।

अंदरहु जिनका मोहु तुटा तिनका सबदु सचै सवारिआ॥
कहै नानकु एहु आनंदु है आनंदु गुर ते जाणिआ॥७॥

बाबा जिसु तू देहि सोई जनु पावै॥
पावै त सो जनु देहि जिसनो होरि किआ करहि बेचारिआ॥
इकि भरमि भूले फिरहि दहदिसि इकि नामि लागि सवारिआ॥
गुरपरसादी मनु भइआ निरमलु जिना भाणा भावए॥
कहै नानकु जिसु देहि पिआरे सोई जनु पावए॥८॥

आवहु संत पिआरिहो अकथ की करह कहाणी॥
करह कहाणी अकथ केरी कितु दुआरै पाईऐ॥
तनु मनु धनु सभु सउपि गुर कउ हुकमि मंनिऐ पाईऐ॥
हुकमु मंनिहु गुरु केरा गावहु सची वाणी॥
कहै नानकु सुणहु सतहु कथिहु अकथ कहाणी॥९॥

ए मन चंचला चतुराई किनै न पाईआ॥
चतुराई न पाईआ किनै तु सुणि मंन मेरिआ॥
एह माइआ मोहणी जिनि एतु भरमि भुलाईआ॥
माइआ त मोहणी तिनै कीती जिनि ठगडली पाईआ॥
कुरबाणु कीता तिसै विटहु जिनि मोह मीठा लाईआ॥
कहै नानकु मन चंचल चतुराई किनै न पाईआ॥१०॥

---

७ पिआरिआ=प्रिय; यह विशेषण गुरु तथा कृपा दोनों के साथ प्रयुक्त हो सकता है। किलविख=किल्विष, पाप। सारिआ=लगाया। तुटा=दूर हो गया। अंदरहु...सवारिआ= सत्यरूप परमात्मा ने उनको अपने शब्द से सजाकर शोभित किया है, जिन्होंने हृदय से मोह को, अर्थात् संसार के प्रति आसक्ति को निकाल बाहर कर दिया है।

८ बाबा=हे पिता। होरि=और। इकि नामि लागि सवारिआ=(और) दूसरे तेरे नाम से प्रीति जोड़कर शोभा पा रहे हैं। गुरपरसादी=गुरु की कृपा से। जिना भाणा भावए=जिन्होंने अपने को परमात्मा की इच्छा के अनुकूल अथवा कृपा के योग्य बना लिया है। जिसु देहि=जिसे तू (आनन्द) प्रदान करता है।

९ करह कहाणी=कथा हम करें अर्थात् कहें। कितु दुआरै पाईऐ=किसके द्वारा शब्द पायें; अथवा, किसके द्वारा उसे हम प्राप्त कर सकेंगे। सउपि=सौंपकर। हुकमि मंनिऐ पाईऐ=उसकी आज्ञा पर चलकर प्राप्त कर सको।

१० चतुराई किनै न पाईआ=परमात्मा को किसी ने चालाकी करके नहीं पाया। माइआ=माया। तिनै कीती=उसने अर्थात् परमात्मा ने रची। जिनि ठगडली पाईआ=जिसने यह इन्द्रजाल

ए मन पिआरिआ तू सदा सचु समाले ॥
एहु कुटंबु तू जि देखदा चलै नाही तैरै नाले ॥
साथि तैरै चलै नाही तिसु नालि किउ चितु लाईऐ ॥
ऐसा कंमु मूले न कीचै जितु अंति पछोताईऐ ॥
सतिगुरु का उपदेसु सुणि तू होवै तैरै नाले ॥
कहै नानकु मन पिआरे तू सदा सचु समाले ॥११॥

अगम अगोचर तेरा अंतु न पाइआ ॥
अंतो न पाइआ किनै तेरा आपणा आपु तू जाणहे ॥
जीअ जंतु सभि खेलु तेरा किआ को आखि बखाणए ॥
आखहि त वेखहि सभु तू है जिमि जगतु उपाइआ ॥
कहै नानकु तू सदा अगमु है तेरा अंतु न पाइआ ॥१२॥

सुरि नर मुनि जन अंमृतु खोजदे सु अंमृतु गुर ते पाइआ ॥
पाइआ अंमृतु गुरि कृपा कीनी सचा मनि वसाइआ ॥
जीअ जंत सभि तुधु उपाए इकि वेखि परसणि आइआ ॥
लबु लोभु अहंकार चूका सतिगुरु भला भाइआ ॥
कहै नानकु जिसनो आपि तुठा तिनि अंमृतु गुर ते पाइआ ॥१३॥

फैलाया। कुरबाणु...लाईआ=मैंने उस परमात्मा पर अपने को निछावर कर दिया है, जिसने कि मरणशील प्राणियों के लिए सांसारिक मोह को इतना आकर्षक बना रखा है।

११ पिआरिआ=प्यारे। सचु समाले=याद रख सत्यरूप परमात्मा को। जि=जिसको। नाले=(अंतकाल में) साथ। तिसु लाईऐ=तो उस कुटुंब में क्यों अपना मन लगाता है? ऐसा...पछोताईऐ=कभी ऐसा न कर जिसे लेकर बाद को तुझे पछताना पड़े। होवै तैरै नाले=वही (अंत में) तेरे साथ जायेगा।

१२ आपणा आपु तू जाणहे=तू आप ही अपने आपको जानता है। खेलु=लीला। को आखि बखाणए=कौन किन शब्दों से वर्णन कर सकता है? आखहि=कहता है। वेखहि=देखता है। उपाइआ=पैदा किया।

१३ खोजदे=खोजते हैं। सचा मनि वसाइआ=सत्य(-रूप परमात्मा) को हृदय में बसा देता है। तुधु उपाए=तूने उत्पन्न किये। इकि वेखि परसणि आइआ=तुझ एक परमात्मा को देखकर मैं तेरे चरणों को छूने आया हूं। लबु=लालसा। लबु...भाइआ=सतगुरु जिनपर अच्छी तरह प्रसन्न हो गये, उनके मन में फिर लालसा, लोभ और अहंकार ये दुर्गुण नहीं रहते। आपि तुठा=परमात्मा स्वयं प्रसन्न हो गया।

भगता की चाल निराली ॥
चाल निराली भगताह केरी विखम मारगि चालणा ॥
लबु लोभु अहंकारु तजि तृसना बहुतु नाही बोलणा ॥
खंनिअहु तिखी वालहु निकी एतु मारगि जाणा ॥
गुरपरसादी जिन्ही आपु तजिआ हरि वासना समाणा ॥
कहै नानकु चाल भगता जुगहु जुगु निराली ॥१४॥

जिउ तू चलाइहि तिव चलह सुआमी होरु किआ जाण गुण तेरे ॥
जिव तू चलाइहि तिवै चलह जिना मारगि पावहे ॥
करि किरपा जिन नामि लाइहि सि हरि हरि सदा धिआवहे ॥
जिसनो कथा सुणाइहि आपणी सि गुरदुआरै सुखु पावहे ॥
कहै नानकु सचे साहिब जिउ भावै तिवै चलावहे ॥१५॥

एहु सोहिला सबदु सुहावा ॥
सबदो सुहावा सदा सोहिला सतिगुरु सुणाइआ ॥
एहु तिनकै मंनि वसिआ जिन धुरहु लिखिआ आइआ ॥
इकि फिरहि घनेरे गला गली किनै न पाइआ ॥
कहै नानकु सबदु सोहिला सतिगुरु सुणाइआ ॥१६॥

पवितु होए से जना जिनी हरि धिआइआ ॥
हरि धिआइआ पवितु होए गुरमुखि जिन्हीं धिआइआ ॥
पवितु माता पिता कुटंब सहित सिउ पवितु संगति सवाइआ ॥

---

१४ विखम=विषम, कठिन, टेढ़ा। खंनिअहु...जागा=वे ऐसे मार्ग पर चलते हैं, जो खांड़े (तलवार) से अधिक पैना और बाल से भी अधिक बारीक होता है। आपु तजिआ=अपने अहंकार का त्याग कर दिया है। हरि वासना समाणी=जिनकी इच्छाएं परमात्मा में केन्द्रित हो गई हैं।

१५ होरु...तेरे=और अधिक तेरे गुणों को हम क्या जान सकते हैं? तिवै=त्यों, वैसेही। मारगि=सही रास्ता। नामि लाइहि=नाम(स्मरण) में लगा देता है। सि=वह। गुरदुआरै=गुरु के द्वारा। सुखु=ब्रह्मानन्द। जिउ भावै=जैसा चाहे।

१६ सोहिला=आनंद का गीत। धुरहु लिखिआ आइआ=आदि से ही भाग्य में लिखकर जो आये हैं। गला गली किनै न पाइआ=बकवाद से किसी ने भी उस शब्द को प्राप्त नहीं किया।

१७ पवितु=पवित्र, से जना=वे लोग। जिनी=जिन्होंने। संगति=संगी-साथी। कहदे=(हरिनाम को) कहते या जपते हैं। सुणदे=(हरिनाम को) सुनते हैं।

कहदे पवितु सुणदे पवितु से पवितु जिनी मंनि बसाइआ ॥
कहै नानकु से पवितु जिनी गुरमुखि हरि-हरि धिआइआ ॥१७॥

करमी सहजु न ऊपजै विणै सहजै सहसा न जाइ ॥
नह जाइ सहसा कितै संजमि रहे करम कमाए ॥
सहसै जीउ मलीणु है कितु संजमि धोता जाए ॥
मंनु धोवहु सबदि लागहु हरि सिउ रहहु चितु लाइ ॥
कहै नानकु गुरपरसादी सहजु उपजै इह सहसा इव जाइ ॥१८॥

जीअहु मैले बाहरहु निरमल ॥
बाहरह निरमल जीअहु त मैले तिनी जनमु जूऐ हारिआ ॥
एह तिसना वडा रोगु लगा मरणु मनहु विसारिआ ॥
वेदा महि नामु उतमु सो सुणहिं नाही फिरहि जिउ वेतालिआ ॥
कहै नानकु जिन सचु तजिआ कूड़े लागे तिनी जनमु जूऐ हारिआ ॥१९॥

जीअहु निरमल बाहरहु निरमल ॥
बाहरहु त निरमल जीअहु निरमल सतिगुर ते करणी कमाणी ॥
कूड़ की सोइ पहुचै नाही मनसा सचि समाणी ॥
जनमु रतनु जिनीं खटिआ भले से वणजारे ॥
कहै नानकु जिन मंनु निरमलु सदा रहहि गुर नाले ॥२०॥

जे को सिखु गुर सेती सनमुखु होवै ॥
होवै त सनमुखु सिखु कोई जीअहु रहे गुर नाले ॥
गुर के चरन हिरदै धिआए अंतर आतमै समाले ॥
आपु छडि सदा रहै परणै गुर बिनु अवरु न जाणै कोए ॥
कहै नानकु सुणहु संतहु सो सिखु सनमुखु होए ॥२१॥

---

१८ करमी=कर्मकांड से। सहज=आत्मज्ञान। सहसा=संशय। कितै....कमाए=कितने ही साधनों और कितनी ही क्रियाओं से। सहसै-जीउ मलीणु है=संशय से मन मैला हो गया है। किंतु संजमि धोता जाए=किस साधन से वह निर्मल होगा। हरि सिउ...लाइ=परमात्मा पर अपना ध्यान लगाते रहो।

१९ जीअहु=हृदय में, अंदर। निरमल=स्वच्छ। मरणु मनहु विसारिआ=मृत्यु (—भय) भुला बैठे। उतमु=उत्तम। फिरहि जिउ वेतालिआ=प्रेत की तरह घूमता फिरता है। कूड़े लागे. ...असत्य को पकड़ बैठे।

२० सतिगुर ते करणी कमाणी=सतगुरु के बताये मार्ग पर चलकर वे सत्कर्म करते हैं। कूड़ की....समाणी=झूठ की गंध भी उनके पास नहीं पहुंचती। उनकी इच्छाओं का लक्ष्य सत्य हो जाता है। खटिआ=कमा लिया। भले वणजारे=समृद्ध व्यापारी।

२१ सिखु=शिष्य। गुर...होवै=गुरु की ओर मुड़े अर्थात् शरण में जाये। जीअहु...नाले=उसका

जे को गुर ते वेमुखु होवै बिनु सतिगुर मुकति न पाए ॥
पावै मुकति न होर थै कोई पूछहु विवेकीआ जाए ॥
अनेक जूनी भरमि आवै विणु सतिगुर मुकति न पाए ॥
फिरि मुकति पाए लागि चरणी सतिगुरू सबदु सुणाए ॥
कहै नानकु वीचारि देखहु विणु सतिगुरु मुकति न पाए ॥२२॥

आवहु सिख सतिगुरु के पिआरिहो गावहु सची वाणी ॥
वाणी त गावहु गुरु केरी वाणीआ सिरि वाणी ॥
जिन कउ नदरि करमु होवै हिरदै तिना समाणी ॥
पीवहु अंमृतु सदा रहहु हरि रंगि जपिहु सारिगपाणी ॥
कहै नानकु सदा गावहु एह सची वाणी ॥२३॥

सतिगुरु बिना होर कची है वाणी ॥
वाणी त कची सतिगुरु बाझहु होर कची वाणी ॥
कहदे कचे सुणदे कचे कची आखि बखाणी ॥
हरि हरि नित करहि रसना कहिआ कछू न जाणी ॥
चितु जिनका हिरि लइआ माइआ बोलनि पए रवाणी ॥
कहै नानकु सतिगुरु बाझहु होर कची वाणी ॥२४॥

गुर का सबदु रतनु है हीरे जितु जड़ाउ ॥
सबदु रतनु जितु मंनु लागा एह होआ समाउ ॥
सबद सेती मनु मिलिआ सचै लाइआ भाउ ॥

हृदय गुरु के साथ रहेगा। आपु छडि=अहंकार को छोड़कर। रहै परणै=मार्ग दर्शन में रहेगा।

२२ वेमुख=विमुख। होरथै=किसी और से। विवेकीआ=ज्ञानियों से। जूनी=योनि। विणु=बिना। फिर=(किन्तु) अंत में।

२३ सची वाणी=वह वाणी, जिसे प्रभु का साक्षात्कार करनेवाले संतों ने रचा है। वाणीआ सिर वाणी=सब वाणियों में ऊंची वाणी। जिन....होवै=जिनपर परमात्मा की कृपा-दृष्टि हो। हरि रंगि=परमात्मा के प्रेम में। सारिगपाणी=धनुष हाथ में लेनेवाले, राम का एक नाम।

२४ कची=झूठी। वाझहु=बिना। कहदे...बखाणी=उस वाणी के जपनेवाले झूठे, सुननेवाले झूठे और उसके रचनेवाले भी झूठे। कहिआ....जाणी=क्या जपते हैं उसके सच्चे मर्म पर ध्यान नहीं देते। हिरि लइआ=हर लिया, मोहित कर लिया। बोलनि पए रवाणी=यंत्रवत् रटते रहते हैं।

आपे हीरा रतनु आपे जिसनो देइ बुझाई ॥
कहै नानकु सबद रतन है हीरा जितु जड़ाउ ॥२५॥

सिव सकति आपि उपाइकै करता आपे हुकमु वरताए ॥
हुकमु वरताए आपि वेखै गुरमुखि किसै बुझाए ॥
तोड़े बंधन होवै मुकतु सबदु मनि वसाए ॥
गुरमुखि जिसनो आपि करे सु होवै एकस सिउ लिव लाए ॥
कहै नानकु आपि करता आपे हुकमु बुझाए ॥२६॥

सिमृति सासत्र पुन्न पाप बीचारदे ततै सार न जाणी ॥
ततै सार न जाणी गुरू बाझहु ततै सार न जाणी ॥
तिही गुणी संसारु भ्रमि सुता सुतिआ रैणि विहाणी ॥
गुर किरपा ते से जन जागे जिना हरि मनि वसिआ बोलहि अंमृत वाणी ॥
कहै नानकु सो ततु पाए जिसनो अनदिनु हरि लिव लावै जागत
रैणि विहाणी ॥२७॥

माता के उदर महि प्रतिपाल सो किउ मनहु बिसारीऐ ॥
मनहु किउ विसारीऐ एवडु दाता जि अगनि महि आहारु पहुचावए ॥
ओसनो किहु पोहि न सकी जिस नउ आपणी लिव लावए ॥
आपणी लिव आपे लाए गुरमुखि सदा समालीऐ ॥
कहै नानकु एवडु दाता सो किउ मनहु विसारीऐ ॥२८॥

---

२५ एहु होआ समाउ=वह परमात्मा में लीन हो जायेगा। सचै लाइआ भाउ=सत्यरूप परमात्मा की भक्ति करता है। आपे=वह (परमात्मा) स्वयं ही। जिसनो देइ बुझाई=जिसे उसके सच्चे मोल का ज्ञान करा देता है।

२६ सिव सकति=दिव्य शक्ति; योगमाया। आपि उपाइकै=स्वयं (जगत् को) उत्पन्न करके। आपि वेखै=स्वयं देखता है। गुरमुखि किसै बुझाए= वह (परमात्मा) किसी-किसी पवित्रात्मा को (इस रहस्य को) समझने की शक्ति देता है। गुरमुखि...लिब लाए=जिसे वह पवित्रात्मा करना चाहता है वह वैसा हो जायेगा, और एक परमात्मा में ही लीन हो जायेगा।

२७ सिमृति...जाणी=स्मृतियां और शास्त्र पुण्य और पाप का निरूपण करते हैं, पर वे परमतत्त्व (परमात्मा) के रहस्य को नहीं जानते। गुरु बाझहु=बिना गुरु के। तिही... विहःणी=यह संसार इन्हीं बातों (माया-मोह के भ्रम) में भूलकर सोते-सोते रात (जीवन) बिता देता है। से=वे। मनि=मन में। अनदिनु=रात-दिन।

२८ किउ=क्यों। एवडु=इतना महान्। जि....पहुंचावए=जिसने अग्नि (गर्भ से आशय है) के बीच में भोजन पहुंचाया। ओसनो....लावए=उसे कोई प्रभावित नहीं कर सकता, जिसे

जैसी अगनि उदर महि तैसी बाहरि माइआ ॥
माइआ अगनि सभ इको जेही करतै खेलु रचाइआ ॥
जा तिसु भाणा ता जंमिआ परवारि भला भाइआ ॥
लिव छुड़की लगी तृसना माइआ अमरु बरताइआ ॥
एह माइआ जितु हरि विसरै मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ ॥
कहै नानकु गुरपरसादी जिना लिव लागी तिनी विचे माइआ पाइआ ॥२९॥

हरि आपि अमुलकु मै मुलि न पाइआ जाइ ॥
मुलि न पाइआ जाइ किसै विटहु रहे लोक विललाइ ॥
ऐसा सतिगुरु जे मिलै तिसनो सिरु सउपीऐ विचहु आपु जाइ ॥
जिसदा जीव तिसु मिलि रहै हरि वसै मनि आइ ॥
हरि आपि अमुलकु है भाग तिना के नानका जिन हरि पलै पाइ ॥३०॥

हरि रासि मेरी मनु वणजारा ॥
हरि रासि मेरी मनु वणजारा सतिगुर ते रासि जाणी ॥
हरि हरि नित जपिहु जीअहु लाहा खटिहु दिहाड़ी ॥
एहु धनु तिना मिलिआ जिन हरि आपे भाणा ॥
कहै नानकु हरि रासि मेरी मनु होआ वणजारा ॥३१॥

परमात्मा अपने में तल्लीन कर लेता है। समालीए=याद रखता है।

२९ जैसी....माइआ=जैसे गर्भ की अग्नि अंदर है, वैसे ही माया की अग्नि बाहर है। माइआ...इको=सबमें एक माया की ही अग्नि जल रही है; अथवा माया की तथा गर्भ की अग्नि एक ही है। जा तिसु....भाइआ=जब वह परमात्मा को प्रसन्न करता है, तब बच्चा जन्म लेता है और परिवार को आनन्द होता है। लिव छुड़की=(गर्भ के अंदर परमात्मा के प्रति बच्चे की जो) लौ लगी हुई थी वह (बाहर आते ही) छूट गई। माइआ अमरु बरताइआ=माया ने अमल (राज) जमा लिया। भाउ दूजा लाइआ=दूसरी अर्थात् सांसारिक आसक्ति में फंस जाता है। गुर....पाइआ=गुरु-कृपा से माया के बीच में भी परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

३० अमुलकु=अनमोल। मुलि....जाइ=मोल नहीं ठहराया जा सकता। किसै.....विललाइ=यद्यपि लोग कितना ही यत्न करें, सिर पटककर मर जायें। आपु जाइ=जिसकी कृपा से अहंकार नष्ट हो जाये। तिसनो सिरु सउपीऐ=उसे अपना सिर सौंप दे, अपने आपको उसके हवाले कर दे। जिसदा....वसि आइ=जिस परमात्मा का यह जीव है उसीसे मिलने का जतन कर, और वह तेरे हृदय में आ बसेगा।

३१ रासि=पूंजी। मनु वणजारा=मन है व्यापारी। जीअहु=हे मेरे जीव। लाहा खटिहु दिहाड़ी=तूझे हररोज़ लाभ होगा।

ए रसना तू अनरसि राचि रही तेरी पिआस न जाइ ॥
पिआस न जाइ होर तु किते जिचरु हरिरसु पलै न पाइ ॥
हरिरसु पाइ पलै पीऐ हरिरसु बहुड़ि न तृसना लागै आइ ॥
एहु हरिरसु करमी पाईऐ सतिगुरु मिलै जिसु आइ ॥
कहै नानकु होरि अनरस सभि वीसरे जा हरि वसै मन आइ ॥३२॥

ए सरीरा मेरिआ हरि तुम महि जोति रखी ता तू जग महि आइआ ॥
हरि जोति रखी तुधु विचि ता तू जग महि आइआ ॥
हरि आपे माता आपे पिता जिनि जीउ उपाइ जगतु दिखाइआ ॥
गुरपरसादीं बुझिआ ता चलतु होआ चलतु नदरी आइआ ॥
कहै नानकु सृसटिका मूलु रचिआ जोति राखी ता तू जगमहि आइआ ॥३३॥

मनी चाउ भइआ प्रभ आगमु सुणिआ ॥
हरि मंगलु गाउ सखी गृहु मंदरु बणिआ ॥
हरि गाउ मंगलु नित सखीए सोगु दूखु न विआपए ॥
गुरचरन लागे दिन सभागे आपण पिरु जापए ॥
अनहत वाणी गुरसवदि जाणी हरिनामु हरिरसु भोगो ॥
कहै नानकु प्रभु आपि मिलिआ करण कारण जोगो ॥३४॥

ए सरीरा मेरिआ इसु जगमहि आइकै किआ तुधु करम कमाइआ ॥
कि करम कमाइआ तुधु सरीरा जा तू जग महि आइआ ॥
जिनि हरि तेरा रचनु रचिआ सो हरि मनि न वसाइआ ॥

---

३२ तू अनरसि राचि रही=तू दूसरे रसों (विषय-भोगों के स्वादों) में अनुरक्त या आसक्त हो रही है। पिआस न....पाइ=तेरी प्यास किसी भी प्रकार से जाने की नहीं, जबतक कि तुझे हरि-रसायन हाथ नहीं लगी। तृसना=तृषा, प्यास। करमी=पूर्व के सत्कर्मों से। होरि अनरस=और दूसरे (विषय) रस।

३३ ए सरीरा....आइआ=हे मेरे शरीर, परमात्मा ने तुझमें अपनी ज्योति भरदी, और तभी तू इस संसार में आया। उपाइ=पैदा करके, बनाकर। गुर...आइआ=गुरु कृपा से जिस मनुष्य ने सच्चा आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया, उसके लिए यह संसार एक खेल है, या खेल जैसा मालूम देता है। सृसटि=सृष्टि।

३४ मनि चाउ भइआ=मन में आनन्द हुआ। आगमु=आगमन। गृहु मंदरु वणिआ=यह घर महल बन गया है (उस प्रभु का स्वागत करने के लिए)। सोगु=शोक। सभागे=सौभाग्यमय। आपण पिरु जापए=अपने प्रियतम का नाम (जिन दिनों) मैं जपूं। सबदि=उपदेश से। करण कारण=करनेवाला और करानेवाला; कारण का भी कारण। जोगो=योग्य, समर्थ।

गुरपरसादी हरि मंनि वसिआ पूरवि लिखिआ पाइआ ॥
कहै नानकु एह सरीर परवाणु होआ जिनि सतिगुर सिउ चित लाइआ ॥३५॥

ए नेत्रह मेरि हो हरि तुम महि जोति धरी हरि बिनु अबरु न देखहु कोई ॥
हरि बिनु अबरु न देखह कोई नदरी हरि निहालिआ ॥
एह विसु संसारु तुम देखदे एहु हरि का रूपु नदरी आइआ ॥
गुरपरसादी बूझिआ जा वेखा हरि इकु है हरि विनु अवरु न कोई ॥
कहै नानकु एहि नेत्र अंध से सतिगुरि मिलिए दिव दृसटि होई ॥३६॥

ए स्रवणहु मेरि हो साचै सुनणै नो पठाए ॥
साचै सुनणै नो पठाए सरीरि लाए सुणहु सतिवाणी ॥
जितु सुणि मनु तनु हरिआ होआ रसना रसि समाणी ॥
सचु अलख विडाणी ताकी गति कही न जाए ॥
कहै नानकु अंमृत नामु सुणहु पवित्र होवहु साचै सुनणै नो पठाए ॥३७॥

हरि जीउ गुफा अंदरि रखिकै बाजा पवणु बजाइआ ॥
बजाइआ बाजा पउण नउ दुआरे परगटु कीए दसवा गुपतु रखाइआ ॥
गुर दुआरै लाइ भावनी इकना दसवा दुआरु दिखाइआ ॥
तह अनेक रूप नाउ नवनिधि तिसदा अंतु न जाई पाइआ ॥
कहै नानकु हरि पिआरै जीउ गुफा अंदरि रखिकै वाजा पवणु वजाइआ ॥३८॥ •

---

३५ किआ तुधु=क्या तूने। रचतु=रचा। परवाणु-प्रमाणरूप, अंगीकार करने योग्य। सिउ=से। चितु लाइआ=मन को लगाया।

३६ मेरिहो=मेरे। जोति=प्रकाश। नदरी निहालिआ=एकाग्र दृष्टि से देख। एहु...आइआ=वह सारा संसार जिसे तू देखता है परमात्मा का प्रतिरूप है, परमात्मा का प्रतिबिम्ब इसमें दिखाई देता है। वेखा=देखा, समझा। सतिगुरु....होई=सतगुरु मिलने से इन (अंधे के नेत्रों) को दिव्यदृष्टि मिल गई।

३७ साचै सुनणै नो पठाए=सत्य को सुनने के लिए तुम यहां भेजे गये थे। सरीरि लाए=शरीर से जोड़े गये थे। जितु=जिसको। हरिआ होआ=हरे या पल्लवित हो जाते हैं। रसना रसि समाणी=जिह्वा हरि-रस में लीन हो जाती है। विडाणी=आश्चर्यमय।

३८ गुफा=शरीर से आशय है। रखिकै=(जीव को शरीर के अंदर) रखकर। बाजा पवणु बजाइआ=सांस फूकदी, जैसे बांसुरी को फूक से बजा दिया। दसवा=दसवां द्वार; ब्रह्म-रन्ध्र से आशय है। गुर दुआरै=गुरु के द्वारा। लाइ भावनी=श्रद्धा-भक्ति देकर।

● "सूरज परकाश" (रास १, अध्याय ५६) में लिखा है कि गुरु अमरदास की रची ये ३८ ही पउड़ी हैं। ३९वीं पउड़ी गुरु रामदास की रची है, और ४०वीं पउड़ी गुरु अर्जुनदेव की।

एहु साचा सोहिला साचै घरि गावहु ॥
गावहु त सोहिला घरि साचै जिथै सदा सचु धिआवहे ॥
सचो धिआवहि जा तुधु भावहि गुरमुखि जिना बुझावहे ॥
इहु सचु सभना का खसमु है जिसु बखसो सो जनु पावहे ॥
कहै नानकु सचु सोहिला सचै घरि गावहे ॥३९॥

अनंदु सुणहु वडभागीहो सगल मनोरथ पूरे ॥
पारब्रहमु प्रभु पाइआ उतरे सगल विसूरे ॥
दूख रोग संताप उतरे सुणी सची वाणी ॥
संत साजन भए सरसे पूरे गुर ते जाणी ॥
सुणते पुनीत कहते पवितु सतिगुरु रहिआ भरपूरे ॥
विनवति नानकु गुरचरण लागे वाजे अनहद तूरे ॥४०॥

रागु सिरी

पंखी विरखि सुहावड़ा सचु चुगै गुर भाइ ॥
हरिरसु पीवै सहजि रहै उड़ै न आवै जाइ ॥
निजघरि वासा पाइआ हरि हरि नामि समाइ ॥
मन मेरे तू गुर की कार कमाइ ॥
गुर कै भाणै जे चलहि ता अनदिनु राचहि हरिनाइ ॥

---

३९ सोहिला=आनन्द-बधाई का गीत। साचै धरि=संत-समाज में। जिथै....धिआवहे=जहां संतजन सदा सत्य परमात्मा का ध्यान करते हैं। जा तुधु भावहि= जो तुझे प्रसन्न करते हैं। खसमु=स्वामी। जिसु....पावहे=जिस जन पर वह कृपा करता है वही उसे पाता है।

४० अनंदु=आनंद-गान। सगल=सकल, सब। उतरे सगल विसूरे=सारे दुःख दूर हो गये। सरसे=आनंदित, प्रफुल्लित। पूरे गुर ते जाणी=पूर्ण सद्गुरु के मुख्र से सुनकर। सुणते=सुननेवाले। कहते=पाठ करनेवाले। तूरे=बाजे।

रागु सिरी

१ सुन्दर है वृक्ष पर का वह पक्षी, जो गुरु की कृपासे सत्य को सदा चुगता रहता है। (पक्षी है यहां संतपुरुष, और वृक्ष है उस साधु का शरीर।)
हरि-नाम का रस वह सतत पान करता है। सहजसुख के बीच बसेरा है उसका, और वह इधर-उधर नहीं उड़ता।
निज नीड़ में उस पक्षी ने वास पा लिया है, और हरि-नाम में वह लौलीन हो गया है।
हे मन! तब तू गुरु की सेवा में रत हो जा।
यदि गुरु के बताये मार्ग पर तू चले, तो फिर हरि-नाम में तू दिन-रात लौलीन रहेगा।
क्या वृक्ष पर के ऐसे पक्षी आदरयोग्य कहे जा सकते हैं, जो चारों दिशाओं में इधर-उधर

पंखी विरख सुहावड़े ऊड़हि चहु दिसि जाहि ॥
जेता ऊड़हि दुख घणे नित दाझहि तै बिललाहि ॥
बिनु गुर महलु न जापई ना अंमृत फल पाहि ॥
गुरमुखि ब्रहमु हरीआवला साचै सहजि सुभाइ ॥
साखा तीनि निवारीआ एक सवदि लिव लाइ ॥
अंमृत फलु हरि एकु है आपे देइ खवाइ ॥
मनमुख ऊभे सुकि गए ना फलु तिन ना छाउ ॥
तिना पासि न वैसीऐ ओना घरु न गिराउ ॥
कटीअहि तै नित जालीअहि ओन्हा सबदु न नाउ ॥
हुकमे करम कमावणे पाइऐ किरति फिराउ ॥
हुकमे दरसनु देखणा जह भेजहि तह जाउ ॥
हुकमे हरि हरि मनि वसै हुकमे सचि समाउ ॥
हुकमु न जाणहि बपुड़े भूलने फिरहि गवारु ॥
मन हठि करम कमावदे नित नित होहि खुआरु ॥
अंतरि सांति न आवई ना सचि लगै पिआरु ॥
गुरमुखीआ मुह सोहणे गुर कै हेति पिआरि ॥
सच्ची भगती सचि रते दरि सच्चै सचिआर ॥

उड़ते रहते हैं?

जितना ही वे उड़ते हैं, उतना ही दुःख पाते हैं; वे नित्य ही जलते और चीखते रहते हैं।

बिना गुरु के न तो वे परमात्मा के दरबार को देख सकते हैं, और न उन्हें अमृत-फल ही मिल सकता है।

स्वभावतः सत्यनिष्ठ गुरमुखों अर्थात् पवित्रात्माओं के लिए ब्रह्म सदा ही एक हरा-लहलहाता वृक्ष है।

तीनों शाखाओं (त्रिगुण) को उन्होंने त्याग दिया है, और एक शब्द में ही लौ उनकी लगी हुई है।

एक हरि का नाम ही अमृतफल है; और वह उसे स्वयं ही खिलाता है।

मनमुखी दुष्टजन ठूंठ से सूखे खड़े रहते हैं; न उनमें फल होते हैं, न छांह।

उनके निकट तू मत बैठ; न उनका घर है न गांव। सूखे काठ की तरह वे काटकर जला दिये जाते हैं;

उनके पास न शब्द (गुरु-उपदेश) है, न (हरि का) नाम।

मनुष्य परमात्मा की आज्ञा के अनुसार कर्म करते हैं, और अपने पूर्व कर्मों के अनुसार अनेक योनियों में चक्कर लगाते रहते हैं।

आए से परवाणु है सभ कुल का करहि उधारु ॥
सभ नदरी करम कमावदे नदरी बाहरि न कोइ ॥
जैसी नदरि करि देखै सच्चा तैसा ही को होइ ॥
नानक नामि वडाईआ करमि परापति होई ॥१॥

राग़ु सिरी

सुणि सुणि काम गहेलीए किआ चल्लहिं बाह लुडाइ ॥
आपणा पिरु न पछाणही किआ मुहु देसइ जाइ ॥
जिनीं सखीं कंतु पछाणिआ हउ तिनके लागउ पाइ ॥
तिन ही जैसी थी रहा सतिसंगति मेलि मिलाइ ॥
मुंधे कूड़ि मुठी कूड़िआरि ॥
पिरु प्रभु साचा सोहणा पाईऐ गुर बीचारि ॥
मनमुखि कंतु न पछाणई तिन किउ रैणि बिहाइ ॥
गरबि अट्टीआ तृप्तना जलहि दुखु पावहि दूजै भाइ ॥
सबदि रत्तीआ सोहागणी तिन बिच्चहु हउमै जाइ ॥

वे उसका दर्शन पाते हैं तो उसकी आज्ञा से ही, और जहां वह भेजता है वहां वे चले जाते हैं।

अपनी इच्छा से ही परमात्मा उनके हृदय में निवास करता है; और उसी की आज्ञा से वे सत्य में तल्लीन हो जाते हैं।

बेचारे मूर्ख जो उसकी आज्ञा को नहीं पहचानते, भ्रांति के कारण इधर-उधर भटकते रहते हैं।

उनके सब कर्मों में हठ होता है, वे दिन-दिन गिरते ही जाते हैं।

उनके अंतर में शांति नहीं आती; न सत्य के प्रति उनमें प्रेम होता है।

सुन्दर हैं उन पवित्रात्माओं के मुख, जिनकी गुरु के प्रति प्रेम-भक्ति है।

भक्ति उन्हीं की सच्ची है, वे ही सत्य में अनुरक्त हैं। और सत्य के दरबार में उन्होंने सत्यरूप परमात्मा को पाया है।

संसार में उन्हीं का आना सौभाग्यमय है, अपने सारे ही कुल का उन्होंने उद्धार कर लिया।

सबके कर्म उसकी नजर में है; कोई भी उसकी नजर से बचा नहीं।

वह जैसी नजर से देखता है, मनुष्य वैसा ही हो जाता है।

नानक! नाम की महिमा तक सुकर्मों से ही पहुंचा जा सकता है।

सदा पिरु रावहि आपणा तिना सुखे सुखि बिहाइ ॥
गिआन विहूणी पिर मुत्तीआ पिरमु न पाइआ जाइ ॥
अगिआन मती अंधेरु है बिनु पिर देखे भुख न जाइ ॥
आवहु मिलहु सहेलीहो मै पिरु देहु मिलाइ ॥
पूरै भागि सतिगुरु मिलै पिरु पाइआ सचि समाइ ॥
से सहीआ सोहागणी जिन कउ नदरि करेइ ॥
खसम पछाणहि आपणा तनु मनु आगै देह ॥
घरि वरु पाइआ आपणा हउमै दूरि करेइ ॥
नानक सोभावंतीआ सोहागणी अनदिनु भगति करेइ ॥२॥

मनमुखि करम कमावणे जिउ दोहागणि तनि सीगारु ॥
सेजै कंतु न आवई नित नित होइ खुआरु ॥
पिर का महलु न पावई ना दीसै घरुबारु ॥

भाई रे इकमनि नामु धिआइ ॥
संता संगति मिलि रहै जसि रामनामु सुखु पाई ॥
गुरमुखि सदा सोहागणी पिरु राखिआ उरधारि ॥
मिठ्ठा बोलिह निवि चलहि सेजै रवै भतारु ॥
सोभावंती सोहागणी जिन गुर का हेतु अपारु ॥

---

२. सुणि......लुडाह=सुत री सुन काम से ग्रसी! तू क्यों ऐसी अकड़ती हुई जा रही है? किआ. ...जाइ=उसे तू अपना मुंह कैसे दिखायगी! जिनीं सखीं = जिन सहेलियों अर्थात् जीवात्माओं ने। हउ = हौं, मैं। तिन ही ... मिलाइ = संत-मंडली में मिलकर मैं भी वैसा ही हो जाऊं। मुंधे ... कूड़िआरि = री मूर्ख नारी, झूठे अपने झूठ में बर्बाद हो गये। पिरु = प्रिय स्वामी। सोहणा = सुन्दर। बीचारि = उपदेश, मार्ग-दर्शन। किउ रैणि बिहाइ = कैसे रात कटेगी। गरबि अट्ठीआ = अहंकार से भरे हुए। दूजै भाइ = सांसारिक प्रेम के कारण। रत्तीआ = अनुरक्त, रंगे हुए। हउमै = अहंकार। रावहि = आनन्दमग्न रखती हैं, रिझाती हैं। तिना सुखे सुखि बिहाइ = उनके दिन सुख ही सुख में बीतते हैं। पिर मुत्तीआ = प्रियतम ने छोड़ दिया। पिरमु न पाइआ जाइ = प्यारा उन्हें मिलने का नहीं। पिरु पाइआ सचि समाइ = प्रियतम को पाकर उसी में लीन हो गई। जिन कउ नदरि करेइ = जिन पर वह कृपा-दृष्टि करता है। खसम = पति। आगै देइ = सौंप देती हैं। अनदिनु = नित्य, दिन-रात।

३. मनमुखि ... सीगारु = मनसुखी अर्थात् हरि-विमुख के सारे कर्म ऐसे समझने चाहिए, जैसे विधवा के शरीर पर के सारे श्रृंगार। खुआरु = बेइज़्ज़त। पिर = प्रियतम; परमात्मा से आशय है। घरबारु = यह लोक। निवि चलहि = नम्रता या शील के साथ बरतती है। रवै भतारु = पति के साथ रमण अर्थात् आनन्द करती है। हेतु = प्रेम। उदउ =

पूरै भागि सतुगुरु मिलै जा भागै का उदय होइ ॥
अंतरहु दुखु भ्रमु कट्टीऐ सुखु परापति होइ ॥
गुर कै भाणै जो चलै दुखु न पावै कोइ ॥
गुर के भाणे विचि अमृतु है सहजे पावै कोइ ॥
जिना परापति तिन पीआ हउमै विचहु खोइ ॥
नानक गुरमुखि नामु धिआईऐ सचि मिलावा होइ ॥३॥

रागु सिरी

बहु भेख करि भरमाईऐ मनि हिरदै कपटु कमाइ ॥
हरि का महलु न पावई मरि विसटा माहि समाइ ॥
नम रे गृह ही माहि उदासु ॥
सचु संजमु करणी सो करे गुरमुखि होइ परगासु ॥
गुर कै सबदि मनु जीतिआ गति मुकति घरै महि पाइ ॥
हरि का नासु धिआईऐ सतिसंगति मेलि मिलाइ ॥
जे लख इसतरीआ भोग करहि नवखंड राजु कमाहि ॥
बिन सतगुर सुखु न पावई फिरि जोनी पाहि ॥
हरि हारु कंठि जिनी पहिरिआ गुरचरणी चितुलाइ ॥
तिना पिछै रिधि सिधि फिरै ओना तिलु न तमाइ ॥
जो प्रभ भावै सो थीऐ अवरु न करणा जाइ ॥
जनु नानकु जीवै नामु लै हरि देवहु सहजि सुभाइ ॥४॥

रागु भैरउ

जाति का गरब न करियहु कोइ।
ब्रहम बंदे सो ब्रहमण होइ ॥

उदय। कट्टीऐ = कट जाता है। परापति = प्राप्त। भाणै = कहने के अनुसार गुरु के उपदेश पर। हउमै = अहंकार। सचि = सत्यरूप परमात्मा से। मिलावा = मिलना, भेंट।

४. बहु ... भरमाइऐ = नाना भेष धारण कर-कर इधर-उधर भटकते फिरते हैं। कमाइ = कमाते हैं। महलु = निजधाम; परमपद। विसटा = विष्ठा; नरक। उदासु = संन्यासी। करणी = सत्कर्म। गति = सद्गति। जे ... करहि = यदि तू लाखों स्त्रियों के साथ विषय-भोग करे। जोनी पाहि = योनियों अर्थात् जन्मों को पायेगा। हरि ... पहिरिआ = हरिनामरूपी हार को जिन्होंने अपने कंठ में धारण कर लिया। तिलु न तमाइ = तिलमात्र भी लोभ नहीं। थीऐ = होता है। देवहु सहजि सुभाइ = स्वाभाविक करुणा से अपना नाम-रस दे दो।

जाति का गरब त करि मूरख गवारा।
इसु गरब ते चलहि बहुत बिकारा॥
चारे वरन आखै सब कोई।
ब्रहमु-बिंदु ते सभ ओपति होइ॥
माटी एक सगल संसारा।
बहु बिधि भांडे घड़ै कुम्हारा॥
पंच ततु मिलि देही आकारा।
घटि वधि को करै बीचारा॥
कहतु नानक इह जीउ करमबंधु होई।
बिनु सतिगुर भेटे मुकति न होई॥५॥

राग़ु भैरउ

जोगी गृही पंडित भेखधारी। ए सूते अपणै अहंकारी॥
माइआ मदिमाता रहिआ सोइ। जागतु रहै न मूसै कोइ॥
सो जागै जिसु सति गुरु मिलै। पंचदूत ओहु वसगति करै॥
सो जागै जो ततु वीचारै। आपि मरै अवरा नह मारै॥
सो जागै जो एको जाणै। परकरति छोड़ै ततु पछाणै॥
चहु वरना विचि जागै कोइ। जमै कालै ते छूटै सोइ॥
कहत नानक जनु जागै सोइ। गिआन अंजनु जाकी नेत्री होइ॥६॥

रागु भैरउ

दुविधा मनमुख रोगि बिआपै तृसना जलहि अधिकाई।
मरि-मरि जंमहि ठउर न पावहि बिरथा जनम गवाई॥

---

५. चलहि = पैदा होते हैं। आखै = कहते हैं। बिंदु = वीर्य। ओपति = उत्पत्ति। सगल = सकल, सारा। भांडे = बर्तन। घटि वधि = छोटा-बड़ा। करमबंधु होई = कर्मों से माया के बंधन में पड़ता है। भेटे = मिलकर।

६. सूते = सो रहे हैं, अचेत पड़े हुए हैं। अहंकारी = अहंकार में। माता = बेहोश, गाफिल। ने मूसै = चोरी नहीं करता। पंचदूत = पांचों इन्द्रियों से तात्पर्य है। वसगति = वश में। ततु = आत्म-तत्त्व। आपि मरै अवरा नह मारै = अपने अहंकार को मारता है, दूसरों को नहीं मारता। एको = एक परमात्मा को ही। परकरति = प्रकृति; माया। पछाणै = अच्छी तरह जानता है। चहु वरना विचि = ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों वर्णों में। कोइ = विरला ही। जमै कालै ते = यम और काल से। नेत्री = अंतर के नेत्रों में; अंतःकरण में।

मेरे प्रीतम करि किरपा देहु बुझाई।
हउमै रोगी जगतु उपाइआ बिनु सबदै रोगु न जाई॥
सिमृति सासतर पड़हि मुनि केते बिनु सबदै सुरति न पाई।
त्रैगुण सभे रोगिं विआपे ममता सुरति गवाई॥
इकि आपे काढ़ि लए प्रभि आपे गुर सेवा प्रभि लाए।
हरि का नासु निधानो पाइआ सुखु वसिआ मनि आए॥
चउथी पदवी गुरमुखि वरतहि तिन निज घरि वासा पाइआ।
पूरै सतिगुरि किरिपा कीन्ही विचहु आपु गवाइआ॥
एकसु की सिरिकार एक जिनि ब्रहमा बिसनु रुद्र उपाइआ।
नानक निहचलु साचा एको ना ओहु मरै न जाइआ॥७॥

रागु गउड़ी

गुरि मिलिऐ हरि मेला होइ। आपे मेलि मिलावै सोइ॥
मेरा प्रभु सभ बिधि आपे जाणै। हुकमे मेलै सबदि पछाणै॥
सतिगुरु कै भइ भ्रमु भउ जाइ। भै राचै सच रंगि समाइ॥
गुरि मिलिऐ हरि मनि वसै सुभाइ। मेरा प्रभु भारा कीमति नहि पाइ॥
सबदि सालाहै अंतु न पारावारु। मेरा प्रभु बखसै बखसणुहारु॥
गुरि मिलिऐ सभ मति बुधि होइ। मनि निरमल वसै सचु सोइ॥
सचि वसिऐ साची सभ कार। ऊतम करणी सबदि वीचार॥
गुर ते साची सेवा होइ। गुरमुखि नाम पछाणै कोइ॥
जीवै दाता देवणहारु। नानक हरिनामै लगै पिआरु॥८॥

---

७. जलहि = जन्म लेता है। ठउर = स्थिरता, शान्ति। हउमै = अहंकार। उपाइआ = उत्पन्न किया। बिनु सबदै = बिना गुरु के उपदेश के। सिमृति = मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र। सासतर = शास्त्र। सुरति = प्रभु की लौ या ध्यान। ममता सुरति गवाई = अहंकार ने प्रभु के ध्यान को भुला दिया है। काढ़ि लए = अहंकार और माया से मुक्त कर दिया। निधानो = ख़जाना। मनि = मन में। चउथी पदवी = तुरीया अवस्था से तात्पर्य है, जहां केवल आत्म-स्थिति का अनुभव होता है। निज घरि = स्वरूप की सर्वोच्च स्थिति में। विचहु = आत्मा और परमात्मा के बीच का अंतर; द्वैतभाव। जाइआ = जन्म लेता है।

८. मेला = मिलन। हुकमे ... पछाणै = अपनी आज्ञा का रहस्य प्रकटकर परमतत्त्व से वह परिचय करा देता है। भइ = भय। भउ = संशय-जनित भय। भै राचै ... समाइ = ईश्वर-भीरुता जो डरकर चलता है वह सत्यरूप परमात्मा के प्रेम में लौलीन हो जाता है। सुभाइ = अनायास ही। भारा = महान्-से-महान्। कीमति नहि पाइ = अनमोल।

राग गउड़ी गुआरेरी

गुर ते गिआनु पाए जनु कोइ। गुर ते बूझै सीझै सोइ॥
गुर ते सहजु साचु वीचारु। गुर ते पाए मुकति दुआरु॥
पूरै भागि मिलै गुरु आइ। साचै सहजि साचि समाइ॥
गुरि मिलिऐ तृसना अगनि बुझाइ। गुरते सांति वसै मनि आइ॥
गुर ते पतित पावन सुचि होइ। गुर ते सबदि मिलावा होइ॥
वाझु गुरु सभ भरमि भुलाई। बिनु नावै बहुता दुख पाई॥
गुरमुखि होवै सु नामु धिआई। दरसति सच्चै सच्चो पति होई॥
किसनो कहीऐ दाता इकु सोई। किरपा करै सबदि मिलावा होई॥
मिलि प्रीतम साचे गुण गावा। नानक साचे साचि समावा॥९॥

सो किउ विसरै जिसके जीआ पराना।
सो किउ विसरै सभ माहि समाना॥ जितु सेविऐ दरगह पति परवाना॥
हरि के नाम विट्हु बलि जाउं। तू विसरहि तदि ही मरि जाउं॥
तिन तूं विसरहि जि तुधु आपु भुलाए। तिन तूं विसरहि जि दूजै भाए॥
मनमुख अगिआनी जोती पाए। जिन एक मनि तुठ्ठा से सतिगुर सेवा लाए॥
जिन एक मनि तुट्ठा तिन हरि मंनि बसाए। गुरमत्ती हरिनामि समाए॥
जिना पोतै पुन्नु से गिआन वीचारी। जिना पोतै पुन्नु तिन हउमै मारी॥
नानक जो नामरते तिनकउ बलिहारी॥१०॥

सालाहै = प्रशंसा पाता है। कार = रचना।

९. सीझै = सिद्धि अर्थात् सफलता पाता है। सबद = परमतत्त्व। मिलावा = साक्षात्कार। बाझु = बिना। वाझु ... भुलाई = बिना गुरु के सब अविद्या में भूले पड़े हैं। नावै = नाम के। पति = प्रतिष्ठा। किस ... सोई = और किसे दाता कहा जाय, दाता को सच्चा एक परमात्मा ही है।

१०. जिसके जीआ पराना = जिसका दिया यह जीव है, ये प्राण हैं। दरगह = न्यायालय; परमात्मा का दरबार। पति = इज्जत। परवारा = प्रमाणरूप, मान्य। तू विसरहि ... जाउं = मैं उसी क्षण, जब कि तुझे भूल जाऊँ, मर जाऊँ। तिन तू बिसरहि... भुलाए = तू उन्हीं को भुला देता है, जो तुझे भूल जाते हैं। जि दूजै भाए = जोकि अन्य में अर्थात् माया में आसक्त हैं। जोनी पाए = फिर-फिर गर्भ में आते हैं। इकमनि तुट्ठा = हृदय से प्रसन्न है। गुरमत्ती = जिन्होंने गुरु के मत अर्थात् उपदेश को ग्रहण कर लिया। जिना पौते पुन्नु ... वीचारी = जिन्होंने सुकृतों या सद्गुणों को जमा कर लिया, वे आध्यात्मिक ज्ञान का चिंतन और मनन करते हैं। तिन हउमै मारी = वे अहंकार को नष्ट कर देते हैं। रते = रंग गये।

राग गउड़ी गुआरेरी

मनुमुखि सूता माइआ मोहि पिआरि।
गुरमुखि जागे गुण गिआन वीचारि। से जन जागे जिन नाम पिआरि॥
सहजे जागैं सौवे न कोइ। पूरे गुरते बूझै जनु कोइ॥
असंतु अनाड़ी कदे न बूझै॥ कथनी करे तै माइआ नालि लूझै॥
अंधु अगिआनी कदे न सीझै॥
इसु जगुमहि रामनामि निसतारा। को बिरला पाए गुरुसबदि वीचारा॥
आपि तरै सगले कुल उधारा॥
इसु कलिजुग महि करम धरम न कोई॥ कलि का जनमु चंडाल कै
घरि होई॥
नानक नामविना को मुकति न होई॥११॥

राग आसा

मनमुख मरहिं मरि मरणु बिगाड़हि। दूजै भाइ आतम संघारहि॥
मेरा मेरा करि करि बिगूता। आतमु न चीनै भरमै बिचि सूता॥
मर मुइआ सबदे मरि जाइ। उसतति निंदा गुरि सम जाणाई,
इसु जुग महि लाहा हरि जपि लै जाइ॥
नाम विहूण गरभ गलिजाइ। बिरथा जनमु दूजे लोभाइ॥
नाम विहूणी दुखि जलै सवाई। सतिगुरि पूरै बूझ बुझाई॥
मनु चंचलु बहु चोटा खाइ। एथहु छुड़किआ ठउर न पाइ॥
गरभ जोनि विसटा का वासु। तितु घरि मनमुखु करै निवासु॥
अपने सतिगुर कउ सदा बलि जाई। गुरमुखि जोती जोति मिलाई॥
निरमल वाणी निजघरि वासा। नानम हउमै मारै सदा उदासा॥१२॥

---

११. सूता = सो गया है, गाफिल पड़ा है। माइआ मोहि पिआरि = माया और मोह के प्रेम में। गुण = ईश्वरीय गुण। गिआन = अध्यात्म-ज्ञान। सहजे ... न कोई = जो आत्मज्ञान का दिव्य प्रकाश पाकर जाग गया, वह फिर कभी नहीं सोता, उस पर अविद्यारूपी रात्रि का कभी असर नहीं पड़ता। अनाड़ी = विवेकशून्य। कथनी = थोथा दावा। माइआ नालि लूझै = माया की आग में जल रहे हैं। अंधु = अंधा, विवेकरहित। अगिआनी = विश्वास न लाने वाला, अश्रद्धालु। कदे न सीझै = कभी सिद्धि अथवा शान्ति नहीं पाता। इसु जुगमहि = इस कलियुग में। निसतारा = मोक्ष। सबदि = उपदेश। को = कोई भी।

१२. मरहि ... बिगाड़हि = मरते हैं तो बहुत बुरी मौत मरते हैं। दूजै ... संघारहि = माया से प्रीति जोड़कर वे अपना हनन आप करते हैं। बिगूता = नष्ट हो गया। न चीनै =

राग़ु आसा

**मनमुखि झूठो झूठु कमावै। खसमै का महलु कदे न पावै॥
दूजै लागी भरमि भुलावै। ममता बाधा आवै जावै॥
दोहागणी कामनि देखु सीगारु। पुत्र कलति धनि माइआ चितु लाए,
झूठु मोहु पाखंड वीकारु॥
सदा सोहागणि जो प्रभ भावै। गुर सबदी सीगारु बणावै॥
सेज सुखाली अनदिनु हरि रावै। मिलि प्रीतम सदा सुखु पावै॥
सा सोहागणि साची जिसु साचि पिआरु। आपण पिरु राखै सदा उर
धारि॥
नेड़ै वेखै सदा हदूरि। मेरा प्रभु सरब रहिआ भरपूरि॥
आगै जाति रूपु न जाइ। तेहा होवै जेहे करम कमाइ॥
सबदे ऊचो ऊचा होइ। नानक साचि समावै सोइ॥१३॥**

पहचानते नहीं हैं। भरमै विचि सूता = मूढ़ग्राहों से लिपटे अचेत पड़े हैं। मर मुइआ सबदे मरिजाइ = मरना सच्चा उन्हीं का जिन्हें कि 'शब्द' ने मार दिया है। उसतति = स्तुति, प्रशंसा। गुरि सम जाणई = गुरु ने जता दिया कि प्रशंसा और निंदा एक समान हैं। लाहा = लाभ। दूजै लोभाइ = माया के लोभी। बूझ बुझाई = सद्बुद्धि दे दी है। चोट = सज़ा। विसटा = विष्ठा। जोती जोति मिलाई = जीव की ज्योति को परमात्मा की ज्योति में मिला दिया। उदासा = उदासी, संन्यासी।

१३. मनमुखी मनुष्य झूठ-ही-झूठ का लेन-देन करते रहते हैं;
स्वामी के महल तक वे कभी नहीं पहुंचते।
प्रपंच में लिप्त वे सदा भ्रम में ही भूले रहते हैं,
और ममता में बद्ध फिर जन्मते हैं, और फिर मरते हैं।
देखो तो इस दोहागिन नारी का यह सिंगार!
चित्त इसका लगा हुआ है पुत्र में, परिवार में, धन और माया में,
और झूठ में, और मोह में, पाखंड में, और मनोविकारों में।
सदा सोहागिन तो वही नारी है, जो अपने स्वामी को भाती है।
उसका सिंगार सतगुरु का उपदेश होता है;
उसकी सेज सुखभरी होती है, और अपने स्वामी के साथ वह दिन-रात आनन्द करती है।
अपने प्रीतम से मिलकर वह सदा सुख में मगन रहती है।
जो अपने सच्चे स्वामी को प्यार करती है, वही सच्ची सोहागिन है।
वह अपने प्रीतम को सदा छाती से लगाये रहती है।
वह अपने पास, अपने सामने उसे निरंतर देखती रहती है।

सलोक

जिन्हा सतिगुरु इकमनि सेविआ तिन जन लागौ पाइ।
गुर सबदी हरि मनि वसै माया की भुख जाइ ॥१॥
से जन निर्मल ऊजले जि गुरमुखि नामि समाइ।
नानक होरि पतिसाहिआ कूड़िआ, नामिरते पातसाह ॥२॥
माया मोहि जगु भरमिआ, घरु मूसै खबरि न न होइ।
कामु क्रोधि मनु हरि लइआ मनमुखि अंधा लोइ ॥३॥
गिआन-खड़ग पंचदूत संघारे गुरमति जागै सोइ।
नामु रतन परगासिआ मनु तनु निरमलु होइ ॥४॥
मै जानिआ वडहंसु है ता मै कीआ संगु।
जे जाणा बगु बापुड़ा त जनमि न देदी अंगु ॥५॥
हंसा बेखि तरंदिआ बगां भि आइआ चाउ।
डूबि मुए बग बापुड़े सिरु तलि ऊपरि पाउ ॥६॥
सतिगुर की सेवा चाकरी सुखी हूं सुख सारु।
ऐथै मिलनि बड़िआईआ दरगाह मोख दुआरु ॥७॥

मेरा प्रभु सर्वत्र रम रहा है।

परलोक में तेरे साथ न यह ऊंची जाति जाएगी; न यह रूप जायेगा; तेरी वहां की यात्रा तेरे कर्मों के अनुसार ही होगी।

शब्द (सतगुरु के उपदेश) से ही मनुष्य ऊंचे-से-ऊंचा जाता है,

और नानक, उसी से वह सत्यरूप परमात्मा में लीन होता है।

१. जिन्हा = जिन्होंने। इकमनि = अनन्य भाव से। लागौ पाइ = उनके पैर पड़ता हूं। गुरसबदी = गुरु के उपदेश से। भुख = तृष्णा, आसक्ति।

२. से = वे। जि = जो। समाइ = लौलीन हो गये हैं। होरि पातिसाहिआ कूड़िया = और बादशाही झूठी है। रते = रंगे हुए, अनुरक्त।

३. मूसै = चोरी करते हैं (सद्गुणरूपी रत्नों की)। हरि लइया = हरण कर लिया।

४. पंचदूत संघारे = पांचों इन्द्रियों के विषयों को मार दिया, वश में कर लिया।

५. न देदी अंगु = कभी न अपनाता।

६. वेखि तरंदिया = तरता हुआ देखकर। चाउ = जोश।

७. ऐथै = इस लोक में। दरगाह = परलोक, ईश्वर का दरबार। मोख = मोक्ष।

सजण मिले सजणा जिन सतगुर नालि पिआरु।
मिलि प्रीतम तिनी धिआइआ सचै प्रेमि पिआरु ॥८॥

मन ही ते मानिआ गुर कै सबदि अपारि।
एहि सजण मिले न विछुड़हि जि आपि मेले करतारि ॥९॥

मनमुख सेती दोसती थोड़ड़िआ दिन चारि।
इसु परीती तुटदी विलमु न होवई, इसु दोसती चलनि विकारि ॥१०॥

जिन अंदरि सचे का भउ नाही, नामि न करहि पिआरु।
नानक तिन सिउ किआ कीजै दोसती, जि आपि भुलाए करतारु ॥११॥

गुरमुखि सेवि न कीनिआ, हरिनाम न लगो पिआरु।
सबदै सादु न आइओ मरि जनमै वारोवार ॥१२॥

मनमुखि अंधु न चेतई कितु आइआ सैसारि।
नानक जिन कउ नदरि करे से गुरमुखि लंघे पारि ॥१३॥

●

---

८. सजण = संतजन। सजणा = साजन, स्वामी। नालि = साथ।

९. जि आपि मेले करतारि = परमात्मा जिन्हें खुद मिला देता है।

१०. सेती = साथ की। परीती = प्रीति, मित्रता। तुटदी विलमु न होवई = टूटते देर नहीं लगती।

११. भउ = भय। पिआरु = प्रेम। तिन सिउ = उनसे। जि आपि भुलाए करतारु = जो खुद ही परमात्मा को भुला बैठे हैं।

१२. सेवि = सेवा। कीनिया = की। सादु = स्वादु, रस, आनन्द।

१३. सैसारि = संसार में। नदरि करे = कृपा-दृष्टि करता है। लंघे पारि = संसार से तर जाता है।

गुरु रामदास

जन्म-संवत् – १५९१ वि., कार्तिक कृ. २

जन्म-स्थान – लाहौर

पूर्व नाम – जेठा

पिता – हरिदास

माता – दयाकौर (पूर्व नाम अनूपदेवी)

जाति – सोधी खत्री

भेष – गृहस्थ

मृत्यु-संवत् – १६३८ वि., भादों शु. ३

मृत्यु-स्थान – गोइन्दवाल

गुरु रामदास का विवाह, जब इनका नाम जेठा था, गुरु अमरदास की पुत्री बीबी भानी के साथ हुआ था। गुरु अमरदास के यह अनन्य भक्त और पट्टशिष्य भी थे। आज्ञा-पालक यह वैसे ही थे, जैसे कि गुरु अमरदास और गुरु अंगद।

एक दिन गुरु अमरदास के कुछ शिष्यों ने पूछा कि, 'दामाद तो आपका रामा भी है (जिसके साथ बड़ी पुत्री बीबी दानी का ब्याह हुआ था) और आपकी वह सेवा भी करता है, पर जेठा को ही आप इतना अधिक क्यों चाहते हैं?' जेठा के अनेक गुणों का वर्णन करते हुए गुरु अमरदास ने कहा कि, 'उसमें नम्रता, भक्ति और श्रद्धा रामा से कहीं अधिक है, और इसीलिए वह मुझे अधिक प्रिय है। लो, तुम्हारे सामने ही मैं उन दोनों की परीक्षा लेता हूं।'

गुरु अमरदास ने रामा को हुक्म दिया कि उनके बैठने के लिए बावली के पास वह एक सुन्दर चबूतरा बनादे। रामा ने बड़ी मेहनत से चबूतरा तैयार किया, पर गुरु को वह पसंद नहीं आया। गिराकर फिर से बनाने को कहा। रामा ने उसे फिर बनाया। फिर भी पसन्द नहीं आया। रामा ने उसे फिर गिरा तो दिया, पर तीसरी बार बनाने को वह राज़ी नहीं हुआ। बोला, 'गुरु बहुत बुड्ढे हो गये हैं; इसी से उनकी बुद्धि काम नहीं दे रही!'

अब जेठा की बारी थी। उसने चबूतरे को गुरु की आज्ञा से सात बार बनाया और सात ही बार गिराया, पर मुंह से एक शब्द भी नहीं निकाला। अंत में गुरु के चरणों को पकड़कर बड़ी नम्रता से उसने कहा, 'मैं तो मूर्ख हूं; सेवा मुझसे कहां बन सकती है। मुझसे भूलें ही होंगी। पर आप कृपा कर मेरी भूलों को उसी तरह क्षमा कर दिया करें, जैसे कि पिता अपने मूर्ख पुत्र की भूलों को क्षमा कर देता है।'

गुरु अमरदास बहुत प्रसन्न हुए, और जेठा को छाती से लगाकर बोले - 'मेरी आज्ञा को मानकर तूने सात बार इस चबूतरे को गिरा-गिराकर बनाया, इसलिए तेरी सात पीढ़ियां गुरु की गद्दी पर बैठेंगी। और सब सिक्खों को बुलाकर कहा कि 'मैंने अपने दोनों दामादों की परीक्षा ले ली है। अब तो तुम्हारा संदेह दूर हो गया कि जेठा मुझे क्यों अधिक प्रिय है। मैं स्पष्ट देखता हूं कि यह जेठा आगे चलकर जगत् का उद्धार करेगा।'

चतुर्थ गुरु रामदास जीवन भर गुरु अमरदास के सब सिद्धान्तों और पदचिह्नों पर चले। गुरु नानक, गुरु अंगद और गुरु अमरदास के सारे गुण उनमें पाये जाते थे। 'टिक्के दी वार' की सातवीं पउड़ी में सत्तैने कहा है –

''नानक तू, लहिणा तू है, गुरु अमर तू वीचारिआ।
गुरु डीठा तां मनु साधारिआ॥''

अर्थात्, तू नानक है, तू लहिणा है, तू अमरदास है; मैंने तुझे ऐसा ही समझा है। जब मैंने तुझ गुरु को देखा, तब मेरे मन को ऐसा ही आश्वासन मिला।

बाबा नानक के ज्येष्ठ पुत्र श्रीचंद, जो उदासी संप्रदाय के संस्थापक थे और बड़े-बड़े जटा बढ़ाये नग्न घूमते रहते थे, एक बार गुरु रामदास से मिलने आये। वे न तो गुरु अंगद से कभी मिले थे, और न गुरु अमरदास से ही। गुरु रामदास ने गोइन्दवाल से कुछ दूर जाकर महात्मा श्रीचंद का स्वागत किया, और भेंट के रूप में उनके सामने मिठाई और पांच सौ रुपये रखे। गुरु से मिलकर बाबा श्रीचंद को बहुत आनन्द हुआ। उन्हें लगा कि रामदास मानों गुरु नानक की ही प्रतिमूर्ति हैं। उनकी दाढ़ी देखकर श्रीचंद ने कहा कि, 'दाढ़ी यह आपने बहुत लंबी बढ़ा रखी हैं!' 'आपके चरणों को पखारने के लिए मैंने यह लंबी दाढ़ी रखी हैं।' और किया भी उन्होंने यही। श्रीचंद ने अपने पैर हटा लिये, और कहा–'आप यह क्या कर रहे हैं! आप तो गुरु हैं, मेरे पिता की गद्दी पर आसीन हैं। निश्चय ही आप सिक्खों का उद्धार करेंगे।'

गुरु अमरदास की आज्ञा से गुरु रामदास ने जो एक भारी चिरस्थायी कार्य किया, वह था सिक्खों के महान् तीर्थ-स्थान अमृतसर का निर्माण। इस तालाब को उन्होंने बड़ी ही निष्ठा और परिश्रम से खुदवाया। तालाब के आसपास धीरे-धीरे रामदासपुर नाम का एक सुन्दर नगर भी बसने लगा। बाद में तालाब के नाम पर इसका भी नाम अमृतसर पड़ गया। अमृतसर का तालाब भाई बुड्ढा की देखरेख में हज़ारों सिक्खों और दूसरे मज़दूरों ने तैयार किया। उन दिनों गुरु रामदास जिस कुटिया में रहा करते थे, वह आज भी 'गुरु का महल' के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरु रामदास ने धर्म-प्रचार के लिए अनेक सुयोग्य व्यक्तियों को नियुक्त किया, जिन्हें वे 'मसंद' कहते थे। मसंदों ने सिक्ख धर्म का अनेक स्थानों में जा-जाकर प्रचार किया।

गुरु रामदास के तीन पुत्र थे–पृथीचंद या प्रिथिया, महादेव और अर्जुन। प्रिथिया बड़ा अभिमानी और दुष्ट स्वभाव का था। महादेव भी अधिक आज्ञापालक नहीं था। सबसे

छोटा पुत्र अर्जुन ही पिता का अनन्य आज्ञाकारी और परमभक्त था। यही कारण था कि अर्जुन पर उनका सबसे अधिक स्नेह था, और उसी को उन्होंने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। ईर्ष्यालु प्रिथिया ने गुरु रामदास के जीवन-काल में और उनके स्वर्गवास के बाद भी रामदास को पदच्युत करने लिए अनेक षड़यंत्र रचे, पर वह सफल नहीं हुआ।

गुरु रामदास ने अपनी गद्दी पर अर्जुन को बिठाते हुए कहा, ''गुरु अमरदास ने स्पष्ट कहा था कि गुरु का स्थान ऊंचे सद्गुणों से ही मिलता है। जो सच्चा, सदाचारी और विनीत है वही इस ऊंचे स्थान को प्राप्त कर सकता है। मैं तुझे यह स्थान देता हूं।'' पांच पैसे और एक नारियल अर्जुन के सामने रखकर उन्होंने भाई बुड्ढा के हाथ से उन्हें तिलक करा दिया। अर्जुनदेव को गुरु रामदास ने पांचवां गुरु बना दिया। दीपक ने जैसे अपनी लौ से दूसरे दीपक को जला दिया।

संवत् १६३८ की भादों सुदी ३ को गोइन्दवाल में जाकर 'वाह गुरु' 'वाह गुरु' कहते हुए गुरु रामदास ने चोला छोड़ा।

कवि मथुरा ने गुरु रामदास के देहावसान पर यह छप्पय रचा—

''देवपुरी महि गयउ आपि परमेस्वर भाइउ।
हरि सिंघासन दिइउ सिरी गुरु तह बैठाइउ॥
रहसु किअउ सुरदेव तोहि जसु जय जय जंपहि।
असुर गए ते भागि पाप तिन भीतर कंपहि॥
काटे सु पाप तिन नरहु के गुरु रामदास जिन्ह पाइअउ।
छत्रु सिंघासनु पिरथमी गुर अरजुनकउ दे आइअउ॥''

बानी-परिचय

गुरु रामदास की बानी गुरु ग्रन्थ साहिब में 'महिला ४' के अंतर्गत संगृहीत है। इनका आसा राग का 'सो पुरख' पद बहुत प्रसिद्ध है। इसे 'रहिरास' में भी लिया गया है। गुरु रामदास-रचित सूही राग की छंद के चार पदों का उपयोग सिक्ख लोग अपने विवाह-संस्कार में करते हैं। इन्हीं गुरु-मंत्रों से फेरे कराये जाते हैं। प्रायः हरेक ही राग में इनके पद मिलते हैं। प्रेम व विरह के अंगों का निरूपण गुरु रामदास ने बड़ा विशद और सुंदर किया है। बानी इनकी मधुर और बहुत कोमल है। गुरु के प्रति ऊंची श्रद्धा गुरु अंगद तथा गुरु अमरदास के ही सदृश इन्होंने भी प्रकट की है। इनके सलोक भी वैसे ही हृदयस्पर्शी हैं। भाषा में पंजाबी का पुट कुछ कम है, और वह सरल भी है।

आधार

१. गुरु ग्रन्थ साहिब – सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२. दि सिक्ख रिलीजन (भाग २) – मेकालीफ़

●

गुरु रामदास

राग आसा

सो पुरुखु निरंजनु हरि पुरुखु निरंजनु हरि अगमा अगम अपारा ॥
समि धिआवहि सभि धिआवहि तुधु जी हरि सच्चे सिरजणहारा ॥
सभि जीअ तुमारे जी तूं जीआ का दातारा ॥
हरि धिआवहु संतहु जी सभि दूख विसारणहारा ॥
हरि आपे ठाकुरु हरि आपे सेवकु जी किया नानक जंत विचारा ॥
तू घट घट अंतरि सरब निरंतरि जी हरि एको पुरखु समाणा ॥
इकि दाते इकि भेखारी जी सभि तेरे चोज विडाणा ॥
तूं आपे दाता आपे भुगता जी हउ तुधु बिनु अवरु न जाणा ॥
तूं पारब्रह्मु बेअंतु बेअंतु जी तेरे किया गुण आखि बखाणा ॥
जो सेवहि जो सेवहि तुधु जी जनु नानकु तिन कुरबाणा ॥
हरि धिआवहि हरि धिआवहि तुधु जी से जन जुग महिं सुखवासी ॥
से मुकतु से मुकतु भये जिन हरि धिआइआजी तिन तूटी जम की फासी ॥
जिन निरभउ हरि निरभउ धिआइआ जी तिन का भउ सभु गवासी ॥
जिन सेविआ जिन सेविआ मेरा हरि जी ते हरि हरि रूपि समासी ॥
से धन्नु से धन्नु जिन हरि धिआइआ जी जनु नानकु तिन बलि जासी ॥
तेरी भगति तेरी भगति भंडार जी भरे बेअंत बेअंता ॥

---

१. अगमा अगम = अगम्य से भी अगम्य, जिस तक किसी भी तरह पहुंच नहीं हो सकती। तुधु = तुझे। संतहु = हे संतों। जंतु = जंतु, क्षुद्र प्राणी। समाणा = व्यापक। चोज विडाणा = अद्भुत खेल या लीला। हउ = मैं। किआ = क्या। आखि बखाना = वर्णन करके कहूं। तिन कुरबाण = उन पर बलि जाता हूं। से = वे। जुग महिं = इस युग में। सुखवाली = आनन्द में रहते हैं। भउ = भउ।

गवासी = चला गया। हरिरूप समासी = हरि के रूप में लीन हो गये, हरिरूप ही हो गये। बलि जासी = निछावर हो जायेगा। सलाहनि = सराहना, या स्तुति करते हैं। तपु तापहि = तपस्या करते हैं। सिमृति = स्मृतियां जो मुख्यतया १८ हैं। सासत = शास्त्र, जो छह हैं। किरिआ = धर्मविहित किया। खटु करम = ब्राह्मणों के छह कर्म, अर्थात् वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना। वडु = बड़ा।

तेरे भगत तेरे भगत सलाहनि तुधु जी हरि अनिक अनेक अनंता ॥
तेरी अनिक तेरी अनिक करहि हरि पूजा जी तपु तापहि जपहि बेअंता ॥
तेरे अनेक तेरे अनेक पड़हि बहु सिमृति सासत जी करि किरिआ खटु करम करंता ॥
से भगत से भगत भले जन नानक जी जो भावहि मेरे हरि भगवंता ॥
तुं आदि पुरखु अपरंपारु करता जी तुधे जे वडु अवरु न कोई ॥
तूं जुगु जुगु एको सदा सदा तूं एको जी तूं निहचलु करता सोई ॥
तुधु आपे भावै सोई वरतै जी तूं आपे करहि सु होई ॥
तुधु आपे सृसटि सभ उपाई जी तुधु आपे सिरजि सभ गोई ॥
जनु नानकु गुण गावै करते के जी जो सभसै का जाणोई ॥१॥*

रागु आसा

तूं करता सचिआरु मैडा साई ॥ जो तउ भावै सोई थीसी जो तू देहि सोई हउ पाई ॥
सभ तेरी तूं सभनी धिआइआ ॥ जिसनो कृपा करहि तिन नामरतनु पाइआ ॥
गुरमुखि लाधा मनमुखि गवाइआ ॥ तुधु आपि बिछोड़िया आपि मिलाइआ ॥
तूं दरीआउ सभ तुझ ही माहि ॥ तुझ बिनु दूजा कोई नाहि ॥
जींअ जंत सभि तेरा खेलु ॥ विजोगि मिलि बिछुड़िया सं जोगी मेलु ॥
जिसनो तू जाणइहि सोइ जनु जाणै ॥ हरिगुण सदही आखि बखाणै ॥
जिनि हरि सेविआ तिनि सुखु पाइआ ॥ सहजे ही हरिनामि समाइआ ॥
तू आपे करता तेरा कीया सभु होइ ॥ तुधु बिनु दूजा अवरु न कोइ ॥
तू करि करि वेखहि जाणहि सोइ ॥ जन नानक गुरमुखि परगटु होइ ॥२॥

निहचलु = निश्चल, एकरस, स्थिर। सृसटि = सृष्टि। उपाई = उत्पन्न की। गोई = लय हो जाना। करते के = कर्ता के। सभसे का = सब वस्तुओं का। जाणोई = जानता है।

*यह 'रहिरास' में से लिया गया है। इसका नाम ही ''सो पुरुखु'' है।

२. तू ही सच्चा कर्त्तार है, मेरे स्वामी!

जो तुझे भाता है वही होगा; जो तू देगा वही मैं पाऊंगा।

सब कुछ तेरा ही है; सभी तेरा ध्यान करते हैं।

जिस पर तू कृपा करता है, वही तेरा नामरूपी रत्न पाता है।

गुरु के अनुयायी ने उसे पाया है, और मन के मत पर चलनेवाले ने उसे हाथ से गंवा दिया है।

मनसुखों से तू स्वयं बिछुड़ गया है, और गुरुमुखों से आप जा मिला है।

रागु गउड़ी पूरबी

कामि करोधि नगरु बहु भरिआ मिलि साधू खंडल खंडा हे ॥
पूरबि लिखत लिखे गुरु पाइआ मनिहरि लिच मंडल मंडा हे ॥
करि साधू अंजुली पुनु वड्डा हे ॥ करि डंडउत पुनु वड्डा हे ॥
साकत हरिरस सादु न जाणिआ तिन अंतरि हउमै कंडा हे ॥
जिउ जिउ चलहि चुभै दुखु पावहि जमकालु सहहि सिरि डंडा हे ॥
हरिजन हरि हरि नामि समाणे दुखु जनम मरण भव खंडा हे ॥
अबिनासी पुरखु पाइआ परमेसरु बहु सोभा खंडा ब्रहमंडा हे ॥
हम गरीब मसकीन प्रभ तेरे हरि राखु बड वड्डा हे ॥
जन नानक नामु अधारु टेक है हरिनामे ही सुखु मंडा हे ॥३॥

तू एक समुद्र है; सब-कुछ तुझमें समाया हुआ है।
तेरे सिवा दूसरा कोई है ही नहीं।
जीव-जंतु की सृष्टि सब तेरी लीला है।
जब तूने बिछुड़ना चाहा, तो वे तुझसे मिले हुए भी बिछुड़ गये; और जब तूने मिलना चाहा तो वे तुझसे आ मिले।
वही तेरा जन तुझे जानता है, जिसे तू अपने आपको जना देना चाहता है, और सदा वह तेरे गुणों का गान करता रहता है।
सुख उन्हींने पाया, जिन्होंने कि तेरी सेवा-बंदगी की, और सहज ही वे हरि-नाम में लौलीन हो गये।
तू आप ही कर्त्तार है; सब-कुछ तेरा ही किया होता है।
तेरे सिवा कोई दूसरा है ही नहीं।
तू ही अपनी रचना को देखता है और उसे जानता है।
दास नानक कहता है— गुरु के उपदेश से तू प्रकट हो जाता है।

३. यह नगर अर्थात् यह शरीर काम और क्रोध से बहुत भरा हुआ है; पर संतजनों से मिलने से दोनों खंड-खंड हो जाते हैं।
प्रारब्ध में लिखा था जो गुरु से भेंट हो गई, और भक्ति-भाव में यह जीव लौलीन हो गया।
हाथ जोड़कर तू संतों की वंदना कर—यह भारी पुण्यकर्म है।
उन्हें साष्टांग दंडवत् कर—यह भारी पुण्यकर्म है।
हरि रस के स्वादु को नास्तिक या अभक्त नहीं जानता, क्योंकि वह अपने अंतर में अहंकार के कांटे को स्थान दिये हुए हैं।

रागु गउड़ी गुआरेरी

पंडित सासतर सिमृति पढ़िआ ॥
जोगी गोरखु गोरखु करिआ। मैं मूरख हरि हरि जपु पढ़िआ ॥
ना जाना किया गति राम हमारी। हरि भजु मन मेरे तरु भउजल तू तारी ॥
सनिआसी बभूत लाइ सवारी ॥ परत्रिय त्यागु करी ब्रहमचारी ॥
मैं मूरख हरि आस तुमारी ॥
खत्री करम करे सूरतणु पावै। सूदु वैसु परकिरति कमावै ॥
मैं मूरख हरिनामु छड़ावै ॥
सभ तेरी सृसटि तूं आपि रहिआ समाई। गुरमुखि नानक दे बड़िआई ॥
मैं अंधुले हरि टेक टिकाई ॥४॥

रागु गउड़ी गुआरेरी

निरगुण कथा कथा है हरि की ॥
भजु सिलि साधू संगति जन की तरु भउजलु अकथ कथा सुनि हरि की ॥
गोबिंद सतसंगति मेलाइ। हरि रसु रसना राम गुन गाइ ॥
जो जन ध्यावहिं हरि हरिनामा॥ तिन दासनिदास करहु हम रामा ॥
जन की सेवा ऊतम कामा ॥
जो हरि की हरि कथा सुणावै। सो जनु हमरै मनि चिति भावै ॥
जन पग रेणु बड़भागी पावै ॥

जितना ही वह चलता है उतना ही वह उसे चुभता है और उतना ही क्लेश पाता है; और यम का डंडा अर्थात् काल का भय उसके सिर पर मंडराता है।

हरिभक्त हरि के नाम-स्मरण में लीन रहते हैं, और उन्होंने जन्म-मरण का भय नष्ट कर दिया है।

अविनाशी पुरुष से उनकी भेंट हो गई है—

और लोकों और सारे ब्रह्माण्ड में उनकी शोभा-प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई है। प्रभो, हम ग़रीब अधम जन तेरे ही हैं; हे महान् से भी महान्, हमारी रक्षा कर, हमारी रक्षा कर।

दास नानक का आधार और अवलंब तेरा एक नाम ही है, तेरे नाम में डूबकर परमानंद को मैंने पाया है।

४. सिमृति = मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र। सनिआसी = संन्यासी। बभूत = भस्म। सवारी = सजायी। ब्रहमचारी = ब्रह्मचर्य व्रत। खत्री = क्षत्रीय। सूरतणु = शूरवीरता। सूदु = शूद्र। वैसु = वैश्य। परकिरति = अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार। सृसटि = सृष्टि, रचना।

५. भउजलु = संसार-सागर। ऊतम = उत्तम। जन-पग-रेणु = हरिभक्तों के चरणों की धूल।

संज जना सिउ प्रीति बनि आई। जिन कउ लिखतु लिखिआ धुरि पाई॥
ते जन नानक नामि समाई ॥५॥

रागु गूजरी

हरि के जन, सतिगुर, सतपुरखा, बिनउ करउ गुर पासि॥
हम कीरे किरम सतिगुर सरणाई करि दइआ नामु परगासि॥
मेरे मति गुरदेव मोकउ राम नासु परगासी॥
गुरमति नामु मेरा प्रानसखाई हरि कीरति हमरी रहरासि।
हरिजन के वड भाग वडेरे जिन हरि हरि सरधा हरि पिआस॥
हरि हरि नामु मिलै त्रिपतासहि मिल संगति गुण परगासि।
जिज हरि हरि हरिरसु नामु न पाइआ ते भागहीण जम पासि॥
जो सतिगुर सरणि संगति नहीं आए ध्रिगु जीवे ध्रिगु जीवासि॥
जिनहरिजन सतिगुर संगति पाई तिन धुरि मसतकि लिखिआ लिखासि॥
धनु धन्नु सतसंगति जितु हरिरसु पाइआ मिलि जन नानक नामु।
परिगासि ॥६॥*

रागु भैरउ

ते साधू हरि मेलहु सुआमी, जिन जपिआ गति होइ हमारी।
तिनका दरसु देखि मन बिगसै खिनु खिनु तिनकउ हउ बलिहारी॥
हरि हिरदै जपि नामु मुरारी।
कृपा कृपा करि जगतपति सुआमी हम दासनिदास कीजै पनिहारी॥
तिन मति ऊतम तिन पति ऊतम जिन हिरदै बसिआ बनवारी।
तिन की सेवा लाइ हरि सुआमी, तिन सिमरत गति होइ हमारी॥

सिउ = से। धुरि = सबसे ऊपर, शीर्षस्थान।

६. करउ = करता हूं। गुरुपासि = परमात्मा के प्रति। कीरे = कीड़े। किरम = कृमि, बहुत ही छोटे जीव। नामु परगासि = तू अपने नाम का प्रकाश हमारे अंदर भरदे। कीरति = कीर्त्तन, गुणगान। रहरासि = धंधा। सरधा = श्रद्धा। पिआस = प्यास, मिलने की तड़प। त्रिपतासहि = तृप्त या संतुष्ट हो जाते हैं। संगति = सत्संग। गुणपरगासि = परमात्मा के गुण प्रकट हो जाते हैं। जमपासि = काल के फंदे में पड़ते हैं। ध्रिगु जीवे = धिक्कार है जीने को। जीवासि = जीने की आशा। धुरि आदि से ही। मसतकि = माथे पर।

*यह 'रहिरास' में से लिया गया है।

जिन ऐसा सतिगुरु साधु न पाइआ ते हरि दरगह काढ़े मारी।
ते नर निंदक सोभ न पावहि तिन नककाटे सिरजनहारी॥
हरि आपि बुलावै आपे बोलै हरि आपि निरंजनु निरंकारु निराहारी।
हरि जिसु तू मेलहि सो तुधु मिलसी जन नानक किआ एहिजंत
विचारी ॥७॥

रागु भैरउ

सभि घट तेरे तू सभना माहि। तुझ ते बाहरि कोई नाहि॥
हरि सुखदाता मेरे मन जापु। हउ तुधु सालाही तू मेरा हरि प्रभु बापु॥
जह जह देखा तह तह हरि प्रभु सोइ। सभि तेरे वसि दूजा अवरु न कोइ॥
जिस कउ तुम हरि राखिआ भावै। तिस कै नेड़ै कोइ न जावै॥
तू जलि थलि महिअलि सभतै भरपूरि। जननानकहरि जपिहाजरा हजूर ॥८॥

रागु भैरउ

बोलि हरि नामु सफल सो घरी। गुर उपदेसि सभि दुख परहरी॥
मेरे मन हरि भजु नामु नरहरी।
करि किरपा मेलहु गुरु पूरा। सतसंगति संगि सिंधु भव तरी॥
जगजीवनु धिआइ मन हरि सिमरी। कोट कुटंतर तेरे पाप परहरी॥
सतसंगति साध धूरि मुखि परी। इसनानु कीआ अठसठि सुरसुरी॥
हम मूरख कउ हरि किरपा करी। जनु नानकु तारिओ तारण हरी ॥९॥

---

७. जिन जपिआ = जिनका नाम-स्मरण और ध्यान करके। गति = सद्‌गति, मुक्ति। विगसै = आनन्द से प्रफुल्लित हो। खिनु खिनु = क्षण-क्षण, निरंतर। हउ = हौं, मैं। दासनिदास पनिहारी = दास के भी दास की पानी भरने वाली मजूरिन। पति = प्रतिष्ठा। ऊतम = उत्तम, श्रेष्ठ। दरगह काढ़े मारी = ईश्वर के न्यायालय से मारकर निकाल दिये गये। सोभ = शोभा, प्रतिष्ठा। हरि जिसु ... मिलसी = हे हरि, जिसे तुम अपने आप से मिलना चाहो वही तुमसे मिलेगा। जंत = जंतु, जीव; यंत्र से भी आशय है, जो जड़ होता है।

८. सभना माहि = सबके भीतर। जापु = स्मरण कर। तुधु सालाही = तेरी स्तुति करता हूं। तिसकै ... जावै उसके पास जाने की किसी की भी हिम्मत नहीं होती, उसका कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। महिअलि = महीतल।

९. कोट कुटंतर = कोटि-कोटि, असंख्य। अठसठि = गंगा इत्यादि अड़सठतीर्थ।

सिरी रागु-छंत

मुंध इआणी पईअड़ै किउकरि हरि दरसनु पिखै।
हरि हरि अपनी किरपा करे गुरमुखि साहुरड़ै कंम सिखै॥
साहुरड़ै कंम सिखै गुरमुखि हरि हरि सदा धिआए॥
सहीआ विचि फिरै सुहेली हरि दरगह बाह लुडाए॥
लेखा धरमराइ की बाकी जपि हरि हरि नामु किरखै॥
मुंध इआणी पेईअड़ै गुरमुखि हरि दरसनु दिखै॥१०॥

वीआहु होआ मेरे बाबुला गुरमुखे हरि पाइआ।
अगिआनु अंधरा कट्टिआ गुर गिआनु प्रचंडु बताइआ॥
बलिआ गुरगियानु अन्धेरा बिनसिआ हरि रतनु पदारथु लाधा॥
हउमै रोग गइआ दुखु लाथा आपु आपै गुरमति खाधा॥
अकाल मूरति वरु पाइआ अबिनासी ना कदे मरै न जाइआ॥
वीआहु होआ मेरे बाबोला गुरमुखे हरि पाइआ॥११॥

---

१०. लड़की वह भोली और अनजान है, वह प्रीतम को भला कैसे देख पायेगी?

प्रभु जब कृपा करता है, तब पवित्रात्मा परलोक के सुकर्मी को सीखते हैं; और सदा प्रभु का ही ध्यान करते हैं।

वह सुहागिन तब अपनी सहेलियों के बीच प्रभु के दरबार में अपनी बाँह को गर्व से डुलाती है।

हरि का नाम जप लेने के बाद धर्मराज की रोकड़-बही में फिर क्या बाकी बचेगा?

भोली और अनजान होते हुए भी वह लड़की सतगुरु के उपदेश से अपने प्रीतम प्रभु को यहां देख लेगी।

११. मेरे बाबुल (पिता), ब्याह हो गया है; गुरु के दिखाये मार्ग से मैंने अपने स्वामी को पा लिया है।

मेरा अज्ञान का वह अंधेरा अब हट गया है, और सतगुरु ने ज्ञान का प्रचंड दीपक जला दिया है,

और हरि-नाम का अनमोल रतन मैंने अब खोज लिया है।

अहंकार को काबू में कर लिया है।

उस अमर अविनाशी को अपने स्वामी के रूप में मैंने पा लिया है, वह कभी न जनमता है, न मरता है।

मेरे बाबुल, ब्याह मेरा हो गया है; गुरु के दिखाये मार्ग से मैंने अपने स्वामी को पा लिया है।

हरि सति सते मेरे बाबुला हरिजन मिलि जंञ सोहंदी ॥
पेवकड़ै हरि जपि सुहेली विचि साहुरड़ै खरी सोहंदी ॥
साहुरड़ै विचि खरी सोहंदी जिनि पवेकड़ै नामु समालिया ॥
सभु सफलियो जनमु तिना दा गुरमुखि जिना मनु जिणि पासा ढालिया ॥
हरि संतजना मिलि कारजु सोहिआ वरु पाइआ पुरखु अनंदी ॥
हरि सति सति मेरे बाबोला हरिजन मिल जंञ सोहंदी ॥१२॥

हरिप्रभु मेरे बाबुला हरि देवहु दानु मै दाजो।
हरि कपड़ो हरि सोभा देवहु जितु सवरै मेरा काजो ॥
हरि हरि भगती काजु सुहेला गुरि सतिगुरि दानु दिवाइआ ॥
खंडि वरभंडि हरि सोभा होई इहु दानु न रलै रलाइआ ॥
होरि मनमुख दाजु जि रखि दिखालहि सु कूड़ अहंकारु कचु पाजो।
हरि प्रभु मेरे बाबुला हरि देवहु दानु मै दाजो ॥१३॥

---

१२. मेरा प्रभु सच्चे से भी सच्चा है, मेरे बाबुल; जब हरि के जन आ मिलते हैं, तब बारात की शोभा बहुत बढ़ जाती है।

जो (जीवात्मा) प्रभु का नाम जपती है, वह इस लोक में तो सुखी रहेगी ही, परलोक में भी वह सच्ची शोभा पायेगी।

प्रभु के नाम का पासा फेककर जिन्होंने गुरु के उपदेश से अपने मन को जीत लिया, उनका जीवन सारा सफल हो गया।

हरि के संतजनों से मिलकर मेरा काज बन गया; आनन्दमय पुरुष के रूप में मुझे मेरा वर मिल गया।

मेरा प्रभु सच्चे से भी सच्चा है, मेरे बाबुल; जब हरि के जन या मिलते हैं, तब बारात की शोभा बहुत बढ़ जाती है।

१३. मेरे बाबुल, तुम तो मेरे प्रीतम हरि को ही मुझे दान और दहेज के रूप में दो।

हरि की ही मुझे पोशाक दो, और हरि की ही शोभा, जिससे कि मेरा काज बन जाये।

हरि की भक्ति से ब्याह सहल हो जाता है; सतगुरु दाता ने मुझे अपने नाम का दान दे दिया है।

प्रभु, तेरी शोभा से सारे खंड और ब्रह्माण्ड शोभायमान हो जायेंगे; तेरे नाम का यह दहेज दूसरे और दहेजों में नहीं मिलाया जा सकता।

दुनियादार तो अपने दहेज के रूप में झूठे अंहकार और निकम्मे मुलम्मे का ही प्रदर्शन करेगा।

मेरे बाबुल, तुम तो मेरे प्रीतम को ही मुझे दान और दहेज के रूप में दो।

हरि राम राम मेरे बाबोला पिर मिलि धन वेल वधंदी।
हरि जुगह जुगो जुग जुगह जुगो सद पीड़ी गुरु चलंदी॥
जुगि जुगि पीड़ी चलै सतिगुर की जिनी गुरमुखि नाम धिआइआ।
हरि पुरखु न कबही बिनसै जावै नित देवै चड़ै सवाइआ॥
नानक संत संत हरि एको जपि हरि हरि नामु सोहंदी।
हरि राम राम मेरे बाबुला पिर मिलि धन वेल वधंदी॥१४॥

राग़ु देवगंधारी

मेरो सुंदरु कहहु मिलै कितु गली।
हरि. के संत बतावहु मारगु लागि चली।
प्रिअ के वचन सुखाने हीअरै इह चाल बनी है भली॥
लटुरी मधुरी ठाकुर भाई उह सुंदरि हरि ढुलि मिली।
एको प्रिय सखीआ सभ प्रिय की जो भावै पिर सा भली॥
नानकु गरीबु किया करै बिचारा हरि भावै तितु राहि चली॥१५॥

रागु देवगंधारी

अब हम चली ठाकुर पहि हारि।
जब हम सरणि प्रभु की आई राखु प्रभु भावै मारि॥
लोकन की चतुराई उपमा ते बैसंतरि जारि।
कोई भला कहउ भावै बुरा कहउ हम तनु दीओ है ढारि॥

---

१४. मेरे बाबुल, प्रीतम प्रभु से मिलकर वधू (पवित्र) बेल को बढ़ाती है।

हरिने युग-युग से, सदा ही, गुरु का वंश बढ़ाया है, जिसने उसके उपदेश से हरि के नाम का ध्यान सदा किया है।

उस परमपुरुष का कभी विनाश नहीं होता; जो वह देता है वह सवाया हो जाता है।

नानक, संत और भगवंत में भेद नहीं, दोनों एक ही हैं; हरि का नाम लेकर ही वधू शोभा को पाती है।

मेरे बाबुल, प्रीतम प्रभु से मिलकर वधू बेल को बढ़ाती है।

१५. कितु = किस। लागिचली = पीछे-पीछे चलूं। सुखाने हीअरै = हृदय को आनन्द या शान्ति देते हैं। लटुरी ... ढुलि मिली = भले ही बुढ़ापे से कमर झुक गई हो या डील नाटा हो, पर यदि वह प्रभु को प्रिय लगती है तो वही सुंदरी है, स्वामी से वह जा मिलती है। एको प्रिय = प्रियतम केवल एक ही है। सखीआ सभ = सब सखियां (जीवात्माएं) हैं। सा = वही। तितु राहि = उसी रास्ते पर।

जो आवत सरणि ठाकुर प्रभु तुमरी तिसु राखहु किरपा धारि।
जन नानक सरणि तुमारी हरि जीउ राखहु लाज मुरारि ॥१६॥

रागु जैतसरी

हीरा लालु अमोलकु है भारी बिनु गाहक मीका काखा।
रतनु गाहकु गुरु साधू देखिओ तब रतनु बिकानो लाखा ॥
मैरे मनि गुपत हीरू हरि राखा।
दीन दइआलि मिलाइओ गुरु साधु गुरि मिलिए हीरु पराखा ॥
मनमुख कोठी अगिआनु अंधेरा तिन घरि रतनु न लाखा।
ते ऊझड़ि भरमि मुए गावारी माइआ भुअंग बिखु चाखा ॥
हरि हरि साध मेलहु जन नीके हरि साधू सरणि हम राखा।
हरि अंगीकारु करहु प्रभ सुआमी हम परे भागि तुम पाखा ॥
जिहवा किया गुण आखि वखाणह तुम बड़ अगम वड़ पुरखा ॥
जन नानक हरि किरपा धारी पाखाणु डुबत हरि राखा ॥१७॥

---

१६. ठाकुर = स्वामी, परमात्मा। हरि = थककर, इधर-उधर भटककर। भावै = चाहे। उपमा = प्रशंसा से आशय है। बैसंतरि जारि = आग में जलादी हैं; निकम्मी मानती हूं। तनु दीओ है ढारि = अपने शरीर को उसके अधीन कर दिया है।

१७. हीरा या लाल चाहे कैसा ही अनमोल हो, बिना गाहक के वह तिनके के समान तुच्छ है।

जब सतगुरुरूपी गाहक ने उस रतन को देखा, तो उसे उसने लाखों में खरीद लिया।

मेरे हृदय में हरि-हीरा छिपा पड़ा था।

दीनदयालु प्रभु ने सतगुरु से मेरी भेंट करादी, और मैंने अपना हीरा परख लिया।

मन की राह चलनेवालों की कोठरी में अंधेरा-ही-अंधेरा है अज्ञान का; वह रतन नज़र नहीं आता।

वे मूढ़ उजाड़ जंगल में भटक-भटककर मरते हैं माया-नागिनी का ज़हर चख-चखकर।

प्रभो, अपने साधुजनों से मुझे मिलादे; मुझे तू संतजनों की शरण में रख दे।

स्वामी, मुझे तू अब अपनाले; मैं तेरी ओर भाग आया हूं।

मेरी जिह्वा तेरे गुणों का क्या बखान कर सकती है; तू महान् है, तू अगम्य है, तू पुरुषोत्तम है।

दास नानक विनती करता है—स्वामी, मुझ पर दया कर; मुझ पाषाण (जड़बुद्धि) को डूबने से बचाले।

राग सूही—छंत

हरि पहिलड़ी लावँ परविरती करम दृड़ाइआ बलि रामजी।
वाणी ब्रहमा वेदु धरमु दृड़हु पाप तजाइआ बलि रामजी॥
धरमु दृड़हु हरि नामु धिआवहु सिमृति नामु दृड़ाइआ।
सतिगुरु पूरा आराधहु सभि किलविख पाप गवाइआ॥
सहज अनंदु होआ वडभागी मनि हरि हरि मीठा लाइआ॥
जनु कहै नानक लावँ पहिली आरंभु काजु रचाइआ॥१८॥•

हरि दूजड़ी लावँ सतिगुरु पुरखु मिलाइआ बलि राम जी।
निरभउ भै मनु होइ हउमै मैलु गवाइआ बलि राम जी॥
निरमलु भउ पाइआ हरि गुण गाइआ हरि वेखै रामु हदूरे।
हरि आतम रामु पसारिआ सुआमी सरब रहिआ भरपूरे॥
अंतरि बाहरि हरि प्रभु एको मिलि हरिजन मंगल गाए॥
जन नानक दूजी लावँ चलाई अनहद सबद बजाए॥१९॥

---

१८. (● गुरु रामदास ने अपने खुद के विवाह के अवसर पर इसे रचा था। जब वर और कन्या गांठ बांधकर गुरु ग्रन्थ साहब के चारों ओर फेरे करते हैं, तब इसका पाठ किया जाता है।)

'बलि राम जी' — इसका अर्थ 'हे प्यारे' यह भी किया गया है; पर 'हे राम' मैं तुम पर बलि जाता हूं' यह अर्थ अधिक समीचीन जंचता है।

परमात्मा ने इस पहले फेरे से प्रवृत्ति-कर्म को दृढ़ किया है।

(गुरु के) शब्द को ब्रह्मा मानो, और धर्म को मान लो वेद;

और परमात्मा तुम्हें पापों से मुक्त कर देगा।

धर्म पर दृढ़ रहो, हरि के नाम का ध्यान करो और उसे अपनी स्मृति में जमालो।

पूर्ण सद्गुरु की आराधना करो,—तुम्हारे सब पाप दूर हो जायेंगे।

बहुत बड़ा भाग्य है उसका, जिसके हृदय में हरि बस गया—वह उस (ब्राह्मी) अवस्था में आनन्द-ही-आनन्द और माधुर्य का अनुभव करता है।

दास नानक ने पहला फेरा पूरा कर लिया, और विवाह का आरंभ हो गया।

१९. दूसरे फेरे में हरिने सद्गुरु से मेरी भेंट करा दी है।

मेरे मन से भय दूर हो गया है, और मन का मैल धुल गया है।

हरि के गुणों को गाकर, और हरि को अपने सामने देखकर मैंने निर्मल पद पा लिया है।

जगदात्मा हरि से सब-कुछ पखारा हुआ, और भरपूर है।

हरि तीजड़ी लावँ मनि चाउ भइआ बैरागीआ बलि रामजी।
संतजना हरि मेलु हरिपाइआ बड़भागीआ बलि रामजी॥
निरमलु हरि पाइआ हरिगुण गाइआ मुखि बोली हरि वाणी॥
संतजना वड़भागी पाइआ हरि कथीऐ अकथ कहाणी॥
हिरदै हरि हरि हरि धुनि उपजी हरि जपीऐ मसतक भागुजी।
जनु नानकु बोले तोजी लावैं हरि उपजै मनि वैरागु जी॥२०॥

हरि चउथड़ी लावँ मनि सहजु भइआ हरि पाइआ बलि रामजी।
गुरुमुखि सिलिआ सुभाइ हरि मनि तनि मीठा लाइआ बलि रामजी॥
हरि मीठा लाइआ मेरे प्रभ भाइआ अनदिनु हरि लिव लाई।
मन चिंदिआ फलु पाइआ सुआमी हरि नामि बजी वाधाई॥
हरि प्रभि ठाकुरि काजु रचाइआ धन हिरदै नामि विगामी।
जनु नानकु बोले चउथी लावैं हरि पाइआ प्रभु अविनासी॥२१॥

अंदर और बाहर हमारे एक ही हरि है;

हरि के जनों से मिलने पर मंगल-गीत गाये जाते हैं।

दास नानक ने दूसरा फेरा पूरा कर लिया, और उसने अनहद शब्द सुन लिया है।

२०. परमात्मा ने तीसरे फेरे से मन में आनन्द-उत्साह और वैराग्य की भावना स्फुरित कर दी है।

संतजनों ने मुझे हरि से मिला दिया है, और मैंने उसे बड़े सद्‌भाग्य से पाया है।

उसके गुण गा-गाकर और उसका नाम रट-रटकर मैंने उस निर्मल हरि को पाया है।

बड़े भाग्य से संतजनों से मेरी भेंट हुई-जो हरि कथन से परे है, वे मुझे उसकी कथा सुना रहे हैं।

हृदय में हरि की ही ध्वनि उठ रही है, मैं वही एक नाम जप रहा हूं-मेरे भाग्य में लिखा भी यही था।

दास नानक ने तीसरा फेरा पूरा कर लिया और हरि का अनुराग और (जगत् के प्रति) वैराग्य उसके मन में स्फुरित हो गया है।

२१. चौथे फेरे में परमात्मा ने सहज ज्ञान मेरे मन में प्रकाशित कर दिया है, और मैंने हरि को पा लिया है।

गुरु के उपदेश से मुझे सद्वृत्ति प्राप्त हो गई है, और मुझे मेरे मन को और देह को परमात्मा प्रिय लग रहा है।

वह मुझे प्रिय और मनोहर लग रहा है; मैं दिन-रात उसका ध्यान करता हूं।

उसके नाम के आनन्द-गीत-गा-गाकर मुझे मनचाहा फल मिल गया है।

रागु सूही—छंत

आवहो संतजनहु गुण गावहु गोविंद केरे राम।
गुरमुखि मिलि रहीऐ घरि बाजहि सबद घनेरे राम॥
सबद घनेरे हरि प्रभ तेरे तू करता सभ थाई।
अहिनिसि जपी सदा सालाही साच सबदि लिव लाई॥
अनदिनु सहजि रहै रंगिराता राम नामु रिद पूजा।
नानक गुरमुखि एकु पछाणै अवरु न जाणै दूजा॥२२॥

सभ महि रवि रहिआ सो प्रभु अंतरजामी राम।
गुरसबदि रवै रवि रहिआ सो प्रभु मेरा सुआमी राम॥
प्रभु मेरा सुआमी अंतरजामी घटि घटि रविआ सोई।
गुरमति सचु पाईऐ सहजि समाईऐ तिसु बिनु अवरु न कोई॥
सहजे गुण गावा जे प्रभ भावा आपे लए मिलाए।
नानक सो प्रभु सबदे जापै अहिनिसि नामु धिआए॥२३॥

इहु जगु दुतरु मनमुख पारि न पाई राम।
अंतरे हउमै ममता कामु क्रोधु चतुराई राम॥
अंतरि चतुराई थाइ न पाई बिरथा जनमु गवाइआ।
जम मगि दुखु पावै चोटा खावै अंति गइआ पछुताइआ॥
बिनु नावै को वेली नाही पुतु कुटंबु सुतु भाई।
नानक माइआ मोह पसारा आगै साथि न जाई॥२४॥

प्रभु ने काज पूरा कर दिया, और वधू का हृदय हरि-नाम ले-लेकर प्रफुल्लित हो गया है।
दास नानक ने यह चौथा फेरा भी पूरा कर लिया, और अविनाशी प्रभु को पा लिया है।

२२. घरि ... घनेरे = घट के अंदर अनेक प्रकार के शब्द और अनहद् नाद हो रहे हैं। नेरे = पास। थाई = जगह। अहिनिसि = दिन रात। सालाही = प्रशंसा करके, गुण गाकर। लिव = लौ, प्रीति। अनदिनु = नित्य। रंगिराता = अनुराग में रंगा हुआ। रिद = हृदय।

२३. रवि रहिआ = रम रहा है। गुरुसबदि रवै = गुरु के उपदेश में रमता या वास करता है। गुरु के उपदेश से। सहजि समाईऐ = सहज या समाधि की अवस्था में स्थित हो जाये।

२४. दुतरु = दुस्तर, जो बड़ी कठिनता से पार किया जाये। हउमै = अहंकार। थाइ = थाह। बिनु ... नाही = हरिनाम के सिवाय दूसरा कोई और सहारा नहीं। पुतु सुतु = पुत्र और सुत का एक ही अर्थ होता है। यहां एक ही अर्थ के दो शब्दों को या तो अधिक ज़ोर

हउ पूछउ अपना सतिगुरु दाता किनबिधि दुतरु तरीऐ राम।
सतिगुर भाइ चलहु जीवतिआ इव मरीऐ राम॥
जीवतिआ मरीऐ भउजलु तरीऐ गुरमुखि नामि समावै।
पूरा पुरख पाइआ बड़भागी साचि नामि लिव लावै॥
मनि परगासु भई मनु मानिआ रामनामि वड़िआई।
नानक प्रभु पाइआ सबदि मिलाइआ जोती जोति मिलाई॥२५॥

रागु बसंतु—अष्टपदी

काइआ नगरि इकु बालकु बसिआ खिनु पलु थिरु न रहाई।
अनिक उपाउ जतन करि थाके बारं बार भरमाई॥
मेरे ठाकुर बालकु इकतु घरि आणु।
सतिगुरु मिलै त पूरा पाईऐ भजु राम नामु नीसाणु॥
इहु मिरतक मड़ा सरीरु है सभु जगु जितु राम नामु नहीं वसिआ।
राम नामु गुरि उदकु चुआइआ फिरि हरिआ होआ रसिआ॥
मै निरखत निरखत सरीरु सभु खोजिआ इकु गुरमुखि चलतु दिखाइअ।
बाहरु खोजि मरे सभि साकत हरि गुर मति घरि पाइआ॥
दीना दीन दयाल भए है जिउ क्रिसनु बिदर घरि आइआ।
मिलिओ सुदामा भावनी धारि सभु किछु आगै दालदु भंजि समाइआ॥
राम नाम की पैज वड़ेरी मेरे ठाकुरि आपि रखाई।
जे सभि साकत करहि वखीली इक रती तिलु न घटाई॥
जन की उसतति है राम नामा दह दिसि सोभा पाई।
निंदकु साकत खवि न सकै तिलु आपणै घरि लूकी लाई॥

देने के लिए रखा है, या भाई के पुत्र, यह अर्थ भी हो सकता है।

२५. हउ पूछउ = मैं पूछता हूं। किन विधि = किस प्रकार। जीवतिआ इव मरीए = जीतेजी ही मर जाये, अर्थात् अहंकार को मारदे। समावै = रम जाये। मति परगासु भई = बुद्धि परमार्थ-ज्ञान से प्रकाशित हो गई। वड़िआई = महिमा।

२६. बालकु = मन से आशय है। खिनु = क्षण। थिरु = स्थिर, अचंचल। भरमाई = इधर-उधर घूमता रहता है। इकतु घरि आणु = एक नियत घर में लाकर बिठादे। इहु ... बासेआ = इस संसार में उन सभी के शरीर मानों क़ब्र की मिट्टी है, जिनमें राम-नाम का वास नहीं है। रामनासु रसिआ = गुरु रामनाम का जल जब ढाल देता है, तब सूखा भी हरा हो जाता है; और उसमें रस भर जाता है। मृतक भी हरिनाम की संजीवनी से प्रफुल्लित हो जाता है। चलतु दिखाइआ = दृष्टि देदी। साकत = नास्तिकों अर्थात् ईश्वर पर ईमान न लाने वालों से आशय है। गुरमति घरि पाइआ = गुरु के उपदेश से परमात्मा

जन कउ जनु मिलि सोभा पावै गुण महि गुण परगासा।
मेरे ठाकुर के जन प्रीतम पिआरे जो होवहि दासनिदासा॥
आपै जलु अपरंपारु करता आपै मेलि मिलावै।
नानक गुरमुखि सहजि मिलाए जिंउ जलु जलहि समावै॥२६॥

सोरठ की वार

हरि दासन सिउ प्रीति है हरि दासन को मिंतु॥
हरि दासन कै वसि है जिउ जंती कै वसि जंतु॥
हरि के दास हरि धिआइऐ करि प्रीतम सिउ नेहु।
किरया करिकै सुनहु प्रभु सभ जग महि वरसै मेहु॥
जो हरि दासन की उसतति है सा हरि की वडिआई।
हरि आपणी वडआई भावदी जन का जैकारु कराई॥
सो हरिजनु नामु धिआइदा हरि हरिजनु इक समानि।
जनु नानक हरि का दासु है हरि पैज रखहु भगवान॥१॥

सलोक

नानक प्रीति लाई तिनि साचै तिसु बिनु रहणु न जाई।
सतिगुरु मिलै त पूरा पाईऐ हरि रसि रसन रसाई॥

पउड़ी

रैणि दिवसु परभाति तूहै ही गावणा।
जीअ जंत सरबत नाउ तेरा धिआवणा॥

को घर बैठे ही पा लिया। दीनादीन = दीनों से भी दीन। बिदर = विदुर। भावनी = भक्ति-भावना। दालदु भंजि = दरिद्रता दूर कर। समाइआ = समृद्ध बना दिया। वखीली = कलंक या अप्रतिष्ठा। उसतति = स्तुति। खवि न सकै = रोक या अटका नहीं सकते। आपणै घरि लूकी लाई – अपने घरों में आग लगा दी। आपै जलु = सिरजनहार समुद्र के समान है। आपै मेलि मिलावै – अपने आपसे मिलन वही कराता है।

१. सिउ = से, के साथ। मिंतु = मित्र। जंती = यंत्री, बाजा बजाने वाला। जंतु = यंत्र, बाजा। हरि धिआइऐ = हरि का ध्यान करते हैं। मेहु = करुणारूपी जल, यह भी अर्थ हो सकता है। उसतति = स्तुति, प्रशंसा। बड़िआई = महिमा। हरि ... कराई = जब उसके सेवकों का जयकार होता है, तो परमात्मा उसे अपनी ही महिमा मानता है। धिआइदा = ध्यान करते हैं। इक समानि = एक ही हैं दोनों। पैज = लाज।

२. लाई = लगाई। तिसु ... जाई = उस प्रभु के बिना जिनसे रहा नहीं जाता, बिना उसके

तू दाता दातारु तेरा दित्ता खावणा।
भगत जना कै संगि पाप गवावणा॥
जन नानक सद बलिहारे बलि बलि जावणा॥२॥

मारू की वार

चड़ि बोहिथै चालसउ सागरु लहरी देह।
ठाक न सचै बोहिथै जे गुरु धीरक देइ॥
तितु दरि जाइ उतारीआ गुरु दिसै सावधानु।
नानक नदरी पाईए दरगह चलै मानु॥

पउड़ी

निहकंटक राजु भुंचि तू गुरमुखि सचु कमाई।
सचै तखत बैठा निआउ करि सतसंगति मेलि मिलाई॥
सचा उपदेसु हरि जापणा हरि सिउ वणि आई।
ऐथै सुखदाता मनि बसै अंति होइ सखाई॥
हरि सिउ प्रीति ऊपजी गुरि सोझी पाई॥१॥

सलोक

बड़भागिया सोहागणी जिन्हां गुरमुखि मिलिआ हरिराइ।
अंतर जोति परगासिया नानक नामि समाइ॥१॥
वाहु वाहु सतिगुरु सतिपुरख है, जिसनों सिम्रतु सभकोई।
वाहु वाहु सतिगुरु निरवैरु है, जिसु निंदा उसतति तुलि होइ॥२॥

बेचैन रहते हैं। हरिरसि रसन रसाई = हरिनाम के रस से जिह्वा को रसवंती कर लिया है; जिनकी वाणी से आनन्द-ही-आनन्द झरता रहता है। तूहै = तुझे। गावणा = यश गाते हैं। सरबत = सर्वत्र। दित्ता = दिया हुआ, दान। सद = सदा।

१. चड़ि बोहिथै चालसउ = नाव पर चढ़कर आगे बढ़ जाऊंगा। सागरु लहरी देइ = समुद्र में चाहे कितनी ही ऊंची लहरें उठती हों। ठाक न सचै बोहिथै = सच्ची नाव रुक नहीं सकती। धीरक = हिम्मत। तितु दरि=उस घाट पर। दिसै = दीख रहा है। सावधानु = जागृत। नदरी = कृपा-दृष्टि। दरगह = ईश्वर का दरबार। मानु = प्रतिष्ठा, आदर। भुंचि = भोग। निआउ = न्याय। ऐथै = इस लोक में। सुखदाता = आनन्ददाता परमात्मा। अंति = परलोक में।

१. नामि समाइ = हरि-नाम में लौलीन हो गये।

२. जिसों=जिसको। सिम्रतु=स्मरण करते हैं। उसतति=स्तुति, प्रशंसा। तुलि=तुल्य, समान।

वाहु वाहु सतिगुरु सुजाणु है, जिसु अंतरि ब्रहमु विचारु।
वाहु वाहु सतिगुरु निरंकारु है, जिसु अंतु न पारावारु॥३॥

वड़भागी हरि पाइआ पूरन परमानन्दु।
जन नानक नामु सलाहिआ, बहुड़ि न मनि तनि भंगु॥४॥

गुरमुखि सची आसकी जितु प्रीतमु सचा पाईऐ।
अनदिनु रहहि अनंदि नानक सहजि समाईऐ॥५॥

सचा प्रेम पिआरु गुर पूरे ते पाइए।
कबहू न होवै भंगु नानक हरिगुण गाइए॥६॥

●

---

४. सलाहिआ = सराहना या स्तुति की। बहुड़ि = फ़िर। न मनि तनि भंगु = मन और तन से विलग नहीं होता।

५. आसकी = प्रीति। अनदिनु = नित्य, निरंतर।

गुरु अर्जुनदेव

चोला-परिचय

जन्म-संवत् – १६२० वि., वैशाख कृ. ७
जन्म-स्थान – गोइन्दवाल
पिता – गुरु रामदास
माता – बीबी भानी
भेष – गृहस्थ
मृत्यु-संवत् – १६६३ वि., ज्येष्ठ शु. ४
मृत्यु-स्थान – लाहौर (रावी नदी में)

गुरु अर्जुनदेव बचपन से ही बड़े होनहार दीखते थे। इनके नाना गुरु अमरदास की यह भविष्यद्वाणी सर्वथा सत्य सिद्ध हुई कि "यह मेरा दोहित पानी का बोहित होगा।" इन्होंने अपनी ऊंची रहनी और गहरी बानी के द्वारा हज़ारों-लाखों को पार लगाया।

विवाह इनका जालंधर ज़िले के कृपाचंद्र की पुत्री गंगा देवी के साथ हुआ। इन्हीं गंगा के गर्भ से महाप्रतापी छठे गुरु हरगोविन्द का जन्म हुआ।

सबसे पहले गुरु अर्जुनदेव ने संतोखसर और अमृतसर इन दोनों तालाबों के घाट बंधवाये, और रामदासपुर शहर को भी विस्तृत किया। रामदाससर (अमृतसर) की महिमा इन्होंने अपने इस पद में गाई है :–

"रामदास सरोवरि नाते। सभि उतरे पाप कमाते ॥
निरमल होए करि इसनाना। गुरि पूरे कीने दाना ॥
सभि कुसल खेम प्रभ धारे।
सही सलामति सभि लोक उबारे गुरु का सबदु बीचारे ॥
साध संगि मलु लाथी। पार ब्रहमु भइओ साथी ॥
नानक नामु धिआइआ। आदिपुरख प्रभु पाइआ ॥"

गुरु अर्जुनदेव ने अमृतसर में एक सुन्दर मन्दिर भी बनवाया, जिसे हर-मंदिर या दरबार साहिब भी कहते हैं। इस मन्दिर में गुरु साहिब की सेवा पूजा की जाती है।

गुरु अर्जुनदेव ने तरनतारन का भी निर्माण किया, और वहां भी एक तालाब खुदवाया।

इसी प्रकार व्यास और सतलज नदियों के बीच एक दूसरा शहर भी इन्होंने बसाया, जिसे कर्त्तारपुर कहते हैं।

इनका प्रायः सारा ही जीवन संघर्ष में बीता। इनके प्रति एक-न-एक कारण से ये तीन व्यक्ति द्वेष रखते थे—(१) बादशाह अकबर का मंत्री राजा वीरबल, (२) इनका बड़ा भाई प्रिथिया, और (३) बादशाह का एक अर्थमंत्री चंदूशाह।

वीरबल का तो गुरु अर्जुनदेव के साथ केवल धार्मिक मत-भेद था। उसने उन्हें कई बार अपमानित करने का प्रयत्न किया, पर वह सफल नहीं हुआ।

प्रिथिया को गुरु की गद्दी नहीं मिली थी, इसीलिए वह इनका शत्रु बन बैठा। इनके विरुद्ध उसने अनेक षड़यंत्र रचे। इनके पुत्र हरगोविन्द को विष दिलाने तक का प्रयत्न किया। बादशाह को भी इनके खिलाफ़ कई बार उसने उभाड़ा। जितनी भी दुष्टता और नीचता हो सकती थी, प्रिथिया ने उस सबका प्रयोग किया। उसकी स्त्री गुरु का सर्वनाश करने-कराने के प्रयत्नों में उससे भी हमेशा चार क़दम आगे रहती थी।

चंदूशाह भी गुरु का जानी दुश्मन था। वह दिल्ली में रहता था। उसको अपनी एक लड़की के लिए सुयोग्य वर की आवश्यकता थी। उसके आगे गुरु अर्जुनदेव के लड़के हरगोविन्द का प्रस्ताव रखा गया। पहले तो उसे यह प्रस्ताव पसंद नहीं आया और यह कहकर गुरु का घोर अपमान किया कि—'राजमहल की सुन्दर खपरैल को भला कोई नाली में फेंकेगा?' किन्तु अंत में अपनी स्त्री के आग्रह पर उसने उक्त बात को मान लिया। पर अब गुरु के सिक्ख राज़ी नहीं हुए। गुरु का अपमान उन्हें सहन नहीं हुआ। परिणामतः चंदूशाह का प्रस्ताव ठुकरा दिया गया। इस घटना ने उसे गुरु अर्जुनदेव का घोर शत्रु बना दिया। उसने उनको मिट्टी में मिला देने की प्रतिज्ञा की। चंदूशाह ने कितने ही षड़यंत्र गुरु अर्जुनदेव के विरुद्ध रचे, और प्रिथिया ने भी उसका इन कुकृत्यों में साथ दिया।

गुरु अर्जुनदेव ने अपने सतत संघर्षमय जीवन में भी हमेशा शान्ति, गंभीरता, क्षमाशीलता और तितिक्षा का परिचय दिया। वे अपने धर्म-पथ पर से अंत तक विचलित नहीं हुए। रचनात्मक कार्य उनका बराबर जारी रहा। अपने जीवन में उन्होंने जो सबसे महान् और चिरस्थायी कार्य किया वह था गुरु ग्रन्थ साहिब का सुन्दर संकलन तथा संपादन। चारों पूर्व गुरुओं की यथार्थ बानी का रागबद्ध संग्रह करना कोई साधारण काम नहीं था। गुरु अमरदास अपनी रचना 'अनंदु' की २३वीं तथा २४वीं पउड़ी में कह गये थे कि सिक्खों को गुरु के सच्चे पदों का ही पाठ करना चाहिए। गुरु अर्जुनदेव की आज्ञा से भाई गुरदास ने इस भगीरथ कार्य को हाथ में लिया। गुरु अमरदास के जेठे पुत्र मोहन को प्रसन्न करके गोइन्दवाल से गुरु अर्जुनदेव गुरुओं की सारी सच्ची बानी को ले आये। उस सब बानी का तथा अपनी भी बानी का उन्होंने संग्रह और संपादन

कराया, और जयदेव, कबीर, रैदास, फरीद आदि भक्तों की भी कुछ चुनी हुई बानियों को ग्रन्थ साहिब में आदरपूर्वक स्थान दिया। गुरु अर्जुनदेव ने बोल-बोलकर सब पदों और सलोकों को भाई गुरदास से गुरुमुखी में लिखवाया। गुरु अर्जुनदेव ने यह एक बहुत बड़ा काम किया, और इससे वे अमर हो गये। सत्तै ने बलवंड की लंबी रचना में निम्नलिखित पउड़ी जोड़कर गुरु अर्जुनदेव की गुरुग्रन्थ साहिब संपादन-विषयक जो ऊँची प्रशंसा की वह सर्वथा योग्य है :–

चारे जागे चहु जुगी पंचाइणु आपे होआ॥
आपीनै आपु साजिओनु आपेही थंम्हि खलोआ॥
आपे पटी कलम आपि आपि लिखणहारा होआ॥
सभ उमति आवण जावणी आपेही नवा निरोआ॥
तखति बैठा अरजन गुरु सतिगुर का खिवै चंदोआ॥
उगवणहु तै आथवणहु चहु चकी कीअनु लोआ॥
जिन्हीं गुरु न सेविओ मनमुखा पइआ मोआ॥
दूणी चउणी करामाति सचे का सचा ढोआ॥
चारे जागे चहु जुगी पंचाइणु आपे होआ॥

अर्थात्, चारों गुरुओं ने जगत् के चारों युगों को जगमगा दिया; अर्जुन, तू उनके स्थान पर पाँचवाँ है।

तूने स्वयं ही यह सब रचा है; तू ही इस रचना का आधार-स्तंभ है।
तू ही पट्टी है, तू ही क़लम है, तू ही लिखने वाला है।
मनुष्य आते हैं और चले जाते हैं; पर तू सदा ही नवीन और पूर्ण है।
गुरु अर्जुन गुरु के तख़्त पर बैठा है, सतगुरु का छत्र उसके ऊपर दिप रहा है।
उदयाचल से अस्ताचलतक सारी दिशाएँ तूने प्रकाशित कर दी हैं।
जिन्होंने सतगुरु की सेवा नहीं की, उन्हें बारबार जन्म लेना होगा।
तेरे चमत्कार दूने-चौगुने बढ़ेंगे; सच्चे गुरु का तू सच्चा उत्तराधिकारी है।

चारों गुरुओं ने जगत् के चारों युगों को जगमगा दिया; अर्जुन, तू उनके स्थान पर पाँचवाँ है।

अंत में, ४३ वर्ष की अल्पायु में, महान् संत गुरु अर्जुनदेव को धर्म की वेदी पर बलि होना पड़ा। प्रिथिया के पुत्र मिहरबान और चंदू अपने महान् कुकृत्य में सफल हो गये। गुरु अर्जुनदेव की झूठी-झूठी शिकायतें जहांगीर बादशाह के कानों में पहुंचाई गई। उन्हें छल-बल से पकड़वाकर बादशाह के आगे पेश किया गया और इस्लाम का विरोधी ठहराया गया। फैसला यह सुनाया गया कि वे दो लाख रुपये बतौर जुर्माने के दें, और गुरु ग्रन्थ साहिब में से आपत्तिजनक अंश को निकाल दें। उन्होंने दोनों ही बातें नामंजूर

कर दीं। उन्होंने कहा कि "ग्रन्थ साहब में ऐसी एक भी पंक्ति नहीं, जिसमें हिन्दू अवतारों और मुसलिम पैगंबरों की निंदा की गई हो। हां, यह ज़रूर उसमें कहा गया है कि पैगंबर, पीर और अवतार सब उसी अकाल परमात्मा के सिरजे हुए हैं, जिसका अंत आज तक किसी को भी नहीं मिला। मेरा मुख्य उद्देश्य है सत्य का प्रचार और असत्य का निवारण, इसमें अगर मेरा यह नाशवान शरीर भी चला जाये, तो उसे मैं अपना अहोभाग्य मानूँगा।" बादशाह इस पर बहुत बिगड़ा। गुरु अर्जुनदेव को जेलखाने में डाल दिया गया, और वहां उन्हें अनेक अमानुषिक यातनाएं दी गई। आग-सी गरम रेत उनके ऊपर डाली गई, और जलती हुई लाल कड़ाही में उन्हें बिठाया गया। पर उन्होंने सारी यातनाओं को शांति से सहन कर लिया। उन्होंने हंसते हुए आततायी चंदू से दृढ़ता के स्वर में कहा कि, अरे मूर्ख!

'फूटो अंडा भरम का, मनहि भइउ परगासु।
काटी बेड़ी पगह ते, गुरि कीता बंदि खलासु॥

जन्म-जन्म की बेड़ी कट चुकी थी, सतगुरु ने माया के बंदीगृह से मुक्त कर दिया था। भ्रम का परदा हट चुका था, और अब मन के अंदर दिव्य प्रकाश जगमग-जगमग हो रहा था।

पाँच दिन कारागार में बीत गये। छठे दिन उन्होंने रावी नदी में स्नान कर आने की इजाज़त मांगी, और वह मिल गई। अपने साथ पाँच प्यारे सिक्खों को लेकर वे हथियारबंद सिपाहियों की निगरानी में नहाने के लिए बंदीगृह से निकले। सारे बदन पर फफोले पड़े हुए थे, और पैरों में कई घाव हो गये थे। लेकिन चेहरे पर प्रेम की वही मस्ती खेल रही थी, मानो बंदी-गृह से छूटकर अपने प्यारे प्रभु से मिलने जा रहे थे। ध्यान में मग्न थे, मुख से 'वाहगुरु वाहगुरु' निकल रहा था।

रावी में उतरकर स्नान किया, और फिर 'जपुजी' का मंगल पाठ, और वहीं पर शान्तिपूर्वक अपना चोला छोड़ दिया। वह संवत् १६६३ की जेठ सुदी चौथ का दिन था—बहुत बड़े बलिदान का चिरस्मरणीय दिन!

बानी-परिचय

गुरु अर्जुनदेव की बानी बहुत बड़ी है, ६००० से भी अधिक इनके पद और सलोक हैं। 'महला ५' के अंतर्गत जितने भी पद और सलोक मिलते हैं वे सब इन्हीं के रचे हुए हैं। 'बावन अखरी', सवैये, छंत, फुनहे, अनेक रागों में 'वारें, तथा 'सहसकृती के सलोक' इनके प्रसिद्ध हैं। पर इनकी 'सुखमनी' नाम की आनन्ददायिनी सुंदर सरस रचना सब से अधिक प्रसिद्ध है। इसमें २४ अष्टपदियाँ हैं। हमने प्रस्तुत ग्रन्थ में सारी सुखमनी नहीं, पर उसकी बहुत-सी अष्टपदियां संकलित की हैं। यह इनकी अति लोकप्रिय रचना है।

इसके पाठ से चित्त को बहुत शान्ति मिलती है। प्रातःकाल 'जपुजी' के पश्चात् 'सुखमनी' का पाठ किया जाता है। भाषा सरस तथा साधु है। पंजाबी का पुट कम और हिन्दी का रंग अधिक है। इनके कितने ही पद बहुत मधुर और प्रसादगुण से युक्त हैं। भक्ति भावना उनमें कूट-कूटकर भरी है। हमें इस बात का पछतावा है कि स्थल-संकीर्णता के कारण गुरु अर्जुनदेव के हज़ारों पदों में हम बहुत ही थोड़े पद इस संग्रह-ग्रन्थ में ले सके।

आधार

१ गुरु ग्रन्थ साहिब – सर्व हिंद सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन (भाग ३) – मेकालीफ़

●

गुरु अर्जुनदेव

राग सारंग

अब मोरो ठाकुर सिउ मनु माना।
साध कृपा दइआल भये हैं इहु छेदिओ दुसटु बिगाना॥
तमुही सुंदर तुमहि सिआने, तुम ही सुघर सुजाना॥
सगल जोग अरु गिआन धिआन इक निमख न कीमति जाना॥
तुमही नायक तुमही छत्रपति, तुम पूरि रहे भगवाना॥
पावउ दानु संत-सेवा हरि, नान सद कुरबाना॥१॥

जा की रामनाम लिव लागी।
सजनु सुहृद सुहेला सहजे, सो कहिए बड़भागी॥
रहित विकार अलिप माइआ ते अहंबुद्धि-बिखु तिआगी॥
दरस पिआस आस एकहि की, टेक हिये प्रिय पागी॥
अचिंत सोइ जागनु उठि बैसनु अचिंत हसत बैरागी॥
कहु नानक जिनि जगतु ठगाना, सुंमाइआ हरिजन ठागी॥२॥

माई री मनु मेरो मतवारो।
पेखि दइआल अनंद सुख पूरन हरि रसि पिओ खुमारो॥
निरमल भइउ उजल जसु गावत बहुरि न होवत कारो॥
चरनकमल सिउ डोरी राची भेटिओ पुरखु अपारो॥
करु गहि लीने सरबसु दीने, दीपक भइउ उजारो॥
नानक नामि-रसिक बैरागी कुलह समूहा तारो॥३॥

---

१. सिउ = से। इहु ... बिगाना = इस दुष्ट शत्रु (मन) ने मेरा नाश कर दिया था; अथवा, दयालु संतों ने इस दुष्ट शत्रु का छेदन कर दिया। सगल ... जाना = प्रभु के सान्निध्य में एक क्षण भी जो आनन्द मिला उसकी तुलना में सारा योग और ज्ञान-ध्यान तुच्छ है। निमख = निमिष, पल। सद = सदा। कुरबाना = बलिहारी।

२. लिव = प्रीति, ध्यान। सजनु = संबंधी, प्यारा! सुहेला = सुंदर। अलिप = निर्लेप। अहंबुधि विखु = अहंकार रूपी विष। अचिंत = निश्चिंत। वैसनु = बैठना। ठागी = हरिभक्तों द्वारा ठगी गई।

३. खुमारो = नशा। कारो = काला, मलिन। डोरी राची = प्रीति लगी। कुलह समूहा = अनेक कुलों को।

अवरि सभि भूले भ्रमत न जानिआ।
एक सुधाखरु जाकै हिरदै बसिआ तिनि बेदहि ततु पछानिआ ॥
परविरति मारगु जेता किछु होइऐ तेता लोग पचारा।
जउलउ रिदै नहीं परगासा, तउलउ अंध अंधारा ॥
जैसे धरती साधै बहु बिनु बिधि बिनु बीजै नहीं जामै।
रामनाम बिनु मुकति न होई है तुटै नहीं अभिमानै ॥
नीरु बिलोवै अति स्रमु पावै, नैनू कैसे रीसै ॥
बिनु गुर भेट मुकति ना काहू मिलत नही जगदीसै ॥
खोजत खोजत इहै बिचारिओ सरब सुखा हरिनामां ॥
कह नानकु तिसु भइओ परापति जाकै लेखु मथामां ॥४॥

उआ अउसर कै हउ बलि जाई।
आठ पहर अपना प्रभु-सिमरनु बड़भागी हरि पाई ॥
भलो कबीरुदासु दासन को ऊतम सैनु जनु नाई ॥
ऊच ते ऊच नामदेव समदरसी, रविदास ठाकुर बनि आई ॥
जीव पिंडु तनु धनु साधन का इहु मनु संत रेनाई ॥
संत प्रतापि भरम सभि नासे नानक मिले गुसाई ॥५॥

रागु प्रभाती

राम राम राम राम जाप।
कलि-कलेस लोभ-मोह विनसि जाए अहं-ताप ॥
आपु तिआगि, संतचरन लागि, मनु पवितु, जाहि पाप ॥
नानकु बारिकु कछू न जानै, राखन कउ प्रभु माई बाप ॥६॥

---

४. सुधाखरु = सुधा + अक्षर; अमृत के जैसा प्रभु-नाम का अक्षर। पछानिआ = पहचाना। परविरति = प्रवृत्ति, संसार बंधन के कर्म। पचारा = प्रचार किया। परगासा = प्रकाश (आत्म-ज्ञान का)। साधै = बनाये, कमाये। नैनू कैसे रीसै = मक्खन कैसे निकल सकता है। सुखा = सुखदायक। मथामां = माथे में अर्थात् भाग्य में।

५. उवा = वा, उस। हउ = हौं, मैं। ऊतमु = उत्तम, श्रेष्ठ। सैनु जनु = सेना नाम का हरि-भक्त जो जाति का नाई था। रविदास ... आई = रैदास की प्रीति भगवान् से निभ गई। रेनाई = (चरणों की) रेणु अर्थात् धूल। गुसाई = प्रभु, परमात्मा।

६. अहंताप = अहंकार की आग, जो निरंतर जलाती रहती है। आपु = अहंकार। पवितु = पवित्र। बारिकु = बालक। कउ = को।

चरनकमल-सरनि टेक।
ऊच मूच बेअंतु ठाकुरु, सरब ऊपरि तुही एक॥
प्रानअधार दुख बिदार, देनहार बुधि-बिवेक॥
नमसकार रखनहार मनि अराधि प्रभू मेक॥
संत-रेन करउ मंजनु नानकु पावे सुख अनेक॥७॥

रागु रामकली

जपि गोबिन्दु गोपाल लालु।
रामनाम सिमरि तू जीवहि फिरि न खाई महाकालु॥
कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भ्रमि आइओ। बड़े भागि साधु संगु पाइओ॥
बिनु गुर पूरे नाही उधारु। बाबा नानकु आखै एहु बीचारु॥८॥

कोई बोले राम नाम कोई खुदाइ।
कोई सेवै गुसइआ कोई अलाहि॥
कारणकरण करीम।
किरपा धारि रहीम॥

कोई नावै तीरथि कोई हज जाइ। कोई करै पूजा कोई सिरु निवाइ॥
कोई पढ़ै बेद कोई कतेब। कोई ओढ़ै नील कोई सुपेद॥
कोई कहै तुरकु कोई कहै हिंदू। कोई बाछै भिसतु कोई सुरगिंदू॥
कहु नानक जिनि हुकमु पछाना। प्रभ साहिब का तिनि भेदु जाना॥९॥

तेरे काजि न ग्रिहु राजु मालु। तेरे काजि न बिखै जंजालु॥
इसट मीत जाणु सभ छलै। हरि हरि नामु संगि तेरे चलै॥
रामनाम गुण गाइले मीता हरि सिमरित तेरी लाज रहे।
हरि सिमरित जमु किछु न कहै॥

---

७. ऊच मूच = ऊँचे से ऊँचा। बेअंतु = अनंत। मनि अराधि = मन में आराधना करने योग्य। संत ... मंजनु = संतों की चरण-रज से मन को मांजकर निर्मल करूँ।

८. उधारु = उद्धार, मुक्ति। आखै = कहता है। बीचारु = सार-तत्त्व की बात।

९. गुसइआ = गोसाईं, परमात्मा। अलाहि = अल्लाह। कारण करण = कारण का भी कारण। करीम = कृपालु। रहीम = दयालु। नावै = स्नान करता है। सिरु निवाइ = नमाज़ पढ़ता है। कतेब = कुरान से आशय है। नील = नीला कपड़ा, जिसे मुसलमान फक़ीर ओढ़ते हैं। सुपेद = सफेद वस्त्र। बाछै = चाहता है। भिसतु = वहिश्त, स्वर्ग। सुरगिंदू = सुरलोक। भेदु = मर्म, असली रहस्य।

बिनु हरि सगल निरारथ काम। सुइनारूपा माटी दाम ॥
गुर का सबदु जापि मन सुखा। ईहा ऊहा तेरो ऊजल मुखा ॥
करि करि थाके बड़े बडेरे। किनही न कीए काज माइआ पूरे ॥
हरि हरि नामु जपै जनु कोइ। ताकी आसा पूरन होइ ॥
हरि भगतन को नामु आधारु। संत जीता जनमु अपारु ॥
हरि संतु करे सोई पर बाणु। नानक दास ताकै कुरबाणु ॥१०॥

गावहु राम के गुण गीत।
नाम जपत परम सुख पाईऐ आवागउणु मिटै मेरे मीत ॥
गुण गावत होवत परगासु। चरनकमल महि होइ निवासु ॥
संतसंगित महि होइ उधारु। नानक भउजलु उतरसि पारु ॥११॥

पवनै महि पवनु समाइआ। जोती महि जोति रलिजाइआ ॥
माटी माटी होई एक। रोवणहारे की कउन टेक ॥

कउनु मूआ रे कउनु मूआ ॥
ब्रह्मगिआनी मिलि करहु विचारा इहु तउ चलतु भइआ ॥
अगली किछु खबरि न पाई। रोवणहारु भि ऊठि सिधाई ॥
भरम मोह के बांधे बंध। सुपना भइआ भखलाए अंध ॥
इह तउ रचन रचिआ करतारि। आवत जामत हुकमि अपारि ॥
नह को मूआ न मरणै जोगु। तह बिनसै अबिनासी होगु ॥
जो इहु जाणहु सो इहु नाहि। जानणहारे कउ बलि जाउ ॥
कहु नानक गुरि भरमु चुकाइआ। ना कोई मरै न आवै जाइआ ॥१२॥

---

१०. तेरे काजि न = तेरे काम आने वाला नहीं। इसट = इष्ट, प्रिय। छलै = धोखा देंगे। सगल = सकल। निरारथ = व्यर्थ। सुइना रूपा = सोना-चांदी। मन सुखा = प्रसन्न मन से। ईहा ऊहा = इस लोक में तथा परलोक में। माइआ = माया। चीता = सफल किया। परवाणु = प्रमाण, सत्य।

११. परगासु = आत्म-ज्ञान का प्रकाश। उधारु = उद्धार, मोक्ष। भउजलु = संसार-सागर।

१२. रलि जाइआ = मिल गई, एक ही हो गई। इहु = यह जीव। अगली = मृत्यु के उपरान्त की। भखलाए = बौखला गये, पागल हो गये। हुकमि अपारि = अपरंपार की आज्ञा से। नह = नहीं। को = कोई। जो इहु ... नाहि = जो इस देह को जीव जान लिया था वह नहीं है। जानणहारे ...जाउ = ज्ञान के मूल अधिष्ठान परमात्मा पर, अथवा आत्म-अनात्म के भेद को जानने वाले सत्गुरु पर मैं निछावर होता हूँ। गुरि = गुरु ने। मरमु चुकाइआ = मिथ्या ज्ञान का अंत कर दिया; अभेद ज्ञान प्राप्त करा दिया।

राग सिरी

प्रीति लगी तिसु सच सिउ मरै न आवै जाइ।
ना बिछोड़िआ बिछुड़ै सभ महि रहिआ समाइ॥
दीन दरद दुख भंजना सेवक कै सतभाइ।
अचरजु रूपु निरंजनों गुरि मेलाइआ माइ॥
भाई रे मींत करहु प्रभु सोइ।
माया मोह परीति ध्रिगु सुखी न दीसै कोइ॥
दाना दाता सीलवंत निरमलु रूप अपारु।
सखा सहाई अति बड़ा ऊचा बड़ा अपारु॥
बालक विरधि न जाणीऐ निहचलु तिसु दरबारु।
जो मंगीऐ सोइ पाइऐ निरधारा आधारु॥
जिसु पेखत किलविख हिरहि मनि तनि होवै सांति।
इकमति एकु धिआइऐ मन की जाहि भरांति॥
गुणनिधानु नवतनु सदा पूरन जाकी दाति।
सदा सदा आराधीऐ दिनु बिसरहु नाही राति॥
जिन कउ पूरबि लिखिआ तिनका सखा गोविंदु।
तनु मनु धनु अरपी सभो सगल वारीऐ इह जिंदु॥
देखै सुणै हदूरि सद घटि घटि ब्रहमु रविंदु।
अकिरत घणोने पालदा प्रभ नानक सद बखसिंदु॥१३॥

रागु भैरउ

तू मेरा पिता तू है मेरी माता। तू मेरे जीअ प्रान सुखदाता॥
तू मेरा ठाकुर हउ दासु तेरा। तुझ बिनु अवरु नही को मेरा॥
करि किरपा करहु प्रभ दाति। तुमरी उसतति करउं दिनराति॥

---

१३. तिसु सच सिउ = उस सत्यरूप परमात्मा से। ना बिछोड़िया बिछुड़ै = मैं चाहे उससे अलग हो जाऊँ, पर वह मुझसे अलग होने वाला नहीं। सेवक कै सतभाइ = सत्य ही अपने सेवक पर प्रेम करता है। गुरि मेलाइआ माइ = री सखी, गुरु ने मुझे उससे मिला दिया है। परीति = प्रीति। दीसै = दीखता है। दान = बुद्धिमान। विरधि = वृद्ध। निरधारा = निर्बल। जिसु पेखत = जिसे देखने से। किलविख हिरहि = पाप दूर हो जाते हैं। इक = एकाग्रचित से, अनन्यभाव से। मन की जाहि भरांति = मन का सारा भ्रम दूर हो जाता है। नवतनु = नूतन। दानि = दान। पूरबि लिखिआ = प्रारब्ध में लिखा है। जिंदु = जीवन। हदूरि = विद्यमान। सद = सदा। रविंदु = रमा हुआ है, व्याप्त। अकिरत = कृतघ्न। बखसिंदु = क्षमा करने वाला।

हम तेरे जंत तू बजावनहारा। हम तेरे भिखारी दानु देहि दातारा॥
तउ परसादि रंगरस माणे। घट घट अंतरि तुमहि समाणे॥
तुमरी कृपा ते जपीऐ नाउ। साध संगि तुमरे गुण गाउ॥
तुमरी दइआ ते होइ दरद बिनासु। तुमरी मइआ ते कमल बिगासु॥
हउ बलिहारि जाउं गुरदेव। सफल दरसनु जाकी निरमल सेव॥
दइआ करहु ठाकुर प्रभ मेरे। गुण गावै नानकु नित तेरे॥१४॥

श्रीधर मोहन सगल उपावनं निरंकार सुखदाता।
ऐसा प्रभु छोड़ि करहि अनसेवा कवन बिखिआ रसमाता॥

रे मनु मेरे तू गोविंद भाजु।
अवर उपाव सगल मै देखे जो चितवीए तितु बिंगरसि काजु॥
ठाकुर छोड़ि दासी कउ सिमरहि मनमुख अंध अगिआना।
हरि की भगति करहि तिन निंदहि निगुरे पसू समाना॥
जीउ पिंडु तनु धनु सभु प्रभु का, साकत कहते मेरा।
अहंबुधि दुरमति है मैली बिनु गुर भवजलि फेरा॥
होम जग्य जप तप सभि संजम तटि तीरथि नही पाइआ।
मिटिआ आपु पए सरणाई गुरमुखि नानक जगतु तराइआ॥१५॥

राग़ु नट नाराइन

हउ वारिवारि जाउं गुर गोपाल।
मैं निरगुन तुम पूरन दाते दीनानाथ दइआल॥
ऊठत बैठत सोवत जागत जीअ प्रान धन माल।
दरसन पिआस बहुतु मनि मेरे नानक दरस निहाल॥१६॥

---

१४. ठाकुर = स्वामी। हउ = हौं, मैं। दाति = दान। उसतति = स्तुति। जंत = यंत्र, बाजा। तउ परसादि = तेरी कृपा से। रंगरस = परमानन्द। तुमरी मइआ ... विगासु = तुम्हारी स्नेहमयी कृपा से हृदयरूपी कमल प्रफुल्लित अर्थात् आनन्दित होता है। सेव = सेवा।

१५. सगल उपावन = सारी सृष्टि को उत्पन्न करने वाला। अनसेवा = दूसरे की सेवा। विखिआ = विषय-भोग। भाजु = भज, स्मरण कर। चितवीऐ = चित्त लगने पर। दासी कउ = माया को। निगुरे = बिना गुरु की शरण लिये हुए। साकत = शाक्त; यहां निरीश्वर-वादी से तात्पर्य है। भवजलि फेरा = संसार-सागर में चक्कर लगाते रहना। मिटिआ आपु पए सरणाई = गुरु की शरण में जाने से अहंकार नष्ट हो गया।

१६. हउ = हौं, मैं। जाउ = जाता हूं। माल = संपत्ति। मनि = मन में, अंतर में। दरस निहाल = दर्शन पाकर कृतकृत्य हूँगा।

अपना जनु आपहि आपि उधारिओ।
आठ पहर जनकै संगि बसिओ मनते नाहि बिसारिओ॥
बरनु चिहनु नाही किछु पेखिओ दास का कुल न बिचारिओ।
करि किरपा नामु हरि दीओ सहजि सुभाइ सवारिओ॥
महा विखमु अगिआन का सागरु तिसते पारि उतारिओ।
पेखि पेखि नानक बिगसानो पुनह पुनह बलिहारिओ॥१७॥

मेरे मन जपु जपु हरि नाराइण।
कबहू न बिसरहु मन मेरे ते आठ पहर गुन गाइण॥
साधू धूरि करउ नित मज्जनु सभ किलविख पाप गवाइण।
पूरन पूरि रहे किरपानिधि घटि घटि दिसटि समाइण॥
जाप ताप कोटि लख पूजा हरि सिमरण तुलि ना लाइण।
दुइ कर जोड़ि नानक दान मांगै तेरे दासनि दास दसाइण॥१८॥

उलाहनो मै काहू न दीओ। मन मीठ तुहारो कीओ॥
आगिआ मानि जानि सुखु पाइआ, सुनि सुनि नामु तुहारो जीओ॥
ईहा ऊहा हरि तुमही तुमही गुरते मंत्रु हड़ीओ॥
जबते जानि पाई एह बाता तब कुसल खेम सभ थीओ॥
साध संगि नानक परगासिओ आन नाही रे बीओ॥१६॥

जाकउ भई तुमारी धीर।
जम की त्रास मिटी सुखु पाइआ निकसी हउमै पीर।
तपति बुझानी अंमृत बानी तृपते जिउ बारिक खीर॥

---

१७. जनु = सेवक। बरनु चिहनु = शिखा-सूत्र आदि द्विजाति वर्णों के चिह्न। पेखिओ = देखा। सवारिओ = संभाल लिया, रक्षा की। विसमु = भयंकर। बिगसानो = आनन्दित हुआ। पुनह पुनह = बार-बार।

१८. साधू-धूरि = संतों के चरणों की धूल। किलविख = मैल, कलंक। गवाइण = खो दिये, नष्ट कर दिये। दिसटि समाइण = दृष्टि में व्याप्त हो गया, अंतर में समा गया। ताप = तप, तपस्या। तुलि = तुल्य, बराबर। दासनि दास दसाइण = दासों के दास का भी दास होना चाहता है।

१६. उलाहनो ... दीओ = मैंने किसी के आगे शिकायत नहीं की। मन ... कीओ = तुम्हें ही मैंने रिझाया। ईहा ऊहा = यहां-वहां, सर्वत्र। गुरते मंत्रु हड़ीओ = गुरु के मुख से इस मंत्र को मैंने दृढ़ता के साथ धारण किया। थीओ = हुआ। परगासिओ = प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। बीओ = दूसरा; परमात्मा के सिवाय जगत् में और किसी भी दूसरी वस्तु का अस्तित्त्व नहीं।

मात पिता साजन संत मेरे संत सहाई बीर॥
खुले भ्रम भीति मिले गोपाला हीरै बेधै हीर।
बिसम भये नानक जसु गावत ठाकुर गुनी गहीर॥२०॥

सुखमनी ❁

राग़ु गउड़ी

सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ। कलि कलेस तन माहि मिटावउ॥
सिमरउ जासु बिसुंभर एकै। नामु जपत अनगनत अनेकै॥
वेद पुरान सिंमृति सुधाख्यर। कीने रामनाम इक आख्यर॥
किनका एक जिसु जीव बसावै। ता की महिमा गनी न आवै॥
कांखी एकै दरस तुहारो। नानक उन संगि मोहि उधारो॥१॥
सुखमनी सुख अंमृत प्रभ नामु। भगत जना कै मनि बिस्त्रामु॥
प्रभ कै सिमरनि गरभि न बसै। प्रभ कै सिमरनि दूखु जमु नसै॥
प्रभ कै सिमरनि कालु परहरै। प्रभ कै सिमरनि दुसमनु टरै॥
प्रभ कै सिमरत कछु बिघनु न लागै। प्रभ कै सिमरनि अनदिनु जागै॥
प्रभ कै सिमरनि भउ ना विआपै। प्रभ कै सिमरनि दुखु न संतापै॥
प्रभ का सिमरनु साध कै संगि। सरब-निधान नानक हरि-रंगि॥२॥

---

२०. धीर = दृढ़ प्रतीति। हउमै पीर = अहंकार-जनित वेदना। तृपते जिउ बारिक खीर = जैसे मां का दूध पीकर बालक तृप्त हो जाता है। साजन = प्रिय संबंधी। खुले भ्रम भीति = भ्रान्ति अर्थात् अविद्या का भय दूर हो गया। हीरै वेधै हीर = परमात्मारूप सद्गुरु ही परमात्म-ज्ञान का रहस्य समझा सकता है, यह आशय है। विसम = निःसंशय। गहीर = अथाह, अपरिमित।

❁ 'सुखमनी' में कुल २४ अष्टपदियाँ हैं और प्रत्येक अष्टपदी में ८० पंक्तियाँ। 'सुखमनी' का पाठ प्रातःकाल 'जपुजी' के पश्चात् किया जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में हमने संपूर्ण 'सुखमनी' को न लेकर कुछेक अष्टपदियों के ही अंशों को लिया है, अतः क्रम नहीं रह सका। इसके लिए हमें क्षमा किया जाये—सं.।

१. तन माहि = हृदय में से। वेद पुरान ... इकआखर = वेदों, पुराणों और स्मृतियों में से साररूप 'राम' यह एक शब्द शोध निकाला है। किनका ... बसावै = एक क्षण भी जिसने उस नाम को अपने हृदय में बसा लिया। कांखी = आकांक्षी, चाहने वाले। उधारो = उद्धार करो।

२. सुखमनी = मन को आनन्द या शान्ति देने वाली इस रचना में। गरभि न बसै = फिर जन्म नहीं लेता, मुक्त हो जाता है। अनदिनु = नित्य। जमु = यम, मृत्यु। भउ = भय। रंगि = प्रेम-भक्ति।

प्रभ का सिमरनु सभ ते ऊचा। प्रभ कै सिमरनि उधरे मूचा॥
प्रभ कै सिमरनि तृसना बुझै। प्रभ कै सिमरनि सभु किछु सुझै॥
प्रभ कै सिमरनि नाही जमत्रासा। प्रभ कै सिमरनि पूरन आसा॥
प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ। अंमृत नामु रिद माहि समाइ॥
प्रभजी बसहि साध की सरना। नानक जन का दासनि दसना॥३॥

सलोक

दीन-दरद-दुखु भंजना घटि घटि नाथ-अनाथ।
सरनि तुम्हारी आइओ नानक के प्रभ साथ॥

अष्टपदी

सगल सृसटि को राजा दुखिआ। हरि का नामु जपत होइ सुखिआ॥
लाख करोरी बंधनु परै। हरि का नामु जपत निसतरै॥
अनिक माया रंग विख न बुझावै। हरि का नामु जपत आघावै॥
जिह मारग इहु जात अकेला। तह हरिनामु संगि होत सुहेला॥
ऐसा नामु मन सदा धिआइए। नानक गुरमुखि परमगति पाइए॥४॥

सगल पुरख महि पुरखु प्रधानु। साध-संगि जा का मिटै अभिमानु॥
आपस कउ जो जाणै नीचा। सोऊ गनीए सभ ते ऊचा॥
जा का मनु होइ सगल की रीना। हरि हरि नामु तिनि घटि घटि चीना॥
मन अपुने ते बुरा मिटाना। पेखै सगल सृसटि साजना॥
सूख दूख जन सम दृसटेता। नानक पाप पुन्न नहीं लेपा॥५॥

निरधन कउ प्रभ धनु तेरो नाउ। निथावे कउ नाउ तेरा थाउ॥
निमाने कउ प्रभ तेरो मान। सगल घटा कउ देवहु दान॥
करन करावनहार सुआमी। सगल घटा के अन्तरजामी॥

---

३. मूचा = अनेक, बहुत से (पापी)। बुझै = शान्त हो जाती है। सुझै = दीख जाता है, अनुभव में आ जाता है। मलु = मलिन वासना से अभिप्राय है। रिद = हृदय। रसना = वाणी। जन = हरिभक्त। दासनिदसना = दासानुदास।

४. रंग = सुख, विषय-भोग। तिख = तृषा, प्यास; अघावै = शान्त हो जाती है। सुहेला = आनन्ददायक। गुरुमुखि = जिसने गुरु से उपदेश लिया हो। परमगति = मोक्ष।

५. प्रधानु = सर्वश्रेष्ठ। आपस कउ = अपने आपको। सगल की रीना = सबके चरणों की धूल। बुरा = द्वेषभाव। साजना = मित्र। दृसटेता = दृष्टा, देखनेवाला। लेपा = लिप्त।

अपनी गति मति जानहु आपे। आपन संगि आपि प्रभ राते ॥
तुमरी उसतुति तुम ते होइ। नानक अवरु न जानसि कोइ ॥६॥

आदि अंति जो राखनहारु। तिस सिउ प्रीति न करै गवारु ॥
जाकी सेवा नवनिधि पावै। ता सिउ मूढा मन नही लावै ॥
जो ठाकुर सद सदा हजूरे। ता कउ अंधा जानत दूरे ॥
जाकी टहल पावे दरगह मानु। तिसहि बिसारै मुगधु अजानु ॥
सदा सदा इहु भूलनहारु। नानक राखनहारु अपारु ॥७॥

रतनु तिआगि कउड़ी संगि रचै। साचु छोड़ि झूठ संगि सचै ॥
जो छड़ना सु असथिरु करि मानै। जो होवनु सो दूरि परानै ॥
छोड़ि जाइ तिसका स्त्रमु करै। संगि-सहाई तिसु परहरै ॥
चंदन-लेपु उतारै धोइ। गरधब-प्रीति भसम संगि होइ ॥
अंधकूप महिं पतित विकराल। नानक काढ़ि लेहु प्रभ दइआल ॥८॥

संगि-सहाई सु आवै न चीति। जो बैराई ता सिउ प्रीति ॥
बलुआ के गृह भीतरि बसै। अनंद-केल माइआ-रंगि रसै ॥
दृड़ु करि मानै मनहि परतीति। कालु न आवै मूड़े चीति ॥
बैर बिरोध काम क्रोध मोह। झूठ विकार महा लोभ ध्रोह ॥
इआहू जुगति विहाने कई जनम। नानक राखिलेहु आपन करि करम ॥९॥

---

६. निथावे कउ = जिसका कोई ठौर नहीं उसे। थाउ = ठौर। निमाने कउ तेरो मान = जो किसी से मान नहीं पाता, उसे तू मान देता है। सगल घटा कउ = सब घटों अर्थात् प्राणियों को। मिति = सीमा। आपन संगि ... राते = प्रभो, तू स्वयं अपने आप पर अनुरक्त है। उसतुति = स्तुति, प्रशंसा।

७. गवारु = मूढ़। मन नहीं लावै = प्रेम नहीं करता। हजूरे = विद्यमान। टहल = सेवा-चाकरी। पावे दरगह मानु = परमात्मा के दरबार में आदर पाता है। मुगधु = मुग्ध, मूढ़। इहु = यह जीव। राखनुहारु = बचाने वाला।

८. रचै = प्रीति जोड़ता है। सचै = आसक्त हो जाता है।
असथिरु = स्थिर। जो होवनु ... परानै = मृत्यु का ख्याल, जो अवश्यंभावी है, भुला देता है। तिसु = उसको। गरधब = गर्दभ, गदहा। भसम = राख, मिट्टी। विकराल = भयंकर; अंधकूप का विशेषण है।

९. आवै न चीति = ध्यान में नहीं आता। बलुआ के गृह = बालू के घर में; क्षणभंगुर शरीर में। माइआ रंगि = अनित्य विषय-भोगों में। रसै = सुख मानता है। दृड़ुकरि . .. परतीति = निश्चय करके मानता है कि सांसारिक सुख सदा रहने वाले हैं। मूड़े = मूर्ख के। चीति = चित्त में। ध्रोह = द्रोह। इआहू जुगति = इसी रीति से, इसी प्रकार। विहाने = बीत गये। करम = कृपा।

सलोक

काम क्रोध अरु लोभ मोह बिनसि जाए अहंमेव।
नानक प्रभ सरनागती करि प्रसादु गुरदेव॥

अष्टपदी

जिह प्रसादि छत्तीह अंमृत खाहि। तिसु ठाकुर कउ रखु मन माहि॥
जिह प्रसादि सुगंध तनि लावहि। तिस कउ सिमरत परमगति पावहि॥
जिह प्रसादि बसहि सुमंदिर। तिसहि धिआइ सदा मन अंदरि॥
जिह प्रसादि गृह संगि सुख बसना। आठ पहर सिमरौ तिसु रसना॥
जिह प्रसादि रंग-रस-भोग। नानक सदा धिआईए धिआवनजोग॥१०॥
आपि जपाए जपै सो नाउ। आपि गवाए सु हरिगुन गाउ॥
प्रभ किरपा ते होइ प्रगासू। प्रभू दइआ ते कमल-विगासू॥
प्रभ सुप्रसन्न बसै मनि सोइ। प्रभ-दइआ ते मति ऊतम होइ॥
सरबनिधान प्रभ तेरी मइआ। आपहु कछू न किनहू लइआ॥
जितु जितु लावहु तितु लगहि हरि नाथ। नानक इनकै कछू न हाथ॥११॥
साध कै संगि मुख ऊजल होत। साध संगि मलु सगली खोत॥
साध कै संगि मिटै अभिमानु। साध कै संगि प्रगटै सुगिआनु॥
साध कै संगि बुझै प्रभ नेरा। साध संगि सभु होत निबेरा॥
साध कै संगि पाए नामरतनु। साध कै संगि एक ऊपरिजतनु॥
साध की महिमा बरनै को प्रानी।
नानक साध की सोभा प्रभ माहि समानी॥१२॥

---

१०. अहमेव = अहंता, खुदी। प्रसादि = कृपा से। छत्तीह अंमृत = छत्तीस प्रकार के अमृत-जैसे व्यंजन। तनि लावहि = शरीर में लगता है। सुख = आराम से। मंदिर = घर में।

११. आपि = स्वयं वह परमात्मा। कमल विगासू = हृदय-कमल खिल जाता है। ऊतम = उत्तम। मइआ = कृपा। लइआ = प्राप्त किया। जितु ... नाथ = जिस-जिस काम में तू लगा देता है उसमें हम लग जाते हैं। कछू न हाथ = अपनी कुछ भी सामर्थ्य नहीं।

१२. मलु सगली खोत = सारी गंदगी अर्थात् मलिन वासना दूर हो जाती है। बुझै = बोध हो जाता है, दीख जाता है। नेरा = निकट। निवेरा = निर्णय। एक ऊपरि जतनु = एक परमात्मा को पाने का ही यत्न करें।

साध कै संगि नहीं कछु घाल। दरसनु भेटत होत निहाल ॥
साध कै संगि कलूखत हरै। साध कै संगि नरक परहरै ॥
साध कै संगि ईहा ऊहा सुहेला। साध संगि विछुरत हरि मेला ॥
जो इच्छै सोई फलु पावै। साध कै संगि न बिरथा जावै ॥
परब्रहमु साध रिद बसै। नानक उधरै साध सुनि रसै ॥१३॥
ब्रहमगिआनी कै एकै रंग। ब्रहमगिआनी कै बसै प्रभु संग ॥
ब्रहमगिआनी कै नाभु अधारु। ब्रहमगिआनी कै नाभु परिवारु ॥
ब्रहमगिआनी सदा सद जागत। ब्रहमगिआनी अहंबुधि तिआगत ॥
ब्रहमगिआनी कै मनि परमानंद। ब्रहमगिआनी कै घरि सदा अनंद ॥

ब्रहमगिआनी सुख सहज निवास।
नानक ब्रहमगिआनी का नही बिनास ॥१४॥

मिथिआ नाहीं रसना परस। मन महिं प्रीति निरंजन-दरस ॥
परित्रय रुपु न पेखै नेत्र। साध की टहल संत संगि-हेत ॥
करन न सुनै काहू की निंदा। सभ ते जानै आपस कउ मंदा ॥
गुरप्रसादि विखिआ परहरै। मन की वासना मन ते टरै ॥
इंद्रीजित पंच दोख ते रहत। नानक कोटि मधे को ऐसा अपरस ॥१५॥
बैसनो जो जिसु ऊपर सु प्रसन्न। बिसन की माया ते होइ भिन्न ॥
करम करत होवै निहकरम। तिसु बैसनो का निरमल धरम ॥
काहू फल की इच्छा नही बाछै। केवल भगति कीरतन संगि राचै ॥
मन तन अंतरि सिमरन गोपाल। सभ ऊपरि होवत किरपाल ॥
आपि दृड़ै अवरहु नामि जपावै। नानक ओहु बैसनो परमगति पावै ॥१६॥

१३. घाल = परिश्रम, कष्ट। कलूखत = कलंक, दोष। ईहाऊहा = यह लोक और परलोक। सुहेला = आनन्दित। विछुरत हरि मेला = परमात्मा से वे मिल जायेंगे, जो विछुड़ चुके थे। रिद = हृदय। रसै = आनन्दित होता है।

१४. परवारु = कुटुंब। सदासद = निरन्तर।

१५. मिथिआ ... परस = जिसकी जिह्वा कभी असत्य का स्पर्श भी नहीं करती; जो स्वप्न में भी असत्य नहीं बोलते। निरंजन = अव्यय, अविनाशी। टहल = सेवा। हेत = प्रेम। आपस कउ = अपने आपको। मंदा = नीच, बुरा। विखिआ = विषय। दोख = दोष, (पंचविषय-जनित) पाप। कोटि मधे को = करोड़ों में कोई विरला। अपरस = जो विषयों का स्पर्श भी नहीं करता, अनासक्त, विरक्त; रूढ़ार्थ में, जो छूतछात बहुत मानता है।

१६. वैसनो = वैष्णव। सु = वह, परमात्मा। बिसन की माया = व्यसनों का प्रभाव; विष्णु की दैवी माया। भिन्न = अलिप्त। बांछै = चाहता है। दृड़ै = दृढ़ रहता है।

सो पंडितु जो मनु परबोधै। रामनामु आतम महि सोधै ॥
रामनामु सारु रस पीवै। उसु पंडित कै उपदेसि जगु जीवै ॥
हरि की कथा हिरदै बसावै। सो पंडितु फिरि जोनि न आवै ॥
वेद पुरान सिमृति बूझै मूलु। सूखम महि जानै असथूलु ॥
चहु वरना कउ दे उपदेसु। नानक उसु पंडित कउ सदा अदेसु ॥१७॥

प्रभ भावै मानुख गति पावै। प्रभ भावै ता पाथर तरावै ॥
प्रभ भावै बिनु सांस ते राखै। प्रभ भावै ता हरिगुण भाखै ॥
प्रभ भावै ता पतित उधारै। आपि करै आपन बीचारै ॥
दुहा सिरिया का आपि सुआमी। खेलै बिगसै अंतरजामी ॥
जो भावै सो कार करावै। नानक दृसटी अवरु न आवै ॥१८॥

कहु मानुख ते किआ होइ आवै। जो तिसु भावै सोई करावै ॥
इसकै हाथि होइ ता सभु किछु लेइ। जो तिसु भावै सोई करेइ ॥
अनजानत बिखिआ महिं रचै। जे जानत आपन आप बचै ॥
भरमे भूला दहदिसि धावै। निमख माहि चारि कुंट फिरि आवै ॥
करि किरपा जिसु अपनी भगति देइ। नानक ते जन नामि मिलेइ ॥१९॥

जिसकै अंतरि राज-अभिमानु। सो नरकपाती होवत सुआनु ॥
जो जानै मै जोवनवंतु। सो होवत विसटा का जंतु ॥
आपस कउ करमवंतु कहावै। जनमि मरै बहु जोनि भ्रमावै ॥
धन भूमि का जो करै गुमानु। सो मूरख अंधा अगिआनु ॥
करिकिरपा जिसकै हिरदै गरीबी बसावै। नानक ईहा मुकतु
आगै सुखु पावै ॥२०॥

---

१७. मनु परबोधै = मन को जगाता है। सोधै = खोजता है। जोनि न आवै = जन्म नहीं लेता। सूखम ... असथूलु = सूक्ष्म में स्थूल का, या पिंड में ब्रह्मांड का भेद जान लेता है। अदेसु = प्रणाम, (गोरखपंथी 'आदेस' कहकर प्रणाम करते हैं)

१८. भावै = यदि चाहे। गति = मोक्ष। ता = तो। बिनु सांस = बिना प्राण के। आपि करै आपनि वीचारे = वह (परमात्मा) आप ही रचता है, और आप ही योजना बनाता है। दुहा सिरिआ = दोनों लोक। कार = काम। दृसटी = दृष्टि। अवरु = और, अन्य।

१९. किआ = क्या। तिसु = उसको, प्रभु को। इसकै ... लेइ = इस मनुष्य के हाथ में यदि शक्ति होती, तो वह सब कुछ प्राप्त कर लेता। अनजानत = परमात्मा को बिना जाने। बिखिआ महि रचै = विषयों में या पापकर्मों में लिप्त हो जाता है। कुंट = खूँट, कोना, दिशा। ते जन नामि मिलेइ = ऐसा मनुष्य प्रभु के नाम में लौलीन हो जायेगा।

२०. नरकपाती = नरक में गिरनेवाला। सुआनु = श्वान, कुत्ता। विसटा = विष्ठा, मैला।

धनवंता होइ करि गरवावै। तृण-समानि कछु संगि न जावै ॥
बहु लसकर मानुख ऊपरि करै आस। पल भीतरि ताका होइ बिनास ॥
सभ ते आप जानै बलवंतु। खिन महि होइ जाइ भसमंतु ॥
किसै न बदै आपि अहंकारी। धरमराइ तिसु करे खुआरी ॥
गुरप्रसादि जाका मिटै अभिमानु। जो जनु नानक दरगह परवानु ॥२१॥

सलोक

संत-सरनि जो जनु परै, सो जनु उधरनहारु।
संत की निंदा नानका, बहुरि-बहुरि अवतार ॥

अष्टपदी

संत कै दूखनि आरजा घटै। संत कै दूखनि जम ते नहीं छुटै ॥
संत कै दूखनि सुख सभु जाइ। संत कै दूखनि नरक महिं पाइ ॥
संत कै दूखनि मति होइ मलीन। संत कै दूखनि सोभा ते हीन ॥
संत के हते कउ रखै न कोइ। संत कै दूखनि थान-भ्रसटु होइ ॥
संत कृपाल कृपा जे करै। नानक संतसंगि निंदकु भी तरै ॥२२॥

मानुख की टेक वृथी सभ जानु। देवन कउ एकै भगवानु ॥
जिस कै दीए रहै अघाइ। बहुरि न तृसना लागै आइ ॥
मारै राखै एको आपि। मानुख कै किछु नाहीं हाथि ॥
तिसका हुकमु बूझि सुखु होइ। तिसका नामु रखु कंठि परोइ ॥
सिमरि सिमरि सिमरि प्रभु सोइ। नानक बिघनु न लागै कोइ ॥२३॥

बड़भागी ते जन जग माहि। सदा सदा हरि के गुन गाहि ॥
राम नाम जो करहि वीचार। से धनवंत गनी संसार ॥

आपस कउ = अपने आपको। करमवंत = सुकर्मी, उत्तम। ईहा = इस लोक में। आगै = परलोक में।

२१. लसकर = फौज। मानुख = आज्ञापालक सेवकों से आशय है। खिन = क्षण। न बदै = कुछ भी नहीं समझता। धरमराइ = यमराज। खुआरी = बेइज्जत। दरगह परवानु = ईश्वर के दरबार में जाने का उसे परवाना मिल जाता है।

२२. अवतार = जन्म। संत कै दूखनि = संत की निंदा करने से। आरजा = आयु। पाई = पड़ता है। संत कै हते = साधुद्वारा शापित। थानभ्रसटु = स्थान भ्रष्ट, पदच्युत।

२३. टेक = आधार, अवलंब। वृथी = वृथा, झूठी। देवन कउ = देने के लिए। परोइ = पिरोकर पहनले, धारण कर ले।

मनि तनि मुखि बोलहि हरि मुखी। सदा सदा जान्हु ते सुखी ॥
एको एकु एकु पछानै। इत उत की ओहु सोझी जानै ॥
नाम संगि जिसका मनु मानिआ। नानक तिनहि निरंजनु जानिआ ॥२४॥

रुपवंतु होइ नाहीं मोहै। प्रभ की जोति सगल घट सोहै ॥
धनवंता होइ किआ को गरवै। जा सभु किछु तिसका दिया दरवै ॥
अतिसूरा जे कोऊ कहावै। प्रभु की कला बिना कह धावै ॥
जे को होइ बहै दातारु। तिसु देनहारु जानै गावारु ॥
जिसु गुरप्रसादि तूटै हउरोगु। नानक सो जनु सदा अरोगु ॥२५॥

जिउ मंदर कउ थामै थंम्हनु। तिउ गुर का सबदु मनहि असथंमनु ॥
जिउ पाखाणु नाउ चढ़ि तरै। प्राणी गुर-चरण लगतु निसतरै ॥
जिउ अंधकार दीपक परगासु। गुर दरसनु देखि मनि होइ बिगासु ॥
जिउ महा उदिआन महि मारगु पावै। तिउ साधू संगि मिलि जोति प्रगटावै ॥
तिन संतन की बाछउ धूरि। नानक की हरि लोचा पूरि ॥२६॥

चरन साध के धोइ धोइ पीउ। अरपि साध कउ अपना जीउ ॥
साध की धूरि करहु इसनानु। साध ऊपरि जाइए कुरबानु ॥
साध-सेवा बड़ भागी पाईऐ। साध संग हरि कीरतनु गाईऐ ॥
अनिक विघन ते साधू राखै। हरि गुन गाए अमृतरसु चाखै ॥
ओट गही संतह दरि आइआ। सरब सूख नानक तिहपाइआ ॥२७॥

---

२४. गाहि = गाते हैं। गनी = गिने जाते हैं। एको एकु एकु = केवल एक अद्वितीय परमात्मा। इतउत = दोनों लोक। सोझी = ज्ञान।

२५. मोहै = भ्रम में न पड़े। सगल = सकल, सब। दरबै = द्रव्य, धन। कला = शक्ति से आशय है। प्रभु की ... धावे = ईश्वर से शक्ति प्राप्त किये बिना वह क्या प्रयत्न कर सकता है? जे को होइ ... गावारु = यदि कोई अपने दान का गर्व करता है, तो सच्चादानी परमात्मा उसे मूर्ख समझता है। हठ = अहंकार।

२६. थंम्हनु = स्तंभ, खंभा। सबदु = ज्ञानोपदेश। असथंमनु = स्तंभन, थामने वाला। बिगासु = प्रफुल्लित। उदिआन = विकट जंगल से अभिप्राय है। जोति = आत्म-प्रकाश। बाछउ = चाहता हूं। धूरि = चरण-रज। लोचा पूरि = इच्छा पूरी करदे।

२७. कुरबानु = बलि। बड़भागी = बड़े भाग्य से। राखै = रक्षा करता है। ओट = शरण। संतह दरि आइआ = जो संतों के द्वार पर आ जाता है। सूख = सुख।

जाकी लीला की मिति नाहि। सगल देव हारे अवगाहि ॥
पिता का जनमु कि जानै पूतु। सगल परोई अपुनै सूति ॥
सुमति गिआनु धिआनु जिन देइ। जन दास नामु धिआवहि सेइ ॥
तिहु गुण महि जा कउ भरमाए। जनमि मरै फिरि आवै जाए ॥
ऊच नीच तिसके असथान। जैसा जनावै तैसा नानक जान ॥२८॥

ठाकुर का सेवकु आगिआकारी। ठाकुर का सेवकफ सदा पुजारी ॥
ठाकुर के सेवक कै मनिप रतीति। ठाकुर के सेवक की निरमल रीति ॥
ठाकुर कौ सेवकु जानै संगि। प्रभ का सेवकु नाम कै रंगि ॥
सेवक कौ प्रभ पालनहारा। सेवक कउ राखै निरंकारा ॥
सो सेवकु जिसु दइआ प्रभु धारै। नानकु सो सेवक सासि सासि समारे ॥२६॥

अपुने जन का परदा ढाकै। अपने सेवक कउ सर पर राखै ॥
अपने दास कउ देइ बड़ाई। अपने सेवक कउ नामु जपाई ॥
अपने सेवक की आपि पति राखै। ताकी गति मिति कोई न लाखै ॥
प्रभ के सेवक कउ को न पहूचे। प्रभ के सेवक ऊच ते ऊचे ॥
जो प्रभि अपनी सेवा लाइआ। नानक सो सेवकु दहदिसि प्रगटाइआ ॥३०॥

गुर कै गृहि सेवकु जो रहै। गुर आगिया मन माहि सहै ॥
आपस कउ करि कछु न जनावै। हरि हरिनामु रिंदै सद धिआवैं ॥
मनु बेचै सतिगुर कै पासि। तिसु सेवक के कारज रासि ॥
सेवा करत होइ निहकामी। तिस कउ होत परापति सुआमी ॥
अपनी कृपा जिसु आपि करेइ। नानक सो सेवकु गुर की मति लेइ ॥३१॥

---

२८. सगल ... सूति=सारी सृष्टि को जिसने अपनी माया के सूत्र में गूंथ रखा है। सेइ=उसे तिह गुण महि = सत्व, रज और तम इन तीन गुणों में। असथान = स्थान, लोक।

२६. परतीति = प्रतीत, श्रद्धा-विश्वास। संगि = साथ में। सासि-सासि समारै = हर सांस में नाम-स्मरण करता है।

३०. परदा ढाकै = दोषों को छिपाता है। सर पर राखै = मान को रखता है। पति = लाज। लाखै = जानता है। को = कोई भी। दहदिसि प्रगटाइआ = दशों दिशाओं में प्रख्यात हो जाता है।

३१. मन माहि सहै = हृदय से मानता है। आपस कउ ... जनावै = अपने को बड़ा नहीं समझता। रिंदै = हृदय में। सद = सदा। तिसु ... रासि = ऐसे सेवक के कार्य भली-भांति संपन्न होंगे। निहकामी = निष्काम, कर्म-फल न चाहने वाला। सुआमी = प्रभु, परमात्मा। जिसु आपि करेइ = जिस पर स्वयं कर देता है। गुर की मति लेइ = गुरु के उपदेश को ग्रहण कर लेगा।

इहु हरि रस पावै जनु कोइ। अमृतु पीवै अमरु सो होइ ॥
उसु पुरख का नाही कदे विनास। जाके मनि प्रगटे गुन तास ॥
आठ पहर हरि का नामु लेइ। सचु उपदेस सेवकु कउ देइ ॥
मोह माइआ कै संगि न लेपु। मन महि राखै हरि हरि एकु ॥
अंधकार दीपक परगासे। नानक भरम मोह दुख तहते नासे ॥३२॥

सलोक

साथि न चालै बिनु भजन, बिखिया सगली छारु ॥
हरि हरि नामु कमावना, नानक इहु धनु सारु ॥

अष्टपदी

संतजना मिलि करहु बीचारु। एकु सिमरि नाम आधारु ॥
अवरि उपाव सभि मीत बिसारहु। चरन कमल रिद महि उरि धारहु ॥
करन कारन सो प्रभु समरथु। दड़ुकरि गहहु नामु हरि वथु ॥
इहु धनु संचहु होवहु भगवंत। संत जना का निरमल मंत ॥
एक आस राखहु मन माहि। सरब रोग नानक मिटि जाहि ॥३३॥

जिसु धन कउ चारि कुंट उठि धावहि। सो धनु हरिसेवा ते पावहि ॥
जिसु सुख कउ नित बाछहि मीत। सो सुखु साधू संगि परीति ॥
जिसु सोभाकउ करहि भली करनी। सो सोभा भजु हरि की सरनी ॥
अनिक उपावी रोगु न जाइ। रोगु मिटै हरि अउखधु लाइ ॥
सरब निधान महि हरिनाम निधानु। जपि नानक दरगहि परवानु ॥३४॥

सलोक

फिरत फिरत प्रभ आइआ, परिआ तउ सरनाइ ॥
नानक की प्रभ बेनती, अपनी भगती लाइ ॥

---

३२. कोइ = बिरला ही। कदे = कभी। गुन तास = प्रभु के गुण। लेप = आसक्ति।

३३. बिनु = सिवाय। बिखिआ सगली छारु = सारे सांसारिक सुख धूल के समान तुच्छ हैं। रिद = हृदय। उरि = अन्तःकरण में। करन-कारन = कारण का भी कारण; करने और कराने वाला। दड़ुकरि = दृढ़ता के साथ। वथु = वस्तु, परमत्व। भगवंत = भाग्यवान। मंत = मंत्र, निश्चित मत।

३४. कुंट = खूंट, कोना, दिशा। बाछहि = चाहता है। मीत = हे मित्र। परीति = प्रीति। सोभा = प्रतिष्ठा, कीर्ति। उपावी = उपाय, साधन। अउखधु = औषधि। दरगहि = परमात्मा का दरबार। परवानु = अंगीकार करने के योग्य।

अष्टपदी

जाचक जनु जाचै प्रभ दानु। करि किरपा देवहु हरिनामु ॥
साधजना की मागउ धूरि। पारब्रहम मेरी सरधा पूरि ॥
सदा सदा प्रभ के गुन गावउ। सासि सासि प्रभ तुमहि धिआवउ ॥
चरनकमलसिउ लागै प्रीति। भगति करउ प्रभ की नित नीति ॥
एक ओट एको आधारु। नानकु मागै नामु प्रभ सारु ॥३५॥

प्रभ की दृसटि महासुखु होइ। हरिरसु पावै बिरला कोइ ॥
जिन चखिआ से जन तृपताने। पूरन पूरख नही डोलाने ॥
सुभर भरे प्रेम रस रंगि। उपजै चाउ साध कै संगि ॥
परे सरनि आन सभ तिआगि। अंतरि प्रगास अनदिनु लिव लागि ॥
बड़भागी जपिआ प्रभु सोइ। नानक नामि रते सुखु होइ ॥३६॥

साजन संत करहु इहु कामु। आन तिआगि जपहु हरिनामु ॥
सिमरि सिमरि सिमरि सुख पावहु। आप जपहु अवरह नामु जपावहु ॥
भगति भाइ तरीए संसारु। बिनु भगती तनु होसी छारु ॥
सरब कलिआण-सूख-निधि नामु। बूड़त जात पाए बिस्रामु।
सगल दूख का होवत नासु। नानक नामु जपहु गुन तासु ॥३७॥

उपजी प्रीति प्रेमरसु चाउ। मन तन अंतर इही सुआउ ॥
नेत्रहु पेखि दरसु सुखु होइ। मनु बिगसै साधचरण धोइ ॥
भगतजना कै मनि तनि रंगु। बिरला कोऊ पावै संगु ॥
एक वसतु दीजै करि मइआ। गुरप्रसादि नामु जपि लइआ ॥
ताकी उपमा कही न जाइ। नानक रहिआ सरब समाइ ॥३८॥

---

३५. सरधा = साध, इच्छा। पूरि = पूरी करदे। नितनीत = नित्य नित्य, निरन्तर। ओट = शरण।

३६. दृसटि = कृपादृष्टि। से = वे। तृपताने = तृप्त हो गये, अघा गये। सुभर = भली-भाँति, पूरी तरह। चाउ = परमात्मा से मिलने की उत्कण्ठा। लिव = लौ। रते = रंगजाने में।

३७. साजन = प्यारे। अवरह = दूसरों से भी। भाइ = भाव से। होसी छारु = भस्म हो जायेगा, धूल में मिल जायेगा। बिस्रामु = सहारा।

३८. उपजी = प्रकट हो जाये। सुआउ = कामना, लालसा। विगसै = प्रफुल्लित हो। रंगु = प्रेम, आनन्द। वसतु = वस्तु। मइआ = कृपा। उपमा = तुलना; गुण, महिमा।

सलोक

सरगुन निरगुन निरंकार सुन्न समाधी आपि।
आपन कीआ नानका, आपे ही फिरि जापि ॥

अष्टपदी

जब अकारु इहु कछु न दृसटेता। पाप पुन्न तब कह ते होता॥
जब धारी आपन सुन्न समाधि। तब बैर विरोध किसु संगि कमाति ॥
जब इसका बरनु चिहनु न जापत। तब हरख सोग कहु किसहि बिआपत ॥
जब आपन आप आपि पारब्रहम। तब मोह कहा, किसु होवत भरम ॥
आपन खेलु आपि वरतीजा। नानक करनैहारु न दूजा ॥३९॥

जब होवत प्रभ केवल धनी। तब बंध मुकति कहु किस कउ गनी ॥
जब एकहि हरि अगम अपार। तब नरक सुरग कहु कउ अउतार ॥
जब निरगुन प्रभ सहज सुभाइ। तब सिव सकति कहहु कितु ठाइ ॥
जब आपहि आपि अपनी जोति धरै। तब कवन निडरु कवन कत डरै ॥
आपन चलित आपि करनैहारु। नानक ठाकुर अगम अपारु ॥४०॥

जह अछल अछेद अभेद समाइआ। ऊहा किसहि विआपतमाइआ ॥
आपस कउ आपि आदेसू। तिहु गुण का नाहीं परवेसू ॥
जह एकहि एक एक भगवंता। तह कउनु अचिंतु किसु लागै चिंता ॥
जह आपन आपु आपि पतिआरा। तह कउनु कथै कउनु सुननैहारा ॥
बहु बेअंत ऊचा ते ऊचा। नानक आपस कउ आपहि पहूचा ॥४१॥

सलोक

गिआन-अंजनु गुरि दीआ, अगिआन अंधेर बिनासु।
हरि-किरपा ते संत भेटिआ, नानक मनि परगासु ॥

---

३९. कीआ = रचा हुआ। आपे ही फिरि जापि = पुनः अपने आप में वह अपनी रचना को लय कर लेता है। अकारु = आकार। इहु = जगत्। सुन्न = निर्विकल्प। दृसटेता = दिखाई देता था। चिहनु = चिह्न। जापत = दीखता था। वरतीजा = बरता, लीला रची।

४०. गनी = गिन गया। अउतार = जन्म। सकति = शक्ति, पराप्रकृति। ठाइ = ठौर। जोति = प्रकाश।

४१. अछल = जिसे छला न जा सके। समाइआ = व्याप्त। आपस ... आदेसू = अपने आपको अपना प्रणाम। आपि पतिआरा = स्वतः प्रतीति करने वाला। बेअंत = अनंत। आपस कउ ... पहूचा = उसका उपमान स्वयं वही है।

अष्टपदी

संत-संगि अंतरि प्रभु डीठा। नामु प्रभू का लागा मीठा॥
सगल समिग्री एकसु घट माहि। अनिक रंग नाना दृसटाहि॥
नउ निधि अंमृतु प्रभ का नामु। देही महि इसका बिस्रामु॥
सुन्न समाधि अनहत तह नाद। कहनु न जाई अचरज बिसमाद॥
तिनि देखिआ जिसु आपिदिखाए। नानक तिसु जन सोझी पाए॥४२॥

सलोक

पूरा प्रभु आराधिआ, पूरा जाका नाउ।
नानक पूरा पाइआ, पूरे के गुन गाउ॥

अष्टपदी

पूरे गुर का सुनि उपदेसु। पारब्रह्मु निकटि करि पेखु॥
सासि सासि सिमरहु गोबिंद। मन अंतर की उतरै चिंद॥
आस अनित तिआगहु तरंग। संतजना की धूरि मन मंग॥
आपु छोड़ि बेनती करहु। साध संगि अगनि-सागरु तरहु॥
हरि धन के भरि लेहु भंडार। नानक गुर पूरे नमसकार॥४३॥

खेम कुसल सहज आनंद। साध संगि भजु परमानंद॥
नरक निवारि उधारहु जीउ। गुन गोबिंद अंमृतरसु पीउ॥
चिति चितवहु नारायण एक। एक रूप जाके रंग अनेक॥
गोपाल दामोदर दीनदयाल। दुखभंजन पूरन किरपाल॥
सिमरि सिमरि नामु बारंबार। नानक जीअ का इहै अधार॥४४॥

प्रभ की उसतति करहु संत मीत। सावधान एकागर चीत॥
सुखमनी सहज गोबिंद गुन नाम। जिसु मनि बसै सुहोत निधान॥
सरब इच्छा ताकी पूरन होइ। प्रधान पुरखु प्रगटु सभ लोइ॥

---

४२. मनि परगासु = मन में स्वरूप दर्शन से प्रकाश हो गया। संत ... डीठा = सत्संग के प्रभाव से प्रभु को अपनी अंतरात्मा में ही देख लिया। सगल समिग्री = नाना प्रकार की सृष्टि। दृसटाहि = दीखते हैं। विसमाद = चमत्कार। सोझी = सुबुद्धि, विवेक।

४३. पेखु = देख। चिंद = चिंता। मन मंग = हृदय से मांग। आपु = अहंकार। धन = यहां भगवद्भक्ति से आशय है।

४४. निवारि = दूर कर, बचाकर। चितवहु = ध्यान कर। रंग = आकार, प्रकार।

४५. उसतति = स्तुति। एकागर = एकाग्र, एक ही ओर स्थिर, अनन्य। निधान = परमात्मा की भक्ति का धनी। आवन-जान = जन्म और मृत्यु। खाटि = कमाकर।

सभ ते ऊच पाए असथानु। बहुरि न होवै आवन जानु ॥
हरि धनु खाटि चलै जनु सोइ। नानक जिसहि परापति होइ ॥४५॥

इहु निधानु जपै मनि कोइ। सभ जुगमहि ताकी गति होइ ॥
गुण गोबिंद नाम धुनि बाणी। सिमृति सासत वेद बखाणी ॥
सगल मतांत केवल हरिनाम। गोबिंद भगत कै मनि बिस्राम ॥
कोटि अपराध साध संगि मिटै। संतकृपा ते जम ते छुटै ॥
जाकै मसतकि करम प्रभि पाए। साध सरणि नानक ते आए ॥४६॥

जिसु मनि बसैं लाइ सुनै प्रीति। तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति ॥
जनम मरण ताका दूखु निवारै। दुलभ देह ततकाल उधारै ॥
निरमल सोभा अंमृत ताकी बानी। एकु नामु मन माहि समानी ॥
दूख रोग बिनसे भै भरम। साध नाम निरमल ताके करम ॥
सभ ते ऊच ताकी सोभा बनी। नानक इह गुणि नामु सुखमनी ॥४७॥

गउड़ी गुआरेरी

तू मेरा सखा तू ही मेरा मीतु। तू मेरा प्रीतम तुम संगि हीतु ॥
तू मेरा पति तू है मेरा गहणा। तुझ बिनु निमखुन जाई रहणा ॥
तू मेरे लालन तू मेरे प्रान। तू मेरे साहिब तू मेरे खान ॥
जिउ तुम राखहु तिउ ही रहना। जो तुम कहहु सोइ मोहि करना ॥
जह पेखउ तहा तुम बसना। निरभय नाम जपउ तेरा रसना ॥
तू मेरी नवनिधि तू भंडारु। रंग रसा तू मनहि अधारु ॥
तू मेरी सोभा तुम संगि रचिआ। तू मेरी ओट तू है मेरा तकिआ ॥
मन तन अन्तरि तुही धिआइआ। मरम तुमारा गुर ते पाइआ ॥
सतगुर ते दृडिआ इकु एकै। नानक दास हरि हरि हरि टेकै ॥४८॥

---

४६. निधान = अनमोल। गति = मोक्ष। सासत = शास्त्र। मतांत = सिद्धांत; धर्म-संप्रदाय। बिस्राम = परमशान्ति। मसतकि = भाग्य में।

४७. चीति = चित्त में, ध्यान में। दुलभ = दुर्लभ (मनुष्य-देह, जिसे साधन-धाम कहा गया है।) भरम = अविद्या। सोभा = कीर्ति।

४८. हीतु = हित, प्रेम। पति = लाज। गहणा = अवलंबन, आधार। निमखु = निमिष, पल। खान = सबसे बड़ा सरदार। जह पेखउ = जहां भी देखता हूँ। रसा = रस, परमानन्द। रचिआ = रंगा हुआ या अनुरक्त हूँ। तकिआ = सहारा। दृडिआ इकु एकै = इसे दृढ़ता से पकड़ लिया कि एक और केवल एक तू ही है।

गउड़ी माला

उबरत राजाराम की सरणी।
सरब लोक माया के मंडल गिरि परते धरणी॥
सासत सिमृति वेद वीचारे महापुरखन इउ कहिआ॥
बिनु हरिभजन नाही निसतारा सुखु ना किनहू लहिआ॥
तीनि भवन की लखमी जोरी बूझत नाही लहरे॥
बिनु हरिभगति कहा थिति पावै, फिरतो पहरे पहरे॥
अनिक बिलास करत मन मोहन पूरन होत न कामा॥
जलतो जलतो कबहु न बूझत सगल बिरथे बिनु नामा॥
हरि का नामु जपहुं मेरे मीता, इहै सार सुख पूरा॥
साध-संगति जनम-भरणु निवारै, नानकु जन की धूरा॥४६॥

रागु गउड़ी

करउ बेनती सुणहु मेरे मीता संत टहल की वेला॥
ईहा खाटि चलहु हरि लाहा आगै बसनु सुहेला॥
अउध घटै दिवसु रैणा रे, मन गुर मिलि काज सवारे॥
इहु संसारु विकारु संसे महि, तरिओ ब्रहमगिआनी॥
जिसहि जगाइ पीआवै इहु रसु अकथ कथा तिनि जानी॥
जाकउ आए सोई विहाझहु हरि गुरते मनहि बसेरा॥
निजघरि महलु पावहु सुख सहजे बहुरि न होइगो फेरा॥
अंतरजामी पुरख निधाने सरधा मन की पूरे॥
नानक दासु इहै सुखु मागै मोकउ करि संतन की धूरे॥५०॥

---

४६. सरणी = शरण में। सासत सिमृति = शास्त्र और स्मृति-ग्रन्थ। इउ = ऐसा। निसतारा = उद्धार। लखमी = संपत्ति। लहरे = बावले। थिति = स्थिरता, शांति। मोहन = आकर्षक। कामा = वासना। न बूझत = नहीं बुझता, शान्त नहीं होता। जन की धूरा = भक्तों के चरणों की धूल।

५०. टहल की वेला = सेवा का समय। ईहा = यहां, इस लोक में। खाटि चलहु = कमालो। लाहा = लाभ, मुनाफ़ा। आगै बसनु सुहेला = परलोक में आनन्द से रहोगे। अउध = आयु। काज सवारे = बिगड़ी को बनाले। संसे महि = मूढ़ग्राह में फंसा हुआ है। तरिओ = तर गये, पार हो गये। जिसहि ... जानी = जिन्हें (मोह निद्रा से) जगाकर वह ब्रह्म-रस पिला देता है, वे ही इस अनिर्वचनीय कथा (रहस्य) को जानते हैं। जाकउ ... बिहाझहु = जिसके लिए तू संसार में आया है, अर्थात् तूने जन्म लिया है उसे तू बिसाहले, खरीद ले। हरि ... बसेरा = गुरु-कृपा से हरि तेरे अंतर में बस जायेंगे। फेरा = पुनर्जन्म। सरधा = कामना, इच्छा। धूरे = चरणों की धूल।

रागु गउडी अष्टपदी

जब इहु मन महि करत गुमाना।

तब इहु बावरु फिरत बिगाना ॥

जब इहु हूआ सगल की रीना। ताते रमईआ घटि घटि चीना ॥
सहज सुहेला फलु मसकीनी। सतिगुर अपुनै मोहि दानु दीनी ॥
जब किसकउ इहु जानसि मंदा। तब सगले इसु मेलहि फंदा ॥
मेर तेर जब इनहि चुकाई। ताते इसु संगि नही बैराई ॥
जब इनि अपुनी अपुनी धारी। तब इसकउ है मुसकलु भारी ॥
जब इनि करणोहारु पछाना। तब इसनो नाही किछु ताना ॥
जब इनि अपुनो बाधिओ मोहा। आवै जाइ सदा जमि जोहा ॥
जब इसने सभ बिनसे भरमा। भेदु नही है पारब्रहमा ॥
जब इनि किछु करि माने भेदा। तबते दूख डंड अरु खेदा ॥
जब इनि एको एकी बूझिआ। तबते इसनो सभु किछु सूझिआ ॥
जब इहु धावै माइआ अरथी। नह तृपतावै नह तिस लाथी ॥
जब इसने इहु होइआ जउला। पीछै लागि चली उठि कउला ॥
करि किरपा जउ सतिगुरु मिलिओ। मंदिर महि दीपकु जलिओ ॥
जीत हार की सोझी करी। तउ इस घर की कीमत परी ॥
करन करावन सभु किछु एकै। आपे बुद्धि बिचारि बिबेकै ॥
दूरि न नैरै सभकै संगा। सचु सालाहण नानक हरि रंगा ॥५१॥

---

५१. इहु = यह मनुष्य। गुमाना = अभिमान, गर्व। बावरु = पागल। विगाना = ईश्वर से विलग, बिछड़ा हुआ। रीना = रेणु, पैरों की धूल। रमईआ = राम, परमात्मा। चीना = पहचाना, देखा। सहज ... मसकीनी = गरीबी या नम्रता का फल स्वभावतः सुन्दर होता है। किसकउ = किसी दूसरे को। मंदा = बुरा। सगले ... फन्दा = सब उसके विरुद्ध हो जाते हैं। चुकाई = समाप्त कर देता है। बैराई = शत्रुता। मेर तेर ... बैराई = 'यह मेरा है, वह तेरा है' ऐसा भेद-भाव जब वह त्याग देता है तब उसके साथ किसी का द्वेषभाव नहीं रहता। अपुनी-अपुनी = स्वार्थ-भावना। करणैहारु पछाना = सिरजनहार परमात्मा को जान लिया। ताना = कष्ट। बाधिओ = बांध लिया। आवै जाइ = बारबार जन्मता और मरता है। खेदा = क्लेश। एको एकी = एक अद्वितीय परमात्मा। नह तिस लाथी = न प्यास (तृष्णा) दूर होती है। जब इसते ... कउला = जब मनुष्य माया से भागता है तब वह उसका पीछा करने को दौड़ती है। सोझी = विचार। कीमति परी = मोल आंकता है। आपे = परमात्मा खुद ही। सालाहण = गुणगान कर। रंगा = प्रेम-भक्ति से।

राग गूजरी

काहे रे मन चितवहि उद्मु जा आहरि हरि जीउ परिआ ॥
सैल पत्थर महि जंत उपाए ताका रिजकु आगैकरि धरिआ ॥
मेरे माधउजी सतसंगति मिले सु तरिआ ॥
गुरपरसादि परमपदु पाइआ सूके कासट हरिआ ॥
जननि पिता लोक सुत बनिता कोइ न किसकी धरिआ ॥
सिरि सिरि रिजकु सबाहे ठाकुरु काहे मन भउ करिआ ॥
ऊडे ऊडि आवै सै कोसा तिसु पाछै बछरे छरिआ ॥
तिन कवणु खलावै कवणु चुगावै मन महि सिमरनु करिआ ॥
सभि निधान दस असट सिधान ठाकुर करतल धरिआ ॥
जन नानक बलि-बलि सद बलि जाईऐ तेरा अंतु न पारावरिआ ॥५२॥*

आसा

भई परापति मांनुख देहरीआ। गोविंद मिलण की इह तेरी बरीआ ॥
अवरि काज तेरै कितै न काम। मिलु साध संगति भजु केवल नाम ॥
सरंजामि लागु भउजल तरन कै। जनमु वृथा जात रंगि माइआ कै ॥
जपु तपु संजमु धरमु न कमाइआ। सेवा साध न जानिआ हरिराइआ ॥
कहु नानक हम नीच करम्मा। सरणि परे की राखहु सरमा ॥५३॥

---

५२. चितवहि उद्मु = उद्यम (धंधा) करने की बात सोचता है। जा आहरि ... परिआ = जबकि हरि स्वयं ही तेरे लिए उद्यम करने में लगे हुए हैं। जंत = जंतु, जीव। उपाये = उत्पन्न किये। रिजकु = आहार। सुतरीया = वे तर गये, संसार सागर से पार हो गये। सूके कासट हरिआ = सूखा काठ भी हरा हो गया। कोइ ... धरिआ = किसी पर भरोसा नहीं रखा जा सकता। संबाहे = जुटाता है। भउ = भय। ऊड़े ... सिमरनु करिआ = कुलंग पक्षी अपने बच्चों को पीछे छोड़कर सैकड़ों कोस उड़कर चला जाता है, उसके उन बच्चों को उसके पीछे कौन खिलाता या चुगाता है, क्या इस पर भी तूने कभी विचार किया? निधान = ख़जाना, निधियां। असट सिधान = आठ सिद्धियाँ। करतल धरिआ = मुट्ठी में लिये हुए हैं। सद = सदा। पारावरिआ = सीमा।

*यह 'रहिरास' में से लिया गया है।

५३. भई परापति = प्राप्त हुई। देहुरीआ = देह। बरीआ = बेर, समय। सरंजामि लागु = तैयारी करने में लगजा। माइआ = माया। करम्मा = कर्मोंवाले। सरमा = शर्म, लाज।

फुनहे

सखी काजल हार तंबोल सभै किछु साजिआ।
सोलह कीए सीगार कि अंजनु पाजिआ॥
जे घरि आवै कंतु त सभु किछु पाईऐ।
हरि हां, कंतै बाझु सीगारु सभु बिरथा जाईऐ॥१॥

जिसु घरि बसिआ कंतु सा बड़भागणे।
तिसु बणिआ हभु सीगारु साई सोहागणे॥
हउ सूती होइ अचिंत मनि आस पुराईआ।
हरि हां, जा घरि आइआ कंतुत सभु किछु पाइआ॥२॥

मेरे हाथि पदमु आंगनि सुख बासना।
सखी मौरै कंठि रतंनु पेखि दुख नासना॥
बासउ संगि गुपाल सगल सुखरासि हरि।
हरि हां, रिधि सिधि नव निधि बसहि जिसु सदा करि॥३॥

ऊपरि बनै अकासु तलै धर सोहती।
दहदिसि चमकै बीजुलि मुखं कउ जोहती॥
खोजत फिरउ बिदेसि पीउ कत पाईऐ।
हरि हां, जे मसतकि होवै भागु त दरसि समाईऐ॥४॥

मित का चित्तु अनूपु मरंमु न जानीऐ।
गाहक गुनी अपार सु तत्तु पछानीऐ॥

---

१. सीगार = शृगांर। पाजिआ = लगाया। जे = जो। त ... पाऐ = तो उसने सब कुछ पा लिया, उसका सोलह शृंगार सजाना सफल हो गया। कंतै बाझु=बिना स्वामी के।

२. जा घरि = जिस स्त्री के घर में। सा = वह। सभु = सब। साई = वही। सोहागणे = सोहागिन। हउ सूती = मैं सो रही हूं अब। पुराईआ = पूरी हो गई।

३. मेरे हाथि पदमु = मेरे हाथ में कमल की रेखा है, (जो सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार बड़ी शुभ है)। आंगनि सुख वासना = गृह-आंगन में आनन्द-ही-आनन्द का वास है। रतनु = (हरिनामरूपी) रत्न। पेखि = उस रत्न को देख-देखकर। वासउ = रहती हूं। सगल = सकल। सुखरासि = आनन्दघन। करि = हाथ में।

४. बनै = दीप्तिमान हो रहा है। धर = धरती। सोहती = शोभायमान है। बीजुलि = दिव्य प्रकाश से आशय है। मुख कउ जोहती = मैं उस स्वामी का सुंदर मुख देखती हूँ। विदेसि = देश-देश में, सर्वत्र। जे मसतकि होवै भागु = जो मेरा सद्भाग्य होगा। त दरसि समाइऐ = तो दर्शन उसका हो जायेगा।

चित्तहि चितु समाइ त होवै रंगु घना।
हरि हां, चंचल चोरहि मारि त पावहु सचु धना ॥५॥

सुपनै ऊभी भई गहिओ की न अंचला।
सुंदर पुरख बिराजित पेखि मनु बंचला॥
खोजउ ताके चरण कहहु कत पाईऐ।
हरि हां, सोई जतनु बताइ सखी पिरु पाईऐ ॥६॥

नैण न देखहि साध सि नैण बिहालिआ।
करन न सुनही नादु करन मुंदि घालिआ॥
रसना जपै न नाम तिलु तिलु करि कटीऐ।
हरि हां, जब बिसरै गोविंदराइ दिनो दिनु घटीऐ ॥७॥

धावउ दिसा अनेक प्रेम प्रभ कारणे।
पंच सतावहि दूत कउन विधि मारणे॥
तीखण वाण चलाइ नामु प्रभ धिआईऐ।
हरि हां, महा बिखादी घात पूरन गुरु पाईऐ ॥८॥

जिथै जाए भगतु सु थानु सुहावण।
सगले होए सुख हरि नामु धिआवणाँ॥
जीअ करनि जैकारु निंदक मुए पचि।
साजन मनि आनंदु नानक नामु जपि ॥९॥

---

५. मित = मित्र; परमात्मा से आशय है। चितु अनूपु = हृदय अनुपम है। मरंमु = रहस्य। ततु = आत्मतत्त्व, परमसत्य। चित्तहि ... घना = जब हमारा चित्त प्रभु में लय हो जायेगा, तभी हमें प्रेम-जनित आत्यन्तिक आनंद होगा। चोरहि मारि = जो मनरूपी चोर को वश में कर लेता है। धना = धन।

६. सुपनै ... अंचला = सपने में वह (मोहिनी) मूर्ति आकर खड़ी हो गई, पर हाय, मैं उसका अंचल न पकड़ सकी। पेखि मन बंचला = उसे देखकर मेरा मन ठग गया। खोजउ ताके चरण = उसके चरण-चिह्नों को खोजती फिरती हूं। पिरुँ = प्रियतम।

७. नैण ... बिहालिआ = जो नेत्र साधुपुरुष को नहीं देखते, वे बेकार हैं। करन = कान। नादु = गुरु के सदुपदेश से तात्पर्य है। मुंदि घालिया = बंद कर दिया जाये। तिलु तिलु करि = छोटे-छोटे टुकड़े करके। घटीऐ = गिरता है।

८. धावउ = दौड़ता हूं। प्रेम प्रभ कारणे = प्रभु के प्रेम की खातिर। पंचदूत = इन्द्रियों के पांच विषय, जो शत्रु हैं। बिखादी = विषय-आदि। घात = घातक, नाशक।

९. जिथै = जहां भी। भगतु = हरिभक्त, संतजन। थानु = स्थान। साजन = सज्जन।

अउखधु नामु अपारु अमोलकु पीजई।
मिलि मिलि खावहि संत सगल कउ दीजई॥
जिसै परापति होइ तिसै ही पावणे।
हरि हां, हउ बलिहारी तिन जि हरि रंगि रावणे॥१०॥

सलोक

हरि हरि नामु जो जनु जपै सो आइआ परवाणु।
तिसु जनकै बलिहारणै जिनि भजिआ प्रभु निरबाणु॥१॥

सतिगुर पूरे सेविए दूखा का होइ नास।
नानक नाम अराधिए कारजु आवै रासु॥२॥

जिसु सिमरत संकट छुटहि अनंद मंगल विस्राम।
नानक जपीए सदा हरि निमखन न बिसरउ नाम॥३॥

बिखै कउड़त्तणि सगल महि जगत रही लपटाइ।
नानक जनि वीचारिआ मीठा हरि का नाइ॥४॥

गुरु कै सबदि अराधिए नामि रंगि बैरागु।
जीते पंच बैराइआ नानक सफल मारू रागु॥५॥

पतित उधारण पारब्रहमु संम्रथ पुरखु अपारु।
जिसहि उधारे नानका सो सिमरे सिरजणहारु॥६॥

पंथा प्रेम न जाणई भूली फिरै गवारि।
नानक हरि बिसराइकै पड़दे नरक अँधिआर॥७॥

---

१०. अउखधु = औषधि। पीजई = पीले। सगल कउ = सब भव-रोगियों को। जि हरि रंगि रावणे = जो भगत्वप्रेम में रम रहे हैं।
१. सो आइआ परवाणु = उसी का संसार में आना सच्चा है। निरबाणु = मोक्षदायक।
२. कारजु आवे रासु = हरिनाम की पूंजी (अंत समय) काम आये।
३. विस्राम = शान्ति। निमख = निमिष, पल।
४. बिखै कउड़त्तणि = विषयरूपी कड़वी बेल।
५. गुरु कै ... बैरागु = गुरु के उपदेश की आराधना करनी चाहिए, जिससे हरि-नाम के प्रति प्रेम और विषयों के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो। पंच बैराइआ = विषयरूपी पांचों शत्रुओं को। मारू राग = वह राग जो युद्ध में उत्साह बढ़ाने के लिए गाया जाता है।
६. संम्रथ = समर्थ, सर्वशक्तिमान्।

फूटो अंडा भरम का मनहि भइओ परगासु।
काटी बेरी पगह ते गुरि कीनी बंदि खलासु ॥८॥

तू चउ सजण मैडिआ देई सीसु उतारि।
नैण महिंजे तरसदे कदि पसी दीदारु ॥९॥

नीहु महिंजा तऊ नालि बिआ नेह कूड़ावै डेखु।
कपड़ भोग डरावणे जिचरु पिरी न डेखु ॥१०॥

उठी झालू कंतड़े हउ पसी तउ दीदारु।
काजल हारु तमोल रसु बिनु पसे हभि रस छारु ॥११॥

पहिला मरण कबूलि करि जीवण की छड़ि आस।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारै पास ॥१२॥

जिसु मनि वसै पारब्रहमु निकटि न आवै पीर।
भुख तिख तिसु न विआपाई जमु नही आवै नीर ॥१३॥

धणी विहूणा पाट पटंबर भाही सेती जाले।
धूणी विचि लुडंदड़ी साहां नानक तै सह नाले ॥१४॥

---

८. मनहि भइओ परगासु = मन के अंदर दिव्य प्रकाश भर गया। बेरी = बेड़ी। पगह ते = पैरों में से। बंदि खलासु = बन्धन-मुक्त।

९. अय मेरे साजन, अगर तू कहे, तो मैं अपना सिर उतारकर तुझे दे दूँ। मेरी आँखें तरसती हैं कि कब तुझे देखूँ।

१०. मेरी प्रीति तेरे ही साथ है; मैंने देख लिया कि और सब प्रीति झूठी है। तुझे देखे बिना ये वस्त्र और ये भोग मुझे डरावने लगते हैं।

११. मेरे प्यारे, तेरे दर्शन के लिए मैं बड़ी भोर उठ जाती हूं। काजल, हार और पान और सारे मधुर रस, बिना तेरे दर्शन के धूल की तरह लगते हैं।

१२. कबूलि करि = स्वीकार करले। छड़ि = छोड़कर। रेणुका = पैरों की धूल; अत्यंत तुच्छ।

१३. पीर = दुःख। तिख = तृषा, प्यास। जमु = काल। नीर = निकट।

१४. मेरा प्रीतम मेरे पास नहीं, तो इन रेशमी वस्त्रों को लेकर क्या करूंगी, मैं तो इनमें आग लगा दूँगी;

प्यारे, तेरे साथ धूल में लोटती हुई भी मैं सुन्दर दिखूँगी।

सोरठि सो रसु पीजिए कबहू न फीका होइ।
नानक राम नाम गुन गाइअहि दरगह निरमल सोइ ॥१५॥

जाको प्रेम सुआउ है चरन चितव मन माहि।
नानक बिरही ब्रहम के आन न कतहू जाहि ॥१६॥

मगनु भइओ प्रिअ प्रेम सिउ सूध न सिमरत अंग।
प्रगटि भइओ सभ लोअ महि नानक अधम पतंग ॥१७॥

●

---

१५. सोरठि = एक राग का नाम। सो रसु = ब्रह्म-रस से आशय है। दरगह = परमात्मा का दरबार। निरमल = निष्पाप।

१६. सुआउ = स्वभाव। चरन चितव मन माहि = परमात्मा के चरणों का ध्यान हृदय में करते हैं। विरही = अत्यंत प्रेमातुर। आन = अन्य स्थान, सांसारिक भोगों से आशय है।

१७. सूध = सुध, ध्यान। लोअ = लोक।

गुरु तेगबहादुर

चोला-परिचय

जन्म-संवत् – १६७६ वि., वैशाख कृ. ५
जन्म-स्थान – अमृतसर
पिता – गुरु हरगोविंद
माता – नानकी
भेष – गृहस्थ
मृत्यु-संवत् – १७३२ वि., अगहन शु. ५

छठे गुरु हरगोविंद के पाँच पुत्र थे – गुरुदित्ता, सूरजभान, अनीराय, बाबा अटल और तेगबहादुर। सातवें गुरु थे गुरुदित्ता के छोटे पुत्र हरराय, और आठवें गुरु हुए गुरु हरराय के छोटे पुत्र हरकृष्ण राय। इनकी मृत्यु केवल ८ वर्ष की अवस्था में ही हो गई।

गुरु हरगोविंद की मृत्यु के पश्चात् तेगबहादुर अपनी माता तथा पत्नी गूजरी के साथ बाकला नाम के एक गाँव में रहने लगे थे। गुरु हरकृष्ण राय से जब लगभग बेहोशी की अवस्था में उत्तराधिकारी का नाम पूछा गया, तब उन्होंने बाबा बाकले बतलाकर अपना हाथ दो-तीन बार हिलाया। बाकला के २२ सोढ़ी खत्रियों ने गुरु-गद्दी पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया। किंतु अन्त में चैत्र शु. १४ सं. १७७२ को साधुता, संतोष और शान्ति की मूर्ति तेगबहादुर को गुरु हरगोविंद तथा गुरु हरराय के सभी अनुयायी सिक्खों ने गुरु-गद्दी पर आसीन करा दिया।

गुरु तेगबहादुर पाँच वर्ष की अवस्था से ही एकान्त में प्रायः विचार-मग्न रहा करते थे, और किसी से बोलते नहीं थे। इनके पिता हरगोविंद ने इनकी साधुता एवं दृढ़ता देखकर भविष्यद्वाणी की थी कि 'तेगबहादुर, अवश्य किसी दिन गुरु बनेगा और धर्म की वेदी पर अपने प्राणों को चढ़ा देगा।'

इनके बड़े भाई गुरुदित्ता का पुत्र धीरमल इनसे अत्यंत द्वेष रखता था। इन्हें मार डालने के लिए कुछ मसंदों को उसने इनकी ताक में भेजा, पर वह सफल नहीं हुआ। साधुप्रकृति गुरु तेगबहादुर ने कीरतपुर को छोड़कर वहां से छह मील दूर आनन्दपुर नामक एक नये शहर की नींव डाली, और वहीं पर रहने का निश्चय किया। पर वहां भी वे धीरमल और रामराय के षड़यंत्रों के कारण चैन से नहीं बैठ सके। वह स्थान भी

उन्होंने छोड़ दिया और सिक्ख-धर्म का प्रचार करने के लिए वे लंबी-लंबी यात्राओं पर निकल पड़े। गुरु तेगबहादुर पंजाब के कई स्थानों का भ्रमण करते हुए कड़ा मानिकपुर (जहाँ प्रसिद्ध संत बाबा मलूकदास रहते थे), प्रयाग और काशी और गया भी गये। काशी में जिस स्थान में यह रहे थे, उसे 'शब्द का कोठा' कहते हैं, जो 'रेशम कटरा' मोहल्ले में है।

जयपुर के महाराजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह के प्रस्ताव पर उसके साथ औरंगज़ेब बादशाह की ओर से शाही फ़ौज के साथ गुरु तेगबहादुर बंगाल होते हुए कामरूप (आसाम) भी गये। राजा रामसिंह ने कामरूप के विरुद्ध चढ़ाई में इनकी मदद चाही थी। पर चढ़ाई करने का अवसर ही नहीं आया। गुरु के आत्मबल के आगे कामरूप के राजा की एक नहीं चली। उन्होंने बिना ही भयंकर रक्त-पात के कामरूप राज्य को शान्तिपूर्वक दो हिस्सों में बँटवा दिया, और कहा कि, 'बादशाह और कामरूप का राजा दोनों इन दोनों भागों में अपना-अपना राज करें और पुरानी शत्रुता भूल जायें।' कामरूप का राजा इनसे बहुत प्रभावित हुआ। धूबरी में आज भी गुरु तेगबहादुर के अनुयायी सिक्खों के कुछ वंशज पाये जाते हैं।

पटना में यह अपनी माता और पत्नी को छोड़ गये थे। आसाम में पटने से इन्हें यह शुभ समाचार मिला कि इनकी पत्नी गूजरी ने एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया है। राजा रामसिंह ने इस मंगल समाचार को सुनकर वहां भारी उत्सव मनाया। गुरु तेगबहादुर पटना लौट आये, और वहाँ अपने परिवार के साथ शान्ति से रहने लगे। मगर पंजाब की याद इन्हें रह-रहकर व्याकुल करने लगी। अतः परिवार को पटने में ही छोड़कर यह पंजाब को चल पड़े। आनन्दपुर में पीछे कुछ दिनों बाद अपनी माता, पत्नी और पुत्र गोविंदराय को भी बुला लिया।

औरंगज़ेब का शासन-काल था यह। धर्मान्धता उसकी भारत के इतिहास में प्रसिद्ध है। धर्मान्तरित करने का आन्दोलन उसका कई प्रान्तों में चल रहा था। कश्मीर भी नहीं बचा। वहां के पंडितों ने छह महीने की मोहलत माँगी। कश्मीर के सूबेदार शेर अफ़गान खां ने औरंगज़ेब की आज्ञा से कश्मीरी पंडितों के आगे यह प्रस्ताव रखा था कि या तो वे सब-के-सब इस्लाम धर्म को ग्रहण कर लें, या क़त्ल होने को तैयार हो जायें। यह सुनकर कि गुरु तेगबहादुर ही एक ऐसे महान् वीर पुरुष हैं, जो इनके शिखा-सूत्र और तिलक की रक्षा कर सकते हैं, उनके कुछ प्रतिनिधि आनन्दपुर पहुँचे। उनकी करुण-कहानी सुनकर गुरु साहब इस निश्चय पर पहुँचे कि धर्म की खातिर मुझे अपने प्राणों की बलि अब देनी ही होगी। उन्होंने उन पंडितों से कहा—'आप लोग दिल्ली जाकर बादशाह से कहें—''गुरु नानक के तख्त पर आसीन तेगबहादुर को पहले तुम मुसलमान बना लो; उसके बाद हम सब-के-सब अपने आप इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेंगे।''

औरंगज़ेब यह सुनकर फूला नहीं समाया। गुरु साहब को दिल्ली ले आने के लिए उसने कुछ अधिकारियों को आनन्दपुर भेजा। गुरु तेगबहादुर ने उनसे कहा, कि बरसात के बाद मैं खुद दिल्ली आ जाऊँगा। पर तब तक रुकना उन्होंने ठीक नहीं समझा। वे गर्मियों में ही कुछ अच्छे वफ़ादार सिक्खों को लेकर दिल्ली को रवाना हो गये। रास्ते में सैफ़ाबाद में अपने परममित्र सैफुद्दीन से मिले, जिसने गुरु साहब से प्रभावित होकर सिक्ख-धर्म स्वीकार कर लिया। तीन महीने वे उसके अनुरोध पर सैफ़ाबाद में ही रहे।

रास्ते में कई स्थानों पर ठहरते और धर्मोपदेश करते हुए वे दिल्ली पहुँचे, और उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया, इस अपराध पर कि इतने दिनों तक वे कहीं छिपे हुए थे। उनकी गिरफ़्तारी से बादशाह को बेहद खुशी हुई।

उनके सामने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने का प्रस्ताव रखा गया। गुरु तेगबहादुर ने बादशाह को यह जवाब दिया–''ईश्वर की मरज़ी से कोई बाहर नहीं जा सकता। अगर उसकी यही मरज़ी होती कि दुनिया में एक ही धर्म होना चाहिए, तो एक ही समय में साथ-साथ इस्लाम और हिन्दूधर्म को वह न रहने देता। उसकी मरज़ी के खिलाफ़ न मैं जा सकता हूँ, न तुम। मैं इस्लाम को कभी स्वीकार करने वाला नहीं। दुनियां पर एक ही धर्म आरोपित करने का जो काम तुम्हारे मक्का के पैगंबर से भी नहीं हो सका, तब तुम्हारी तो बिसात ही क्या? ईश्वर के आगे हम सब समान हैं, नाचीज़ हैं। उससे डरो, बहुत जुल्म न करो।''

यह सुनकर औरंगज़ेब आग-बबूला हो उठा। गुरु साहब को उसने जेलखाने में डाल दिया। बाद में कितने ही भय दिखाये गये, कितने ही प्रलोभन दिये गये, पर गुरु तेगबहादुर अपने सत्य पर वज्र की तरह अडिग रहे।

पीछे लोहे के पिंजड़े में उन्हें बंद कर दिया गया। संत्री हमेशा नंगी तलवार लिये पहरे पर खड़ा रहता था।

आनन्दपुर से जब एक हरकारा उनकी पत्नी और पुत्र का पत्र लेकर मिलने आया, तो जवाब में उसके हाथ गुरु साहब ने अपनी चिंताग्रस्त पत्नी गूजरी को यह सलोक लिख भेजे–

''राम गइओ रावनु गइओ जाको बहु परवार।
कहु नानक थिरु कछु नहीं सुपने जिउ संसार॥
जिंता ताकी कीजिए जो अनहोनी होइ।
इहु मारगु संसार को नानक थिरु नहि कोइ॥''

और भी कितने ही वैराग्यपूर्ण सलोक बंदीगृह के दिनों में उन्होंने लिखे।

अंत में, औरंगज़ेब ने फिर एक बार उन्हें धर्मान्तरित करने का प्रयत्न किया। पर गुरु साहब तो वैसे ही अपने धर्म पर अटल थे। उनका वही जवाब था, ''प्राण रहते मैं

कभी अपने धर्म को नहीं छोड़ सकता। मौत के डर से मैं काँपने वाला नहीं। मैं जानता हूँ कि एक-न-एक दिन तो इस देह को छूटना ही है। मौत को छाती से लगाने के लिए मैं तैयार हूँ।"

पिंजड़े से उन्हें निकाला गया। उन्होंने स्नान किया, और एक बरगद के नीचे बैठकर जपुजी का पाठ किया। वे शान्त थे, ध्यान-मग्न थे। सैयद आदमशाह ने, जिसके पास क़त्ल का शाही हुक्म था, गुरु तेगबहादुर का सर धड़ से अलग कर दिया।

यह महान् बलिदान संवत् १७३२ की अगहन सुदी ५ के दिन हुआ। धर्मान्धता पर धर्म की विजय का महामंगल-दिन था वह।

बानी-परिचय

गुरु ग्रन्थ साहिब में 'महला ९' के अन्तर्गत जितने पद और सलोक संग्रहीत हैं वे सब गुरु तेगबहादुर के रचे हुए हैं। हिन्दी के अनेक पद-संग्रहों में जो पद लिये गये हैं, वे गुरु तेगबहादुर के ही हैं, आदिगुरु नानक के नहीं। इनके पदों व सलोकों की भाषा शुद्ध हिन्दी है और वह बहुत प्रांजल और मधुर है। कुछ पद तो इनके सूरदास के पदों से मिलते हैं। भक्ति और वैराग्य का इन्होंने बड़ा सुन्दर निरूपण किया है। बानी सरल, प्रसादगुणमयी और अतिमधुर है।

आधार

१ गुरु ग्रन्थ साहिब-सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन (भाग ३) मकालीफ़

●

गुरु तेगबहादुर

रागु सोरठि

रे नर, इह साची जीअ धारि ॥
सगल जगतु है जैसे सुपना बिनसत लगत न बार ॥
बारू भीति बनाई रचि पचि रहत नही दिन चारि ॥
तैसे ही इह सुख माइआ के उरझिओ कहा गवार ॥
अजहु समझि कछु बिगरिओ नाहिनि भजि ले नामु मुरारि ॥
कहु नानक इह निज मतु साधन भाखिओ तोहि पुकारि ॥१॥

माई, मनु मेरो बसि नाहि ॥
निसबासुर बिखिअन कउ धावत किहि बिधि रोकउ ताहिं ॥
बेद पुरान सिमृति के मति सुनि निमख न हीए बसावै ॥
परधन परदारा सिउ रचिओ बिरथा जनमु सिरावै ॥
मदि माइआ कै भइओ बाबरो सूझत नह कछु गिआना ॥
घट ही भीतरि बसत निरंजनु ताको मरमु न जाना ॥
जब ही सरनि साध की आइओ दुरमति सगल विनासी ॥
तब नानक चेतिओ चिंतामनि काटी जम की फांसी ॥२॥

माई, मैं किहि बिधि लखउ गुसाई ॥
महामीह अगिआनि तिमिर में मो मनु रहिओउ रझाई ॥
सगल जनम भरमत ही खोइओ नहि असथिरु मति पाई ॥
बिखिआसकत रहिओ निसबासुर नहि छूटी अधमाई ॥
साध संगु कबहू नहीं कीना नहि कीरति प्रभ गाई ॥
जन नानक मैं नाहि कोउ गुनु राखि लेहु सरनाई ॥३॥

---

१. जीअ = मन। सगल = सकल, सारा। माइआ = माया। गवार = गँवार, मूर्ख। मतु = सिद्धान्त।

२. बिखिअन कउ = विषयों को, इन्द्रियों के भोगों की ओर। मति = मत, सिद्धान्त। सिउ = से। निरंजनु = निराकार परमात्मा। मरमु = भेद, रहस्य। चेतिओ = चिंतन या ध्यान किया। चिंतामनि = समस्त चिंताओं को दूर करने वाला, परमात्मा।

३. लखउ = देखूँ, ध्यान में लाऊँ। असथिरु मति = स्थिर बुद्धि, अचंचल चित्त।

प्रानी कउनु उपाउ करै ॥
जाते भगति राम की पावै जम को त्रासु हरै ॥
कउनु करम बिदिआ कहु कैसी धरमु कउनु फुनि करई ॥
कउनु नामु गुर जाकै सिमरै भवसागर कउ तरई ॥
कल मै एकु नामु किरपानिधि जाहि तपै मति पावै ॥
अउर धरम ताकै समि नाहिन इह बिधि बेदु बतावै ॥
सुखु दुखु रहत सदा निरलेपी जाको कहत गुसाई ।
सो तुमही महि बसै निरंतरि नानक दरपनि निआई ॥४॥

मन रे, प्रभ की सरनि बिचारो ॥
जिह सिमरत गनका सी उधरी ताको जसु उर धारो ॥
अटल भइऔ धूअ जाकै सिमरति अरु निरभै पदु पाइआ ॥
दुख हरता इह विधि को सुआमी तै काहे बिसराइआ ॥
जब ही सरनि गही किरपानिधि गज गराह ते छूटा ॥
महिमा नाम कहा लउ बरनउ राम कहत बंधन तिह तूटा ॥
अजामेलु पापी जगु जाने निमख माहि निसतारा ॥
नानक कहत चेत चिंतामनि तै भी उतरहि पारा ॥५॥

मन रे, कउनु कुमति तै लीनी ॥
परदारा निंदिआ रस राचिउ रामभगति नहि कीनी ॥
मुकति-पंथु जानिओ तै नाहिन धन जोरन कउ धाइआ ॥
अंति संगि काहू नही दीना बिरथा आपु बंधाइआ ॥
ना हरि भजिऔ ना गुरजनु सेविओ नहि उपजिओ कछु गिआना ॥
घटि ही माहि निरंजनु तेरै तै खोजत उदिआना ॥
बहुतु जनम भरमत तै हारिओ असथिर मति नही पाई ॥
मानसदेह पाइ हरिपद भजु नानक बात बताई ॥६॥

बिखिआसकत = विषयों में आसक्त अर्थात् अनुरक्त। अधमाई = दुष्टता। मैं = मुझमें।

४. जम को त्रासु = मृत्यु का भय। बिदिआ = विद्या। फुनि = पुनः, फिर ! सिमरै = स्मरण करने से। मति पावै = बुद्धि स्थिरता को प्राप्त कर लेती है। दरपनि निआई = दर्पण में प्रतिविम्ब की तरह।

५. गनका = एक वेश्या जिसका नाम पिंगला था। धूअ = ध्रुव। इह विधि को = ऐसा (पतित-पावन)। कहा लउ=कहाँ तक। तूटा=कट गया। निसतारा = मुक्त कर दिया।

६. निंदिआ = निंदा। राचिउ = रँगा हुआ है। जोरन कउ धाइआ = चाहे जिस

मन की मन ही माहि रही ॥
ना हरि भजे न तीरथ सेए चोटी कालि गही ॥
दारा मीत पूत रथ संपति धन पूरन सभु मही ॥
अउर सगल मिथिआ ए जानउ भजनु राम को सही ॥
फिरत फिरत बहुते जुग हारिओ मानसदेह लही ॥
नानक कहत मिलन की बरीआ सिमरत कहा नही ॥७॥

रे मन, राम सिउ करि प्रीति ॥
स्रवन गोबिंद गुनु सुनउ अरु गाउ रसना गीति ॥
करि साध संगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीति ॥
कालु-बिआलु जिउ परिओ डोलै मुखु पसारे मीति ॥
आजु कालि फुनि तोहि ग्रसिहै समझि राखउ चीति ॥
कहै नानकु रामु भजिलै जातु अउसरु बीति ॥८॥

प्रीतम जानि लेहु मन माही ॥
अपने सुख सिउ ही जगु फांधिओ को काहू को नाही ॥
सुख मै आनि बहुतु मिलि बैठत रहत चहू दिसि घेरै ॥
बिपति परी सभ ही संगु छाड़त कोऊ न आवत नेरै ॥
घर की नारि बहुतु हितु जा सिउ सदा रहत संग लागी ॥
जब ही हंस तजी इह काइआ प्रेत प्रेत करि भागी ॥
इहि बिधि को बिउहारु बनिओ है जा सिउ नेहु लगाइओ ॥
अंति बार नानक बिनु हरिजी कोऊ काम न आइओ ॥९॥

जो नरु दुख मै दुखु नहि मानै ॥
सुख सनेहु अरु भै नही जाकै कंचन माटी मानै ॥
नहि निंदिआ नहि उसतति जाकै लोभु मोहु अभिमाना ॥
हरख सोग ते रहै निआरउ नाहि मान अपमाना ॥
आसा मनसा सगल तिआगै जग तै रहै निरासा ॥

उचित-अनुचित उपाय से संचय करने के लिए दौड़ता रहा। उदिआना = उद्यान, यहाँ जंगल से अभिप्राय है। असथिर = स्थिर, अचंचल।

७. हारिओ = व्यर्थ बिता दिये। बरीआ = बेर, समय। कहा = क्यों।

८. सिउ = से। बिआलु = व्याल, सर्प। मुखु पसारे मीति = मौत मुँह खोले खड़ी है। फुनि = पुनः, फिर। चीति = चित्त में।

९. फांधिओ = फंदे में पड़ा है। को काहू को = कोई भी किसी का। नेरै = नज़दीक। जासिउ = जिसके हाथ। हंस = जीव। काइआ = काया, देह।

कामु क्रोधु जिह परसै नाहिन तिह घट ब्रह्मुनिवासा ॥
गुर किरपा जिह नर कउ कीनी तिह इह जुगति पछानी ॥
नानक लीन भइओ गोबिंद सिउ जिउ पानी संगि पानी ॥१०॥

मन रे, गहिओ न गुर उपदेसु ॥
कहा भइओ जउ मूड मुडाइओ भगवउ कीनो भेसु ॥
साच छाडिकै झूठहि लागिओ जनमु अकारथु खोइओ ॥
करि परपंच उदर निज पोखिओ पसु की निआई सोइओ ॥
रामभजन की मति नहि जानी माइआ हाथि बिकाना ॥
उरझि रहिओ बिखिअन संगि बउरा नामुरतनु बिसराना ॥
रहिओ अचेतु न चेतिओ गोबिंद बिरथा अउध सिरानी ॥
कहु नानक हरि बिरदु पछानउ भूले सदा परानी ॥११॥

इह जगि मीतु न देखिओ कोई ॥
सगल जगतु अपनै सुख लागिओ दुख मै संगि न होई ॥
दारा मीत पूज सनबंधी सगरे धनसिउ लागे ॥
जब ही निरधन देखिओ नरकउ संगु छाड़ि सभ भागे ॥
कहंउ कहा इआ मन बउरेकउ इनसिउ नेहु लगाइओ ॥
दीनानाथ सगल भैभंजन जसु ताको बिसराइओ ॥
सुआन पूछ जिउ भइओ न सूधो बहुतु जतनु मै कीनउ ॥
नानक लाज बिरद की राखहु नामु तुहारउ लीनउ ॥१२॥

राग बिलावल

हरि के नाम बिना दुखु पावै।
भगति बिना सहसा नहि चूकै गुर इह भेद बतावै ॥
कहा भइउ तीरथ व्रत कीए, राम सरनि नहि आवै।

---

१०. सुख सनेहु = सुख के प्रति आसक्ति या मोह। उसतति = स्तुति। सोग = शोक। निआरउ = अलिप्त। निरासा = अनासक्त। जिह नर कउ = जिस मनुष्य पर। जुगति = युक्ति, भेद, रहस्य। पछानी = पहचानली।

११. जउ = जो। भगवउ कीनो भेसु = भगवा अर्थात् गेरुवे वस्त्र पहन लिये, संन्यास ले लिया। अकारथु = व्यर्थ। निआई = नाई, तरह। बउरा = पागल, मूर्ख। बिसराना = भुला दिया। अउध = अवधि, आयु। सिरानी = बीत गई। बिरदु = पतितोद्धारण का यश या बाना। परानी = प्राणी, जीव।

१२. जगि संसार में। सनबंधी = रिश्तेदार। सगरे धन सिउ लागे = सभी धन के लिए पीछे-पीछे लगे फिरते हैं। इआ = या, इस। कउ = को। सुआन = कुत्ता।

जोग जग्य निहफल तिह मानौ जो प्रभ-जसु बिसरावै ॥
मान मोह दोनों को परहरि, गोबिंद के गुन गावै ॥
कहु नानक इह विधि को प्रानी जीवनमुकत कहावै ॥१३॥

जामें भजनु राम को नाहीं।
तिह नर जनम अकारथ खोइउ इह राखहु मन माहीं ॥
तीरथ करै बिरत पुनि राखै, नहि मनुवा बसि जाको।
निहफल धरम ताहि तुम मानो सांचु कहत मैं याको ॥
जैसे पाहन जल महि राखिउ भेदै नहिं तिहि पानी।
तैसे ही तुम ताहि पछानो भगतिहीन जो प्रानी ॥
कलि में मुकति नाम ते पावत गुर इह भेद बतावै।
कहु नानक सोई नरु गरुआ जो प्रभ के गुन गावै ॥१४॥

रागु जैतसरी

भूलिओ मनु माया उरझाइओ।
जो जो करम किइउ लालच लगि तिह तिह आपु बँधाइओ ॥
समझ न परी बिखै-रस राचिओ जसु हरि को बिसराइओ।
संगि स्वामी सो जानिओ नाहिन वन खोजन को धाइओ ॥
रतनु रामु घट ही के भीतर, ताको गिआन न पाइओ।
जन नानक भगवंत भजन बिनु बिरथा जनम गवाइओ ॥१५॥

मन रे, साचा गहो बिचारा।
रामनाम बिनु मिथिआ मानो सगरो इह संसारा ॥
जाको जोगी खोजत हारे, पाइओ नहि तिहि पारा।
सो स्वामी तुम निकटि पछानो, रूप-रेख ते निआरा ॥
पावन नाम जगत में हरि को, कबहू नाहि सभारा।
नानक सरनि परिओ जगबंदन राखहु बिरद तुम्हारा ॥१६॥

---

१३. सहसा नहि चूकै = संशय (द्वैतभाव) का अंत नहीं होता। को = कोई बिरला।

१४. अकारथ = बेकार। बसि = वश में। पाहन = पत्थर। पछानो = पहचानो, जानो। भेद = रहस्य। गरुआ = बड़ा।

१५. तिह ... बंधाइओ = उस कर्म से खुद बंधन में पड़ गया। राचिओ = रंग गया। संगि = घट के अंदर ही। गिआन = पता, परिचय।

१६. गहो = ग्रहण करो। बिचार = सद्विवेक, आत्म-ज्ञान। पछानो = पहचानो। सभारा = स्मरण या ध्यान किया। विरद = बाना, बड़ा नाम।

रागु टोड़ी

कहउं कहा अपनी अधमाई।
उरझिओ कनक कामिनी के रस नहि कीरति प्रभु गाई॥
जग झूठे कउ साँचु जानिकै तासिउ रुचि उपजाई।
दीनबंधु सिमरिओ नहि कबहूँ होत जु संगि सहाई॥
मगन रहिओ माइआ मैं निसिदिन छुटी न मन की काई।
कह नानक अब नाहि अनत गति बिनु हरि की सरनाई॥१७॥

रागु धनासरी

काहे रे, वन खोजन जाई।
सरबनिवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई॥
पुहपमध्य जिउ बासु बसतु है, मुकुर माहि जैसे छाई।
तैसे ही हरि बसे निरंतर, घट ही खोजहु भाई॥
बाहरि भीतरि एकै जानहु, इह गुरु गिआनु बताई।
जन नानक बिनु आपा चीन्हे, मिटै न भ्रम की काई॥१८॥

तिह जोगी कउ जुगति न जानी।
लोभ मोह माइआ ममता फुनि जिह घटि माहि पछानी॥
परनिंदा उसतुति नहि जाकै कंचन-लोह समानो।
हरम-सोग ते रहै अतीता, जोगी ताहि बखानो॥
चंचल मनु दहदिसि कउ धावत, अचल जाहि ठहरानो।
कहु नानक इहु बिधि को जो नरु मुकत ताहि अनुमानो॥१९॥

रागु गउड़ी

साधो, मन का मान तिआगो।
काम क्रोध संगति दुरजन की, ताते अहनिसि भागो॥

---

१७. रस = सुख, प्रेम। रुचि उपजाई = प्रीति जोड़ी। सिमरिओ = स्मरण किया। काई = मैल; बुरी वासना। अनत = अन्यत्र, और कहीं भी।

१८. समाई = व्याप्त। वासु = गंध। मुकुर = दर्पण। आपा = स्वरूप।

१९. जुगति = युक्त, योगारूढ़। फुनि = पुनः, तथा। पछानी = देखो। उसतुति = स्तुति, प्रशंसा। समानो = एक-से। सोग = शोक। अतीता = रहित। दह = दस। ठहराना = स्थिर हो गया। मुकत = जीवन्मुक्त।

सुखु दुखु दोनो सम करि जानै, औरु मानु अपमाना।
हरख-सोग ते रहै अतीता तिनि जगि तत्तु पछाना॥
उसतुति निंदा दोऊ त्यागै, खोजै पदु निरबाना।
जन नानक इहु खेलु कठन है, किनहू गुरमुखि जाना॥२०॥

साधो, रचना राम बनाई।
इकि बिनसै इक असथिरु मानै, अचरज लखिओ न जाई॥
काम क्रोध मोह बसि प्रानी हरिमूरति बिसराई।
झूठा तन साचा करि मांनिओ जिउ सुपना रैनाई॥
जो दीसै सो सगल बिनासै, जिउ बादर की छाई।
जन नानक जंग जानिओ मिथिआ, रहिओ राम-सरनाई॥२१॥

प्रानी कउ हरिजसु मनि नहि आवै।
अहनिसि मगनु रहै माइआ में, कहु कैसे गुन गावै॥
पूत मीत माइआ ममता सिउ इहु बिधि आपु बँधावै।
मृगतृसना जिउ झूठो इह जगु देखि ताहि उठि धावै॥
भुगति मुकति को कारनु स्वामी, मूढ़ ताहि बिसरावै।
जन नानक कोटिन में कोऊ भजनु राम को पावै॥२२॥

साधो, इहु मनु गहिओ न जाई।
चंचल तृसना संगि बसतु है इआते थिरु न रहाई॥
कठिन करोध घट ही के भीतरि जिह सुधि सभ बिसराई।
रतनु गिआनु सभ कौ हिरि लीना, ता सिउ कछु न बसाई॥
जोगी जतन करत सभ हारे, गुनी रहे गुन गाई।
जन नानक हरि भए दइआला तउ सब बिधि बनि आई॥२३॥

---

२०. मान = अभिमान; मत। अतीता = रहित। जगि = संसार में। तत्तु = परमवस्तु; स्वरूप। पछाना = पहचाना, जाना। निरबाना = मोक्ष। खेल = साधन। किनहू = किसी बिरले ने।

२१. असथिरु = स्थिर, नित्य। रैनाई = रात का। दीसै = दीखता है। सगल = सकल। छाई = छाहँ।

२२. मनि नहि आवै = हृदय में जमता नहीं है। भुगति = भोग, सांसारिक सुख।

२३. इआते = या ते, इससे। सुधि = स्मृति। हिरि लीना = हर लिया। गुनि = विद्वान्। हरिभये ... आई = यदि परमात्मा कृपा दृष्टि कर दे तो सब बिगड़ी बात भी बन जायेगी।

न अचेत, पाप ते डरु रे।
दीनदइआल सगल भैभंजन, सरनि ताहि तुम परु रे॥
बेद पुरान जासु गुन गावत ताको नाम हिए में धरु रे।
पावन नाम जगति में हरि को, सिमरि-सिमरि कसमल सभहरु रे॥
मानसु-देह बहुरि नहिपावै, कछू उपाव मुकति को करु रे।
नानक कहत गाइ करुनामय, भवसागर के पारि उतरु रे॥२४॥

रागु देवगंधारी

यह मनु नैक न कहिओ करै।
सीखु सिखाइ रहिओ अपनी-सी, दुरमति ते न टरै॥
मद माइआ कै भइओ बावरो, हरिजसु नहिं उचरै।
करि परपंचु जगत कउ डहकै, अपनो उदरु भरै॥
सुआन पूछ जिउ होइ न सूधी, कहिओ न कान धरै।
कहु नानक भजु रामनाम नित, जाते काजु सरै॥२५॥

सभ कछु जीवत को बिउहार।
मात पिता भाई सुत बंधू अरु पुनि गृह की नार॥
तन ते प्रान होत जब निआरे टेरत प्रेत पुकार।
आध घरी कोऊ नहिं राखै घरि ते देत निकारि॥
मृगतृसना जिउ जगरचना यह देखहु रिदे विचारि।
कहु नानक भजु रामनाम नित जाते होत उधार॥२६॥

जगत में झूठी देखी प्रीति।
अपने ही सुख सिउ सभ लागे, किआ दारा किआ मीत॥
मेरौ मेरौ सभै कहत हैं हित सिउ बांधिओ चीत।
अंतकाल संगी नहि कोऊ, इह अचरज है रीत॥
मन मूरख अजहू नहि समझत, सिखदै हारिओ नीत।
नानक भउजल-पारि परै, जो गावै प्रभु के गीत॥२७॥

---

२४. परु = पड़ रह, चलाजा। कसमल = पाप।

२५. उचरै = कहता है। डहकै = ठगता है। सरै = बने।

२६. रिदे = हृदय में। उधार = उद्धार, मोक्ष।

२७. किआ = क्या। दारा = स्त्री। हित ... चीत = मन को प्रेम में फँसा लिया। नीत = नीति की, हितकरी; नित्य। गीत = गुण-गान।

राग रामकली

साधो, कउन जुगति अब कीजै।
जाते दुरमति सकल बिनासै, रामभगति मनु भीजै॥
मनु माइआ में उरझि रहिओ है, बूझै नहिं कछु गिआना।
कउन नामु जग जाके सिमरै पावै पदु निरबाना॥
भए दइआल कृपाल संतजन तब इह बात बताई।
सरब धरम मानो तिह कीए जिह प्रभ-कीरति गाई॥
रामनाम नर निसिबासुर में निमख एक उर धारै।
जम को त्रासु मिटै नानक तिह, अपुनो जनम सवारै॥२८॥

रागु सारंग

हरि बिनु तेरो को न सहाई।
काकी मात पिता सुत बनिता, को काहू को भाई॥
धनु धरनी अरु संपति सगरी जो मानिओ अपनाई।
तन छूटै कछु संग न चालै, कहा ताहि लपटाई॥
दीनदइआल सदा दुखभंजन ता सिउ रुचि न बढ़ाई।
नानक कहत जगत सभ मिथिआ ज्यों सुपना रैनाई॥२९॥

रागु जैजावंती

राम सिमर राम सिमर इहै तेरौ काज है।
माइआ को संगु तिआगि, प्रभजू की सरनि लागि,
जगत-सुख मानु मिथिआ, झूठो सब साजु है॥
सुपने जिउ धनु पिछानु, काहे पर करत मानु,
बारू की भीत जैसे बसुधा को राजु है।
नानक जन कहत बात बिनसि जैहै तेरो गात,
छिनु-छिनु करि गइओ कालु तैसे जातु आजु है॥३०॥

---

२८. भीजै = भींगे, विभोर हो जाये। निरबाना = मोक्ष। सरब ... गाई = मानो उसने सब धर्म-कर्म कर लिये जिसने प्रेम से परमात्मा का गुण-गान किया। निमख = निमिष, पल। सवारै = सुधार लेता है।

२९. को = कोई भी। जो मानिओ अपनाई = जिसे अपनी मान बैठा था। रुच = प्रीति। रैनाई = रात का।

३०. मानु = गर्व। बारू = बालू, रेत; ज़रा में ढह जाने वाली। भीत = दीवार। जातु = बीत रहा है।

राम भजु राम भजु जनमु सिरातु है।
कहों कहा बारबार, समझत नहिं किउ गवार,
बिनसत नहिं लगै बार ओरे समु गातु है॥
सगल भरम डारि देहि, गोबिंद को नाम लेहि,
अंति बार संग तेरे इहै एकु जातु है।
बिखिआ बिख जिउ बिसारि, प्रभ को जसु हिए धार,
नानक जन कहि पुकार अउसरु बिहातु है॥३१॥

रागु आसा

बिरथा कहउ कउन सिउ मन की।
लोभि ग्रसिओ दसहू दिस धावत, आसा लागिओ धन की॥
सुख कै हेत बहुतु दुखु पावत सेव करत जन-जन की॥
दुआरहि दुआरि सुआनु जिउ डोलत नहि सुध राम भजन की॥
मानस-जनमु अकारथ खोवत लाज न लोक-हसन की॥
नानक हरि जसु किउ नहीं गावत कुमति बिनासै तन की॥३२॥

रागु बसंत

साधो, इह तनु मिथिआ जानो।
इआ भीतरि जो राम बसतु है, साचो ताहि पछानो॥
इहु जग है संपति सुपने की, देखि कहा ऐंड़ानो।
संगि तिहारै कछू न चालै, ताहि कहा लपटानो॥
असतुति निंदा दोऊ परिहर हरि-कीरति उर आनो।
जन नानक सभ ही में पूरन एक पुरख भगवानो॥३३॥
पापी हियै मैं काम बसाइ। मनु चंचलु इआ ते गहिओ न जाइ॥
जोगी जंगम अरु संनिआसि। सभ ही परि डारी इह फाँसि॥

---

३१. सिरातु है = बीता जाता है। किउ = क्यों। गवार = गँवार, मूर्ख। ओरे सम = ओले की तरह। गातु = शरीर। बिखिआ-विखजिउ = विषयों को विष की तरह। बिहातु है = बीत रहा है।

३२. बिरथा ... मन की = व्यर्थ किससे इस मन की बात कहूँ? सेव = सेवा-खुशामद। सुआनु जिउ = कुत्ते की तरह। लोकहसन की = दुनिया के हँसी उड़ाने की। किउ = क्यों।

३३. इआ = या, इस। पछानो = पहचानो। ऐंड़ानो = गर्व किया। एक पुरख = केवल अकाल पुरुष।

जिहि-जिहि हरि को नामु सम्हारि। ते भवसागर उतरे पारि॥
जन नानक हरि की सरनाइ। दीजै नामु, रहै गुन-गाइ ॥३४॥

माई, मैं धनु पाइओ हरिनामु।
मनु मेरो धावन ते छूटिओ, करिं बैठो बिसरामु॥
माया ममता तन ते भागी उपजिओ निरमल गिआन।
लोभ मोह एह परसि न साकैं, गही भगति भगवान॥
जनम जनम का संसा चूका रतनु नाम जब पाइआ।
तृसना सकल बिनासी मन ते, निजसुख माहिं समाइआ॥
जाकउ होत दहआलु कृपानिधि सो गोबिंद गुन गावै।
कहु नानक इह बिधि की संपै कोऊ गुरमुखि पावै ॥३५॥

रागु मारू

हरि को नामु सदा सुखदाई।
जाको सिमरि अजामिल उधरिओ गनका हू गति पाई॥
पंचाली को राजसभा में रामनाम सुधि आई।
ताको दूखु हरिओ करुनामय अपनी पैज बढ़ाई॥
जिह नर जसु गाइओ किरपानिधि ताको भइओ सहाई।
कहु नानक मैं इही भरोसै गही आन सरनाई ॥३६॥

रागु तिलंग

हरिजसु रे मना गाइलै जो संगी है तेरो।
अउसरु बीतिओ जात है कहिओ मानिलै मेरो॥
संपति रथ धन राज सिउ अति नेहु लगाइओ॥
काल-फास जब गलि परी सभ भइओ पराओ॥
जानि बूझिकै बावरे तै काजु बिगारिओ॥
पाप करत सकुचिओ नहीं नहीं गरबु निवारिओ॥

---

३४. गहिओ न जाइ = क़ाबू में नहीं आता है। सम्हारि = स्मरण किया।

३५. माई = हे सखी। धावन ते = तृष्णा के कारण इधर-उधर चक्कर काटने से। परसि न साकैं = छू भी नहीं सकते। संसा चूका = संशय अर्थात् अज्ञान दूर हो गया। निजसुख = आत्मानन्द। संपै = संपदा। कोऊ गुरमुखि = विरले पवित्रात्मा।

३६. उधरिओ = उद्धार पा गया, मुक्त हो गया। गति = मोक्ष। पंचाली = द्रौपदी। पैज = प्रण, टेक। आन = आकर।

जिह बिधि गुर उपदेसिओ सो सुन रे भाई ॥
नानक कहत पुकारिकै गहु प्रभु सरनाई ॥३७॥

सलोक

गुन गोबिंद गाइओ नहीं, जनमु अकारथ कीन।
कहु नानक हरि भजु मना, जिहि बिधि जल कौ मीन ॥१॥

बिखिअन सिउ काहे रचिओ, निमिख न होहि उदास।
कहु नानक भजु हरि मना, परै न जम की फास ॥२॥

तरनापो योंही गइओ, लिइओ जरा तनु जीति।
कहु नानक भजु हरि मना, अउधि जाति है बीति ॥३॥

बिरध भइओ सूझै नहीं, काल पहूचिओ आन।
कहु नानक नर बावरे, किउ न भजै भगवान ॥४॥

पतित-उधारन भै-हरन, हरि अनाथ के नाथ।
कहु नानक तिह जानिहो सदा बसतु तुम साथ ॥५॥

तनु धनु जिह तोकउ दिओ, तासिउ नेहु न कीन।
कहु नानक नर बावरे, अब किउ डोलत दीन ॥६॥

सभ सुखदाता रामु है, दूसर नाहिंन कोइ।
कहु नानक सुनि रे मना, तिह सिमरत गति होइ ॥७॥

जिह सिमरत गति पाइए, तिहि भजु रे तैं मीत।
कहु नानक सुन रे मना, अउधि घटति है नीत ॥८॥

घटि घटि मै हरिजू बसै, संतन कहिओ पुकारि।
कहु नानक तिह भजु मना, भउनिधि उतरहि पारि ॥९॥

सुख दुख जिह परसै नही, लोभ मोह अभिमान।
कहु नानक सुन रे मना, सो मूरत भगवान ॥१०॥

---

३७. नहि गरबु निवारिओ = अभिमान दूर नहीं किया।
३. तरनापो = तरुणाई, जवानी। जरा = बुढ़ापा। अउधि = अवधि, आयु।
४. विरध = वृद्ध।
७. गति = सद्गति, मुक्ति।
८. नीत = नित्य।
९. भउनिधि = संसार-समुद्र।
१०. परसै नहीं = छूता भी नहीं।

उसतति निंदा नाहिं जिहि, कंचन लोह समान।
कहु नानक सुन रे मना, मुकत ताहि तैं जानि ॥११॥
हरख सोग जाके नहीं, बैरी मीत समान।
कहु नानक सुन रे मना, मुकत ताहि तैं जान ॥१२॥
भै काहूकउ देत नहिं, नहिं भै मानत आनि।
कहु नानक सुन रे मना, गिआनी ताहि बखानि ॥१३॥
जिहि माइआ ममता तजी, सभते भइओ उदास।
कहु नानक सुन रे मना, तिह घटि ब्रहम-निवास ॥१४॥
भै-नासन दुरमति-हरन, कलि में हरि को नाम।
निसदिन जो नानक भजै, सफल होहि तिह काम ॥१५॥
जिहवा गुन गोबिंद भजहु, करन सुनहु हरिनाम।
कहु नानक सुन रे मना, परिह न जम कै धाम ॥१६॥
जो प्रानी ममता तजै, लोभ मोह अहँकार।
कहु नानक आपन तरै, औरन लेत उधार ॥१७॥
जैसे जल ते बुदबुदा, उपजै बिनसै नीत।
जगरचना तैसे रची, कहु नानक सुन मीत ॥१८॥
जो सुख को चाहै सदा, सरनि राम की लेह।
कहु नानक सुन रे मना, दुरलभ मानुख-देह ॥१९॥
जो प्रानी निसि दिनि भजै, रूप राम तिह जानु।
हरिजन हरि अंतरु नहीं, नानक साची मानु ॥२०॥
मनु माइआ में फंधि रहिओ, बिसरिओ गोबिंद नाम।
कहु नानक बिनु हरिभजन, जीवन कउने काम ॥२१॥

---

११. उसतति = स्तुति, प्रशंसा। मुकत = जीवन्मुक्त।

१३. आनि = दूसरों से।

१४. उदास = अनासक्त।

१६. करन = कान से। परहि न जम कै धाम = मृत्यु भय से छुटकारा पा जाता है।

१८. बुद-बुदा = बुलबुला। नीत = नित्य, सदा।

२०. रूप राम तिह जानु = उसे राम का ही रूप समझो।

२१. फँधि रहिओ = फँदे में पड़ गया।

सुख में बहु संगी भए, दुख में संगि न कोइ।
कहु नानक हरि भजु मना, अंति सहाई होइ ॥२२॥

जतन बहुत मैं करि रहिओ, मिटिओ न मन को मान।
दुरमति सिउ नानक फँधिओ, राखि लेह भगवान ॥२३॥

मन माइआ में रमि रहिओ, निकसत नाहिन मीत।
नानक मूरति चित्र जिउ, छाड़त नाहिन भीत ॥२४॥

जतन बहुत सुख के किए, दुख को किओ न कोइ।
कहु नानक सुन रे मना, हरि भावै सो होइ ॥२५॥

झूठै मानु कहा करै, जगु सुपने जिउ जान।
इनमें कछु तेरो नहीं, नानक कहिओ बखान ॥२६॥

जिह घटि सिमरनु राम को, सो नरु मुकता जानु।
तिह नर हरि अंतरु नहीं, नानक साची मानु ॥२७॥

सिरु कंप्यो पगु डगमगै, नैन जोति ते हीन।
कहु नानक इह बिधि भई, तऊ न हरिरस लीन ॥२८॥

राम गइओ रावनु गइओ, जाको बह परिवार।
कह नानक थिरु कछु नहीं, सुपने जिउ संसार ॥२९॥

चिंता ताकी कीजिए, जो अनहोनी होइ।
इह मारगु संसार को, नानक थिरु नहिं कोइ ॥३०॥

जो उपजिओ सो विनसिहै, परो आजु के काल।
नानक हरिगुन गाइले, छाड़ि सगल जंजाल ॥३१॥

संग सखा सभ तजि गए, कोऊ न निबहिओ साथ।
कहु नानक इह बिपत में, टेक एक रघुनाथ ॥३२॥

●

---

२३. फँधिओ = फँस गया।
२४. भीत = दीवार।
२७. मुकता = मुक्त।
२८. इह बिधि भई = ऐसी दुर्दशा हो रही है। हरिरस = प्रभु के नाम-स्मरण का आनन्द।
३१. परो = परसों। सगल = सकल, सारा।

शेख फ़रीद

चोला-परिचय

जन्म-काल—अनिश्चित
पिता—ख्वाजा शेख मुहम्मद
निवास-स्थल—अजोधन (पाकपट्टन)
भेष—गृहस्थ
मृत्यु-काल—९६० हिजरी, २१ रजब (सन् १५५२)

असल नाम इनका शेख बिरहम या इब्राहीम था। पाकपट्टन के आदि फ़रीद हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन मसऊद शकरगंज के यह वंशज थे, और फ़रीद इनकी उपाधि थी। इन्हें फ़रीद सानी अर्थात् फ़रीद द्वितीय भी कहते हैं। शेख बिरहम कलां, बलराजा, शेख बिरहम साहब और शाह बिरहम नामों से भी यह प्रसिद्ध हैं।

आदि फ़रीद याने हज़रत बाबा फ़रीदुद्दीन ईसा की तेरहवीं शती में विद्यमान थे। यह बहुत बड़े पहुँचे हुए सूफ़ी फ़कीर थे। दिल्ली के सुप्रसिद्ध हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया इनको अपना गुरु मानते थे। निज़ामुद्दीन ने इनकी प्रशंसा में एक बार कहा था—

"मेरे पीर पवित्रात्मा मौलाना फ़रीद हैं;
उनके समान परमेश्वर ने इस लोक में दूसरा नहीं सिरजा।"

हमारे यह द्वितीय फ़रीद या शेख बिरहम उनकी ११वीं पीढ़ी में आते हैं। आदिगुरु बाबा नानक के साथ इन्हीं का सत्संग हुआ था, और गुरु ग्रन्थ साहिब में इन्हीं फ़रीद के २ पदों और १३० सलोकों का संग्रह मिलता है।

आदि फ़रीद की तरह यह भी ऊँची गति के महात्मा थे। इनके अनेक चमत्कारों की भी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। एक कथा है कि एक रात को एक चोर इनके घर में चोरी करने आया, और वह अंधा हो गया। सवेरा होते ही उसने शेख साहब से माफ़ी माँगी, और प्रतिज्ञा की कि आगे वह कभी ऐसा बुरा काम नहीं करेगा। शेख बिरहम ने उसके लिए ईश्वर से प्रार्थना की, और उस चोर को फिर से दृष्टि मिल गई।

बाबा नानक दो बार अजोधन में जाकर इनसे मिले थे। इन दोनों महात्माओं का सत्संग प्रसिद्ध है। उस सत्संग में शेख फ़रीद ने कई आध्यात्मिक प्रश्न किये थे और बाबा नानक ने उन्हें उनके उत्तर दिये थे।

कहा जाता है कि शेख बिरहम के दो पुत्र भी थे—शेख ताजुद्दीन महमूद और शेख मुनव्वरशाह शहीद। शेख ताजुद्दीन भी एक ऊँचे फ़कीर थे। शेख बिरहम के कई शार्गिद थे, जिनमें शेख़ सलीम चिश्ती फतेहपुरी बहुत प्रसिद्ध थे।

शेख बिरहम की मृत्यु २१ रजब, ६६० हिजरी सन् में हुई। ४२ बरस तक इन्होंने प्रेम व परमार्थ की अनमोल दौलत को दोनों हाथों से लुटाया, और खूब लुटाया।

बानी-परिचय

शेख फ़रीद की बानी बहुत रसभरी, खूब गहरी, और मरम पर सीधे चोट करने वाली है। उनके कई सलोकों के अंदर गहरा रहस्य भरा हुआ है, और उन्हीं में उसके खोलने की कुंजी भी है। स्वरूप का साक्षात्कार करने के बाद ही इस आध्यात्मिक गहराई और ऊँचाई तक पहुँचा जा सकता है। वैराग्य की भी लहरें शेख फ़रीदने ऊँची-से-ऊँची उठाई हैं। इनका एक-एक शब्द अनूठा है। इनकी प्रेम-प्रीति की मीठी बानी में सूफी-रंग बहुत निखरा हुआ पाया जाता है।

भाषा पंजाबी-हिन्दी है, और बहुत मीठी और रसीली। कहने का ढंग ऐसा, मानों कूजे में समुन्दर भर दिया है। इनकी बानी जब पढ़ते हैं और सुनते हैं, तो तबीअत मस्ती में झूमने लगती है।

आधार

१ गुरुग्रन्थ साहिब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन—मकालीफ़

●

शेख फ़रीद

राग आसा

बोलै सेख फरीदु पिआरे अलह लगे।
इहु तनु होसी खाक निमाणी गोर घरे॥
आजु मिलावा सेख फरीद टाकिम।
कूंजड़ीआ मनहु मचिंदड़ीआ॥
जे जाणा मरि जाईऐ घुमि न आईए।
झूठी दुनिया लगि न आपु वञाईए॥
बोलीए सचु धरमु न झूठु बोलीए।
जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीए॥
छैल लंघदे पारि गोरी मनु धीरिआ।
कंचन वंने पासे कलवति चीरिआ॥
सेख है याती जगि न कोई थिरु रहिआ।
जिसु आसणि हम बैठे केते बैसि गइआ॥
कतिक कूंजां चेति डउ सावणि बिजुलीआं।
सीआले सोहंदीआं पिर गलि वाहड़ीआं॥
चले चलणहार विचारा लेइ मनो।
गढ़ेदिआं छिअ माह तुड़ंदिआ हिकु खिनो॥
जिमी पुछै असमान फरीदा खेवट किंनि गए।
जालण गोरा नालि उलामे जीअ सहे॥१॥

---

१. शेख फ़रीद कहता है—मेरे प्यारे मित्रो! अल्लाह से जोड़लो अपनी प्रीति। यह शरीर तो खाक हो जायेगा, और इसका घर निगोड़ी क़ब्र में जा बनेगा। आज उस प्रीतम से मिलन हो सकता है, शेख फ़रीद, यदि तू उन भावनाओं को क़ाबू में करले, जो तेरे मन को बेचैन कर रही हैं।

यदि मुझे पता होता कि मुझे मरना ही होगा, और फिर यहाँ लौटना नहीं होगा,—

तो इस झूठी दुनिया से प्रीति जोड़कर मैं अपने आपको बर्बाद न कर बैठता।

तू धरम से सच बोल; झूठ न बोल।

जो रास्ता गुरु दिखादे, उसी पर चलना चाहिए शागिर्द को।

रागु सूही

तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरउं। बावलि होइ सो सहु लोरउं॥
तैं सहि मन महि कीआ रोसु। मुझु अवगुन सह नाही दोसु॥
तैं साहिब की मै सार न जानी। जोबनु खोइ पाछे पछतानी॥
काली कोइल तू कित गुन काली। अपने प्रीतम के हउ विरहै जाली॥
पिरहि बिहून कतहि सुखु पाए। जा होइ कृपालु ता प्रभू मिलाए॥
विधण खूही मुंध अकेली। ना कोइ साथी ना कोइ बेली॥
वाट हमारी खरी उडीणी। खंनिअहु तिखी बहुतु पिईणी॥
उसु ऊपरि है मारगु मेरा। सेख फरीदा पंथु सम्हारि सवेरा॥२॥

प्रेमी के रास्ता पार कर लेने पर प्रियतमा को हिम्मत बँध जाती है।
('छैल' या प्रेमी से मतलब यहाँ साधक से है, और 'गोरी' प्रियतमा से आशय है लक्ष्य-सिद्धि करने वाले योगी से।)
तू करौत से चीर दिया जायेगा, यदि कंचन की ओर लुभायेगा।
अय शेख, इस दुनिया में कोई भी हमेशा रहने वाला नहीं;
जिस पीढ़े पर हम बैठे हुए हैं, उस पर कितने बैठ चुके हैं!
जैसे कुलंग कातिक में आते हैं, चैत में दावानल देखने में आता है, और सावन में बिजलियाँ कौंधती दिखाई देती हैं,—
और जाड़ों में जैसे कामिनी अपने प्रीतम के गले में बाहें डाल लेती है,
ऐसे ही सब (क्षणभर को) आते और फिर चल देते हैं; इस (सत्य) पर तू अपने मन में विचार कर।
मनुष्य के गढ़े जाने में तो लगते हैं छह मास, और टूट जाता है वह एक क्षण में।
(अर्थात्, गर्भ में मनुष्य की आकृति छह महीने में बनती है।)
ज़मीन ने आसमान से पूछा—फ़रीद कहता है—कितने खेनेवाले, पार लगाने वाले (धार्मिक मार्ग-दर्शक) चले गये!
कुछ तो जल-बलकर खाक हो गये, और कुछ क़ब्रों में पड़े हुए हैं, और उनकी रूहें झिड़कियाँ झेल रही हैं।

२. विरह-ज्वर से मेरा अंग-अंग जल रहा है, और मैं अपने हाथों को मरोड़ती हूँ;
प्रीतम से मिलन की लालसा ने मुझे बावली बना दिया है।
प्यारे, तू अपने मन में मुझसे रूठ गया था;
सो इसमें मेरा ही दोष था प्यारे, तेरा नहीं।
मेरे स्वामी, मैंने तेरे गुणों को पहचाना नहीं;
मैंने अपना जोवन गवाँ दिया और बहुत पीछे पछताई।

सलोक

जितु दिहाड़ै धनवरी साहे लए लिखाइ।
मलकु जिकंनी सुणीदा मुहु देखाले आइ॥
जिंदु निमाणी कढीऐ हडा कूं कड़काइ।
साहे लिखे न चलनी जिंदू कूं समझाइ॥
जिंदु वहूटी मरणु वरु लैजासी परणाइ।
आपण हथी जोलिकै कै गलि लगै धाइ॥
वालहु निकी पुरसलात कंनी न सुणीआइ।
फरीदा किड़ी पवंदई खड़ा न आपु मुहाइ॥१॥

किझु न बुझै किझु न सुझै दुनीआ गुझी भाहि।
साईं मैरे चंगा कीता नाही त हंभी दभां आहि॥२॥

री काली कोयल, तू किस कारण काली हुई?
'अपने प्रीतम के विरह में जल-भुनकर;'
अपने प्यारे से विलग होकर क्या किसी को कभी सुख मिला?
उस प्रभु से मिलना उसी की कृपा से बन सकता है।
कुआं यह बहुत दुखदाई है, और वह बेचारी अकेली उसमें जा पड़ी है;
(कुआं अर्थात् संसार; अकेली स्त्री अर्थात् जीवात्मा।)
न उसकी वहाँ कोई सहेली है, न कोई वेली,
मेरी बड़ी ही विकट बाट है;
दोधारी तलवार से भी तेज़ और बहुत पैनी;
उस पर मुझे चलना है;
शेख फ़रीद, तैयार हो जा उस मार्ग पर चलने को—अभी समय है।

१. वह दिन पहले ही लिख दिया गया था, जिस दिन कि धनवती का ब्याह होना था। जिस दूलहे के बारे में सुन रखा था वह अपना मुखड़ा दिखाने आ पहुँचा है। हाड़ों को कड़काकर वह उस बेचारी धनवती को खींचकर अपने साथ ले जायेगा। अपनी जीवात्मा को तू समझा दें, कि जो घड़ी नियत हो चुकी उसे बदला नहीं जा सकता।
जीवात्मा दुलहिन है, और मृत्यु है दूलहा; वह उसे ब्याहकर अपने साथ ले जायेगा। विदा होते समय, वह बेचारी किसके गले में अपनी बाहें डालेगी?
क्या तुमने सुना नहीं कि वह दुलहिन बाल से भी कहीं अधिक महीन है?
फ़रीद, जब तेरा बुलावा आये, उठकर खड़ा हो जाना, और अपने आपको धोखा न देना।

२. मैं न कुछ जानता हूँ, न कुछ देखता हूँ—दुनिया यह गोया धधकती हुई आग है; मेरे साईं ने अच्छा किया कि मुझे चेता दिया, नहीं तो मैं भी इसमें जलबल गया होता।

फरीदा जे तू अकलि लतीफ काले लिखु न लेखु।
आपनड़े गिरीवान महि सिरु नीवां करि देखु ॥३॥

फरीदा जो तैं मारनि मुकीआं तिन्हा न मारे घुंमि।
आपनड़े घरि जाईऐ पैर तिन्हादे चुंमि ॥४॥

फरीदा जां तउ खटण वेल तां तूरता दुनी सिउ।
मरग सवाई नीहि जां भरिआ तां लदिआ ॥५॥

देखु फरीदा जु थीआ दाड़ी होई भूर।
अगहु नेड़ा आइआ पिछा रहिआ दूर ॥६॥

देखु फरीदा जु थीआ सकर होई विसु।
साई बाझहु आपणे वेदणु कहीऐ किसु ॥७॥

फरीदा कालीं जिन्ही न राविआ धउली रावै कोइ।
करि साई सिउ पिरहड़ी रंगु नवेला होइ ॥८॥

---

३. फ़रीद, अगर तू तेज़ अक्ल रखता है, तो (दूसरों के खिलाफ़) काले अंक मत लिख।
अपना सिर झुकाकर तू तो अपने ही गरीवां की तरफ़ देख।
(मतलब यह कि दूसरों के दोष मत देख; तू तो अपने दिल को देख कि उसमें कितने क्या दोष भरे पड़े हैं।)

४. फ़रीद, अगर लोग तुझे मुक्कों से मारे, तो बदले में तू उन्हें मत मार; तू तो उनके क़दमों को चूमकर अपने घर चला जा।

५. फ़रीद, जब तेरे कमाने के दिन थे, तब तो तू दुनिया के रंग में रँगा हुआ था।
मौत की नींव मजबूत है; खेप के भरते ही लादनहार लेकर चल देगा।
(मतलब यह कि आखिरी साँस पूरी हुई कि मौत उसी पल जीव को खींचकर ले जायेगी।)

६. फ़रीद, देख तो ज़रा, यह क्या हुआ—तेरी दाढ़ी सफेद हो गई;
आगा तेरा नज़दीक है, और पीछा दूर छूट गया।

७. फ़रीद, देख तो ज़रा यह क्या हुआ—शक्कर भी विष हो गई।
अपने स्वामी को छोड़ अब मैं और किसे अपना दुखड़ा सुनाऊँ?

८. क्या किसी नारी ने, जब उसके केश काले थे स्वामी के साथ रमण न कर, तब रमण किया, जब कि उसके केश पककर श्वेत हो गये?
खैर, साईं से तू अब भी प्रीति कर, जिससे कि तेरे केशों का रंग फिर से नया हो जाये।
('रंगन वेला' भी एक पाठ है—जिसका अर्थ यह हुआ कि यही स्वामी के साथ रंग खेलने का याने प्रेम करने का समय है।)

फरीदा जिन्ह लोइण जगु मोहिआ से लोइण मै डिठु।
काजल रेख न सहदिआ से पंखी सूइ बहिठु ॥९॥

फरीदा खाकु न निंदीऐ खाकू जेडु न कोइ।
जीवदिया पैरा तलै मुइआ ऊपरि होइ ॥१०॥

फरीदा जा लबु त नेहु किआ लबु त कूड़ा नेहु।
किचरु झति लघाईऐ छपरि तुटै मेहु ॥११॥

फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि।
वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि ॥१२॥

फरीदा इनी निको जंघीऐ थल डूगर भविओम्हि।
अजु फरीदै कूजड़ा सै कोहां थीओमि ॥१३॥

फरीदा राती बडीआं धुखि धुखि उठनि पास।
धिगु तिन्हादा जीविआ जिन्हा बिडाणी आस ॥१४॥

फरीदा गलीए चिकडु दूरि घरु नालि पिआरे नेहु।
चला त भीजै कंबली रहां त तुटै नेहु ॥१५॥

---

९. फ़रीद, मैंने उन नयनों को देखा है, जिन्होंने दुनिया को मोह लिया था—जो काजल की रेख भी सहन नहीं करते थे; अब चिड़ियाँ उनमें अपने अंडे रख रही हैं।

१०. फ़रीद, मत खाक की निंदा कर, खाक के बराबर कोई चीज़ नहीं;
जीते जी वह हमारे पैरों के तले रहती है, और हमारे मरने पर हमारे ऊपर।

११. फ़रीद, जहाँ लोभ है, वहाँ प्रेम कहाँ से होगा? लोभ होगा तो प्रेम वहाँ झूठा होगा।
टूटे छप्पर के नीचे मेह में तू आखिर कितने दिन गुजारेगा?

१२. फ़रीद, शाखों और काँटों को तोड़ता हुआ एक जंगल से दूसरे जंगल में तू क्यों भटकता फिरता है?
रब तो तेरे हिये में बस रहा है; फिर जंगल में उसे तू क्यों ढूँढ रहा है।

१३. फ़रीद, इन पतली जाँघों व पिंडलियों से कितने ही मैदानों और पहाड़ों को मैंने तय किया।
पर, आज फ़रीद के लिए अपना कूजा उठाना भी मानों सैंकड़ों कोसों की मंज़िल तय करना हो गया।

१४. फ़रीद, रातें लंबी हो गईं; पसलियों में हूक उठ रही हैं—दर्द से करवटें बदलनी पड़ रहीं हैं।
धिक्कार है उनके जीने को, जो बिरानी आस में जी रहे हैं।

१५. फ़रीद, गलियों में कीचड़-ही-कीचड़ है; और प्यारे का घर, जिससे कि मैंने प्रीति जोड़ी है, दूर है;

भिजउ सिजउ कंबली अलह वासहु मेहु।
जाइ मिला तिन्हा सजणा तुटउ नाही नेहु ॥१६॥

फरीदा मैं भोलावा पगडा मत मैली होइ जाइ।
गहिला रूहु न जाणई सिरु भी मिटी खाइ ॥१७॥

फरीद सकर खंडु निवात गुडु माखिउ मांझा दुधु।
सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु ॥१८॥

फरीद रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख।
जिन्हा खाधी चोपड़ी घणे सहनिगे दुख ॥१६॥

आजु न सूती कंत सिउ अंगु मुड़े मुड़ि जाइ।
जाइ पुछहु डोहागणी तुम किउ रैणि बिहाइ ॥२०॥

जोवन जांदे ना डरां जे सह प्रीति न जाइ।
फरीदा किती जोबन प्रीति बिनु सूकि गए कुमलाइ ॥२१॥

फरीदा ए विसु गंदला धरीआं खंडु लिवाड़ि।
इकि राहेदे रहि गए इकि राधी गए उजाड़ि ॥२२॥

अगर मैं उसके पास जाऊँ तो मेरी कंबली भीग जायेगी; और मैं अपने घर रहूँ तो मेरी प्रीति टूट जायेगी।

१६. अल्लाह, भले ही तू मेह बरसाये, और मेरी कंबली को भिगो-भिगोकर तर कर दे, फिर भी अपने प्यारे साजन से मेरा मिलना होकर रहेगा, ताकि हमारी प्रीति न टूटे।

१७. फ़रीद, मैं डरता हूँ कि कहीं मेरी पगड़ी मिट्टी से मैली न हो जाये;
मेरा बावला जी यह नहीं जानता कि पगड़ी तो क्या मेरे इस सिर को भी यह मिट्टी सड़ा-गलाकर खा जायेगी।

१८. फ़रीद! शक्कर, खांड, कंद, गुड़ और शहद और भैंस का दूध,–
ये सभी चीजें मीठी हैं, पर अय मेरे रब, उतनी मीठी नहीं, जितना कि तू मीठा है।

१६. मेरी काठ की जैसी तो रोटी है, और लावण (तरकारी या चटनी) है मेरी भूख।
जो घी-चुपडी खाते हैं, उन्हें बहुत दुख उठाना पड़ेगा।

२०. गई रात को मैं अपने स्वामी के साथ नहीं सोई; मेरा-अंग अंग मरोड़ा ले रहा है।
किसी दोहागिन (परित्यक्ता) से जाकर पूछ कि 'तू रात कैसे काटती है?'

२१. यौवन जाने से मैं नहीं डरती, यदि उसके साथ प्रीतम की प्रीति न जाये; फ़रीद, कितनी बार बिना प्रीति के यौवन सूख गया, कुम्हला गया!

२२. फ़रीद, ये (संसारी) सुख खांड से चुपड़े विष के अँकुरे हैं;
कुछ तो उनको रोपते हुए ही चल बसे; और कुछ उजड़ गये उन्हें चुनते हुए।

फरीदा दरि दरवाजै जाइकै किउ डिठो घड़ीआलु।
एहु निदोसां मारीऐ हम दोसा दां किआ हालु ॥२३॥

घड़ीए घड़ीए मारीए पहरी लहै सजाइ।
सो हेड़ा घड़ीआल जिउ डुखी रैणि बिहाइ ॥२४॥

बुढा होआ सेख फरीदु कंबणि लगी देह।
जे सउ वर्हिआ जीवणा भी तनु होसी खेह ॥२५॥

फरीदा बारि पराइऐ बैसणा साई मुझै न देहि।
जो तू एवै रखसी जीउ सरीरहु लेहि ॥२६॥

फरीदा इकना आटा अगला इकना नाही लोणु।
अगै गए सिंञासपन्हि चोटां खासी कोणु ॥२७॥

पासि दमामे छतु सिरि भेरी सडो रड।
जाए सुते जीराण महि थीए अतीमा गड ॥२८॥

फरीदा कोठे मंडप उसारे दे भी गए।
कूड़ा सउदा करि गए गोरी आइ पए ॥२९॥

---

२३. फ़रीद, न्यायालय के दरवाज़े पर जब तू गया, तब तूने क्या उस घड़ियाल को नहीं देखा था?
जब उस बेगुनाह को वहाँ इस तरह पीटा जाता है, तब हम गुनहगारों का क्या हाल होगा?

२४. घड़ी-घड़ी उस पर मार पड़ती, और हर पहर उसे पूरी सज़ा मिलती है; ऐसे ही घड़ियाल की तरह यह देह दरदभरी रैन काटती है।

२५. शेख फरीद अब बुढ्ढा हो गया, और देह उसकी लड़खड़ाने लगी है,
वह यदि सौ बरस भी जीये, तो भी उसकी देह को तो आख़िर खाक में ही मिलना है।

२६. साईं, मुझे किसी दूसरे के दरवाज़े पर न बिठाना, न मँगवाना;
अगर तू ऐसा ही कराना चाहे, तो उससे पहले ही मेरे प्राणों को देह से निकाल लेना।

२७. फ़रीद, किसी के पास तो बहुत सारा आटा है, और किसी के पास नमक भी नहीं;
यह तो उन सबके यहाँ से जाने के बाद ही मालूम हो सकेगा कि सज़ा किसे मिलेगी।

२८. जिनके साथ नगाड़े और तुरही बजते थे, जिनके सिर पर राज-छत्र रहते थे, और जिनकी विरुदावली चारण गाते थे—
वे क़ब्रस्तान में सोने के लिए चले गये, और वहाँ ग़रीब यतीमों की तरह दफ़ना दिये गये,

२९. फ़रीद, जिन्होंने मकान, हवेलियाँ और ऊँचे-ऊँचे महल बनवाये थे, वे भी चले गये;

फरीदा खिंथड़ि मेखा अंगलीआ जिंदु न काई मेख।
बारी आपो आपणी चले मसाइक सेख॥३०॥

फरीदा कंनि मुसला सूफुगलि दिलि काती गुड़ु बाति।
बाहरि दिसै चानणा दिलि अंधिआरी राति॥३१॥

फरीदा रतीरतु न निकलै जे तनु चीरै कोइ।
जो तन रते रब सिउं तिन तन रतु न होइ॥३२॥

गुरु अमरदास के सलोक

इहु तनु सभो रतु है रतु बिनु तंनु न होइ।
जो सह रते आपणे, तितु तनि लोभु रतु न होइ॥३३॥

वे झूठा सौदा करके गये, और क़ब्र में डाल दिये गये।

३०. फ़रीद अंगरखे में, टिकाऊ बनाने के लिए, बहुत साये टाँके लगा दिये हैं, पर ज़िंदगी में ऐसा कोई टांका नहीं लगा हुआ है;

(मतलब यह कि ऐसी कोई चीज़ नहीं, जो शरीर के पिंजड़े में से प्राण-पक्षियों को उड़ जाने से रोक सके।)

शेख और उनके शागिर्द, जब जिसकी बारी आई, सब चले गये।

३१. फ़रीद, वे कंधे पर मुसल्ला रखते हैं, सूफ़ी की कफ़नी पहनते हैं, और मीठी-मीठी बातें करते हैं, पर दिलों में वे छूरी रखते हैं;

बाहर तो वे चाँदनी फैलाते रहते हैं, मगर दिलों में उनके काली अँधेरी रात झुक रही है।

३२. फ़रीद कहता है—अगर कोई मेरे इस शरीर को चीरे तो इसमें से रत्तीभर भी रक्त नहीं निकलेगा;

जो शरीर रब के रंग में रंग गया है, उसमें फिर रक्त नहीं रहता।

इस पर गुरु अमरदास ने यह टीका की है:—

३३. "शरीर यह सारा ही रक्त है; बिना रक्त के शरीर रह नहीं सकता;

पर जो शरीर प्रभु के रंग में रंग गया है, उसमें लोभरूपी रक्त नहीं रहता।

जब प्रभु का भय अंतर में समा जाता है, तब शरीर क्षीण पड़ जाता है, और उसमें से लोभरूपी रक्त ग़ायब हो जाता है।

जैसे आग में डालने से धातु शुद्ध हो जाती है, वैसे ही हरि का भय दुर्वासनाओं का मैल काट देता है

नानक, वही मनुष्य सुन्दर है, जिसने अपना चोला प्रभु के रंग में रँग लिया है।"

भै पइऐ तनु खीणु होइ लोभ रतु बिचहु जाइ।
जिउ वैसंतरि धानु सुधु होइ,
तिउ हरि का भउ दुरमति मैलु गवाइ।
नानक ते जन सोहणे जि रते हरि रंगु लाइ ॥३४॥

शेख फरीद के सलोक

फरीदा सोई सरवरु ढूढि लहु जिथहु लभी वथु।
छपहि ढूढै किआ होवै चिकड़ि डूबै हथु ॥३५॥

फरीदा सिरु पलिआ दाड़ी पली मुछां भी पलीआं।
रे मन गहिले बावले माणहि किआ रलीआं ॥३६॥

फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ एतु न लाए चित्तु।
मिटी पई अतोलवी कोइ न होसी मित्तु ॥३७॥

फरीदा मंडप मालु न लाइ, मरग सताणी चित्ति धरि।
साई जाइ सम्हालि, जिथैं ही तउ वंञणा ॥३८॥

फरीदा काले मैडे कपड़े काला मैडा वेसु।
गुनही भरिआ मै फिरा लोकु कहै दरवेसु ॥३९॥

जां कुआरी तां चाउ वीवाही तां मामले।
फरीदा एहो पछोताउ पति कुमारी ना थीऐ ॥४०॥

---

३४. फ़रीद, तू तो उस सरोवर को ढूँढ़ले, जहाँ कि सच्ची वस्तु तेरे हाथ आ जाये;
पोखरे में ढढोलने से क्या मिलेगा; कीचड़ में ही सनेगा।

३६. फ़रीद, तेरे सिर के बाल पक गये, दाढ़ी और मूछें भी सफ़ेद हो गईं;
अय मेरे लापर्वाह और बावले मन, क्यों तू दुनिया की रंगरेलियों में पड़ा हुआ है?

३७. फ़रीद, इन मकानों, हवेलियों और ऊँचे-ऊँचे महलों में मत लगा अपने मन को;
जब तेरे ऊपर बिनतोल मिट्टी पड़ेगी, तब वहाँ तेरा कोई भी मीत नहीं होगा।

३८. फ़रीद, हवेलियों और दौलत में अपना दिल न लगा; तू क़ब्र का ध्यान कर—
याद कर उस जगह को, जहाँ तुझे जाना ही होगा।

३९. फ़रीद, काले मेरे कपड़े हैं, और काला ही मेरा भेष है;
मैं तो फिर रहा हूँ गुनाहों से भरा हुआ, और लोग कहते हैं मुझे दरवेश!

४०. जब तक वह कुवाँरी है, तभी तक उसमें उछाह है; ब्याह होते ही आफतों में पड़ जाती है।

चलि चलि गईआं पंखिआ जिनो वसाये तल।
फरीदा सरु भरिआ भी चलसी थके कवल इकल ॥४१॥

फरीदा ईंट सिराणे भुइ सवणु कीड़ा लड़िओ मासि।
केतड़िआ जुग वापरे इकतु पइआ पासि ॥४२॥

उठु फरीदा उजू साजि सुबह निवाज गुजारि।
जो सिरु साईं ना निवै सो सिरु कपि उतारि ॥४३॥

जो सिरु साईं न निवै सो सिरु कीजै कांइ।
कुंने हेठि जलाईऐ बालण संदै थाइ ॥४४॥

फरीदा किथै तैडे मा पिआ जिन्ही तू जणिओहि।
तै पासहु ओइ लदि गए तू अजै न पतीणोहि ॥४५॥

फरीदा मै जानिआ दुखु मुझकू दुखु सबाइऐ जगि।
ऊचे चड़िकै देखिआं तां घरि घरि एहा अगि ॥४६॥

फ़रीद, उसे पछताव है कि वह फिर से कुवाँरी नहीं हो सकती।
(विवाह-बन्धन से तात्पर्य है मायाकृत बन्धन से; 'कुमारी' से आशय शुद्ध आत्मा से है।)

४१. वे सब पक्षी, जिनसे कि तालाब आबाद था, उड़ गये;
फ़रीद, यह भरा तालाब भी रहने का नहीं, अकेले कमल ही रहेंगे।
(पक्षी=राजे-महाराजे और उच्च पदाधिकारी। तालाब=संसार। कमल=संतजन।)

४२. फ़रीद, ईंटें तो होंगी तेरात किया, और तू सोयेगा ज़मीन के नीचे; कीड़े तेरे मांस को खायेंगे;
एक ही करवट पड़े-पड़े कितने जुगं बीत जायेंगे तेरे!

४३. उठ, सवेरे, फ़रीद, वजू कर और नमाज़ पढ़;
काटकर फेंक दे उस सर को, जो मालिक के आगे नहीं झुकता।

४४. उस सर को लेकर करेगा क्या, जो रब के आगे नहीं झुकता? ईंधन की बजाये जला दे उसे घड़े के नीचे।

४५. फ़रीद, कहाँ हैं तेरे मां-बाप, जिन्होंने कि तुझे जनम दिया था?
तेरे पास से वे चले गये; आज भी तुझे विश्वास नहीं होता कि दुनिया यह नापायदार है?

४६. फ़रीद, मैं समझता था कि दुख मुझे ही है, मगर दुख तो सारी ही दुनिया को है;
जब ऊँचे चढ़कर मैंने देखा, तब मैंने पाया कि यह आग तो हर घर में लग रही है।

फरीदा तनु सूका पिंजरु थीआ तलीआं खूं डहि काग।
अजै सु रबु न बाहुड़िओ देखु बंदे के भाग ॥४७॥
कागा करंग ढढोलिआ सगल खाइआ मासु।
ए दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आसु ॥४८॥
फरीदा गोर निमाणी सड्डुकरे निघरिआ घरि आउ।
सरपर मैथै आवणा मरणहु ना डरिआहु ॥४९॥
इन्हीं लोइणी देखिदिआ केती चलि गई।
फरीदा लोकां आपो आपणी मै आपणी पई ॥५०॥
कंधी उतै रुखड़ा किचरकु बंन्है धीरु।
फरीदा कचै भांढै रखीऐ किचरु ताई नीरु ॥५१॥
फरीदा निसरवण रहि गए वासा आइआ तलि।
गोरां से निमाणीआ बहसनि रूहां मलि॥
आखीं सेखां बंदगी चलणि अजु कि कलि ॥५२॥
फरीदा दरीआवै कंनै बगुला बैठा केल करै।
केल करेदे हंझ नो अचिंते बाज पए॥

---

४७. फ़रीद, मेरा शरीर सूखकर ठठरी हो गया है; कौए खोखले हिस्सों में चोंच मार रहे हैं; अब तक भी, हाय, मेरा मालिक नहीं आया, देखो तो उसके बंदे का यह दुर्भाग!

४८. कौवो, तुमने मेरी ठठरी को खोज-खोजकर सारा मांस खा डाला; पर इन दो नयनों को चोंच न लगाना, क्योंकि मुझे अब भी अपने प्रीतम के देखने की आस है।

४९. फ़रीद, निगोड़ी क़ब्र बुला रही है, 'अय बेघरवालो, इस घर में आ बसो। 'मेरे यहाँ तो तुम्हें आना ही होगा; मत डरो मौत से।

५०. मेरी इन्हीं आँखों के आगे कितने यहाँ से चले गये! फ़रीद, लोग सब अपनी-अपनी फ़िक्र में है, और मैं अपनी फिक्र में हूँ।

५१. तट पर के वृक्ष कब तक अपना ठौर बनाये रहेंगे? फ़रीद, कच्चे घड़े में तू पानी रखेगा तो वह कब तक उसमें रह सकेगा?

५२. फ़रीद, सारे ही ठौर खाली हो गये; उनमें जो रहते थे, वे नीचे चले गये; निगोड़ी क़ब्रों ने रूहों पर कब्ज़ा कर लिया; अय शेख, बंदगी कर ले (अपने दोस्तों से); तुझे आज या कल कूच करना ही होगा।

५३. फ़रीद, नदी के तीर पर बगुला बैठा हुआ कलोल कर रहा है; उसके कलोल करते समय बाज अचानक उस पर आ झपटता है;

बाज पए तिसु रब दे केलां विसरीआं।
जो मनि चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं ॥५३॥

फरीदा हउ बलिहारी तिन्ह पंखिआ जंगलि जिंना वासु।
कंकरु चुगति थलि वसनि रब न छोड़न्हि पासु ॥५४॥

फरीदा रुति फिरी वणु कंबिआ पतझड़े झड़ि पाहि।
चारे कुंडा ढूंढीआं रहणु किथाऊ नाहि ॥५५॥

फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओनु नाउ।
ऐथै दुख घणेरिआ आगै ठउरु न ठाउ ॥५६॥

फरीदा पिछल राति न जागि ओहि जीवदड़ो मुइओहि।
जेनै रबु विसारिआ त रबि न विसरिओहि ॥५७॥

ढूढेदीए सुहाग कू तउ तनि काई कोर।
जिन्हा ना सुहागणी तिना झाक न होर ॥५८॥

फरीदा दरवेसी गाखड़ी चोपड़ी परीति।
इकनि किनै चालीऐ दरवेसावी रीति ॥५९॥

रब को भेजा बाज जब उस पर झपटता है, वह अपना सारा केल-कलोल भूल जाता है।

रब ऐसी-ऐसी चीज़ कर बैठता है, जिसका मन में ख़याल भी नहीं आता।

५४. फ़रीद, बलिहारी उन पक्षियों पर, जो जंगल में रहते हैं, फल खाते हैं, ज़मीन पर सोते हैं, और रब का आसरा नहीं छोड़ते।

५५. फ़रीद, ऋतु बदल गई हैं, वन लहरा रहा है, पत्तियाँ झड़ने लगी हैं;
मैंने चारों दिशाएँ ढूँढ़ डालीं, पर कहीं भी टिकने को ठौर नहीं मिला।

५६. फ़रीद, भयावने हैं उनके चेहरे, जिन्होंने उस मालिक का नाम भुला दिया;
यहाँ तो उन्हें भारी दुख है ही, आगे भी उनके लिए कोई ठौर-ठिकाना नहीं।

५७. फ़रीद, अगर तू रात के पिछले पहर नहीं जागता, तो तू ज़िंदा भी मरा हुआ है।
तू रब को भुला भी दे, पर रब तुझे भूलने का नहीं।

५८. तू अपने सुहाग को, अपने प्रीतम को खोज रही है, तो तेरे अंदर ज़रूर कोई-न-कोई कमी है;
जिसे सुहागिन कहते हैं वह किसी और की तरफ़ कभी झाँकती भी नहीं।

५९. फ़रीद, दरवेश होना कठिन है; स्वामी के तईं मेरी प्रीति तो ऊपर-ऊपर की ही है।
ऐसे बिरले ही हैं, जो दरवेश के रास्ते पर चलते हैं।

तनु तपै तनूर जिउ बालणु हड बलंन्हि।
पैरी धकां सिरि जुलां जे मूं पिरी मिलन्हि ॥६०॥

गुरुनानक का सलोक

तनु न तपाइ तनूर जिउ बालणु हड न बालि।
सिरि पैरी किआ फेड़िआ अंदरि पिरी निहालि ॥६१॥

फ़रीद के सलोक

सरवर पंखी हेकड़ो फाहीवाल पचास।
इहु तनु लहरी गडु थिआ सचे तेरी आस ॥६२॥

कुवणु सु अखरु कवणु गुणु कवणु सुमणीआ मंतु।
कवणु सु वेसो हउ करी जितु वसि आवै कंतु ॥६३॥

निवणु सुअखरु खवणु गुणु जिहवा मणीआ मंतु।
एत्रै भैणे वैस करि ता वसि आवी कंतु ॥६४॥

मति होदी होइ इआणा, ताण होदे होइ निताणा।
अणहोदे आपु वंडाए, कोई ऐसा भगतु सदाए ॥६५॥

---

६०. शरीर मेरा तन्दूर की तरह तप रहा है, मेरी हड्डियाँ ईंधन की लकड़ी की तरह जल रही हैं;

मेरे पैर अगर थक जायें, तो भी मैं अपने प्रीतम से मिलने सिर के बल चलकर जाऊँगी।

६१. मत तपा अपने शरीर को तंदूर की तरह, और मत जला अपनी हड्डियाँ ईंधन की लकड़ी की तरह;

तेरे सिर और पैरों ने तेरा क्या बिगाड़ा? देख, प्रीतम तो तेरा तेरे अंदर ही है।

६२. तालाब में पक्षी तो अकेला एक है, और फँसाने के जाल हैं पचास; यह शरीर लहरों में डूब रहा है; अय सच्चे मालिक, मुझे अब एक तेरी ही आशा है।

(पक्षी=जीवात्मा। जाल=सांसारिक प्रलोभन।)

६३. वह कौन-सा शब्द है, वह कौन-सा गुण है, वह कौन-सा अनमोल मंत्र है;
मैं कौन-सा भेष धारूँ, जिससे कि मैं अपने स्वामी को बस में कर लूँ?

६४. दीनता वह शब्द है, धीरज वह गुण है, शील वह अनमोल मंत्र है;
तू इसी भेष को धारण कर, बहिन, तेरा स्वामी तेरे बस में हो जायेगा।

६५. प्रभु के ऐसे बिरले भक्त हैं,–
जो, बुद्धिमान होते हुए भी, सरल हैं,
जो, बलवान होते हुए भी, निर्बल हैं,

इक फिका ना गालाइ सभना मै सचा धणी।
हिआउ न कैही ठाहि माणिक सभ अमोलवै ॥६६॥

सभना मन माणिक ठाहणु मूलि म चांगवा।
जे तउ पिरी आसिक हिआउ न ठाहे कहीदा ॥६७॥

●

और, जो, अकिंचन होते हुए भी, अपना सर्वस्व दे डालते हैं।

६६. एक भी अप्रिय बात मुँह से न निकाल, क्योंकि सच्चा मालिक हर प्राणी के अंदर है। किसी के दिल को तू मत दुखा; हर दिल एक अनमोल रतन है,

६७. हर दिल एक रतन है; उसे दुखाना किसी भी तरह अच्छा नहीं; अगर तू प्रीतम का आशिक है, तो किसी के भी दिल को न सता।

स्वामी दादू दयाल

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१६०१ वि.

जन्म-स्थान—अहमदाबाद (गुजरात)

कुल—नागर ब्राह्मण; मतांतर से धुनिया मुसलमान

साधन तथा उपदेश-स्थान—मध्यदेश, जयपुर राज्यान्तर्गत साँभर, आंबेर तथा नराण ग्राम

निर्वाण-संवत्—१६६० वि.

निर्वाण-स्थान—नराणे ग्राम (जयपुर से २० कोस दूर)

स्वामी दादू दयाल की जन्म-कथा ठीक वैसी ही लोक प्रचलित है, जैसी कि कबीरदासजी की जन्म-कथा है। कहते हैं कि लोदीराम नामक एक नागर ब्राह्मण को साबरमती नदी के तट पर एक नवजात बालक बहता हुआ मिला, और उसे उठाकर वह अपने घर ले आया। यही बालक पीछे दादू के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१२ वर्ष की अवस्था में ही दादूजी सत्संग के लिए घर से निकल पड़े। किंतु माता-पिता ने पीछा करके इन्हें पकड़ लिया, और इनका विवाह कर दिया। पर संसारी बंधन इन्हें बाँध नहीं सका। सात बरस बाद यह फिर घर से निकल गये। साँभर पहुँचे, और वहाँ धुनिये का काम करने लगे। इस पर से एक मत यह भी हुआ कि दादू दयाल धुनिये जाति के थे।

दादूजी ने १२ वर्ष तक सतत सहजयोग की कठिन साधना की। निरन्तर भक्ति-रस में लौ-लीन रहने की अति ऊँची अवस्था को इन्होंने प्राप्त कर लिया, और यह अन्तर्मुख हो गये।

दादूजी का दया का अंग तो पराकाष्ठा को पहुँच गया। दया-पारमिता को सहजयोग से प्राप्त कर लिया। लोग इन्हें 'दयाल' के प्यार भरे नाम से पुकारने लगे। दया-दर्शन का एक इनका बड़ा सुन्दर प्रसंग है। एक दिन अपनी कोठरी में यह ध्यान-मग्न बैठे थे। कुछ ईर्ष्यालु ब्राह्मणों ने ईंटों से कोठरी का द्वार चिन दिया। ध्यान से जागने पर द्वार बंद पाया, और जब बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिला तो फिर उसी प्रकार ध्यान लगाकर

बैठ गये। इसी तरह कई दिनों तक यह ध्यानस्थ कोठरी में बंद रहे। लोगों को जब मालूम हुआ तो द्वार खोला, और उन दुष्टों को दंड देना चाहा। दयाल ने दंड देने से मना किया। बोले—"इन लोगों ने तो कोठरी के द्वार को ईंटों से चिनकर अच्छा ही किया था, इनकी कृपा से ही तो इतने दिनों तक मैं भगवान् के ध्यान में लौलीन रहा। धन्य है इनकी कृपा-भावना को।"

संवत् १६४२ में अकबर बादशाह से दादू दयाल फतेहपुर सीकरी में मिले थे। अकबर के पूछने पर कि खुदा की ज़ात, अंग, वजूद और रंग क्या है, इन्होंने जवाब दिया—

"इसक अलाह की जाति है, इसक अलाह का अंग।
इसक अलाह औजूद है, इसक अलाह का रंग।।"

दादू दयाल के यों तो सैकड़ों-सहस्त्रों शिष्य थे, पर १५२ उनके प्रमुख शिष्य थे और उनमें भी ५२ और भी अंतरंग थे, यद्यपि किसी को वे गुरु-दीक्षा नहीं देते थे। उनके महान् त्याग, ऊँचे प्रेम और अथाह दया ने हज़ारों को खींच लिया था। गरीबदास, बखना, रज्जब, सुन्दरदास दादू-सौर-मण्डल के अत्यंत प्रकाशमान नक्षत्र गिने जाते हैं।

दादू-पंथ में सैकड़ों सन्त कवि हुए हैं। बहुत बड़ा साहित्य है इस संप्रदाय का। माधोदास का 'सन्तगुणसागर' जनगोपाल की 'जन्म-लीला' राघौदास की 'भक्तमाल' जग्गाजी की 'भक्तमाल' और जैमल की 'भक्तविरुदावली' दादू-पंथी परंपरा के प्रमुख प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं।

स्वामी दादूजी महाराज ने नराणे ग्राम में संवत् १६६० में देहत्याग किया। इसी स्थान में दादूपंथियों की मुख्य गद्दी है, जिसे दादूद्वारा कहते हैं। दादू-पंथी साधु हाथ में सुमरनी रखते हैं, और आपस में 'सत्तराम' कहकर अभिवादन करते हैं।

बानी-परिचय

दादू दयाल की बानी को कबीरदास की बानी के जोड़ की कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। सगुणपक्ष में भक्त कवियों में जैसे तुलसी और सूर, वैसे ही निर्गुणपक्ष के संत-कवियों में कबीर और दादू। इनकी प्रेमतत्त्व की व्यंजना तो बहुत ही ऊँची और गहरी है। कितने ही शब्दों व साखियों में प्रेम और विरह का निरूपण अत्यंत निर्मल और अनुपम हुआ है। इतने ऊँचे घाट की बानी अन्यत्र बहुत ही कम देखने में आती है। दादू के शब्दों में आप अन्तर को वेधनीवाली सूक्ष्म-से-सूक्ष्म दृष्टि और अमृत-रस से सींचा हुआ स्वानुभव पायेंगे।

अनेक शब्दों व साखियों में कबीर का रंग देखने में आता है, पर कहने का ढंग दादू का अपना है। कबीर को यह गुरुवत् मानते भी थे। इनकी इन दो साखियों को देखिए:—

"जो था कंत कबीर का सोई बर बरिहूँ।
मनसा वाचा कर्मना मैं और न करिहूँ॥
सांचा सबद कबीर का मीठा लागै मोहि।
दादू सुनतां परमसुख केता आनंद होहि॥"

किंतु कबीर की तरह इन्होंने सत्य की राह से भटकाने वाले पंडितों और मुल्लों पर प्रहार नहीं किये। खंडन-मंडन से इन्हें रुचि नहीं थी। संतमत का मंथनकर सद्यः प्रेम-नवनीत ही दया के समभाव से दादू दयाल ने दोनों हाथों से लुटाया है।

भाषा भी इनकी बड़ी जानदार है। अनेक जनपदों के शब्दों का मुक्त प्रयोग इन्होंने किया है। फ़ारसी के भी सैकड़ों शब्द इनकी रसवंती बानी में आये हैं। कुछ पद इनके पंजाबी और गुजराती के भी मिलते हैं।

जैसे एक दीये से सैकड़ों दीयों को जलाते हैं, उसी तरह दादू दयाल की बानी से अलौकिक प्रकाश ले-लेकर अनेक संत कवियों ने साखियों व शब्दों की अमृत प्रसादी लोक में वितरण की है।

आधार

१ श्री स्वामी दादू दयाल की वाणी (अंगबंधू सटीक)—चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी, जोन्सगंज, अजमेर

२ साध-संग्रह अथवा नूतन भक्तमाल—स्वामीबाग, आगरा

२ गरीबदासजी की बानी—स्वामी मंगलदास, श्री स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर

●

स्वामी दादू दयाल

शबद

राग गौड़ी

रांम नांम जिनि छांड़ै कोई, रांम कहत जन निर्मल होइ ॥
रांम कहत सुख संपति सार, रांम नांम तिरि लंघे पार ॥
रांम कहत सुधि बुधि मति पाई, रांम नांम जिनि छाड़हु भाई ॥
रांम कहत जन निर्मल होइ, रांम नांम कढ़ि कुसमल धोइ ॥
रांम कहत को को नहिं तारे, यहु तत दादू प्रांण हमारे ॥१॥

कौण बिधि पाइये रे, मीत हमारा सोइ ॥
पीस पीव परदेस है रे, जबलग प्रगटै नांहिं।
बिन देखे दुख पाइये, यहु सालै मन मांहि ॥
जबलग नैन न देखिये, परगट मिलै न आइ।
एक सेज संगहि रहै, यहु दुख सह्या न जाइ ॥
तबलग नेड़ै दूरि है रे, जबलग मिलै न मोहि।
नैन निकट नहिं देखिये, संगि रहे क्या होहि ॥
कहा करौं कैसे मिलै रे, तलपै मेरा जीव।
दादू आतुर बिरहनी, कारण अपने पीव ॥२॥

राग गौड़ी

अजहुँ न निकसैं प्राण कठोर।
दर्सन बिना बहुत दिन बीते, सुन्दर प्रीतम मोर ॥

---

१. जिनि=मत, नहीं। तिरि लंघै पार=संसार-सागर से तरकर मुक्त हो जाये। कुसमल=कश्मल, पाप। को को नहिं तारे=कौन-कौन नहीं तर गये।

२. मीत=सच्चे मित्र परमात्मा से आशय है। पास पीव परदेश है=निकट अर्थात् अंतर में होते हुए भी वह प्रियतम (अविद्या के कारण) मानों कोसों दूर है। सालै=पीड़ा देता है। नेड़ै=निकट। तलपै=तड़प रहा है। आतुर=अधीर, बेचैन।

चारि पहर चार्‍यौं जुग बीते, रैनि गँवाई भोर।
अवधि गई अजहूँ नहिं आये, कतहूँ रहे चितचोर॥
कबहूं नैन निरखि नहिं देखे, मारग चित वततोर।
दादू ऐसैं आतुर बिरहणि, जैसैं चन्द चकोर॥३॥

बिरहनि कौं सिंगार न भावै, है कोइ ऐसा रांम मिलावै।
बिसरे अंजन मंजन चीरा, बिरह बिथा यहु ब्यापै पीरा॥
नबसत थाके सकल सिंगारा, है कोइ पीड़ मिटावणहारा।
देह ग्रेह नहीं सुधि सरीरा, निसदिन चितवत चात्रिग नीरा॥
दादू ताहि न भावै आंन, रांम बिना भई मृतक समांन॥४॥

तौलग जिनि मारै तूं मोहिं, जौलग मैं देखौं नहिं तोहिं।
इब के बिछुरे मिलन कैसैं होइ, इहि बिधि बहुरि न चीन्है कोइ॥
दीन दयाल दया करि जोइ, सब सुख आनन्द तुमथैं होइ।
जन्म जन्म के बंधन खोइ, देखन दादू अहिनिसि रोइ॥५॥

कैसैं जीवियै रे, सांई संग न पास।
चंचल मन निहचल नहीं, निसदिन फिरै उदास॥
नेह नहीं रे रांम का, प्रीति नहीं परकास।
साहिब का सुमिरण नहीं, करै मिलन की आस॥
जिस देखे तूं फूलिय़ा रे, पाणी प्यंड बधांणां मास।
सो भी जलि बलि जाएगा, झूठा भोग बिलास॥
तौ जीवीजै जीवणां, सुमिरै सासैं सास।
दादू परगट पिव मिलै, तौ अंतरि होइ उजास॥६॥

---

३. चारि पहर....बीते=चार पहर चार युग की तरह कटे। भोर=सवेरा। रैनि गँवाई भोर=सारी रात तड़पते-तड़पते काटी तब सवेरा हुआ।

४. चीरा=वस्त्र। नवसत=सोलह (शृंगार)। थाके=व्यर्थ गये। चात्रिग=चातक, पपीहा। नीरा=जल; यहाँ दर्शन से आशय है। आन=दूसरी कोई चीज़।

५. इब=अब। अहिनिसि=दिनरात।

६. परकास=आत्म-ज्ञान। मास=मांस। पाणी प्यंड वधांणां मास=रक्त और मांस से बना हुआ शरीर।
तौ जीवै....सास=यदि हर सांस में प्रभु का नाम-स्मरण हो रहा हो तभी जीना जीने योग्य है। उजास=उजेला, ब्रह्म-ज्योति का प्रकाश।

मन निर्मल तन निर्मल भाई, आंन उपाइ बिकार न जाई ॥
जो मन कोयला तौ तन कारा, कोटि करै नहिं जाइ बिकारा।
जो मन बिसहर तौ तन भुवंगा, करै उपाइ बिषै फुनि संगा ॥
मन मैला तन उज्जल नांहीं, बहुत पचिहारे बिकार न जाहीं।
मन निर्मल तन निर्मल होई, दादू साच बिचारै कोई ॥७॥

ऐसा जनम अमोलिक भाई, जाथैं आइ मिलै रांम राई ॥
जाथैं प्रांण प्रेमरस पीवै, सदा सुहाग सेज सुख जीवै ॥
आतम आइ रांम सौ राती, अखिल अमर धन पावै थाती ॥
परगट परसन दरसन पावै, परम पुरिख मिलि मांहिं समावै ॥
ऐसा जनम नहीं नर आवै, सो क्यूं दादू रतन गँवावैं ॥८॥

इनमें क्या लीजे क्या दीजे, जनम अमोलिक छीजे ॥
सोवत सुपिनां होई, जागे थैं नहिं कोई।
मृगतृष्णां जल जैसा, चेति देखि जगु ऐसा ॥
बाजी भरम दिखावा, बाजीगर डहकावा।
दादू संगी तेरा, कोई नहीं किस केरा ॥९॥

खालिक जागै जियरा सोवै, क्यों करि मेला होवै ॥
सेज एक नहिं मेला, ताथैं प्रेम न खेला ॥
सांईं संग न पावा, सोवत जन्म गंवावा ॥
गाफिल नींद न कीजे, आव घटै तन छीजै ॥
दादू जीव अयानां, झूठे भरमि भुलानां ॥१०॥

गर्व न कीजिये रे, गर्बै होई बिनांस।
गर्बै गोबिंद ना मिलैं, गर्बै नरक निवास ॥
गर्बै रसातलि जाइये, गर्व घोर अंधार।
गर्बै भौजल डूबिये, गर्बै वार न पार ॥

---

७. बिसहर=विषधर, सर्प। फुनि=पुनः, फिर। पचिहारे=यत्न करते-करते थक गये।
८. राई=राजा, स्वामी। राती=रँग गई, अनुरक्त हो गई। थाती=पूँजी। पुरिख=पुरुष, परमात्मा। मांहिं=अंतर में।
९. छीजै=क्षीण होता जाता है। भरम डहकावा=धोखा दिया। किस केरा=किसी का।
१०. खालिक=सृष्टिकर्ता परमात्मा। जियरा=जीवात्मा। मेला=मिलन, संयोग। आव=आयु। अयानां=अज्ञानी।

गर्वै पार न पाइये, गर्वै जमपुरि जाइ।
गर्वै को छूटै नहीं, गर्वै बंधे आइ॥
गर्वै भाव न ऊपजै, गर्वै भगति न होइ।
गर्वै पिव क्यों पाइये, गर्व धरै जिनि कोइ॥
गर्वै बहुत विनास है, गर्वै बहुत बिकार।
दादू गर्व न कीजिये, सनमुख सिरजनहार॥११॥

रांम रस मीठा रे, कोई पीवै साध सुजाण।
सदा रस पीवै प्रैम सौं, सो अविनासी प्रांण॥
इहि रसि मुनि लागे सबै, ब्रह्मा बिश्न महेस।
सुन नर साधू सन्त जन, सो रस पीवै सेस॥
सिध साधिक जोगी जती, सती सबै सुखदेव।
पीवत अन्त न आवई, ऐसा अलख अभेव॥
इहि रसि राते नांमदेव, पीपा अरु रैदास।
पिवत कबीर ना थक्या, अजहूँ प्रेम पियास॥
यहु रस मीठा जिन पिया, सो रस मांहि समाइ।
मीठे मीठा मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ॥१२॥

भेष न रीझै मेरा निज भर्तार, ताथैं कीजै प्रीति बिचार॥
दुराचारिनी रचि भेष बनावै, सील साच नहिं, पिव क्यों भावै॥
कंत न भावे करै सिंगार, डिंभपणैं रीझै संसार॥
जोपै पतिब्रता ह्वैहै नारी, सो धन भावै पियहि पियारी॥
पीव पहिचानैं आंन नहिं कोई, दादू सोई सुहागिन होई॥१३॥

राग माली गौड़

गोबिंदे, कैसैं तिरिये।
नाव नांही खेव नांही, रांम विमुख मरिये॥
ग्यांन नांही ध्यांन नांही, लै समाधि नांहीं।
बिरहा बैराग नांही, पंचों गुण मांहीं॥

---

११. अंधार=अँधेरा, अविद्यारूपी अंधकार। भौजल=भव-सागर। को छूटै नहीं=कोई भी नहीं छूटता। भाव=भगवत्प्रेम। विकार=दोष, बुराई।

१२. प्राण=प्राणी, जीव। जती=यति, संन्यासी। सती=गृहस्थ। सुखदेव=शुकदेव मुनि। अभेद=जिसका भेद नहीं पाया। राते=अनुरक्त। पीपा=एक राजा, जो ऊँचे भक्त थे। रस ही माहिं समाइ=रस में ही लीन हो गये, रस रूप हो गये।

१३. भेष=ऊपरी बनाव, शृंगार। डिंभपणें=दंभ, पाखंड से। धन=स्त्री।

प्रेम नांहीं प्रीति नांहीं, नांव नांहीं तेरा।
भाव नांहीं भगति नांहीं, काइर जीव मेरा॥
घाट नांहीं, बाट नांहीं, कैसैं पग धरिये।
वार नांही, पार नांहीं, दादू बहु डरिये॥१४॥

मुझ थीं कुछ न भया रे, यहु यूंहि गया रे, पछितावा रह्या रे॥
मैं सीस न दीया रे, भरि प्रेम न पीया रे, मैं क्या कीया रे॥
हौं रंग न राता रे, रस प्रेम न माता रे, नहिं गल्लित गाता रे॥
मैं पीव न पाया रे, कीया मन का भाया रे, कुछ होइ न आया रे॥
हूँ रहूँ उदासा रे, मुझ तेरी आसा रे, कहैं दादू दासा रे॥१५॥

राग कानड़ौ

तौ काहे की परवाह हमारे, राते माते नांउं तुम्हारे॥
झिलिमिलि झिलिमिलि सेज तुम्हारा, परगट खेलै प्रांण हमारा॥
नूर तुम्हारा नैनौं मांहीं, तन मन लागा छूटै नांहीं॥
सुख का सागर वार न पारा, अमी महारस पावणहारा॥
प्रेममगन मतिवाला माता, रंगि तुम्हारे दादू राता॥१६॥

राग केदारो

अरे मेरा अमर उपावणहार रे खालिक, आशिक तेरा॥
तुम्ह सौं राता तुम्ह सौं माता, तुम्ह सौं लागा रंग, रे खालिक॥
तुम्ह सौं खेला तुम्ह सौं मेला, तुम्ह सौं प्रेम सनेह, रे खालिक॥
तुम्ह सौं लेणा, तुम्ह सौं देणा, तुम्ह ही सौं रत होइ, रे खालिक॥
खालिक मेरा, आशिक तेरा, दादू अनत न जाइ, रे खालिक॥१७॥

---

१४. गोबिन्दे=संबोधन के रूप में प्रयोग किया गया है। खेव=नाव खेने वाला। लै=चित्त की एकाग्रता। काइर=कठिन साधन से डरने वाला। वाट=मार्ग। वार नाहीं पार नाहीं=न इस लोक का पता है, न उस लोक का, यह आशय है।

१५. यहु=यह जीवन। रंग=भक्ति-भाव। राता=रँगा, अनुरक्त हुआ। माता=मस्त हुआ। गाता नहिं गल्लित=शरीर को तप से गलाया या कसा नहीं। भाया=प्रिय। उदास=खिन्न, निराशा।

१६. राते=अनुराग में रँगे हुए। नांउं=नाम। परगट=खूब खुलकर। नूर=प्रकाश। वार=यह पार। रंगि=प्रेम में।

१७. उपावणहार=उत्पन्न करनेवाला, सिरजनहार। मेला=मिलन। रत=अनुरक्त। अनत=और किसी जगह।

पीव घरि आवै रे, वेदन मारी जाणीं रे।
बिरह संताप कोण पर कीजै, कहूँ छूं दुख नी कहाणी रे॥
अन्तरजामी नाथ मारो, तुज विण हूँ सीदाणी रे।
मन्दिर मारे केम न आवै, रजनी जाइ बिहाणी रे॥
तारी बाट हूँ जोइ थाकी, नेण निखूट्या पाणी रे।
दादू तुज विण दीन दुखी रे, तू साथी रह्यो छे ताणी रे॥१८॥

वाहला हूँ जाणूं जे रंग भरि रमिये, मारो नाथ निमिष नहिं मेलूं रे।
अंतरजामी नाह न आवे, ते दिन आब्यो छेलो रे॥
वाहला सेज अमारी एकलड़ी रे, तहं तुजने केम न पामूं रे।
आ दत्त अमारो पूरबलो रे, तेतो आब्यो सामो रे॥
वाहला मारा हृदया भीतर केम न आवे, मने चरण विलंब न दीजे रे।
दादू तो अपराधी तारो, नाथ उधारी लीजे रे॥१९॥

बटाऊ, चलणां आज कि काल्हि।
समझि न देखै कहा सुख सोवे, रे मन रांम संभालि॥
जैसैं तरवर विरख बसेरा, पंखी बैठे आइ।
ऐसैं यहु सब हाट पसारा, आप आप कौं जाइ॥
कोइ नहिं तेरा सजन संगाती, जिनि खोवै मन मूल।
यहु संसार देखि जिनि भूलै, सब हीं सैंबल-फूल॥
तन नहिं तेरा, धन नहिं तेरा, कहा रह्यौ इहि लागि।
दादू हरि बिन क्यौं सुख सोवै, काहे न देखै जागि॥२०॥

---

१८. वेदन=वेदना, पीड़ा। (विरह की) कहूँ छूं=कहती हूँ। नी=की। मारो=मेरा। तुज विण=बिना तेरे। सीदाणी=दुख से मुरझा रही हूँ। केम=क्यों। बिहाणी जाइ=बीती जाती है। तारी=तेरी। हूँ=मैं। नेण=नयन। निखूट्या पाणी=पानी (आँसू) भी घट गया। ताणी रह्यौ छे=तन या खिच रहा है।

(इस पद में अनेक गुजराती शब्दों और विभक्तियों का प्रयोग हुआ है।)

१९. वाहला=प्यारे। जे रंग भरि रमिये=कि मैं रंगभर, मौजभर खेलूँ। निमिष नहि मेलूं=पल भी न गिराऊँ। नाह=नाथ, स्वामी। छेलो=अंतिम या निकृष्ट। एकलड़ी=अकेली। तुजने=तुझको। केम=क्यों, कैसे। पामूं=पाती हूँ। दत्त=फल (कर्मों का)। पूरबलो=पूर्वजन्म का। सामो=सामने। बिलंब=अवलंब, शरण। तारो=तेरा।

(इस पद में भी बहुत-से गुजराती शब्द आये हैं।)

२०. बटाऊ=पथिक। सुख सोवै=निश्चिंत पड़ा सोता है। सँभालि=स्मरणकर। बिरख=वृक्ष। हाट पसारा=लेन-देन का मेला। आप आप कौं जाइ=अपने-अपने स्वार्थ साधन में

राग मारू

जागि रे रैणि विहाणीं, जाइ जन्म अंजुली कौ पाणीं ॥
घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावै, जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै ॥
सूरिज चंद कहै समझाइ, दिन दिन आव घटती जाइ ॥
सरवर पांणी तरवर छाया, निसदिन कालगरासै काया ॥
हंस बटाऊ प्रांण पयांना, दादू आतमरांम न जानां ॥२१॥

राग रामकली

सरनि तुम्हारी केसवा, मैं अनन्त सुख पाया।
भाग बड़े तूं भेटिया, हौं चरनौं आया ॥
मेरी तपति मिटी तुम्ह देखतां सीतल भयो भारी।
भवबंधन मुकता भया, जब मिल्या मुरारी ॥
भरम-भेद सब भूलिया, चेतनि चित लाया।
पारस सूं परचा भया, उनि सहजि लखाया ॥
मेरा चंचल चित निहचल भया, इब अनत न जाई।
मगन भया सर बेधिया, रस पीया अघाई ॥
सनमुख ह्वै तैं सुख दीया, यहु दया तुम्हारी।
दादू दरसन पावैई, पीव प्राण अधारी ॥२२॥

हरिमारग मस्तक दीजिये, तब निकटि परमपद लीजिये ॥
इस मारग माहैं मरणां, तिल पीछैं पाव न धरणां।
अब आगैं होइ सु होई, पीछैं सोच न करणा कोई ॥
ज्यूं सूरा रिण झूझै, आपा पर नहिं बूझै।
सिरि साहिब काज संवारै, घण घावां आपा डारै ॥

सब लगे हुए हैं। सजन=सगा। संगाती=साथी। मूल=पूँजी। सैंबल-फूल=सेमल का फूल, जो देखने में सुन्दर लगता है, पर अंदर उसके गूदे की जगह केवल रुई होती है; सारहीनता से आशय है।

२१. आव=आयु। गरासै=ग्रस रहा है। पयांना=प्रयाण, चल देना।

२२. भेटिया=भेंट हुई, मिला। तपति=जलन, बेचैनी। मुकता भया=छूट गया। चेतनि=चैतन्यरूप परमात्मा में। लाया=लगाया। पारस=सद्गुरु से आशय है। इब=अब। सर=शब्द-वाण। अघाई=तृप्त होकर। अंधारी=आधार।

२३. मस्तक दीजिये=सिर को चढ़ा दे; अहंकार को मार दे। तिल=ज़रा भी। रिण=रण। झूझै=जूझता है, युद्ध करता है। आपा पर नहिं बूझै=नहीं समझता कि कौन तो अपना

सती सत्त गति साचा बोलै, मन निहचल कदे न डोलै।
वाकै सोच पोच जिय न आवै, जन देखत आप जलावै॥
इस सिरसौं साटा कीजै, तब अविनासी पद लीजै।
ताका तब सिर स्यावति होवै, जब दादू आपा खोवै॥२३॥

सांई कौ साच पियारा।
साचै साच सुहावै देखौ, साचा सिरजनहारा॥
ज्यूं घण घावां सार घड़ीजै, झूठ सबै झड़ि जाई।
घण के घांऊं सार रहेगा, झूठ न माहिं समाई॥
कनक कसौटी अगनि मुखि दीजै, कंप सबै जलि जाई।
यौंतो कसणीं साच सहैगा, झूठ सहै नहिं भाई॥
ज्यूं घृत कूं ले ताता कीजै ताइ ताइ तत कीतां।
तत्तै तत्त रहैगा भाई झूठ सबै जलि खीनां॥
यौं तौ कसणी साच सहैगा, साचा कसि कसि लेव।
दादू दरसन साचा पावै, झूठे दरस न देवै॥२४॥

चलु रे मन, जहाँ अमृत बनां, निर्मल नीके सन्तजनां॥
निर्गुण नांउं फल आगम अपार, संतन जीवनि प्रांण अधार॥
सीतल छाया सुखी सरीर, चरणसरोवर निर्मल नीर॥
सुफल सदा फल बारह मास, नांनां बांणी धुनि परकास॥
तहाँ बास बसि अमर अनेक, तहं चलि दादू इहै बवेक॥२५॥

राग आसावरी

मन रे रैणि बिहानी, तैं अजहूँ जात न जानी॥
बीती रैंणि बहुरि नहिं आवै, जीव जागि जिनि सौवै।

है और कौन पराया। घण घावां आपा डारै=शरीर पर घन की खूब चोटें लगवाता है; अपने ऊपर खूब वार पर वार लेता है। कदे=कभी। पोच=तुच्छ। साटा=सौदा। स्यावति=साबित, ज्यों का त्यों। ताका तब....खोवै=जो अपने अहंकार को नष्ट कर देता है उसी की प्रीति-प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रहती है।

२४. सार घड़ीजै=पक्का लोहा बनाते हैं। घण घावां=घन की चोटें। कंप=खोट, मैल। कसणीं=कसौटी, परीक्षा। ताता=गरम। ताइ ताइ=तपा-तपाकर। तत=निर्मल, खरा। खीनां=नष्ट हो गया।

२५. बनां=वन। नाना बाणी=अनेक संतों की वाणियाँ। धुनि=अनहद नाद। परकास=आत्म-ज्ञान का प्रकाश। बवेक=विवेक, सार की बात।

चारयूं दिसा चौर घर लागे, जागि देख क्या हौवै ॥
भोर भये पछितावन लागे, मांहिं महल कुछ नांही।
जब जाइ काल काया कर लागै, तबं सोधै घर माही ॥
जागि जतन करि राखौ सोई, तब तन तत्त न जाई।
चेती पहरै चेतत नांहीं, कहि दादू समझाई ॥२६॥

बाबा, नांही दूजा कोई।
एक अनेक नांउ तुम्हारे, मोपै और न होई ॥
अलख इलाही एक तूं, तूंही रांम रहीम।
तूंही मालिक मोहना, केसौ नांउं करीम ॥
सांई सिरजनहार तूं, तूं पावन तूं पाक।
तूं काइम करतार तूं, तूं हरी हाजरी आप ॥
रमिता राजिक एक तूं, तूं सांरग सुबहान।
कादिर करता एक तूं, तूं साहिब सुलतान ॥
अविगत अल्लः एक तूं, गनी गुसांई एक।
अजब अनूपम आप है, दादू नांउं अनेक ॥२७॥

सुख दुख संसा दूरि किया तब हम केवल रांम लिया ॥
सुख दुख दोऊ भरम बिचारा इन सूं बंध्या है जग सारा।
मेरी मेरा सुख के ताईं, जाइ जनम नर चेतै नांहीं ॥
सुख के ताई झूठा बोलै, बांधे बंधन कबहूँ न खोलै।
दादू सुख दुख संगि न जाई, प्रेम प्रीति पिय सौं ल्यौ लाई ॥२८॥

राग सारंग

तौ निबहै जन सेवग तेरा, ऐसैं दया करि साहिब मेरा ॥
ज्यूं हम तौरैं त्यूं तूं जौरे, हम तौरैं पै तूं नहि तौरै।
हम बिसरैं पै तूं न बिसारै, हम बिगरैं पै तूं न बिगारै ॥

---

२६. बिहानी=बीत गई। मांहिं महल=अपने अंतर में (सद्गुण व सद्वृत्तियाँ जितनी भी थीं उनको काम, क्रोध, लोभ आदि चोर चुराकर ले गये।) सोधै=खोजता है। तन तत्त=तनिक भी परमार्थ। चेतनि पहरे=चेतने के समय।

२७. मोपै और न होई=मुझसे और भेदबुद्धि की बात नहीं सोचते बनती। काइम=नित्य। हाजरी=सर्वव्यापक। राजिक=प्रकाशमान, दीप्तिकारक। सुबहान=वाह! धन्य हो! अविगत=अव्यक्त, जो जाना न जा सके। गनी=धनी!

२८. संसा=संशय, द्वैतभाव। जाइ जनम=जीवन बीत जाता है। ल्यौ=लगन, ध्यान।

हम भूलैं तूं आनि मिलावै, हम बिछुरैं तूं अंगि लगावै।
तुम्ह भावै सो हमपै नांही, दादू दरसन देहु गुसांई ॥२९॥

राग टोड़ी

कुछ चेति रे कहि क्या आया।
इनमैं बैठा फूलिकर तै देखी माया ॥
तूं जिनि जानै तन धन मेरा; मूरिख देखि भुलाया।
आज कालि चलि जावै देही, ऐसी सुन्दर काया ॥
रांम नांम निज लीजिये, मैं कहि समझाया।
दादू हरि की सेवा कीजै, सुन्दर साज मिलाया ॥३०॥

निर्पख रहणां रांम नांम कहणां, काम क्रोध में देह न दहणां ॥
जेणें मारिग संसार जाइला, तेणें प्राणी आप बहाइला ॥
जे जे करणी जगत करीला, सो करणी सन्त दूरि धरीला ॥
जेणें पंथें लोक राता, तेणें पंथैं साध न जाता ॥
रांम नांम दादू ऐसैं कहिये, रांम रमत रांमहिं मिलि रहिये ॥३१॥

राग नटनारायण

गोबिंद कबहुं मिलै करि पिव मैरा।
चरणकवंल क्यूं ही करि देखौं, राखौं नैन्हुं नेरा ॥
निरखण का मोहि चाव घणोरा, कब मुख देखौं तेरा।
प्रांण मिलन कौं भये उदासी, मिलि तूं मींत सवेरा ॥
व्याकुल ताथैं भई तन देही, सिर पर जम का हेरा।
दादू रे जन रांम मिलन कूं तपई तन बहुतेरा ॥३२॥

---

२९. सेवग=सेवक। तोरैं=तेरे साथ का नाता तोड़ते हैं। अंगि लगावै=अंगीकार करता है; छाती से लगाता है। हमपै=हमारे पास।

३०. कहि क्या आया=गर्भ-वास में तूने क्या वचन परमात्मा को दिया था, उसे कुछ तो याद कर। साज मिलाया=मनुष्य शरीर दिया, जिसके द्वारा मोक्ष के सारे साधन बन सकते हैं।

३१. निर्पख=पक्षपात छोड़कर। दहणां=जलाना। जेणें=जिस। तेणें=उसमें। करीला=की। दूरि धरी=दूर रखदी, त्यागदी। लोक राता=साधारण लोग रँगे हुए या मस्त हैं।

३२. नेरा=निकट। उदासी=व्याकुल। सवेरा=जल्दी ही। हेरा=दाव। तपई=जल रहा है।

तुम्हे बिन ऐसैं कौन करै।
गरीबनिवाज गुसांई मेरे माथैं मुकट धरै ॥
नीच ऊँच ले करै गुसांई, टास्यौ हूँ न टरै।
हस्त कवँल की छाया राखै, काहूं थैं न डरै ॥
जाकी छोति जगत कौं लागै, तापरि तूंही ढरै।
अमर आप ले करै गुसाईं, मास्यौ हूँ न मरै ॥
नांमदेव कबीर जुलाहो, जन रैदास तिरै।
दादू बेगि बार नहिं लागै, हरि सौं सबै सरै ॥३३॥

राग गुंड

तूं आपैं ही विचारि, तुझ बिन क्यूं रहौं।
मेरे औरन दूजा कोइ, दुख किसकौं कहौं ॥
मीत हमारा सोइ, आदैं जे पीया।
मुझै मिलावै कोइ, वै जीवनि जीया ॥
तेरे नैन दिखाइ, जीऊं जिस आसि रे।
सो धन जीवै क्यूं, नहीं जिस पासि रे ॥
पिजंर मांहैं प्रांण, तुझ बिन जाइसी।
जन दादू मांगै मांन, कब घरि आइसी ॥३४॥

इहि बिधि बेध्यौ मोर मनां, ज्यूं लै भृंगी कीट तनां ॥
चात्रिग रटतैं रैनि बिहाइ, प्यंड परै पै बांनि न जाइ ॥
मरै मीन बिसरै नहिं पानी, प्राण तजे उनि और न जानी ॥
जलै सरीर न मोड़ै अंगा, जोति न छाड़ै पड़ै पतंगा ॥
दादू इब थैं ऐसैं होहि, प्यंड परै नहिं छाड़ौं तोहि ॥३५॥

---

३३. जाकी छोति....ढरै=जिसे छू जाने से लोग अपने को अपवित्र मानते हैं, उस पर एक तू ही कृपा करता है। (इससे संभवतः यह संकेत हो कि दादू दयाल को लोग अछूत समझते होंगे।) तिरै=तर जाते हैं। सरै=(असंभव भी संभव) हो सकता है।

३४. क्यूँ=कैसे। आदैं जे पीया=जो आदि से ही, जन्म से ही हमारा प्रियतम है। जीवनि जीया=जीवन के भी जीवन। धन=स्त्री; जीवात्मा से आशय है। नहीं जिस पासि=जिसके पास वह स्वामी नहीं है। पिंजर=देह से आशय है। जाइसी=(छूट) जायेगा। घरि=घर में; हृदय के अंतर में। आइसी=आयेगा, प्रकट होगा।

३५. तनां=तन, देह। प्यंड परै=चाहे शरीर छूट जाये। बांनि=टेव, हठीला स्वभाव। और न जानी=किसी और को मन नहीं दिया।

करणी पोच सोच सुख करई। लोह की नाव कैसें भौजल तिरई॥
दिखन जात पछिम कैसें आवें। नैन बिन भूलि बाट कत पावै॥
विष बन बेलि, अमृत फल चाहै। खाइ हलाहल, अमर उमाहै॥
अगनिगृह पैसि सुख क्यूं सोवै। जलणि जागी घर्णी सीत क्यूं होवै॥
पाप पाषंड कीयें, पुनि क्यूं पाइये। कूप खनि पड़िबा, गगन क्यूं जाइये॥
कहै दादू मोहिं अचिरज भारी। हिरदै कपट क्यूं मिलै मुरारी॥३६॥

नारी नेह न कीजिये, जे तुझ राम पियारा।
माया मोह न बंधियै, तजिये संसारा॥
विषिया रंगि राचै नहीं, नहिं करै पसारा।
देह ग्रेह परिवार में, सब थैं रहै नियारा॥
आपा पर उरझै नहीं, नांहीं मैं मेरा।
मनसा बाचा कर्मना, सांई सब तेरा॥
मन इन्द्री अस्थिर करै, कतहूँ नहिं डोलै।
जगबिकार सब परिहरै, मिथ्या नहिं बोलै॥
रहै निरन्तर राम सौं, अन्तरिगति राता।
गावै गुण गोबिंद का, दादू रसिमाता॥३७॥

राग बिलावल

सोई साध-सिरोमणी, गोविन्द-गुण गावै।
राम भजै बिषिया तजै, आपा न जनावै॥
मिथ्या मुखि बोलै नहीं, परन्यंदा नांहीं।
औगुण छाड़ै गुण गहै, मन हरिपद मांहीं॥
निर्बैरो सब आतमा, पर आतम जानै।
सुखताई समता गहै, आपा नहीं आनैं॥

---

३६. पोच=नीच, हीन। सोच सुख करई=विचार करता है सुख भोगने का। लोह की नाव=पाप-कर्मों से आशय है। दिखन=दक्षिण दिशा। अमर उमाहै=तू अमर होने का उत्साह या चाव करता है। पैसि=पैठकर। पुनि=पुण्य (का फल)। खनि=खोदकर। पड़िबा=गिरना (पापकर्म करके नीचे गिरना)। गगन=ऊँचा (ब्रह्म) पद।

३७. पसारा=प्रपंच की रचना। नियारा=निर्लेप, अनासक्त। आपा पर उरझै नहीं=यह अपना है, यह पराया है, इस प्रकार की भेद-बुद्धि में न फँसे। अस्थिर=स्थिर, वश में। रसिमाता=ब्रह्मानन्द में मस्त।

आपा पर अन्तर नहीं, निर्मल निज सारा।
सतवादी साचा कहै, लैलीन बिचारा॥
निर्भै भजि न्यारा रहै, काहूँ लिपत न होई।
दादू सब सैंसार मैं ऐसा जन कोई॥३८॥

जब मैं रहते की रह जानीं।
काल काया के निकटि न आवै, पावत है सुख प्राणी॥
सोग संताप नैंन नहिं देखौं, राग दोष नहिं आवै॥
जागत है जासौं रुचि मेरी, सुपिनै सोई दिखावै॥
भरम करम मोह नहिं ममिता, बाद बिबाद न जानौं॥
मोहन सौं मेरी बनि आई, रसना सोई बखानौं॥
निसबासरि मोहन मनि मेरे, चरन कवँल मन मानैं॥
सोई निधि निरखिदेखि सचु पाऊँ, दादू और न जानैं॥३९॥

राम मिल्या यूं जानिये, जाकौं काल न ब्यापै।
जुरा मरण ताकौं नहीं, अरु मेटै आपै॥
सुख दुख कबहूं न ऊपजै, अरु सब जग सूझै।
करम कों बांधैं नहीं, सब आगम बूझै॥
जागत है सो जन रहै, अरु जुगि-जुगि जागै।
अन्तरजामी सौं रहै, कुछु काई न लागै॥
कांम दहे सहजै रहै, अरु सुंन्य बिचारै।
दादू सो सबकी लहै, अरु कबहूं न हारै॥४०॥

---

३८. आपा न जनावै=अपने आपको बड़ा नहीं जतलाता। न्यंदा=निंदा। पर आतम जानैं=दूसरे की आत्मा को अपनी ही आत्मा समझता है, समदृष्टि रखता है। सुखताई=मुदिता, सदा प्रसन्नता। लैलीन विचारा=तत्त्वज्ञान में तन्मय। सैंसार=संसार। जन कोई=विरला भगवद्भक्त।

३९. रहते की रह=नित्यस्थिर (ब्रह्म) की राह। सोग=शोक। दोष=द्वेष। रुचि=प्रीति। मनि=मन में। सचु=सुख, शांति।

४०. जुरा=जरा, बुढ़ापा। आपै=अहंभाव को। सूझै=यथार्थ ज्ञान पर लेता है। सब आगम बूझै=आगै की, अथवा लोकोत्तर जीवन की बात जानता है। काई=मैल, खोट। सुंन्य बिचारै=शून्य अर्थात् निर्विकल्प समाधिगत अवस्था का ध्यान करता है। सबकी लहै=सब कुछ प्राप्त कर लेता है।

राग भैरूं

काागा रे करंक परि बोलै, खाइ मास अरु लगही डोलै॥
जा तन कौं रचि अधिक संवारा, सो तन ले माटी में डारा॥
जा तन देखि अधिक नर फूले, सो तन छाड़ि चल्या रे भूले॥
जा तन देखि मन मैं गर्बानां, मिलि गया माटी तजि अभिमाना॥
दादू तन की कहा बड़ाई, निमष मांहिं माटी मिलि जाई॥४१॥

रहु रे रहु मन मारौंगा, रती रती करि डारौंगा॥
खंड खंड करि नाखौंगा, जहां रांम तहं राखौंगा॥
कह्या न मानैं मेरा, सिर भानौंगा तेरा॥
घर मैं कदे न आवै, बाहरि कौं उठि धावै॥
आतम रांम न जानैं, मेरा कह्या न मानैं॥
दादू गुरमुखि पूरा, मन सौं झूझै सूरा॥४२॥

अलह कहौ भावे राम कहौ, डाल तजौ सब मूल गहौ॥
अलह रांम कहि कर्म दहौ, झूठे मारगि कहा बहौ॥
साधू संगति तौ निबहौ, आइ परै सो सीसि सहौ॥
काया कवँल दिल लाइ रहौ, अलख अलह दीदार लहौ॥
सतगुर की सुणि सीख अहौ, दादू पहुँचै पार पहौ॥४३॥

हिन्दू तुरक न जाणौं दोइ।
सांई सबनि का सोई है रे, और न दूजा देखौं कोइ॥
कीट पतंग सबै जोनिन मैं, जल थल संगि समांनां सोइ।
पीर पैगम्बर देवा दानव मीर मलिक मुनिजन कौं मोंहि॥
कर्ता है रे सोई चीन्हौं, जिनिवै क्रोध करे रे कोइ।
जैसैं आरसी मंजन कीजे, राम रहीम देही तन धोइ॥
सांई केरी सेवा कीजै, पायौ धन काहे कौं खोइ।
दादू रे जन हरि जपि लीजै, जनमि जनमि जे सुरिजन होइ॥४४॥

---

४१. करंक=लाश। लगही=पास ही। निमष=निमिष, पल। रती-रती=छोटे-छोटे टुकड़े।
४२. करि नाखौंगा=कर डालूँगा। भानौंगा=तोड़ दूँगा। घर में=आत्म-ज्ञान की ओर। बाहरि कौं=विषयों की ओर। झूझै=जूझता है, लड़ता है।
४३. भावै=चाहे। बहौ=भटक रहे हो। कवँल दिल=हृदयरूपी कमल। दीदार लहौ=दर्शन लो। पार पहौ=पार होकर पाओ (ब्रह्मानंद-रस); 'परलापार' यह अर्थ भी हो सकता है।
४४. जोनिन मैं=योनियों में। जिनिवै=निश्चय ही नहीं। आरसी=दर्पण। मंजन कीजै=माँजते या साफ़ करते हैं। सुरिजन=सुलझन, मुक्ति।

कोइ स्वामी कोइ सेख कहै, इस दुनियां का मर्म न कोई लहै ॥
कोई रांम कोइ अलह सुनावै, पुनि अलह रांम का भेद न पावै ॥
कोई हिन्दू कोई तुरक करि मानैं, पुनि हिन्दू तुरक की खबरि न जानैं ॥
यहु सब करणी दून्यूं वेद, समझ परी तब पाया भेद ॥
दादू देखै आतम एक, कहिबा सुनिबा अनन्त अनेक ॥४५॥

तूं साहिब मैं सेवग तेरा, भावै सिरि दे सूली मेरा ॥
भावै करवत सिर परि सारि, भावै लेकर गरदन मारि ॥
भावै चहु दिसि अग्नि लगाइ, भावै काल दसौं दिसि खाइ ॥
भावै गिरवर गगन गिराइ, भावै दरिया माँहैं बाहि ॥
भावै कनक कसौटी देहु, दादू सेवग कसि कसि लेहु ॥४६॥

राग ललित

रांम तूं मोरा हूं तोरा, पाइन परत निहोरा ॥
एकैं संगैं बासा, तुम्ह ठाकुर हम दासा ॥
तन मन तुम्ह कौं देबा, तेजपुंज हम लेबा ॥
रस माँहैं रस होइबा, जोतिसरूपी जोइबा ॥
ब्रह्म-जीव का मेला, दादू नूर अकेला ॥४७॥

राग जैतिश्री

तेरे नांउं की बलि जांऊं, जहाँ रहौं जिस ठांऊं ॥
तेरे बैनौं की बलिहारी, तेरे नैनहुँ ऊपरि वारी ॥
तेरी मूरति की बलि कीती, वारिवारि हौं दीती ॥
सोभित नूर तुम्हारा, सुन्दर जोति उजारा ॥
मीठा प्रांण पियारा, तूं है पीव हमारा ॥
तेज तुम्हारा कहिये, निर्मल काहे न लहिये ॥
दादू बलि बलि तेरे, आव पिया तूं मेरे ॥४८॥

---

४५. खबरि=सही मतलब। दून्यूं वेद=दोनों मतों से आशय है।

४६. करवत=करौत, बड़ा आरा। सारि=चला। गगन=बड़ी ऊँचाई। बाहि=बहादे, डुबोदे। कसि-कसि लेहु=बारबार भली-भाँति परखले।

४७. निहोरा=बिनती; झुककर। तेजपुंज=आत्म-प्रकाश। रस माहैं रस होइबा=तेरे ब्रह्मरस में तन्मय हो जाऊँगा। जोइबा=देखूँगा। अकेला=अद्वितीय; अनुपम।

४८. बलि कीती=निछावर की। वारि दीती=अपने आपको फिर-फिर कुरबान कर दिया।

राग धनाश्री

कतहूं रहे हो बिदेस, हरि नहिं आये हो।
जन्म सिरानौं जाइ, पीव नहिं पाये हो॥
बिपति हमारी जाइ, हरि सौं को कहै हो।
तुम्ह बिन नाथ अनाथ, बिरहनि क्यूं रहै हो॥
पीव के बिरह बिवोग, तन की सुधि नहीं हो।
तलफि तलफि जिव जाइ, मृतक ह्वै रही हो॥
दुखति भई हम नारि, कब हरि आवै हो।
तुम्ह बिन प्रांण अधार, जीव दुख पावै हो॥
प्रगटहु दीन दयाल, बिलम न कीजिये हो।
दादू दुखी बेहाल, दरसन दीजिये हो॥४६॥

जिनि छाड़ै रांम जिन छाड़ै, हमहिं बिसारि जिनि छाड़ै।
जीव जात न लागै बार, जिनि छाड़ै॥
माता क्यूं बारिक तजै, सुत अपराधी होइ।
कबहुं न छाड़ै जीव थैं, जिनि दुख पावै सोइ॥
ठाकुर दीनदयाल है, सेवग सदा अचेत।
गुण औगुण हरि नां गिणौं, अंतरि तासौं हेत॥
अपराधी सुत सेवगा, तुम्ह हौ दीनदयाल।
हम थै औगुण होत है, तुम्ह पूरण प्रतिपाल॥
जब मोहन प्रांणी चलै, तब देही किहि काम।
तुम्ह जानत दादू का कहै, अब जिनि छाड़ौ रांम॥५०॥

डरिये रे डरिये, परमेसुर थैं डरिये रे।
लेखा लेवै भरि भरि देवै, ताथैं बुरा न करिये रे॥
साचा लीजी साचा दीजी, साचा सौदा कीजी रे।
साचा राखी झूठा नांखी, विष ना पीजी रे॥
निर्मल गहिये, निर्मल रहिये, निर्मल कहिये रे।
निर्मल लीजी निर्मल दीजी, अनत न बहिये रे॥

---

४६. सिरानौं जाइ=बीता जाता है। बिवोग=वियोग। बिलम=बिलंब, देरी।

५०. बारिक=बालक। ठाकुर=स्वामी। अचेत=गाफ़िल। हेत=प्रेम। सेवगा=सेवक। औगुण=अपराध। प्राणी=प्राण।

साहिब ठाया बनिज न आया, जिनि डहकावै रे।
झूठ न भावै फेरि पठावै, कीया पावै रे॥
पंथ दुहेला जाइ अकेला, भार न लीजी रे।
दादू मेला होइ सुहेला, सो कुछ कीजी रे॥५१॥

डरिये रे डरिये, देखि देखि पग धरिये।
तारे तरिये मारे मरिये, ताथैं गर्ब न करिये रे॥
देवै लेवै संम्रथ दाता, सब कुछ छाजै रे।
तारै मारै गर्ब निवारै, बैठा गाजै रे॥
राखे रहिये बाहें बहिये, अनत न लहिये रे।
भानै घड़ै संवारै आपै, ऐसा कहिए रे॥
निकटि बुलावै दूरि पठावै, सब बनि आवै रे।
पाके काचे काचे पाके, ज्यूं मन भावै रे॥
पावक पांर्णी पांर्णी पावक, करि दिखलावै रे।
लोहा कंचन कंचन लोहा, कहि समझावै रे॥
ससिहर सूर सूर थैं ससिहर, परगट खेलै रे।
धरती अम्बर अम्बर धरती दादू मेलै रे॥५२॥

साखी

गुरदेव कौ अंग

दादू गैब मांहि गुरदेव मिल्या, पाया हम परसाद।
मस्तकि मेरे कर धर्या, देख्या अगम अगाध॥१॥

---

५१. लेखा लेवै=एक-एक कर्म का हिसाब लेता है। भरि-भरि देवै=अखूट दान देता है। नांखी=त्याग देना चाहिए। अनत न बहिये=इधर-उधर नहीं भटकना चाहिए। बनिज=सत्य का व्यापार। दुहेला=कठिन। भार=पापों का बोझा। मेला=मिलन। सुहेला=सुन्दर। सो कुछ=ऐसा कोई साधन।

५२. ताथैं=उस परमात्मा से। संम्रथ=समर्थ। छाजै=शोभा देता है। गाजै=राज चलाता है। भानै=भंग करता है, तोड़ देता है। घड़ै=बनाता है। सँवारै=सजाता है। पाके काचे काचे पाके=यदि चाहे तो पक्के को कच्चा और कच्चे को पक्का कर देता है। ससिहर=चन्द्र। सूर=सूर्य। अंबर=आकाश। मेलै=मिला देता या एक कर देता है।

गुरदेव कौ अंग

१. ग़ैब=रहस्य की रसात्मिका अवस्था। परसाद=कृपा से।

दादू सतगुर सूं सहजैं मिल्या, लीया कंठि लगाइ।
दाया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ ॥२॥
सबद दूध घृत रांमरस, कोई साध बिलोवणहार।
दादू अमृत काढिले, गुरमुखि गहै बिचार ॥३॥
घीव दूध मैं रमि रह्या, ब्यापक सबही ठौर।
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढ़ैं ते और ॥४॥
दीवै दीवा कीजिये, गुरमुख मारगि जाइ।
दादू अपणे पीव का, दरसन देखै आइ ॥५॥
मानसरोवर माहिं जल, प्यासा पीवै आइ।
दादू दोष न दीजिये, घर घर कहण न जाइ ॥६॥
देवै किरका दरद का, टूटा जोड़ै तार।
दादू सांधै सुरति कूं, सो गुर पीर हमार ॥७॥
इक लख चन्दा आणि धरि, सूरज कोटि मिलाय।
दादू गुर गोब्यंद बिन, तौभी तिमिर न जाय ॥८॥
दादू मन फकीर ऐसैं भया, सतगुर के परसाद।
जहाँ कथा लागा तहाँ, छूटे बाद-बिबाद ॥९॥
ना घरि रह्या न बनि गया, ना कुछ किया कलेस।
दादू मन हीं मन मिल्या, सतगुर के उपदेस ॥१०॥
दादू पड़दा भरम का, रह्या सकल घटि छाइ।
गुर गोब्यंद कृपा करै, तौ सहजैं ही मिटि जाइ ॥११॥
दादू यहु मसीति यहु देहुरा, सतगुर दिया दिखाइ।
भीतरि सेवा बंदिगी, बाहरि काहे जाइ ॥१२॥

---

३. बिलोवणहार=मन्थन अर्थात् तत्त्व-विचार करने वाला।

५. दीवै दीवा कीजिये=आशय यह कि गुरुद्वारा उपदिष्ट आत्मज्ञान से अपना आत्मज्ञान बढ़ाना चाहिए।

६. मांहिं=मध्य में, अन्दर उतर या डूबकर।

७. किरका=एक कण। दरद=परमात्मा के आत्यंतिक विरह की वेदना से आशय है। सांधै=मिलादे। सुरति=लौ।

८. तिमर=अविद्या का अंधकार।

१०. बनि=वन में (तप करने के लिए)।

११. भरम=मायाकृत द्वैत-भाव। घटि=घट, शरीर। रह्या छाइ=पड़ा हुआ है।

१२. मसीति=मसजिद। देहरा=देवालय।

दादू सोई मारग मनि गह्या, जेहिं मारग मिलिये जाइ।
बेद कुरानूं नां कह्या, सो गुर दिया दिखाइ ॥१३॥

दादू मनहीं सूं मल ऊपजै, मनहीं सूं मल धोइ।
सीख चली गुर साध की, तौ तूं नृमल होइ ॥१४॥

मन कै मतै सब कोइ खेलै, गुरमुख विरला कोइ।
दादू मन की मानै नहीं, सतगुर का सिख सोइ ॥१५॥

घरि घरि घट कोल्हू चलै, अमी महारस जाइ।
दादू गुर के ग्यान बिन, विखै हलाहल खाइ ॥१६॥

सतगुर सबद उलंधिकरि, जिनि कोई सिख जाइ।
दादू पग-पग काल है, जहाँ जाइ तहँ खाइ ॥१७॥

सोने सेती बैर क्या, मारै घण के घाइ।
दादू काढ़ि कलंक सब, राखै कंठि लगाइ ॥१८॥

गुर पहली मन सौं कहै, पीछै नैन की सैंन।
दादू सिख समझै नहीं, कहि समझावै बैन ॥१९॥

कहें लखै सो मानवी, सैंन लखै सो साध।
मन की लखै सु देवता, दादू अगम अगाध ॥२०॥

सिख गोरू गुर ग्वाल है, रख्या करि करि लेइ।
दादू राखै जतन करि, आणि धणी कौं देइ ॥२१॥

झूठे अन्धे गुर घणे, भरम दिढ़ावैं आइ।
दादू साचा गुर मिलै, जीव ब्रह्म ह्वै जाइ ॥२२॥

झूठे अन्धे गुर घणे, बन्धे विखै बिकार।
दादू साचा गुर मिलै, सनमुख सिरजनहार ॥२३॥

---

१४. नृमल=निर्मल। मल=पाप-वासना।
१६. घरि घरि=घड़ी घड़ी, निरन्तर। महारस=ब्रह्मानंद। जाइ=व्यर्थ जा रहा है।
१८. सोने सेती=सुवर्ण के साथ; यहाँ शिष्य से तात्पर्य है। घण कै घाइ=वन की चोटें। कलंक=मैल, खोट।
१९. पहली=पहले तो। सैंन=संकेत।
२०. लखै=समझले। मानवी=मनुष्य।
२१. गोरू=गाय। रख्या=रक्षा, सार-सँभाल। आणि=लाकर। धणी=मालिक, ईश्वर।
२२. भरम दिढ़ावैं=मिथ्या ज्ञान को और भी दृढ़ कर देते हैं; मूढ़ग्राहों में फँसा देते हैं।
२३. सनमुख सिरजनहार=परमात्मा को प्रत्यक्ष करा देते हैं।

झूठे अन्धे गुर घणे, भरम दिढ़ावैं कांम।
बन्धे माया मोह सौं, दादू मुखसौं रांम ॥२४॥

दादू आपा उरझें उरझिया, दीसै सब संसार।
आपा सुरझें सुरझिया, यहु गुर ग्यान बिचार ॥२५॥

दादू बिन पाइन का पंथ है, क्यौं करि पहुँचै प्रांण।
विकट घाट औघट खरे, मांहिं सिखर असमांन ॥२६॥

मन ताजी चेतन चढ़ै, ल्यौ की करै लगांम।
सबद गुरू का ताजणा, कोइ पहुंचै साघ सुजांण ॥२७॥

सुख का साथी जगत सब, दुख का नाहीं कोइ।
दुख का साथी सांइयां, दादू सतगुर होइ ॥२८॥

सूरिज सनमुख आरसी, पावक किया प्रकास।
दादू सांई साध बिचि, सहजैं निपजै दास ॥२९॥

सुमिरण कौ अंग

दादू नीका नांव है, हरि हिरदै न बिसारि।
मूरति मन मांहै बसै, सासैं सास संभरि ॥१॥

---

२५. जो अपने आप जगत्-जाल में उलझ रहे हैं उनको सारा जगत् उलझा हुआ ही दीखता है, और जो स्वरूपदर्शन द्वारा सुलझ गया है अर्थात् जाल से मुक्त हो गया है उसे सब-कुछ सुलझा-ही-सुलझा दीखता है। इस प्रकार का महाज्ञान अथवा महामनन ही 'गुरुज्ञान-विचार' हैं। दादू-पंथ में इस साखी की गणना दादू दयालजी के महावाक्यों में की गई है।

२६. बिन पाइन का=अपने अहंबल द्वारा अगम्य। प्राण=प्राणी। औघटखरे=अत्यन्त कठिन। असमांन=आसमान, मन के आत्यन्तिक लय की शून्यावस्था से आशय है।

२७. ताजी=घोड़ा। ताजणा=चाबुक।

२९. आरसी=आतशी शीशा। सांई=परमेश्वर। निपजै=प्रकट होता है। दास=दास्यभाव, अनन्य भक्ति-भाव।

सुमिरण कौ अंग

१. नांव=नाम। सासै सास=हरेक श्वास-प्रश्वास से। सँभारि=स्मरणकर।

सासैं सास संभालतां, इकदिन मिलिहै आइ।
सुमिरण पैंडा सहज का, सतगुर दिया बताइ ॥२॥

रांम, तुम्हारे नांव बिन, जे मुख निकसै और।
तौ इस अपराधी जीव कौं, तीनि लोक कत ठौर ॥३॥

सोई सांस सुजाण नर, सांई सेती लाइ।
करि साटा सिरजनहार सूं, मंहगे मोलि बिकाइ ॥४॥

दादू जहाँ रहूँ तहँ राम सौं, भावै कंदलि जाइ।
भावै गिरि परबति रहूँ, भावै ग्रेह बसाइ ॥५॥

हरि भजि साफिल जीवना, परउपगार समाइ।
दादू मरणा तहँ भला, जहँ पसु-पंखी खाइ ॥६॥

दादू सांई सेवैं सब भले, बुरा न कहिये कोइ।
सारौं माहै सो बुरा, जिस घटि नांव न होइ ॥७॥

दादू का जाणौं कब होइगा, हरिसुमिरण इकतार।
का जाणौं कब छोड़िहै, यहु मन विखै विकार ॥८॥

दादू रांमनांम निज औषदी, काटै कोटि विकार।
विषम ब्याधि थैं ऊबरे, काया कंचन सार ॥९॥

मन पवना गहि सुरति सौं, दादू पावै स्वाद।
सुमिरण माँहै सुख घणा, छाड़ि देहु बकवाद ॥१०॥

ज्यूं जल पैसे दूध में, ज्यूं पाणी में लूण।
ऐसैं आतमराम सौं, मन हठ साधै कूंण ॥११॥

दादू सब सुख सरग पयाल के, तोलि तराजू बाहि।
हरि-सुख एकै पलक का, तासमि कह्या न जाइ ॥१२॥

---

२. सँभालतां=नाम स्मरण करते हुए। पैंडा=मार्ग।
४. साटा=सौदा।
५. कंदलि=कंदरा में, गुफा में। ग्रेह=गृह।
६. उपगार समाइ=उपकार में लगादे। साफिल=सफल।
७. सारों माहे=सबमें, सबसे अधिक।
८. इकतार=निरन्तर एकाग्र चित्त से।
१०. मन....सुरति सौं=मन को एकाग्रकर प्राणयाम से ध्यान में लगादे।
११. पैसै=प्रवेश कर जाता है, मिल जाता है। लूण=नमक। कूंण=कौन।
१२. पयाल=पाताल। बाहि=चढ़ाकर।

अपणी जाणैं आप गति, और न जाणै कोइ।
सुमिर सुमिर रस पीजिये, दादू आनन्द होइ ॥१३॥

दादू यहु तन पिंजरा, मांही मन सूबा।
एकै नांव अलाह का, पढ़ि हाफिज हूवा ॥१४॥

नांव लिया तब जाणिये, जे तन मन रहै समाइ।
आदि अंति मधि एकरस, कबहूँ भूलि न जाइ ॥१५॥

दादू पीवै एकरस, बिसरि जाइ सब और।
अबिगत यहु गति कीजिये, मन राखौ इहि ठौर ॥१६॥

आतम चेतनि कीजिये, प्रेम रस पीवै।
दादू भूलै देह गुण, ऐसे जन जीवै ॥१७॥

कहि कहि केते थाके दादू सुणि सुणि कहु क्या लेई।
लूंण मिलै गलि पाणियां, तासमि चित यौं देई ॥१८॥

मिलै तो सब सुख पाइये, बिछुरे बहु दुख होइ।
दादू सुख दुख राम का, दूजा नाहीं कोइ ॥१९॥

दादू सब जग नीधना, धनवंता नहिं कोइ।
सो धनवंता जाणिये, जाकै रामपदारथ होइ ॥२०॥

दादू आनन्द आत्मा, अविनासी कै साथ।
प्राणनाथ हिरदै बसै, तौ सकल पदारथ हाथ ॥२१॥

अगम अगोचर राखिये, करि करि कोटि जतन।
दादू छाना क्यौं रहै, जिस घटि राम-रतन ॥२२॥

सुमिरण का संसा रह्या, पछितावा मन मांहि।
दादू मीठा रामरस, सगला पीया नांहि ॥२३॥

दादू सिरि करवत बहै, बिसरै आतम रांम।
माहिं कलेजा काटिये, जीव नहीं विश्राम ॥२४॥

---

१४. माहीं=अंदर। अलाह=अल्लाह। हाफ़िज=विद्वान्।

१६. अविगत....कीजिए=जिस अगम्य ब्रह्म-पद तक विषय-रत मन की पहुँच नहीं, वहाँ इसे समाधि-स्थित करके पहुँचा दो, और वहीं स्थिर कर दो।

१८. पाणियाँ=पानी में।

२२. छाना=गुप्त, अप्रकट।

२३. संसा=संशय, डर। सगला=सारा।

२४. करवत बहै=करौत या आरा चलाए।

जेता पाप सब जग करै, तेता नांव बिसारैं होइ।
दादू रांम संभालिये, तौ येता डारै धोइ ॥२५॥

दादू जबही रांम बिसारिये, तबही मोटी मार।
खंड खंड करि नाखिये, बीज पड़े तिहि वार ॥२६॥

दादू जबही रांम बिसारिये, तबही हांनां होइ।
प्राण पिंड सर्वस गया, सुखी न देख्या कोइ ॥२७॥

साहिबजी के नांव मां, भाव भगति बेसास।
लै समाधि लागा रहै, दादू सांई पास ॥२८॥

बिरह कौ अंग

रतिवंती आरति करै, रांम सनेही आव।
दादू औसर अब मिलै, यहु बिरहनि का भाव ॥१॥

सबद तुम्हारा ऊजला, चिरिया क्यौं कारी।
तुंहीं तुंहीं निसदिन करौं, विरहा की जारी ॥२॥

साहिब मुखि बोलै नहीं, सेवग फिरै उदास।
यहु बेदन जिय में रहै, दुखिया दादू दास ॥३॥

सबकौं सुखिया देखिये, दुखिया नांहीं कोइ।
दुखिया दादू दास है, ऐन परस नहिं होइ ॥४॥

दादू इस संसार मैं, मुझसा दुखी न कोइ।
पीव मिलन के कारणै, मैं जग भरिया रोइ ॥५॥

---

२५. संभालिए=स्मरण करे।

२६. खंड खंड करि नाखिये=टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

२७. हांनां=हानि। पिंड=देह।

२८. बेसास=विश्वास।

विरह कौ अंग

१. रतिवंती=प्रेमपरा भक्ति में तन्मय जीवात्मा। आरति=आर्ति; वेदनापूर्वक याचना।

२. ऊजला=पवित्र।

३. बेदन=वेदना, पीड़ा।

४. ऐन परस=प्रियतम का प्रत्यक्ष स्पर्श।

ना वहु मिलै न मैं सुखी, कहु क्यौं जीवन होइ।
जिन मुझकौं घाइल किया, मेरी दारू सोइ ॥६॥

रांम बिछोही बिरहनी, फिरि मिलन न पावै।
दादू तलपै मीन ज्यूं, तुझ दया न आवै ॥७॥

ज्यूं अमली कै चित अमल है, सूरे कै संग्राम।
निर्धन कै चित धन बसै, यौं दादू कै रांम ॥८॥

श्रवना राते नाद सौं, नैनां राते रूप।
जिभ्या राती स्वाद सौं, त्यौं दादू एक अनूप ॥९॥

देह पियारी जीव कौं, जीव पियारा देह।
दादू हरि-रस पाइये, जे ऐसा होइ सनेह ॥१०॥

मूए पीड़ पुकारतां, बैद न मिलिया आइ।
दादू थोड़ी बात थी, जे टुक दरस दिखाइ ॥११॥

दादू इस हिवड़े ये साल, पिव बिन क्योंहि न जाइसी।
जब देखौं मेरा लाल, तब रोम रोम सुख आइसी ॥१२॥

दादू पिवजी देखै मुझकौं, हूं भी देखौं पीव।
हूं देखौं, देखत मिलै, तो सुख पावै जीव ॥१३॥

दादू हम दुखिया दीदार के, तूं दिल थैं दूरि न होइ।
भावै हमकौं जालिदे, हूंणां है सो होइ ॥१४॥

तालाबेली प्यास बिन, क्यौं रस पीया जाइ।
बिरहा दरसन दरद सौं, हम कौं देहु खुदाइ ॥१५॥

गई दसा सब बाहुड़ै, जे तुम प्रगटहु आइ।
दादू ऊजड़ सब बसै, दरसन देहु दिखाइ ॥१६॥

---

६. दारू=दवा।

८. अमली=नशा करनेवाला। अमल=नशा।

९. राते=अनुरक्त। त्यौं दादू एक अनेक=वैसे ही दादू उस एक अद्वितीय अनुपम परमात्मा के प्रेम में रंग गया है।

१२. हिवड़े=हृदय में। साल=पीड़ा, वेदना। क्योंहि न जाइसी=किसी भी तरह नहीं जायगी। आइसी=आयगा, मिलेगा।

१५. तालाबेली=तड़पन, बेचैनी।

१६. बाहुड़ै=लौट आयेगी।

हम कसियें क्या होइगा, विड़द तुम्हारा जाइ।
पीछैं हीं पछताहुगे, ता थैं प्रगटहु आइ ॥१७॥

दादू इसक अल्लाह का, जे कबहूं प्रगटै आइ।
तौ तन मल दिल अरवाह का, सब पड़दा जलि जाइ ॥१८॥

ग्यान ध्यान सब छाड़िदे, जप तप साधन जोग।
दादू बिरहा लै रहै, छाड़ि सकल रसभोग ॥१६॥

पीड़ पुरांणी नां पड़ै, जे अन्तर वेध्या होइ।
दादू जीवन मरण लौं, पड़्या पुकारैं सोइ ॥२०॥

दादू बिरह बिवोग न सहि सकौं, मोपैं रह्या न जाइ।
कोइ कहौ मेरे पीवकौं, दरस दिखावै आइ ॥२१॥

दादू बिरह बिवोग न सहि सकौं, निसदिन सालै मोंहि।
कोई कहौ मेरे पीवकौं, कब मुख देखौं तोहि ॥२२॥

दादू चोट न लागी बिरह की, पीड़ न उपजी आइ।
जागि न रोवै धाह दे, सोवत गई बिहाइ ॥२३॥

अंदरि पीड़ न ऊभरै, बाहरि करै पुकार।
दादू सो क्यौंकरि लहै, साहिब का दीदार ॥२४॥

मनहीं मांहे झूरणा, रोवै मनहीं मांहि।
मनहीं मांहे धाह दे, दादू बाहरि नांहि ॥२५॥

दादू तौ पिव पाइये, करि मंझे बीलाप।
सुनिहै कबहूँ चित्तधरि, परगट होवै आप ॥२६॥

दादू पाती प्रेम की, बिरला बाँचै कोइ।
वेद पुरान पुस्तक पढ़ै, प्रेम बिना क्या होइ ॥२७॥

---

१७. कसियें=कसने से, कष्ट दे-देकर परीक्षा लेने से। विड़द=विरुद, यश, प्रतिज्ञा।

१८. अरवाह=रूहें, जीवात्माएँ।

२१. बिवोग=वियोग।

२२. सालै=कसकता है।

२३. धाह दे=धाड़ देकर। सोवत गई बिहाइ=तब समझलो कि गफ़लत में ही सारी ज़िंदगी चली गई।

२५. झूरणा=जलना।

२६. मंझ=अन्तर में।

दादू सो सर हमकौं मारिलै, जिहि सरि मिलिये जाइ।
निसदिन मारग देखिये, कबहूँ लागै आइ ॥२८॥

प्रीतम मारे प्रेम सौं, तिनकौं क्या मारै।
दादू जारे बिरह के, तिनकौं क्या जारै ॥२९॥

रोम रोम रस प्यास है, दादू करहि पुकार।
रांम घटा दल उमंगिकरि, बरसहु सिरजनहार ॥३०॥

प्रीति जु मेरे पीव की, पैठी पिंजर मांहिं।
रोम रोम पिव पिव करै, दादू दूसर नाहिं ॥३१॥

राति दिवस का रोवणां, पहर पलक का नाहिं।
रोवत रोवत मिलि गया, दादू साहिब माहिं ॥३२॥

दादू नैन हमारे बावरे, रोवै नहिं दिनरात।
सांई संग न जागहीं, पिव क्यौं पूछै बात ॥३३॥

जब बिरहा आया दरद सौं, तब मीठा लागा रांम।
काया लागी काल ह्वै, कड़वे लागे कांम ॥३४॥

आसिक मासूक ह्वै गया, इसक कहावै सोइ।
दादू उस मासूक का, अल्लहि आसिक होइ ॥३५॥

दादू प्रीतम के पग परसिये, मुख देखण का चाव।
तहाँ ले सीस नवाइये, जहां धरे थे पाव ॥३६॥

आग्या अपरंपार की, बसिअंबर भरतार।
हरे पटंबर पहिरिकरि, धरती करै सिंगार ॥३७॥

बसुधा सब फूलै फलै, पिरथी अनन्त अपार।
गगन गरजि जल थल भरै, दादू जैजैकार ॥३८॥

---

३२. मांहि=हृदय के अंदर ही।

३३. सांई संग न जागहीं=स्वामी की विद्यमानता की जब प्रतीति होती है, तब ये नेत्र समाधिस्थ हो जाते हैं।

३४. कांम=विषय-वासना।

३७. बसिअम्बर=विश्वंभर। हरे पटंबर=हरी कोमल दूब से आशय है, जो वर्षा में उगती है।

परचा कौ अंग

साधू जन क्रीला करैं, सदा सुखी तिहि गाँव।
चलु दादू उस ठौर की, मैं बलिहारी जाँव॥१॥

दादू मिंही महल बारीक है, गाँउ न ठाँउ न नाँउ।
तासौं मन लागा रहै, मैं बलिहारी जाँउ॥२॥

दादू खेल्या चाहै प्रेमरस, आलम अंगि लगाइ।
दूजे कौं ठाहर नहीं, पुहप न गंध समाइ॥३॥

जहाँ रांम तहँ मैं नहीं, मैं तहँ नाहीं रांम।
दादू महल बारीक है, द्वैकों नाहीं ठाम॥४॥

दादू है कौं भय घणां, नांहीं कौं कुछ नांहिं।
दादू नांहीं होइ रहु, अपणे साहिब माहिं॥५॥

दादू दरिया प्रेम का, तामैं झूलैं दोइ।
इक आतम परमातमा, एकमेक रस होइ॥६॥

दादू देखु दयाल कौं, रोकि रह्या सब ठौर।
घटि घटि मेरा सांईयां, तू जिनि जाणै और॥७॥

तन मन नाहीं मैं नहीं, नहिं माया नहिं जीव।
दादू एकै देखिये, दह दिसि मेरा पीव॥८॥

दादू अविनासी अंग तेज का, ऐसा तत्त अनूप।
सो हम देख्या नैनभरि, सुन्दर सहज सरूप॥९॥

परम तेज परगट भया, तहं मन रह्या समाइ।
दादू खेलै पीव सौं, नहिं आवै नहिं जाइ॥१०॥

परचा कौ अंग

१. क्रीला=क्रीड़ा, केलि; ब्रह्मविहार से आशय है।

२. मिहीं=महीन, सूक्ष्म। महल=ब्रह्मधाम; आत्म-स्थिति।

३. खेल्या चाहै=चखना चाहता है। आलम अंगि लगाइ=संसार में लिप्त होकर। ठाहर=स्थान। पुहप न गंध समाइ=फूल में दूसरी गंध समा नहीं सकती।

७. रोकि रह्या=बस रहा है।

८. दह दिसि=दसों दिशाओं में, सर्वत्र।

तेजपुंज की सुन्दरी, तेजपुंज का कंत।
तेजपुंज की सेज परि, दादू बन्या बसन्त ॥११॥

पुहप प्रेम बरिखैं सदा, हरिजन खेलैं फाग।
ऐसा कौतिग देखिये, दादू मोटे भाग ॥१२॥

कामधेन करतार है, अंमृत सरवै सोइ।
दादू बछरा दूध कौं, पीवै तौ सुख होइ ॥१३॥

ऐसी एकै गाइ है, दूझै बारह मास।
सो सदा हमारे संग है, दादू आतम पास ॥१४॥

दादू दया दयाल की, सो क्यों छानी होइ।
प्रेम-पुलक मुलकत रहै, सदा सुहागिन सोइ ॥१५॥

दादू बिगसि बिगसि दर्सन करै, पुलकि पुलकि रसपान।
मगन गलित माता रहै, अरस परस मिलि प्रान ॥१६॥

दादू जल पाषाण ज्यूं, सेवै सब संसार।
दादू पाणी लूण ज्यूं, कोइ बिरला पूजणहार ॥१७॥

साध समाना रांम मैं, रांम रह्या भरपूरि।
दादू दून्यूं एकरस, क्यौंकरि कीजै दूरि ॥१८॥

मिश्री मांहैं मेलिकरि, मोल बिकाना बंस।
यौं दादू महिंगा भया, पारब्रह्म मिलि हंस ॥१९॥

मीठे सौं मीठे भया, खारे सौ खारा।
दादू ऐसा जीव है, यहु रंग हमारा ॥२०॥

---

११. तेजपुंज....बसंत=आशय यह कि रमणी भी ब्रह्म है, रमण भी ब्रह्म है, दृश्य भी ब्रह्म है और समय भी ब्रह्म ही है। सब कुछ ब्रह्म-विहार ही है।

१२. कौतिग=कौतुक, लीला। मोटे भाग=बड़े भाग्य से।

१३. सरवै=स्त्रवै, चुवाती है।

१४. दूझै=दुही जाती है।

१५. छानी=छिपी हुई, गुप्त। मुलकत रहै=मुसकराती रहती है।

१६. बिगसि-बिगसि=प्रफुल्लित हो-होकर। गलित=विगलित, भरा हुआ, विभोर।

१९. बंस=बाँस की खपच्ची, जिस पर मिश्री को जमाते हैं। हंस=जीवात्मा।

२०. रंग=प्रकृति।

मीरां किया मेहर सौं, परदे थैं लापर्द।
राखि लिया दीदार मैं, दादू भूला दर्द॥२१॥

दादू जिहिं घटि दीपक रांम का, तिहिं घटि तिमिर न होइ।
उस उजियारे जोति के, जग सब देखै सोइ॥२२॥

दादू देही मांहैं दोइ दिल, इक खाकी इक नूर।
खाकी दिल सूझै नहीं, नूरी मंझि हजूर॥२३॥

प्रेमपियाला नूर का, आसिक भरि दीया।
दादू दर दीदार मैं, मतिवाला कीया॥२४॥

दादू प्याला नूर दा, आसिक अरसि पीवंति।
अठे पहर अल्लाह दा, मुंह दिट्ठे जीवंति॥२५॥

दादू जे जन वेधे प्रीति सौं, सो जन सदा सजीव।
उलटि समाने आपमैं, अन्तर नांहीं पीव॥२६॥

परगट खेलै पीव सौं, अगम अगोचर ठांव।
एक पलक का देखणां, जीवन मरण का नांव॥२७॥

दादू सेवग सांई बस किया, सौंप्या सब परिवार।
तब साहिब सेवा करै, सेवग के दरबार॥२८॥

प्रेम-लहरि की पालकी, आतम वैसै आइ।
दादू खेले पीव सौं, यहु सुख कह्या न जाइ॥२९॥

प्राण हमारा पीव सौं, यौं लागा रहिये।
पुहप बास घृत दूध मैं, अब कासौं कहिये॥३०॥

फल पाका बेली तजी, छिटकाया मुख मांहि।
सांई अपणा करि लिया, सो फिरि ऊगै नांहिं॥३१॥

---

२१. मीरां=सबसे ऊँचा। लापर्द=आपा के आवरण से रहित।

२३. खाकी=मलिन। नूर=उज्ज्वल, शुद्ध। मंझि=बीच में। हजूर=परमात्मा।

२५. नूर दा=परम प्रकाशमय का (पंजाबी विभक्ति का प्रयोग)। मुँह दिट्ठे=मुख देखता हुआ।

२६. उलटि समाने आपमैं=अन्तर्मुखी वृत्तियाँ करके अपने आप में लीन हो गये, प्रियतम में एकरस हो गये।

२९. वैसै=बैठती है।

३१. छिटकाया=डाल लिया। सो फिरि ऊगै नाहिं=वह फिर नहीं उगता, अर्थात् जन्म नहीं लेता।

दादू माता प्रेम का, रस मैं रह्या समाइ।
अन्त न आवै जबलगी, तबलग पीवत जाइ ॥३२॥

दादू हरिरस पीवतां, कबहूँ अरुचि न होइ।
पीवत प्यासा नित नवा, पीवणहारा सोइ ॥३३॥

दादू जैसे श्रवणां दोइ हैं, ऐसे हूँहिं अपार।
रांम-कथा-रस पीजिये, दादू बारम्बार ॥३४॥

जैसे नैना दोइ हैं, ऐसे हूँहिं अनन्त।
दादू चन्द-चकोर ज्यौं, रस पीवै भगवन्त ॥३५॥

ज्यौं घटि आतम एक है, ऐसे हूँहिं असंख।
भरि भरि राखै रांमरस, दादू एकै अंक ॥३६॥

रोम रोम रस पीजिये, एती रसनां होइ।
दादू प्यासा प्रेम का, यौं बिन तृप्ति न होइ ॥३७॥

चिड़ी चंच भरि ले गई, नीर निघटि नहिं जाइ।
ऐसा बासण नां किया, सब दरिया मांहि समाइ ॥३८॥

जरणा कौ अंग

दादू मनही माँहैं ऊपजै, मनही मांहिं समाइ।
मनही माँहैं राखिये, बाहरि कहि न जणाइ ॥१॥

सोई सेवग सब जरै, जेती उपजै आइ।
कहि न जणावै औरकौं, दादू मांहिं समाइ ॥२॥

---

३२. अंत....लगी=जब तक कि जीवन है।

३५. भगवंत=भगवान का; भाग्यवान्।

३८. दरिया माहिं समाइ=बर्तन में समुद्र समा जाये; आशय यह कि प्रेमी के अंतर में सारा प्रेम-रस भर जाये।

जरणा कौ अंग

२. सोई सेवग......आइ=वही सच्चा सेवक है, जो समस्त बाह्य जगत् के दृष्ट तथा श्रुत ज्ञान को आत्मसात् कर लेता है। 'जरणा' शब्द का अर्थ पचाना, आत्मसात् करना, गुप्त रखना आदि किया गया है। शान्ति, क्षमा, सहिष्णुता ये सब जरणा के ही फलितार्थ हैं।

सोई सेवग सब जरै, जेता रस पीया।
दादू गूझ गंभीर का, परकास न कीया ॥३॥

सोई सेवग सब जरै, प्रेमरस खेला।
दादू सो सुख कस कहै, जहँ आप अकेला ॥४॥

जरणा जोगी जुगि जुगि जीवै, झरणा मरि मरि जाइ।
दादू जोगी गुरमुखी, सहजैं रहै समाइ ॥५॥

जरणा जोगी जगपती, अविनासी अवधूत।
दादू जोगी गुरमुखी, निरअंजन का पूत ॥६॥

हैरान कौ अंग

केते पारिख जौहरी, पंडित ग्याता ध्यान।
जाण्या जाइ न जाणिये, का कहि कथिये ग्यान ॥१॥

केते पारिख पचि मुए, कीमति कही न जाइ।
दादू सब हैरान हैं, गुंगे का गुड़ खाइ ॥२॥

वारपार को ना लहै, कीमति लेखा नांहि।
दादू एकै नूर है, तेजपुंज सब मांहि ॥३॥

पाया पाया सब कहैं, केतक देहुँ दिखाइ।
कीमति किनहूँ ना कही, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥४॥

पार न देवै आपणा, गोप गूझ मन मांहि।
दादू कोई ना लहै, केते आवैं जांहि ॥५॥

गुंगे का गुड़ का कहूं, मन जानत है खाइ।
त्यौं रांमरसाइण पीवतां, सो सुख कह्या न जाइ ॥६॥

---

३. गूझ=गुह्य, गोपनीय।

५. जरणा=चित्तवृत्तियों की अधीनता; वीर्य-क्षय से भी तात्पर्य है।

६. जरणा=ऊर्ध्वरिता की अर्थात् वीर्यधारण करने की साधना से भी तात्पर्य हे। अवधूत=माया रहित विशुद्ध आत्मस्वरूप। निरअंजन=निरंजन, अविनाशी ब्रह्म।

हैरान कौ अंग

१. ध्यान=ध्यानी।

५. गूझ=गुह्य, गुप्त।

दादू केते कहि गये, अन्त न आवै और।
हमहूँ कहते जात हैं, केते कहसी होर ॥७॥

ना कहिं दिठ्ठा ना सुण्या, ना कोइ आखणहार।
ना कोइ उत्तौं थी फिर्या, ना उर वार नपार ॥८॥

देखि दिवाने ह्वै गये, दादू खरे सयान।
वार पार कोइ नां लहै, दादू है हैरान ॥९॥

दादू जिन मोहनि बाजी रची, सो तुम्ह पूछौ जाइ।
अनेक एकथैं क्यों किये, साहिब कहि समझाइ ॥१०॥

लैं कौ अंग

किहिं मारग ह्वै आइआ, किहिं मारग ह्वै जाइ।
दादू कोई नां लहै, केते करै उपाइ ॥१॥

सून्यहि मारग आइया, सून्यहि मारग जाइ।
चेतन पैंडा सुरति का, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥२॥

दादू गावै सुरति सौं, बाणी बाजै ताल।
यहु मन नाचै प्रेम सौं, आगैं दीनदयाल ॥३॥

दादू ज्यौं वै बरत गगन थैं टूटै, कहा धरणि कहँ ठांम।
लागी सुरति अंगथैं छूटै, सो कत जीवै रांम ॥४॥

---

७. कहसी=कहेंगे। होर=और (पंजाबी प्रयोग)।

८. आखणहार=कहने वाला। उत्तौं थी=वहाँ से, परलोक से। उर=वहाँ का।

९. खरे सयान=पूरे चतुर।

१०. मोहनि=मोह लेने वाले परमात्माने। बाजी=खेल, लीला।

लै कौ अंग

१. नां लहै=भेद नहीं मिलता है।

२. पैंडा=मार्ग। सुरति=लय, तन्मयता। ल्यौ=एकाग्रता से ध्यान।

३. बाजै=बजाती है।

४. दादू ज्यौं.....जीवै रांम=नट लय लगाकर रस्सी पर अधर नाचता है। पीछे उसकी लय टूट जाय तो उसे फिर उस धरती को छोड़ और कहाँ ठौर है, इसी प्रकार प्रभु से लगी लय यदि छूट जाय तो साधक कैसे जी सकता है?

आदि अंति मधि एकरस, टूटै नहिं धागा।
दादू एकै रहि गया, तब जाणी जागा ॥५॥

निहकर्मी पतिब्रता कौ अंग

गोब्यंद गोसांई तुम्हें अम्हंचा गुरु, तुम्हें अम्हंचा ग्यान।
तुम्हे अम्हंचा देव, तुम्हे अम्हंचा ध्यान ॥१॥

तुम्हें अम्हंची पूजा, तुम्हे अम्हंचा पाती।
तुम्हें अम्हंचा तीर्थ, तुम्हे अम्हंचा जाती ॥२॥

तुम्हे अम्हंचा सील, तुम्हें अम्हंचा सन्तोख।
तुम्हे अम्हंची मुकति, तुम्हे अम्हंचा मोख ॥३॥

दादू रांम कहूं ते जोड़िबा, रांम कहूं ते साखि।
रांम कहूं ते गाइबा, रांम कहूं ते राखि ॥४॥

सब सुख मेरे सांईयां, मंगल अति आनन्द।
दादू साजन सब मिले, जब भेंटे परमान्द ॥५॥

दादू मेरे हिरदै हरि बसै, दूजा नांहीं और।
कहौ कहाँधौं राखिये, नहीं आन कौं ठौर ॥६॥

मन चित मनसा पलक मैं, सांई दूरि न होइ।
निहकामी निरखै सदा, दादू जीवनि सोइ ॥७॥

पतिब्रता गृह आपणै, करै खसम की सेव।
ज्यौं राखै त्यौंही रहै, आग्याकारी टेव ॥८॥

दादू नीच ऊँच कुल सुन्दरी, सेवा सारी होइ।
सोई सुहागिन कीजिये, रूप न पीजै धोइ ॥९॥

---

५. धागा=लय से आशय है। जागा=आत्म-बोध हुआ।

निहकर्मी पतिब्रता कौ अंग

१. अम्हंचा अम्हंची=हमारा-हमारी (मराठी प्रयोग)।

४. जोड़िबा=पद-रचना करूँगा। साखि=साखी; आत्मानुभूति के दोहे। राखि=दृढ़ धारणा।

८. टेव=स्वभाव।

९. सेवा सारी होइ=यदि सेवा अच्छी हो। रूप.....धोइ=केवल सुंदर रूप का आदर नहीं किया जाता।

पर पुरिखा सब परहरै, सुन्दरि देखै जागि।
आपण पीव पिछाणकरि, दादू रहिये लागि ॥१०॥

आन पुरिख हूँ बहनड़ी, परम पुरिख भर्त्तार।
हूँ अबला समझौं नहीं, तूं जाणैं कर्त्तार ॥११॥

दादू सारौं सौं दिल तोरिकरि, सांई सौं जौरै।
सांई सेती जोड़िकरि, काहेकौं तोरै ॥१२॥

नारी सेवग तबलगैं, जबलग सांई पास।
दादू परसै आन कौं, ताकी कैसी आस ॥१३॥

कीया मन का भावतां, मेटी आग्याकार।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥१४॥

करामाति कलंक है, जाकै हिरदै एक।
अति आनन्द बिभचारिणी, जाकै खसम अनेक ॥१५॥

दादू रहता राखिये, बहता देइ बहाइ।
बहत संगि न आइये, रहते सौं ल्यौ लाइ ॥१६॥

दादू सो वेदन नहिं बावरे, आंन किये जे जाइ।
सब दुखभंजन सांईयां ताही सौं ल्यौ लाइ ॥१७॥

दादू औषदि मूली कुछ नहीं, ये सब झूठी बात।
जे औषदि ही जीजिये, तौ काहेकौं मरि जात ॥१८॥

साहिब का दर छाड़िकरि, सेवग कहीं न जाइ।
दादू बैठा मूल गहि, डालौं फिरै बलाइ ॥१९॥

सब आया उस एक मैं, डाल पांन फल फूल।
दादू पीछैं क्या रह्या, जब निज पकड़्या मूल ॥२०॥

---

१०. परहरै=छोड़दे। रहिये लागि=प्रीति जोड़कर चिपट रहे।

११. बहनड़ी=बहन। भर्त्तार=स्वामी।

१३. तबलगैं=तब तक। परसै=प्रीति करे।

१५. करामाति=चमत्कार। आनन्द=संसारी विषय-सुख।

१६. रहता=स्थिर, नित्य। बहता=अस्थिर, अनित्य।

१७. दादू सो.....जाइ=अरे बावले, भ्रमजनित दुःख कोई ऐसा-वैसा दुःख नहीं है, जो अन्य साधारण उपायों से चला जाये।

दादू टीका रांम कौ, दूसर दीजै नाहिं।
ग्यान ध्यान तप भेष पख, सब आये उस माहिं ॥२१॥

दादू कोई बांछै मुकतिफल, कोइ अमरापुरि बास।
कोई बांछै परमगति, रांममिलन की प्यास ॥२२॥

प्रेमपियासा रांमरस, हमकौं भावै येह।
रिधि सिधि मांगैं मुकतिफल, चाहै तिनकौं देह ॥२३॥

कोटि बरस क्या जीवणां, अमर भये क्या होइ।
प्रेमभगति रस रांम बिन, का दादू जीवनि सोइ ॥२४॥

सुत बित मांगैं बावरे, साहिब सी निधि मेलि।
दादू वै निर्फल गये, जैसे नागरबेलि ॥२५॥

दादू सांई कौं संभालतां, कोटि विघन टलि जांहि।
राई मांन बसंदरा, केते काठ जलांहि ॥२६॥

चितावणी कौ अंग

दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो सब परहरि प्रांण।
मनसा बाचा कर्मना, जे तूं चतुर सुजांण ॥१॥

दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो जीव न कीजी रे।
परहरि बिषै-बिकार सब, अंमृत-रस पीजी रे ॥२॥

दादू कर सांईं की चाकरी, ये हरिनांव न छोड़।
जाणा है उस देसकौं, प्रीति पिया सौं जोड़ ॥३॥

आपा पर सब दूरि कर, रांमनांम-रस लाग।
दादू औसर जात है, जागि सकै तौ जाग ॥४॥

---

२१. पख=पक्ष, शास्त्रीय अथवा साम्प्रदायिक वाद।

२२. बांछै=चाहता है। अमरापुरि=स्वर्ग। परमगति=मोक्ष।

२५. मेलि=फेंककर। नागरबेलि=एक लता जो न फूलती है न फलती है।

२६. संभालतां=स्मरण करते हुए। राई मांन=एक राईभर; ज़रा-सी। बसंदरा=आग।

चितावणी कौ अंग

१. प्रांण=हे प्रांणी।

४. आपा पर=अपने-पराये का भेद-भाव।

दादू तन मन के गुण छाड़ि सब, जब होइ निनारा।
तब अपने नैनहुं देखिये, परगट पीव पियारा ॥५॥

मन कौ अंग

सो कुछ हमथैं ना भया, जापरि रीझै रांम।
दादू इस संसार मैं, हम आये बेकांम ॥१॥

कीया मन का भावता, मेटी आग्याकार।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥२॥

दादू पंचौं का मुख मूल है, मुख का मनवां होइ।
यहु मन रोकै जतनकरि, साध कहावै सोइ ॥३॥

दादू पंचौं ये परमोधिले, इनहीं कौं उपदेस।
यहु मन अपणा हाथि करि, तौ चेला सब देस ॥४॥

पाका मन डोलै नहीं, निहचल रहै समाइ।
काचा मन दह दिसि फिरै, चंचल चहुं दिसि जाइ ॥५॥

मन इन्द्री आंधा किया, घट में लहरि उठाइ।
सांई सतगुर छाड़िकरि, देखि दिवांना जाइ ॥६॥

अगनि धोम ज्यौं नीकलै, देखत सबै बिलाइ।
त्यौं मन बिछुट्या रांम सौं, दह दिसि बीखरि जाइ ॥७॥

तन में मन आवै नहीं, चंचल चहुँ दिसि जाइ।
दादू मेरा जिव दुखी, रहै न रांम समाइ ॥८॥

---

५. निनारा=न्यारा, अलग, अनासक्त। परगट=प्रत्यक्ष।

मन कौ अंग

१. जापरि=जिस साधन से।

३. मुख=वाणी।

४. पंचौं=पाँचों इन्द्रियों को। परमोधिले=प्रवोध ले या ज्ञान देदे।

६. घट.....उठाइ=हृदय में वासना की लहर पैदा करदी।

७. धोम=धूआँ।

८. तनमें मन आवै नहीं=मन अन्तर्मुखी नहीं हो रहा है।

कोटि जतन करि करि मुये, यहु मन दह दिसि जाइ।
रांम नांम रोक्या रहैं, नांहीं आन उपाइ ॥९॥

यहु मन बहु बकवाद सौं, बाइभूत ह्वै जाइ।
दादू बहुत न बोलिये, सहजैं रहै समाइ ॥१०॥

दादू जिसका दर्पण ऊजला, सो दर्सण देखैं मांहिं।
जिसकी मैली आरसी, सो मुख देखै नांहिं ॥११॥

दादू यह मन मींडका, जल सौं जीवै सोइ।
दादू यहु मन रिंद है, जिनि रु पतीजै कोइ ॥१२॥

दादू जे जे चिति बसै, सोइ सोइ आवै चीति।
बाहरि भीतरि देखिये, जाही सेती प्रीति ॥१३॥

बरतणि एकै भांति सब, दादू संत असंत।
भिन्न भाव अन्तरघणा, मनसा तहँ गच्छंत ॥१४॥

माया कौ अंग

दादू माया का सुख पंचदिन, गर्ब्यौ कहा गवार।
सुपिनें पायौ राजधन, जात न लागै वार ॥१॥

दादू जतन जतन करि राखिये, दिढ़ गहि आतममूल।
दूजा दृष्टि न देखिये, सब ही सैंबल फूल ॥२॥

मन की मूठि न मांडिये, माया के नीसाण।
पीछैं ही पछिताहुगे, दादू खोटे बाण ॥३॥

---

१०. बाइभूत=वातप्रकोप, प्रेत-बाधा जैसी उन्मत्त चेष्टा करना।

१२. मींडका=मेंढक। रिंद=स्वेच्छाचारी। जिनि पतीजै कोई=कोई इस पर विश्वास न करे।

१४. वरतणि=ऊपरी चेष्टा। मनसा तहँ गच्छंत=वहाँ मन कहाँ जा रहा है यह देखा जाता है।

माया कौ अंग

२. सैंबल=सेमर वृक्ष; इस वृक्ष के लाल फल के अंदर गूदा नहीं होता, केवल रूई रहती है।

३. मन की मूठि...वाण=मनरूपी तीर को कमानपर चढ़ाकर माया के निशान पर न छोड़े, अर्थात् मन को माया में न लगाये, नहीं तो इस खोटी तीरन्दाज़ी से बहुत पछताना पड़ेगा।

कुछ खातां कुछ खेलतां, कुछ सोवत दिन जाइ।
कुछ बिषियारस बिलसतां, दादू गये बिलाइ ॥४॥

मांखण मन पाइण भया, मायारस पीया।
पाहण मन मांखण भया, रांमरस लीया ॥५॥

दादू नगरी चैन तब, जब इक राजी होइ।
दोइ राजी दुख दुंद मैं, सुखी न बैसै कोइ ॥६॥

काम कठिन घट चोर हैं, मूसै भरे भंडार।
सोवतहीं ले जाइगा, चेतनि पहरे चार ॥७॥

ज्यों घुन लागै काठ कौं, लोहै लागै काट।
काम किया घट जाजरा, दादू बारह बाट ॥८॥

आपै मारे आपकौं, आप आपकौं खाइ।
आपै अपणा काल है दादू कहि समझाइ ॥९॥

सांपणि इक सब जीव कौं, आगै पीछै खाइ।
दादू कहि उपगार करि, कोइजन ऊबरि जाइ ॥१०॥

दादू माया कारणि जग मरै, पीव के कारणि कोइ।
देखौ ज्यौं जग परजलै, निमष न न्यारा होइ ॥११॥

काल कनक अरु कामिनी, परहरि इनका अंग।
दादू सब जग जलि मुवा, ज्यौं दीपक जोति पतंग ॥१२॥

दादू केते जलि मुए, इस जोगी की आगि।
दादू दूरे बंचिये, जोगी के संगि लागि ॥१३॥

बिना भुवंगम हम डसे, बिन जल डूबे जाइ।
बिनहीं पावक ज्यौं जले, दादू कुछ न बसाइ ॥१४॥

---

४. गये बिलाइ=समाप्त हो गये, अन्त आ गया।

६. इक राजी=केवल एक राजा का राज्य। दोइ राजी=एक साथ दो-दो राजाओं का राज्य।

७. मूसै=चुरा लेता है।

८. काट=मोरचा, जंग। जाजरा=जर्जर। बारह बाट=सत्यानाश।

११. परजलै=प्रज्वलित होता है, जलता रहता है।

देखौ.....होइ=देखो, जिस प्रकार यह सारा जगत् जल रहा है, तो भी कोई क्षणमात्र भी इस माया से न्यारा नहीं होना चाहता।

१३. जोगी की आगि=परमेश्वर की आग; माया से आशय है।

सुर नर मुनियर बसि किये, ब्रह्मा विश्न महेस।
सगल लोक के सिर खड़ी, साधू के पग हेठ ॥१५॥

दादू माया चेरी सन्त की, दासी उस दरबारि।
ठकुराणी सब जगत की, तीन्यूं लोक मंझारि ॥१६॥

जोगणि ह्वै जोगी गहे, सोफणि ह्वै करि सेख।
भगतणि ह्वै भगता गहे, करि करि नाना भेख ॥१७॥

दादू जेहि घट ब्रह्म न प्रगटै, तहँ माया मंगल गाइ।
दादू जागै जोति जब, तब माया भरम बिलाइ ॥१८॥

माता नारी पुरिख की, पुरिख नारि का पूत।
दादू ग्यान बिचारिकरि, छाड़ि गये अवधूत ॥१९॥

माया मैली गुणमई, धरि धरि उज्जल नांव।
दादू मोहै सबनकौं, सुर नर सबहीं ठांव ॥२०॥

चिंतामणि कंकर किया, मांगै कछू न देइ।
दादू कंकर डारिदे, चिंतामणि कर लेइ ॥२१॥

सूरिज फटिक पषाण का, तासौं तिमर न जाइ।
साचा सूरिज परगटै, दादू तिमर नसाइ ॥२२॥

मूरति घड़ी पखाण की, कीया सिरजनहार।
दादू साच सूझै नहीं, यूं डूबा संसार ॥२३॥

माया सांपणि सब डसै, कनक कांमणी होइ।
ब्रह्मा बिश्न महेस लौं, दादू बचै न कोइ ॥२४॥

बाबा बाबा कहि गिलै, भाई कहि कहि खाइ।
पूत पूत कहि पी गई, पुरिखा जिनि पतियाइ ॥२५॥

---

१५. मुनियर=मुनिवर। हेठ=नीचे दबी पड़ी है।

१७. सोफणि=सूफिनी, सूफ़ी की चेली। सेख़=अद्वैतवादी मुसलमान फ़कीर।

१९. अवधूत=विशुद्धात्मा, मुक्तपुरुष।

२०. गुणमई=त्रिगुणात्मिका।

२१. चिंतामणि=एक मणि जिसे प्राप्त करने से, कहते हैं, सब चिंताएँ दूर हो जाती हैं।

२२. फटिक=स्फटिक, बिल्लौर।

२३. घड़ी=बनाई। कीया=रचा।

२५. गिलै=निगल जाती है। पुरिखा=समझदार आदमी।

साच कौ अंग

आपस कौं मारै नाही, पर कौं मारन जाइ।
दादू आपा मारे बिना, कैसे मिलै खुदाइ ॥१॥

सो काफिर जे बोलै काफ, दिल अपणा नहिं राखै साफ।
सांई कौं पहिचानै नांही, कूड़ कपट सब उनहीं मांही ॥२॥

सांई का फुरमान न मानैं, कहां पीव ऐसैं करि जानैं।
मन आपणैं मैं समझत नांहीं, निरखत चलै आपणीं छांही ॥३॥

जोर करै, मसकीन सतावैं, दिल उसकी मैं दर्द न आवै।
सांई सेती नांही नेह, गर्व करै अति अपणीं देह ॥४॥

इन बातन क्यौं पावै पीव, परधन ऊपरि राखै जीव।
जोर जुलम करि कुटंब सूं खाइ, सो काफिर दोजग मैं जाइ ॥५॥

मुसलभान जो राखै मान, सांई का मानै फुरमान।
सारों कौं सुखदाई होई, मुसलमान करि जानूं सोई ॥६॥

दादू मुसलमान मिहर गहि रहै, सबकौं सुख, किसहीं नहिं दहै।
मुवा न खाइ, जिवत नहिं मारै, करै बंदगी राह संवारै ॥७॥

सो मोमिन मनमैं करि जाणि, सति सबूरी बैसे आणि।
चलै साच संवारै बाट, तिनकूं खुले भिस्त के पाट ॥८॥

साच कौ अंग

१. आपस=खुदी, आपा, अहंकार।

२. काफ़=नास्तिकता, ईश्वरपर अविश्वास। कूड़=झूठ।

३. फुरमान=आदेश। निरखत चलै आपनी छांहीं=ऐंठकर चलता है।

४. जोर=जुल्म। मसकीन=गरीब।

५. दोजग=दोज़ख, नरक।

६. मान=ईमान; सत्य पर विश्वास।

७. दहै=जलाता है, दुख देता है। मुवा=मुर्दार मांस। राह सँवारै=धर्म-कर्म से अपने परलोक का रास्ता बनाता है।

८. सबूरी=सन्तोष। मोमिन=धार्मिक मुसलमान। सँवारै बाट=जो परलोक का रास्ता बनाता है। भिस्त=बहिश्त, स्वर्ग।

सो मोमिन मोमदिल होइ, सांई कौं, पहिचानै सोइ।
जोर न करै, हराम न खाइ, सो मोमिन भिसत मैं जाइ ॥६॥

फूटी नाव समंद मैं, सब डूबण लागे।
अपणां अपणां जीव ले, सब कोई भागे ॥१०॥

इस कलि केते ह्वै गये, हिन्दू मुसलमान।
दादू साची बंदगी, झूठा सब अभिमान ॥११॥

दादू काया महल मैं निमाज गुजारूँ, तहँ और न आवन पावै।
मन मणके करि तसबी फेरूं, तब साहिब के मन भावै ॥१२॥

दिल दरिया मैं गुसल हमारा, ऊजू करि चित लाऊं।
साहिब आगै करूं बंदगी, बेर बेर बलि जाऊं ॥१३॥

दादू पंचों संगि संभालूं सांई, तन मन तब सुख पाऊं।
प्रेमपियाला पिवजी देवैं, कलमा ये लै लाऊं ॥१४॥

दादू हिन्दू मारग कहै हमारा, तुरक कहै रह मेरी।
कहां पंथ है कहौ अलह का, तुम तौ ऐसी हेरी ॥१५॥

दादू पद जोड़े साखी कहै, बिषै न छाड़े जीव।
पानी घालि बिलोइये, क्यौंकरि निकसैं घीव ॥१६॥

कहिबे सुनिबे मन खुसी, करिबा औरै खेल।
बातौं तिमर न भाजई, बिन दीवा बाती तेल ॥१७॥

मनसा के पकवान सौं, क्यौं पेट भरावै।
ज्यौं कहिये त्यौं कीजिये, तबहीं बनि आवै ॥१८॥

दादू बातौं ही पहुँचै नहीं, घर दूरि पयाना।
मारग पंथी उठि चलै, दादू सोई सयाना ॥१६॥

दादू निवरे नांव बिन, झूठा कथैं गियान।
बैठे सिर खाली करैं, पंडित बेद पुरान ॥२०॥

---

१२. तसबी=तसबीह, माला।

१३. ऊजू=बजू, नमाज से पहले मुँह-हाथ धोने की क्रिया।

१७. बातौं......तेल=बिना दिये, बत्ती और तेल के कोरी बातों से अंधेरा दूर नहीं होता। तुलसीदास ने भी कहा है, 'निसि ग्रहमध्य दीप की बातन्हि तम निवृत्त नहिं होई।'

१६. पयाना=प्रयाण, कूच।

२०. निवरे=बहुत सारे।

सब हम देख्या सोधिकरि, बेद कुरानों मांहि।
जहां निरंजन पाइये, सो देस दूरि इत नांहि ॥२१॥

मसि कागद के आसिरे, क्यौं छूटै संसार।
रांम बिना छूटै नहीं, दादू भर्म बिकार ॥२२॥

कागद काले करि मुये, केते बेद पुरान।
एकै अखिर पीव का, दादू पढ़ै सुजान ॥२३॥

दादू पाती प्रेम की, बिरला बांचै कोइ।
बेद पुरान पुस्तक पढ़े, प्रेम बिना क्या होइ ॥२४॥

अंतरगति औरै कछू, मुख रसना कुछ और।
दादू करणी और कुछ, तिनकौं नाहीं ठौर ॥२५॥

दादू दून्यूं भरम हैं, हिन्दू तुरक गँवार।
जे दुहुवाँ थैं रहित हैं, सो गहि तत्त बिचार ॥२६॥

पूरण ब्रह्म बिचारिये, सकल आतमा एक।
काया के गुण देखिये, नाना बरण अनेक ॥२७॥

दादू जिन कंकर पत्थर सेविया, सो अपना मूल गँवाइ।
अलख देव अंतरि बसै, क्या दूजी जागह जाइ ॥२८॥

पत्थर पीवैं धोइकरि, पत्थर पूजैं प्राण।
अन्तिकाल पत्थर भये, बहु बूड़े इहि ग्यान ॥२९॥

दादू पैंडे पाप कै, कदे न दीजै पांव।
जिहिं पैंडे मेरा पिव मिलै, तिहिं पैंडे का चाव ॥३०॥

दादू केई दौड़े द्वारिका, केई कासी जांहि।
केई मथुरा कौं चले, साहिब घटहीं मांहि ॥३१॥

दादू सब थे एक के, सो एक न जांना।
जणे जणे का है गया, यहु जगत दिवांना ॥३२॥

सोइ जन साचे सो सती, सोइ साधक सूजान।
सोइ ग्यानी सोइ पंडिता, जे राते भगवान ॥३३॥

---

२३. अखिर=अक्षर।

२८. जागह=जगह, तीर्थस्थानों से तात्पर्य हैं।

३०. पैंडे=रास्ता से।

३३. राते=रँगे हुए, अनुरक्त।

सोई काजी, सोई मुल्ला, सोइ मोमिन मूसलमान।
सोई सयाने सब भले, जे राते रहिमान ॥३४॥

कबीर बिचारा कह गया, बहुत भांति समझाइ।
दादू दुनिया बावरी, ताके संगि न जाइ ॥३५॥

जे पहुँचे ते कहि गये, तिनकी एकै बात।
सबै सयाने एकमत, उनकी एकै जात ॥३६॥

जे पहुँचे ते पूछिये, तिनकी एकै बात।
सब साधौं क़ा एकमत, बिच के बारह बाट ॥३७॥

भेष कौ अंग

दादू कनक कलस बिष सूंभरया, सो किस आवै काम।
सो धनि कूटा चाम का, जामै अंमृत रांम ॥१॥

पीव न आवै बावरी, रचि रचि करै सिंगार।
दादू फिरि फिर जगत सूं, करैगी तूं बिभचार ॥२॥

साध कौ अंग

दादू निराकार मन सुरति सौं, प्रेम प्रीति सौं सेव।
जे पूजै आकार कौं, तौ साधू प्रतखि देव ॥१॥

साध नदी, जल रांमरस, तहां पखालै अंग।
दादू निर्मल मल गया साधू जन के संग ॥२॥

दादू नेड़ा परमपद, करि साधू का संग।
दादू सहजैं पाइये, तन मन लागै रंग ॥३॥

भेष कौ अंग

१. कूटा चाम का=चमड़े का कुप्पा। धनि=धन्य है।

साध कौ अंग

१. प्रतखि=प्रत्यक्ष।

२. पखालै=पखारे, धोये, निर्मल करे।

३. नेड़ा=निकट। परमपद=मोक्ष। रंग=प्रेम-भक्ति।

दादू नेड़ा परमपद, साधू संगति होइ।
दादू सहजैं पाइये, स्याबत सन्मुख सोइ ॥४॥

साध मिलै तब ऊपजे, हिरदै हरि का भाव।
दादू संगति साध की, जब हरि करै पसाव ॥५॥

दादू पाया प्रेमरस, साधू-संगति माहिं।
फिरि फिरि देखै लोक सब, यहु रस कतहूं नाहिं ॥६॥

दादू जिस रस कूं मुनियर मरैं, सुरनर करैं कलाप।
सो रस सहजैं पाइये, साधू-संगति आप ॥७॥

दादू चन्दन कदि कह्या, अपना प्रेमप्रकास।
दह दिसि परगट ह्वै रहया, सीतल गन्ध सुवास ॥८॥

दादू पारस कदि कह्या, मुझ थी कंचन होइ।
पारस परगट ह्वै रह्या, साच कहै सब कोइ ॥९॥

जे जन हरि के रंगि रंगे, सो रंग कदे न जाइ।
सदा सुरंगे सन्तजन, रंग मैं रहे समाइ ॥१०॥

परउपगारी सन्त सब, आये इहि कलि माहिं।
पिवैं पिलावैं रांमरस, आप सवारथ नाहिं ॥११॥

चन्द सूर पावक पवन, पाणी का मत सार।
धरती अम्बर रातिदिन, तरवर फलैं अपार ॥१२॥

दादू इस संसार मैं, ये द्वै रतन अमोल।
इस सांई अरु संतजन, इनका मोल न तोल ॥१३॥

जलत बलती आत्मा, साध सरोवर जाइ।
दादू पीवै रांमरस, सुख में रहै समाइ ॥१४॥

जिंहिं घटि दीपक रांम का, तिंहिं घटि तिमर न होइ।
उस उजियारे जोति के, सब जग देखै सोइ ॥१५॥

---

४. स्याबत=पूर्ण, अखण्ड।

५. पसाव=प्रसाद, कृपा।

७. मुनियर=मुनिवर। मरैं=घोर तप कर-कर प्रयत्न करते हैं।

११. सवारथ=स्वार्थ।

१२. चन्द....अपार=चन्द्र, सूर्य, अग्नि, पवन, जल, पृथ्वी, आकाश और वृक्ष सदा दूसरों के लिए ही अपनी अखुट सम्पत्ति लुटाते रहते हैं—अथवा, 'परोपकाराय सतां विभूतयः।'

साध सदा संजमि रहै, मैला कदे न होइ।
दादू पंक परसै नहीं, कर्म न लागै कोइ॥१९॥

को साधू जन उस देस का, आया इहि संसार।
दादू उसकौं पूछिये, प्रीतम के समचार॥१७॥

साध सबद-सुख बरखिहैं, सीतल होइ सरीर।
दादू अन्तरि आत्मा, पीवै हरिजल नीर॥१८॥

सबही मृत्तक ह्वै रहे, जीवैं कौन उपाइ।
दादू अंमृत रांमरस, को साधू सींचैं आइ॥१९॥

हरिजल बरिखे, बाहिरा, सूके काया-खेत।
दादू हरिया होइगा, सींचणहार सुचेत॥२०॥

विष का अंमृत करि लिया, पावक का पाणी।
बांका सूधा करि लिया, सो साध बिनाणी॥२१॥

दादू ऊरा पूरा करि लिया, खारा मीठा होइ।
फूटा सारा करि लिया, साध बमेकी सोइ॥२२॥

बंध्या मुक्ता करि लिया, उरझ्या सुरझि समान।
बैरी मिंता करि लिया, दादू उत्तिम ग्यान॥२३॥

मधि कौ अंग

मति मोटी उस साध की, द्वै पख रहित समान।
दादू आपा मेटिकरि, सेवा करै सुजान॥१॥

---

१९. संजमि=संयमी, निर्मल। पंक=कर्म की आसक्ति से आशय है।

२०. हरिजल......सुचेत=यदि सींचनेवाला साधक सुचेत हो, तो हरिजल के बरसते ही जिन कायारूपी खेतों को काम-क्रोध के वायु ने सुखा दिया था, वे हरे हो जायेंगे।

२१. बिनाणी=विज्ञानी।

२२. ऊरा=अधूरा। सारा=साबत, अखण्ड। बमेकी=विवेकी।

२३. मिंता=मित्र।

मधि कौ अंग

१. द्वै पख रहित=दोनों पक्षों, अर्थात् मित्र पक्ष तथा शत्रु पक्ष दोनों से दूर, तटस्थ, उदासीन।

कछु न कहावै आपकौ, काहू संगि न जाइ।
दादू निर्पख ह्वै रहै, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥२॥

एक देस हम देखिया, तहं रुति नहिं पलटै कोइ।
हम दादू उस देस के, जहं सदा एकरस होइ ॥३॥

एक देस हम देखिया, नहिं नेड़े नहिं दूरि।
हम दादू उस देस के, रहे निरंतरि पूरि ॥४॥

ना घरि रह्या न बन गया, ना कुछ किया कलेस।
दादू मनहीं मन मिल्या, सतगुर के उपदेस ॥५॥

घर बन माहैं सुख नहीं, सुख है सांई पास।
दादू तासौं मन मिल्या, इन थें भया उदास ॥६॥

दादू जीवन मरण का, मुझ पछितावा नांहिं।
मुझ पछितावा पीव का, रह्या न नैन्हुं मांहि ॥७॥

सुरग नरक संसै नहीं, जीवन मरण भै नांहि।
रामविमुख जे दिन गये, सो सालैं मन मांहि ॥८॥

दादू हिन्दू तुरक न होइबा, साहिब सेती कांम।
षट दर्सन संगि न जाइबा, निर्पख कहिबा रांम ॥९॥

दादू ना हम हिन्दू होहिंगे, ना हम मूसलमान।
षट दर्सन मैं हम नहीं, हम राते रहिमान ॥१०॥

दादू करणी हिन्दू तुरक की, अपणी अपणी ठौर।
दुहुं बिचि मारग साध का, यहु संतौं की रह और ॥११॥

दादू हिन्दू लागे देहुरै, मूसलमान मसीति।
हम लागे एक अलेख सौं, सदा निरन्तर प्रीति ॥१२॥

ना तहँ हिन्दू देहुरा, ना तहँ तुरक मसीति।
दादू आपै आप है, नहीं तहाँ रह रीति ॥१३॥

---

३. रुति=ऋतु।

६. उदास=तटस्थ।

८. संसै=भय। सालैं=कष्ट देते हैं।

९. षट दर्सन=छह शास्त्र।

११. रह=राह।

१२. देहुरै=मंदिर। मसीति=मसजिद।

यहु मसीति यहु देहुरा, सतगुर दिया दिखाइ।
भीतरि सेवा बंदिगी, बाहरि काहे जाइ ॥१४॥

अपने अपने पंथ कौं, सबको कहै बढ़ाइ।
ताथैं दादू एक सौं, अन्तरगति ल्यौ लाइ ॥१५॥

दादू भाव-हीण जे पृथमी, दया-बिहूणा देस।
भगति नहीं भगवंत की, तहँ कैसा परवेस ॥१६॥

सारग्राही कौ अंग

दादू गऊ बच्छ का ग्यान गहि, दूध रहै ल्यौ लाइ।
सींग पूंछ पग परहरै, अस्थन लागै धाइ ॥१॥

दादू साध सबै करि देखणां, असाध न दीसै कोइ।
जिहिं के हिरदै हरि नहीं, तिहिं तनि टोटा होइ ॥२॥

जब जीवनमूरी पाइये, तब मरिबा कौन बिसाहि।
दादू अमृत छाड़िकरि, कौन हलाहल खाहि ॥३॥

दादू एकै घोड़ै चढ़ि चलै, दूजा कोतिल होइ।
दुहुं घोड़ौं चढ़ि बैसतां, पारि न पहुंता कोइ ॥४॥

विचार कौ अंग

मीत तुम्हारा तुम्ह कनें, तुमहीं लेहु पिछाणि।
दादू दूरि न देखिये, प्रतिबिंबा ज्यूं जाणि ॥१॥

दादू सोचि करै सो सूरिवां, करि सोचै सो कूर।
करि सोच्यां मुख स्याम है, सोचि कियां मुख नूर ॥२॥

सारग्राही कौ अंग

१. अस्थन=थन, स्तन।
२. तिहिं तनि टोटा होइ=उस शरीर से हानि ही है।
३. जीवनमूरी=संजीवनी बूटी। बिसाहि=मोल ले।
४. कोतिल=बिना सवारी का घोड़ा। बैसतां=बैठा हुआ। पहुंता=पहुँचा।

विचार कौ अंग

१. तुम्ह कनें=तुम्हारे पास।
२. सूरिवां=शूर, पुरुषार्थी। करि सोचै=पीछे सोचता है। क्रूर=मूर्ख, कायर। स्याम=काला, कलंकित। नूर=उज्ज्वल।

जे मति पीछै ऊपजै, सो मति पहिली होइ।
कबहुं न होवै जी दुखी, दादू सुखिया सोइ ॥३॥

बेसास कौ अंग

दादू सहजैं सहजैं होइगा, जे कुछ रचिया रांम।
काहेकौं कलपै मरै, दुखी होत बेकांम ॥१॥

दादू भाड़ा देह का, तेता सहजि बिचारि।
जेता हरि बीचि अन्तरा, तेता सबै निवारि ॥२॥

बिपति भली हरिनांव सौं, काया कसौटी दुख।
रांम बिना किस कांम का, दादू संपति सुख ॥३॥

दादू होणा था सो ह्वै रह्या, जिनि बांछै सुख दुख।
सुख मांगें दुख आइसी, पै पिव न बिसारी मुख ॥४॥

दादू होणा था सो ह्वै रह्या, जे कुछ कीया पीव।
पल बधै न छिन घटै, ऐसी जाणी जीव ॥५॥

दादू होणा था सो ह्वै रह्या, और न होवै जाइ।
लेणा था सो ले रहे, और न लीया जाइ ॥६॥

सांई सत सन्तोख दे, भाव भगति बेसास।
सिदक सबूरी साच दे, मांगै दादू दास ॥७॥

पीव पिछाण कौ अंग

सब लालौं सिरि लाल है, सब खूबौं सिरि खूब।
सब पाकौं सिरि पाक है, दादू का महबूब ॥१॥

बेसास कौ अंग

४. जिनि बांछै=मत इच्छा कर।
५. बधै=बढ़ता है।
७. बेसास=विश्वास, श्रद्धा। सबूरी=संतोष।

पीव पिछाण कौ अंग

१. सब लालौं सिरि=सब प्यारों से ऊपर, अत्यंत उत्कृष्ट। खूबौं सिरि=सुन्दर से ऊपर, अनुपम सुन्दर। महबूब=प्रियतम।

जे था कंत कबीर का, सोई बर बरिहूँ।
मनसा वाचा कर्मना, मैं और न करिहूँ ॥२॥

लोहा पारस परसिकरि, पलटै अपना अंग।
दादू कंचन ह्वै रहै, अपने सांई संग ॥३॥

समर्थाई कौ अंग

मीरां मुझसौं मिहर करि, सिर पर दीया हाथ।
दादू कलिजुग क्या करै, सांई मेरा साथ ॥१॥

साहिब राखै तो रहै, काया माहैं जीव।
हुक्मी बंदा उठि चलै, जबहिं बुलावै पीव ॥२॥

सबद कौ अंग

साचा सबद कबीर का, मीठा लागै मोहि।
दादू सुनतां परमसुख, केता आनन्द होहि ॥१॥

जीवतमृतक कौ अंग

जीवत माटी मिलि रहै, सांई सन्मुख होइ।
दादू पहली मरि रहै, पीछै तौ सब कोइ ॥१॥

दादू मेरा बैरी मैं मुवा, मुझे न मारै कोई।
मैं ही मुझकौं मारता, मैं मरजीवा होइ ॥२॥

दादू तौ तूं पावै पीव कौं, जे जीवतमृतक होइ।
आप गँवाये पिव मिलै, जानत है सब कोइ ॥३॥

मेरे आगै मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाइ।
दादू परगट पीव है जे यहु आपा जाइ ॥४॥

---

२. सोई बर बरिहूँ=उसी वर के साथ ब्याह करूँगी।

जीवतमृतक कौ अंग

१. जीवत माटी मिलि रहै=जीते जी ही अहंकार को नष्टकर अपने आपको शून्यवत् मानले।

२. मैं मुवा=अहंभाव मर गया। मरजीवा=अहंकार को मारकर अमर हो जाना।

४. ताथैं रह्या लुकाइ=प्रियतम इसीलिए छिपा हुआ है।

तन मन मैदा पीसिकरि, छांणि छांणि ल्यौ लाइ।
यौं बिन दादू जीव का, कबहूँ साल न जाइ ॥५॥

गुंगा गहिला बावरा, सांई कारण होइ।
दादू दिवाना ह्वै रहै ताकौं लखै न कोइ ॥६॥

सूरातन कौ अंग

जे मुझ होते लाख सिर, तौ लाखौं देती वारि।
सह मुझ दीया एक सिर, सोई सौंपै नारि ॥१॥

जीवूं का संसा पड्या, को काकौं तारैं।
दादू सोई सूरिवां, जे आप उबारै ॥२॥

पीछै कौं पग ना भरै, आगैं कौं पग देइ।
दादू यहु मत सूर का, अगम ठौर कौ लेइ ॥३॥

जे सिर सौंप्या राम कौं, सो सिर भया सनाथ।
दादू दे ऊरण भया, जिसका तिसकै हाथ ॥४॥

सिर कै साटै लीजिये, साहिबजी का नांव।
खेलै सीस उतारिकरि, दादू मैं बलि जांव ॥५॥

दादू मरणा खूब है, मरि मांहै मिलि जाइ।
साहिब का संग छांड़िकरि, कौन सहै दुख आइ ॥६॥

---

५. मैदा......लाइ=मन को मैदा की तरह बारीक पीसकर व छानकर परमात्मा से लौ लगानी चाहिए। आशय यह कि यदि परमात्मा से प्रीति लगानी है तो मन को इतना काबू में कर लेना चाहिए कि उसमें वासना का लेश भी न रह जाय, सूक्ष्मतम होकर शून्यवत् हो जाये।

६. गहिला=पागल, मूर्ख।

सूरातन कौ अंग

१. सह=स्वामी।
२. संसा=संशय, डर। सूरिवां=शूरवीर। उबारै=(मृत्यु-भय से) बचाले।
३. भरै=रखता है।
४. ऊरण=ऋणमुक्त।
५. साटै=सौदे में, बदले में।
६. माहै=(परमात्मा) में।

दादू जेतूं प्यासा प्रेम का, तौ जीवन की क्या आस।
सिर कै साटै पाइये, तौ भरि भरि पीवै दास ॥७॥

मन मनसा मरै नहीं, काया मारण जाहि।
दादू बांबी मारिये, सर्प मरै क्यौं मांहि ॥८॥

जब झूझै तब जाणिये, काछि खड़े क्या होइ।
चोट मुंहे मुंह खाइगा, दादू सूरा सोइ ॥९॥

दादू जे तूं प्यासा प्रेम का, तौ किसकौं सैंतै जीव।
सिर कै साटै लीजिये, जे तुझ प्यारा पीव ॥१०॥

काल कौ अंग

दादू यहु घट काचा जल भर्‍या, बिनसत नाहीं बार।
यहु घट फूटा जल गया, समझत नहीं गंवार ॥१॥

काल-कीट तन-काठ कौं, जुरा जनम कूं खाइ।
दादू दिन दिन जीव की आव घटती जाइ ॥२॥

पंथ दुहेला दूरि घर, संग न साथी कोइ।
उस मारग हम जाहिंगे, दादू क्यौं सुख सोइ ॥३॥

सब जग सूता नींदभरि, जागै नांही कोइ।
आगै पीछै देखिये, प्रतखि परलै होइ ॥४॥

जे उपज्या सो बिनसिहै, कोई थिर न रहाइ।
दादू बारी आपणी, जे दीसै सो जाइ ॥५॥

---

८. बांबी=साँप का बिल। माहिं=बिल के अंदर।
९. झूझै=जूझे, युद्ध करे। काछि=लड़ाई का भेष सजकर। मुहैं मुहँ=सामने।
१०. सैंते=बचाकर रखता है।

काल कौ अंग

२. जुरा=जरा, बुढ़ापा। आव=आयु।
३. दुहेला=बड़ा कठिन, विकट। सुख सोइ=संसारी सुख में गाफ़िल पड़ा सो रहा है।
४. प्रतखि=प्रत्यक्ष। परलै=प्रलय, मृत्यु।
५. थिर=स्थिर, अमर। जे दीसै सो जाइ=जो दीखता है वह नष्ट हो जायेगा।

दादू अवसर चलि गया, बरियां गई बिहाइ।
कर छिटकें कहँ पाइए, जन्म अमोलिक जाइ ॥६॥

दादू प्राण पयाण करि गया, माटी धरी मसांणा।
जालणहारे देखिकरि, चेतै नहीं अजाणा ॥७॥

अविनासी कै आसरै, अजरावर की ओट।
दादू सरणै साच कै, कदे न लागै चोट ॥८॥

बाहरि गढ़ निर्भै करै, जीबे के तांई।
दादू मांहैं काल है, सो जाणै नांहीं ॥९॥

दादू विषै अंमृत घट मैं बसैं, दून्यूं एकै ठाँव।
माया बिषै बिकार सब, अंमृत हरि का नाँव ॥१०॥

दादू धरती करते एक डग, दरिया करते फाल।
हांकौं पर्वत फाड़ते, सो भी खाये काल ॥११॥

आपै मारैं आपकौं, आप आपकौं खाइ।
आपै अपना काल है, दादू कहि समझाइ ॥१२॥

सजीवन कौ अंग

जे जन वेधे प्रीति सौं, ते जन सदा सजीव।
उलटि समाने आपमैं, अन्तर नाहीं पीव ॥१॥

दादू कहै सब रंग तेरे, तैंरंगे, तूहीं सब रंग माहिं।
सब रंग तेरे, तैं किये, दूजा कोई नांहिं ॥२॥

---

६. बरियाँ=अवसर। कर छिटकें=हाथ से छूटे।

७. मसांणा=श्मशान, मरघट। माटी=मृत शरीर। अजाणा=मूर्ख।

८. अजरावर की ओट=अजर-अमर परमात्मा की शरण। कदे=कभी।

११. करते फाल=एक कूद में लाँघ जाते थे। हाँकौं=ललकारों से।

सजीवन कौ अंग

१. उलटि....आपमैं=वृत्तियों को विषय की ओर से अन्तर्मुखी करके आत्मस्थित हो गये। अन्तर नाहीं पीव=उनमें और परमात्मा में फिर कोई भेद नहीं रहा, दोनों एक हो गये।

२. तैंरंगे=तू ही रंग है। किये=रचे।

देह रहै संसार मैं, जीव राम के पास।
दादू कुछ ब्यापै नहीं, काल-झाल दुख त्रास ॥३॥

मरै त पावै पीव कौं, जीवत बंचै काल।
दादू निर्भै नांव ले, दून्यौं हाथि दयाल ॥४॥

दिन दिन लहुड़े हूहिं सब, कहैं मोटा होता जाइ।
दादू दिन तेही बढ़े, जे रहे रांम ल्यौ लाइ ॥५॥

जीवत पद पाया नहीं, जीवत मिले न जाइ।
जीवत जे छूटे नहीं, दादू गये बिलाइ ॥६॥

मूवां पीछैं मुकति बतावैं, मूवां पीछैं मेला।
मूवां पीछैं अमर अभैपद, दादू भूले गहिला ॥७॥

मूवा पीछैं वैकुंठबासा, मूवां सुरग पठावैं।
मूवां पीछैं मुकति बतावै, दादू जग बौरावैं ॥८॥

साहिब मारे ते मुये, कोई जीवै नांहि।
साहिब राखे ते रहे, दादू निजघर मांहि ॥९॥

पारिख कौ अंग

अरथ आया तब जाणिये, जब अनरथ छूटै।
दादू भांडा भरम का, गिरि चौड़े फूटै ॥१॥

काचा उछलै ऊफणै, काया हांडी माहिं।
दादू पाका मिलि रहै, जीव ब्रह्म द्वै नाहिं ॥२॥

---

३. झाल=ज्वाला।

४. बंचै काल=मृत्यु से अपने को बचा लेता है।

५. लहुड़े=लघु, छोटे, अल्पायु। दिन तेही बढ़े=आयु के दिन उन्हीं के बढ़े अर्थात् सफल हुए।

७. मेला=परमात्मा से मिलन। गहिला=पागल, मूर्ख।

पारिख कौ अंग

१. भांडा=बर्तन। भरम=अविद्या, माया। चौड़ै=मैदान में, प्रत्यक्ष में।

२. ऊपणै=उफान आता है; बहुत बकझक करता है।

जे निधि कहीं न पाईये, सो निधि घरि घरि आहि।
दादू मंहगे मोल बिन, कोई न लेवै ताहि ॥३॥

दया निर्बैरता कौ अंग

सब हम देख्या सोधिकरि, दूजा नाहीं आन।
सब घट एकै आत्मा, क्या हिन्दू मूसलमान ॥१॥

दादू दोनौं भाई हाथ पग, दोनौं भाई कान।
दोनौं भाई नैन हैं, हिन्दू मूसलमान ॥२॥

किससौं बैरी है रह्या, दूजा कोई नांहिं।
जिसके अंग थैं ऊपजे, सोई है सब मांहिं ॥३॥

काहेकौं दुख दीजिये, सांई है सब मांहि।
दादू एकै आत्मा, दूजा कोई नांहिं ॥४॥

काहेकौं दुख दीजिये, घटि घटि आतम रांम।
दादू सब संतोखिये, यह साधू का कांम ॥५॥

दादू मन्दिर काच का, मर्कट सुनहां जाइ।
दादू एक अनेक है, आप आपकौं खाइ ॥६॥

दादू अरस खुदाय का, अजरावर का थान।
दादू सो क्यौं ढाहिये, साहिब का नीसाण ॥७॥

दादू आप चिणावै देहुरा, तिसका करहि जतन।
प्रत्यख परमेसुर किया, सो भानै जीव-रतन ॥८॥

---

३. निधि=ब्रह्मरूपी धन।

दया निर्बैरता कौ अंग

६. मर्कट=बन्दर। सुनहां=कुत्ता। आप आपकौं खाइ=अपना ही प्रतिविम्ब देख-देखकर समझते हैं कि दूसरा बंदर और दूसरा कुत्ता आ गया है और अपने आपको काट-काटकर खाते हैं। दूसरों के साथ वैर नहीं, अपने ही साथ वैर करते हैं।

७. अरस=अर्श, उत्तम स्थान। अजरावर=अजर, जो वृद्ध नहीं होता है और अमर, परमात्मा। सो क्यों ढाहिये=उसे अर्थात् जीव के शरीर का क्यों घात करे।

८. जतन=रक्षा। किया=रचा। भानै=तोड़ता है, मारता है।

मसीति संवारी माणसौं, तिसकौं करै सलाम।
ऐन आप पैदा किया, सो ढाहैं मूसलमान ॥९॥

काला मुंह करि करद का, दिल थैं दूरि निवार।
सब सूरति सुबहान की, मुल्ला, मुग्ध न मार ॥१०॥

सुन्दरी कौ अंग

प्रेमलहरि की पालकी, आतम वैसै आइ।
दादू खेलै पीव सौं, यहु सुख कह्या न जाइ ॥१॥

दादू हूं सुख सूती नींदभरि, जागै मेरा पीव।
क्यौंकरि मेला होइगा, जागै नांहीं जीव ॥२॥

सखी सुहागिन सब कहैं, कंत न बूझै बात।
मनसा वाचा कर्मणा, मूर्छि मूर्छि जिव जात ॥३॥

परपुरिखा सब परिहरै, सुन्दरि देखै जागि।
अपरण पीव पिछाणिकरि, दादू रहिये लागि ॥४॥

दादू नीच ऊँच कुल सुन्दरी, सेवा सारी होइ।
सोई सुहागिन कीजिये, रूप न पीजै धोइ ॥५॥

नदिया नीर उलंघिकरि, दरिया पैली पार।
दादू सुन्दरि सो भली, जाइ मिलै भर्तार ॥६॥

दादू निर्मल सुन्दरी, निर्मल मेरा नांह।
दून्यौं निर्मल मिलि रहे, निर्मल प्रेमप्रवाह ॥७॥

कस्तूरिया मृग कौ अंग

दादू सब घट मैं गोविन्द है, संगि रहै हरि पास।
कस्तूरी मृग मैं बसै, सूंघत डोलै घास ॥१॥

---

१०. करद=छूरी। मुग्ध=मूर्ख।

सुन्दरी कौ अंग

१. पालकी=डोली। वैसै=बैठती है। खेलै=रमण करता है।

२. मेला=मिलन।

५. सारी=अच्छी, सच्ची।

७. नांह=नाथ, स्वामी।

दादू जा कारणि जग ढूंढ़िया, सो तौ घट ही मांहिं।
मैं तैं पड़दा भरम का, ताथैं जानत नांहिं ॥२॥

दादू केई दौड़े द्वारिका, केई कासी जाहिं।
केई मथुरा कौं चले, साहिब घट ही मांहिं ॥३॥

दादू जड़मति जीव जाणै नही, परमस्वाद सुख जाइ।
चेतनि समझै स्वादसुख, पीवै प्रेम अघाइ ॥४॥

निंद्या कौ अंग

दादू जिहिं घरि निंद्या साध की, सो घर गये समूल।
तिनकी नींव न पाइये, नांव न ठांव न धूल ॥१॥

दादू निंदक बपुरा जिनि मरै, परउपगारी सोइ।
हमकूं करता ऊजला, आपण मैला होइ ॥२॥

निगुणा कौ अंग

दादू कीड़ा नर्क का, राख्या चन्दन मांहिं।
उलटि अपूठा नर्क मैं, चन्दन भावै नांहिं ॥१॥

कोटि बरसलौं राखिये, जीव ब्रह्म संगि दोइ।
दादू मांहै बासना, कदे न मेला होइ ॥२॥

निगुणां गुण मानै नहीं, कोटि करै जे कोइ।
दादू सब कुछ सौंपिये, सो फिर बैरी होइ ॥३॥

दादू सगुणां लीजिये, निगुणां दीजिये डारि।
सगुणां सन्मुख राखिये, निगुणां नेह निवारि ॥४॥

कस्तूरिया मृग कौ अंग

२. मैं तैं पड़दा भरम का='यह मेरा है वह तेरा है' इस प्रकार की द्वैत बुद्धि का अंतर डालनेवाला मायाकृत आवरण।

४. परमस्वादु सुख जाइ=जिस ब्रह्मानंद में अनुपम मधुर रस भरा हुआ है। चेतनि=परमज्ञानी।

निगुणा कौ अंग

१. नर्क=मैला, गोबर आदि कचरा। अपूठा=घुस गया, सन गया।

२. माहैं=मन के अंदर। मेला=मिलन।

३. निगुणां=कृतघ्न। गुण=उपकार। कोटि करै=करोड़ यत्न करे।

४. सगुणां=कृतज्ञ।

बिनती कौ अंग

दादू बुरा बुरा सब हम किया, सो मुख कह्या न जाइ।
निर्मल मेरा सांइयां, ताकौं दोष न लाइ ॥१॥

तिल तिल का अपराधी तेरा, रती रती का चोर।
पल पल का मैं गुनही तेरा, बकसहु औगुण मोर ॥२॥

राखणहारा राख तू, यहु मन मेरा राखि।
तुम बिन दूजा को नहीं, साधू बोलैं साखि ॥३॥

माया बिषै बिकार थैं, मेरा मन भागै।
सोई कीजे सांइयां, तूं मीठा लागै ॥४॥

सांई दीजे सो रती, तूं मीठा लागै।
दजा खारा होइ सब, सूता जीव जागै ॥५॥

ज्यौं आपै देखै आपकौं, सो नैना दे मुझ।
मीरां मेरा मेहर कर, दादू देखौ तुझ ॥६॥

नांहीं परगट ह्वै रह्या, है सो रह्या लुकाई।
संइयां पड़दा दूरि कर, तू ह्वै परगट आइ ॥७॥

जिनकी रख्या तूं करैं, ते उबरे करतार।
जे तैं छाड़े हाथ थैं, ते डूबे संसार ॥८॥

दादू दौं लागी जग परजलै, घटि घटि सब संसार।
हम थैं कछू न होत है, तुम बरसि बुझावणहार ॥९॥

तुमहीं थैं तुम्हकूं मिलै, एक पलक मैं आइ।
हम थैं कबहु न होइगा, कोटि कलप जे जाइ ॥१०॥

विनती कौ अंग

२. गुनही=गुनाही, अपराधी।
५. खारा=फीका।
६. ज्यौं आपै देखै आपकौं=जिन अंतर की आँखों से अपने 'स्वरूप' को देख सकूं।
७. रह्या लुकाई=छिप रहा है।
९. दौं=जंगल की आग
१०. तुमहीं थैं तुम्हकूं मिलै=तुम्हारी कृपा से तुमसे हम मिल सकते हैं। जे जाइ=यदि बीत जायें; बीत जाने पर भी।

खुसी तुम्हारी त्यूं करौ, हम तौ मानी हारि।
भावै बन्दा बकसिये, भावै गहिकरि मारि ॥११॥

बेली कौ अंग

जे साहिब सींचै नहीं, तौ बेली कुमिलाइ।
दादू सींचै सांइयां, तौ बेली बधती जाइ ॥१॥

हरि तरवर तत आत्मा, बेली करि बिसतार।
दादू लागै अमरफल, कोइ साधू सींचणहार ॥२॥

दादू अमरबेलि है आत्मा, खार संमदां मांहिं।
सूकै खारे नीर सौं, अमरफल लागै नांहिं ॥३॥

बहु गुणवन्ती बेलि है, मीठी धरती बाहि।
मीठा पांणीं सींचिये, दादू अमरफल खाहि ॥४॥

अबिहड़ कौ अंग

दादू संगी सोई कीजिये, जे कलि अजरावर होइ।
नां वहु मरै न बीछुटै, ना दुख ब्यापै कोइ ॥१॥

दादू संगी सोई कीजिये, जे कबहूं पलटि न जाइ।
आदि अंति बिहड़ै नहीं, तासन यहु मन लाइ ॥२॥

अबिहड़ अंग बिहड़ै नहीं, अपलट पलटि न जाइ।
दादू अघट एकरस, सबमैं रह्या समाइ ॥३॥

●

---

११. भावै बंदा बकसिये=चाहे तो इस सेवक को माफ करदो।

बेली कौ अंग

१. बेली कुमिलाइ=आत्मारूपी बेली मुरझा जायेगी। बधती जाइ=बढ़ती जाये।
२. तत=परमतत्त्व।
३. खार संमदां=खारा समुद्र; माया से आशय है।
४. बाहि=रोप कर।

अबिहड़ कौ अंग

१. बीछुटै=बिछुड़े।
२. बिहड़ै=बिछुड़े।

स्वामी गरीबदास

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१६६२ वि.
जन्म-स्थान—साँभर (राजस्थान)
पिता—दामोदर (मतान्तर से स्वामी दादू दयाल)
गुरु—स्वामी दादू दयाल
भेष—गृहस्थ
मृत्यु-संवत्—१६९३ वि.

गरीबदासजी के पिता कौन थे इस विषय में दो मत हैंः—

१—यह स्वामी दादू दयाल के औरस पुत्र थे। इस बात का समर्थन दादूजी की 'जन्मलीला' नामक ग्रन्थ के रचयिता जनगोपालजी तथा दादू-पंथी भक्तमाल के प्रणेता राघोदासजी ने किया है। 'जन्मलीला' सत्रहवीं शती में रची गई थी और भक्तमाल की रचना अठारहवीं शती में हुई थी।

''दादू पिता प्रगट है जाके, गरीबदास सुत उपज्यो ताके।''

—जन्मलीला

''दादूजी सुवन सूरवीर धीर-सा पुरुष,
गरीबनिवाज यों गरीबदास गाइये।''

—भक्तमाल

इसी प्रकार चैनजी तथा जैमलजी चौहान के भी प्रमाण दिये जाते हैं—

''औतरे दयालघर दियो दत्त कृपाकरि
सनमुख भये हरि राम की निवाज है।''

—चैनजी

''बाप की भगति गति ग्यान में गरीबदास
जैमल सुजस जस मोमन उमेखिये।''

—जैमल चौहान

आचार्य क्षितिमोहन सेन ने भी उक्त प्रमाणों के आधार पर गरीबदासजी को स्वामी दादू

दयाल का औरस पुत्र माना है।

२—दूसरे कुछ अन्य पुष्ट प्रमाणों के आधार पर ''गरीबदासजी की वाणी'' के विद्वान् संपादक मंगलदास ने इन्हें दादू दयाल महाराज का आशीर्वादी दत्तक पुत्र माना है। उन्होंने माधोदास-कृत 'संतगुणसागर' का आधार लेकर लिखा है कि—''साँभर में रहनेवाले दामोदरजी दादूजी महाराज के परमसेवक थे। उनके कोई संतान नहीं थी। वे अपनी पत्नी सहित महाराज की सेवा किया करते थे। उनके मन में परम लालसा थी कि किसी तरह दादूजी महाराज अतेकृपा कर दे तो संतति हो जाय। महाराज से उनकी लालसा छिपी न रही। अनुकंपा कर दो लौंग व दो इलाइची उन्हें प्रदान की, जैसा कि जनगोपालजी का भी वचन* है। उनके दो पुत्र और दो कन्याएँ हुईं, और ये चारों संतान उन्होंने दादूजी महाराज को ही अर्पण कर दीं। पुत्रों के नाम गरीबदास और मशकीनदास, और पुत्रियों के नाम रामकुँवारी और शोभाकुँवारी थे।''

गरीबदासजी ने अपनी बानी में जहाँ-जहाँ भी दादूजी महाराज का उल्लेख किया है, वहाँ गुरु के ही रूप में किया है, पिता के रूप में कहीं भी नहीं। अतः यही सिद्ध होता है गरीबदासजी स्वामी दादू दयालजी के दत्तक पुत्र थे, और दामोदरजी के औरस पुत्र।

संवत् १६३२ में दादूजी महाराज का देहावसान होने पर उनके सब प्रमुख शिष्यों ने गरीबदासजी को गुरु का आसन दिया था—

''सब संतन मिलि टीको कीन्हों। गुरु के आसन बैठक दीन्हों ॥''

—जन्मलीला

गरीबदासजी महाराज बड़ी ऊँची रहनी के संत थे। स्वभाव के बड़े दयालु और उदार थे, गहरे भक्त और ऊँचे साधक तो थे ही।

दादूजी महाराज के प्रमुख शिष्य रज्जबजी ने इनके विषय में लिखा हैः—

''दादू के पाट दिपै दिन ही दिन दास गरीब गोविंद को प्यारो।
बाल जती रु जनम को जोगी जु सूर सुधीर महामन सारो॥
उदार अपार सबै सुखदाता सु संतन जीवन प्रान अधारो।
है रज्जब राम रच्यो जुग जानिके पंथ को भार निबाहनहारो ॥''

बानी-परिचय

श्रीदादू-महाविद्यालय (जयपुर) के श्रीमंगलदास स्वामी ने 'श्रीगरीबदासजी की वाणी' को सुसंपादित करके सटिप्पण प्रकाशित किया है। रचना के चार भाग हैं—१. अनभै-प्रबोध, २. साखी, ३. चौबोले और ४. पद।

---

*उभय लौंग मिरची द्वै दीनीं। स्वामी की गति जाइ न चीनीं ॥
अचरज बात कही इक भारी। गर्भ जती उपजेंगे चारी ॥

'अनभै-प्रबोध' में संत-साहित्य में प्रयुक्त मुख्य-मुख्य शब्दों के अनेक पर्यायों का पद्यात्मक संग्रह किया गया है। यह एक प्रकार का छोटा-सा संत-साहित्य का कोश है।

पद इनके केवल ५१ मिलते हैं, जो अनूठे हैं। उनमें इनकी गहरी भक्तिभावना छलकती है। कई पद तो बड़े ही सरस हैं। प्रेम और विरह का रूप कुछ पदों में इन्होंने बड़ा सुन्दर अंकित किया है।

भाषा मधुर है। उसमें ऐसे भी कुछ राजस्थानी शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनका ठीक-ठीक अर्थ लगाना सरल नहीं, पर ऐसे शब्दों का प्रयोग चौबोलों और साखियों में प्रायः हुआ है।

आधार

१. श्रीगरीबदासजी की वाणी—स्वामी मंगलदास, श्रीदादू-महाविद्यालय, जयपुर शहर।

●

स्वामी गरीबदास

पद

राग गौड़ी

सकल रम रह्या तूं मोहन, जहाँ देखौं तहाँ तूं ही सोइ।
जीव जंत अरु जल थल मांहै, मूरिख लोग न जानै कोइ॥
घट घट मांहै अंतरजामी, पय मांहै घृत ऐसैं जाणि।
काष्ठ मांहै जैसे पावक, सब ठां ऐसैं जोति पिछाणि॥
सब में ब्रह्म, ब्रह्म में सबहीं है, पर गुण ब्यापै नहिं कोइ।
इहि विधि रहै निरंतर सबथैं, सत्यरूप सो करता होइ॥
तिल में तेल बीज में अंकुर, कस्तूरी ज्यूं कुंडल मांहि।
केलि कपूर सीप में मोती, गरीबदास यूं गोब्यंद ठाइँ॥१॥

राग कानड़ौ

हाँ, मन राम भज्यो विष न तज्यो तैं, यूं ही जनम गमायो॥
माया मोह मांहि लपटायो, साधसंगति नहिं आयो॥
हेत सहित हरिनाम न गायो, विष अमरित करि खाओ॥
सतगुरु बहुत भाँति समझायो, सब तज चित नहिं लायो॥
गरीबदास जनम जे पायो, करिलै पिय को भायो॥२॥

राग कल्याण

प्रगटहु सकल लोक के राइ।
पतितपावन प्रभु भगतबछल हौ, तौ यहु तृष्णा जाइ॥
दरसन बिना दुखी अति विरहणि, निमिष बँधै नहिं धीर।
तेजपुंज सौं परस करीजै, यों मेटहु या पीर॥

---

१. ठाँ=स्थान। कुण्डल=मृग की नाभि। केलि=केला।

२. राम भज्यो बिष न तज्यो=न राम का भजन किया और न विषयों का विष त्यागा। हेत=प्रेम।

अंतरि मेट दयाल दया करि, निसदिन देखौं नूर।
भौ-बंधन सबही दुख छूटै, सनमुख रहौं हजूर॥
तुम उधार मंगति यह तेरौ, और कछू नहिं जाचै।
प्रगटौ जोति निमिष नहिं टारौ, औरै अंग न राचै॥
जानराइ सबही विधि जानो, अब प्रगटो दरहाल।
गरीबदास कूं अपनो जानिकै आइ मिलौ किन लाल॥३॥

राग केदारो

जब जब सुरति आवती मन में, तब तब बिरह-अनल परजारै।
नैननि देखौं बैन सुनौं कब, यहु वेदन जिय मारै॥
चात्रग मोर कोकिला बोलत, मानो करवत नख-सिख सारै।
पावस रितु रंगति सब वसुधा, दारुन दुख उर दीनों धारै॥
चन्दन चन्द सुगन्ध सहित सब, कोमल कुसुम सार की आरै।
रितु बसन्त मोरे द्रुम सबहीं मानों डसै भुवंगम कारै॥
सुन री सखी यहु विपत हमारी, बिन दरसन अति विरहा बारै।
गरीबदास सुख तबहीं लेखौं, जबहीं जोति हि जोति निहारै॥४॥

राम मारू

किहिं विधि पाइये हो, म्हारे जीवन-प्राण-अधार।
दरसन बिन दुख पावै बिरहणि, कोई मिलावनहार॥
अति गति आतुर होइ मिलनकूं, दरसन बिन बेहाल।
सनमुख होइ सदा सुख दीजै, सुनि प्रभु दीनदयाल॥
कौन उपाव मिलैं वै प्रीतम, सकल-सिरोमनि सोइ।
तन की तपति जाइ जिंहि देखत, रोम-रोम सुख होइ॥
सो कोई आन मिलावै मोकूं, जा देखत दुख जाइ।
छिन-छिन तन ता ऊपर वारौं, गरीबदास बलि जाइ॥५॥

---

३. राइ=राजा, स्वामी। परस=स्पर्श, मिलन। नूर=सौंदर्य का प्रकाश। उधार=उदार, महादानी। दरहाल=तुरंत।

४. परजारै=जलाती है। वेदन=वेदना, पीड़ा। चात्रग=चातक, पपीहा। करबत सारै=करौत (आरा) चलाते हैं। सार की आरै=लोहे की कीलें। मोरे=बोरे, मंजरी लग गई।

५. तपति=दाह।

राग रामकली

प्रीति न टूटै जीव की, जो अन्तर होइ।
तन मन हरि के रँग रँग्यो, जानै जन कोइ॥
लख जोजन देही रहै, चित सनमुख राखै।
ताकौ काज न ऊजरै, जो हरिगुन भाखै॥
कँवल रहै जल अंतरै, रवि बसै अकास।
संपुट तबही विगसिहै, जब जोति प्रकास॥
सब संसार असार है, मन मानै नाहीं।
गरीबदास नहिं बीसरै, चित तुमही माहीं॥६॥

राग आसावरी

जबही तुम दरसन पायो।
सकल बोल भयो सिद्ध, आजु भलो दिन आयो॥
तन मन धन नवछावरि अरपण, दरसन परसन प्रेम बढ़ायो॥
सब दुख गये हुते जे जिय में, प्रीतम पेखन भायो॥
गरीबदास सोभा कहा बरणौं, आनन्द अंग न मायो॥७॥

राग टोड़ी

हम तौ रैनदिन पलक पहर छिन,
कबहूं न बिसरत जियतें एक खिन।
तुम्हरे जिय की गति तुमही पै जानौ,
ध्यान टरत नहिं नैकु नैननि इन॥
एक मन एक चित दिल कौ दरद कह्यो,
जान सुजान यार तुमही विचारिये।
गरीबदास आस तुम बिन कौन पूरै,
एकमेक सुख दीजै दरद निवारिये॥८॥

---

६. ऊजरै=उजड़े, बरबाद हो।

७. बोल=स्वामी मंगलदासजी ने यह अर्थ किया है—"किसी विशेष कार्य सिद्धि के लिए किसी देवता की भेंट बोलने को 'बोल' कहते हैं। मायो=समाया।

८. खिन=क्षण, यल। एकमेक=एकाकार होकर।

राग सोरठ

मन रे! बहुत भाँति समझायो।
रूप सरूप निरखि नैननि कै कृत्रिम मांहिं बँधायो ॥
जासौं प्रीति बाँध मन मूरिख, सुख दुख सदा संगाती।
बिछुरै नहीं अमर अविनासी, और प्रीति खप जासी ॥
हरि सौ हितू छांड़ि जीवनि सौं, काहे हेत चित लावै।
सुपनौं सौ सुख जान जीय में, काहे न हरिगुन गावै ॥
रूप अरूप जोति छवि निर्मल, सबही गुन जा माहें।
गरीबदास भजि अंतर ताकों, सुर नर मुनिजन चाहें ॥६॥

साखी

समइये सब कुछ होत है, सुमिरण सेवा सार।
गरीबदास औसर मिटै, को पावै यहु वार ॥१॥

सती बिचारी यूँ किया, कुलहि न घाई गालि।
लागि रहीं संग पीय कै, आपा दीया जालि ॥२॥

सुख हूवा शोभा वधी, चली पीव के संगि।
सती विचारी सोचिकर, सही कसौटी अंगि ॥३॥

सब रसपूरण सांइयाँ, सो क्यूँ कहिये दूरि।
जे जन देखै जागकरि, सनमुख सदा हजूरि ॥४॥

जीव अग्यानी अकलि बिन, पाँव धरै नहिं थोगि।
रख्या बिन उबरै नहीं, बरतै बहुत अजोगि ॥५॥

सुकरित-मारग चालताँ, बिघन बचै संसार।
दुख कलेस छूटैं सबै, जे कोई चलै विचार ॥६॥

समतारूपी रामजी, सबसों येके भाइ।
जाकै जैसी प्रीति है, तैसी करै सहाइ ॥७॥

---

६. कृत्रिम=माया का पसारा। खप जासी=नष्ट हो जायेगी। रूप अरूप=साकार भी और निराकार भी।

२. न घाई गालि=कलंकित नहीं किया। आपा=अहंता।

३. वधी=बढ़ गई।

५. थोगि=थामकर, ठीक तरह से देखकर। अजोगि=अयोग्य, बुरा। रख्या=रक्षा।

६. बिघन बचै संसार=संसार विघ्न-बाधाओं से बच जाता है।

भाजन भाव समान जल, भरिदै सागर पीव।
जैसी उपजै तन त्रिषा, तैतौ पावै जीव॥८॥

सांई कीये जीव जे, एक नजर सब कोइ।
खिजमति जैसी कीजिये, तैसा मनसब होइ॥९॥

अमरितरूपी रामरस, पीवैं जे जन मस्त।
जैसी पूँजी गाँठड़ी, तैसी वणजै बस्त॥१०॥

काया माया में रहैं, लंघै कोई एक।
आदि अन्तलों मांड में, केते हुए अनेक॥११॥

मैं अति अपराधी दुरमति, तूं अवगुण बकसनहार।
गरीबदास की इहै वीनती, संम्रथ सुणहु पुकार॥१२॥

जेते दोष संसार में, तेते हैं मुझ माहिं।
गरीबदास केते कहै, अगणित परिमित नाहिं॥१३॥

जैते रोम तेती खता, सूखिम बहुत अपार।
गरीबदास करुणा करौ, बकसौ सिरजनहार॥१४॥

कौन सुनै कासूँ कहूँ, को जानै परपीर।
प्रीतम-बिछुरे जीव कौं, कौन बँधावै धीर॥१५॥

पान करै अमरित सुरस, चुणिलै हीरा हाथ।
सो प्यारी पिव आपणैं, दूजी सबै अकाथ॥१६॥

●

---

८. भाजन=बर्तन। पीव=परमात्मा।

९. मनसब=इनाम

१०. वणजै=खरीदता-बेचता है।

११. लंघै=लाँघता है, पार जाता है। मांड=ब्रह्माण्ड।

१४. खता=अपराध।

१६. अकाथ=अकारथ, व्यर्थ।

रज्जबजी

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१६२४ वि.

जन्म-स्थान—सांगानेर

जाति—पठान

गुरु—स्वामी दादू दयाल

भेष—विरक्त

चोला-त्याग—अनुमानतः संवत् १७४० के आसपास; वस्तुतः अनिश्चित

निर्वाण-स्थान—सांगानेर

रज्जबजी के विषय में इतना ही कुछ परंपरा से ज्ञात है कि यह जाति के मुसलमान थे, और सद्गुरु दादू दयाल के एक ही शब्द का इनके मन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि विवाह का विचार छोड़कर तत्क्षण सिर पर से मौर व सेहरा उतारकर आंबेर में उनके शिष्य हो गये। ज्ञान के नेत्रों को सद्गुरु के एक शब्द ने ही, एक सैन ने ही खोल दिया। वह शब्द यह था—

"कीया था कुछ काज को सेवा सुमरण साज।
दादू भूल्या बंदगी, सर्‌यौ न एको काज॥"

इसी प्रसंग पर की एक यह साखी भी प्रसिद्ध है—

"रज्जब तैं गज्जब किया, सिर पर बाँधा मौर।
आया था हरिभजन कूँ, करै नरक को ठौर॥"

शब्द-वाण के चुभते ही यह घोड़े पर से उतरकर सद्गुरु दादू दयाल के चरणों के समीप जा बैठे, और बाराती सब निराश होकर अपने-अपने घर लौट गये।

राघोदासजी ने 'भक्तमाल' में इस प्रसंग को इस प्रकार लिखा है—

"रज्जबजी अज्जब राजथांन आंबेर आये,
गुरु के सबद त्रिया ब्याह संग त्याग्यौ है।
पायो नरदेह प्रभुसेवा काज सहज येह
ताकों भूलि गयो सठ विषैरस लाग्यौ हैं॥

मौर खोलि डार्‌यौ तन मन धन वार्‌यौ
सत सील व्रत धार्‌यौ मन मार्‌यौ काम भाग्यौ है।
भक्ति मौज दीनीं गुरु दादू दया कीनीं,
उर लाइ प्रीति लीनीं माथे बड़ो भाग जाग्यौ है॥''

कहते हैं कि दादूजी ने कुछ दिनों बाद रज्जबजी से कहा कि ''जाओ विवाह करलो, नहीं तो तुम आगे चलकर पराई नारियों को कुदृष्टि से देखोगे।'' रज्जब दृढ़ थे, बोले–

''रज्जब घर-घरणी तजी, पर-घरणी न सुहाय।
अहि तजि अपनी कंचुकी, किसकी पहिरै जाय॥''

रज्जब की गुरु-भक्ति बड़ी गहरी थी, अनुपम थी। कहते हैं कि दादूजी के अन्तर्धान हो जाने पर रज्जब ने अपने नेत्र सदा के लिए बंद कर लिये थे। उनके लेखे में अब संसार में रहा ही कौन था, जिसे वे नेत्र खोलकर देखते?

बानी-परिचय

रज्जबजी ने दो बड़े ग्रन्थ रचे–'वाणी' और 'सर्वङ्गी।' साखियों की संख्या ५४२८ है, और अंग १९४। इतनी बड़ी संख्या में शायद किसी भी अन्य संत ने साखियाँ नहीं कहीं। पदों की संख्या २१८ है। कवित्त, सवैये, अरिल्ल आदि अनेक छंदों में रज्जबजी ने रचना की है।

भाषा अधिकतर इनकी राजस्थानी है। जान पड़ता है कि संस्कृत का भी इनको ज्ञान था। रचना बड़ी सरस है। कुछ साखियाँ और पद अत्यंत गूढ़ हैं, जिनका अर्थ लगाना सहज नहीं। सारी ही बानी ऊँचे परमार्थ और गहरे अनुभव में रँगी हुई है। विरह और प्रेम के पद अत्यंत सरस हैं, जिनमें सूफियों की ऊँची मस्ती तथा भक्तों की गहरी भावना दोनों एकसाथ दीखती हैं। साखियाँ भी रज्जबजी की ऊँचे घाट की हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में संकलन ''रज्जबजी की वाणी'' में से किया गया है, जिसका पाठ बहुत अशुद्ध है।

आधार

१ रज्जबजी की वाणी–दादुओं का मंदिर, नारनौल (पटियाला)
२ सुन्दर-ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड)–राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता
३ महात्मा रज्जबजी (लेख)–पुरोहित श्री हरिनारायण शर्मा, विद्याभूषण

●

रज्जबजी

राग रामगिरि

रे मन सूर, संक क्यूँ मानै।
मरणे माहिं एक पग ऊभा, जीवन-जुगति न जानै ॥
तन मन जाका ताकूँ सौंपै, सोच पोच नहिं आनै।
छिन-छिन होइ जाहि हरि आगे, सहजैं आपा भानै ॥
जैसे सती मरै पति पीछैं, जलतो जीव न जानै।
तिल में त्यागि देहि जग सारा , पुरुष-नेह पहिचानै ॥
नखंसिख सब साँसति सिर सहतां, हरिकारज परिवानै।
जन रज्जब जगपति सोइ पावै, उर अंतरि यूँ ठानै ॥१॥

राग रामगिरि

रामराय, महा कठिन यहु माया।
जिन मोहि सकल जग खाया ॥
यहु माया ब्रह्मा सा मोह्या, संकर सा अटकाया।
महाबली सिध साधक मारे, छिन में मान गिराया ॥
यहु माया षट दर्सन खाये, बातनि जगु बौराया।
छलबल सहित चतुरजन चकरित, तिनका कछु न बसाया ॥
मारे बहुत नाम सूँ न्यारे, जिन यासूँ मन लाया।
रज्जब मुक्त भये माया तें, जे गहि राम छुड़ाया ॥२॥

राग रामगिरि

संतो, आवै जाइ सु माया।
आदि न अंत मरै नहिं जीवै, सो किनहूँ नहिं जाया ॥

---

१. ऊभा=खड़ा। भानै=तोड़दे, नष्ट करदे। तिल में=क्षण में। साँसति=यातना, कष्ट। परिवानै=सचाई से करता है। ठानै=निश्चित करले।

२. अटकाया=फँसाया। षट् दर्सन=छह शास्त्र। चकरित=विमूढ़। न बसाया=वंश नहीं चला। न्यारे=विमुख।

लोक असंखि भये जा माहीं, सो क्यूं गरभ समाया।
बाजीगर की बाजी ऊपर, यहु सब जगत भुलाया॥
सुन्न सरूप अकलि अविनासी, पंचतत्त नहिं काया।
त्यूँ औतार अपार असति ये, देखत दृष्टि बिलाया॥
ज्यूँ मुख एक देखि दुइ दर्पन, गहला तेता गाया।
जन रज्जब ऐसी बिधि जानें, ज्यूँ था त्यूँ ठहराया॥३॥

राग रामगिरि

संतो, ऐसा यहु आचार।
पाप अनेक करैं पूजा में, हिरदैं नहीं बिचार॥
चींटीं दस चौके में मारैं, घुण दस हाँडी माहीं।
चाकी चूल्हें जीव मारैं जो, सो समझैं कछु नाहीं॥
पाती फूल सदाहीं तोड़ैं, पूजन कूँ पाषाण।
छार पतंगा होहिं आरती, हिरदैं नहीं बिनाण॥
सगले जनम जीव संघारे, यहु खोटे षटकर्मा।
पाप प्रपंच चढ़े सिरि ऊपरि, नाम कहावै धर्मा॥
आप दुखी औरां दुखदायक, अंतरि राम न जान्या।
जन रज्जब दुख देहि दृष्टि बिन, बाहरि पाखँड ठान्या॥४॥

राम रामगिरि

म्हारो मंदिर सूनों राम बिन, बिरहिण नींद न आवै रे।
पर-उपगारी नर मिलै, कोइ गोबिंद आन मिलावै रे॥
चेती बिरहिण चिंत न भाजै, अविनासी नहिं पावै रे।
यहु बिवोग जागै निसबासार, बिरहा बहुत सतावै रे॥
बिरह बिवोग बिरहिणी बींधी, घर बन कछु न सुहावै रे।
दह दिसि देखि भयौ चित चकरित, कौंन दसा दरसावै रे॥
ऐसा सोच पड्या मन माहीं, समझि समझि धूँ धावै रे।
बिरहबान घटि अंतरि लाग्या, घाइल ज्यूँ घूमावै रे॥

---

३. जाय=पैदा किया। असंखि=असंख्य, अनगिनती। बाजीगर=जादूगर। अकलि=कला अर्थात् अंशरहित, पूर्ण। असति=असत्य। गहला=बावला।

४. घुण=धुन, एक छोटा कीड़ा, जो अनाज, लकड़ी आदि में लगता और उसे खाकर खोखला कर देता है। पाषाण=पत्थर की मूर्ति। बिनाण=विज्ञान, विचार। सगले=सकल, सारे। षटकर्मा=यजन याजन आदि ब्राह्मण के छह नियत कर्म। दृष्टि=ज्ञान-दृष्टि।

बिरह-अगिन तनपिंजर छीनां, पिवकूँ कौन सुनावै रे।
जन रज्जब जगदीस मिले बिन पल पल वज्र बिहावै रे॥५॥

राग गौड़ी

रामरस पीजिये रे, पीयें सब सुख होइ।
पीवत हीं पातक कटैं, सब संतनि दिसि जोइ॥
निसदिन सुमिरण कीजिए, तनमन प्राण समोइ।
जनम सुफल साईं मिलै सोइ जपि साधहु दोइ॥
सकल पतितपावन किये, जे लागे लै लोइ।
अति उज्जल, अघ ऊतरै, किलबिष राखै धोइ॥
यहि रस-रसिया सब सुखी, दुखी न सुनिये कोइ।
जन रज्जब रस पीजिये, संतनि पीया सोइ॥६॥

राग गौड़ी

संतो, मगन भया मन मेरा।
अहनिस सदा एकरसं लाग्या, दिया दरीबैं डेरा॥
कुल मरजाद मैंड सब त्यागी, बैठा भाठी नेरा।
जात-पाँत कछु समझौं नाहीं, किसकूँ करै परेरा॥
रस की प्यास आस नहिं औरां, इहि मत किया बसेरा।
ल्याव ल्याव एही लय लागी, पीवैं फूल घनेरा॥
सो रस माँग्या मिलै न काहू, सिर साटे बहुतेरा।
जन रज्जब तन मन दे लिया, होइ धनी का चेरा॥७॥

राग गौड़ी

प्राणपति न आये हो, बिरहिण अति बेहाल।
बिन देखे अब जीव जातु है, विलम न कीजै लाल॥

---

५. म्हारो मंदिर=मेरा हृदय-मंदिर। बिवोग=वियोग। बींधी=वेधली। समझि-समझि=याद कर-कर। धूँ धावै=आह ले लेकर जलती है। घूमावै=मूर्छित होती है। छीनां=क्षीण। बज्र बिहावै=वज्र की तरह बीतता है।

६. दिसि जोइ=तरफ़ देखों। समोइ=लगाकर, लीन करके। साधहु दोइ=दोनों लोक बनालो। लोइ=लोग। किलविष=पाप।

७. दरीबैं=बाजार में। मैंड=हद, रास्ता। भाठी=भट्ठी, जहाँ शराब बनाते हैं। नेरा=पास। फूल=कड़ी देसी शराब। साटे=बदले में, मोल।

बिरहिण ब्याकुल केसवा, निसदिन दुखी बिहाइ।
जैसें चंद कुमोदिनी बिन, देखे कुमिलाइ॥
खिन खिन दुखिया दगधिये, बिरह-बिथा तन पीर।
घरी पलक में बिनसिये, ज्यूँ मछरी बिन नीर॥
पीव पीव टेरत दिक भई, स्वातिसुरूपी आव।
सागर सलिता सब भरे, परि चातिग कै नहिं चाव॥
दीन दुखी दीदार बिन, रज्जब धन बेहाल।
दरस दया करि दीजिए, तौ निकसै सब साल॥८॥

राग गौड़ी

नाम बिना नाहीं निसतारा। और सबै पाखंड पसारा॥
भरम भेष तीरथ व्रत आसा। दान पुन्य सब गल के पासा॥
जप तप साधन संकट सूना। लै बिन लांगत सबै अलूना॥
पान फूल फल दूधाधारी। मन मनसा बिगरै सब ख्वारी॥
नाना बिधि धारैं बहुधर्मा। हरिसुमिरण बिन कटत न कर्मा॥
जन रज्जब रत मत रंकारा। नामनाव चढ़ि उतरै पारा॥९॥

राग गौड़ी

बिन सतगुर समता नहिं आवै। नीच ऊँच निगुरा सु दृढ़ावै॥
येकहि पवन येकही पानी। बुधि बिन बीच बैरता ठानी॥
येकै आतम येक सरीरा। समझ बिना बड़ अंतर बीरा॥
सौंज सबै बिधि येक बनाई। दुविधा दुरमति है रे भाई॥
सबकै नखसिख येक बिचारा। येकै सबका सिरजनहारा॥
गुर के ग्यान माहिं सब येकै। रज्जब अंध अग्यान अनेकै॥१०॥

---

८. विलम=विलंब, देर। दिक=बेहाल, बीमार। सलिता=सरिता, नदी। चातिग=चातक, पपीहा। धन=स्त्री; जीवात्मा से आशय है। साल=कष्ट।

९. निसतारा=छुटकारा। पासा=पाश, फंदे। सूना=निरर्थक। लै=प्रीति। अलूना=फीका। रत=अनुरक्त। मत=मतवाला। रंकारा=रंकार; रामनाम।

१०. निगुरा=बिना गुरु का, मनमुखी। बुधि=सद्बुद्धि, विवेक। बीच=भेदभाव। बीरा=भाई। सौंज=साज-सामान।

राग आसावरी

मनरे, करु संतोष सनेही।
तृस्ना तपति मिटै जुग-जुग, की, दुख पावै नहिं देही॥
मिल्या सुत्याग माहिं जे सिरज्या, गह्या अधिक नहिं आवै।
तामें फेर सार कछु नाहीं राम रच्या सोइ पावै॥
बाछै सरग सरग नहिं पहुँचै, और पताल न जाई।
ऐसैं जाति मनोरथ मेटहु, समझि सुखी रहु भाई॥
रे मन, मानि सीख सतगुरु की, हिरदै धरि विस्वासा।
जन रज्जब यूँ जानि भजन करु, गोबिंद है घर पासा॥११॥

राग टोड़ी

हरिनाम मैं नहिं लीनां।
पाँच सखीं पाँचूँ दिस खेलैं, मन मायारस भीनां॥
कौन कुमति लागी मन मेरे, प्रेम अकारज कीनां।
देख्या उरझि सुरझि नहिं जान्यूँ, बिषम बिषयरस पीनां॥
कहिये कथा कौन विध अपनी, बहु बैरनि मन खीनां।
आतमराम सनेही अपने, सो सुपिनैं नहिं चीनां॥
आन अनेक आनि उर अंतरि, पग पग भया अधीनां।
जन रज्जब क्यूँ मिलैं जगतगुरु, जगत माहिं जी दीनां॥१२॥

राग टोड़ी

सब सुख की निधि आये साध। करम कलेस कटे अपराध॥
दरसन देखि किये दंडौत। अघ उतरे, अंकुर उदौत॥
परिदच्छिन देतेंइ दुख दूरि। चरनोदक लीनां सुखपूरि॥
स्त्रवननि कथा सुनत सुखसार। साधु-सब्द गहि उतरे पार॥
साचे संत सजीवनमूरि। रज्जब तिन चरनन की धूरि॥१३॥

---

११. मिल्या....सिरज्या=जो कुछ भगवान् ने सृष्टि में रचा है, वह त्याग के अनन्तर भोगने को मिला है। मिलाइए ईशोपनिषद का मंत्र—"तेन त्यक्तेन भुंजीथा।" बाछै=चाहता है।

१२. पाँच....खेलैं=पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में रम रहीं हैं। भीनां=मग्न। खीनां=खिन्न या क्षीण कर दिया है। चीनां=पहचाना। आनि....अंतरि=और अनेक विषयों को मन में स्थान देकर।

१३. अंकुर उदौत=पुण्य का अंकुर प्रकट हुआ। सुखपूरि=आनन्दपूर्वक। सब्द=ज्ञानोपदेश।

राग मलार

राम बिन सावण सह्यो न जाइ।
काली घटा काल होइ आई, कामनि दगधै माइ॥
कनक-अवास वास सब फीके, बिन पिय के परसंग।
महाबिपत बेहाल लाल बिन, लागै बिरह-भुअंग॥
सूनी सेज बिथा कहूँ कासूँ, अबला धरे न धीर।
दादुर मोर पपीहा बोलैं, ते मारत तन तीर॥
सकल सिंगार भार ज्यूँ लागै, मन भावै कछु नाहीं।
रज्जब रंग कौन सूँ कीजै, जे पीव नाहीं माहीं॥१४॥

राग केदारा

भजन बिन भूलि पर्‌यो संसार।
चाहैं पछिम जात पूरब दिस, हिरदै नहीं बिचार॥
बाछैं ऊरध अरध सूँ लागे, भूले मुगध गँवार।
खाइ हलाहल जीयो चाहैं, मरत न लागै बार॥
बैठे सिला समुद्र तिरन कूँ, सो सब बूड़नहार।
नाम बिना नाहीं निसतारा, कब्हुं न पहुँचैं पार॥
सुख के काज धसे दीरघ दुख, बहे काल की धार।
जन रज्जब यूँ जगत बिगूच्यो इस माया की लार॥१५॥

राग ललित

बिनती सुनो सकलपति साईं। सो सेवक पहुँचै तुम ताईं॥
चिंतामणि प्रभु चिंत निबारौ। चरणकमल उर अंतरि धारौ॥
कामधेनु कलपतरु केसो। अंतरिजामी भानि अँदेसो॥
जन रज्जब कूँ दीजे दादि। तुम बिन और न आवै यादि॥१६॥

राग बिलावल

भक्ति जाति कूँ क्या करै, सुनियो रे भाई।
बेटी सहारे बाप कै, भेजै तहँ जाई॥

---

१४. माइ=अंदर ही अन्दर। वास=वस्त्र। रंग=आनन्द-केलि। माहीं=हृदय में।

१५. ऊरध=ऊर्ध्व, स्वर्गलोक। अरध सूँ लागे=अधोलोक अर्थात् नरक की तैयारी करते हैं। मुगध=मूढ़। बिगूच्यो=अड़चन में पड़ा है। लार=साथ, पीछे।

१६. चिंत निबारौ=चिंता दूर करो। केसो=केशव। भानि=नष्ट करदो। दादि=न्याय।

नामा कबीर सु कौन थे, कुन राँका बाँका।
भगति समांनी सब घरनि तजि कुल का नाका॥
बिदुर बाँदरा बंस तें, सो भक्ति न छोड़ै।
नीच ऊँच देखै नहीं, मन मानै मोड़ै॥
आदि मिली जैदेव कूँ, रैदास समांनी।
सो दादू घर पैठी, क्यूँ रहै निमांनी॥
रज्जब रोकी ना रहै, आग्या लै आई।
रावरंक सब सारिखे भाव भगति पाई॥१७॥

राग कानड़ा

रज्जब राम-सनेही आवहिं।
तन मन मंगल होइ परमसुख, आनँद अंग न मावहिं॥
अधिक उछाह मुदित मन मेरो, चहुँदिस चौक पुरावहिं।
बलि बलि जाउँ अघाउँ न कबहूँ, प्रेममगन गुण गावहिं॥
सकल सुहाग भाग बहु मेरो, मोहन रूप दिखावहिं।
जन रज्जब जगदीस दया करि परदा खोलि खिलावहिं॥१८॥

राग गुंड

गुर गरवा दादू मिल्या, दीरघ दिल दरिया।
तन छन परसन होतहीं भजन-भाव भरिया॥
स्त्रवण कथा साँची सुणी, संगति सतगुर की।
दूजा दिल आवै नहीं, जब धारी धुर की॥
भरमजाल भव काटिया, संका सब तोड़ी।
साँचा सगा जे राम का, ल्यौ तासूँ जोड़ी॥
भौजल माहीं काढ़िके जिन जीव जिलाया।
सहज सजीवन कर लिया साँच संगि लाया॥
जनम सफल तबका भया, चरनों चित लाया।
रज्जब राम दया करी, दादू गुर पाया॥१९॥

---

१७. नामा=नामदेव। कुन=कौन। राँका बाँका=दो हरिभक्त। बाँदरा=बाँदी अर्थात् दासी। निमांनी=दबकर, छिपी हुई।

१८. मावहिं=समाते हैं।

१९. गरवा=भारी, महान्। परसन=प्रसन्न। धारी धुर की=परे से भी परे की भक्ति-भावना धारण की। ल्यौ=प्रीति। लाया=लगाया।

राग सोरठ

मन रे, राम न सुमर्‍यो भाई। जो सब संतनि सुखदाई।
पल-पल घरी पहर निसिबासर लेखे मैं सो जाई॥
अजहुँ अचेत नैन नहिं खोलत, आयु अवधि पै आई।
वार पच्छ बरष बहु बीते, कहिधौं कहा कमाई॥
कहतहि कहत कछू नहिं समझत, कहि कैसी मति पाई॥
जनम जीव हार्‍यो सब हरि बिन, कहिये कहा बनाई।
जन रज्जब जगदीस भजे बिन दह दिस सौंज गमाई॥२०॥

राग कानड़ा

राम रँगीले के रँग राती।
परमपुरुष संगि प्राण हमारो, मगन गलित मद माती॥
लाग्यो नेह नाम निर्मल सूँ, गिनत न सीली ताती।
डगमग नहीं, अडिग होइ बैठी, सिर धरि करवत काती॥
सब विधि सुखी राम ज्यूँ राखै, यहु रसरीति सुहाती।
जत रज्जब धन ध्यान तिहारो, बेरबेर बलि जाती॥२१॥

राग भैरूँ

सेइ निरंजन दीनदयाल। पेड़ परसि पूजीं सब डाल॥
सिव बिरंचि सब लोकपाल। जोपै सेयो श्री गोपाल॥
नबी साथ सब पीर पसारा। सेवक सबका सबहिं पियारा॥
सिध साधक सबहिन सुखपाया। जोपै जीव जगतपति ध्याया॥
मूल बिना डालौं सचु नाहीं। रज्जब समझि लागि रहु माहीं॥२२॥

राग भैरूँ

मार भली जो सतगुरु देहि। फेरि बदल औरै करि लेहि॥
ज्यूँ माटी कूँ कुटै कुँभार। त्यूँ सतगुरु की मार बिचार॥
भाव भिन्न कछु औरै होइ। ताते रे मन मार न जोइ॥
जैसे लोहा घड़ै लुहार। कूटि काटि करि लेवै सार॥

---

२०. अवधि=समाप्ति। पच्छ=पखवाड़ा। दह.....गमाई=सभी तरफ़ से सब कुछ खो दिया।

२१. गलित=पूर्ण, पुष्ट। सीली-ताती=सरदी-गरमी। करवत=करौत, बड़ा आरा। काती=कैंची।

२२. नबी=पैगम्बर। पीर=मुसलमान सिद्ध। सचु=सखु। लागि रहु माहीं=अपने अन्तर में आत्मा का ध्यान करो।

मारै मारि मिहरि करि लेहि। तौ निपजै फिरि मार न देहि॥
ज्यूँ सांटी संपुट में आनि। सूधी करै तीरगर पानि॥
मन तोड़न का नाहीं भाव। जे तुछ तूटि जाय तौ जाव॥
ज्यूँ कपड़ा दरजी के जाय। टूक टूक करि लेहि बनाय॥
त्यूँ रज्जब सतगुरु का खेल। ताते समझि मार सब झेल॥२३॥

राग आसावरी

गुरु के गमन दुख सिख सारे। सब सुखनिधि के विलसणहारे॥
स्त्रवणा दुखित सुनति सत बानी। नैन दुखित डारैं बहु पानी॥
दुखित रसन मुख बातैं करते। सीस दुखित गुरुचरननि धरते॥
तन मन दुखित जु फेरि सँवारे। अन्तरिध्यान भये गुरु प्यारे॥
जन रज्जब रोवै दुख यादू। परमपुरुष बिछुटे गुरु दादू॥२४॥

राग धनाश्री

आरती तुम ऊपरि तेरी। मैं कछु नाहिं कहा कहूँ मेरी॥
भाव-भगति सब तेरी दीन्हीं। ताकरि सेव तुम्हारी कीन्हीं॥
मन चित सुरति सब्द सब तेरा। सो तुम लै तुमहीं परि फेरा॥
आतम उपजि सौंज सब तुमते। सेवा-सक्ति नाहिं कछु हमते॥
तुम अपनी आप प्रानपति पूजा। रज्जब नाहिं करन कूँ दूजा॥२५॥

साखी

दादू दरिया, रामजल, सकल संतजन मीन।
सुखसागर में सब सुखी, जन रज्जब जे लीन॥१॥

दादू दीनदयाल गुरु, सो मेरे सिरमौर।
जन रज्जब उनकी दया, पाई निहचल ठौर॥२॥

रज्जब सिख, दादू गुरु, दीया दीरघ ग्यान।
तन मन आतम ब्रह्म का समझ्या सब अस्थान॥३॥

---

२३. न जोइ=ध्यान न दे। निपजै=(ज्ञान-दृष्टि) प्रकट होती है। सांटी=छड़ी, कमची। संपुट=शिकंजे से तात्पर्य है। तीरगर=तीर बनाने वाला कारीगर। तुछ=तुच्छ, निकम्मा। झेल=सहन करले।

२४. रसन=रसन, जीभ। बिछुटे=बिछुड़ गये, चलबसे।

२५. ताकरि=उससे। सुरति=लय, ध्यान। फेरा=उतारा। उपजि=भावना। सौंज=सामग्री।

रज्जब कूँ अज्जब मिल्या, गुरु दादू दातार।
दुख दरिद्र तबका गया, सुख संपत्ति अपार ॥४॥

गुरु दादू का हाथ सिर, हृदये त्रिभुवन-नाथ।
रज्जब डरिये कौन सूँ, मिलिया साईं साथ ॥५॥

गुरु बिन गम्य न पाइये, समझ न उपजै आइ।
रज्जब पंथी पंथबिन कौर दिसावर जाइ ॥६॥

सतगुरु बिन संदेह कूँ, रज्जब भानै कौन।
सकल लोक फिरि देखिया, निरखे तीन्यूं भौन ॥७॥

जो प्राणी रुचि सूँ गहै, उर अंतरि गुरु-बैन।
जन रज्जब जुगजुग सुखी, सदा सु पावै चैन ॥८॥

रज्जब नर नारी सकल, चकवा चकवी जोड़।
गुरु-बैन बिच रैन में, किया दुहूँ घर फोड़ ॥९॥

जीव रच्या जगदीसनै, बाँध्या काया माहिं।
जन रज्जब मुकता किया, तौ गुरुसम कोइ नाहिं ॥१०॥

गुरु दीरघ गोविंद सूँ, सारै सिष्य सुकाज।
रज्जब मक्का बड़ा, परि पहुँचै बैठि जहाज ॥११॥

घटा गुरु-आसोज की, स्वाति-बूँद सत बैन।
सीप-सुरति सरधासहित, तहँ मुकता मन ऐन ॥१२॥

मुरीद मता तब जानिए, मन मुरीद जब होइ।
रज्जव पावै पीर कूँ, तासम और न कोइ ॥१३॥

---

४. अज्जब=अजब, अलौकिक। दातार=दाता।

६. समझ=सद्बुद्धि। दिसावर=देशान्तर, दूसरा देश।

७. भानै=नष्ट करे।

९. किया....फोड़=दोनों को अलग कर दिया; संसार से विरक्त कर दिया।

११. सारै=पूरा करता है।

१२. आसोज=आश्विन मास, क्वार। घटा.....ऐन=कहते हैं, कि आश्विन-मास में स्वाति-नक्षत्र में जब वर्षा होती है, तब सीप में पानी की बूँद पड़ने से उसमें से मोती उत्पन्न होता है।

१३. मुरीद=चेला।

कामधेनु गुरु क्या कहै, जो सिष निःकामी होइ।
रज्जब मिलि रीता रह्या, मँदभागी सिष जोइ ॥१४॥

सिला सँवारी राजनै, ताहि नवैं सब कोइ।
रज्जब सिष मिल गुरु गढ़ै, सोइ पूजि किन होइ ॥१५॥

गुरु ग्याता परजापती, सेवक माटीरूप।
रज्जब रज सूँ फेरिकै घड़ि ले कुंभ अनूप ॥१६॥

ज्यूँ धोबी की धमस सहि ऊजल होइ कुचीर।
त्यूँ सिष तालिब निरमला, मार सहै गुरु पीर ॥१७॥

मन हस्ती मैमंत सिर गुरु महावत होइ।
रज्जब रज डारै नहीं, करै अनीति न कोइ ॥१८॥

असली आग्या में चलै, बाहिर धरै न पाव।
रज्जब कपटी कमअसल, खेलै अपने डाव ॥१९॥

बिरहिण बिहरै रैनदिन, बिन देखे दीदार।
जन रज्जब जलती रहै, जाग्या बिरह अपार ॥२०॥

बिरहापावक उर बसै, नखसिख जालै देह।
रज्जब ऊपरि रहम करि बरसहु मोहन मेह ॥२१॥

रज्जब बिरह-भुअंग परि ओषद हरि-दीदार।
बिन देखे दीरघ दुखी, तनमन नहीं करार ॥२२॥

भलका लाग्या भाव का, सेवक हुआ सुमार।
रज्जब तलफै तबलगैं, मिलै न मारनहार ॥२३॥

---

१४. निःकामी=यहाँ निकम्मा से आशय है। रीता=खाली, ज्ञानशून्य।

१५. सिला सँवारी राजनै=कारीगर ने पत्थर से मूर्ति तैयार की। पूजि=पूज्य।

१६. परजापती=प्रजापति, कुम्हार। रज=मिट्टी।

१७. धमस=पछाड़, चोट। कुचीर=मैला कपड़ा। तालिब=खोजी।

१८. मैमंत=मतवाला।

१९. डाव=दाव।

२०. बिहरै=बिछोह में तड़पती है।

२२. करार=चैन।

२३. भलका=भाला। सुमार=बिसमार।

जैसे नारी नाह बिन, भूली सकल सिंगार।
त्यूँ रज्जब भूल्या सकल, सुनि सनेह दिलदार ॥२४॥

तनमन ओले ज्यूँ गलहिं, बिरह सूर की ताप।
रज्जब निपजै देखि तूँ, यूँ आपा गलि आप ॥२५॥

रज्जब ज्वाला बिरह की, कबहूँ प्रगटै माहिं।
तौ सींचनि घृत सों चहौं, करम-काठ जरि जाहिं ॥२६॥

रज्जब कायर कामिनी, रही बिपत के संग।
सती चली सरि चढ़न कूँ, पहरि पटंबर अंग ॥२७॥

चकई ज्यूँ चकिरत भई, रैन परी बिचि आय।
जन रज्जब हरि पीव कूँ, क्योंकरि परसौं जाय ॥२८॥

दरद नहीं दीदार का, तालिब नाहीं जीव।
रज्जब बिरह बिवोग बिन, कहाँ मिलै सो पीव ॥२९॥

नैनों नेह न नाह का, तेहि दिसि दीठि न जाहिं।
रज्जब रामहिं क्यूँ मिलै, तालिब नाहीं माहिं ॥३०॥

गृह दारा सुत वित्त सूँ, यहु मन भया उदास।
जन रज्जब रामहिं रच्या, छूट्या जगत-निवास ॥३१॥

रज्जब घर घरणी तजी, पर घरणी न सुहाइ।
अहि तजि अपनी कंचुकी, किसकी पहिरै जाइ ॥३२॥

माता तौ मेरी सकल, जे जनमी जगि आइ।
जन रज्जब जननी सबै, कासूँ विषय कमाइ ॥३३॥

मनसा-नारी त्यागिकै, मन बैरागी होइ।
रज्जब राखै जतन यहु, जती कहावै सोइ ॥३४॥

---

२५. आपा=अहंकार।

२६. माहिं=हृदय में।

२७. सरि=चिता।

२९. बिवोग=वियोग।

३०. दिसि=ओर।

३१. रच्या=रँगा।

३३. विषय कमाइ=भोग करे।

३४. जती=यति, संन्यासी।

रज्जत रीती आतमा, जे हिरदै हरि नाहिं।
तहाँ समागम को करै, सूने मंदिर माहिं ॥३५॥

रज्जब लौ में लाभ बड़, लीन हुआ रहु माहिं।
लौ में लत लागै नाहीं, और खता मिटि जाहिं ॥३६॥

सबही बेद बिलोयकरि, अंत दिढ़ावैं नाम।
तौ रज्जब तूँ राम भजि, तजिदे थोथा काम ॥३७॥

अलह अलह कहतहीं, अलह लह्या सो जाय।
रज्जब अज्जब हरफ है, हिरदे हित चित लाय ॥३८॥

रज्जब अज्जब यह मता, निसदिन नाम न भूलि।
मनसा बाचा करमना, सुमरिन सब सुखमूलि ॥३९॥

मुख सूँ भजै सो मानवी, दिलसूँ भजै सो देव।
जीव सूँ जपै सो जोतिमै, रज्जब साँची सेव ॥४०॥

ज्यूँ कामिनि सिर कुंभ धरि, मन राखै ता माहिं।
त्यूँ रज्जब करि राम सूँ, कारज बिनसै नाहिं ॥४१॥

ऊपर संत असंत सम अंतर अंतर होय।
रज्जब पानी ईख का, रूप एक रस दोय ॥४२॥

आदि अन्त मधि हम बुरे, हम ते भला न होय।
रज्जब ज्यूँ साहिब खुसी, सो लच्छन नहिं कोय ॥४३॥

तुम जोगी सेवक नहीं, मैं मँदभागी करतार।
रज्जब गुण नहिं बापजी, बहुत किये बिभचार ॥४४॥

सकल पतित पावन किये, अधम उधारनहार।
बिरद विचारौ बापजी, जन रज्जब की बार ॥४५॥

जे तुम राम बुलाय ल्यौ, तौ रज्जब मिलसी आय।
जथा पवन परसंगि ते गुडी गगन कूँ जाय ॥४६॥

---

३६. लत=बुरी आदत। खता=भूलचूक, अपराध।
३७. विलोयकरि=मंथन करके, गहरा विचार करके।
३८. अलह=(१) अल्लाह, ईश्वर (२) अलभ्य, जो उपलब्ध न हो सके।
४०. मानवी=मनुष्य।
४४. तुम जोगी=तुम्हारे योग्य।
४६. परसंगि=साथ में। गुड़ी=पतंग।

भला बुरा जैसा किया, तैसा निपज्या जीव।
यह तुम्हारा तुमकूँ मिल्या, तुम क्यूँ मिले न पीव ॥४७॥

रे प्राणी, पासा पड्या, मिनखा देही माहि।
जन रज्जब जगदीस भजु, अब औसर सो नाहिं ॥४८॥

मिनखा-देह अलभ्य धन, जामें भजन-भँडार।
सो सुदृष्टि समझै नहीं, मानुष मुग्ध गँवार ॥४९॥

रज्जब रचिये राम सूँ, तौ तजिये संसार।
देखहु, तरु फल ना लहैं, बिना भये पतझार ॥५०॥

जैस छाया कूप की, बाहरि निकसै नाहिं।
जन रज्जब यूँ राखिये, मन मनसा हरि माहिं ॥५१॥

साध, सबूरी स्वान की, लीजै करि सुविवेक।
वै घर बैठ्या एक कै, तू घर घर फिरहि अनेक ॥५२॥

साबुन सुमिरण जल सतसंग। सकल सुकृत करि निर्मल अंग॥
रज्जब रज उतरै इहि रूप। आतम-अम्बर होइ अनूप ॥५३॥

अब कै जीते है, अब कै हारे हार।
तौ रज्जब रामहिं भजौ, अलप आयु दिन चार ॥५४॥

सरण साई साध की, पकड़ि लेहि रे प्राण।
तौ रज्जब लागै नहीं, जम जालिम का बाण ॥५५॥

हिन्दू पावैगा वही, वोही मूसलमान।
रज्जब किणका रहम का, जिसकूँ दे रहमान ॥५६॥

हेत न करि हिन्दू धरम, तजि तुरकी रसरीति।
रज्जब जिन पैदा किया, ताही सूँ करि प्रीति ॥५७॥

रज्जब हिन्दू तुरक तजि, सुमिरहु सिरजनहार।
पखापखी सूँ प्रीति करि कौन पहूँचा पार ॥५८॥

---

४७. निपज्या=उत्पन्न हुआ।

४८. मिनखा=मनुष्य।

५१. मन मनसा=मन की वृत्ति।

५२. सबूरी=सब्र, संतोष।

५३. रज=मिट्टी, मैल। इहि रूप=इसी प्रकार। अंबर=वस्त्र।

५८. पखापखी=पक्ष और विपक्ष।

हिंदु तुरक दून्यूँ जलबूँदा। कासूँ कहये बांभण सूदा।
रज्जब समता ग्यान विचारा। पंचतत्त का सकल पसारा ॥५९॥

नारायण अरु नगर के, रज्जब पंथ अनेक।
कोई आवौ कहीं दिसि, आगे अस्थल एक ॥६०॥

मुल्ला मन बिसमिल करौ, तजौ स्वाद का घाट।
सब सूरत सुबहान की, गाफिल गला न काट ॥६१॥

मार्‍या जाहि तौ मारिये, मनसा वैरी माहिं।
जन रज्जब सो छाड़िकै, मारन कूँ कछु नाहिं ॥६२॥

रज्जब बेटी बंदगी, जाई सिरजनहार।
दीन्हीं सो जा जीव कँ, रिधि सिधि बांधी लार ॥६३॥

जो माया मुनिवर गिलै, सिध साधक से खाय।
ता मायासूँ हेत करि, रज्जब क्यूँ पतियाय ॥६४॥

एक गये नट नाचिकै, एक कछे अब आय।
जन रज्जब इक आइसी, बाजी रची खुदाय ॥६५॥

नामरदां भुगती नहीं, मरद गये करि त्याग।
रज्जब रिधि क्वांरी रही, पुरुष-पाणि नहिं लाग ॥६६॥

छाजन भोजन दे भगवंत, अधिक न बाछैं साधूसंत।
रज्जव यह संतोषी चाल, मांगहिं नाहिं मुलक औ माल ॥६७॥

जबलगि तुझमें तू रहै, तबलगि वह रस नाहिं।
रज्जब आपा अरपिदे, तौ आवै हरि माहिं ॥६८॥

करणी कठिन रे बंदगी, कहनी सब आसान।
जन रज्जब रहणी बिना, कहाँ मिलै रहिमान ॥६९॥

---

५९. जल-बूँदा=माता-पिता के रज-वीर्य (से उत्पन्न)। सूदा=शूद्र।

६१. बिसमिल=घायल। घाट=दिशा, ओर।

६३. जाई=पैदा की हुई। लार=साथ।

६४. गिलै=निगल जाये।

६५. कछे=नाचने के लिए वस्त्र सँवारकर पहने। आइसी=आयेगा।

६६. रिधि=ऋद्धि। क्वाँरी=कुमारी, अविवाहिता। पाणि=हाथ।

६७. छाजन=वस्त्र। बाछैं=चाहते हैं।

हाथघड़े कूँ पूजता, मोललिये का मान।
रज्जब अघड़ अमोल की, खलक खबर नहिं जान ॥७०॥

रज्जब चेतनि जड़ गढ्या, सुधि बिन लागै सेव।
एती अकलि न ऊपजी, असम भया क्यूँ देव ॥७१॥

माला तिलक न मानई, तीरथ मूरति त्याग।
सो दिल दादू-पंथ में, परमपुरुष सूँ लाग ॥७२॥

पराकिरत मधि ऊपजे संसकिरत सब बेद।
अब समझावै कौनकरि, पाया भाषाभेद ॥७३॥

बीजरूप कछु और था, बिरछरूप भया और।
त्यूँ प्राकृत में संस्कृत, रज्जब समझा ब्यौर ॥७४॥

बेद सु बाणी कूपजल, दुखसूँ प्रापति होइ।
सबद साखि सरवर सलिल, सुख पीवै सब कोइ ॥७५॥

त्रिय जोजन बोली पलटै, बहु बसुधा बहु बाणि।
रज्जब लीजे सबद सति, रामनाम निज छाणि ॥७६॥

चाकी चरखा घसि गये, भ्रमि-भ्रमि भामिनि-हाथ।
तौ रज्जब क्यूँ होहिंगे, नर निहचल तिनसाथ ॥७७॥

समये मीठा बोलना, समये मीठा चूप।
उनहाले छाया भली, रज्जब सियाले धूप ॥७८॥

---

७०. हाथघड़े कूँ=हाथ से बनाई हुई मूर्ति को। अघड़=जिसे मनुष्य ने नहीं बनाया। खलक=दुनिया।

७१. चेतनि=चैतन्य, मनुष्य। जड़=पत्थर की मूर्ति से अभिप्राय है। सुधि=ज्ञान। असम=अश्म, पत्थर।

७३. पराकिरत=प्राकृत (भाषा)।

७४. ब्यौर=ब्यौरा, पूरा हाल।

७५. दुखसूँ=कठिनाई से।

७६. बाणि=भाषा। छाणि=सार लेकर।

७७. भ्रमि-भ्रमि=चक्कर लगाते-लगाते।

७८. उनहाले=गरमी में। सियाले=सरदी में।

साईं देता ना थकै, लेता थकै न दास।
रज्जब रस-रसिया अमित, जुग-जुग पूरैं प्यास ॥७६॥

मथुरा में माला खुली, तिलक ऊतरे मंथि।
रज्जब छूटे रामजन, पड़ि दादू के पंथि ॥८०॥

●

८०. मंथि=माथे से।

बषनाजी

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—अज्ञात; अनुमानतः १७ वीं विक्रमी शती का प्रथम पाद
जन्म-स्थान—नराणा ग्राम (साँभर से ५ कोस दक्षिण)
जाति—मीरासी; मतान्तर से लखारा, कलाल तथा राजपूत
गुरु—स्वामी दादू दयाल
आश्रम—गृहस्थ
रचना-काल—अनुमानतः संवत् १६४० से १६७७ तक
निर्वाण-स्थान—नराणा ग्राम

बषनाजी* का निश्चयात्मक इतिवृत्त इतना ही समझा जाये कि वे नराणे ग्राम के निवासी थे, और स्वामी दादू दयाल के प्रधान शिष्यों में उनकी गणना हुई है। यह एक ऊँचे दरजे के गायक थे, कंठ बड़ा सुरीला था। जनगोपालजी की 'जन्मलीला' में लिखा है—

"स्वामी गये सबनि सुख पाये। रमते नगर नराणैं आये॥
बषनौं होरी गावत देख्यौ। गुरु दादू अपनौं करि पेख्यौ॥
क्रपा करी तब ऐसी स्वामी। बचन बोलिया अंतरजामी॥
ऐसी देह रची रे भाई। राम निरंजन गावौ आई॥
ऐसा बचन सुन्या है जबही। बषनौं दख्या लीन्हीं तबही॥"

इस प्रकार बषना दादू दयालजी के शिष्य हुए थे। अर्थात् शृंगाररस की होली गा रहे थे, कंठ मीठा सुरीला था, पर भाव गीत का संसारी था। दादूजी ने रास्ता मोड़ दिया। बषना अब मालिक के गुण गाने लगे। सतगुरु के शब्दवाण से बिंध गये—

"म्यारे गुरां कह्यो सोई करस्यूँ हो।
खार समँद में मीठी वेरी कर सूधै घड़लै भरस्यूँ हो।"

गुरु-भक्ति इनकी बड़ी गहरी थी। दादूजी के विरह में इन्होंने जो पद कहा है, उसके शब्द-शब्द में इनकी गहरी गुरु-भक्ति की झलक मिलती है—

---

*'बषना' के 'ष' का उच्चारण 'ख' की तरह हुआ है।

''बीछड़या रामसनेही रे, म्हारे मन पछतावो येही रे ॥
बिलखी सखी सहेली रे, ज्यों जल बिन नागरवेली रे ॥
वा मुलकति छवि छोड़ी रे, म्हारे रै गई हिरदा माहीं रे ॥
को ऊंहि उणिहारे नाहीं रे, हूँ ढूँढ़ि रहिं जग माहीं रे ॥
सब फीको म्हारे भाई रे, मंडली को मंडण नाहीं रे ॥
कूँण सभा में साहै रे, जाकी निर्मल बाणी मोहै रे ॥
भरि-भरि प्रेम पिलावै रे, कोइ दादू आणि मिलावै रे ॥
'बषना' बहुत बिसूरै रे, दरसण के कारण झूरै रे ॥''

दादूपंथी राघोदासजी ने अपनी 'भक्तमाल' में वषनाजी का गुणानुवाद इन शब्दों में किया है—

''गुरुभगता जनदास सील सुठि सुमरन सारौ।
बिरह-लपेटे सबद लगत तन करत सु भारौ ॥
हरिरस-मद पिय मत्त रैनिदिन रहै खुमारी।
परचै वाणी विसद सुनत प्रभु बहुत पियारी ॥
माया ममता मान मद, राघो तन मन मारि छड़।
दादू दीनदयाल के है बषनौं बानैत बड़ ॥''

बानी-परिचय

बषनाजी की बानी के विषय में स्वामी मंगलदासजी ने ''बषनाजी की वाणी'' की भूमिका में लिखा है कि, ''उनकी रचना का परीक्षण साहित्यिक दृष्टि से किया जाना संगत नहीं है, क्योंकि वे कोई कवि या साहित्यकार नहीं थे। वे तो एक सच्चे साधक थे। परमात्मा के लिए सब कुछ अर्पण कर देनेवाली भावना ही उनकी साहित्यधारा थी।'' सत्य के चरणों पर सर्वस्वार्पण कर देने की भावना यदि साहित्य नहीं है तो फिर साहित्य और क्या है? काव्य के कतिपय आचार्यों ने साहित्य की जो व्याख्याएँ निर्धारित कर रखी हैं, और उदाहरणस्वरूप जिन अनेक कवियों की रचनाएँ उपस्थित की हैं, उनकी तुलना में भले ही संतों की ऊँची रचनाओं को न रखा जाये—रखना समीचीन भी नहीं है—किन्तु साहित्य की आत्मा रस की निर्मल धारा तो उन्हीं की वाणी से प्रवाहित हुई है। उस धारा के आगे सुसज्जित भाषा काँपती हैं, अलंकार लजाते हैं।

बषनाजी ने ढूंढाहड़ी (राजस्थानी का एक भेद) भाषा में, सीधे-सादे शब्दों में, सत्य का ऊँचा निरूपण और मालिक के विरह का बड़ा सजीव चित्रण किया है। साखियाँ हृदय पर सीधे चोट करने वाली, और पद अंतर को बिना वाण के भेद देने वाले हैं। कोई-कोई उक्ति तो बड़ी ही अनूठी है। दादू-पंथ के महान् संत रज्जबजी ने भी इनकी साखियों और

पदों को अपनी 'सर्वङ्गी' में लिया है। सुन्दरदासजी भी बषनाजी की वाणी को प्रमाणरूप मानते थे। शान्ति-निकेतन के आचार्य क्षितिमोहन सेन भी बषनाजी की बानी के भक्त हैं।

जयपुर के दादू महाविद्यालय के स्वामी मंगलदासजी ने बषनाजी की वाणी का सुचारु संपादन कर संत-साहित्य की भारी सेवा की है। इसी सुसंपादित पुस्तक से हमने बषनाजी की साखियों और पदों को सटिप्पण संकलित किया है।

आधार

१ बषनाजी की वाणी—स्वामी मंगलदास, श्री लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर
२ सुन्दर-ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड)—राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता

●

बषनाजी

साखी

गुर कौं सिष बूझै सदा, जे गुर करै सहाइ।
जहाँ हमारा हरि बसै, सो दादू देस बताइ ॥१॥

बांवै डिगी न दांहिणैं, मती अपूठा थाइ।
गुर दादू देस बताइया, बषना उस मारगि जाइ ॥२॥

रांमनांम जिन ओषदी, सतगुर दई बताइ।
ओषदि खाइ र पछि रहै, बषना वेदन जाइ ॥३॥

पछि पांणी राखै नहीं, जौ भावै सो खाइ।
तौ ओषदि गुण नां करै, बषना ब्याधि न जाइ ॥४॥

इहिं ओषद तैं साध सब, अनत उधारी देह।
कोइ कुपछ का फेर है, नहीं त ओषद येह ॥५॥

सत जत साँच खिमा दया, भाव भगति पछि लेह।
तौ अमर ओषदी गुण करै, बषना उधरै देह ॥६॥

अमर जड़ी पानैं पड़ी, सो सूँघी सत जाणि।
बषना विसहर सूँ लड़ै, न्यौल जड़ी के पाणि ॥७॥

कीडी कुंजर सूँ लड़ै, गाइ सिंघ कै संग।
बषना भजनप्रताप थैं, निबला सबलौं संग ॥८॥

---

२. बावै=बाईं ओर। मती=मत, न। अपूठा=पीछे। थाइ=हो।

३. ओषदी=औषद, दवा। पछि=पथ्य। वेदन=पीड़ा, रोग।

५. कुपछ=कुपथ्य। फेर=अंतर, भूल।

६. जत=संयम। खिमा=क्षमा।

७. पानैंपड़ी=हाथ में आई, मिल गई। विसहर=विषधर, सर्प। न्यौल=नेवला। पाणि=सहारे से।

पहली था सो अब नहीं, अब सो पछैं न थाइ।
हरि भजि बिलम न कीजिये, बषना बारौ जाइ ॥९॥

जे बोल्या तौ राम कहि, जे चुपका तौ राम।
मन मनसा हिरदा मही, बषना यहु विश्रांम ॥१०॥

सब आया उस एक मै, दही मही घृत सूध।
बषना बाकै क्या रह्या, जब दुहि पीया दूध ॥११॥

प्रश्न-चकोर अंगारे क्यू चुगै, चुगि देह जरावै।
कहि बषना किहिं कारणैं, कोई मरम लखावै ॥१२॥

उत्तर-स्यौ बिभूति कबहूँ करै, लावै उस ठांई।
बषना मस्तक चन्द है, मिलि खाकै तांई ॥१३॥

दूध मिल्यौ ज्यूँ नीर में, जल मिसरी इक रूप।
सेवग स्वामी नांव द्वै, बषना एक सरूप ॥१४॥

भरिया होइ तौ कदे न डोलै, ज्ञान ध्यान गुर पूरा।
बषना ओछै बासणि, झलकै सदा अधूरा ॥१५॥

बषना वेद कतेवौं कागदौं, लिख्या न आवै ज्ञांनि।
पंखी उड्या आकाश में, सब अपणै उनमांनि ॥१६॥

कौडी रमतां डावड़ौ, डरतौ सास न लेइ।
बषना साहिब तौ मिलै, यौं लै चरणा देइ ॥१७॥

यौं लै लावौ रांम सूँ, बषना सारौ काम।
अवार हूवां पंथी डरै, कब घरि जास्यूँ रांम ॥१८॥

---

९. बारौ=समय।

११. मही=मट्ठा। सूध=शुद्ध।

१३. स्यौ=शिव। बिभूति=भस्म। खाकै ताईं=उस (चध्द्र) के साथ।

१५. कदे=कभी। ओछे बासणि=छोटे बर्तन में, जिसमें कम पानी हो। झलकै=छलकता है।

१६. उनमांनि=अनुमान या अटकल से।

१७. रमतां=खेलनेवाला। डावड़ौ=बालक। सास न लेइ=मारे डरके सांस भी नहीं खींचता कि माता-पिता कहीं खेलते हुए देख न लें। कौड़ियों का खेल खेलता तो है, पर ध्यान भय से उसका माता-पिता की ओर लगा हुआ है। लै=लय, तन्मयता।

१८. अवार=देर। जास्यूँ=जाऊँगा, पहुँचूँगा।

मोटी देखि बहुत मन मान्यां, दूहतां दूध न आवै।
बषना बहिल भैंसिनै मूरिख, क्यांहनैं पसर चरावै ॥१९॥

पै पांणी भेला पीवैं, नहीं ज्ञान को अंस।
तजि पांणी पैनैं पीवै, बषना साधू हंस ॥२०॥

कण कड़बी भेला चरैं, आंधा बिषई प्राण।
बषना पसु भरम्यां भखै, सुनि भागौत पुराण ॥२१॥

देही का गुण बीसरै, एक रंगि रह जाइ।
बषना सोइ सन्तजन, कड़बि टालि कण खाइ ॥२२॥

माता पिता की गमि नहीं, तहाँ पिवायौ खीर।
सो गुण थारा रांमजी, बषनै लिख्या शरीर ॥२३॥

बषना इहि ब्यौपार मैं, टोटा मनहुँ न आणि।
सिर साटै जै हरि मिलै, तबलग सुहगा जाणि ॥२४॥

नौ ग्रह तेतीसौं पड्यो, मेरी बंदि में आइ।
बषना माया गर्व सौं, देखत गयौ बिलाइ ॥२५॥

बैसंदरि धोवै लूगडा, सूरिज करै रसोइ।
बषना ताकी चिता में, अजहूँ धूँवाँ होइ ॥२६॥

सीताराम वियोग नित, मिलि न कियौ बिश्राम।
सीता लंक उद्यान मैं बषना वन मैं राम ॥२७॥

कैरू पांडू सारिखा, देता परदल मोड़ि।
बषना बल कौ गर्व करि, अंति मुवो सिर फोड़ि ॥२८॥

---

१९. बहिल=बाँझ। क्यांहनैं=क्यों व्यर्थ। पसर=रात को हरी घास चराना।

२०. पै=पय, दूध। भेला=मिला हुआ। पैनैं=दूध को।

२१. कण=अन्न। कड़वी=भूसा। आँधा=मोहासक्त। भरम्या भखैं=भ्रम में ही फँसे रहते हैं, सार वस्तु ग्रहण नहीं कर पाते।

२२. एक रंगि=चित्तवृत्तियों का निरोध कर स्थिरबुद्धि हो जाना। टालि=दूर करके। कड़बि=विषय-भोगों से आशय है। कण=आत्मानन्द से आशय है।

२४. मनहुँ न आणि=मन में भी न ला। साटै=मोल। सुहगा=सस्ता।

२५. तेतीसौं=तैंतीस करोड़ देवता। बंदि=कैद।

२६. बैसंदरि=अग्नि। लूगडा=कपड़ा।

२८. कैरू पांडू सारिखा=कौरव-पांडव सरीखे। परदल=शत्रु-सेना।

इसा बड़ा गर्बै गल्या, बल को करि अहंकार।
थे बषना अब दीन है, सुमिरो सिरजनहार ॥२६॥

बषना सुमिरौ रामनैं, मन कौ गर्ब गमाइ।
जीवत जगि सोभा घणी, मूवा मुक्ति सिधाइ ॥३०॥

कोइल स्यांम, काग भी काला, भेष एक, पण लषण निराला।
काग रंग परि करैं कुरांली, वा बोलै अम्बा की डाली ॥३१॥

बषना हरि जल बरषिया, जल थल भरे अनेक।
करम कठौंरां माणसाँ, रोम न भीगो एक ॥३२॥

मूल गह्या तौ का भया, फल नहीं खाया बीर।
जै थणि लागी चींचड़ी, बषना पीयो न खीर ॥३३॥

पद

राग गौड़ी

रमईयो कहि नै कदि सो म्हारो जीवन प्राण आधार।
जिहिं की मूंनै ओलूँ आवै बारंवार ॥
जोई नै रूडौ जोइसी, रूडौ लगन विचारि।
कहि गोविन्द कद आवसी, म्हारा आंगणडै पग धारि ॥
जिहि मिलियां आनन्द होइ रे, बीछडियाँ बैराग।
तिहिं मिलबा कै कारणै हूँ ऊभी उडाऊंली काग ॥
ऊभा बैठां निरखतां, म्हारा नैण रह्या रतवाय।
हरि को मारग हेरतां, रैण गई दिन जाय ॥
पंथी बूझौं पल गिणौं रे, ऊभी मारग जोइ।
कोई कहै हरि आवतो, म्हारो हियौ उरेरो होय ॥
अणदीठो ओलूँ करै रे, मो मन वारंवार।
ऊझल फूटा क्यार ज्यूँ, म्हारै नैंणन खंडै धार ॥
इहि बेला आयो नहीं, म्हारौ सहीयो संदेशो ऊटि।
हीयो पुराणी, बाड ज्यूँ, म्हारो गयो विंचालथी टूटि ॥

---

३१. पण=परन्तु। लषण=लक्षण। करंक=लाश। कुरांली=काँव-काँव।

३३. थणि=थन, स्तन। चींचड़ी=ढोरों की खाल पर चिपटनेवाले जन्तु, जो रक्त चूसते रहते हैं।

सखी सहेली देहली रे, दाधा ऊपरि दाह।
हौ न जाणों क्यूँ ही रह्यो, मो निगुणी रो नाह॥
क्रिपा करि आवो हरि, जन अपणा सौभाइ।
लेस्यँ लांबै आँचलि वारणां, बषनो बलिहारी जाइ॥१॥

आया था एक आया था, खवरि उहाँ की ल्याया था॥
आदि अन्त की जाणै था, पूरणब्रह्म बखाणै था॥
बूझ्या थैं सब कहता था, धोखा कछू न रहता था॥
हरि का सेवग आदू था, नाव उन्हों का दादू था॥
को ऐसा आया सूझेगा, बषना ताकों बूझेगा॥२॥

राग गौड़ी

जोड़ौंगा रे जोड़ौंगा, हरि से प्रीति न तोडौंगा॥
जोति पतंगा जैसे जोड़ै, जीव जलै पै अंग न मोड़ैं॥
मृगनाद सुणि ऐसे वाछै, प्यंड पड़े परि अंग न खाँचै॥
कतियारी ज्यूँ कात्या लोड़ै, ज्यूँ ज्यूँ तूटै त्यूँ त्यूँ जोड़ै॥
योंकरि बषना जोड़ा जोड़ी, हरि स्यूं जोड़ि आन स तोड़ी॥३॥

राग गौड़ी

पिरथी परमेसुर की सारी।
कोई राजा अपनै सिर पर, भार लेहु मत भारी॥
पिरथी कै कारणि कैरूँ पांड़ौ, करते जुद्ध दिनाई।
मेरी मेरी करि करि मूये, निहचै भई पराई॥

---

१. मूनैं=मुझे। ओलूँ=याद। रूडौ=सुन्दर। बैराग=दुःख से आशय है। ऊभी=खड़ी। नैंण रह्या रतवाय=रोते-रोते आँखें लाल हो गई हैं। मारग जोइ=बाट देखती हूँ। उरेरो=उमाह, आनन्द। अणदीठो....ऊझल=अधिक भर जाने पर। क्यार=क्यारी। खंडै=टूटती है। क्यूँ ही=कहाँ। निगुणी रो=अभागिनी का। नाह=नाथ, स्वामी। सौभाइ=शोभा या बढ़ाई पावे। लाँबै आँचलि=अंचल फैलाकर। वारणां=बलैयाँ। लेस्यँ=लूँगी।

२. उहाँ की=प्रियतम के घर की, ब्रह्मलोक की। बूझ्या थैं=पूछने से, जिज्ञासा करने पर। आदू=आदिगुरु।

३. अंग न मोड़ैं=पीछे पैर नहीं रखता। वाछै=चाहे। प्यंड परै=शरीर भले ही गिर जाये। खाँचै=खींचे, मोड़े। कतियारी=कातनेवाली। ज्यूँ-ज्यूँ तूटै=सूत ज्यों-ज्यों कातने में टूटता है। स्यूँ=से।

जाकै नौ ग्रह पाइडे बाँधे, कूवै मीच उसारी।
ता रावण की ठोर न ठाहर, गोविन्द गर्वप्रहारी॥
केते राजा राज बइठे, केते छत्र धरेंगे।
दिन द्वे च्यारि मुकाम भयो है, फिर भी कूँच करेंगे॥
अटल एक राजा अविनासी, जाकी अनंत लोक दुहाई।
बषना कहै, पिरथी है ताकी, नहीं तुम्हारी भाई॥४॥

राग गौड़ी

आसा रे अलूंधी रमइयौ कब मिलै, मिलियां हूँ जाण न देस।
अंचल गहि राखिस्यूँ रे, नेणा नीर भरेस॥
राम रहू कौ म्हारे मनि वस्यो, बिसार्‌यो नहिं जाय।
जे कबहू दिन विसरूँ रे, तो रैणि खटूकै आय॥
जे सोऊँ तो दोय जणा रे, जे जागौं तो एक।
सेज टटोलूँ पीव ना लहूँ, म्हारै पड्यौ कलेजै छेक॥
बार लगाई बालमा रे, बिरहीन करै बिलाप।
कोई इक आडो ह्वै रह्यौ, म्हारो पूरव जनम को पाप॥
बालपणा थै बाटड़ी, बूढापा लग दीठ।
कहि बषना, आवो हरी, म्हारा बलता बुझै अँगीठ॥५॥

राग रामकली

सोई जागै रे सोई जागै रे, रांमनाम ल्यो लागै रे।
आप अलंबण नींद अयाणा, जागत सूता होय सयाणा॥
तिंहि बरियाँ गुरु आया, जिनि सूता जीव जगाया॥
थी तो रैणि घणेरी, नीद गई तब मेरी।
डरता पलक न लाउँ हूँ जाग्यो और जगाऊँ॥
सवत सुपना मांहीं, जागूँ तो कछु नांहीं।
सुरति की सुरति विचारी, तब नेहा नींद निवारी॥

---

४. पाइडे बाँधे=खाट की पाटी से बँधे हुए थे। उसारी=लटका रखी थी।

५. अलूँधी=अटकी हुई हूँ। रमइयौ=प्यारा राम। मिलियाँ हूँ जाण न देस=मिलने पर फिर जाने नहीं दूँगी। खटूकै आय=खटकने लगता है। छेक=छेद। आडो=बाधक। बाटड़ी=राह। अँगीठ=हृदय की जलन।

६. अलंबण=अहंकार का आश्रय। अयाणा=अचेत, गाफ़िल, अपने अहंकार को आश्रय देने से नींद में गाफ़िल हो गया।

एक सबद गुरु दीया, तिहिं सोवत बैठा कीया।
बषना साध सभागा, जे अपने पहरे जागा ॥६॥

राग आसावरी

भाई रे, भूख मुवाँ गतिं नाहीं, ताथैं समझि देख मन माहीं ॥
आगै साध सबही हूवा, भूखा कई न मूवा ॥
जिन पाया तन सहजै पाया, राम रूप सब हूवा ॥
धू पहलाद कबीर नामदेव, पाषंड कोई न राख्या ॥
बैठि इकंत नांव निज लीया, वेद भागोत यूँ भाख्या ॥
देव देहुरा सबही माया, याहँ में रांम न पाया ॥
रमि भरमि सबही जग मूवा, यूँ ही जनम गँवाया ॥
जा जन को गुर पूरा मिलिया, अलख अभेव बताया ॥
गुर दादू तैं बषना तिरिया, बहुड़ि न संकट आया ॥७॥

राग आसावरी

थारै सो म्हारै, म्हारै सु थारै, तिहिं नैं कहो कोण जुहारै ॥
ठाकुर कै ठकुरांणी, सेवग के नारी। इंहि लेखे दोन्यूँ घरबारी ॥
ठाकुर चाकर की क्रीतम काया। जोनी संकट दोन्यू आया ॥
एक कीड़ी, एक कुंजर कीन्हा। कहा भयो शक्ति जे दीन्हा ॥
च्यारि अवस्था, अरु त्रीगुण ब्याप्यौ। कबहू भूखो, कबहूँ धाप्यौ ॥
नहीं सो विरध, नहीं सोबालो। बषना को ठाकुर रांम निरालो ॥८॥

जागत सूता होयसयाणा=अपनी समझ में जाग रहा था, पर असल में अचेत था। बरियाँ=अवसर। रैणि घणेरी=लम्बी जिंदगी से आशय है।

७. भूख मुवाँ=भूखों मरने से, उपवास करने से। पाषंड=मिथ्याचार। भागोत=श्रीमद्भागवत। देहुरा=देवालय। अभेव=अभेद, जिसका भेद न मिल सके। तिरिया=संसार से तर गया। बहुड़ि=फिर।

८. थारै सो....थारै=जो तुम्हारी आत्मा है वही मेरी है और जो मेरी आत्मा है वही तुम्हारी है, हम दोनों की एक ही आत्मा है। जुहारै=प्रणाम करे। लेखे=विचार से। क्रीतम=कृत्रिम, बनावटी। जोनी-संकट=गर्भवास का कष्ट। कुंजर=हाथी। धाप्यौ=तृप्त। बालो=बालक।

राग आसावरी

ऐसा रे, मत ज्ञान विचारै, एकहिं को दूजा कर मारै ॥
जो तै पाठ पढ्या रे भाई, सो पाठ सही ले बोड़ेगा।
दाँतण फाडयाँ लेखा लेगा, तो गल काट्याँ क्यूँ छोड़ेगा ॥
धोये हाथ पाँव भी धोये, मैल रह्या दिल मांही।
अलह टिसमला करि मारण लागा, साहिब का डर नांहीं ॥
बेमिहरां को मिहर न आवे, स्वाद न छोड़ै कोई।
अलह रांम बषना यों बोल्या, भिस्त कहाँ थै होई ॥९॥

राग आसावरी

फुरमाया रे फुरमाया रे भाई, खाण मतै ऐसी मन आई ॥
आपणि मार आपण ही खावै, पैगंबर नैं दोस लगावैं ॥
रोजा धर्‌या निवाज गुजारी, साँझ पड्याँ थैं मुरगी मारी ॥
बेमेहर को मेहर न आवै, गले पराये छुरी चलावै ॥
बषना बहुत हिरस के घाले, भिस्त छाड़ दोजग को चालै ॥१०॥

राग आसावरी

हूँ क्यों बिसरूँ रे तो गुण दीनदयाल?
तूं म्हारो ओगुण छावणों करुणामै कृपाल ॥
जिहिं उदर मांहिं अधार दीयो, नीर खीर संजोइ।
सो थारा कीया रांमजी, म्हारै कहै न होइ ॥
जिहिं सिरज्या जल बूँद में, बँध्या इसा बंधाण।
सो हमनैं क्यूँ बीसरै, जिहिं का ये सहनाँण ॥
जिहिं सगेरा सहि सगा, मात पिता परिवार।
तिहिं तूटा सहि तूटसे, कोई राखै नहीं लगार ॥
औरे सबै विसारिस्यूं, कहूँ नहिं म्हारे भाइ।
जिहि बिना म्हारे ना सरै, सो क्यूँ बिसार्‌यो जाइ ॥

---

९. एकहिं.....मारै=एक प्राणी को दूसरी आत्मा समझकर मारता है, असल में तो वह तेरी ही आत्मा है। सही ले बोड़ेगा=निश्चय ही ले डुबायेगा। भिस्त=बहिश्त, स्वर्ग।

१०. खाण मतै=खाने के विचार से। आपणि......लगावैं=आपही ज़िवह करके खुद खा जाता है और पैगम्बर मोहम्मद साहब का नाम लेता है कि उन्होंने ज़िबह करने को कहा था। हिरस=वासना। घाले=मारे हुए, वशीभूत। दोजग=दोजख, नरक।

ये गुण थारा रांमजी, ये दूजा का नाहिं।
सो बषना क्यूँ, बीसरै, लिख्या जु हिरदे मांहिं ॥११॥

साखी

कुणका वीणत क्यूँ फिरै, पूरी रासि बिहाइ।
कहि बषना तिहिं दास को, कटहूँ काल न खाइ ॥१२॥

राग सोरठ

मन रे, हरत परत दिन हारयो। रांमचरण जो तैं हिरद्यों बिसार्‌यो ॥
माया मोह्यो रे, क्यूँ चित्त न आयो। मनिष जन्म तैं अहलो गमायो ॥
कण छाड्यो, निकणै चित लायो। थोथरो पिछोड्यो, क्यू हाथ न आयो ॥
साच तज्यो, झूठै मन मान्यो। बषना भूल्यो रे, तैं भेद न जान्यो ॥१३॥

राग सोरठ

हिरदो बड़ो रे कठोर।
कोटि किंयां भीजै नहीं, ऐसी पाइण नाहीं और ॥
गंगा ने गोदावरी न्हायो, कासी पुहकर मांहिं रे।
कर्म कापड़ै मैण को, ताथैं रोम भीगो नांहिं रे ॥
वेद ने भागोत सुनिया, कथा सुणी अनेक रे।
कर्म पाखर सारिखा, ताथैं वाण न लागै एक रे ॥
औंधा कलसा ऊपरे, जल बूठो अखंड धार रे।
तत बेला निहालियो, तो पाणी नहीं लगार रे ॥
ब्रह्म अगनि पाषाण जाल्या, चूना कीया सलेस रे।
बषना भिजोया रांमरस, म्हारा सतगुरन आदेस रे ॥१४॥

---

११. छावणों=छिपानेवाला। सँजोइ=जुटाकर। बँध्या इस बंधाण=ऐसी अद्‌भुत शरीर-रचना की। जल बूँद में=एक बूँद वीर्य और एक बूँद रज के संयोग से। सहनाँण=निशानी। सगेरा सहि=सम्बन्ध के कारण। लगार=नाता साथ। म्हारे ना सरै=मेरा काम नहीं चलता।

१२. कुणका=अन्न का एक-एक दाना। रासि=ढेर।

१३. हरत परत=संसारी कामों में गिरते-पड़ते हुए। दिन हार्‌या=जीवन बीत गया। मनिष=मनुष्य। अहलो=व्यर्थ। निकणै=भूसी, सांसारिक विषयों से तात्पर्य है, जो निस्सार हैं। थोथरो पिछोड्यो=केवल भुस को पिछोड़ा या फटका।

१४. कोटि कियाँ=करोड़ों उपाय करने पर भी। ने=और। पुहकर=पुष्करतीर्थ। मैंण=मोम। पाखर=कवच। कलस=घड़ा। बूठो=बरसा। निहालियो=संभाला। तत वेला=सही समय

राग मारू

विचालै अन्तरो रे, हरि, हम भागो नांहिं ॥
को जाणै कद भाजसी, म्हारै पछतावो मन मांहिं ॥
आडा डूँगर बन घणां, नदियाँ बहैं अनंत।
सो पंखडियाँ पंजर नहि, हौं मिल-मिल आऊँ निंत ॥
चरण पाषैं चालिबो रे, धरती पाषैं वाट।
परवत पाषैं लंघणा, विषमी ओघट बाट ॥
जाताँ जाताँ द्योहडा, म्हारै मन पछितावो होइ।
जीवत मेलो हे सखी, मूंवा न मिलसी कोइ ॥
हरिदरसन कारणि हे सखी, म्हारै नैंन रह्या जल पूरि।
सो साजन अलगा हुवा, भ्वै भारी घर दूरि ॥
पाती प्यारा पीव की, हूँ क्यूँ बाचों कर लेइ।
विरह महाघन ऊमड्यो, म्हारो नैंन न वाँचण देइ ॥
बटाऊ उहि वाट का, म्हारो संदेसो तिहिं हाथि।
आऊँली नाहीं रहूँ, काहू साधूजन कैं साथि ॥
ज्यूँ वन कै कारणि हस्ती झुरै, चकवी पैले पारि।
यों बषना झुरै रांम कूँ, ज्यूँ उलगाँणा की नारि ॥१५॥

राग मारू

हरि आवै हो कब देखौं, आँगण म्हारै।
कोइ सो दिन होइ रे, जा दिन चरणाँ धारै ॥
सुन्दर रूप तुम्हारो देखौं, नैनों भरे।
तन मन ऊपरि वारी, नौछावर करे ॥

पर। सलेस=पक्का। ब्रह्म.....सलेस रे=पत्थर जैसे हृदय को ब्रह्म की अग्नि में अर्थात् प्रचंड प्रीति में जलाकर पायेदार चूना तैयार कर लिया और अब उसे प्रियतम राम के प्रेम-रस से भिगोकर बुझा लिया है।

१५. विचालै अंतरो=(हम दोनों के) बीच वह अंतर पड़ गया है। भाजसी=भाग जायेगा। आडा=बाधक। डूँगर=टीले, भीटे। पंजर=शरीर। निंत=नित्य। पाषैं=शब्द कुछ अस्पष्ट-सा है; किंतु स्वामी मंगलदासने इसका अर्थ 'बिना' किया है, जो ठीक बैठता है। विषमी=कठिन, भयानक। द्योहडा=दिन। मिलसी=मिलेगा। भ्वै=भय। बटाऊ=राहगीर। हस्ती=हाथी। झुरै=रोता है (वन बीच में आ जाने से हथिनी के वियोग से)। पैले पारि=(जलाशय के) उस पार। उलगाँणा=परदेश गया हुआ।

तारा गिणताँ मोहि विहावै, रैणि निरासी।
बिरहणीं विलाप करै, हरि-दरसन की प्यासी॥
बिन देखै तन तालावेली, कामणी करै।
मेरा मन मोहन बिना, धीरज न धरै॥
बषना बारबार, हरि का मारिग देखै।
दीनदयाल दया करि आवो, सोइ दिन लेखै॥१६॥

राग टोड़ी

जोखीला सब जोईला, कोई नावं समान न होईला॥
अढ़सठ तीरथ वेद पुराना, तुलै नहीं को नांव समाना॥
नेम धर्म सब जप तप भैला, नांव समान कोई हुवा न ह्वैला॥
दान पुंनि करि तुला बईठा, नांव समान कोई तुलत न दीठा॥
नौखंड पृथी जोखी जोई, बषना नहीं बराबरि होई॥१७॥

राग टोड़ी

नांव हरी का प्यारा रे, जासूँ लागा हेत हमारा रे॥
जैसे माखी को गुड़ मीठा, जिसा पतंगै दीपक दीठा॥
जैसे चन्द कमोदनि प्यारा, तैसा हरि सूँ हेत हमारा॥
ज्यूँ कीड़ी कण सांच्या भावै, सीप स्वांति जल ऊपरि आवै॥
चन्दनि चील न होई न्यारा, तैसा हरि सूँ हेत हमारा॥१८॥

राग टोड़ी

हेरिलै फेरिलै घेरिलै पाछो, रांमभगति करि होय मन आछो॥
जाणि तांणि अपूठो आणि, जे वाणैं तो हरि सों वाणि॥
बावरो भयो कै लागी वाइ, रीती तलाइयां झूलण जाइ॥
साधसंगति में रहु रे भाई, बषना तूनैं रांमदुहाई॥१९॥

---

१६. विहावै=बीत जाती है। निरासी=निराशाभरी। तालाबेली=बेचैनी तड़पन। सोई दिन लेखै=वही दिन धन्य है।

१७. जोखीला=नाप-जोख कर लिया। जोईला=देख-समझ लिया। होईला=हुआ। बईठा=बैठा।

१८. हेत=प्रेम। चील='चील्ह' का अर्थ कुछ बैठता नहीं; संभवतः चकोर से आशय होगा।

१९. हेरिलै=खोजले। फेरिलै=पलटले (विषयों की ओर से)। घेरिलै=मोड़ ले। जाणि=समझकर। तांणि=खींच। अपूठो=सम्मुख, स्थिर। जे वाणैं=यदि वाणिज्य करना है। रीती तलाइयाँ=बिना पानी के तालाबों में। झूलण जाइ=नहाने-तैरने जाता है। तूनैं=तुझे।

राग गुंड

धन रे दिहाडो आजको रे लोइ, हरिजन आया म्हारै हरिजस होइ ॥
ज्याँह को मारग हेरताँ हरी, सो जन आया म्हारै कृपा करी ॥
भावभगति रुचि उपजी घणी, हिरदै आया म्हारै त्रिभुवनधणी ॥
परफुलित अति कंवल विगास, मन का मनोरथ पुरवी आस ॥
बषना महिमा बरणी न जाइ, रांम सहित जन मिलिया आइ ॥२०॥

राग बिलावल

मेरे लालन हो, दरस द्यो क्यू नांहीं।
जैसे जल बिन मीन तलपै, यूँ हूँ तेरे ताईं ॥

बिन देख्यूं तन तालाबेली, बिरहनि बारहमासी।
दिल मेरी का दरद पियारे, तुम्ह मिलियां तैं जासी ॥
रैणि निरासी होइ छैमासी, तारा गिणता बिहासी।
दिन बिरहनि क्यूँ बाट तुम्हारी, सदा उडीकत जासी ॥
जल थल देखूं परवत देखूं, वन वन फिरों उदासी।
बूझों कोई उहाँ थै आया, ठावा मोहि बतासी ॥
फिरि फिरि सबै सयाने बूझे, हौं तो आसपियासी।
बषना कहै, कहो क्यूँ नाहीं, कब साहिब घर आसी ॥२१॥

राग कन्हारो

भाव-भजन की भाठी आगे, रांम-रसायन पीवन लागे ॥
देहरी कलाली, तूँ जिनि नाटै, हरि-रस तो है तन कै साटै ॥
एक पियाला हमकों दीया, साथी सह मतिवाला कीया॥
सद मतिवाले साध हमारे, तन मन कापड़ गहणै मारे ॥
सार सुधारस हिरदै धारे, हरि-रस पीवे पिचका डारे ॥
पीवे सदा खुमार न भागै, ल्याव ही ल्याव सदा ल्यो लागै ॥
नाचैं गावै हरि-रस-राते, बषना दादूपंथी माते ॥२२॥

---

२०. दिहाडो=दिन। लोइ=लोगो। हरिजस=हरि-कीर्तन। कँवल विगास=हृदय-कमल खिल गया।

२१. तेरे ताईं=तेरे लिए। बिहासी=कटती है। ठावा=सही। सयाने=ओझा लोग। आसी=आयेगा।

२२. भाठी=मद्य बनाने की भट्ठी। रसायन=मद्य। जिनि नाटै=नाहीं न कर। साटै=बदले में,

राग धनासिरी

भरमतो भरमतो, तुम्हारै सरणै आयो।
दीनदयाल पतितपावन, एक तूँ ही बतायो॥
चौरासी लख भरमतो आयौ, तुम्हारो घर नीठि पायो।
अनाथ को नाथ एक, तूँ ही जु बतायो॥
और जे बाँधै धाइ, दाम दे लीजै छुडाइ।
कर्म को बाँध्यो तुम पै छूटै, रांमइया राइ॥
सारां ही साधाँ बताई, उवरण की ठौर याई।
बूझि बषना सरण आयो, राखिलै रांमराई॥२३॥

राग मलार

बीछड्या रांम सनेही रे, म्हारै मन पछतावो येही रे॥*
बीछुड़िया वन दहिया रे, म्हारै हिवडै करवत बहिया रे॥
बिलखी सखी सहेली रे, ज्यूँ जल बिन नागरवेली रे॥
वा मुलकनि की छवि छाहीं रे, म्हारै रहि गई हिरदै माहीं रे॥
को उहिं उणहारे नाहीं रे, हौं ढूंढ़ रही जग माहीं रे॥
सब फोको म्हारौ भाई रे, मंडली कौ मंडण नाहीं रे॥
कोण सभा में सोहे रे, जाकी निर्मल वाणी मोहे रे॥
भरि-भरि प्रेम पियावे रे, कोई दादू आणि मिलावे रे॥
बषना बहुत बिसूरे रे, दरसन कै कारण झूरे रे॥२४॥

●

मोल में। तन....मारे=तन, मन और वस्त्र रेहन रख दिये, सर्वस्व सौंप दिया। पिचका डारे=फोक फेक दिया।

२३. भरमतो-भरमतो=भटकता-भटकता, चक्कर काटता-काटता। नीठि=बड़ी मुश्किल से। राइ=राजा, स्वामी। सारां ही=सभी। उवरण=उद्धार पाने की। याई=यही, अर्थात् प्रभु की शरणागति।

२४. वन दहिया=(जीवनरूपी) वन धायँ-धायँ जल रहा है। हिवडै=करवत। बहिया=हृदय पर करौत (आरा) चल रहा है। मुलकनि=प्रफुल्लता, विहँसन। उणहारे=उपमा का। मंडण=श्रृंगार। विसूरे=याद कर-कर रोता है। कारण=लिए। झूरे=तड़प रहा है।

*यह पद बषनाजी ने सद्गुरु स्वामी दादू दयाल के महानिर्वाण के प्रसंग पर वियोग की दशा में कहा था।

वाजिदजी

चोला-परिचय

जाति—पठान

पूर्वधर्म—इसलाम

गुरु—स्वामी दादू दयाल

वाजिदजी के विषय में केवल इतना ही प्रसिद्ध है कि यह एक पठान थे। शिकार खेलने एक दिन निकले, और जंगल में एक हिरणी पर तीर चलाने ही वाले थे कि इनके हृदय से करुणा का निर्झर फूट पड़ा। तीर-कमान तोड़कर फेक दिये। जीवन जीव-प्रेम की ओर मुड़ गया। सद्गुरु पाने के लिए व्याकुल हो उठे। खोजते-खोजते स्वामी दादू दयाल की अकुतोभय शरण पा ली, और उनके कृपापात्र शिष्य हो गये। दादू दयालजी के १५२ शिष्यों में वाजिदजी की गणना की जाती है।

स्वामी मंगलदासजी ने अपने 'पंचामृत' में वाजिदजी के विषय में राघोदासजी का यह कवित्त उद्धृत किया है—

छाड़िकै पठान-कुल रामनाम कीन्हों पाठ,
भजनप्रताप सूं वाजिद बाजी जीत्यौ है॥
हिरणी हतत उर डर भयो भयकारि,
सीलभाव उपज्यो दुसीलभाव बीत्यौ है॥
तोरे हैं कवांणतीर चाणक दियो शरीर
दादूजी दयाल गुरु अंतर उदीत्यौ है॥
राघो रति रात दिन देह दिल मालिक सूँ
खालिक सूं खेल्यो जैसे खेलण की रीत्यौ है॥

बानी-परिचय

'अरिल' छंद में अनेक अंगों पर वाजिदजी ने प्रसादगुणयुक्त सरल सरस रचना की

है। कहते हैं कि छोटे-छोटे १४ ग्रन्थों में इनकी पूरी बानी है, पर सब उपलब्ध नहीं है। इनकी कुछ साखियों को रज्जबजी ने भी अपने संग्रह में संकलित किया है। इन्होंने दोहे-चौपाई में भी रचना की है।

भाषा में ओज है, प्रवाह है। उर्दू-फ़ारसी शब्दों का कदाचित् ही प्रयोग किया है। दया और उदारता तथा देह की अनित्यता पर इनके बड़े ही भावपूर्ण 'अरिल' हैं।

आधार

पंचामृत—स्वामी मंगलदास, श्री स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर

●

वाजिदजी

सुमरण कौ अंग

अरध नाम पाषाण तिरे नर लोइ रे।
तेरा नाम कह्यो कलि मांहि न बूड़े कोइ रे॥
कर्म सुक्रति इकवार बिलै हो जाहिंगे।
हरि हां वाजिद, हस्ती के असवार न कूकर खाहिंगे॥१॥
रामनाम की लूट फवी है जीव कूँ।
निसवासर वाजिंद सुमरता पीव कूँ॥
यही बात परसिद्ध कहत सब गांव रे।
हरि हां, अधम अजामेल तिर्‌यो नारायण-नांव रे॥२॥

विरह कौ अंग

कहियो जाय सलाम हमारी राम कूँ।
नैण रहे झड़ लाय तुम्हारे नाम कूँ॥
कमल गया कुमलाय कल्याँ भी जायसी।
हरि हां वाजिद, इस बाड़ी में बहुरि न भँवरा आयसी॥१॥

सुमरण कौ अंग

१. अरध नाम....रे=रामनाम के आधे भाग से अर्थात् 'रकार' मात्र से समुद्र पर नल आदि वानर लोगों ने पत्थर तैरा दिये। बिलै=क्षीण। खाहिंगे=काटेंगे।
२. फवी=जँची। पीव=प्रियतम, परमात्मा।

विरह कौ अंग

१. नैण=नयन। कल्याँ=कलियाँ; पंखड़ियाँ। जायसी=(मुरझा) जायेंगी। आयसी=आयेगा। भँवरा=भ्रमर; जीव से आशय है।

चटक चांदणी रात बिछाया ढोलिया।
भर भादव की रैण पपीहा बोलिया॥
कोयल सबद सुणाय रामरस लेत है।
हरि हां वाजिद, दाज्यो ऊपर लूण पपीहा देत है॥२॥

रैण सवाई वार पपीहा रटत है।
ज्यूँ ज्यूँ सुणिये कान करेजा कटत है॥
खान पान वाजिंद सुहात न जीव रे।
हरि हां, फूल भये सम सूल बिना वा पीव रे॥३॥

इक तो कारी रैण ऐन मनो सांपनी।
दूजी चमकै बीजु डरावै पापनी॥
हरि, हां, हूँ बलिजाऊँ मिलावो पीव कूँ।
हरि हां, बिना नाथ के मिलै चैन नहिं जीव कूँ॥४॥

मोर करत अति सोर चमक रही बीजरी।
जाको पीव बिदेस ताहि कहां तीज री॥
बदन मलिन मन सोच खान नहिं खाति है।
हरि हां, वाजिद, अति उनमन तन छीणर हति इह भांति है॥५॥

पंछी एक संदेस कहो उस पीव सूँ।
बिरहनि है बेहाल जायेगी जीव सूँ॥
सींचनहार सुदूर, सूक भई लाकरी।
हरि हां, वाजिद, घर ही में बन कियो वियोगनि बापरी॥६॥

बालम बस्यो विदेस भयावह भौन है।
सोवै पाँव पसार जु ऐसी कौन है॥
अति ही कठिन यह रैण बीतती जीव कूँ।
हरि हां, वाजिद, कोई चतुर सुजान कहै जाय पीव कूँ॥७॥

---

२. ढोलिया=पलंग। रैण=रात। दाज्यो=जला हुआ। लूण=नमक।

४. ऐन=बिल्कुल जैसी। बीजु=बिजली।

५. तीज=सावन सुदी तीज का त्यौहार। उनमन=खिन्न।

६. सूक भई लाकरी=सूखकर लकड़ी की तरह दुबली हो गई। बापरी=ग़रीब, दीन।

७. पाँव पसार=बेफिकर होकर।

पीव बस्या परदेस कि जोगन मैं भई।
उनमनि मुद्रा धार फकीरी मैं लई॥
ढूँढ्या सब संसार के अलख जगाइया।
हरि हां, वाजिद, वह सूरत वह पीव कहूँ नहिं पाइया॥८॥

पत्री हू हम पास न आई रावरी।
दृगन बहै बहु नीर कहैं सब बावरी॥
कौन जियो में जिये हानि है नेह में।
हरि हां, निसदिन, तलफै प्राण रहै क्यूँ देह में॥६॥

जब तें कीनो गौन भौन नहिं भावही।
भई छमासी रैण नींद नहिं आवही॥
मीत, तुम्हारी चीत रहत है जीव कूँ।
हरि हां, वाजिद, वो दिन कैसो होइ मिलौं हरि पीव कूँ॥१०॥

काजल तिलक तमोल तुमारो नाम है।
चोवा चंदन अगर इसी का काम है॥
हार हमेल सिंगार न सोहैं राखड़ी।
हरि हां, वाजिद, जब जिव लागै पीव और क्यूँ आखड़ी॥११॥

कहिये सुणिये राम और नहिं चित्त रे।
हरि चरणन को ध्यान सुधरिये नित्त रे॥
जीव बिलंब्या पीव दुहाई राम की।
हरि हां, सुख संपति वाजिद कहो किस काम की॥१२॥

तुमहि बिलोकत नैण भई हूँ बावरी।
झोरी डंड भभूत पगन दोऊ पाँवरी॥
कर जोगण को भेष सकल जग डोलिहूँ।
हरि हां, वाजिद, ऐसो मेरो नेम राम मुख बोलिहूँ॥१३॥

---

६. रावरी=आपकी (अवधी)।

१०. चीत=ध्यान।

११. तमोल=पान। चोवा=कपूर, खस, चन्दन आदि का शीतल लेप।

१२. विलंब्या=रम गया, लग गया।

१३. झोरी=झोली। भभूत=भस्म। पाँवरी=खड़ाऊँ।

पतिव्रता कौ अंग

सूर कमल वाजिंद न सुपने मेल है।
जरै द्यौस अरु रैण कड़ाई तेल है॥
हमही में सब खोट दोष नहिं स्याम कूँ।
हरि हां, वाजिद, ऊँच नीच सों बँधे कहो किंहि काम कूँ॥१॥

आवेंगे किंहि काम पराई पौर के।
मोती जर-वर जाहु न लीजै और के॥
परिहरिये वाजिंद न छूवे माथ को।
हरि हां, पाहन नीको बीर नाथ के हाथ को॥२॥

भूखे भोजन देइ उघारे कापरो।
खाय धणी को लूण जाय कहाँ बापरो॥
भली बुरी वाजिंद सबै ही सहेंगे।
हरि हां, दरगह को दरवेश यहां ही रहेंगे॥३॥

साध कौ अंग

एक राम को नाम लीजिये नित्त रे।
और बात वाजिंद चढ़ै नहिं चित्त रे॥
बैठे धोयब हाथ आपणे जीव सूं।
हरि हां, दास आस तज और बँधे है पीव सूं॥१॥

पतिव्रता कौ अंग

१. सूर=सूर्य। द्यौस=दिवस, दिन। कड़ाई तेल=जैसे कढ़ाई में तेल जलता है। खोट=दोष, कमी।

२. पौर=घर। पाहन नीको=पत्थर भी अच्छा है।

३. उघारे=नंगे को। कापरो=कपड़ा। धणी को लूण=मालिक का नमक। बापरो=बेचारा। दरगह=खुदा का घर। दरवेश=फकीर।

साध कौ अंग

१. बैठे.......जीव सूँ=प्राणों का मोह छोड़कर बैठे हैं। बँधे हैं पीव सूँ=प्रियतम प्रभु से नाता जोड़ लिया है।

उपदेस कौ अंग

हरिजन बैठा होय तहाँ चल जाइये।
हिरदै उपजै ग्यान रामगुण गाइये॥
परिहरिये वह ठाम भगति नहिं राम की।
हरि हां, वाजिद बीन विहूणी जान कहो किस काम की॥१॥

साधां सेती नेह लगे तो लाइये।
जे घर होवे हांण तहुँ न छिटकाइये॥
जे नर मूरख जान सो तो मन में डरै।
हरि हां, वाजिद, सब कारज सिध हो कृपा जे वह करै॥२॥

बेग करहु पुन दान बेर क्यूँ बनत है।
दिवस घड़ी पल जाम जुरा सो गिनत है॥
मुख पर देहैं थाप सूँज सब लूटिहै।
हरि हां, जम जालिम सूँ वाजिद जीव नहिं छूटि है॥३॥

कहै वाजिद पुकार सीख एक सुन्न रे।
आड़ो बांकी वार आइहै पुन्न रे॥
अपनों पेट पसार बड़ौ क्यूँ कीजिये।
हरि हां, सारी मैं तै कौर और कूँ दीजिये॥४॥

धन तो सोई जांण, धणी के अरथ है।
बाकी माया वीर पाप को गरथ है॥
जो अब लागी लाय बुझावै भौन रे।
हरि हां वाजिद, बैठ पथर की नाव पार गयो कौन रे॥५॥

उपदेस कौ अंग

१. बिहूणी=बिना प्रियतम की।

२. साधां सेती=साधुजनों के साथ। लाइये=लगाना चाहिए। हांण=हानि। तहुँ न छिटकाइये=तोभी नहीं छोड़ना चाहिए। जे=यदि।

३. पुन=पुन्य। बेर=देर। जुरा=जरा, बुढ़ापा। थाप=थप्पड़, तमाचा। सूँज=सामान।

४. आड़ो.....पुन्न रे=अरे, विपत्ति के समय एक पुण्य ही काम आयेगा। सारी मैं तै कौर=पूरी थाली में से एक कौर या ग्रास।

५. अरथ=निमित्त। गरथ=राशि, पूँजी। लाय=आग।

जो भी होय कुछ गांठि खोलिकै दीजिये।
सांईं सबही मांहि, नांहिं क्यूँ कीजिये॥
जाको ताकूँ सोंप क्यूँ न सुख सोवही।
हरि हां, अंत लुणें वाजिद खेत जो बोवही॥६॥

जोध मुये ते गये, रहे ते जाहिंगे।
धन साँचता दिनरैण कहो कुण खांहिंगे॥
तन धन है मिजमान दुहाई राम की।
हरि हां, दे ले खर्च खिलाय धरी किहि काम की॥७॥

गहरी राखी गोय कहो किस काम कूँ।
या माया वाजिंद समर्पो राम कूँ॥
कान अंगुली मेलि पुकारे दास रे।
हरि हां, फूल धूल में धरै न फैलै बास रे॥८॥

चिंतामणि कौ अंग

टेढ़ी पगड़ी बाँध झरोखा झाँकते।
ताता तुरग पिलाण चहूँटे डाकते॥
लारे चढ़ती फौज नगारा बाजते।
वाजिंद, वे नर गये विलाय सिंह ज्यूँ गाजते॥१॥

दो दो दीपक जोय सु मन्दिर पोढ़ते।
नारी सेतीं नेह पलक नहीं छोड़ते॥

---

६. जाको ताकूँ सोंप=जिस मालिक का दिया धन है उसीके निमित्त उसे लगादे।

७. जोध=योद्धा। मुये=मर गये। साँचता=जोड़ता, इकट्ठा करता। कुण=कौन। मिजमान=मेहमान; क्षणस्थायी। धरी=संचित (संपत्ति)।

८. गहरी राखी गोय=ज़मीन में गाड़कर रखी हुई। कान....दास रे=अरे, यह प्रभु का दास वाजिद खूब चिल्लाकर कह रहा है। फूल....बास रे=अरे, जैसे मिट्टी में दवा देने से फूल की सुगन्ध नहीं फैलती, वैसे ही धन गाड़ देने या छिपाकर रखने से यश नहीं मिलता।

चिंतामणि कौ अंग

१. टेढ़ी=बाँकी, झुकी हुई। ताता=तेज। पिलाण=जीन कसकर। चहूँटे डाकते=चारों तरफ़ कूदते थे। लारे=पीछे-पीछे। गये विलाय=लापता हो गये।

तेल फुलेल लगाय क क़ाया चाम की।
हरि हां, वाजिद, मर्द गर्द मिल गये दुहाई राम की ॥२॥

सिर पचरंगी पाग क जामां जरकसी।
हाथों ढाल कमाण कमर में तरकसी ॥
जो घर चंगी नारि दिखावे आरसी।
हरि हां, वाजिद, वे नर चले मसांण पढ़ंता फारसी ॥३॥

घड़ी घड़ी घड़ियाल पुकार्‌या कहत है।
आव गई सब बीत अल्पसी रहत है ॥
सोवे कहाँ अचेत जाग जप पीव रे।
हरि हां, वाजिद, जलणा आज कि काल बटाऊ जीव रे ॥४॥

सिर पर लम्बा केस चले गज चालसी।
हाथ गह्यां समसेर ढलकती ढालसी ॥
एता यह अभिमान कहाँ ठहराहिंगे।
हरि हां, वाजिद, ज्यूँ तीतर कूँ बाज झपट ले जाहिंगे ॥५॥

पातशाह के सेझ पथरणा पाट का।
हीरां जड्या जडावक पाया खाट का ॥
हुरमां खड़ी हजूरि करति हैं बंदगी।
हरि हां, बिना भज्या भगवान पड़ेगा गंदगी ॥६॥

कारीगर कर्तार क हून्दर हद किया।
दस दरवाजा राख शहर पैदा किया ॥
नखसिख महल बनाय क दीपक जोड़िया।
हरि हां, भीतर भरी भँगार क ऊपर रंग दिया ॥७॥

मेटै पुन्न की रेख क दौड़े पापनें।
साला न्यौत जिमाय धका दे बापनें ॥

---

२. जोय=जलाकर। मंदिर=महल। सेतीं=से, प्रति। मर्द=शूरवीर।

३. पाग=पगड़ी। जरकसी=ज़रीदार। कमाण=धनुष। तरकसी=तीर रखने का चोंगा। चंगी=सुंदर। आरसी=दर्पण। मसांण=मरघट।

४. आव=आयु। बटाऊ=राहगीर।

६. सेझ=सेज। पथरणा पाट का=रेशम का बिस्तरा। हुरमां=सुन्दरियाँ। गंदगी=नरक।

७. हूंदर=हुनर, कारीगरी। दीपक=जीवात्मा से अभिप्राय है। भंगार=कचरा।

करै नारि की भीड़ गालि दे बहन कूँ।
हरि हां, वाजिद, सो नर नर का जाय ठौर नहीं रहन कूँ ॥८॥

काल कौ अंग

काल फिरत है हाल रैंणदिन लोइ रे।
हनै राव अरु रंक गिणै नहिं कोइ रे॥
यह दुनियां वाजिद बाट की दूब है।
हरि हां, पाणी पहिले पाल बँधे तो खूब है ॥१॥

मैं कहियो वाजिद तोहि बर बीस रे।
करिहै खंड बिहंड हाथ पर सीस रे॥
जुरा हैं बड़ी बलाय न छाड़ै जीव कूँ।
हरि हां, दूर जिन जाय पकड़ रह पीव कूँ ॥२॥

सुकरित लीनो, साथ पड़ी रहि मातरा।
लाम्बा पाँव पसार बिछाया साँथरा॥
लेय चल्या बनवास लगाई लाय रे।
हरि वाजिद, देखै सब परिवार अकेलो जाय रे ॥३॥

विश्वास कौ अंग

रिंदै न राखी वीर कलपना कोय रे।
राई घटे न मेर होय सो होय रे॥
सप्तदीप नवखंड जोय कि न ध्यावही।
हरि हां, लिख्यो कलम की कोर वोहि पुनि पावही ॥१॥

---

८. पापनैं=पापको, पाप की ओर। बापनें=बाप को। भीड़=सेवा-सहायता।

काल कौ अंग

१. लोइ=लोगो। बाट की दूब=रास्ते पर का घास, जिसे सभी कुचलकर चलते हैं।
२. बर=बार। खंड बिहंड=टुकड़े-टुकड़े, नष्ट। हाथ पर सीस=हाथों में जान। जुरा=जरा, बुढ़ापा।
३. मातरा=दौलत। साँथरा=सेज; यहाँ अरथी से आशय है। लाय=आग।

विश्वास कौ अंग

१. रिंदै=हृदय। वीर=भाई। मेर=मेरु, पहाड़।

रिजकन राखी राम सबन को पूरही।
काहे को वाजिद वृथा तूँ झूरही॥
जन्म सफल कर लेयक गोविंद गायके।
हरि हां, जाको ताके पास रहेगो आयके॥२॥

ज्यूँ ग्रीषम के अन्त सुवर्षा आत है।
वर्षा भये व्यतीत शीत मधुरात है॥
ऐसेही सुख दुःख अनुक्रम लेखिहैं।
हरि हां, कबहुँक दई सुदृष्टि हमहुँ पर देखिहैं॥३॥

दातव्य कौ अंग

भूखो दुर्बल देख नाहिं मुहँ मोड़िये।
जो हरि सारी देय तो आधी तोड़िये॥
दे आधी की आध अरध की कोर रे।
हरि हां, अन्न सरीखा पुण्य नाहिं कोइ ओर रे॥१॥

खैर सरीखी और न दूजी वसत है।
मेल्हे वासण मांहि कहा मुहँ कसत है॥
तूँ जिन जानें जाय रहेगो ठाम रे।
हरि हां, माया दे वाजिद धणी के काम रे॥२॥

मंगण आवत देख रहे मुहुँ गोय रे।
जद्यपि है बहु दाम काम नहिं लोय रे॥
भूखे भोजन दियो न नागा कापरा।
हरि हां, बिन दीया वाजिंद पावे कहा बापरा॥३॥

---

२. रिजकन=जीविका। झूरही=व्याकुल होता है।

३. आत है=आती है। अनुक्रम=क्रम से। दई=दैव, ईश्वर।

दातव्य कौ अंग

१. तोड़िये=तोड़कर या हिस्सा करके देदे। कोर=टुकड़ा।

२. खैर=खैरात। वसत=वस्तु। मेल्हे=रख देने पर। वासण=बर्तन। कसत है=बाँधता है। माया=धन-संपत्ति। धणी=ईश्वर।

३. गोय=छिपाकर। नागा कापरा=नंगे को कपड़ा। बापरा=बेचारा।

दया कौ अंग

जल में झीणा जीव थाह नहिं कोय रे।
बिन छाण्या जल पियां पाप बहु होय रे॥
काठे कपडे छाण नीर कूँ पीजिये।
हरि हां वाजिद, जीवाणी जल मांहि जुगत सूँ कीजिये ॥१॥

साहिब के दरबार पुकार्‌यां बाकरा।
काजी लीया जाय कमरसों पाकरा॥
मेरा लीया सीस उसीका लीजिये।
हरि हां, वाजिद, राव रंक का न्याव बरावर कीजिये ॥२॥

अज्ञान कौ अंग

कहा करे उपदेश अज्ञानी जीव कूँ।
भई जनम की भूल जपै कि न पीव कूँ॥
सृष्टि भली न वाजिद दुहाई राम की।
हरि हां, अंधे आरसि दई कहो किहि काम की ॥१॥

पाहन पड़ गई रेख रातदिन धोवहीं।
छाले पड़ गये हाथ मूँड़ गहि रोवहीं॥
जाको जोइ सुभाव जाइहै जीव सूँ।
हरि हां, नीम न मीठी होइ सींच गुड़ घीव सूँ॥२॥

उपजण कौ अंग

पाहण कोरो रह्यो बरसता मेह में।
घात घणी बाजिद दुष्टता देह में॥

दया कौ अंग

१. झीणा=सूक्ष्म। काठै=मोटे। जुगत सूँ=सावधानी के साथ।

२. पाकरा=पकड़ा। न्याव=न्याय, इन्साफ।

अज्ञान कौ अंग

२. जाको......जीव सूँ=जान भले चली जाय, पर स्वभाव नहीं बदलता। घीव=घी।

डसे अचानक आय मूँड़ गहि रोइये।
हरि हां, सर्पहि दूध पिलाय क विरथा खोइये ॥१॥

जरणा कौ अंग

सतगुरु शरणें आयक तामस त्यागिये।
बुरी भली कह जाय ऊठ नहिं लागिये॥
उठ लाग्या में राड़, राड़ में मीच है।
हरि हां, जा घर प्रगटै क्रोध सोइ घर नीच है ॥१॥

कहि-कहि वचन कठोर खरूँठ नहिं छोलिये।
सीतल सान्त स्वभाव सबन सूँ बोलिये॥
आपन सीतल होय और भी कीजिये।
हरि हां, बलती में सुण मीत न पूला दीजिये ॥२॥

भेष कौ अंग

बडा भया सो कहा बरस सौ साठ का।
घणा पढ्या तो कहा चतुर्विधि पाठ का॥
छापा तिलक बनाय कमंडल काठ का।
हरि हां, वाजिद, एक न आया हाथ पंसेरी आठ का ॥१॥

●

उपजण कौ अंग

१. मूँड़ गहि=सिर पकड़कर।

जरणा कौ अंग

१. ऊठ नहिं लागिये=उठकर जवाब नहीं देना चाहिए। राड़=लड़ाई-झगड़ा। मीच=मौत, सर्वनाश।

२. पूला=घास की पूली; उत्तेजन से आशय है।

भेष कौ अंग

१. न आया हाथ=वश में नहीं हुआ। पंसेरी आठ का=मन; यहाँ तोल के मन से नहीं, वरन् मन अर्थात् चित्त से तात्पर्य है।

स्वामी सुन्दरदास

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१६५३ वि., चैत्र शु. ९
जन्म-स्थान—द्यौसा (जयपुर राज्यान्तर्गत)
पिता—चोखा; दूसरा नाम परमानन्द
माता—सती
जाति—बूसर (खण्डेलवाल वैश्य)
गुरु—स्वामी दादू दयाल
भेष—विरक्त
निर्वाण-संवत्—१७४६ वि.

६ या ७ वर्ष की बाल्यावस्था में ही सं. १६५९ में सुन्दरदासजी सद्गुरु महात्मा दादू दयाल के शरणापन्न हो गये थे—

दादूजी जब द्यौसा आये। बालपने महँ दरसन पाये॥

—ग्रन्थ गुरु संप्रदाय

सुन्दरदासजी ने स्वयं अपनी एक साखी में कहा है—

"सुन्दर सतगुरु आपतैं, किया अनुग्रह आइ।
मोह निसामें सोवते, हमकौं लिया जगाइ॥

तथा—

"दादूजी जब द्यौसा आये। बालपने हम दर्सन पाये।
तिनके चरननि नायौ माथा। उनि दीयो मेरे सिर हाथा॥"

—बावनी ग्रन्थ

उम्र में सबसे छोटे होने के कारण दादूजी महाराज के सब शिष्य इनके प्रति बड़ा स्नेह-भाव रखते थे। दादूजी ने इन्हें अपने प्रिय शिष्य जगजीवनजी को सौंप दिया था, और वे सदा इनकी बहुत सार-सँभाल रखा करते थे।

११ वर्ष की अवस्था में सुन्दरदासजी कुछ गुरुभाइयों के साथ विद्याध्ययन करने काशी चले गये। वहाँ इन्होंने संस्कृत-साहित्य का अठारह-उन्नीस वर्ष रहकर बड़ा गहरा अध्ययन किया। व्याकरण, काव्य, दर्शन आदि के साथ योगविद्या का भी अच्छा अनुशीलन

किया। भाषा-काव्य-रचना भी काशी में ही इन्होंने आरंभ की। कहते हैं कि काशी में यह गंगा के उसी असी घाट पर रहा करते थे, जहाँ गोस्वामी तुलसीदासजी ने शरीर-त्याग किया था।

काशी से विद्याध्ययन करके सुन्दरदासजी सं. १६८२ में सीधे फतेहपुर शेखावाटी आये। यहाँ पर कितने ही वर्ष यह रहे। यहीं योगाभ्यास किया और १२ वर्ष तक घोर तपश्चर्या भी। सत्संग भी इन्होंने यहीं चेताया, और कितने ही छोटे-बड़े ग्रंथों की रचना भी की। इनकी प्रसिद्धि की सुगंध यहाँ से धीरे-धीरे चारों ओर फैलने लगी। फतेहपुर इनका साधना-स्थान भी बना, और सिद्ध-स्थान भी।

देशाटन भी सुन्दरदासजी ने बहुत किया। सद्गुरु दादू दयालजी के सब पुण्यस्थानों को तो उन्होंने देखा ही, बिहार, बंगाल, उड़ीसा तक पूर्व के देशों का, और लाहौर तक पश्चिम का, व गुजरात, मध्यप्रदेश, मालवा और द्वारका तक भी भ्रमण किया था। अपने देशाटन के सवैयों में सुन्दरदासजी ने कितने ही स्थानों का उल्लेख और वर्णन किया है। मालवा और उत्तर प्रदेश इन्हें बहुत प्रिय था। इन प्रान्तों की प्रशंसा भी इन्होंने खूब की है।

सुन्दरदासजी स्वामी दादू दयाल के पट्ट शिष्य रज्जबजी के विशेष स्नेहपात्र थे। रज्जबजी के साथ सत्संग करने यह प्रायः सांगानेर जाया करते थे। विद्वद्वर पुरोहित श्री हरनारायण शर्मा ने 'सुन्दर ग्रंथावली' (प्रथम खंड-जीवन-चरित्र, पृष्ठ ५६) में लिखा है कि ''सुन्दरदासजी ने रज्जबजी से बहुत ज्ञान-लाभ किया था, और उनकी उक्तियों और विचारों और कविताओं में रज्जबजी की झलक पड़ती है।''

दादू दयालजी के एक अन्य प्रधान शिष्य बषनाजी का भी सुन्दरदासजी से बहुत प्रेम-भाव रहता था। कहते हैं कि, ''बषनाजी के साथ सुन्दरदासजी प्रेममग्न होकर पद गाया करते थे, और अपने बनाये पदों को भी सुनाते, जिनके रागों की यथार्थता में बषनाजी सम्मति देते थे।'' (सुन्दर-ग्रंथावली-प्रथम खण्ड, जीवन-चरित्र-पृष्ठ ८७)

इसी प्रकार दादू दयालजी के प्रधान शिष्य गरीबदासजी, वाजिदजी, जनगोपालजी, जगजीवनजी, राघोदासजी, प्रागदासजी, नारायणदासजी, मोहनदासजी आदि भी सुन्दरदासजी के समकालीन और परमस्नेहियों में से थे।

महात्मा सुन्दरदास एक पहुँचे हुए परम वीतराग संत थे। निर्मल और ऊँची रहनी थी इनकी। अति दयालु और भगवत्प्रेम में निरन्तर विभोर रहनेवाले यह ऊँचे ज्ञानी तथा हरिभक्त थे।

सुन्दरदासजी का शरीरपात् संवत् १७४६ में सांगानेर में हुआ था। अनन्य सत्संगी श्री रज्जबजी के ब्रह्मलीन हो जाने का असह्य समाचार सुनकर यह अत्यंत व्यथित हुए, और उसी दिन से इनका स्वास्थ्य गिरने लगा। कार्तिक शुक्ला अष्टमी को तीसरे पहर

सांगानेर में प्राप्त एक शिला-लेख में लिखा है—

"संवत् सत्रासै छीयाला। कातीसुदी अष्टमी उजीयाला॥
तीजे पहर ब्रसपतवार। सुंदर मिलिया सुंदरदास॥"

सुंदरदासजी की रची अंत समय की ४ साखियाँ हम नीचे उद्धृत करते हैं—

"निरालंब निरवासना, इच्छाचारी येह।
संस्कार-पवनहि फिरै, शुष्कपर्ण ज्यौं देह॥
वैद्य हमारे रामजी, औषधहू हरिनाम।
सुंदर यहे उपाय अब, सुमरण आठों जाम॥
सुन्दर संसय कौ नहीं, बड़ो महुच्छव येह।
आतम परमातम मिल्यौ, रहौ कि बिनसौ देह॥
सात बरस सौ में घटैं, इतने दिन कौ देह।
सुंदर आतम अमर है, देह खेह की खेह॥"

बानी-परिचय

स्वामी सुन्दरदास सच्चे अर्थ में एक महाकवि थे। केवल काव्य की स्वीकृत दृष्टि से देखा जाये तो शान्तरस के वे एकमात्र आचार्य माने जा सकते हैं। कवि के लौकिक अर्थ में निर्गुणपन्थी संतों में कवि केवल सुन्दरदास को ही कहा जा सकता है। भाषा, भाव, छन्द, अलंकार, ध्वनि आदि प्रायः सभी काव्याङ्गों को देखते हुए सुन्दरदासजी अपना एक विशेष स्थान रखते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

हमने बहुत पहले सुन्दरदासजी का 'सुन्दरविलास' नामक एक ग्रन्थ देखा था। इसमें उनके अनूठे सवैयों का संग्रह था। उनके समस्त छोटे-बड़े ग्रन्थों का अत्यंत विद्वत्तापूर्ण सुसंपादित संस्करण, 'सुंदर-ग्रन्थावली' नाम का, दो खण्डों में देखकर सुन्दरदासजी के सत्काव्य का जब हमने यत्किंचित् रसास्वादन किया, तब ऐसा लगा कि उनके रचे "ज्ञान-समुद्र" और "सवैया" में से प्रस्तुत संग्रहग्रन्थ में किन रत्नों को स्थान दिया जाय और किन्हें छोड़ा जाय।

विद्वद्वर पुरोहित हरिनारायण शर्मा विद्याभूषण ने इस ग्रन्थावली का ऐसा उत्तम संपादन किया है कि देखते ही बनता है। अनेक परिशिष्टों के साथ २०८ पृष्ठों की अत्यंत शोधपूर्ण भूमिका, और १८६ पृष्ठों का ग्रन्थकर्त्ता का मंथनपूर्ण विशद जीवन-चरित्र देखकर कौन संत-साहित्य-रसिक मुग्ध नहीं हो जायेगा। टिप्पणियाँ, कठिन गूढ़ शब्दों के सरल अर्थ, और विपर्यय के अंगों की पाण्डित्यपूर्ण 'सुन्दरानन्दी' टीका लिखकर विद्वान् संपादक ने संत-साहित्य के रसिकों का अनुपम हित किया है।

सुंदरदासजी के समस्त ग्रन्थों का विभाजन सुंदर-ग्रन्थावली में नीचे लिखे ६ विभागों

में हुआ है:–

१. प्रथम विभाग–इसके अंतर्गत केवल 'ज्ञान-समुद्र' ग्रन्थ रखा गया है, जिसमें ५ उल्लास हैं।

२. द्वितीय विभाग–इसके अंतर्गत छोटे-छोटे ३७ ग्रन्थ हैं।*

३. तृतीय विभाग–"सवैया" इस अत्युत्तम ग्रन्थ की छंद-संख्या ५६३, और अंग-संख्या ३४ हैं।

४. चतुर्थ विभाग–"साखी" इसकी अंग-संख्या ३१ हैं।

५. पंचम विभाग–"पद"; इसमें २७ भिन्न-भिन्न रागों में २१३ पद हैं।

६. षष्ठ विभाग–फुटकर काव्य।

इन छोटे-बड़े ग्रन्थों में 'ज्ञान-समुद्र' तथा 'सवैया' अथवा 'सुन्दरविलास' ये दो ग्रन्थ सर्वोत्कृष्ट हैं। 'ज्ञान समुद्र' को स्वयं सुंदरदासजी ने भी अपना सबसे उत्कृष्ट ग्रन्थ कहा है। श्री पुरोहितजी के शब्दों में यह ग्रन्थ "वर्तमान कालतक के भाषा-साहित्य में ज्ञान का भंडार छन्दोबद्ध सर्वगुणालंकृत ऐसा सुरम्य ग्रन्थ और है ही नहीं, जिसमें थोड़े-से वर्णनों में इतने विशाल विषय इतनी सरलता और चातुर्य से एकत्रित हों। भाषा-काव्य में **ज्ञानकाण्ड का यह रीति-ग्रन्थ है**। स्वामी सुंदरदासजी इसके कारण इस प्रदेश की विद्या और विधान में आचार्य हैं।"

'सवैया' अथवा 'सुन्दरविलास' ग्रन्थ भी इनका अनूठा और बड़ा लोकप्रिय है। इसके जोड़ के शान्तरस के सवैये अन्यत्र मिलने में संदेह ही है।

'विपर्यय' अंग इसका अत्यन्त गूढ़ और क्लिष्ट भी है। कबीर साहब की उलट बाँसियों से इस अंग के सवैये कम महत्त्व के नहीं हैं। बिना अच्छी टीका के इनका अर्थ स्पष्ट हो नहीं सकता। किंतु कबीर साहब की 'उलट बाँसियों' और सुंदरदासजी के 'विपर्यय'

*(१) सर्वाङ्ग योग प्रदीपिका, (२) पंचेन्द्रिय-चरित्र, (३) सुख समाधि, (४) स्वप्नप्रबोध, (५) वेदविचार, (६) उक्त अनूप, (७) अद्भुत उपदेश, (८) पंच प्रभाव, (९) गुरु संप्रदाय, (१०) गुन उत्पत्ति निसांनी, (११) सद्गुरु महिमा निसांनी, (१२) बावनी, (१३) गुरुदया षट्पदी, (१४) भ्रम विध्वंस अष्टक, (१५) गुरुकृपा अष्टक, (१६) गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक (१७) गुरुदेव महिमास्तोत्र अष्टक, (१८) रामजी अष्टक, (१९) नाम अष्टक, (२०) आत्मा अचलअष्टक, (२१) पंजाबी भाषा अष्टक, (२२) ब्रह्मस्तोत्र अष्टक, (२३) पीरमुरीद अष्टक, (२४) अजब ख्याल अष्टक, (२५) ज्ञान झूलना अष्टक, (२६) सहजानन्द ग्रन्थ, (२७) गृह बैराग बोध ग्रन्थ, (२८) हरिबोल चितावनी, (२९) तर्क चितावनी, (३०) विवेक चितावनी, (३१) पवंगम छन्द, (३२) अडिल्ला छन्द, (३३) मडिल्ला छन्द, (३४) बारह मासिया, (३५) आयुर्बल भेद आत्मा विचार, (३६) त्रिविध अंतःकरण भेद और (३७) पूर्वीभाषा बरवै।

को हमने प्रस्तुत संग्रह में स्थान न देने की धृष्टता की है। प्रसादगुणमयी सरल सुबोध रचनाओं को ही हमने इस संग्रह में लिया है।

'सवैया' ओर 'साखी' में भी ज्ञानकाण्ड के प्रायः सभी गूढ़ अंगों का विश्लेषण सुंदरदासजी ने इतना सरल, और इतना अनूठा किया है कि देखते ही बनता है। शान्तरस का ऐसा काव्यात्मक परिपाक अन्यत्र बहुत कम मिलेगा।

भाषा पर इस संत महाकवि का पूरा अधिकार था। अच्छी परिष्कृत साधुभाषा है। मुख्यतः ब्रजभाषा है, पर खड़ी हिन्दी और राजस्थानी का भी स्वभावतः उसमें मेल हुआ है। मुहावरों और लोकोक्तियों का स्थान-स्थान पर बहुत उपयुक्त प्रयोग किया गया है। भारत की अनेक प्रांतीय भाषाओं के कितने ही शब्द इनके काव्यों में मिलते हैं। फ़ारसी के भी अनेक शब्दों का मुक्त प्रयोग हुआ है।

गोसाईं तुलसीदास की तरह इन्होंने भी क्योंकि 'नाना पुराण निगमागम' तथा अन्य अनेक संस्कृत एवं भाषा-ग्रन्थों का अध्ययन किया था, और अनेक देशों का पर्यटन भी, इसलिए इनकी रचनाओं में कितने ही अनुभवात्मक भाव देखने में आते हैं, किंतु कहने का ढंग इनका अपना मौलिक है।

काव्य के सभी लक्षण इनकी रचनाओं में हम पाते हैं। ध्वनि और अलंकारों का सुंदर प्रयोग कितने ही पद्यों में हुआ है। प्रसाद, माधुर्य और ओज तीनों ही गुण अच्छी मात्रा में मिलते हैं।

शांतरस के वर्णन में सुंदरदासजी का वास्तव में अपना एक विशेष स्थान है। श्री पुरोहितजी ने यह सर्वथा सही लिखा है—''सुंदरदासजी ने शृंगारादि रसों पर मानों विजय पाकर शांतरस का यह किला बनाकर उसपर विजय का झंडा फहरा दिया है। इस पक्ष में वे आचार्य माने जाने के योग्य हैं।''

लिखा भी सुन्दरदासजी ने बहुत अधिक है। सारी पद्य-संख्या इनकी ३७८८ है। छन्द ५२ प्रकार के इन्होंने लिखे हैं। १४ छंद चित्रकाव्य के भी हैं। और २७ रागों में पदों की भी सरस रचना इन्होंने की है।

स्वामी सुंदरदासजी की बानी क्या भाव, क्या भाषा, क्या अध्यात्म सभी दृष्टियों से अति सरस और सरल तथापि गूढ़ है। संत-साहित्य में इस बानी का एक निराला ही स्थान है, इसमें संदेह नहीं।

आधार

सुंदर-ग्रन्थावली (प्रथम तथा द्वितीय खण्ड)—सं. पुरोहित श्री हरिनारायण शर्मा, विद्या-भूषण-राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता

●

स्वामी सुन्दरदास

ज्ञान-समुद्र

छप्पय

प्रथम बन्दि परब्रह्म परम आनंदस्वरूपं।
दुतिय बन्दि गुरुदेव दियौ जिह ज्ञान अनूपं॥
त्रितिय बंदि सब संत जोरिकर तिनके आगय।
मन बच काय प्रमाण करत भय भ्रम सब भागय॥
इहिं भांति मंगलाचरण करि, सुन्दर ग्रन्थ बखानिये।
तह विघ्न कोऊ उप्पजय, यह निश्चयकरि मानिये॥१॥

सुत कलत्र निज देह आपुकौं बंधन जानत।
छूटौं कौन उपाय इहै उर अन्तर आनत॥
जन्ममरन की शंक रहै निशदिन मन माहीं।
चतुराशी के दुःख नहीं कछु बरने जाहीं॥
इहिं भांति रहै सोचत सदा, संतनि कौं पूछत फिरै।
को है ऐसो सद्गुरु कहीं, जौ मेरौ कारय करै॥२॥

रोडा

चित्त ब्रह्म लयलीन नित्य शीतल हि सुहृदय।
क्रोधरहित सब साधु साधु-पद नाहिंन निर्द्दय॥
अहंकार नहिं लेश महान सवनि सुख दिज्जय।
शिष्य परख्य विचारि जगत महिं सो गुरु किज्जय॥३॥

---

१. आगय=आगे, सामने। उप्पजय=उत्पन्न होता है, सामने आता है।

२. कलत्र=स्त्री। चतुराशी=चौरासी लाख योनियाँ। कारय=कार्य; माया के बन्धन से छुटकारा।

३. सुहृदय=शुद्ध सात्त्विक मनवाला। साध=साधन। निर्द्दय=करुणारहित। दिज्जय=देता हो। किज्जय=किया जाये।

छप्पय

सदा प्रसन्न, सुभाव प्रगट सर्वोपरि राजय।
तृप्त ज्ञान विज्ञान अचल कूटस्थ विराजय॥
सुखनिधान सर्वज्ञ मान अपमान न जानै।
सारासार विवेक सकल मिथ्या भ्रम मानै॥
पुनि भिद्यन्ते हृदिग्रन्थि कौं, छिद्यन्ते सबसं शयं।
कहि सुन्दर सो सद्गुरु सही, चिदानंदघनचिन्मयं॥४॥

सोरठा

ऐसे गुरु पहिं आइ, प्रश्न करै कर जोरिकैं।
शिष्य मुकति ह्वै जाइ, संशय कोऊ नां रहै॥५॥

चौपाई

खोजत खोजत सद्गुरु पाया। भूरिभाग्य जाग्यौ शिष आया।
देखत दृष्टि भयो आनन्दा। यह तौ कृपा करी गोबिंदा॥६॥

दोहा

गुरु को दरसन देखतें, शिष पायौ संतोष।
कारय मेरौ अब भयौ, मन महिं मान्यौ मोष॥७॥

सोरठा

मुदित भये गुरुदेव, देखि दीनता शिष्य की।
सर्व बताऊँ भेव, जोई जो तूँ पूछिहै॥८॥

दोहा

भ्रम ही कौं भ्रम ऊपज्यौ, चितानंद रस येक।
मृगजल प्रत्यख देखिये, तैसैं जगत-बिबेक॥९॥

---

४. राजय=शोभित। कूटस्थ=नित्य, स्थिर। भानै=विनष्ट करता हो। भिद्यन्ते=तोड़ता या खोलता हो। हृदि-ग्रंथि=आत्मा और परमात्मा के बीच की द्वैतबुद्धि। छिद्यन्ते=नष्ट होते हों।
मिलाइए—तृप्त.....विराजय=''ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः--''गीता।
तथा—पुनि.....संशयं=''भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।''

७. कारय=कार्य; तत्त्वज्ञान की जिज्ञासा का संतोषकारक उत्तर पाने का कार्य। मोष=मोक्ष।

८. भेव=भेद, रहस्य।

९. येक=एक, अद्वितीय। बिबेक=वास्तविक ज्ञान।

चौपाई

निद्रा महिं सूतौ है जौलौं। जन्ममरण कौ अंत न तौलौं।
जागि परें तें स्वप्न समाना। तब मिटि जा सकल अज्ञाना ॥१०॥

कुण्डलिया

शिष्य कहांलौं पूछिहै, मैं तो उत्तर दीन।
तबलग चित्त न आइहै, जबलग हृदय मलीन॥
जबलग हृदय मलीन, यथारथ कैसें जानै।
भ्रमैं त्रिगुनमय बुद्धि, आपु नाहिन पहिचानै॥
कहिबो सुनिबौ करौ ज्ञान उपजे न जहांलौं।
मैं तो उत्तर दियौ, शिष्य पूछिहै कहांलौं ॥११॥

सोरठा

शिष्य सुनाऊँ तोहि, प्रेम-लक्षणा भक्ति कौं।
सावधान अब होइ, जो तेरै सिर भाग्य है ॥१२॥

इंदव

प्रेम लग्यौ परमेश्वर सौं तब भूलि गयौ सब ही घरबारा।
ज्यौं उनमत्त फिरै जित ही तित, नैकु रही न शरीर-सँभारा॥
स्वास उस्वास उठैं सब रोम, चलै दृग नीर अखंडित धारा।
सुन्दर कौन करै नवधा विधि, छाकि पर्‍यौ रस पी मतवारा ॥१३॥

नराय

न लाज कानि लोक की न वेद कौ कह्यौ करै।
न शंक भूत प्रेत की न देव यक्ष तें डरै॥
सुनै न कान और की दृशै न और अक्षणा।
कहै न मुक्ख और बात भक्ति प्रेम-लक्षणा ॥१४॥

---

१०. सूतौ है=सोता है

११. यथारथ=वास्तविक वस्तु; आत्मतत्त्व। आपु=अपने स्वरूप को।

१३. उठैं सब रोम=रोमांचित अर्थात् पुलकित हो जाये। नवधा=वंदन, अर्चन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन आदि नौ प्रकार की भक्ति।

१४. कानि=मर्यादा। दृशै=दीखता हों। अक्षणा=आँखों से। मुक्ख=मुख से।

बिज्जुमाला

प्रेमाधीना छाक्या डोलै। क्यौं का क्यौं ही बानी बोलै॥
जैसे गोपी भूली देहा। ताकौं चाहै जासौं नेहा॥१५॥

छप्पय

कबहूँ कै हँसि उठय नृत्यकरि रोवन लागय।
कबहूँ गदगद कंठ शब्द निकसै नहिं आगय॥
कबहूँ हृदय उमंगि बहुत उच्चय स्वर गावै।
कबहूँ कै मुख मौंनि मग्न ऐसैं रहि जावै॥
तौ चितवृत्य हरि सौं लगी, सावधान कैसैं रहै।
यह प्रेमलक्षणा भक्ति है, शिष्य सुनहिं सद्गुरु कहै॥१६॥

मनहर

नीर बिनु मीन दुखी, क्षीर बिनु शिशु जैसें,
पीर जाकै औंषद बिनु कैसैं रह्यौ जात है।
चातक ज्यौं स्वांति-बूँद, चंद कौं चकोर जैसें,
चंदन की चाह करि सर्प अकुलात है।
निर्धन ज्यौं धन चाहै, कामिनी कौं कन्त चाहै,
ऐसी जाकै चाह ताकौं कछु न सुहात है।
प्रेम कौ प्रभाव ऐसौ प्रेम तहाँ नेम कैसौ,
सुन्दर कहत यह प्रेम ही की बात है॥१७॥

चौपइया

यह प्रेमभक्ति जाकैं घट होई, ताहि कछू न सुहावै।
पुनि भूख तृषा नहिं लागै वाकौं, निशदिन नींद न आवै॥
मुख ऊपर पीरी स्वासा सीरी, नैंन हु नीझर लायौ।
ये प्रगट चिन्ह दीसत हैं ताके, प्रेम न दुरै दुरायौ॥१८॥

---

१५. क्यौं का क्यौं=कुछ का कुछ, अटपटी।

१६. वृत्य=वृत्ति, लौ। सावधान=सचेत, होश में।

१७. पीर=पीड़ा। अकुलात है=बेचैन हो जाता है। चाह=तीव्र लालसा। नेम=विधि-निषेध के नियम।

१८. पीरी=पीलाई, पीलापन। सीरी=ठण्डी। नीझर=झरना, निरंतर वर्षा। दीसत है=दीखते हैं।

दोहा

प्रेमभक्ति यह मैं कही, जानैं बिरला कोइ।
हृदय कलुषता क्यौं रहै, जा घट ऐसी होइ ॥१६॥

दोहा

मनकरि दोष न कीजिये, वचन न लावै कर्म।
घात न करिये देह सौं, इहै अहिंसा धर्म ॥२०॥

सोरठा

सत्य सु दोइ प्रकार, येक सत्य जो बोलिये।
मिथ्या सब संसार, दूसर सत्य सु ब्रह्म है ॥२१॥

मालती

क्षमा अब सुनहि शिष मोसौं, सहनता कहौं सब तोसौं।
दुष्ट दुख देहिं जो भारी, दुसह मुख बचन पुनि गारी ॥
कदे नहिं क्षोभ कौं पावै, उदधि महि अग्नि बुझि जावै।
बहुरि तन त्रास दे कोऊ, क्षमा करि सहै पुनि सोऊ ॥२२॥

चौपइया

यह कोमल हृदय रहै निशबासर बोलै कोमल बानी।
पुनि कोमल दृष्टि निहारै सबकौं कोमलता सुखदानी ॥
ज्यौं कोमल भूमि करै नीकी बिधि बीज वृद्धि ह्वै आवै।
त्यौं इहै आर्ज्जव-लक्षण सुनि शिष योगसिद्धि कौं पावै ॥२३॥

कुण्डलिया

बानी बहुत प्रकार है, ताकौ नाहिन अन्त।
जोई अपने काम की, सोइ सुनिय सिद्धन्त ॥
सोइ सुनिय सिद्धन्त संत सब भाषत वोई।
चित्त आनिकै ठौर सुनिय नितप्रति जे कोई ॥

---

२०. मनकरि=मन से, मानसिक। दोष=द्वेष।

२२. कदे=कभी भी। क्षोभ=रोष, आपे से बाहर हो जाने का भाव। उदधि....जावै=शान्तिरूपी समुद्र में क्रोधरूपी अग्नि अपने आप शांत हो जाती है।

२३. आर्ज्जव=कोमलता।

यथा हंस पय पिवै रहै ज्यौं कौ त्यौं पानी।
ऐसौ लेहु बिचारि शिष्य बहु बिधि है बानी ॥२४॥

सवइया

नाना सुख संसार-जनित जे तिनहि देखि लोलप नहिं होइ।
स्वर्गादिक की करिय न इच्छा इहामुत्र त्यागै सुख दोइ॥
पूजा मान बड़ाई आदर निंदा करै आइकैं कोइ।
या प्रकार मति निश्चल जाकी सुन्दर दृढ़मति कहिये सोइ ॥२५॥

गीतक

सुनि शिष्य अबहिं समाधि-सक्षण मुक्त योगी वर्तते।
तहँ साध्य साधक एक होइ जु क्रिया कर्म निवर्तते॥
निरुपाधि नित्य उपाधिरहितं इहै निश्चय आनिये।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि बखानिये ॥२६॥

नहिं शीत उष्ण क्षुधा तृषा नहिं मूरछा आलस रहै।
नहिं जागरं नहिं सुप्न सुषुपति तत्पदं योगी लहै॥
इम नीर महिं गरि जाइ लवनं एकमेकहि जानिये।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि बखानिये ॥२७॥

नहिं हर्ष शोक न सुखं दुःखं नहीं मान अमानियो।
पुनि मनौं इन्द्रिय वृत्य नष्टं गतं ज्ञान अज्ञानयो॥
नहिं जाति कुल नहिं वर्ण आश्रम जीव ब्रह्म न जानिये।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि बखानिये ॥२८॥

---

२४. सिद्धन्त=सिद्धान्त। वोई=वही। ठौर=निश्चलता, स्थिरता।

२५. संसार-जनित=संसारी माया-मोह से उत्पन्न। लोलप=लोलुप, लालायित। इहामुत्र= इह+अमुत्र, यह लोक और परलोक। दृढ़मति=स्थिर बुद्धि।

२६. अबहिं=अब, इसके अनन्तर। मुक्त=जीवन्मुक्त। साध्य=ब्रह्मतत्त्व। निवर्तते=निवृत्त हो जाता है, छूट जाता है। भिन्न भाव=द्वैतभाव। सा=वह।

२७. जागरं=जागृति अवस्था। सुषुपति=गहरी नींद की अवस्था। तत्पदं=ब्राह्मी स्थिति। लहै=प्राप्त करता है। इम=इस प्रकार। गरिजाइ=गल जाता है।

२८. अमानियो=अनादर भी। वृत्य=वृत्ति। जीव ब्रह्म न जानिये=जीव और ब्रह्म में भेद नहीं जाना जाता।

दोहा

निरालंब निरवासना, इच्छाचारी येह।
संस्कार-पवनहि फिरै, शुष्कपूर्ण ज्यौं देह ॥२९॥

सुन्दर ज्ञान-समुद्र की, महिमा कहिये कौन।
अमृतरस सौं है भर्यौ, तुम जिनि जानहु लौन ॥३०॥

सुन्दर ज्ञान-समुद्र महिं, बहुते रत्न अमोल।
मृतक होइ सो पैठिहै, पैठि न सकई लोल ॥३१॥

सुन्दर ज्ञान-समुद्र कौ, वारापार न अन्त।
बिषई भागै झझकिकैं, पैठै कोई संत ॥३२॥

सर्वाङ्गयोग-प्रदीपिका

चौपाई

भक्तियोग अब सुनहु सयाना। बुद्धि प्रवांन न करौं बखाना।
भक्ति करन का यहु आरंभा। महल उठै जौ थिरि है थंभा॥
प्रथमहिं पकरै दृढ़ वैरागा। गहि विश्वास करै सब त्यागा।
जितइन्द्रिय अरु रहै उदासी। अथवा गृहि अथवा वनवासी॥
माया मोह करै नहिं काहू। रहै सबनि सौं बेपरवाहू।
कनक कामिनी छाड़े संगा। आशा तृष्णा करै न अंगा॥
शील संतोष क्षमा उर धारै। धींरज सहित दया प्रतिपारै।
दीन गरीबी राखै पासा। देखै निर्पख भया तमासा॥
मान महातम कछू न चाहै। एकै दशा सदा निर्वाहै॥

---

२९. निरालंब=जिसका अस्तित्त्व किसी अन्य पर आधार नहीं रखता; निरपेक्ष, विशुद्ध। इच्छाचारी=सहजभाव से स्वतंत्र आचरण करने वाला। संस्कार.....देह=जीवन्मुक्ति की अवस्था में शरीर को ये समस्त संस्कार उसी प्रकार लिये-लिये फिरते हैं जैसे कि वायु सूखे पत्ते को चाहे जहाँ उड़ाकर ले जाती है, किंतु आत्मा स्वभावतः स्थिर रहता है। ''सुन्दर-ग्रन्थावली'' (प्रथम खण्ड—पृष्ठ ८१) में लिखा है कि ''यह साखी सुन्दरदासजी के अन्त समय की कही हुई प्रसिद्ध है।''

३०. कौन=क्या, किस प्रकार। लौन=लवण, नमक।

३१. मृतक होइ=अपनी अहंता को मारकर। लोल=चंचल चित्तवाला; इन्द्रिय-लोलुप।

३२. झझकिकैं=डरकर।

राव रंक की शंक न आनै। कीरी कूंजर समकरि जानै॥
आतम दृष्टि सकल संसारा। संतनि कौ राखै अधिकारा॥
बैरभाव काहू नहिं करई। सतगुरु शब्द हृदै मैं धरई॥
सार ग्रहै कूकस सब नाखै। रमिता रांम इष्ट सिर राखै॥
आंन देव की करै न सेवा। पूजै एक निरंजन देवा॥
मन माहैं सब सौंज सु थापै। बाहर के बंधन सब कापै॥
शून्य सुमंदिर अधिक अनूपा। ता महिं मूरति जोतिस्वरूपा॥
सहज सुखासन बैठे स्वामी। आगै सेवक करै गुलामी॥
संजम-उदक सनान करावै। प्रेमप्रीति के पुष्प चढ़ावै॥
चित चन्दन लैं चरचै अंगा। ध्यान धूप खेवै ता संगा।
भोजन भाव धरै लै आगै। मनसा वाचा कछू न मांगै॥
ज्ञान दीप आरती उतारै। घण्टा अनहद शब्द बिचारै॥
तन मन सकल समर्पन करई। दीन होइ पुनि पायनि परई॥
मग्न होइ नाचै अरु गावै। गदगद रोमांचित हो आवै॥
सेवक-भाव कदै नहिं चौरै। दिन-दिन प्रीति अधिक ही जौरै॥
ज्यौं पतिव्रता रहै पति पासा। ऐसैं स्वामी की ढिंग दासा॥
काहू दिशा भूलि जौ जाई। तौ पतिव्रत जु रहै नहिं भाई॥
नैकु न पाव आन दिश धारै। जौ पति कहै सु आज्ञा पारै॥
सदा अखंडित सेवा लावै। सोई भक्ति अनन्य कहावै॥१॥

दोहा

यह सो भक्ति अलिंगनी, बिरला जानै भेव॥
भाग्य होइ तौ पाइये, समझावै गुरुदेव॥२॥

---

१. प्रवांन=प्रमाण, अनुसार। थंभा=स्तंभ, खंभा, बुनियाद। उदासी=उदासीन, तटस्थ, अनासक्त। बेपरवाहू=निरपेक्ष, अनासक्त। करै न अंगा=अंगीकार न करे, लिप्त न हो। प्रतिपारै=आचरण करे। निर्पख=निष्पक्ष, तटस्थ। कीरी=चींटी। शब्द=उपदेश। कूकस=भुस। नाखै=फेंकदे। सौंज=सामग्री पूजन की। कापै=काटदे। उदक=जल। सनान=स्नान। चरचै=लगाये। चौरै=छिपाकर रखे, घटाये। ढिंग=पास। पारै=पाले।

२. अलिंगनी=लिंग अर्थात् स्थूलरूप से रहित; ब्राह्मी। भेव=भेद, रहस्य।

पंचेन्द्रिय-निर्णय

दोहा

गज अलि मीन पतंग मृग, इक इक दोष विनाश।
जाकै तन पंचौं बसैं, ताकी कैसी आश ॥१॥

सखी

अब ताकी कैसी आसा। जाकै तन पंच निवासा।
पंचौं नर कै घट माहैं। अपना अपना रस चाहैं ॥२॥

ये श्रवन नाद के लोभी। बहु सुनैं त्रिपति नहिं तोभी।
ये नैन रूप कौं धावैं। कबहू संतोष न आवैं ॥३॥

इहिं नासा गंध सुहाई। सो कबहू नहीं अघाई।
यह रसना स्वाद भुलानी। इनि कबहूँ त्रिपति न मानी ॥४॥

अध इन्द्रिय भोगहिं राती। नहिं तृप्त होइ मदमाती।
ये पंचौं पंच अहारा। अपना अपना रस न्यारा ॥५॥

इन पंचौं जगत नचावा। इन पंच सबनि कौं खावा।
ये पंच प्रबल अति भारी। कोउ सकै न पंच प्रहारी ॥६॥

ये पंचौं खोवैं लाजा। ये पंचौं करहिं अकाजा।
ये पंच पंच दिश दौरैं। ये पंच नरक मैं बोरैं ॥७॥

ये पंच करैं मति हीना। ये पंच करैं आधीना।
ये पंच लगावैं आशा। ये पंच करैं घट-नाशा ॥८॥

ये पंच विकर्म करावैं। ये पंचौं मान घटावैं।
ये पंचौं चाहैं गलुका। ये पंच करैं पुनि हलुका ॥९॥

---

१. गज....विनाश=हाथी का स्पर्श-सुख से, भ्रमर का गंध-सुख से, मछली का रस-सुख से, पतिंगे का रूप-सुख से और हिरण का नाद-सुख से नाश होता है। त्वचा, नासिका, जिह्वा, नेत्र और श्रवण इन पंचेन्द्रियों के विषय एक-एक को नष्ट करते हैं। किंतु मनुष्य तो पांचों इन्द्रियों के अधीन रहता है, उसकी क्या गति होगी?

३. त्रिपति=तृप्ति, संतोष।

५. अध इन्द्रिय=लिंगेन्द्रिय। राती=अनुरक्त।

७. अकाजा=हानि, विनाश। बोरैं=डुबोती हैं।

९. विकर्म=उलटे या बुरे। गलुका=बढ़िया स्वाद, चटोरपन।

ये पंच कठिन अति भाई। ये पंचौं देहि गिराई।
ये पंचौं किनहि न फेरा। नर करहिं उपाइ घनेरा ॥१०॥

दोहा

पंचौं किनहु न फेरिया, बहुते करहिं उपाइ।
सर्प सिंह गज बसि करैं, इन्द्रिय गही न जाइ ॥११॥

सखी

कोउ साधू यह गति जानैं। इन्द्रिय उलटी सब जानैं।
इनि श्रवन सुनैं हरिगाथा। तब श्रवना होहिं सनाथा ॥१२॥

हरि-दरशन कौं दृग जोवैं। ये नैन सफल तब होवै।
हरि-चरणकँवल रुचि घ्राणं। यह नासा सफल बखाणं ॥१३॥

इहि जिह्वा हरिगुन गावै। तब रसना सफल कहावै।
इहि अङ्ग संत कौं भेटैं। तब देह सफल दुख मेटैं ॥१४॥

कछु और न आनैं चीतैं। ऐसी बिधि इन्द्रिय जीतैं।
यह इन्द्रिय कौ उपदेशा। कोउ समुझै साधु संदेशा ॥१५॥

यह पँच इन्द्रिनि कौ ज्ञाना। कौ समुझै संत सुजाना।
जो सीखै सुनै रु गावै। सो रामभक्ति-फल पावै ॥१६॥

वेद-विचार

दोहा

वेद प्रगट ईश्वरवचन, ता महिं फेर न सार।
भेद लहैं सद्गुरु मिलै, तब कछु करै विचार ॥१॥

---

१०. किनहि=किसी ने भी। फेरा=क़ाबू में किया।

१२. इन्द्रिय उलटी सब जानैं=सब इन्द्रियों को उलट देना, अर्थात् बाह्य विषयों की ओर न जाने देकर अन्तर्मुखी कर लेना; वश में सब इन्द्रियों को कर लेना।

१३. घ्राणं=गन्ध।

१५. न आनैं चीतैं=मन में नहीं लाते।

१६. कौ=कोई बिरला। रु=अरु, और।

१. प्रगट=प्रत्यक्ष। फेर=अंतर, संशय। सार=साररूप। भेद लहैं=रहस्य प्राप्त कर लेने पर।

वेद बहुत बिस्तार है, नाना विधि के शब्द।
पढ़ते पार न पाइये, जो बीतैं बहु अब्द ॥२॥

एक वचन है पत्र सम, एक बचन है फूल।
एक बचन है फल समा, समझि देखि मति भूल ॥३॥

कर्म पत्र करि जानिये, मंत्र पुष्प पहिचानि।
अन्त ज्ञान फलरूप है, कांड तीन यौं ज्ञानि ॥४॥

बिषई देख्यो जगत सब, करत अनीति अधर्म।
इन्द्रियलंपट लालची, तिनहिं कहे विधि कर्म ॥५॥

ज्यौं बालक कै रोग है, औषध कटुक न खात।
मोदक वस्तु दिखाइकैं, औषध प्यावै मात ॥६॥

यौं सतकर्मनि कौं कहैं, निषिध छुड़ावन काज।
मूरख जानै सत्यकरि, सुख स्वर्गापुर राज ॥७॥

ज्यौं पशु हरहाई करहिं, खेत बिराने खाहिं।
खूटे बाँधे आनि सब, छूटि न कतहूँ जाहिं ॥८॥

वर्णाश्रम बंधेज करि अपने-अपने धर्म।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पुनि, शूद्र दिढ़ाये कर्म ॥९॥

जो शुभ कर्मनि कौं करै, तजै काम-आसक्ति।
सकल समर्प्यै ईश्वरहिं, तबही उपजै भक्ति ॥१०॥

पीछै बाधा कछु नहीं, प्रेममगन जब होइ।
नवधाऊ तब थकि रहै, सुधि बुधि रहै न कोइ ॥११॥

---

२. अब्द=वर्ष।

३. पत्र, फूल, फल=क्रमशः कर्म, भक्ति और ज्ञान से आशय है। समा=समान।

४. मंत्र=उपासना।

५. विधि कर्म=स्वर्ग-प्राप्ति कराने वाले यज्ञादि कर्म।

६. मोदक=लड्डू, रुचिकर।

७. निषिध=निषिद्ध, न करने योग्य।

८. हरहाई=हरयाली को चरकर उजाड़ देने की आदत। बिराने=दूसरे के।

९. दिढ़ाये=दृढ़ किये।

११. नवधा....रहै=नौ प्रकार की भक्ति भी उस अवस्था तक पहुँचने में असमर्थ हो जाती है।

तवही प्रगटै ज्ञान-फल, समझै अपनौं रूप।
चिदानन्द चैतन्यघन, ब्यापक ब्रह्म अनूप ॥१२॥

बेदवृक्ष यौं बरनियौ, याही अर्थ-विचार।
कर्मपत्र ताकैं लगैं, भक्तिपुष्प निरधार ॥१३॥

अद्भुत उपदेश

श्री गुरुरुवाच

दोहा

श्रवनं हरिचरचा सुनैं, एकअग्र जब होइ।
तबही भागै नाद-ठग, बंधन रहै न कोइ ॥१॥

नैनूँ हरि के दरस कौं, लोचहिं बारम्बार।
तबही भागै रूप-ठग, रहै न एक लगार ॥२॥

नथवा कौं यह रुचि रहै, हरि-चरणांबुज बास।
तबही भागै गंध-ठग, रहै न याके पास ॥३॥

रसनूँ हरि के नाम कौं, रटै अखंडित जाप।
तबही भागै स्वाद-ठग, कबहुँ न लागै ताप ॥४॥

चरमूं हरि के मिलन की, रुचि राखै सब जाम।
तबही भागै स्पर्श ठग, सरहिं सकल बिधि काम ॥५॥

सद्गुरु-महिमा निसांनी

दोहा

अद्भुत ख्याल रच्यौ प्रभू, बहुत भांति बिस्तार।
संत किये उपदेश कौं, पार-उतारनहार ॥१॥

---

२. लोचहिं=लालायित हों। लगार=आसक्ति।

३. नथवा=नाक। वास=सुगंध।

४. रसनूं=रसना, जिह्वा।

५. चरमूं=चर्म, त्वचा। जाम=प्रहर, समय। सरहिं=पूरे हों। काम=इच्छा।

१. ख्याल=लीला।

निसांनी

पार उतारनहार जी गुरु दादू आया।
जीवनि के उद्धार कौं हरि आपु पठाया ॥२॥

रामनाम उपदेश दे भ्रम दूरि उड़ाया।
ज्ञानभगति बैराग हू ये तीन दृढ़ाया ॥३॥

विमुख्र जीव सन्मुख किये हरिपंथ चलाया।
झूठ क्रिया सब छाड़िकै प्रभु सत्य बताया ॥४॥

माया मिथ्या सांपिनी जिनि सब जग खाया।
मुख तें मंत्र उचारिकैं उनि मृतक जिवाया ॥५॥

बूड़त काली धार में गहि नाव चढ़ाया।
पैली पार उतारिकैं निज पद पहुँचाया ॥६॥

परउपकारी हैं इसे मोटी निधि ल्याया।
जन्म जन्म की भूख थी सब जीव अघाया ॥७॥

दयावंत दुखमेटना सुखदायक भाया।
शीलवंत साचै मतै संतोष गहाया ॥८॥

रवि ज्यौं प्रगट प्रकाश मैं जिनि तिमिर मिटाया।
शशि ज्यौं शीतल है सदा रस अमृत पिवाया ॥९॥

अति गंभीर समुद्र ज्यौं तरवर ज्यौं छाया।
बानी बरिषै मेघ ज्यूं आनंद बढ़ाया ॥१०॥

चंदन ज्यौं लपटै बनी द्रुम नाम गमाया।
पारस जैसैं परस तैं कंचन ह्वै काया ॥११॥

चुंबक ज्यौं लोहा लगैं भृति अंगि लागया।
हीरा ज्यौं अति जगमगै निरमोल निपाया ॥१२॥

---

२. पठाया=भेजा।

४. सन्मुख किये=भगवान् की शरण में लाये।

६. पैली पार=उसपार, माया से परे। निज पद=ब्रह्मानुभूति की अवस्था।

७. इसे=ऐसी। मोटी=बहुत बड़ी, अनमोल। अघाया=तृप्त कर दिया।

८. भाया=प्रिय।

११. चंदन.......गमाया....कहते हैं कि चंदन जिस वृक्ष से लिपट जाता है उसे चंदन बना देता है, उसका फिर पहले का नाम नहीं रहता, वह तद्रूप हो जाता है।

१२. भृति=भरण-भोषण करके। निरमोल=अनमोल। निपाया=बना दिया।

कामधेनु चिंतामनी तरु कल्प कहाया।
सबकी पूरै कामनां जिनि जैसा ध्याया ॥१३॥

अडिग इसा है मेरु ज्यौं डौलै न डुलाया।
भूमि जिसा भारी खवां जिनि सहन सिखाया ॥१४॥

निर्मल जैसा नीर है मल दूर बहाया।
तेजवंत पावक जिसा भय-शीत नसाया ॥१५॥

पवन जिसा सब सारिखा को रंक न राया।
ब्यौम जिसा हृदये बड़ा कहुँ पार न पाया ॥१६॥

टेक जिसी प्रहलाद है ध्रुव ज्यौं मन लाया।
ज्ञान गह्यौ शुकदेव ज्यौ परब्रह्म दिखाया ॥१७॥

योग युगति गोरक्ष ज्यौं धंधा सुरझाया।
हद्द छाडि बेहद्द में अनहद्द बजाया ॥१८॥

जैसैं नाम कबीरजी यौं साधु कहाया।
आदि अंतलौ आइकैं रमि रांम समाया ॥१९॥

सद्गुरु-महिमा कहन कौं मैं बहुत लुभाया।
मुख मैं जिह्वा एक ही तातें पछिताया ॥२०॥

नमस्कार गुरुदेव कौं जिनि बंदि छुड़ाया।
दादू दीन दयाल का सुन्दर जस गाया ॥२१॥

दोहा

सद्गुरु की महिमा कही, मति अपनी उनमान।
सुन्दर अमित अनंत गुन, को करि सकै बखान ॥२२॥

---

१४. इसा=ऐसा। मेरु=सुमेरु पर्वत। जिसा=जैसा, समान। खवां=क्षमा। सहन=सहिष्णुता।

१६. सारिखा=सदृश। को=कोई। व्यौम=आकाश। बड़ा=उदार।

१७. मन लाया=चित्त लगाया।

१८. गोरक्ष=गोरखनाथ। धंधा=जगजाल; द्वैतबुद्धि।

१९. नाम=संत नामदेव। समाया=तल्लीन हो गया।

२२. मति उनमान=बुद्धि के अनुसार।

भ्रमविध्वंस अष्टक

दोहा

सुन्दर देख्या सोधिकैं सब काहू का ज्ञान।
कोई मन मानै नहीं, बिना निरंजन ध्यान ॥१॥

षट दरसन हम खोजिया, योगी जंगम शेख।
संन्यासी अरु सेवड़ा, पण्डित भक्ता भेख ॥२॥

त्रिभंगी

तौ भक्त न भावें, दूरि बतावें, तीरथ जावें फिरि आवें।
जी कृत्रिम गावें, पूजा लावें, झूठ दिढ़ावें बहिकावें॥
अरु माला नावें, तिलक बनावें, क्यौं पावें गुरुबिन गैला।
दादू का चेला, भरम-पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ॥३॥

तौ पंडित आये, बेद भुलाये, षटकरमाये त्रपताये।
जी संध्या गाये, पढ़ि उरझाये, रानाराये ठगि खाये॥
अरु बड़े कहाये, गर्व न जाये, राम न पाये थाघेला।
दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ॥४॥

तौ ए मत हेरे, सबहिन केरे, गहि गहि गेरे बहुतेरे।
तब सतगुरु टेरे, कानन मेरे, जाते फेरे आ घेरे॥
उन सूर सबेरे, उदै किये रे, सबै अँधेरे नाशेला।
दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ॥५॥

---

१. कोई मन मानै नहीं=किसी पर भी मन जमता नहीं।

२. षट दरसन=छह शास्त्र। सेवड़ा=जैन संन्यासी।

३. कृत्रिम=मनुष्य-निर्मित मूर्तियाँ। दिढ़ावें=विश्वास जमाते हैं। नावें=डालते या पहनते हैं। गैला=ईश्वर से मिलने का रास्ता; गेहला अर्थात् मूर्ख। भरम-पछेला=भ्रम अर्थात् अविद्या को पछाड़ देने वाला। न्यारा=अनासक्त।

४. षट करमाये=ब्राह्मणों के षट् कर्मों में लग गये (वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना ये षट् कर्म।) त्रपताये=तर्पण इत्यादि कर्म किये। थाघेला=पता लग गया।

५. गेरे=फेक दिये। घेरे=मोड़ लिया (सांसारिक विषयों की ओर से) सूर=सूर्य। नाशेला=नष्ट कर दिया।

छप्पय

सतगुरु मिले सुजान, श्रवन जिनि शब्द सुनाया।
सिर परि दीया हाथ, भरम सब दूरि उड़ाया॥
उपजा आतमज्ञान, ध्यान अभिअंतरि लागा।
किया ब्रह्म सौं नेह, जगत सौं तोरया तागा॥
तौ रामनाम दत पाइया छूटै वाद-विवाद तें।
अब सुन्दरदास सुखी भये, गुरु दादू-परसाद तें॥६॥

गुरु-उपदेश-ज्ञानाष्टक

दोहा

दादू सद्गुरु सीस पर, उर मैं जिनकौ नांम।
सुन्दर आये सरन तकि, तिन पायौ निज धाम॥१॥

बहे जात संसार मैं, सदगुरु पकरे केश।
सुन्दर काढ़े डूबते, दै अद्भुत उपदेश॥२॥

गीतक

उपदेश श्रवन सुनाइ अद्भुत हृदय ज्ञान प्रकाशियौ।
चिरकाल कौ अज्ञानपूरन सकल भ्रमतम नाशियौ॥
आनंददायक पुनि सहायक करत जन निःकाम हैं।
दादूदयाल प्रसिद्ध सदगुरु ताहि मोर प्रनाम हैं॥३॥

जिनिबचन-बान लगाइ उर मैं मृतक फेरि जिवाइया।
मुखद्वार होइ उचार करि निजसार अमृत पिवाइया॥
अत्यन्तकरि आनन्द मैं हम रहत आठौं जाम हैं।
दादूदयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं॥४॥

---

६. दीया=रखा। तागा=संबन्ध, आसक्ति। दत=निधि। परसाद=कृपा।

३. निःकाम=वासनारहित।

४. लगाइ=वेधकर। मृतक फेरि जिवाइया=अहंकार को मारकर आत्मा के अमृत पद का अनुभव कराया। होइ=से। निजसार=स्वरूप ज्ञान की अपरोक्षानुभूति। जाम=याम, पहर।

दोहा

सुन्दर सद्गुरु जगत मैं, परउपगारी होइ।
नीच ऊंच सब ऊधरै। सरनैं आवै कोइ ॥५॥

गीतक

जो आइ सरनैं होहि प्रापति ताप तिन तिनकी हरैं।
पुनि फेरि बदलैं घाट उनकौ जीव तैं ब्रह्महिं करैं॥
कहुँ ऊंच नीच न दृष्टि जिनकै सकल कौ बिश्राम हैं।
दादूदयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं ॥६॥

दोहा

सुन्दर सद्गुरु सहज मैं, कीये पैली पार।
और उपाय न तिर सकै, भवसागर संसार ॥७॥

गीतक

संसार-सागर महा दुस्तर ताहि कहि अब को तरै।
जो कोटि साधन करै कोऊ वृथा ही पचि-पचि मरै॥
जिनि बिना परिश्रम पार कीये प्रगट सुख के धाम हैं।
दादूदयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं ॥८॥

रामाष्टक

मोहिनी

आदि तुम ही हुते अवर नहिं कोइ जी।
अकह अति अगह अति बर्न नहिं होइ जी॥
रूप नहिं रेख नहिं श्वेत नहिं श्याम जी।
तुम सदा एकरस रामजी, रामजी ॥१॥

---

५. ऊधरै=उद्धार कर देता है। सरणैं=शरण में।

६. फेरि=पलटकर। घाट=रूप। विश्राम=शांति-स्थान।

७. पैली पार=अविद्या से परे।

१. अकह=अकथनीय, अवर्णनीय। अगह=जो मन और इन्द्रियों से ग्रहण न किया जा सके। बर्न=वर्णन।

प्रथम ही आप तैं मूल माया करी।
बहुरि वह कुर्व्वि करि त्रिगुन ह्वै बिस्तरी॥
पंच हू तत्व तैं रूप अरु नाम जी।
तुम सदा एकरस रामजी रामजी॥२॥

भ्रमत संसार कतहूँ नहीं वोर जी।
तीनहू लोक मैं काल कौ सोर जी॥
मनुषतन यह बड़े भाग्य तैं पाम जी।
तुम सदा एकरस रामजी रामजी॥३॥

पूरि दशहू दिशा सर्ब्ब मैं आप जी।
स्तुतिहि को करि सकै पुन्य नहिं पाप जी ॥
दास सुन्दर कहै देहु विश्राम जी।
तुम सदा एकरस रामजी रामजी॥४॥

आत्मा अचलाष्टक

कुण्डलिया

पानी चलस सदा चलै, चलैं लाव अरु बैल।
खांभी चलतौ देखिये, कूप चलै नहिं, गैल॥
कूप चलै नहिं गैल, कहैं सब कूवो चालै।
ज्यौं फिरतो नर कहै, फिरै आकाश पतालै॥
सुन्दर आतम अचल देह चालै, नहिं छांनी।
कूप ठौर कौ ठौर, चलत है चलस रूपांनी॥१॥

तेल जरै बाती जरै, दीपग जरै न कोइ।
दीपग जरता सब कहै, भारी अचरज होइ॥
भारी अचरज होइ, जरै लकरी अरु घासा।
अग्नि जरत सब कहैं, होइ यह बड़ा तमासा॥

---

२. कुर्ब्बि करि=अर्थ स्पष्ट नहीं होता है, तथापि सुन्दर-ग्रन्थावली के विद्वान् संपादक ने इसका अर्थ किया है 'विकृत या फैलना।'

३. बोर=अंत। सोर=शोर। पाम=पाते हैं।

१. चलस=चरस, तुरसा। लाव=चरस खींचने की रस्सी। खांभी=कहीं भी (सुं. ग्रं.)। गैल=गेहला, पागल। नहिं छांनी=छिपी हुई नहीं है, स्पष्ट है।

सुन्दर आतम अजर, जरै यह देह बिजाती।
दीपग जरै न कोइ, जरत है तेल रुबाती ॥२॥

सब कोऊ ऐसें कहैं, काटत हैं हम काल।
काल नास सबको करै, वृद्ध तरुन अरु बाल॥
वृद्ध तरुन अरु बाल, साल सबहिन कैं भारी।
देह आपुकौं जानि कहत हैं नर अरु नारी॥
सुंदर आतम अमर देह मरिहै घरखोऊ।
काटत हैं हम काल कहत ऐसें सब कोऊ ॥३॥

ज्ञान झूलनाष्टक

झूलना

कोई नीरै कहै कोई दूरि कहै, आपुहि नीरै न दूर है रे।
दिल भीतर बाहर एकसा है, असमान ज्यौं वो भरपूर है रे॥
अनुभव बिना नहिं जान सकै, निरसन्ध निरन्तर नूर है रे।
उपमा उसकी अब कौन कहै, नहिं सुन्दर चंद न सूर है रे ॥१॥

कोई योग कहै कोई जाग कहै, कोई त्याग वैराग बतावता है।
कोई नांव रटै कोई ध्यान ठटै, कोई खोजत ही थकिजावता है॥
कोई और हि और उपाव करै कोइ ज्ञान गिरा करि गावता है।
वह सुन्दर सुन्दर सुन्दर है कोई सुन्दर होइ सु पावता है ॥२॥

कहु कौन कहै कहु कौन सुनै, वह कहन सुनन तैं भिन्न है रे।
कहुँ ठौर नहीं कहुँ ठांव नहीं, कहुँ गांव नहीं तिन किन्न है रे॥

---

२. दीपग=दीपक, दीया। तमाशा=अद्भुत बात। अजर=न जलने वाला। विजाती=आत्मतत्त्व से सर्वथा भिन्न।

३. साल=कष्ट। घरखोऊ=हे आत्मघाती!

१. नीरै=निकट। आपुहि=आत्मा। असमान=आसमान, आकाश। निरसंध=बिना जोड़, अखण्ड। नूर=प्रकाश। सूर=सूर्य।

२. जाग=याग, यज्ञ। ठटै=लगाता है। ज्ञान गिरा करि=ज्ञानपूर्ण वाणी से। सुन्दर-सुन्दर है=सुन्दर से भी अधिक सुन्दर है; परमात्मा परमसौंदर्य की निधि है। सुन्दर होइ सु पावता है=जो हृदय से सुन्दर अर्थात् पवित्रात्मा हो वही उस परमसुन्दर प्रभु को पा सकता है।

३. तिन किन्न=उसका; 'सुन्दर ग्रन्थावली' में इसका यह अर्थ भी किया गया है, "तत्र

तहां शीत नहीं तहां घांम नहीं, तहां धांम न राति न दिन्न है रे।
तहां रूप नहीं तहां रेख नहीं, तहां सुन्दर कछू न चिन्न है रे ॥३॥

सहजानन्द

चौपाई

चिन्ह बिना सब कोई आये। इहां भये दोइ पन्थ चलाये ॥
हिंदू तुरक उठ्यौ यह भर्मा। हम दोऊ का छाड्या धर्मा ॥
नां मैं कृत्तम कर्म बखानौं। नां रसूल का कलमा जानौं ॥
नां मैं तीन ताग गलि नाऊँ। नां मैं सुन्नत करि बौराऊँ ॥
माला जपौं न तसबी फेरौं। तीरथ जाऊँ न मक्का हेरौं ॥
न्हाइ धोइ नहिं करूँ अचारा। ऊजू तैं पुनि हूवा न्यारा ॥
एकादशी न ब्रतहिं बिचारौं। रौजा धरौं न बंग पुकारौं ॥
देव पितर नहिं पीर मनाऊँ। धरती गड़ौं न देह जलाऊँ ॥१॥

दोहा

हिन्दू की हदि छाड़िकैं, तजी तुरक की राह।
सुन्दर सहजे चीन्हियां एकै राम अलाह ॥२॥

गृहवैराग बोध

रुचिरा

गृही कहै, जु सुनहु वैरागी, विरक्त भये सु काहे जू।
कै तुमसौं परमेश्वर रूसे, कै तुम काहू बाहे जू ॥१॥

कुत्र—तहाँ कहाँ यह उसमें नहीं है।'' चिन्न=चिह्न।

१. भर्मा=भ्रम, भेदभाव। कृत्तम=कृत्रिम, बनावटी, बाह्याडंबर। रसूल=पैगंबर मुहम्मद साहब। तीन ताग=जनेऊ। नाऊँ=डालता हूँ, पहनता हूँ। सुन्नत=मुसलमानी संस्कार, जिसमें मूत्रेन्द्रिय के अगले भाग का कुछ चमड़ा काट देते हैं। भीतरी अर्थ है आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन। बौराऊँ=बावला बनूँ। तसबी=तसबीह, माला जिसे मुसलमान फेरा करते हैं। हेरौं=ध्यान में नहीं लाता हूँ। ऊजू=वजू; नमाज़ पढ़ने से पहले हाथ मुँह धोने की क्रिया। बंग=बांग, अज़ान; नमाज़ पढ़ने से पहले मुल्ला मसजिद से ज़ोर-ज़ोर से 'अल्लाहो अकबर' की जो आवाज़ लगाता है उसे 'बाँग देना' कहते हैं।

२. चीन्हियां=पहचान लिया।

१. गृही=गृहस्थ। रूसे=नाराज़ हो गये। काहू बाहे=किसी ने निकाल बाहर कर दिया।

वैरागी बोलै, जु गृही सुनि, मेरे ज्ञान प्रकासा जू।
मिथ्या देखि सकल संसारा तातें भये उदासा जू॥२॥

गृही कहै, जु बुरी तुम कीनीं, कछू बिचार न आयौ जू।
जनक बसिष्ठ और पुनि साधनि तिन घर ही मैं पायौ जू॥३॥

बैरागी बौलै, जु गृही सुनि, विरक्त बहुत सुनाऊँ जू।
ऋषभदेव अरु भरत आदि दै केते और बताऊँ जू॥४॥

गृही कहै, जु त्रिया मृगनैनी कटि केहरि गजचाला जू।
अधरपान जिन कीयौ नांहीं तिनकै भाग न भाला जू॥५॥

वैरागी कहै, हाड़ चाम सब नैंननि झलकत पानी जू।
मज्जा मेद उदर मैं विष्ठा तहां न भूलै ज्ञान जू॥६॥

गृही कहै, जु चन्द्रबदनी त्रिय अंग-अंग छवि सोहै जू।
चन्दन-लेपन कुच-मंडल पर देव दानवा मोहै जू॥७॥

बैरागी कहै, नव द्वार मैं निशदिन नरक बहाई जू।
लोहू मांस कुचन कै भीतर ताकी कहा बड़ाई जू॥८॥

गृही कहै, जु बड़ौ गृहआश्रम जती तहाँ चलि आवै जू।
मत तौ तबही होइ सुनिश्चल भिक्षा भोजन पावै जू॥९॥

वैरागी कहै, धर्म देह कौ याही भांति बतायौ जू।
पंचदोष तेरे सब छूटैं, जती आइ कछु पायौ जू॥१०॥

विरक्तधर्म रहै जु गृही तें, गृही कौं विरक्त तारै जू।
ज्यौं वन करै सिंघ की रक्षा, सिंघ सु वनहिं उबारै जू॥११॥

---

२. प्रकासा=उदय हुआ। उदासा=विरक्त।

३. साधनि=संतों ने।

४. भरत=जड़भरत, जिनका। आख्यान श्रीमद्भागवत में आया है।

५. भाला=भला, अच्छा। तिनकै भाग न भाला=उनका भाग्य अच्छा नहीं, वे अभागे हैं।

६. मेद=मांस की अधिकता।

९. जती=यति। जती....आवै=संन्यासी भी गृहस्थ के द्वार पर आकर भिक्षा माँगता है।

१०. पंच दोष=गृहस्थी में नित्य ही लगने वाले पाँच पाप—चक्की और चूल्हे में, और झाडू देने में जीव-घात होना, ऊखल में धान कूटते समय जीव-हत्या हो जाना, तथा पानी के घड़े के नीचे जीवों का दबकर मर जाना।

११. उबारै=बचाता है, रक्षा करता है; (सिंह के डर से जंगल को काटने की हिम्मत नहीं पड़ती।)

विरक्त सु तौ भजै भगवन्तहिं, गृही सु ताकी सेवा जू।
अश्व के कान बराबर दोऊ, जती सती कौ भेवा जू ॥१२॥

गृह बैराग-बोध यहु कीनौं सुनियौ संत सुजाना जू।
सुन्दरदास जू भिन्न-भिन्न करि नीकी भांति बखाना जू ॥१३॥

हरिबोल चितावनी

दोहा

मेरी मेरी करत हैं, देखहु नर की भोल।
फिरि पीछे पछिताहुगे (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥१॥

किये रुपइया एकठे, चौकूंटे अरु गोल।
रीते हाथिन वै गये, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥२॥

चहलपहल-सी देखिकैं, मान्यौ बहुत अंदोल।
काल अचानक लै गयौ, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥३॥

सुकृत कोऊ ना कियौ, राच्यौ झंझट झोल।
अंति चल्यौ सब छाड़िकैं, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥४॥

मूंछ मरोरत डोलई, ऐंठ्यौ फिरत ठठोल।
ढेरी ह्वैहै राख की, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥५॥

पैंडो ताक्यौ नरक कौ, सुनि-सुनि कथा कपोल।
बूड़े काली धार मैं, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥६॥

माल मुलक हय गय घने, कामिनि करत कलोल।
कतहूँ गये बिलाइकैं (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥७॥

---

१२. सती=गृहस्थ से आशय है। भेवा=भेद।

१. भोल=भूल, भोलापन।

२. चौकूंटे=चार खूंट के याने चौकोर रुपये।

३. अंदोल=आनन्द-कलोल, मौज।

४. राच्यौ=रंग गया। झोल=टंटा।

५. ठठोल=हँसी-मज़ाक।

६. पैंडो=रास्ता। कपोल=झूठी।

७. गय=गज।

मोटे मीर कहावते, करते बहुत डफोल।
मरद गरद में मिलि गये, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥८॥

ऐसी गति संसार की, अजहूँ राखत जोल।
आपु मुये ही जानिहै, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥६॥

बांकि बुराई छाड़ि सब, गांठि हृदै की खोल।
बेगि बिलँब क्यौं बनत है, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥१०॥

हिरदै भीतर पैठिकरि, अंतःकरण बिरोल।
को तेरौ तू कौन कौ, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥११॥

तेरौ तेरे पास है, अपनैं माँहिं टटोल।
राई घटै न तिल बढ़ै, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥१२॥

सुन्दरदास पुकारिकैं, कहत बजायें ढोल।
चेति सकै तौ चेतिले, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥१३॥

तर्क चितावनी

चौपाई

पूरण ब्रह्म निरंजन राया। जिनि यहु नखसिख साज बनाया ॥
ता कहुं भूलि गये बिभचारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१॥

बालापन मंहिं भये अचेता। मात पिता सौं बाँध्यौ हेता ॥
प्रथमहिं चूके सुधि न सँभारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२॥

भयौ किशोर काम जब जाग्यौ। परदारा कौं निरखन लाग्यौ ॥
ब्याह करन की मनमहिं धारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥३॥

---

८. मोटे मीर=बड़े रईस। डफोल=डींग, आडंबर। गरद=धूल।

६. जोल=('सुन्दर-ग्रंथावली' के अनुसार) ज़ोर, शक्ति का घमंड।

१०. बांकि=बाँकापन।

११. बिरोल=मंथनकर।

१. राया=राजा, स्वामी। विभचारी=विषयानुरक्त, नास्तिक। अइया=अय, हे भाई। मनुषहुँ=मनुष्यत्व पाकर भी। बूझि तुम्हारी=तुम्हारी ऐसी समझ है (मूर्खता-पूर्ण)!

२. हेता=प्रेम, नाता।

मात पिता जोर्‌यो सनबंधा। कै कछु आपुहि कीयो धंधा॥
लैकरि पांस गरे महिं डारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी॥४॥

ता पीछे जोबन मदमाता। अति गति ह्वै बिषया सन राता॥
अपनी गनै न पर की नारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी॥५॥

गर्ब करै पुनि ऐंठ्यौ डौले। मुख तें जो भावै सो बोलै॥
लाज कानि सब पटकि पछारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी॥६॥

आठहुँ पहर बिषैरस भीनां। तन मन धन जुवती कौं दीनां॥
ऐसी बिषया लागी प्यारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी॥७॥

कामिनि संग रह्यौ लपटाई। मानहुं इहै मोक्ष हम पाई॥
कबहू नेक होइ जिनि न्यारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी॥८॥

जौ त्रिय कहै सु अति प्रिय लागै। निशिदिन कपि ज्यौं नाचत आगै॥
मारउ सहै सहै पुनि गारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी॥९॥

औरउ कर्म करै बहुतेरा। जन जन कै आगै हुइ चेरा॥
चोरी करै करै बटपारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी॥१०॥

ज्यौं त्यौंकरि कछु घर मैं आनैं। बनिता आगै दीन बखानैं॥
हौं तेरौ नित आज्ञाकारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी॥११॥

पुत्र पौत्र बंध्यौ परिवारा। मेरै मेरै कहै गँवारा॥
करत बड़ाई सभा मझारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी॥१२॥

उद्दिम करि-करि जोरी माया। कै कछु भाग्य लिख्यौ सो पाया॥
अजहूं तृष्णा अधिक पसारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी॥१३॥

ऐसैं करत बुढापा आया। तब काठी करि पकरी माया॥
कोड़ी खरचत कसकै भारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी॥१४॥

---

४. सनबंधा=विवाह-संबंध। पांस=पाश, फंदा।
५. अति गति=अत्यंत। सन=से।
६. कानि=मर्यादा, शील।
७. विषया=कामवासना।
८. जिनि=नहीं।
९. मारउ=मार भी।
१०. चेरा=दास। बटपारी=राहचलते डकैती।
११. दीन बखानैं=दीनता से बोलता है।
१४. काठी=लाठी।

मेरे बेटे पोते खैहैं। मेरी संची कोउ न लैहैं ॥
ईश्वर की गति कछु न विचारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१५॥

निपट वृद्ध जब भयौ शरीरा। नैंननि आवन लाग्यौ नीरा ॥
पौरी पर्‌यौ करै रखवारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१६॥

कानहु सुनै न आँखहुँ सूझै। कहै और की औरै बूझै ॥
अब तौ भई बहुत बिधि ख्वारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१७॥

बेटा बहू नजीक न आवै। तूँ तौ मति चल कहि समुझावै ॥
टूक देहि ज्यौं स्वान बिलारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१८॥

बकतौ रहै जीभ नहिं मौरै। मरिहुँ न जाइ खाटली तौरै ॥
तैं खखारि सब ठौर बिगारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१६॥

खिजिकरि उठै सुनै जब ऐसी। गारि देहि मुख भावै तैसी ॥
भौंडी रांड करकसा दारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२०॥

उठि न सकै कंपै कर चरना। या जीवन तैं नीकौ मरना ॥
तौहू मन मैं अति अहंकारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२१॥

अब तौ निकट मौति चलि आई। रोक्यौ कण्ठ पित्त कफ बाई ॥
जमदूतनि पासी बिस्तारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२२॥

निकसत प्रान सैन समुझावै। नारायन कौ नाम न आवै ॥
देखि सबन कौं आँसू ढारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२३॥

हंस बटाऊ किया पयाना। मृतक देखिकरि सबै डराना ॥
घर महिं तैं लै जाहु निकारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२४॥

---

१५. संची=जोड़ी हुई दौलत।

१६. पौरी=दरवाज़े के पास की कोठरी। रखवारी=घर की चौक़ीदारी।

१७. ख्वारी=बर्बादी, ख़राबी।

१८. टूक=रोटी का टुकड़ा। बिलारी=बिल्ली।

१६. जीभ नहिं मौरै=चुप भी नहीं होता। खाटली तौरै=चारपाई पड़े-पड़े तोड़ता है। खखारि=थूक-थूककर।

२०. भौंड़ी=फूहड़। दारी=स्त्री के लिए एक गाली।

२२. बाई=बात। पासी विस्तारी=फाँसी डालदी।

२३. सैन=आँख का इशारा।

२४. हंस बटाऊ=जीवात्मारूपी पथिक। पयाना=प्रयाण, कूच।

लोग कुटम्ब सबै मिलि आये। आपुन रोये और रुलाये॥
लैकर चाले धाह उचारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२५॥

लै मसान मैं आये जबही। कीये काठ एकठे सबही॥
अग्नि लगाइ दियौं तन जारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२६॥

संचि संचिकरि राखी माया। औरहिं दिया न आपु न पाया॥
हाथ झारि ज्यौं चल्यौ जुवारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२७॥

सुकृत न कियौ न राम संभार्‌यौ। ऐसौ जन्म अमोलिक हार्‌यौ॥
क्यौं न मुक्ति की पौरि उघारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२८॥

सकलसिरोमनि है नरदेहा। नारायन कौ निज घर येहा॥
जामहिं पइये देव मुरारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२९॥

चेति सकै सो चेतहु भाई। जिनि डहकाओ रामदुहाई॥
सुन्दरदास कहै जु पुकारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥३०॥

विवेक-चितावनी

चौपाई

माया मोह मांहि जिनि भूलै। लोग कुटंब देखि मत फूलै॥
इनकै संग लागि क्या जरना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना ॥१॥

मात पिता बन्धव किसकेरे। सुत दारा कोऊ नहिं तेरे॥
छिनक मांहिं सबसौं बीछरना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना ॥२॥

गृह कौ दुःख न बरन्यौ जाई। मानहु अग्नि चहूँ दिश लाई॥
तामैं कहु कैसी विधि ठरना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना ॥३॥

---

२५. धाह उचारी=धाड़ मारकर।

२७. संचि संचि=जोड़-जोड़कर। पाया=भोगा।

२८. संभार्‌यो=स्मरण किया। क्यौं न.....उघारी=मोक्ष का द्वार क्यों नहीं खोला? संसार से छूटने का उपाय क्यों नहीं किया?

२९. जामहिं=जिसमें।

३०. डहकाओ=अपने आप को धोखा दो। दुहाई=शपथ।

३. लाई=लगाई। ठरना=ठहरना।

या शरीर सौं ममता कैसी। याकी तौ गति दीसति ऐसी॥
ज्यौं पाले का पिंड पघरना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना॥४॥

मृत्यु पकरिकैं सबनि हिलावै। तेरी बारी नियरी आवै॥
जैसें पात वृक्षतें झरना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना॥५॥

देह खेह मांहें मिलि जाई। काक स्वान कै जंबुक खाई॥
तेल फुलेल कहा चोपरना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना॥६॥

क्षणभंगुर यहु तन है ऐसा। काचा कुंभ भरया जल जैसा॥
पलक मांहि बैठैं ही ढुरना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना॥७॥

मंदिर माल छोड़ि सब जाना। होइ बसेरा बीच मसाना॥
अंबर वोढ़न भूमि पथरना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना॥८॥

पाप पुन्य का ब्यौरा माँगै। कागद निकसै तेरै आगै॥
रती रती का ह्वैहै निरना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना॥६॥

काम क्रोध बैरी घट मांही। और कोऊ कहुँ बैरी नांही॥
रात दिवस इनहीं सौं लरना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना॥१०॥

मन कौं दंड बहुत बिधि दीजै। याही दगाबाज बसि कीजै॥
और किसी सेती नहिं अरना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना॥११॥

काचा पिंड रतह नहिं दीसै। यह हम जानी बिसवा बीसै॥
हरि सुमरन कबहूं न बिसरना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना॥१२॥

धरती मापि एक डगकरते। हाथौं ऊपर पर्वत धरते॥
केते गये जाहिं नहिं बरना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना॥१३॥

---

४. दीसति=दीखती है। पाले का पिंड=बरफ का गोला। पघरना=पिघल जाना।

५. हिलावै=झकझोरती है। नियरी=नज़दीक।

६. खेह=मिट्टी। जंबुक=सियार।

७. ढुरना=फूट जाना।

८. मंदिर=बड़ा मकान। माल=मिलकियत। अंबर=आकाश। वोढ़न=ओढ़ना। पथरना=बिछौना।

६. ब्यौरा=हिसाब। निरना=निर्णय, फैसला।

११. सेती=से, के साथ। अरना=लड़ना, संघर्ष करना।

१२. बिसवा बीसै=बीसविस्वे, पक्की तरह से।

आसन साधि पवन पुनि पीवै। कोटि बरसलगि काहि न जीवै ॥
अंत तऊ तिनकौ घट परना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना ॥१४॥

जुदा न कोई रहनै पावै। होइ अमर जो ब्रह्म समावै ॥
सुन्दर और कहूँ न उबरना। समुझि देखि निश्चैकरि मरना ॥१५॥

पवंगम

पिय कै बिरह बियोग भई हूँ बावरी।
शीतल मंद सुगंध सुहात न बावरी ॥
अब मुहि दोष न कोइ परौंगी वावरी।
(परि हां) सुन्दर चहुँ दिश बिरह सु घेरी बावरी ॥१॥

पिय नैंननि की वोर सैंन मुहि दे हरी।
फेरि न आये द्वार न मेरी देहरी ॥
बिरह सु अंदर पैठि जरावत देहरी।
(परि हां) सुन्दर बिरहिन दुखित सीख का दे हरी ॥२॥

दूभर रैनि बिहाय अकेली से जरी।
जिनकै संगि न पीव बिरहनी से जरी ॥
बिरहै संकल वाहि बिचारी से जरी।
(हरि हां) सुन्दर दुःख अपार न पाऊँ से जरी ॥३॥

---

१४. पवन पीवै=प्राणायाम करता है। घट परना=शरीर गिर जाता है।

१५. उबरता=बचता है।

इन पवंगम छन्दों में 'यमक अलंकार' का चमत्कार दिखाया गया है। अर्थ करने में कहीं-कहीं पर 'सुन्दर-ग्रन्थावली' का आधार लिया गया है।

१. बावरी=इसके क्रमशः ४ अर्थ किये जाते हैं– (१) बावली याने पगली (२) वायु + अरी, (३) बावड़ी (अब मुझे कोई दोष न देना, मैं बावड़ी में गिरकर प्राण दे दूँगी), (४) भौंरी (अर्थात् विरहे की भौंर में फँस गई हूँ)।

२. वोर=ओर। देहरी=इसके क्रमशः ४ अर्थ किये जाते हैं–
(१) दे हरी, अर्थात् आँखों से इशारा देकर मेरा मन हर लिया, (२) देह + ली, (३) देह(शरीर) को री सखी, (४) देती है + अरी।

३. दूभर=कठिन। सेजरी=इसके क्रमशः ४ अर्थ किये जाते हैं–
(१) शय्या + री, अरी, (२) से (वे) + जरी, अर्थात् जल गई, (३) वे विरहिणी स्त्रियाँ विरह की साँकल से जड़ी याने जकड़ दी गई, (४) से (वह) जरी याने जड़ी-बूटी।

अड़िला

सुन्दर बिरहनि बिरहै वारी। प्रीति करत किनहू नहिं वारी।
पिय कौं फिरी बाग अरु वारी। अब तौ आइ पहूँची वारी ॥१॥

मैं तौ प्रीति करत नहिं जानां। पीव सु लै वाये नहिं जानां।
निशदिन बिरह जरावत जानां। सुन्दर अब पिय ही पै जानां ॥२॥

अब सखि अपना मन बसि करना। वह तौ पिय किस ही कै कर ना।
अपनी खुसी करै सौ करना। तौ सुन्दर किस ही का कर ना ॥३॥

घर मैं बहुत भई जब माया। तब तौ फूल्यौ अंग न माया।
बहुरि त्रिया सौं बांधी माया। सुन्दर छाड़ि जगत की माया ॥४॥

खैंचि कमरि सौं बांधा पटका। अधपति हुवा बैठि करि पटका।
काल अचानक मार्‍या पटका। सुन्दर पकरि जिमी सौं पटका ॥५॥

जामैं हुतौ सबनि कौ भागा। भांडा सोई भ्रम का भागा।
अब तौ मस्तक जाग्यौ भागा। सुन्दर छाड़ि जगत कौं भागा ॥६॥

जौ तौ तू प्रभुजी कौ चरना। तौ तूं भयौ बिमुख हरिचरना।
अब तूं पहिरि कमरि मैं चरना। सुन्दर इत उत फिरि कछु चरना ॥७॥

इन अड़िला छंदों में यमक अलंकार का चमत्कार दिखाया गया है। अर्थ लगाने में 'सुन्दर-ग्रन्थावली' का आधार लिया गया हे।

१. वारी=क्रमशः ४ अर्थ—(१) जलादी, (२) रोकी, (३) बाड़ी, वाटिका, (४) समय, घड़ी।

२. जानां=क्रमशः ४ अर्थ—(१) जाना, समझा (२) यान, सवारी, (३) जान, प्राण, (४) चले जाना है।

३. करना=क्रमशः ४ अर्थ—(१) करना है, (२) हाथ में + नहीं (३) करने योग्य, कर्तव्य, (४) महसूल या दण्ड + नहीं।

४. माया=क्रमशः ४ अर्थ—(१) संपत्ति, (२) समाया, (३) प्रीति, (४) झगड़ा, मोह।

५. पटका=क्रमशः ४ अर्थ—(१) कमरबंद, (२) पाट, राजसिंहासन, (३) चाँटा, थप्पड़, (४) गिराया।

६. भागा=क्रमशः ४ अर्थ—(१) हिस्सा, (२) फूट गया, (३) भाग्य, (४) भाग गया, विरक्त हो गया।

७. चरना=क्रमशः ४ अर्थ=(१) दास, (२) चरणों से, (३) कमरबंद (तैयार हो जा) (४) चल याने भटक + नहीं।

इन मड़िल्ला छन्दों में भी यमक अलंकार का चमत्कार दिखाया गया है। अर्थ लगाने में 'सुन्दर-ग्रन्धावली' से सहायता ली गई है।

मड़िल्ला

बंधन भयौ प्रीति करि रामा। मुक्त होइ जौ सुमिर रामा।
निशदिन याही करै बिचारा। सुन्दर छूटै जीव बिचारा ॥१॥

औरहिं दई न आपुन खाई। माया धरी खोदिकर खाई।
मेल्ही रही सूम की थाती। सुन्दर दी आगै कौं थाती ॥२॥

जौ तूं देहि धर्णी कौं लेखा। तौ तूं जो जानै सो लेखा।
जौ तोपै नहिं आवे जाबा। तौ सुन्दर टूटेगी जाबा ॥३॥

अधो सीस ऊरध कौं पाया। राज पाट कछु चाहै पाया।
भीतरि भर्या कुबुधि सौं भांडा। सुन्दर राम बिनां है भांडा ॥४॥

जो सब तें हूवा बैरागी। सो क्यौं होइ देह बैरागी।
निशदिन रहै ब्रह्म सौं राता। सुन्दर सेत पीत नहिं राता ॥५॥

कथा कहै बहु भांति पुराणी। नीकी लागै बात पुराणी।
दोष जाइ जब छूटै रागा। सुन्दर हरि रीझै सो रागा ॥६॥

बरवै

सबकेहू मनभावन सरस बसंत।
करत सदा कौतूहल कामिनि कंत ॥१॥

---

१. रामा=(१) स्त्री, (२) राम। विचारा=(१) विचार, चिंतन, (२) बेचारा, असहाय।

२. खाई=(१) भोगी (२) गढ्ढा। थाती=(१) धरोहर, (२) जमा पूँजी।

३. धणी=मालिक, ईश्वर। लेखा=(१) हिसाब, (२) ले. खा=लेकर खाले; कर्मों का नाश करदे। जाबा=(१) जवाब, (२) जबाड़ी (दण्ड मिलेगा)।

४. अधो=नीचे को। ऊरध=ऊर्ध्व, ऊपर को। पाया=(१) पैर, (२) प्राप्त करना चाहे। भांडा=(१) बर्तन, (२) कलंकित।

५. वैरागी=(१) विरक्त, (२) विशेषरूप से रागी, अर्थात् अनुरागी। राता=(१) अनुरक्त, (२) लाल।

६. पुराणी=(१) पुराणों की, (२) प्राचीन रागा=(१) राग, विषयासक्ति, (२) राग, गायन; प्रेम।

१. कामिनि=जीवात्मा से आशय है। कंत=परमात्मा से आशय है। कौतूहल=अनुराग-लीला।

झूलत बैसि हिंडोरनि पिय कर संग।
उत्तम चीर बिराजल भूषन अंग॥२॥

निशदिन प्रेम-हिंडुलवा दिहल मचाइ।
सेई नारि सभागिनि झूलइ जाइ॥३॥

सज्जन मिलिकैं गावल मंगलचार।
प्रेम-प्रकाश दशौं दिश भय उजियार॥४॥

सुखनिधान परमातम आतम अंस।
मुदित सरोवर महिंयां क्रीड़त हंस॥५॥

एक सेजवर कामिनि लागलि पाइ।
पिय कर अंगहि परसत गइल बिलाइ॥६॥

रस महिंया रस होइहि नीरहिं नीर।
आतम मिलि परमातम खीरहिं खीर॥७॥

सरिता मिलइ समुद्रहिं भेद न कोइ।
जीव मिलइ परब्रह्महि ब्रह्मइ होइ॥८॥

इह अध्यातम जानहुँ गुरुमुख दीस।
सुन्दर सरस सुनावल बरवै बीस॥९॥

---

२. विराजल=शोभित।

३. दिहल मचाइ=मचा दिया, झुला दिया। सेई=वही। सभागिनि=सुहागिन।

४. सज्जन=साजन, प्रियतम।

५. परमातम-आतम अंस=परमात्मा की अंशरूप आत्मा। महियां=मध्य में। हंस=शुद्ध मुक्त आत्मा से आशय है।

६. गइलबिलाइ=तद्रूप हो गई।

७. खीरहिं खीर=दूध में दूध जैसे मिल जाये।

९. दीस=दिया हुआ। बरवै बीस=श्री सुन्दरदासजी के रचे बीस बरवै छंद। २० छंदों में से केवल ९ छंद यहाँ लिये गये हैं।

सवैया

गुरदेव कौ अंग

इन्दव

धीरजवंत अडिग्ग जितेन्द्रिय निर्मल ज्ञान गह्यौ दृढ़ आदू।
शील संतोष क्षमा जिनकैं घट लागि रह्यौ सु अनाहद नादू॥
भेष न पक्ष निरंतर लक्ष जु और नहीं कछु वाद-विवादू।
ये सब लक्षन हैं जिन मांहि सु सुन्दर कै उर है गुरु दादू॥१॥

कोउक गोरख कौं गुरु थापत कोउक दत्त दिगम्बर आदू।
कोउक कंथर कोउ भरथ्थर कोउ कबीर कोउ राखत नादू॥
कोउ कहै हरदास हमारे जु यौं करि ठानत वादविवादू।
और तौ संत सबे सिरि ऊपर सुन्दर कै उर है गुरु दादू॥२॥

मनहर

काहू सौं न रोष तोष काहू सौं न रोग दोष,
काहू सौं न बैरभाव काहू की न घात है।
काहू सौं न बकवाद काहू सौं नहीं बिषाद,
काहू सौं न संग न तौ कोउ पक्षपात है॥
काहू सौं न दुष्ट बैन काहू सौं न लैन-दैन,
ब्रह्म कौ बिचार कछु और न सुहात है।
सुन्दर कहत सोई ईशनि कौ महाईश,
सोई गुरदेव जाकै दूसरी न बात है॥३॥

गुरुदेव कौ अंग

१. अडिग्ग=निश्चल, संकल्पवाले। आदू=आदि से ही, सनातन से। घट=अंतर में। अनाहद नादू=अनाहत शब्द, जिसे योगी समाधि की अवस्था में सुनता है। भेष=संप्रदाय विशेष का वेश।

२. दत्त=दत्तात्रेय। आदू=आदिनाथ। कंथर=कंथरनाथ नामक एक महायोगी। भरथ्थर=भर्तृहरि। हरदास=निरंजनी पंथ के आचार्य हरिदास। सिरि ऊपर=प्रणम्य, वंदनीय।

३. तोष=रीझ। दोष=द्वेष। संग=आसक्ति। बैन=वचन। लेन-देन=मतलब, स्वार्थ। विचार=निरूपण; ध्यान।

गोविंद के किये जीव जात हैं रसातल कौं
गुरु उपदेश सु तौ छूटैं जमफंद तें।
गोविंद के किये जीव बस परे कर्मनि कैं,
गुरु के निवाजे सो फिरत हैं स्वच्छंद तें॥
गोविंद के किये जीव बूड़त भौसागर मैं,
सुन्दर कहत गुरु काढ़े दुखद्वंद तें।
औरऊ कहांलौ कछु मुख तें कहैं बताइ,
गुरु की तौ महिमा अधिक है गोविन्द तें॥४॥

उपदेश-चितावनी कौ अंग

हंसाल

तौ सही चतुर तू जान परबीन अति परै जिनि पंजरै मोह-कूवा॥
पाइ उत्तम जनम लाइलै चपल मन गाइ गोबिंद गुन जीति जूवा॥
आपुही आपु अज्ञान-नलनी बँध्यौ बिना प्रभु बिमुख कै बार मूवा॥
दास सुन्दर कहै, परमपद तौ लहै "राम हरि राम हरि बोलि सूवा" ॥१॥

अवल उस्ताद के कदम की खाक हो हिरस बुगुजार सब छोड़ि फैंना॥
यार दिलदार दिल माहिं तूं याद कर, है तुझी पास तूं देखि नैंना॥
जान का जान हैं जिंद का जिंद है, सखुन का सखुन कछु समुझि सैंना॥
दास सुंदर कहै, सकल घट मैं रहै, "एक तूं एक तूं बोलि मैंना" ॥२॥

---

४. किये=रचे हुए। रसातल=नरक से आशय है। निवाजे=कृपा किये हुए, उद्धार किये हुए। स्वच्छन्द=निश्चिन्त; आत्मस्थित। बूड़त=डूबते हैं।

उपदेश-चितावनी कौ अंग

१. पंजरै=देहरूपी पिंजड़े में। मोह-कूवा=अविद्यारूपी कूआँ। लाइलै=लगाले। नलनी बंध्यो=नली को पकड़े हुए है। मूवा=मरा। सूवा=जीव से आशय है।

२. अवल उस्ताद=सद्गुरु। खाक=धूल की तरह तुच्छ। हिरस=वासना। बुगुजार=त्यागदे। फैना=छलछन्द। जिंद=जिंदगी। सखुन=ज्ञानोपदेश से आशय है। सैना=सैन, संकेत (गुरु का)। मैना=जीवात्मा से आशय है।

मनहर

बारू कै मंदिर मांहिं बैठि रह्यौ थिर होइ,
राखत है जीवने की आसा कैऊ दिन की।
एल पल छीजत घटत जात घरी घरी,
बिनसत बार कहा खबरि न छिन की॥
करत उपाय झूठै लैन-दैन खान-पान,
मूसा इतउत फिरै ताकि रही मिनकी।
सुन्दर कहत मेरी मेरी करि भूल्यौ शठ,
"चंचल चपल माया भई किन-किन की" ॥३॥

श्रवनूं लै जाइ करि नाद की लै डारै पासि,
नैंनवा लैजाइ करि रूप बसि कर्‌यौ है।
नथुवा लैजाइ करि बहुत सुंघावै फूल,
रसनूं लैजाइ करि स्वाद मन हर्‌यौ है॥
चरनूं लैजाइ करि नारी सौं सपर्श करै,
सुन्दर कोउक साध ठगनि तैं डर्‌यौ है।
काम ठग क्रोध ठग लोभ ठग मोह ठग,
ठगनि की नगरी मैं जीव आइ पर्‌यौ है॥४॥

जोबन कौ गयौ राज और सब भयौ साज,
आपुनि दुहाई फेरि दमामौ बजायौ है।
लकुटी-हथ्यार लिये, नैंननिं कौं ढाल दीये,
सेत बार भये ताकौ तंबू सौ तनायौ है॥
दसन गये सु मानौ दरबान दूरि कीये,
जौंगरी परी सु और बिछौना बिछायौ है।
सीस कर कंपत सुन्दर निकार्‌यौ रिपु,
देखत ही देखत बुढ़ापौ दौरि आयौ है॥५॥

---

३. कैऊ=कितने ही, बहुत अधिक। छीजत=क्षीण होता जाता है। मूसा=चूहा; जीव से आशय है। मिनकी=बिल्ली; मृत्यु से आशय है।

४. नाद=मोहक प्रिय शब्द। पासि=फाँसी, मोहिनी। नथुवा=नाक। रसनूं=रसना, जिह्वा। सपर्श=स्पर्श। कोउक=कोई विरला।

५. और सब भयौ साज=सारा रंग और से कुछ और ही हो गया। दमामौ=नगाड़ा। नैननि की ढाल दिये=आँखों पर ढक्कन दे दिया; अंधा हो गया। दूरि कीये=निकाल बाहर

इंदव

कौन कुबुद्धि भई घट अंतर तूं अपनौ प्रभु सौं मन चौरै।
भूलि गयौ बिषयासुख मैं सठ लालच लागि रह्यौ अति थौरै॥
ज्यौं कोउ कंचन छार मिलावत लै करि पाथर सौं नग फौरै।
सुन्दर या नरदेह अमोलिक "तीर लगी नवका कत बौरै" ॥६॥

मनहर

झूठौ जग ऐन सुन नित्य गुरु बैंन देखै,
आपुनेहू नैंन तोऊ अंध रहे ज्वानी मैं।
केते राव राजा रंक भये रहे चलि गये,
मिलि गये धूर मांही आये ते कहानी मैं॥
सुन्दर कहत अब ताहि न सुरत आवै,
चेते क्यौं न मूढ़ चित लाय हिरदानी मैं।
भूले जन दाव जात लोह कौ सौ ताव जात,
आव जात ऐसे जैसें नावजात पानी मैं ॥७॥

काल-चितावनी कौ अंग

इंदव

ये मेरे देश बिलाइति हैं गज ये मेरे मंदिर या मेरी थाती।
ये मेरे मात पिता पुनि बंधव ये मेरे पूत सु ये मेरे नाती॥
ये मेरि कामिनि केलि करै नित ये मेरे सेवक हैं दिनराती।
सुन्दर वैसैंहि छाड़ि गयौ सब, तेल जर्‌यो रु बुझी जब बाती ॥१॥

किये। जौंगरी परी=खाल ढीली पड़कर सिमट गई। बिछोना=अंतकाल की सेज से तात्पर्य है। रिपु=काम, क्रोध, मोह आदि परास्त कर देने वाले शत्रु, यह आशय है।

६. मन चौरै=मन को चुराता है। छार=राख, धूल। नग=रत्न। तीर......बौरै=किनारे पर लगी नाव को क्यों डुबा रहा है? तात्पर्य यह कि नर-देह पाकर मोक्ष तेरे लक्ष्य में होते हुए भी विषयों में फँसकर तू क्यों अपने जीवन को विफल कर रहा है?

७. ऐन=वस्तुतः, असल में। अन्ध=कामान्ध। ज्वानी=जवानी, यौवन। आये तो कहानी में=उनके किस्से ही रह गये। हिरदानी=हृदय। दाव=(मोक्ष-साधन का) अवसर। आव=आयु।

काल-चितावनी कौ अंग

१. थातीं=धरोहर, पूँजी। तेल=आयु के दिनों से आशय है। बाती=जीव की अवधि से

संत सदा उपदेश बतवात, केश सबै सिर सेत भये हैं।
तूं ममता अजहूँ नहिं छाड़त मौतिहू आइ संदेश दये हैं॥
आज कि काल्हि चलै उठि मूरख तेरेहि देखत केते गये हैं।
सुन्दर क्यौं नहिं राम सँभारत या जग मैं कहि कौन रये हैं॥२॥

मनहर

मेरौ देह मेरौ गेह मेरौ परिवार सब,
मेरौ धन माल मैं तौ बहुबिधि भारौ हौं।
मेरौ सब सेवक हुकम कोउ मेटै नांहि,
मेरी जुवती कौ मैं तौ अधिक पियारौ हौं॥
मेरौ बंश ऊंचौ मेरे बाप दादा ऐसे भये,
करत बड़ाई मैं तौ जगत-उज्यारौ हौं।
सुन्दर कहत, मेरौ मेरौ करि जानैं सठ,
ऐसी नहिं जानौ मैं तौ "काल ही कौ चारौ हौं" ॥३॥

देहात्म-विछोह कौ अंग

इन्दव

वै श्रवना रसना मुख वैसेहि नासिका वैसेहि वैसेहि अंखी॥
वै कर वै पग वै सब द्वार सु वै नख सीस हि रोम असंखी॥
वैसें हि देह परी पुनि दीसत एक बिना सब लागत खंखी॥
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह "बोलत हो सु कहाँ गयौ पंखी" ॥१॥

मनहर

देह तौ प्रगट महिं ज्यौं कौ त्यौंहीं जानियत,
नैंन के झरोखे मांहि झाँकत न देखिये।

तात्पर्य है।

२. सँभारत=स्मरण करता है। रये=रहे।

३. ऊंचौ=बड़ा महान्। ऐसे=इतने महान्। उज्यारौ=प्रख्यात। चारौ=ग्रास।

देहात्म-बिछोह कौ अंग

१. अंखी=आँखें। दीसत=दिखती हैं। खंखी=खोखली, सारहीन। पंखी=पक्षी; जीव से आशय है।

नाक के झरौखे मांहि नैकु न सुबास लेत,
कान के झरौखे मांहिं सुनत न लेखिये ॥
मुख के झरौखे मैं बचन न उचार होत,
जीभ हू कौ षटरस स्वाद न बिशेखिये।
सुन्दर कहत कोउ कौंन बिधि जानै ताहि,
कारौ पीरौ काहू द्वार जातौहू न पेखिये ॥२॥

तृष्णा कौ अंग

इन्दव

जौ दस बीस पचास भये सत होहिं हजारिन लाख मँगैगी ॥
कोटि अरब्ब खरब्ब असंखि पृथ्वीपति हौन की पाह जगैगी ॥
स्वर्ग पताल कौ राज करौं तृसना अधिकी अति आगि लगैगी ॥
सुन्दर एक संतोष बिना सठ ''तेरी तौ भूख न क्यौंहु भगैगी'' ॥१॥

क्यौं जग मांहि फिरै झख मारत स्वारथ कौंन परी जिहिं जोलै ॥
ज्यौं हरिहाइ गऊ नहिं मानत दूध दुह्यौ कछु सो पुनि ढोलै ॥
तू अति चचंल हाथ न आवत नीकसि जाइ नहीं मुख बोलै ॥
सुन्दर तोहि कह्यौ बर केतक 'हे तृष्णा अब तूं मति डोलै'' ॥२॥

अधीर्य उराहने कौ अंग

इन्दव

पेटहि कारण जीव हतै बहु पेटहि मांस भखै रु सुरापी ॥
पेटहि लैकरि चोरी करावत पेटहि कौं गठरी गहि कापी ॥

---

२. प्रगट=प्रत्यक्ष। झरौखे=द्वार; इन्द्रिय। सुबास=सुगंध। काहू=किसी भी। जातौहू न पेखिये=निकलते हुए भी देखने में नहीं आता है।

तृष्णा कौ अंग

१. मँगैगी—(तृष्णा) माँगैगी, चाहेगी। पाह=तीव्र चाह। लगैगी=लगायगी। क्यौंहु=किसी भी तरह।

२. जौले=अर्थ स्पष्ट नहीं होता है। हरिहाइ=हरा खेत चरने वाली स्वच्छंद गाय। ढोलै=लुढ़का या ढुलका देती है। बर केतक=कितनी ही बार।

पेटहि पासि गरे महिं डारत पेटहि डारत कूपहु बापी ॥
सुन्दर काहेकौं पेट दियौ प्रभु ''पेट सौ और नहीं कोउ पापी'' ॥१॥

विश्वास कौ अंग

इन्दव

धीरज धारि बिचार निरंतर तोहि रच्यौ सु तौ आपुहि ऐहै ॥
जेतक भूख लगी घट प्राणहि तेतक तूं अनयासहि पैहै ॥
जौ मन मैं तृष्णा करि धावत तौ तिहुँ लोक न खात अघैहै ॥
सुन्दर तूं मति सोच करै कछु ''चंच दई सोइ चूंनिहु दैहै'' ॥१॥

मनहर

जगत मैं आइ तैं बिसार्‌यौ है जगतपति,
जगत कियौ है सोई जगत भरतु है।
तेरै चिंता निशदिन औरई परी है आइ,
उद्यम अनेक भांति भांति के करतु है ॥
इत उत जाइकैं कमाइकरि ल्याऊँ कछु,
नैकु न अज्ञानी नर धीरज धरतु है।
सुन्दर कहत, एक प्रभु कौ विश्वास बिन,
बादिकै वृथा ही सठ पचिकै मरतु है ॥२॥

अधीर्य उराहने कौ अंग

१. हतै=वध करता है। रु=और। सुरापी=शराब पीनेवाला। कापी=काटी। पासि=फाँसी। बापी=बावड़ी।

विश्वास कौ अंग

१. ऐहै=आ पहुँचेगा। जेतक, जितनी। तेतक=उतना। अनयासहि=बिना ही प्रयत्न के। पैहै=पायेगा। चंच=चोंच; मुहँ। चूंनि=चून; खाने की वस्तु।
२. वादिकै=व्यर्थ प्रयास करके।

देह-मलीनता गर्व-प्रहार कौ अंग

मनहर

जा शरीर माहिं तूं अनेक सुख मानि रह्यौ,
ताही तूं विचारि यामैं कौंन बात भली है।
मेद मज्जा मांस रग-रगनि मांहिं रकत,
पेट हू पिटारी सी मैं ठौर ठौर मली है॥
हाड़नि सौं मुख भर्‌यौ हाड़ि ही कै नैंन नाक,
हाथ पांव सोऊ सब हाड़ ही की नली है।
सुन्दर कहत, याहि देखि जिनि भूलै कोइ,
"भीतरि भंगार भरी ऊपर तैं कली है" ॥१॥

इंदव

थूक रु लार भर्‌यौ मुख दीसत आंखि मैं गींज रु नाक मैं सेढ़ौ।
औरउ द्वार मलीन रहैं नित हाड़ के मांस के भीतरि वेढ़ौ॥
ऐसौं शरीर मैं बास कियौ तब एक से दीसत बांभन ढेढ़ौ।
सुंदर गर्व कहा इतने पर "काहे कौं तूं नर चालत टेढ़ौ" ॥२॥

शृंगार-निंदा कौ अंग

कुण्डलिया

'रसिकप्रिया' 'रस-मंजरी' और 'सिंगार' हि जानि।
चतुराई करि बहुत बिधि बिषैं बनाई आंनि॥
बिषै बनाई आंनि लगत बिषियन कौं प्यारी।
जागै मदन प्रचण्ड सराहैं नखसिख नारी॥

देह-मलीनता गर्व-प्रहार कौ अंग

१. रग रगनि माहिं=एक-एक नस में। मली=मैला ही। जिनि=नहीं। भंगार=कचरा, तुच्छ चीज़। कली=कलई।

२. गींज=कीचड़। सेढ़ौ=नाक का मैल। बेढ़ौ=जाल, उलझन। ढेढ़ौ=अछूत। टेढ़ौ=ऐंठता हुआ।

ज्यौं रोगी मिष्ठान्न खाइ रोगहि बिस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ जु तौ 'रसिकप्रिया' धारै ॥१॥

दुष्ट कौ अंग

इंदव

आपुन काज सँवारन के हित और कौ काज बिगारत जाई।
आपुन कारज होउ न होउ बुरौ करि और कौ डारत भाई॥
आपुहु खोवत औरहु खोवत खोइ दुवों घर देत बहाई।
सुन्दर देखत ही बनि आवत दुष्ट करैं नहिं कौंन बुराई ॥१॥

मन कौ अंग

मनहर

देखिबे कौं दौरै तो अटकि जाइ वाही वोर,
सुनिबे कौं दौरै तो रसिक-सिरताज है।
सूंघिबे कौं दौरै तो अघाइ न सुगंध करि,
खाइबे कौ दौरै तो न धापै महाराज है॥
भोगहू कौं दौरै तो तृपति नहीं क्यौंहूँ होइ,
सुन्दर कहत, याहि नैकहूँ न लाज है।

शृंगार-निंदा कौ अंग

१. 'रसिकप्रिया'=महाकवि केशवदास का रचा नायिकाभे का प्रसिद्ध रीति-ग्रन्थ। 'रस-मंजरी=शृंगाररस-प्रधान एक संस्कृत ग्रन्थ। 'सिंगार'='रंस-मंजरी' का भाषान्तर, जिसका पूरा नाम 'सुन्दर-शृंगार' है। इसे आगरे के सुन्दर कवि ने रचा था=(देखो सुन्दर-ग्रन्थावली—खंड २, पृष्ठ—४३६) विषै=शृंगारविषय, जो वास्तव में विषरूप है। विस्तारै=बढ़ाता है।

स्वामी सुन्दरदासजी ने इन शृंगार रसात्मक रीति-ग्रन्थों का खण्डन कर शान्तरस की श्रेष्ठता ओजस्वी शब्दों में प्रतिपादित की है।

दुष्ट कौ अंग

१. सँवारन के हित=बनाने के लिए। देत बहाई=नाश कर देता है।

काहू कौ कह्यो न करै आपुनी ही टेक परै,
''मन सौ न कोऊ हम जान्यौ दगाबाज है'' ॥१॥

इंदव

कौन सुभाव पर्‌यौ उठि दौरत अंमृत छाड़ि चचोरत हाड़े।
ज्यौं भ्रम की हथिनी दृग देखत आतुर होइ परै गज खाड़े॥
सुन्दर तोहि सदा समुझावत एकहु सीख लगै नहिं राँड़े।
बा दि वृथा भटकै निशबासर रे मन, तूं भ्रमबौ किन छाड़े ॥२॥

जौ मन नारि की वोर निहारत तौ मन होत है ताहिकौ रूपा।
जौ मन काहु सौं क्रोध करै जब क्रोधमई होइ जात तद्रूपा॥
जौ मन माया हि माया रटै नित तौ मन बूड़त माया के कूपा।
सुन्दर जौ मन ब्रह्म विचारत तौ मन होत है ब्रह्मस्वरूपा ॥३॥

मनहर

तो सौ रे कपूर कोऊ कतहूँ न देखियत,
तो सौ न सपूत कोऊ देखियत और है।
तूं ही आपु भूलि महानीच हूँ तें नीच होइ,
तूं ही आपु जाने तें सकल सिरमौर है॥
तूं ही आपु भ्रमै, तब भ्रमत जगत देखै,
तेरै थिर भये सब ठौर ही कौ ठौर है।
तूं ही जीवरूप तूं ही ब्रह्म है आकाशवत,
सुन्दर कहत, मन तेरी सब दौर है ॥४॥

मन कौ अंग

१. वोर=ओर। धापै=अघाता है।

२. चचोरत=चूसता है। भ्रम की=कृत्रिम, झूठी। खाड़े=गढ़े में। राँड़े=रांड़ के को अर्थात् हरामज़ादे मन को; अथवा, रांड़ सीख।

३. वो=ओर। ताहि को रूपा=नारीमय। कूपा=कुआँ।

४. आप भूलि=स्वरूप को भूलकर विषयों में प्रवृत्त हो जाने पर। आपु जानेतें=आत्मस्वरूप का ज्ञान हो जाने से। थिर=स्थिर, अचंचल। ठौर ही को ठौर=शान्त से भी शान्त। आकाशवत्=शून्य के जैसा। दौर=प्रवृत्ति, प्रताप।

चाणक कौ अंग

मनहर

मेघ सहै शीत सहै शशि परि घाम सहै,
कठिन तपस्या करि कन्दमूल खात है।
जोग करै जज्ञ करै तीरधऊ व्रत करै,
पुण्य नाना बिधि करै मन में सिहात है॥
और देवी देवता उपासना अनेक करै,
आँबन की हौंस कैसैं अकडोडे जात है।
सुन्दर कहत, एक रवि के प्रकाश बिन,
जैंगनैं की जोति कहा रजनी बिलात है॥१॥

इंदव

ग्रेह तज्यौ अरु नेह तज्यौ पुनि खेह लगाइकै देह सँवारी।
मेघ सहे सिर सीत सह्यौ तनु धूप समै जु पंचागनि बारी॥
भूख सही रहि रूख तरै परि सुन्दरदास सहे दुख भारी।
डासन छाड़िकै कांसन ऊपर ''आसन मार्‌यौ पै आस न मारी'' ॥२॥

वचन-विवेक कौ अंग

मनहर

बोलिये तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ,
न तौ मुख मौन करि चुप होइ रहिये।
जोरियेऊ तब जब जोरिबौऊ जानि परै,
तुक छंद अरथ अनूप जामैं लहिये॥

चाणक कौ अंग

१. सिहात है=प्रसंसा करता है। आँबन.....जात है=आम चूसने की चाह आक के फलों से कैसे पूरी हो सकती है? देवी-देवताओं की उपासना करने से ब्रह्म-प्राप्ति भला कैसे हो सकती है? जैंगनैं=जुगनू। कहा रजनी बिलात है=क्या रात का अंधेरा दूर हो सकता है?

२. खेह=भस्म। पंचागनि बारी=पाँच अँगीठियाँ जलाकर गर्मी के दिनों में आसन मारकर जप करने के लिए बैठना। रूख तरै=वृक्ष के नीचे। डासन=बिस्तर। कांसन=कुश। आसन मार्‌यौ=सिद्धासन आदि लगाया। आस न मारी=आशा को वश में नहीं किया।

गाइयेऊ तब जब गाइबे कौ कंठ होइ,
श्रवण के सुनत ही मन जाइ गहिये।
तुकभंग छन्दभंग अरथ मिलै न कछु,
सुन्दर कहत, ऐसी बानी नहिं कहिये ॥१॥

एकनि के बचन सुनत अति सुख होइ,
फूल से झरत हैं अधिक मनभाँवने।
एकनि के बचन अशम मानौ बरषत,
श्रवण कै सुनत लगत अलखांवने ॥
एकनि के वचन कंटक कटु विषरूप,
करत मरम छेद दुखउपजांवने।
सुन्दर कहत, घट घट में बचन-भेद,
उत्तम मध्यम अरु अधम सुनांवने ॥२॥

पतिव्रता कौ अंग

इंदव

होइ अनन्य भजै भगवंतहि और कछू उर मैं नहिं राखै।
देविय देव जहाँलग हैं डरिकै तिनसौं कहुँ दीन न भाखै ॥
योगहु यज्ञ ब्रतादि क्रिया तिनकौं नहिं तौ सुपनैं अभिलाखै।
सुन्दर अंमृत पान कियौ तब तौ कहि कौन हलाचल चाखै ॥१॥

मनहर

जल कौ सनेही मीन बिछुरत तजे प्राण,
मणि बिन अहि जैसैं जीवत न लहिये।
स्वांतिबूँद के सनेही प्रगट जगत मांहिं,
एक सीप दूसरौ सु चातकऊ कहिये ॥

वचन-विवेक कौ अंग

१. जोरियेऊ तब=कविता भी तभी रचनी चाहिए। मन जाइ गहिये=मन मुग्ध हो जावे। बानी=वाणी; रचना।

२. भांवने=प्यारे। अशम=पत्थर। अलखाबने=अप्रिय। मरम=मर्मस्थान; अंतर। छेद=घाव। घट-घट=प्राणी-प्राणी में।

रवि कौ सनेही पुनि कँवल सरोवर मैं,
ससि कौ सनेहीऊ चकोर जैसें रहिये।
तैसें ही सुन्दर एक प्रभु सौं सनेह जोरि,
और कछु देखि काहू वोर नहिं बहिये ॥२॥

शब्दसार कौ अंग

इंदव

कार उहै अविकार रहै नित, सार रहै जु असारहि नाखै।
प्रीति उहै जु प्रतीति धरै उर, नीति उहै जु अनीति न भाखै॥
तन्त उहै लगि अन्त न टूटत, सन्त उहै अपनों सत राखै।
नाद उहै सुनि बाद तजै सब स्वाद उहै रस सुन्दर चाखै ॥१॥

सोवत सोवत सोइ गयौ सठ रोवत रोवत कै बर रोयौ।
गोवत गोवत गोइ धर्यौ धन खोवत खोवत तैं सब खोयौ॥
जोवत जोवत बीति गये दिन बोवत बोवत लै बिष बोयौ।
सुन्दर सुन्दर राम भज्यौ नहिं, ढोवत ढोवत बोझहि ढोयौ ॥२॥

सूरातन कौ अंग

मनहर

सुनत नगारे चोट विगसै कँवलमुख,
अधिक उछाइ फूल्यौ माइहू न तन मैं।
फिरै जब सांगि तब कोऊ नहिं धीर धरै,
काइर कंपाइमान होत देखि मन मैं॥

पतिव्रता कौ अंग

२. काहू वोर नहिं बहिये=किसी दूसरे की ओर मन नहीं जाने देना चाहिए।

शब्दसार कौ अंग

१. कार=कार्य। उहै=वही। नाखै=फेंकदे। लगि अंत=अंततक, जीवनभर। रस=ब्रह्मरस से आशय है।

२. बर=बार। गोवत=छिपाते हुए। बोझ=सांसारिक कर्मों का भार।

टूटिकैं पतंग जैसें परत पावक मांहि,
ऐसें टूटि परै बहु सावंत के गन मैं।
मारि घमसांण करि सुन्दर जुहारै स्याम,
सोई सूरबीर रुपि जाइ रन मैं ॥१॥

सूरबीर रिपु कौ निमूनौ देखि चौट करै,
मारै तब ताकि करि तरवारि तीर सौं।
साधु आठौ जाँम बैठौ मन ही सौं युद्ध करै,
जाकै मुहँ माथौ नहिं देखिये शरीर सौं॥
सूरबीर भूमि परै दौर करै दूरिलगैं,
साधु शून्य कौं पकरि राखै धरि धीर सौं।
सुन्दर कहत, तहाँ काहू के न पाव टिकैं,
"साधु कौ संग्राम है अधिक सूरबीर सौं" ॥२॥

काम सौ प्रबल महा जीते जिनि तीनौं लोक,
सुतौ एक साधु कै बिचार आगै हार्‍यौ है।
क्रोध सौ कराल जाकें देखत न धीर धरै,
सोउ साधु क्षमा कै हथ्यार सौं बिदार्‍यौ है॥
लोभ सौ सुभट साधु तोष सौं गिराइ दियौ,
मोह सौ नृपति साधु ज्ञान सौं प्रहार्‍यौ है।
सुन्दर कहत, ऐसौ साधु कोउ सूरवीर,
ताकि ताकि सबहि पिशनुदल मार्‍यौ है ॥३॥

सूरातन कौ अंग

१. नगारै=नगाड़े पर। बिगसै=प्रफुल्लित हो जाये। माइ=समाये। फिरै=चले। सांगि=बड़ा भाला। सावंत=सामंत। जुहारै स्याम=युद्ध जीतकर शाम को जो अपने स्वामी को प्रणाम करता है। रुपि रहै=पैर जमाकर दृढ़ रहता है।

२. निमूनौ=नमूना; सामने, साक्षात्। जाकै मुहँ........शरीर सौं=जिस मन का न मुहँ, न सिर है, न शरीर है; निराकार। दूरिलगैं=दूरतक। शून्य कौं पकरि राखै=शरीर रहित सूक्ष्म मन को पकड़कर क़ाबू में रखता है।

३. जिनि=जिस काम ने। विचार=विवेक; संयम। जाकें=जिसे। बिदार्‍यौ=चीर डाला। तोष=संतोष। पिशुन दल=दुष्ट मनोविकारों से आशय है।

साधु कौ अंग

इन्दव

जो कोउ आवत है उनकैं ढिंग, ताहिं सुनावत शब्द-सँदेसौ।
ताहिकै तैसिहि ओषद लावत, जाहिकै रोगहि जानत जैसौ॥
कर्म-कलंकहि काटत हैं सब, सुद्ध करैं पुनि कंचन तैसौ।
सुन्दर वस्तु विचारत हैं नित, संतनि कौ जु प्रभाव है ऐसौ॥१॥

मनहर

धूलि जैसो धन जाकै सूलि से संसार-सुख,
भूलि जैसो भाग देखै अंत की सी यारी है।
पाप जैसी प्रभुताई साँप जैसौ सनमान,
बड़ाई हू बीछनी सी नागनी सी नारी है॥
अग्नि जैसौ इन्द्रलोक बिघ्न जैसौ बिधिलोक,
कीरति कलंक जैसी, सिद्धि सींटि डारी है।
बासना न कोऊ बाकी ऐसी मति सदा जाकी,
सुन्दर कहत, ताहि बन्दना हमारी है॥२॥

साँचौ उपदेश देत, भली भली सीख देत,
समता सुबुद्धि देत, कुमति हरत हैं।
मारग दिखाइ देत, भावहू भगति देत,
प्रेम की प्रतीति देत, अभरा भरत हैं॥
ज्ञान देत, ध्यान देत, आतम-विचार देत,
ब्रह्म कौं बताइ देत ब्रह्म मैं चरत हैं।
सुन्दर, कहत जग सन्त कछु देत नांहिं,
''सन्तजन निशदिन देबौई करत हैं'' ॥३॥

साधु कौ अंग

१. वस्तु विचारंत है=आत्मतत्त्व का निरूपण तथा मनन करते हैं।

२. भूलि जैसो भाग देखौ=भाग्य को जो गलत समझता है। अंत की सी यारी=संसारी मित्रता को जो मृत्यु के समान मानता है। नारी=कामवासना से तात्पर्य है। सींटि डारी है=तुच्छ मानकर त्याग दिया है। ताहि=उस साधु पुरुष को।

३. मारग=मोक्ष का रास्ता। अभरा=अपूर्ण। चरत हैं=विचरण करते हैं; लीन रहते हैं। कहत

अपने भाव कौ अंग

मनहर

आपुही कौ भाव सु तौ आपुकौं प्रगट होत,
आपुही आरोप करि आपु मन लायौ है।
देवी अन्य देव कौऊ भाव कै उपासै ताहि,
कहै, 'मैं तौ पुत्र धन इनही तैं पायौ है'॥
जैसे स्वान हाड़ कौं चचोरि करि मानै मोद,
आपुही कौ मुख फोरि लोहू चाटि खायौ है।
तैसें ही सुन्दर यह आपुही चेतनि आहि,
आपुने अज्ञानकरि औरसौं बँधायौ है॥१॥

स्वरूप-विस्मरण कौ अंग

इन्दव

जैसैंहि पावक काठ के योग तें काठ सौ होय रह्यौ इकठौरा।
दीरघ काठ मैं दीरघ लागत, चौरे से काठ मैं लागत चौरा॥
आपुनौ रूप प्रकाश करै जब जारि करै तब और कौ औरा।
तैसैंहि सुन्दर चेतनि आपु सु आपुकौं नाहिंन जानत बौरा॥१॥

जग......करत हैं=दुनिया का यह कहना कि संतजन अकिंचिन होने के कारण किसीको कुछ भी नहीं देते, सही नहीं है। वे बहुत बड़े धनी हैं, कितनी ही चीजें वे सबको देते ही रहते हैं।

अपने भाव कौ अंग

१. आपुकौं=अपने में, अपने प्रति। भाव कै उपासै=भक्तिपूर्वक उपासना करता है। चचोरि=चूस-चूसकर। चेतनि=चैतन्य, आत्मस्वरूप। और सौं=माया से।

स्वरूप-विस्मरण कौ अंग

१. इकठौरा=तद्रूप, बिल्कुल वैसा ही। दीरघ=बड़ा, लंबा। चौरा=चौड़ा। बौरा=बावला, पागल।

मनहर

देह ही सुपुष्ट लगै, देह ही दूबरी लगै,
देह ही कौं शीत लगै देह ही कौं तावरौ।
देह ही कौं तीर लगै देह कौं तुपक लगै,
देह कौं कृपान लगै देह ही कौं घावरौ॥
देह ही स्वरूप लगै देह ही कुरूप लगै,
देह ही जोबन लगै देह वृद्ध डावरौ।
देह ही सौं बाँधि हेत आपु विषै मानि लेत,
सुन्दर कहत, ऐसौ बुद्धिहीन बावरौ॥२॥

विचार कौ अंग

मनहर

देहई कौं आपु मानि देहई सौ होइ रह्यौ,
जड़ता अज्ञान तम शूद्र सोई जांनिये।
इन्द्रिनि के ब्यापारनि अत्यंत निपुनि बुद्धि,
तमो रज दुहुँ करि वैश्यहू प्रमानिये॥
अंतहकरण मांहि अहंकार-बुद्धि जाकै,
रजोगुण बर्द्धमान क्षत्री पहिचांनिये।
सत्त्वगुणबुद्धि एक आतमा-विचार जाकै,
सुन्दर कहत, वह ब्राह्मन बखांनिये॥१॥

रामानंदी होइ तौ तूँ तुच्छानंद त्यागकरि,
रामनाम भजि रामानंद ही कौं ध्याइये।

---

२. तावरौ=घाम, गर्मी। घावरौ=घाव, चोट। स्वरूप=सुन्दर। डावरौ=बालक। देह ही सौं.. ....मानि लेत=देह के साथ संबंध जोड़कर उसे आत्मा के साथ का संबंध मान लेता है। वस्तुतः न तो जड़ देह के साथ संबंध बन सकता है, और न निर्लिप्त आत्मा के ही साथ संबंध का होना संभव है।

विचार कौ अंग

१. ई=ही। देहई सौ होइ रह्यौ=वस्तुतः आत्मतत्त्व होते हुए भी अपनेको देहरूप मानकर जो जड़ देह जैसा बन गया है। व्यापारनि=कर्मों में। वर्द्धमान=बढ़ा हुआ। आतमा-विचार=आत्मज्ञान।

निंबादिती होइ तौ तूँ कामना कटुक त्यागि,
अंमृत कौ पान करि अधिक अघाइये॥
मध्वाचारी होइ तौ तूँ मधुर मत कौं बिचारि,
मधुर मधुर धुनि हृदै मध्य गाइये।
विष्णुस्वामी होइ तौ तूँ व्यापक विष्णु कौं जानि,
सुंदर विष्णु कौं भजि विष्णु मैं समाइये॥२॥

ब्रह्म निःकलंक कौ अंग

मनहर

एक कोऊ दाता गाइ ब्राह्मण कौं देत दान,
एक कोऊ दयाहीन मारत निशंक है।
एक कोऊ तपस्वी तपस्या मांहि सावधान,
एक कोऊ कामी क्रीड़ै कामिनी कै अंक है॥
एक कोऊ रूपवंत अधिक विराजमान,
एक कोऊ कोढ़ी कोढ़ चूवत करंक है।
आरसी मैं प्रतिविंब सबह कौ देखियत,
सुन्दर कहत, ऐसै ब्रह्म निःकलंक है॥१॥

आत्मानुभव कौ अंग

इन्दव

है दिल मैं दिलदार सही अँखियाँ उलटी करि ताहि चितइये।
आब मैं खाक मैं बाद मैं आतस जान मैं सुन्दर जानि जनइये॥

---

२. रामानन्दी=स्वामी रामानन्द के संप्रदाय का वैरागी साधु; राम में ही आनन्द माननेवाला। तुच्छानन्द=तुच्छ विषयों में आनन्द माननेवाला। निंबादिती=निंबादित्य या निंबार्क स्वामी के संप्रदाय का अनुयायी। कामना=विषय-वासना। अमृत=हरिभक्ति-सुधा। मध्वाचारी=स्वामी मध्वाचार्य के संप्रदाय का अनुयायी। विष्णुस्वामी=विष्णुस्वामि के संप्रदाय का अनुयायी। यहाँ चारों वैष्णव संप्रदायों के अनुयायियों का सच्चे अर्थ में निरूपण किया गया है।

ब्रह्म निःकलंक कौ अंग

१. क्रीड़ै=काम-केलि करता है। करंक=शरीर। आरसी=दर्पण। जिस प्रकार दर्पण पर सुरूप-कुरूप किसी भी प्रतिविंब का कोई अच्छा-बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है, उसी प्रकार ब्रह्म की सत्ता में कुछ घटित होते हुए भी ब्रह्म सबसे निर्लेप बना रहता है।

नूर मैं नूर है तेज मैं तेज है ज्योति मैं ज्योति मिलें मिलि जइये।
क्या कहिये कहते न बनै, कछु जो कहिये कहतेही लजइये ॥१॥

जासौं कहूँ 'सब मैं वह एक' तौ सो कहै, कैसो है, आँखि दिखइये।
जौ कहूँ 'रूप न रेख तिसै कछु' तौ सब झूठ कै मानें कहइये ॥
जौ कहूँ सुन्दर 'नैंननि माँझि तौ नैनहूँ बैन गये पुनि हइये।
क्या कहिये कहते न बनै कछु जो कहिये कहते ही लजइये ॥२॥

ज्ञानी कौ अंग

इन्दव

ज्ञान प्रकाश भयौ जिनके उर वे घट क्यूं हि छिपे न रहैंगे।
भोडल मांहि दुरै नहिं दीपक यद्यपि वे मुख मौंन रहैंगे ॥
ज्यूं घनसारहि गोप्य छिपावत तौहि सुगन्धि सु तज्ञ लहैंगे।
सुन्दर और कहा कोउ जानत बूठे की बात बटाऊ कहैगें ॥१॥

मनहर

विधि न निषेध कछु भेद न अभेद पुनि,
क्रिया सौ करत दीसै यौंही नितप्रति है।
काहू कौं निकट राखै काहू कौं तौ दूरि भाषै,
काहू सौं नीरे न दूर ऐसी जाकी मति है ॥
राग ही न दोष कोऊ शोक न उछाह दोऊ,
ऐसी बिधि रहै कहूं रति न बिरति है।

आत्मानुभव कौ अंग

१. उलटी करि=अंतर्मुखी करके; विषयों की ओर से उलटकर आत्मस्वरूप पर स्थिर करके। ताहि=परमात्मतत्त्व को। खाक=मिट्टी, पृथिवी तत्त्व। बाद=हवा। आतस=अग्नि, तेज। नूर=प्रकाश।

२. तौ सो=उसको। झूठ्के मानैं=झूठी मान्यता। हइये=हैही।

ज्ञानी कौ अंग

१. भोडल=अबरक। घनसार=कपूर। तज्ञ=जानकार, पारखी। बूठे की=रास्ते पर चले जानेवाले की। बटाऊ=राहगीर।

बाहिर ब्यौहार ठानै मन मैं स्वपन जानै,
सुन्दर ज्ञानी की कछु अदभुत गति है ॥२॥

ज्ञानी लोकसंग्रह कौं करत ब्यौहार-बिधि,
अंतहकरण मैं सुपन की सी दौर है।
देत उपदेश नाना भांति के बचन कहि,
सब कोउ जानत सकल-सिरमौर है ॥
हलन चलन पुनि देह सौं करावत है,
ज्ञान में गरक नित लिये निज ठौर है।
सुन्दर कहत, जैसें दंत गजराज मुख
"खाइबे कै ओरई दिखाइबे के और है" ॥३॥

निरसंशै कौ अंग

इंदव

कै यह देह सदा सुख सम्पति कै यह देह बिपत्ति परौ जू।
कै यह देह निरोग रहौ नित कै यह देहहि रोग चरौ जू ॥
कै यह देह हुतासन पैठहु कै यह देह हिंवारै गरौ जू।
सुन्दर संशय दूरि भयो सब, कै यह देह जिवौ कि मरौ जू ॥१॥

प्रेमपराज्ञान ज्ञानी कौ अंग

प्रीति की रीति नहीं कछु राखत जाति न पांति नहीं कुल-गारौ।
प्रेम कै नेम कहूँ नहिं दीसत लाज न कांनि लग्यौ सब खारौ ॥

---

२. क्रिया सौ करत दीसै=बाहर से ऐसा दीखता है मानों कर्म कर रहा हो। नीरै=समीप। दोष=द्वेष। उछाह=उत्साह, आनन्द। रति=प्रीति। स्वपन=स्वप्न की तरह मिथ्या।

३. लोक-संग्रह=लोकोपकार। ब्यौहार=लौकिक कर्म। दौर=क्रिया। गरक=मग्न। निज ठौर=स्वरूप में स्थिति।

निरसंशै कौ अंग

१. रोग चरौ=रोगग्रस्त हो जाये। हुतासन पैठहु=आग में जल जाये। हिवारै=हिमालय में। गरौ=गल जाये।

प्रेमपराज्ञान ज्ञानी कौ अंग

१. गारौ=गाली, अपवाद, निंदा। कानि=मर्यादा। अभिअंतर=अन्तःकरण। पैंडौ=रास्ता। न्यारौ=निराला।

लीन भयौ हरि सौं अभिअंतर आठहुँ जाम रहै मतवारौ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह ''गोकुल गाँव कौं पैंडौ ही न्यारौ ॥१॥

द्वंद्व बिना बिचरै बसुधापरि जा घट आतमज्ञान अपारौ।
काम न क्रोध न लोभ न मोह न राग न दोष न म्हारौ न थारौ॥
योग न भोग न त्याग न संग्रह देहदशा न ढक्यौ न उघारौ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह ''गोकुल गाँव कौ पैंडौ ही न्यारौ'' ॥२॥

जगन्मिथ्या कौ अंग

मनहर

कहत है देह मांहि जीव आइ मिलि रह्यौ,
कहां देह कहां जीव वृथा चौंकि पर्‌यौ है।
बूड़िबे कै डर तें तिरन कौ उपाइ करै,
ऐसैं नहिं जानै यह मृगजल भर्‌यौ है॥
जेवरी कौ साँपु जैसैं, सीप बिषै रूपौ जानि,
और कौ औरइ देखि यौंही भ्रम कर्‌यौ है।
सुन्दर कहत यह एकई अखंड ब्रह्म,
ताहीकौं पलटिकैं जगत नाम धर्‌यौ है ॥१॥

साखी
सुमरण कौ अंग

सुन्दर सद्‌गुरु यौं कह्या सकल-सिरोमनि नाम।
ताकौं निसदिन सुमरिये, सुखसागर सुखधाम ॥१॥

---

२. द्वन्द्व=द्वैतभाव; राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि। दोष=द्वेष। म्हारौ थारौ=मेरा-तेरा, यह भेद-भाव। उघारौ=नंगा।

जगन्मिथ्या कौ अंग

१. मृगजल=मरीचिका का भासमान जल, वस्तुतः जो जल नहीं है। जेवरी=रस्सी। विषै=में। रूपौ=चाँदी। और कौ औरइ=वस्तुतः कुछ है, पर दिखाई देता है भ्रम से कुछ दूसरा ही उपाधि के आरोप से।

तात्पर्य यह कि सत्तामात्र निरुपाधि ब्रह्म की ही है, जगत् उसमें भासमान है, जगत् की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, वह मिथ्या है-'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।'

राम नाम बिन लैन कौं और वस्तु कहि कौन।
सुन्दर जप तप दान व्रत, लागे खारे लौन ॥२॥

राम नाम पीयूष तजि, बिष पीवै मतिहीन।
सुन्दर डोलै भटकते, जन जन आगे दीन ॥३॥

सुन्दर सुरति समेटिकैं सुमिरन सौं लैलीन।
मन बच क्रम करि होत हैं, हरि ताके आधीन ॥४॥

सुमिरन ही मैं शील है, सुमरिन मैं संतोष।
सुमिरन ही तें पाइये सुन्दर जीवन-मोष ॥५॥

बिरह कौ अंग

मारग जीवै बिरहनी, चितवै पिय की वोर।
सुन्दर जियरै जब नहीं, कल न परत निसभोर ॥१॥

सुन्दर बिरहीन मरि रही, कहूं न पइये जीव।
अंमृत पान कराइकै, फेरि जिवाबै पीव ॥२॥

बिरह-बघूरा लै गयौ चित्तहिं कहूँ उड़ाइ।
सुन्दर आवै ठौर तब, पीय मिलैं जब आइ ॥३॥

बिरहा दुखदाई लग्यौ, मारै ऐंठि मरोरि।
सुन्दर बिरहनि क्यौं जिवै, सब तन लियौ निचोरि ॥४॥

सुन्दर बिरहनि अधजरी, दुक्ख कहै मुख रोइ।
जरिबरिकैं भस्मी भई, धुवाँ न निकसै कोइ ॥५॥

सुमरण कौ अंग

३. पीयूष=अमृत। विष=विषयरूपी विष।

४. सुरति=लौ, ध्यान। समेटिकैं=एकाग्र करके। क्रम=कर्म से।

५. मोष=मोक्ष।

बिरह कौ अंग

१. वोर=ओर। जक=शांति। भोर=सेवरा; यहाँ दिन से आशय है।

३. बघूरा=बवंडर। ठौर=अपना स्थान; शान्ति-पद।

सब कोई रलियाँ करैं, आयौ सरस बसंत।
सुन्दर बिरहनि अनमनी, जाकौ घर नहिं कंत ॥६॥

साई तूं ही तूं करौं, क्यौंही दरस दिखाव।
सुन्दर बिरहनि यौं कहै, ज्यौंही त्यौंही आव ॥७॥

जिस विधि पीव रिझाइये, सो विधि जानी नांहि।
जोवन जाइ उतावला, सुन्दर यहु दुख मांहि ॥८॥

लालन मेरा लाड़िला, रूप बहुत तुझ मांहिं।
सुन्दर राखै नैन मैं, पलक उघारै नांहिं ॥९॥

सुन्दर बिगसै बिरहनी, मन मैं भया उछाह।
फूल बिछाऊँ सेजरी, आज पधारैं नाह ॥१०॥

बंदगी कौ अंग

दोहा

सुन्दर अंदर पैसिकरि, दिल मौं गोता मारि।
तौ दिल ही मौं पाइये, सांई सिरजनहार ॥१॥

जिस बंदे का पाकदिल, सो बंदा माकूल।
सुन्दर उसकी बंदगी, सांई करै कबूल ॥२॥

हर दम हर दम हक्क तूं, लेइ धनी का नांव।
सुन्दर ऐसी बंदगी पहुँचावै उस ठांव ॥३॥

---

६. रलियाँ=रंगरेलियाँ, मौज। अनमनी=उदास।

७. क्यौंही=किसी भी तरह। ज्यौंही त्यौंही=कैसे भी हो।

८. जाइ उतावला=बड़ी जल्दी-जल्दी भाग रहा है। माहिं=मन में।

९. पलक उघारै नाहिं=पलक इसलिए नहीं खोलता, कि कहीं आँखों के अन्दर से निकलकर भाग न जाये।

१०. बिगसै=प्रफुल्लित हांती हैं। नाह=स्वामी।

बंदगी कौ अंग

१. पैसिकरि=पैठकर। मौं=में, अंदर।

२. माकूल=योग्य। बंदगी=सेवा।

मुखसेती बंदा कहै, दिल मैं अति गुमराह।
सुन्दर सो पावै नहीं, सांई की दरगाह ॥४॥

मैं ही अति गाफिल हुई, रही सेज पर सोइ।
सुन्दर पिय जागै सदा, क्यौंकरि मेला होइ ॥५॥

जौ जागै तौ पिय लहै, सोये लहिये नांहिं।
सुन्दर करिये बंदगी, तौ जाग्या दिल मांहिं ॥६॥

पतिव्रत कौ अंग

दोहा

सुन्दर और कछू नहीं, एक बिना भगवंत।
तासौं पतिब्रत राखिये, टेरि कहैं सब संत ॥१॥

जौ पिय कौ व्रत ले रहै, कन्तपियारी सोइ।
अंजन मंजन दूरि करि, सुन्दर सनमुख होइ ॥२॥

सुन्दर प्रभु की चाकरी, हाँसी खेल न जानि।
पहलै मन कौं हाथ करि, पीछै पतिव्रत ठानि ॥३॥

उपदेश-चितावनी कौ अंग

सुन्दर मनुषा देह यह, पायौ रतन अमोल।
कौड़ी सटै न खोइये, मानि हमारो बोल ॥१॥

सुन्दर सांची कहतु है, मति आनै कछु रोस।
जौ तैं खोयो रतन यह, तौ तोहीकौं दोस ॥२॥

---

४. सेती=से, द्वारा।

५. मेला=मिलन।

पतिव्रत कौ अंग

१. पतिव्रत=अनन्य भक्ति-भाव। टेरि=पुकारकर।

३. हाथ करि=वश में कर।

उपदेश-चितावनी कौ अंग

१. सटै=मोल पर।

२. रोस=रोष, क्रोध, नाराज़ी।

बार बार नहिं पाइये, सुन्दर मनुषा देह।
रामभजन सेवा सुकृत, यह सोदो करि लेह ॥३॥

सुन्दर सांची कहतु है, जौ मानै तौ मानि।
यहै देह अति निंद्य है, यहै रतन की खानि ॥४॥

सुन्दर नदी-प्रवाह मैं, मिल्यौ काठ-संजोग।
आपु आपुकौं ह्वै गये, त्यौं कुटंब सब लोग ॥५॥

सुन्दर बैठे नाव मैं, कहूँ कहूँ तें आइ।
पार भये कतहूँ गये, त्यौं कुटंब सब जाइ ॥६॥

सुन्दर पक्षी वृक्ष पर, लियौ बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये, त्यौं कुटंब सब जानि ॥७॥

सुन्दर यह औसर भलौ, भजिलै सिरजनहार।
जैसें ताते लोह कौं लेत मिलाइ लुहार ॥८॥

सुन्दर याही देह मैं, हारि जीति कौ खेल।
जीतै सो जगपति मिलै, हारै माया मेल ॥९॥

सुन्दर सौदा कीजिये, भली वस्तु कछु खाटि।
नाना बिधि का टांगरा, उस बनिया की हाटि ॥१०॥

दीया की बतियां कहै, दीया किया न जाइ।
दीया करै सनेह करि, दीयें ज्योति दिखाइ ॥११॥

दीयें तें सब देखिये, दीये करौ सनेह।
दीये दसा प्रकासिये, दीया करि किन लेह ॥१२॥

दीया राखै जतन सौं, दीये होइ प्रकाश।
दीये पवन लगै अहं, दीये होइ विनाश ॥१३॥

साँई दीया है सही, इसका दीया नांहिं।
यह अपना दीया कहै, दीया लखै न मांहिं ॥१४॥

---

८. लेत मिलाइ=जोड़ लेता है।
१०. खाटि=परखकर बिसाहले। टांगरा=सामान। बनिया=परमात्मा से आशय है।
११. दीया=(१) दीपक (२) दान। बतियाँ= (१) बत्तियाँ (२) बातें। सनेह=(१) तेल (२) प्रेम। इसमें श्लेष अलंकार है।
१३. अहं=अहंकार। दीये.......विनाश=दान को अहंकाररूपी पवन बुझा देता है; अहंकार से दान का महत्त्व नष्ट हो जाता है। इसमें भी श्लेष अलंकार है।
१४. इसका दीया=मनुष्य का दिया हुआ। मांहिं=अंतर में।

सांई आप दिया किया, दीया मांहिं सनेह।
दीये दीये होत है, सुन्दर जीया देह ॥१५॥

काल-चितावनी कौ अंग

दोहा

काल ग्रसत है बावरे, चेतत क्यौं न अजान।
सुन्दर काया कोट मैं, होइ रह्या सुलतान ॥१॥

सुन्दर चितवै और कछु, काल सु चितवै और।
तूं कहुं जाने की करै, वहु मारै इहिं ठौर ॥२॥

सुन्दर काल जुरावरी, ज्यौं जाणैं त्यौं लेइ।
कोटि जतन जौ तूं करै, तोहूँ रहन न देइ ॥३॥

सुन्दर या संसार तें, काहि न निकसत भागि।
सुख सोवत क्यौं बावरे, घर मैं लागी आगि ॥४॥

देहात्मा-बिछोह कौ अंग

दोहा

सुन्दर देह परी रही, निकसि गयौ जब प्रान।
सब कोऊ यौं कहत हैं, अब लै जाहु मसान ॥१॥

सुन्दर देह हलैचलै, जबलगि चेतनि लाल।
चेतनि कियौ प्रयान जब, रूसि रहै ततकाल ॥२॥

---

१५. दीये दीये होत है=दीपक से दूसरा दीपक जलता है। गुरु अपने शिष्य को, और फिर वह शिष्य अपने शिष्य को ज्ञान का प्रकाश देता है।

काल-चितावनी कौ अंग

१. काया कोट=शरीररूपी क़िला।
२. चितवै=सोचता है।
३. जुरावरी=ज़ोरावरी, ज़बर्दस्ती, न चाहते हुए भी।
४. सुख=निश्चिन्त।

देहात्मा-बिछोह कौ अंग

२. चेतनि लाल=चैतन्यरूप प्यारा जीवात्मा। रूसि रहै=रूठ जाती है। निश्चेष्ट हो जाती है।

नखसिख देह लगै भली, सुन्दर अधिक स्वरूप।
चेतनि हीरा चलि गयौ, भयौ अँधेराघूप ॥३॥

चेतनि कै संयोग तें, होइ देह कौ तोल।
चेतनि न्यारो ह्वै गयौ, लहै न कौड़ी मोल ॥४॥

देह जीव यों मिलि रहै, ज्यौं पाणी अरु लौंन।
बार न लाई बिछुटतें, सुन्दर कीयौ गौंन ॥५॥

तृष्णा कौ अंग

दोहा

तृष्णा तूं बौरी भई, तोकौं लागी बाइ।
सुन्दर रोकी नां रहै, आगै भागी जाइ ॥१॥

सुन्दर तृष्णा कोढ़नी, कोढ़ी लोभ भ्रतार।
इनकौं कबहुं न भीटिये, कोढ़ लगै तन ख्वार ॥२॥

देहमलिनता गर्व-प्रहार कौ अंग

दोहा

सुन्दर देह मलीन है, राख्यौ रूप सँवारि।
ऊपर तें कलई करी, भीतरि भरी भगारि ॥१॥

सुन्दर देह मलीन अति, बुरी वस्तु कौ भौन।
हाड़ मांस को कौथरा, भली बस्तु कहि कौन ॥
सुन्दर देह मलीन अति, नखसिख भरे बिकार।
रक्त पीप मल मूत्र पुनि, सदा बहै नवद्वार ॥२॥

---

३. स्वरूप=सुन्दर। घूप=घोर।

४. तोल=आदर।

५. बिछुटत=बिछुड़ते हुए। गौंन=गमन।

तृष्णा कौ अंग

१. बाइ=वात-प्रकोप, जिसमें रोगी आयँ-बायँ बकता है और पागल की जैसी चेष्टा करता है।

२. भ्रतार=भर्त्ता, पति। भीटिये=भेंटना चाहिए। ख्वार=नाश।

सुन्दर पंजर हाड़ कौ, चाम लपेट्यौ ताहि।
तामैं बैठ्यौ फूलिकै, मो समान को आहि ॥३॥

सुन्दर अपरस धोवती, चौकै बैठौ आइ।
देह मलीन सदा रहै, ताही कै संगि खाइ ॥४॥

सुन्दर देखै आरसी, टेढ़ी नाखै पाग।
बैठौ आइ करंक पर, अतिगति फूल्यौ काग ॥५॥

स्वास चलै खांसी चलै, चलै पसुलिया बाव।
सुन्दर ऐसी देह मैं दुखी रंक अरु राव ॥६॥

दुष्ट कौ अंग

दोहा

सुन्दर दुष्ट स्वभाव है, औगुन देखै आइ।
जैसैं कीरी महल मैं, छिद्र ताकती जाइ ॥१॥

सूझत नांहिन दुष्ट कौं, पांव तरै की आगि।
औरन के सिर पर कहै, सुन्दर वासौं भागि ॥२॥

घर खोवत है आपनौ, औरनिहूँ कौ जाइ।
सुन्दर दुष्ट स्वभाव यह, दोऊ देत बहाइ ॥३॥

सुन्दर दुख सब तोलिये, घालि तराजू माहिं।
जो दुख दुर्जन-संग तें, ता सम कोई नाहिं ॥४॥

देहमलिनता गर्व-प्रहार कौ अंग

१. भगारि=कचरा।
२. पीप=पीवू, मैल।
४. अपरस धोवती=रेशम की धोती, जिसे वैष्णव पहनकर भोजन करते हैं, और अपने को पवित्र मानते हैं।
५. नाखै=अर्थ होता है 'डालता है', पर यहाँ अर्थ है 'बाँधता है'। करंक=लाश। अतिगति=अत्यंत। फूल्यौ=आनंदित है।

दुष्ट कौ अंग

३. घर.........जाइ=अपना खुद का नाश करता है, और दूसरों का भी। दोऊ देत बहाइ=दोनों का सर्वनाश करता है।
४. घालि=रखकर, चढ़ाकर।

मन कौ अंग

दोहा

मन कौं राखत हटकिकरि, सटकि चहूँ दिसि जाइ।
सुन्दर लटकि रु लालची, गटकि बिषै फल खाइ ॥१॥

सुन्दर क्यौंकरि धीजिये, मन कौ बुरौ सुभाव।
आइ बनै गुदरै नहीं, खेलै अपनौ दाव ॥२॥

सुन्दर यहु मन भाँड़ है, सदा भँडायौ देत।
रूप धरै बहु भाँति कै, राते पीरे सेत ॥३॥

सुन्दर आसन मारिकै, साधि रहे मुख मौन।
तन कौं राखै पकरिकै, मन पकरै कहि कौन ॥४॥

तन कौ साधन होत है, मन कौ साधन नाहिं।
सुन्दर बाहर सब करैं, मन साधन मन मांहिं ॥५॥

मन ही बड़ौ कपूत है, मन ही महा सपूत।
सुन्दर जौ मन थिर रहै, तौ मन ही अवधूत ॥६॥

जब मन देखै जगत कौं, जगतरूप ह्वै जाइ।
सुन्दर देखै ब्रह्म कौं, तब मन ब्रह्म समाइ ॥७॥

सुन्दर परम सुगन्ध सौं, लपटि रह्यौ निश-भोर।
पुण्डरीक परमातमा, चंचरीक मन मोर ॥८॥

चाणक* कौ अंग

दोहा

छूट्यौ चाहत जगत सौं, महा अज्ञ मतिमन्द।
जोई करै उपाइ कछु, सुन्दर सोई फन्द ॥१॥

मन कौ अंग

१. सटकि जाइ=हाथ से छूट जाता है।
२. धीजिये=विश्वास करे। गुदरै नहीं=किसी तरह मानता नहीं है।
३. राते पीरे=लाल और पीले।
६. अवधूत=पहुँचा हुआ परम ब्रह्मज्ञानी।
८. भोर=दिन। पुण्डरीक=कमल।

***चाणक कौ अंग**

चाणक=इस शब्द का अर्थ पुरोहित श्री हरनारायणजी ने 'कोड़े की तरह कड़ा उपदेश'

बैठौ आसन मारि करि, पकरि रह्यौ मुख मौन।
सुन्दर सैन बतावतें, सिद्ध भयौ कहि कौन ॥२॥

कोउ करै पयपान कौं, कौन सिद्धि कहि बीर।
सुन्दर बालक बाछरा ये नित पीवहिं खीर ॥३॥

कोऊ होत अलौनिया, खाय अलौंनौ नाज।
सुन्दर करहिं प्रपंच बहु, मान बढ़ावण काज ॥४॥

कोउक दूध रु पूत दे, कर पर मेल्हि बिभूति।
सुन्दर ये पाखण्ड किय, क्यौंही परै न सूति ॥५॥

केस लुचाइ न ह्वै जती, कान फराइ न जोग।
सुन्दर सिद्धि कहा भई, बादि हँसाये लोग ॥६॥

वचन-विवेक कौ अंग

दोहा

सुन्दर मौन गहें रहै तबलग भारी तोल।
मुख बोलैं तें होत है सब काहू कौ मोल ॥१॥

सुन्दर सुवचन-तक तें राखै दूध जमाइ।
कुवचन कांजी परत ही तुरत फाटिकरि जाइ ॥२॥

यह किया है।

२. पकरि रह्यौ=ले बैठा है, साध रखा है।

३. बीर=हे भाई। खीर=क्षीर, दूध।

४. अलौनिया=नमक न खानेवाला। प्रपंच=ऊपरी दिखाव, पाखंड।

५. मेल्हि=रखकर। विभूति=धूनी की भस्म। सूति=सूत।

(यह सुन्दरदासजी की जन्म-कथा से संबंध रखनेवाली बात है। जग्गाजी ने आंबेर में भिक्षा के समय कहा था—'दे माई सूत, ले माई पूत।' यहाँ अभिप्राय है कि हरएक साधु में ऐसी शक्ति नहीं हो सकती, इसलिए साधारण साधु पाखंड ही करते हैं।—सुन्दर-ग्रंथावली—खंड २—पृष्ठ ७३४ पाद-टिप्पणी।)

६. जती=जैन श्रमण, जो केश-लुंचन कराते हैं। बादि=व्यर्थ।

वचन-विवेक कौ अंग

२. तक=मट्ठा, छाछ। कांजी=नमकीन खट्टा पानी।

सूरज के आगै कहा, करै जीगंणा जोति।
सुन्दर हीरा लाल घर, ताहि दिखावै पोति ॥३॥

रचना करी अनेकबिधि, भलौ बनायौ धाम।
सुन्दर मूरति बाहरी, देवल कौंने काम ॥४॥

सूरातन कौ अंग

दोहा

सीस उतारै हाथि करि, संक न आनै कोइ।
ऐसै महँगे मोल का सुन्दर, हरि-रस होइ ॥१॥

सुन्दर धरती धड़हड़ै, गगन लगै उड़ि धूरि।
सूरबीर धीरज धरै, भागि जाइ भकभूरि ॥२॥

साधु सुभट अरु सूरमा, सुन्दर कहे बखानि।
कहन सुनन कौं और सब, यह निश्चयकरि जानि ॥३॥

साधु कौ अंग

दोहा

संत समागम कीजिये, तजिये और उपाइ।
सुन्दर बहुत उद्धरे, सतसंगति मैं आइ ॥१॥

संत मुक्ति के पौरिया, तिनसौ करिये प्यार।
कूँजी उनकै हाथ है, सुन्दर खोलहिं द्वार ॥२॥

मात पिता सबही मिलैं, भइया बंधु प्रसंग।
सुन्दर सुत दारा मिलैं, दुर्लभ है सतसंग ॥३॥

---

३. जीगंणा=जुगनू। पोति=काँच का रंगबिरंगा गुरिया या मनका।

४. देवल=देवालय, मन्दिर।

सूरातन कौ अंग

२. धड़हड़ै=काँप उठे। भकभूरि=कायर, बहुत बात बनाने वाला।

साधु कौ अंग

२. पौरिया=द्वारपाल, पहरेदार।

मद मत्सर अहंकार की दीन्हीं ठौर उठाइ।
सुन्दर ऐसै संतजन, ग्रंथनि कहे सुनाइ ॥४॥

आयें हर्ष न उपजै, गयें शोक नहिं होइ।
सुन्दर ऐसे संतजन, कोटिनु मध्ये कोइ ॥५॥

सुखदाई सीतल हृदय, देखत सीतल नैन।
सुन्दर ऐसे संतजन, बोलत अंमृत बैंन ॥६॥

क्षमावंत धीरज लिये, सत्य दया संतोष।
सुन्दर ऐसे संतजन, निर्भय निर्गतरोष ॥७॥

घर बन दोऊ सारिखे, सबतें रहत उदास।
सुन्दर संतनि कै नहीं, जिवन मरन की आस ॥८॥

धोवत है संसार सब, गंगा मांहें पाप।
सुन्दर सन्तनि के चरण, गंगा बंछै आप॥९॥

सन्तनि की सेवा किये, सुन्दर रीझै आप।
जाकौ पुत्र लड़ाइये, अति सुख पावै बाप ॥१०॥

समर्थाई आश्चर्य कौ अंग

दोहा

करै हरै पालै सदा, सुन्दर समरथ राम।
सबही तैं न्यारौ रहै, सबमैं जिन कौ धाम ॥१॥

अंजन यह माया करी, आपु निरंजन राइ।
सुन्दर उपजत देखिये, बहुर्‍यौ जाइ बिलाइ ॥२॥

---

५. आयें=प्राप्त होने पर।

७. निर्गत=विगत, रहित।

८. उदास=उदासीन, तटस्थ।

९. बंछै=चाहती है।

१०. आप=स्वयं परमात्मा। लड़ाइये=प्यार करे।

समर्थाई आश्चर्य कौ अंग

२. अंजन=अनित्य, नाशवान्। निरंजन=नित्य, अविनाशी। बहुर्‍यौ=फिर, तुरंत।

सूरति तेरी खूब है, को करि सकै बखान।
बानी सुनि सुनि मोहिया, सुन्दर सकल जिहान ॥३॥

प्रीतम मेरा एक तूं, सुन्दर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारनै, काहि न परगट होइ ॥४॥

ऐसी तेरी साहिबी, जांनि न सक्कै कोइ।
सुन्दर सब देखै सुनै, काहू लिप्त न होइ ॥५॥

वचन तहाँ पहुँचैं नहीं, तहाँ न ज्ञान न ध्यान।
कहत कहत यौंही कह्यौ, सुन्दर है हैरान ॥६॥

लौन-पूतरी उदधि मैं, थाह लेन कौं जाइ।
सुन्दर थाह न पाइये, बिचिही गई बिलाइ ॥७॥

आपने भाव कौ अंग

दोहा

सुन्दर महल सँवारिकै, राख्यौ कांच लगाइ।
दैवयोग सुनहां गयौ, एक अनेक दिखाइ ॥१॥

सुन्दर सूके हाड़ कौं, स्वान चचोरै आइ।
अपनौई मुख फोरिकै, लोही चाटै खाइ ॥२॥

सुन्दर अपने भाव करि, आप कियौ आरोप।
काहू सौं संतुष्ट है, काहू ऊपर कोप ॥३॥

काहू सौं अति निकट है, काहू सौं अति दूरि।
सुन्दर अपनौ भाव है, जहाँ तहाँ भरपूरि ॥४॥

---

६. वचन=वाणी।

आपने भाव कौ अंग

१. सुनहां=कुत्ता।
२. सूके=सूखा, बिना रक्त का। चचौरै=चूसता है।
४. भरपूरि=व्यापक।

स्वरूप-विस्मरण कौ अंग

दोहा

सुन्दर भूलौ आपकौं, खोई अपनी ठौर।
देहि मांहिं मिलि देह सौं, भयौ और कौ और ॥१॥

जा घट की उनहारि है, तेसौ दीसत आहि।
सुन्दर भूलौ आपुही, सो अब कहिये काहि ॥२॥

सुन्दर पावक दार के भीतरि रह्यौ समाइ।
दीरघ मैं दीरघ लगै, चौरे मैं चौराइ ॥३॥

सुन्दर चेतनि आपु यह, चालत जड़ की चाल।
ज्यौ लकरी के अश्व चढ़ि, कूदत डोलै बाल ॥४॥

काहू सौं बांझन कहै, काहू सौं चंडाल।
सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौं, योंही मारै गाल ॥५॥

देह पुष्ट है दूबरी, लगै देह कौं घाव।
चेतनि मानै आपुकौं, सुन्दर कौंन सुभाव ॥६॥

सान्यौ घर मांहे कहै हूं अपने घर जाउं।
सुन्दर भ्रम ऐसौ भयौ, भूलौ अपनौ ठाउं ॥७॥

आत्मानुभव को अंग

दोहा

मुख तैं कह्यौ न जात है, अनुभव कौ आनंद।
सुन्दर समुझै आपुकौं, जहाँ न कोई द्वंद्व ॥१॥

उमगिं चलत है कहन कौं, कछू कह्यौ नहिं जाइ।
सुन्दर लहरि समुद्र मैं, उपजै बहुरि समाइ ॥२॥

स्वरूप-विस्मरण कौ अंग

१. अपनी ठौर=आत्मपद अर्थात् 'स्वरूप' से आशय हैं।

२. उनहारि=रूप। दीसत=दिखाई देता है। दार=दारु, लकड़ी। चौराइ=चौड़ा ही।

५. मारै गाल=गप लगाता है; मिथ्या बोलता है।

७. सान्यौ=सयाना, चतुर।

कह्या कछू नहिं जात है, अनुभव आतम सुक्ख।
सुन्दर आवै कंठलौं, निकसत नाहिन मुक्ख ॥३॥

सुन्दर जाके बित्त है, सो वह राखै गोइ।
कौड़ी फिरै उछालतौ, जो टटपूंज्यौ होइ ॥४॥

ज्ञानी कौ अंग

दोहा

हर्ष शोक उपजै नहीं, राग द्वेष पुनि नाहिं।
सुन्दर ज्ञानी देखिये, गरक ज्ञान के मांहि ॥१॥

बध मोक्ष जाकै नहीं, स्वर्ग नरक नहिं दोइ।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय, संशय रह्यौ न कोइ ॥२॥

घर बन दोऊ सारिखे, ना कछु ग्रहण न त्याग।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय, ना कहुँ राग विराग ॥३॥

अपने मन आनन्द है, तौ सगरै आनंद।
सुन्दर मन शीतल भयौ, दह दिशि शीतल चन्द ॥४॥

अंत्यज ब्राह्मण आदि दै, दार मथै जो कोइ।
सुन्दर भेद कछू नहीं, प्रगट हुतासन होइ ॥५॥

दीपग जोयौ बिप्र घर, पुनि जोयौ चण्डाल।
सुन्दर दोऊ सदन कौ, तिमिर गयौ ततकाल ॥६॥

अंत्यज के जलकुंभ मैं, ब्राह्मन कलस मँझार।
सुन्दर सूर प्रकाशिया, दुहुँवनि मैं इकसार ॥७॥

आत्मानुभव कौ अंग

४. वित्त=धन। राखै गोइ=छिपाकर रखता है। टटपूंज्यौ=थोड़ी-सी पूँजीवाला।

ज्ञानी कौ अंग

१. गरक=मग्न।
३. सारिखे=समान।
४. सगरै=सर्वत्र। दह दिशि शीतल चंद=दशों दिशाओं में सर्वत्र चंद्रमा की तरह शीतलता अर्थात् शांति है।
५. दार=दारु, लकड़ी। मथै=अग्नि उत्पन्न करने के लिए घर्षण करे। हुतासन=अग्नि।
६. दीपग=दीपक। जोयौ=जलाया।
७. कलस मँझार=घड़े में। सूर=सूर्य।

पद

राग गौड़ी

हरि भजि बौरी हरि भजु, त्यजु नैहर कर मोहु।
जिव लिनहार पठाइहि, इक दिन होइहि बिछोहु॥
आपुहि आपु जतन करु, जौंलगि बारि वयेस।
आन पुरुष जिनि भेटहु केहूके उपदेस॥
जबलग होहु सयानिय, तबलग रहब सँभारि।
केहूँ तन जिनि चितवहु, ऊंचिय दृष्टि पसारि॥
यह जोवन पियकारन नीकैं राखि जुगाइ।
अपनौ घर जिनि छोड़हु परघर आगि लगाइ॥
यह बिधि तन मन मारै, दुइ कुल तारै सोइ।
सुन्दर अति सुख बिलसइ कंत-पियारी होइ॥१॥

ताल रूपक

सतसंग नितप्रति कीजिये, मति होइ निर्मल सार रे।
रति प्रानपति सौं ऊपजै, अति लहै सुक्ख अपार रे॥
मुख नाम हरि हरि उच्चरै, श्रुति सुनै गुन गोविन्द रे।
रटि ररंकार अखंड धुनि तहँ प्रगट पूरन चन्द रे॥
सतगुरु बिना नहिं पाइये यह अगम उलटा खेल रे।
कहि दास सुन्दर देखते होइ जीव-ब्रह्महि मेल रे॥२॥

राग कानड़ौ

पंडित सो जु पढ़ै यह पोथी।
जा मैं ब्रह्म-बिचार निरंतर, और बात जानौं सब थोथी॥
पढ़त-पढ़त केते दिन बीते, विद्या पढ़ी जहाँलग जो थी।
दोष बुद्धि जौ मिटी न यातैं, और अविद्या को थी॥

पद

१. बारि वयेस=छोटी उम्र। रहब सँभारि=विषयों से बहुत बचकर रहना। केहूँ तन=किसीकी ओर। जुगाइ=सँभालकर। दुइकुल=लोक और परलोक से आशय है।

२. रति=प्रीति। प्रानपति=परमात्मा से आशय है। श्रुति=श्रवण। पूरन चंद=अखण्ड आत्मस्वरूप। उलटा खेल=चित्त को अन्तर्मुख करने की आनन्दमयी स्थिति।

लाभ पढ़े कौ कछू न हूवौ, पूंजी गई गाँठि की सो थी।
सुन्दरदास कहै समुझावै, बुरो न कबहूँ मानौं मोथी ॥३॥

राग विहागड़ौ

माइ हो, हरि-दरसन की आस।
कब देखौं मेरा प्रान-सनेही, नैन मरत दोऊ प्यास ॥
पल छिन आध घरी नहिं बिसरौं, सुमिरत सास उसास।
घर बाहरि मोहि कल न परत है, निसदिन रहत उदास ॥
यहै सोच सोचत मोहि सजनी, सूके रगत रु माँस ॥
सुन्दर बिरहिन कैसे जीवै, बिरहबिथा तन त्रास ॥४॥

हमारै गुरु दीनी एक जरी।
कहा कहौं कछु कहत न आवैं, अंमृतरसहि भरी ॥
ताकौ मरम संतजन जानत, बस्तु अमोल परी।
यातें मोहि पियारी लागति, लैकरि सीस धरी ॥
मन-भुजंग अरु पंच नागनी सूंघत तुरत मरी।
डायनि एक खात सब जग कौं, सो भी देख डरी ॥
त्रिविधि बिकार ताप तनि भागी, दुरमति सकल हरी।
ताकौ गुन सुनि मीच पलाई, और कवन बपुरी ॥
निसबासर नहिं ताहि बिसारत, पल छिन आध घरी।
सुन्दरदास भयौ घट निरविष, सबही ब्याधि टरी ॥५॥

राग केदारो

ज्ञान बिन अधिक अरूझत है रे।
नैन भये तौ कौंन काम के, नैंक न सूझत है रे ॥
सब मैं व्यापक अन्तरजामी, ताहि न बूझत है रे।
भेददृष्टि करि भूलि पर्यौहै, तातै जूझत है रे ॥

---

३. थोथी=सराहीन, फोकट। दोष=द्वेष, भेद-भावना। मोथी=मुझसे।

४. सूके=सूख गया।

५. हमारै=हमको। जरी=जड़ी, बूटी। परी=पड़ी हुई। पंच नागनी=पाँच इन्द्रियाँ, जो सर्पिणी के समान हैं। डायनि=तृष्णा अथवा अविद्या। पलाई=भाग गई। बपुरी=बेचारी। निरविष=विषरहित; अमृतमय।

कठिन करम की परत भाषसी अमूझत है रे।
सुन्दर घट मैं कामधेनु हरि, निशदिन दूझत है रे ॥६॥

राग मारू

लगा मोहि राम पियारा हो।
प्रीति तजी संसार सौं, मन किया नियारा हो ॥
सतगुरु शब्द सुनाइया, दिया ज्ञान-बिचारा हो।
भरम-तिमर भागै सबै, गहि कीया उजियारा हो ॥
चाखि-चाखि सब छाड़िया, माया-रस खारा हो।
नाम-सुधारस पीजिये, छिन बारम्बारा हो ॥
मैं बन्दा हौं ब्रह्म का, जाका वार न पारा हो।
ताहि भजे कोइ साधवा, जिनि तन मन मारा हो ॥
आन देव कौं ध्यावई, ताकै मुख छारा हो।
अलख निरंजन ऊपरै, जन सुन्दर वारा हो ॥७॥

सोई जन राम कौं भावै हो।
कनक कामिनी परहरै, नहिं आप बँधावै हो ॥
सबही सौं निरबैरता, काहू न दुखावै हो।
सीतल बानी बोलिकै, रस अंमृत प्यावै हो ॥
कैतो मौन गहे रहै, कै हरिगुन गावै हो।
भरम-कथा संसार की सब दूरि उड़ावै हो ॥
पंचौं इन्द्री बसि करै, मन मनहिं मिलावै हो।
काम क्रोध अरु लोभ कौं खनि खोदि बहावै हो ॥
चौथा पद कौं चीन्हकैं ता मांहिं समावै हो।
सुन्दर ऐसे साधु की ढिंग काल न आवै हो ॥८॥

---

६. अरूझत है=उलझता है। भेद-दृष्टि करि=द्वैत-बुद्धि के कारण। भाषसी=यह शब्द अस्पष्ट है। दूझत=दूध देती है।

७. भरम-तिमर=अविद्या का अंधकार। मारा=वश में किया। छारा=धूल। मुख छारा=धिक्कार है। वारा=निछावर हो गया।

८. दुखावै=कष्ट देता है। मन मनहिं मिलावै=मन को नियंत्रित करके शून्यवत् कर देता है। चौथा पद=तुरीय पद, समाधि की अवस्था। ढिंग=पास।

राग ललित

द्वार प्रभु के जाचन जइये।
विविधि प्रकार सरस गुन गइये॥
जाचिक होइ सु नींद निवारै, बड़े प्रात दाताहिं सँभारै।
नितप्रति ताके कान जगावै, वह पुनि जानै जाचिक आवै॥
दाता के मन चिन्ता होई, दान करन की उपजै कोई।
सुन्दरदास पहाऊ गावै, माँगत इहै जु दरसन पावै॥९॥

आजु मेरे गृह सतगुरु आये।
भरम-करम की निसा बितीती, भोर भयौ रवि प्रगट दिखाये॥
अति आनन्दकन्द सुखसागर, दरसन देखत नैन सिराये।
प्रफुलित कमल अंग सब पुलकित, प्रेमसहित मन मंगल गाये॥
बचन सुनत सबही दुख भागे, जागे भाग चरन सिर लाये।
सुन्दर सुफल भयौ सबही तनु, जन्म-जन्म के पाप नसाये॥१०॥

राग बिलावल

जौ पिय कौ ब्रत ले रहै, सो पियहि पियारी।
काहेकौं पचि-पचि मरति है, मूरख बिभचारी॥
अंजन मंजन क्या करै, क्या रूप सिँगारा।
ऊपर निर्मल देखिये, दिल मांहिं बिकारा॥
इन बातनि क्यौं पाइये, अवे प्रीतम पिय प्यारा॥
पतिब्रत कबहुँ न देखिये मन चहुँ दिश धावै॥
और सखिन मैं बैसिकैं पतिब्रता कहावै।
हौंस करै पियमिलन की, अवे तोहि लाज न आवै॥
कोटि जतन कीयें कहा, पिय एक न मानै।
नाना बिधि की चातुरी बहुतेरी ठानै॥
तन कौं बहुत बनावई, अवे मन सौंपि न जानै॥
अपना बल जौ छाड़िकैं सब सुधि बिसरावै॥
लोकबड़ाई नैकहू कछु याद न आवै।
सुन्दर तब पिय रीझिकै, अवे तोहि कंठ लगावै॥११॥

---

९. सँभारै=स्मरण करता है। जानै जाचिक आवै=जान जाय कि याचक आ गया है। उपजै कोई=कुछ मन में आ जाय। पहाऊ=प्रभाती।

१०. वितीती=बीत गई। भोर=सवेरा। सिराये=ठंडे हो गये, प्रसन्न हो गये।

११. और सखिन मैं बैसिकैं=दुनियादारों के साथ बैठकर। तनकौं बहुत बनावई=शरीर को अनेक भांति सजाता है। बल=अहंकार। सब सुधि=अपनेपन सारा भान।

जाकै हिरदै ज्ञान है, ताहि कर्म न लागै।
सब परि बैठे मक्षिका, पावक तैं भागै॥
जहाँ पाहरू जागहीं, तहाँ चोर न जाहीं।
आंखिन देखत सिंहकौं, पशु दूरि पलाहीं॥
जा घर मांहिं मंजारि ह्वै तहाँ मूषक नासै।
शब्द सुनत ही मोर का अहि रहै न पासै॥
ज्यौं रवि निकट न देखिये कबहूँ अँधियारा।
सुन्दर सदा प्रकासमै, सबही तैं न्यारा॥१२॥

राग टोड़ी

मेरौ धन माधौ माई री, कबहूँ बिसरि न जाऊँ।
पल पल छिन छिन घरी घरी तिहिं बिन देखे न रहाऊँ॥
गहरी ठौर धरौं उर-अंतर, काहूकौं न दिखाऊँ।
सुन्दर कौं प्रभु सुन्दर लागत, लैकरि गोपि छिपाऊँ॥१३॥
आया था इक आया था, जिनि दरसन प्रगट दिखाया था।
श्रवणहूँ शब्द सुनाया था, तिन सत्य स्वरूप बताया था॥
ब्रह्मज्ञान समुझाया था, तिन संसा दूरि बहाया था।
अलख खजीना ल्याया था, तिन बांटि सबनि सौं खाया था॥
ऐसा दादूराया था, सो सुन्दर के मनि भाया था॥१४॥

राग सोरठ

सब कोऊ भूलि रहे इहिं बाजी।
आप आपुने अहंकार मैं, पातिसाहि कहा पाजी॥
पातिसाहि कै विभौ बहुत बिधि, खात मिठाई ताजी।
पेट पयादौ भरत आपनौ जीमत रोटी-भाजी॥
पण्डित भूले बेदपाठ करि, पढ़ि कुरान कौं काजी।
वै पूरब दिशि करैं डण्डवत, वै पच्छिमहि निवाजी॥
तीरथिया तीरठ कौं दौड़ैं, हज कौं दौड़ै हाजी।
अन्तरगति कौं खोजैं नाहीं, भ्रमणै ही सौ राजी॥

---

१२. मक्षिका=मक्खी। पलाहीं=भागते हैं। मंज़ारि=बिल्ली। मूषक=चूहा।

१३. गहरी ठौर=गुप्त-से-गुप्त स्थान; अन्तस्तल। गोपि=प्रकट न करके।

१४. संसा=संशय; द्वैतबुद्धि। बहाया=नष्ट कर दिया। अलख खजीना=ब्रह्म-निधि से आशय है। राया=राजा।

अपने अपने मद के मांते, लखैं न फूटी साजी।
सुन्दर तिनहिं कहा अब कहिये, जिनकै भई दुराजी ॥१५॥

राग रामगरी

संत चले दिस ब्रह्म की, तजि जगव्यवहारा।
सीधै मारग चालतैं, निंदै संसारा॥
सन्त कहैं सांची कथा, मिथ्या नहिं बोलैं।
जगत डिगावे आइकैं, तौ कबहूं ना डोलैं॥
जे-जे कृत संसार के, ते सन्तनि छांड़े।
ताकौ जगत कहा करै, पग आगै मांड़े॥
जे मरजादा बेद की, ते सन्तनि मेटी।
जैसे गोपी कृष्ण कौं सब तजिकरि भेटी॥
एक भरोसे राम कै, कुछ शंक न आनैं।
जन सुन्दर सांचे मतै, जग की नहिं मानैं ॥१६॥

राग गौड़

मेरा प्रीतम प्रानअधार कब घरि आइहै।
कहुँ सौ दिन ऐसा होइ दरस दिखाइहै॥
ये नैंन निहारत मारग इकटग हेरहीं।
बाल्हा, जैसैं चन्द चकोर दृष्टि न फेरहीं॥
यहु रसना करत पुकार पिव-पिव प्यास है।
बाल्हा, जैसैं चातक लीन दीन उदास है॥
ये श्रवन सुनन कौं बैन धीरज ना धरैं।
बाल्हा, हिरदै होइ न चैन, कृपा प्रभु कब करैं॥
मेरै नखसिख तपति अपार दुःख कासौं कहौं।
जब सुन्दर आवै यार सब सुख तौ लहौं ॥१७॥

---

१५. पातिसाहि=बादशाह। पाजी=पयादा; छोटा आदमी। जीमत=खाता है। निवाजी=नमाज पढ़ते हैं। फूटी साजी=आधी और साबित; नुकसान व नफ़ा। दुराजी=द्वैतबुद्धि।

१६. कृत=कर्म, व्यवहार। मरजादा वेद की=वैदिक क्रिया-कर्म, यज्ञादिक।

१७. इकटग हेरहीं=एक टक याने ध्यान लगाकर देखते हैं। बाल्हा=हे प्यारे। तपति=दाह; बेचैनी। यार=प्रियतम।

मुझि वेगि मिलहु किन आइ मेरा लाल रे।
मैं तेरै बिरह बिवोग फिरौ बेहाल रे॥
हौं निसदिन रहौं उदास तेरै कारनैं।
मुझे बिरह-कसाई आइ लागा मारनैं॥
इस पंजर माहैं पैठि बिरह मरोरई।
जैसैं बस्तर धोबी ऐंठि नीर निचोरई॥
मैं कासनि करौं पुकार तुम बिन पीव रे।
यहु बिरहा मेरी लार दुखी अति जीव रे॥
अब काहे न करहु सहाइ सुन्दरदास की।
बाल्हा, तुमसौं मेरी आइ लगी है आसकी॥१८॥

राग सारंग

मेरौ पिय परदेश लुभानौ री।
जानत हौं अजहूँ नहि आयौ, काहू सौं उरझानौ री॥
ता दिन तैं मोहि कल न परत है, जबतैं कियौ पयानौ री।
भूख पियास नींद नहिं आवै, चितवत होत बिहानौ री॥
बिरह-अग्नि मोहि अधिक जरावै, नैंननि मैं पहिचानौ री।
बिन देखैं हौं प्रान तजौंगी, यह तुम सांची मानौ री॥
बहुत दिनन की पंथ निहारत, किनहुँ संदेस न आनौ री।
अब मोहि रह्यौ परत नहिं सजनी, तन तैं हंस उड़ानौ री॥
भई उदास फिरत हौं व्याकुल, छूटौ ठौर ठिकानौ री।
सुन्दर बिरहनि कौ दुख दीरघ, जो जानै सो जानौ री॥१६॥

या मैं कोऊ नहीं काहू कौ रे।
रामभजन करि लेहु बावरे, औसर काहे चूकौ रे॥
जिनसौं प्रीति करत है गाढ़ी, सो मुख लावै लूकौ रे।
जारि बारि तन खेह करैंगे, देदे मूंड ठरूकौ रे॥
जोरि जोरि धन करत एकठौ, देत न काहू टूकौ रे।
एक दिना सब यौंही जैहै, जैसैं सरवर सूकौ रे॥

१८. इस पंजर.....निचोरई=इस शरीर के अन्दर पैठकर यह विरह रग-रग को ऐसे मरोड़ता रहा है, जैसे धोबी कपड़े को मरोड़कर निचोड़ता है। क्या ही सजीव अनूठी उत्प्रेक्षा है! कासनि=किससे। लार=साथ; पीछे। आसकी=आशिकी, प्रीति।

१६. उरझानौ=प्रेम में फँस गया। पयानौ=प्रयाण। बिहानौ=सवेरा। आनौ=लाया, भेजा। रह्यौ परत नहिं=चैन नहीं पड़ती; धीरज नहीं बँधता। हंस=जीव, प्राण।

अजहूँ बेगि समुझि किन देखौ, यह संसार बिझूकौ रे।
माया मोह छाड़िकर बौरे, सरन गहौ हरिजू कौ रे॥
प्रान पिंड सिरजे जिनि साहिब, ताकौं काहे न कूकौ रे।
सुंदरदास कहै समुझावै, चेला है दादू कौ रे॥२०॥

बलिहारी हूँ उन संत की।
जिनकै और झौर कछु नाहीं, कहैं कथा भगवंत की॥
शीतल हृदय सदा सुखदाई, दया करैं सब जंत की।
देखि देखि वै मुदित होत हैं, लीला आप अनंत की॥
जिनतें गोपि कहूँ कछु नाहीं, जानत आदि रु अंत की।
सुन्दरदास कहै जन तेई, राखत बात सिद्धन्त की॥२१॥

करि मन उनि सन्तनि की सेवा।
जिनकै आन भरौसो नाहीं, भजहिं निरंजन देवा॥
सील संतोष सदा उर जिनकै, रामनाम के लेवा।
जीवतमुकत फिरै जग महिंयाँ, उरझे कौ सुरझेवा॥
जिनके चरनकँवल कौं बाँछत, गंगा जमुना रेवा।
सुन्दरदास उन्हुँ की की संगति, मिलिहै अलख अभेवा॥२२॥

राग मलार

देखौ माई, आज भलौ दिन लागत।
बरिषा रितु कौ आगम आयौ, बैठि मलारहिं रागत॥
रामनाम के बादल उनये, घोरि घोरि रस पागत।
तन मन मांहिं भइ शीतलता, गये बिकार जु दागत॥
जा कारनि हम फिरत बिवोगी, निशिदिन उठि उठि जागत।
सुन्दरदास दयाल भये प्रभु सोई दियौ जोई माँगत॥२३॥

राग काफी

इन फाग सबनि कौ घर खोयौ, हो,
अहो हौं, कहत पुकारि-पुकारि॥

---

२०. लूकौ=जलती हुई लकड़ी, जिससे मुरदे को जलाते हैं। खेह=भस्म। ठरूकौ=ठरका; लकड़ी से ठोकर देने की कपाल-क्रिया। सूकौ=सूखा। कूकौ=पुकारो।
२१. झौर=झंझट। जंत=जंतु, जीव। गोपि=गोप्य, छिपा हुआ।
२२. लेवा=लेनेवाले, स्मरण करने वाले। बाँछत=चाहती हैं। रेवा=नर्मदा। अभेवा=जिसका भेद मिलना असंभव है।
२३. मलारहिं रागत=मलार राग गाते हैं। उनये=घिर आये। दागत=जलाते हैं।

सुनि-सुनि लीला कृष्ण की हो, दूनौं उपज्यौ काम।
बूड़े काली धार मैं हो, कतहूँ नहिं विश्राम॥
पंडित पैडौ मारियौ हो, कहि-कहि ग्रन्थ पुरान।
सूतौ सर्प जगाइयौ हो, फिरि फिरि लागौ खान॥
पहलैं आगि बरै हुती हो, पूला नाख्यौ आइ।
रोगी कौं रोगी मिलै, तौ व्याधि कहाँ तैं जाइ॥
माया ऐसी मोहिनी हो, मोहे हैं सब कोइ।
ब्रह्मा विष्णु महेस की हो, घर घरनी भइ सोइ॥
चन्दवदनि मृगलोचनी हो, कहत सकल संसार।
कामिनि बिष की बेलड़ी हो, नखसिख भरी विकार॥
देखत ही सब परत हैं हो, नरककुंड के माहिं।
या नारी के नेह सौं हो, बेगि रसातलि जाहिं॥
नारी घट दीपग भयौ हो, ता मैं रूप प्रकाश।
आइ परै निकसै नहीं, करत सबनि कौ नाश॥
जरि जरि मुये पतंग ज्यौं हो, गये जन्म कौं रोइ।
सुन्दरदास कहा कहै हो, संत कहैं सब कोइ॥२४॥

राग धनाश्री

आरती कैसैं करौं गुसाईं। तुमही व्यापि रहे सब ठाईं॥
तुमहीं कुंभ नीर तुम देवा। तुमहीं कहियत अलख अभेवा॥
तुमही दीपक धूप अनूपं। तुमहीं घंटा नाद स्वरूपं॥
तुमहीं पाती पुहुप प्रकासा। तुमहीं ठाकुर तुमहीं दासा।
तुमहीं जल थल पावक पौना। सुन्दर पकरि रहे मुख मौना॥२५॥

●

२४. पैडौ मारियौ=असल रास्ता भुला दिया। सूतौ सर्प=सोये हुए काम-विषय से आशय है। लागौ खान=ड़सने लगा। नाख्यौ आइ=डाल दिया, और भी प्रज्वलित कर दिया। घरनी=स्त्री। कामिनि=कामिनी या नारी से तात्पर्य यहाँ माया अथवा विषय-वासना से है। दीपग=दीया।

२५. ठाईं=ठौर। पाती पुहुप=पत्ती और फूल। पौना=पवन। ठाकुर=स्वामी। पकरि रहे मुख मौना=सर्वव्यापकता और अद्वैतावस्था का चिंतन करते हुए कुछ कहते नहीं बनता।

संत-सुधा-सार

(दूसरा खण्ड)

धनी धरमदास

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—अनुमानतः १४९० वि.

जन्म-स्थान—बाँधोगढ़

जाति—बनिया

गुरु—कबीरदास

चोला-त्याग-संवत्—अनुमानतः १६०० वि.

धरमदासजी बाँधोगढ़ के एक बड़े धनी व्यापारी थे। भजन-पूजन, दान-पुण्य और तीर्थाटन पर इनकी भारी श्रद्धा थी। नित्य-नियम से शालिग्राम की पूजा करते और ब्राह्मणों को विधिवत् दान देते थे। भगवान् का कीर्तन भी नित्य होता था।

कथा है कि एक बार मथुरा में कबीर साहब से इनकी भेंट हुई। मूर्ति-पूजा और तीर्थयात्रा का कबीर साहब ने खंडन किया, और निर्गुण निराकार की उपासना का मंडन। कबीर साहब की बात इनके मन में कुछ-कुछ तो जमी, पर पूरी तरह नहीं। दूसरी बार धरमदासजी कबीर साहब से काशी में जाकर मिले, और संत-मत का पूरा उपदेश पाया। सतगुरु ने उनके अन्तर पर पड़ा परदा हटा दिया। **'अमर-सुख-निधान'** में विस्तार से इस प्रसंग का वर्णन आया है। लिखा है कि काशी में कबीर साहब जिंद के रूप में इनसे मिले थे, किंतु संतमत का ऊँचा उपदेश सुनकर अन्त में इन्होंने उनको पहचान लिया। कबीर साहब ने जब इन्हें चेताया उस समय की कुछ चौपाइयाँ उक्त ग्रन्थ में से हम नीचे देते हैं—

धरमदास हरषित मन कीन्हा। बहुरि पुरुष मोहिं दरसन दीन्हा॥
मन अपने तब कीन्ह विचारा। इन कर ग्यान महा टकसारा॥
दोइ दीन के करता कहाई। इन कर भेद कोउ नहिं पाई॥

इतना कहि मन कीन्ह विचारा। तब कबीर उन ओर निहारा॥
"आओ धरमदास पगु धारो। चिहुंकि चिहुंकि तुम काहे निहारो॥
कहिये छिमा कुसल हौ नीके। सुरत तुम्हार बहुत हम झींके॥
धरमदास हम तुमकों चीन्हा। बहुत दिनन में दरसन दीन्हा॥
बहुत ग्यान कहसी हम तुमहीं। बहुरिके अब तुम चीन्हों हमहीं॥
तुम तो भक्त हम जिद फकीरा। सुधि करि देखौ सतमत धीरा॥

भली भई दरसन मिले, बहुरि मिले तुम आय।
जो कोऊ मोसों मिलै, सो जुग बिछुरि न जाय॥"

धरमनिदास हिये सुख भरे। सनमुख धाय पायँ जा परे॥
दयासिंधु चितये भरि नैना। धरमदास अंकहि भरि लीना॥
पाई सत्तधाम कै बाटा। सत्त सब्द कै खुले कपाटा॥

धरमदास ने अपनी सारी धन-संपत्ति लुटा दी। उन्हें अब वह अखूट धन मिल गया, जो कितना ही खरचा दिन-दिन बढ़ता ही गया। धनी धरमदास का अब पलटकर यह व्यापार हो गया—

"हम सत्तनाम के वैपारी।
कोइ-कोइ लादै काँसा-पीतल, कोइ-कोई लौंग सुपारी।
हम तो लाद्या नाम धनी का, पूरन खेप हमारी॥
पूँजी न टूटे नफा चौगुना, बनिज किया हम भारी।
हाट जगाती रोकि न सकिहै, निर्भय गैल हमारी॥
मोती बिंदु घटहि में उपजै, सुकिरत भरत कोठारी।
नाम-पदारथ लाद चला है, धरमदास वैपारी॥"

कबीर साहब जब संवत् १५७५ में सन्तलोक को सिधारे तब उनकी गद्दी और बीजक आदि ग्रन्थों का अधिकारी धनी धरमदासजी को बनाया गया।

बानी-परिचय

प्रेम-प्रीति, विरह और शब्द-रहस्य इन अंगों में धरमदासजी ने सद्गुरु कबीर की बानी के साथ तादात्म्य-सा किया है। बानी बड़ी सरल और सरस है। कठोरता का कहीं लेश भी नहीं। खंडन-मंडन के फेर में न पड़कर संत-मत की सात्त्विकी साधना से उपलब्ध प्रेम-तत्त्व का विशद निरूपण किया है। सूक्ष्म भावों की अभिव्यंजना इनकी बड़ी सुन्दर तथा मार्मिक है।

मंगल, होली और सोहर के गीत इनके बड़े ही हृदयस्पर्शी हैं। "सूतल रहलौं मैं सखियाँ, तो विषकर आगर हो; सतगुरु दिहलैं जगाइ पायौं सुख-सागर हो"—यह मंगल तो इनका

अत्यंत प्राणवान् तथा रहस्यात्मक है।

भाषा इनकी पूर्वी हिन्दी का अच्छा परिमार्जित रूप है। उसमें ओज भी है, और माधुर्य भी। लोकभाषा का उसमें हम अच्छा निखरा रूप पाते हैं।

धरमदासजी की बानी सचमुच बड़े ऊँचे घाट की बानी है। कबीर साहब की उज्ज्वल प्रसादी का इस अति गहरी बानी को विमल प्रतिबिम्ब कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी।

आधार

१ धनी धरमदासजी के शब्द—बेलिवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल

●

धनी धरमदास

सतगुरु महिमा का अंग

गुरु मिले अगम के बासी।
उनके चरनकमल चित दीजे, सतगुरु मिले अबिनासी॥
उनकी सीत प्रसादी लीजे, छूटि जाय चौरासी॥
अमृत बुंद झरै घट भीतर, साध-संतजन लासी॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, सार सब्द मन बासी॥१॥

नाम-महिमा का अंग

नाम-रस ऐसा है भाई।
आगे आगे दाहि चलै, पाछे हरियर होइ।
बलिहारी वा बृच्छ की, जड़ काटे फल होइ॥
अति कडुवा खट्टा घना रे, वाको रस है भाई।
साधत साधत साध गये हैं, अमली होय सो खाई॥
सूंघत के बौरा भये हो, पीयत के मरि जाई।
नाम रस्स सो जन पिये, धड़ पर सीस न होई॥
संत जवारिस सो जन पावै, जा को ग्यान परगासा।
धरमदास पी छकित भये हैं, और पिये कोइ दासा॥१॥

सतगुरु-महिमा का अंग

१. अगम=वह लोक, जहाँ पहुँचना महाकठिन है। सीत=गिरा-पड़ा जूठन। चौरासी=८४ लाख योनियों का आवागमन। लासी=चाशनी (साधु-संतों के लिए)। बासी=रहनेवाला, अनुरक्त।

नाम-महिमा का अंग

१. आगे-आगे दाहि चलै=आगे-आगे कर्मों को जलाता जाता है। पाछे हरियर होइ=पीछे हरा होता जाता है, प्रेम की हरियाली बढ़ाता जाता है। जड़ काटे फल हो=बंधन की मूल

हम सत्तनाम के बैपारी।
कोइ कोइ लादै काँसा पीतल, कोइ कोइ लौंग सुपारी।
हम तो लाद्यौ नाम धनी को, पूरन खेप हमारी॥
पूंजी न टूटै नफा चौगुना, बनिज किया हम भारी।
हाट जगाती रोक न सकिहै, निर्भय गैल हमारी॥
मोती बुंद घटहि में उपजै, सुकिरत भरत कोठारी।
नाम-पदारथ लाद चला है, धरमदास बैपारी॥२॥

चेतावनी का अंग

थोरे दिन की जिंदगी, मन चेत गँवार।
कागद कै तन पूतरा, डोरा साहेब हाथ।
नाना नाच नचावही, नाचै संसार॥
काच माटी कै घइलिया, भरि लै पनिहार।
पानी परत गल जावही, ठाढ़ी पछिताय॥
जस धूआँ कै धरोहरा, जस बालू कै रेत।
हवा लगे सब मिटि गये, जस करतब प्रेत॥
ओछे जल कै नदिया हो, बहै अगम अपार।
उहाँ नाव नहिं बेरा हो, कस उतरब पार॥
धरमदास गुरु समरथ हो, जाको अदल अपार।
साहेब कबीर सतगुरु मिले, आवागवन निवार॥१॥

कहो केते दिन जियबौ हो, का करत गुमान॥टेक॥
कच्चे बाँसन का पिंजरा हो, जामें पवन समान।
पंछी का कौन भरोसा हो, छिन में उड़ि जान॥

आसक्ति कट जाने पर मुक्ति-फल लाता है। अमली=अनुरास-रस का अभ्यासी। बौरा=बावला। सीस=अहंता से तात्पर्य है। जवारिस=एक औषधि। प्रगासा=प्रकाश।

२. खेप=लदान। न टूटै=घटती नहीं है। बनिज=व्यापार। जगाती=कर उगाहनेवाला, कर्मों का लेखा माँगनेवाला। गैल=राह। सुकिरत=सत्कर्म, पुण्य।

चेतावनी का अंग

१. डोरा=सूत्र। घइलिया=गगरी, नाशवान देह से आशय है। धरोहरा=ऊँचा मीनार। ओछे=थोड़े। बेरा=बेड़ा। अदल=शासन।

कच्ची माटी कै घडुवा हो, रस-बूँदन सान।
पानी बीच बतासा हो, छिन में गलि जान॥
कागद की नइया बनी, डोरी साहेब हाथ।
जौने नाच नचैहैं हो, नाचव वोही नाच॥
धरमदास एक बनिया हो, करै झूठी बजार।
साहेब कबीर-बनजारा हो, करैं सत-बैपार॥२॥

घड़ा एक नीर का फूटा। पत्र एक डार से टूटा॥
ऐसहि नर, जात जिंदगानी। अजहु नहिं चेत अभिमानी॥
भुलो जनि देख तन गोरा। जगत में जीवना थोरा॥
निकरि जग प्रान जावैगा। कोई नहिं काम आवैगा॥
सजन परिवार सुत दारा। सभे एक रोज होइ न्यारा॥
तजो मद लोभ चतुराई। रहो निरसंक जग मांही॥
सदा ना जान ये देही। लगावो नाम से नेही॥
कहै धर्मदास कर जोरी। चलो जहँ देस है तोरी॥३॥

बिरह और प्रेम का अंग

सतगुरु आवौ हमरे देस, निहारौं बाट खड़ी।
वाहि देस की बतियाँ रे, लावैं संत सुजान।
उन संतन के चरन पखारौं, तन मन कौं कुरबान॥
वाही देस की बतियाँ हमसे, सतगुरु आन कही।
आठ पहर के निरखत हमरे, नैन की नींद गई॥
भूल गई तन मन धन सारा, व्याकुल भया सरीर।
बिरह पुकारै बिरहनी, ढरकत नैनन नीर॥

---

२. गुमान=गर्व। समान=समाया हुआ है। पंछी=प्राण-पंक्षी। घडुवा=घड़ा। रस-बूँदन सान=रज-वीर्य या रक्त की बूँदों से सानकर। बतासा=बुलबुला। बजार=बनिज-व्यापार। बनजारा=सौदागर।

३. पत्र=पत्ता। सजन=स्वजन, सगे संबंधी। दारा=स्त्री। निरसंक=निडर। सदा=अमर।

बिरह और प्रेम का अंग

१. बतियाँ=खबरें, कुरबान=न्यौछावर। निहाल=पूर्णकाम, सारी इच्छाएँ पूरी कर देना। आवागमन=जन्म-मरण।

धरमदास के दाता सतगुरु, पल में कियो निहाल।
आवागवन की डोरी कटि गई, मिटे भरम जंजाल ॥१॥

मितऊ मड़ैया सूनी करि गैलो ॥टेक॥
अपन बलम परदेस निकरि गैलो,
हमरा के कछुवो न गुन दै गैलो ॥
जोगिन होइके मैं वन-वन ढूंढौं,
हमरा के बिरह वैराग दै गैलो ॥
संग की सखी सब पार उतरि गैलीं,
हम धन ठाढ़ी अकेली रहि गैलो ॥
धरमदास यह अर्ज करतु है,
सार सब्द सुमिरन दै गैलो ॥२॥

मैं हेरि रहूँ नैना सो नेह लगाई ॥टेक॥
राह चलत मोहि मिलि गये सतगुरु, सो सुख बरनि न जाई।
देइ के दरस मोहि बौराये, लै गये चित्त चुराई ॥
छबि सत दरस कहाँलगि बरनौं, चाँद सुरज छपि जाई।
धरमदास बिनवै कर जोरी, पुनि पुनि दरस दिखाई ॥३॥

कहौं बुझाय दरद पिया तोसे।
दरद मिटै तरवार तीर से, किधौं मिटै जब मिलहुँ पीव से ॥
तन तलफैहिय कछु न सोहाय, तोहि बिन पिय मोसे रहल न जाय ॥
धरमदास की अरज गुसाँई, साहेब कबीर रहौं तुम छांहीं ॥४॥

साहेब, तेरी देखौं सेजरिया हो।
लाल महल कै लाल कँगूरा, लालिनि लागि किवरिया हो ॥
लाल पलग के लाल बिछौना, लालिनि लागि झलरिया हो ॥
लाल साहेब की लालिनि मूरत, लालि लालि अनुहरिया हो ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, गुरु के चरन बलिहरिया हो ॥५॥*

---

२. मितऊ=मित्र, प्रियतम। मड़ैया=हृदयरूपी कुटिया। सूनी करि गैलो=छोड़कर चला गया। बलम=प्यारा पति। कछुवो गुन=कुछ भी पता। धन=स्त्री।
३. बौराये=बावला बना दिया। छपि जाई=निस्तेज पड़ गये।
४. बुझाय=समझाकर। रहल न जाय=रहा नहीं जाता, चैन नहीं पड़ता है। छाहीं=छाहँ, शरण।
५. सेजरिया=सेज। किवरिया=किवाड़। झलरिया=झालर। अनुहरिया=रूप।

पिया बिन मोहिं नींद न आवै।
खन गरजै खन बिजुली चमकै, ऊपर से मोहिं झाँकि दिखावै।
सासु ननद घर दारुनि आहैं, नित मोहिं बिरह सतावै॥
जोगिन ह्वैके मैं वन-वन ढूंढूं, कोऊ न सुधि बतलावै।
धरमदास बिनवै कर ज़ोरी, कोई नेरे कोई दूर बतावै॥६॥

बिनती का अंग

भक्तिदान गुरू दीजिये देवन के देवा हो।
चरनकँवल बिसरौं नहीं, करिहौं पदसेवा हो॥
तिरथ बरत मैं ना करौं, ना देवल पूजा हो।
तुमहिं ओर निरखत रहौं मेरे और न दूजा हो॥
आठ सिद्धि नौ निद्धि हैं बैकुंठ-निवासा हो।
सो मैं ना कछु माँगहूँ, मेरे समरथ दाता हो॥
सुख सम्पति परिवार धन सुन्दर वर नारी हो।
सुपनेहुँ इच्छा ना उठै, गुरु आन तुम्हारी हो॥
धरमदरस की बीनती साहेब सुनि लीजै हो।
दरसन देहु पट खोलिकै आपन करि लीजै हो॥१॥

बिन दरसन भइ बावरी, गुरु द्यौ दीदार॥टेक॥
ठाढ़ि जोहौं तोरी बाट मैं, साहेब चलि आवौ।
इतनी दया हम पर करौ, निज छबि दरसावो॥
कोठरी रतन जड़ाव की, हीरा लागे किवार।
ताला कुंजी प्रेम की, गुरु खोलि दिखावो॥

---

*कबीर साहब की इस साखी से मिलाइए—

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

६. खन=क्षण में। दारुनि=निठुर स्वभाव का। नेरे=पास। सुधि=पता।

बिनती का अंग

१. तिरथ=तीर्थ-यात्रा। बरत=व्रत। आन तुम्हारी=तुम्हारी सौगंध। पट खोलिकै=परदा हटाकर।

बंदा भूला बंदगी, तुम बकसनहार।
धरमदास अरजी सुनो, कर द्यो भव-पार ॥२॥

साई, मैं असल गुलाम तिहारा ॥टेक॥
काया-नगर बन्यो अति सुन्दर, मोह को लग्यो बजारा।
कुमति कलोल करै दसहों दिसि, लोभ को ठुक्यो नगारा ॥
मोह समुंदर भरे अपरबल, भँवर भवैं अति भारा।
काम क्रोध की लहर उठतु है, केहि बिधि होय निवारा ॥
पाँच के ऊपर पचिस महतिया, इन परपंच पसारा।
मन अदली जहँ अदल चलावै, कहा करै जीव बिचारा ॥
ना मोरे नाव नाँहि खेवटिया, डर लागै मोहिं भारी।
चौदह लोक में कोइ नहिं दीसै, तुम गुरु पार उतारी ॥
धरमदास की यही बीनती, उरझे कों निर्वारो।
साहेब कबीर मिले गुरु समरथ, हम से अधम उबारो ॥३॥

मैं तौ तोरे भजन-भरोसे अबिनासी ॥टेक॥
तीरथ बरत कछू नहिं करहूँ, वेद पढ़ौं नहिं कासी ॥
जंत्र मंत्र टोटका नहिं जानौ, निसदिन फिरत उदासी ॥
यहि घट भीतर बधिक बसत है, दिये लोभ की टाटी ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरनन दासी ॥४॥

अब मोहिं दरसन देहु कबीर ॥टेक॥
तुम्हरे दरस से पाप कटत हैं, निरमल होत सरीर ॥
अमृत भोजन हंसा पावै, सब्द धुनन की खीर ॥
जहँ देखौं जहँ पाट पटंबर, ओढ़न अंबर चीर ॥
धरमदास की अरज गोसाँई, हंस लगावो तीर ॥५॥

साहेब मोहिं दरसन दीजे हो, करुना-निधि मिहर करीजे हो ॥
पपिहा के चित स्वाँति बसै, भावै नहिं जल दूजा हो॥

---

२. द्यो=दो। दीदार=दर्शन। दरसावो=दिखाओ। बंदगी=सेवा। बकसनहार=माफ़ करनेवाले।

३. ठुक्यो=पिट या बज रहा। अपरबल=प्रबल, अथाह। भवैं=घूमते हैं। भारा=भारी। निबारा=बचाव। अदली=हाकिम। अदल=हुक्म, सत्ता। निर्वारो=सुलझादो।

४. उदासी=विरक्त, लापर्वाह। बधिक=बहेलिया।

५. हँसा=ज्ञानस्वरूप मुक्त जीवात्मा। खीर=क्षीर, दूध। पाटंबर=रेशमी वस्त्र। अंबर=वस्त्र। लगावो तीर=पार उतारदो।

जैसे काग जहाज चढे, वाकों और न सूझा हो॥
बारबार बिनती करू, मेरी अरज सुनीजे हो॥
भवसागर से काढ़िके, अपना करि लीजे हो॥
सत्त लोक से सुरत करी, तब जग में आये हो॥
जम से जीव छोड़ायके, धर्मनि मन भाये हो॥६॥

मिहरबान है साहेब मेरा। दिलभर दरसन पाऊँ तेरा॥
तुम दाता मैं सदा भिखारी। देव दीदार जाउँ बलिहारी॥
करूँ बंदगी खिजमत दीजै। बकसो चूक दया बहु कीजे॥
सेवक तें बिगरै सो बारा। सतगुरु साहेब लेव उबारा॥
औगुन सेवक साहेब जानै। साहेब मन में ना गिल्यानै॥
धरमदास लई तुम्हरि पनाह। अगले पछिले बकस गुनाह॥७॥

भेद का अंग

झरि लागै महलिया, गगन घहराय॥टेक॥
खन गरजै खन बिजुली चमुकै, लहर उठै सोभा बरनि न जाय॥
सुन्न महल से अमृत बरसै, प्रेम अनंद होइ साध नहाय॥
खुली किवरिया मिटी अंधियरिया, धन सतगुरु जिन दिया है लखाय॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरन मैं रहत समाय॥१॥

मंगल

सतगुरु के उपदेस, फिरौ धन बावरी।
उठि चलो आपन देस, इहै भल दाव री॥१॥

हम कहि दिया है सनेस, तुम्हारे पीव का।
बिनु समुझे नहिं काज, आपने जीव का॥२॥

---

६. पपिहा=चातक। स्वाँति=स्वाती नक्षत्र में बरसा हुआ पानी। सुरत=सुध। धर्मनि=धरमदास को।
७. दीदार=दर्शन। खिजमत=खिदमत, सेवा। बकसो=क्षमा करो। ना गिल्यानै=घृणा नहीं होती है। पनाह=शरण।

भेद का अंग

१. झरि......घहराय=निर्विकल्प शून्यावस्था में अमृत की झड़ी लग रही है और अनहद नाद हो रहा है। खुली किवरिया=माया द्वारा डाला हुआ परदा हट गया। अँधियरिया=अविद्या का अंधकार।
२. (१) फिरो=संसारी मार्ग से लौट पड़ो। दाव=अवसर। (२) सनेस=संदेश। काज=लाभ।

जुगन जुगन हम आइ, कहा समुझाइकै।
बिनु समुझे धनि परिहौ, कालमुख जाइकै ॥३॥

काम क्रोध मद लोभ, छाँडु सब दुंद रे।
का सोवै दिन-रैन, बिरहिनी जागु रे ॥४॥

भवसागर की आस, छाँडु सब फंद रे।
फिरि चलु आपन देस, यही भल रंग रे ॥५॥

सुन सखि पिय कै रूप, तो बरनत ना बने।
अजर अमर तो देस, सुगंध सागर भरे ॥६॥

फूलन सेज सँवार, पुरुष बैठे जहाँ।
ढुरै अग्र कै चँवर, हंस राजै जहाँ ॥७॥

कोटिन भानु अंजोर, रोम एक में कहा।
ऊगे चन्द्र अपार, भूमि सोभा जहाँ ॥८॥

सेत बरन वह देस, सिंहासन सेत है।
सेत छत्र सिर धरे, अभय पद देत है ॥९॥

करो अजपा कै जाप, प्रेम उर लाइये।
मिलो सखी सत पीव, तो मंगल गाइये ॥१०॥

जुगनु जुगन अहिवात, अखंड सो राज है।
पिय मिले प्रेमानंद, तो हंस-समाज है ॥११॥

कहैं कबीर पुकार, सुनो धरमदास हो।
हंस चले सतलोक, पुरुष के पास हो ॥१२॥

सतगुरु सरन में आइ, तो तामस त्यागिये।
ऊँच नीच कहि जाय, तो उठि नहिं लागिये ॥
उठि बोलै रारै रार, सो जानो घींच है।
जेहि घट उपजै क्रोध, अधम अरु नीच है ॥

---

(३) जुगन.......समुझाइकै=हर युग में सद्गुरु के शब्द द्वारा जगत् को चेताया है। धन=सखी, जीवात्मा से आशय है। (६) अजर=जो जीर्ण न हो; नित्य एकरस। (७) पुरुष=परमपुरुष परमात्मा। अग्र कै=आगे से। हंस=मुक्त जीवात्माएँ। (८) अँजोर=प्रकाश। ऊगे=उदित हुए। (९) सेत बरन=सुभ्र, निर्मल। (१०) अजपा=जो जप वाणी से न होकर हर साँस में सुरत से होता रहता है। (११) अहिवात=सोहाग।

माला वाके हाथ, कतरनी काँख में।
सूझै नाहीं आगि, दबी है राख में॥
अमृत वाके पास, रुचै नहिं राँड को।
स्वान को यही सुभाव, गहै निज हाड़ को॥
का भे बात बनाये, परचै नहिं पीव सों।
अंतर का बदफैल, होइ का जीव सौं॥
कहै कबीर पुकारि, सुनो धर्म आगरा।
बहुत हंस लै साथ, उतरो भवसागरा॥३॥

चढ़ि अमवा की डारि, अकेली धन का रे खड़ी।
चले जाव मुरुख गँवार, मोरी तोहि का रे पड़ी॥
की तोरी सासू दारुनिया, की नैहर दूर बसै।
की तोरा पिय परदेस, जोहत वाकी वाट खड़ी॥
ना मोरि सासू दारुनिया, न नैहर दूर बसै।
हमरे बलम परदेस, जोहत वाकी बाट खड़ी॥
पचरंग पहिरि चुनरिया, ऊपर धरो आरसी।
सतगुरु संग सुजान, समुझै मोर पारसी॥
यह मंगल सतलोक, हंस जन गावहीं।
कहैं कबीर धरमदास, प्रेमपद पावहीं॥४॥

सूतल रहलौं मैं सखियाँ, तो विष कर आगर हो।
सतगुरु दिहलै जगाइ, पायौं सुखसागर हो॥
जब रहली जननी के ओदर, परन सम्हारल हो।
जबलौं तन में प्रान, न तोहि बिसराइब हो॥
एक बुंद से साहेब, मंदिल बनावल हो।
बिना नेंव कै मंदिल, बहु कल लागल हो॥
इहवाँ गाँव न ठाँव, नहीं पुर पाटन हो।
नाहिन बाट बटोही, नहीं हित आपन हो॥

---

३. तामस=क्रोध। ऊँच-नीच=भला-बुरा। नहिं लागिये=मुँह न लगे, प्रत्युत्तर न दे। रारै रार=लड़ाई ही लड़ाई से पैदा होता है। घींच=झगड़ा बढ़ानेवाला। काँख=बगल। राँड=अभागा। परचै=परिचय, पहचान। बदफैल=कुकर्मी। आगरा=आगर, खान।

४. मोरी......पड़ी=तुझे मुझसे क्या मतलब? दारुनिया=निठुर। नैहर=मायका। बलम=प्रियतम, पति। पारसी=भेद या रहस्य की भाषा से यहाँ तात्पर्य है। आरसी=दर्पण।

सेमर है संसार, भुवा उधराइल हो।
सुन्दर भक्ति अनूप, चले पछिताइल हो॥
नदी बहै अगम अपार, पार कस पाइब हो।
सतगुरु बैठे मुख मोरि, काहि गोहराइब हो॥
सत्तनाम गुन गाइब, सत ना डोलाइब हो।
कहैं कबीर धरमदास, अमर घर पाइब हो॥५॥

धनुष-बान लिये ठाढ़, जोगिनि एक माया हो।
छिनहिं में करत बिगार, तनिक नहिं दाया हो॥
झिर-झिर बहै बयार, प्रेम-रस डोलै हो।
चढ़ि नौरंगिया की डार, कोइलिया बोलै हो॥
पिया पिया करत पुकार, पिया नहिं आया हो।
पिय बिन सून मंदिलवा, बोलन लागे कागा हो॥
कागा हो तुम का रे, कियो बटबारा हो।
पिया मिलन की आस, बहुरि ना छूटहि हो॥
कहैं कबीर धरमदास, गुरू संग चेला हो।
हिलमिलि करो सतसंग, उतरि चलो पारा हो॥६॥

बधावा

मोरे आये संत सनेही, धन धन घड़ी आज की हो॥टेक॥
अतर फुलेल न्हवावों सजनी, केसरि तिलक लगावों हो॥
धूप दीप नैबेद आरती, फूलमाल पहिरावों हो॥
जिनके दरस होय सब काजा, तरसैं राना राजा हो॥
सत्त शब्द जहँ होय प्रकासा, अस कबीर धरमदासा हो॥१॥

सोहर

कहँवाँ से जीव आइल, कहँवाँ समाइल हो।
कहँवाँ कइल मुकाम, कहाँ लपटाइल हो॥

---

५. विष कर आगर=गाफ़िल पड़े रहना। विष की खान या प्रियतम के प्रति अचेत रहना मरण था। दिहलै जगाइ=चेता दिया। ओदर=उदर, गर्भ। परन=प्रण, प्रतिज्ञा। सम्हारल=ध्यान रखा। बिसराइब=भूलूँगा। मंदिल=मंदिर; शरीर से तात्पर्य है। बूँद से=वीर्य-विन्दु से। नेंव=नींव, बुनियाद। पाटन=नगर। हित=हितू, प्रिय। उधराइल=उधेड़कर उड़ गया। गोहराइब=पुकारूँगा। सत ना डोलाइब हो=सत्य पर से न डिगूँगा।

६. बिगार=विनाश। मंदिलवा=मन्दिर। बटबारा=बेठिकाने।

निरगुन से जिव आइल, सर्गुन समाइल हो।
कायागढ़ कइल मुकाम, माया लपटाइल हो॥
एक बुंद से काया-महल उठावल हो।
बुंद परे गलि जाय, पाछे पछितावल हो॥
हंस कहै भाइ सरवर, हम उड़ि जाइब हो।
मोर तोर एतन दिदार, बहुरि नहिं पाइब हो॥
इहवाँ कोइ नहिं आपन, केहि संग बोलै हो।
बिच तरवर मैदान, अकेला (हंस) डोलै हो॥
लख चौरासी भरनि, मनुख-तन पाइल हो।
मानुख-जनम अमोल, अपन सों खोइल हो॥
साहेब कबीर सोहर गावल, गाइ सुनावल हो।
सुनहु हो धर्मादास, एही चित चेतहु हो॥१॥

मिश्रित का अंग

गुरु बिन कौन हरै मोरी पीरा।
रहत अलीन मलीन जुगन जुग, राई बिनत पायो एक हीरा॥
पायो हीरा रहै नहिं धीरा, लेइके चले वोहि पारख तीरा॥
सो हीरा साधू सब परखे, तब से भयो मन धीरा॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, अजर अमर गुरु पाये कबीरा॥१॥

सत्तनामै जपु, लग लड़ने दे।
यह संसार काँट की बारी, अरुझि-सरुझिके मरने दे॥
हाथी चाल चलै मोर साहेब, कुतिया भुंकै तो भुँकने दे॥

---

१. सर्गुन=सगुण, त्रिगुणात्मिका प्रकृति। उठावल=बनाया। सरवर=सरोवर, तालाब, यहां देह से आशय है। हंस=यहाँ जीव से आशय है। दिदार=दीदार, दर्शन, मिलन। तरवर=वृक्ष। अपन सों खोइन=अपने हाथों गँवा दिया। सोहर=बालक के जन्म लेने पर जो गीत स्त्रियाँ गाती हैं उसे 'सोहर' कहते हैं।

मिश्रित का अंग

१. अलीन=चंचल, अयोग्य। मलीन=खिन्न, दुखी। राई.......हीरा=संसार के तुच्छ व्यवहार करते हुए अनायास हरिनाम पा गया। पारख-तीरा=जौहरी के पास। धीरा=निश्चल।

यह संसार भादों की नदिया, डूबि मरै तेहि मरने दे॥
धरमदास के साहेब कबीरा, पथर पूजै तो पुजने दे॥२॥

हमरे का करे हाँसी लोग।
मोरा मन लागा सतगुरु से, भला होय कै खोर।
जब से सतगुरु ग्यान भयो है, चलै न केहुके जोर॥
मात रिसाई पिता रिसाई, रिसाये बटोहिया लोग।
ग्यान-खड़ग तिरगुन को मारूँ, पाँच पचीसो चोर॥
अब तो मोहिं ऐसी बनि आवे, सतगुरु रचा संजोग।
आवत साध बहुत सुख लागै, जात बियापै रोग॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, सुनु हो बंदी-छोर।
जाको पद त्रयलोक से न्यारा, सो साहेब कस होय॥३॥

साहेब येहि बिधि ना मिलै, चित चंचल भाई॥
माला तिलक उरमाइके, नाचै अरु गावै।
अपना मरम जानै नहीं, औरन समुझावै॥
देखे को बक ऊजला, मन मैला भाई।
आँखि मूँदि मौनी भया, मछरी धरि खाई॥
कपट कतरनी पेट में, मुख बचन उचारी।
अंतरगति साहेब लखै, उन कहा छिपाई॥
आदि अंत की वार्ता, सतगुरु से पावो।
कहै कबीर धरमदास-से मूरख समझावो॥४॥

गाँठ परी पिया बोलै न हमसे।
माल मुलुक कछु संग न जैहै, नाहक बैर कियो है जग से॥
जो मैं जनितिउँ पिया रिसियैहै, नाहक प्रीति लगाती न जग से॥
निसुवासर पिया सँग मैं सूतिउँ, नैन अलसानी निकरि गये घर से॥

---

२. बारी=बाड़ी। भादों की नदिया=वर्षा की तेज धारवाली नदी; तृष्णा से आशय है। पथर पूजै=मूर्ति-पूजा करता है।

३. खोर=बुरा, बिगाड़। रिसाई=नाराज़ होते हैं। तिरगुन=तीनों गुण—सत्त्व, रज और तम। जात बियापै रोग=बिछुड़ने पर दुःख होता है। बंदी-छोर=संसार-बन्धन से छुड़ानेवाले। कस होय=कैसा होगा।

४. उरमाइके=लटकाकर, पहनकर। मरम=भेद; संसार से तरने का उपाय। बक=बगला। आदि-अन्त=जन्म और मरण।

जस पनिहारि धरे सिर गागर, सुरति न टरै बतरावत सब से ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, साहेब कबीर को पावै भाग से ॥५॥

मेरे मन बसि गये साहेब कबीर।
हिन्दू के तुम गुरु कहावो, मुसलमान के पीर।
दोऊ दीन ने झगड़ा माडेव, पायौ नहीं सरीर ॥
सील संतोष दया के सागर, प्रेम प्रतीत मति-धीर।
बेद कितेब मते के आगर, दोऊ दीनन के पीर ॥
बड़े-बड़े संतन हितकारी, अजरा अमर सरीर।
धरमदास की बिनय गुसाँई, नाव लगावो तीर ॥६॥

मुक्ति-लीला

हीरा जन्म न बारम्बार, समुझि मन चेत हो ॥
जैसे कीट पतंग पषान, भये पसु पच्छी।
जल तरंग जल माहिं रहे कच्छा औ मच्छी ॥
अंग उघारे रहे सदा, कबहुँ न पावै सुक्ख।
सत्य नाम जाने बिना, जन्म जन्म बड़ दुक्ख ॥१॥
सीतल पासा ढारि दाव खेलो संम्हारी।
जीतो पक्की सार, आव जनि जैहौ हारी ॥
रामै राम पुकारिके, लीन्हो नरक निवास।
मूँड़ गड़ाय रहे जिव, गर्भ मांहिं दस मास ॥२॥
गर्भ दुक्ख ते काढ़ि, प्रगट प्रभु बाहर कीन्हो।
भक्ति-अंग को छापि, अंक दस्तक लिखि दीन्हो ॥

---

५. रिसियैहै=रूठ जायेगा। सूतिउँ=सोई, साथ रही। नैन अलसानी=ज़रा-सी असावधानी होने पर। बतरावत=बातचीत करता है। सुरति=ध्यान।

६. माडेव=मचाया। कितेब=किताब, कुरान से तात्पर्य है। दीनन के=धर्मों के। पीर=धर्मगुरु। अजरा=अजर, जो कभी वृद्ध न हो।

मुक्ति-लीला

१. (१) कच्छा=कच्छप, कछुवा। (२) सीतल पासा=शील-संतोष से तात्पर्य है। दाव=बाजी; जुआ खेलने का पासा, चौसर। आव=आयु। मूँड़ गड़ाइ=नीचे की ओर सिर किये हुए।

वाको नाम बिसरि गयो, जिन पठयो संसार।
रंचक सुख के कारने, बिसरि गयो निज सार ॥३॥

नहिं जाने केहि पुन्य, प्रगट भे मानुष-देही।
मन बच कर्म सुभाव, नाम सों करले नेही ॥
लख चौरासी भर्मिके, पायो मानुष-देह।
सो मिथ्या कस खोवते, झूठी प्रीति-सनेह ॥४॥

बालक बुद्धि अजान, कछू मन में नहिं आने।
खेलै सहज सुभाव, जहीं आपन मन माने ॥
अधर कलोले होइ रह्यो, ना काहू को मान।
भली बुरी ना चित धरै, बारह बरस समान ॥५॥

जोवन रूप अनूप, मसी ऊपर मुख छाई।
अंग सुगंध लगाय, सीस पगिया लटकाई ॥
अंध भयो सूझै नहीं, फूटि गई है चार।
झटकै पड़े पतंग ज्यों, देखि बिरानी नार ॥६॥

जोवन जोर झकोर, नदी उर अंतर बाढ़ी।
संतो हो हुसियार, कियो ना बांहू गाढ़ी ॥
दे गजगीरी प्रेम की, मूँदो दसो दुवार।
वा साँई के मिलन में, तुम जनि लावो बार ॥७॥

बृद्ध भये पछिताय, जबै तीनों पन हारे।
भई पुरानी प्रीति बोल, अब लागत प्यारे ॥
लचपच दुनियां ह्वै रही, केस भये सब सेत।
बोलत बोल न आवई, लूटि लिये जम खेत ॥८॥

माया रंग कुसुम्म महा देखन को नीको।
मीठो दिन दुइ चार, अंत लागत है फीको ॥
कोटिन जतन रह्यो नहीं, एक अंग निज मूल।
ज्यों पतंग उड़ि जायगो, ज्यों माया काफूर ॥९॥

---

(३) छापि=मोहर लगाकर। दस्तक=परवाना। रंचक=थोड़ा-सा। (४) नेही=स्नेह, प्रेम। मिथ्या=व्यर्थ। (६) मसी ऊपर मुख छाई=मसि भींग गई, रेख आ गई। चार=चारो आँखें-दो चर्मचक्षु और दो ज्ञानचक्षु। बिरानी नार=पराई स्त्री। (७) दसो दुवार=दसों इन्द्रियाँ—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, और पाँच कर्मेन्द्रियाँ। मूँदो=विषयों की ओर न जाने दो। बार=देरी। (८) लचकच=मग्न, लीन (९) एक अङ्ग=एक-सा। निजमूल=अपना असली

नाम के रंग मंजीठ, लगै छूटै नहिं भाई।
लचपच रहो समाय, सार ता में अधिकाई॥
केती बार धुलाइये, देदे करड़ा धोय।
ज्यों ज्यों बट्टी पर दिये, त्यों त्यों उज्जल होय॥१०॥

निकट जमन के जात, तबै ह्वैगो मुख कारो।
बोले बोल न आव, तबै तोहि करिहैं गारो॥
काल छली तिहुँ लोक में, नहिं काहू की मान।
राजा रानी मारिया, सबहीं कीन्ह दिवान॥११॥

देऊँ सुमति बिचार, सीख जो मेरी मानो।
चलो सुमारग चाल, भलो जो अपनो जानो॥
तिरिया निकट बुलाइके, दे गई माथे हाथ।
ले गइ रंग निचोइ के, ज्यों तेली कै काथ॥१२॥

जो मरि-भाखा बोल बोलि कामिन चित चोरयो।
छिनहीं प्रीति बढ़ाय, नाम से नाता तोरयो॥
रसबस कीन्हो आइके, गई ठगौरी मेल।
जीव लोभबस भ्रमि रहे करि केवल सुख-केल॥१३॥

सोबत हौ केहि नींद, मूढ़ मूरख अग्यानी।
भोर भये परभात, अबहिं तुम करो पयानी॥
अब हम साँची कहत हैं, उड़ियो पंख पसार।
छुटि जैहौ या दुक्ख तें, तन-सरवर के पार॥१४॥

नाव झाँझरी साजि, बांधि बैठौ बैपारी।
बोझ लद्यो पाषान, मोहिं डर लागै भारी॥
मांझ धार भव तखत में, आइ परैगी भीर।
एक नाम केवटिया करिले, सोई लावै तीर॥१५॥

रंग। काफूर=कपूर। (१०) मंजीठ=पक्का लाल रंग। लचपच रहौ समाय=घुलमिल जाओ (११) करिहैं गारो=कारागार में डाल देंगे। दिवान=दीवाना, पागल। (१२) सुमति=नेक सलाह। रंग निचोइके=यौवन को निचोड़कर। काथ=तलछट, खली। (१३) मरि-भाखा=मोहक व मारक शब्द। नाम=हरिनाम। गई ठगौरी मेल=मोहिनी डाल गई। केल=केलि, मौज। (१४) पयानी=प्रयाण, कूच। (१५) तखत=यहाँ नाव से तात्पर्य

सौ भइया की बांह, तपै दुर्जोधन राना।
परे नरायन बीच, भूमि देते गरबाना॥
जुद्ध रच्यो कुरुक्षेत्र में, वानन बरसे मेह।
तिनहीं के अभिमान तें, गिधहुँ न खायो देह॥१६॥

छत्रपती भूपाल रहत, देखा नहिं कोई।
दिन दस गये बजाइ, गर्द मां मिलिगे सोई॥
परिहौ नरक अघोर में, अब किन चेतो अंध।
सत्त नाम जाने बिना, परौ काल के फंद॥१७॥

हुई सलीता संग, बहुत हाथी औ घोरा।
मरन की बेरिया संग, चलै नहिं एको डोरा॥
कंचन-महल धरे रहे, और सुन्दरी नारि।
ज्योंकरि आये त्यों गये, चले दोउ कर झारि॥१८॥

जोधा आगे उलट पुलट, यह पुहमी करते।
बस नहिं रहते सोय, छिने इक में बल हरते॥
सौ जोजन मरजादै सिंध के, करते एकै फाल।
हाथन पर्बत तौलते, तिन धरि खायो काल॥१९॥

ऐसा यह संसार, रहँट की जेसी घरियाँ।
इक रीती फिरि जाय, एक आवै फिरि भरियाँ॥
उपजि उपजि बिनसत करै, फिरि फिरि जमे गिरास।
यही तमासा देखिके, मनुवा भयो उदास॥२०॥

जैसे कलपि-कलपिके, भये है गुड़ की माखी।
चाखन लागी बैठि, लपट गइ दोनों पांखी॥
पंख लपेटे सिर धुनै, मनहीं मन पछिताय।
वह मलयागिरि छांड़िके, इहाँ कौन बिधि आय॥२१॥

खेत बिरानो देखि, मृगा एक बन को रीझेव।
नितप्रति चुनि चुनि खाय, बान में इक दिन बीधेव॥

है। तीर=किनारा, पार। (१६) तपै=अत्याचार से शासन किया। परे नरायन बीच=श्रीकृष्ण दूत होकर गये, और समझाया। गरबाना=अभिमान किया। गिधहुँ=गीधों ने भी। (१७) दिन दस गये बजाइ=थोड़े दिन राज और अत्याचार करके चले गये। अघोर=घोर, भयंकर। किन=क्यों नहीं। (१९) पुहमी=पृथिवी। फाल=फलाँग। (२०) घरियाँ=घड़ियाँ। रीती=खाली, बिना पानी के। जमे-गिरास=मृत्यु का ग्रास, काल के मुँह में जाना।

उचकन चाहै बल करै, मनहीं मन पछिताय।
अब सो उचकि न पाइहौं, धनी पहूँचो आय ॥२२॥
रहे दूध के दूध, जाय पानी के पानी।
सुनो स्त्रवन चित लाय, कहौं कछु अकथ कहानी ॥
अकह कमल में स्त्रुति उठी, अनुभव शब्द प्रकाश।
केवल नाम कबीर है, गावै धनि धरमदास ॥२३॥

●

(२२) उचकन चाहै=कूदना चाहता है। बल करे=ज़ोर लगाता है। धनी=खेतवाला; काल से आशय है। (२३) अकह=अकथनीय। कमल=ब्रह्म-रन्ध्र से तात्पर्य है। स्त्रुति=ध्वनि, अनहद नाद।

बाबा मलूकदास

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१६३१ वि.

जन्म-स्थान—कड़ा (ज़िला इलाहाबाद)

जाति—कक्कड़ खत्री

पिता—सुन्दरदास

चोला-त्याग-संवत्—१७३८ वि.

बाबा मलूकदास बालपन से ही ऊँचे संस्कारी थे। रास्ते में कहीं कुछ काँटा कूड़ा-कचरा पड़ा देखते, तो उसे उठाकर एक तरफ़ फेंक देते थे। एक दिन घर के सामने की गली से एक महात्मा आ निकले। बालक मलूकदास को खेलते हुए देखकर उन्होंने पूछा—'यह किसका बालक है?' पिता सुन्दरदास को बुलाया और उनसे कहा—'तुम्हारा यह बालक आगे चलकर बड़ा नाम करेगा। देखो न, यह आजानुबाहु है। सो या तो यह भारी प्रतापी राजा होगा, या फिर कोई ऊँचा महात्मा।'

बचपन से ही मलूकदास साधु-सेवा बड़े प्रेम से किया करते थे। घर में जो कुछ पाते साधुओं के सेवा-सत्कार में लगा देते, मां की राज़ी से और चोरी से भी।

इनके पिता, जब यह दस-ग्यारह बरस के हुए, इन्हें कंबल बेचने हर आठवें दिन देहात की एक पैठ में भेजने लगे। जाड़े से ठिठुरते किसी ग़रीब आदमी को या साधु-संत को यह रास्ते में देखते तो उसे योंही मुफ़त में कंबल दे दिया करते थे।

हरि के प्रेम-रस का चसका बालपन से ही बाबा मलूकदास को लग गया था। हरि-रस में सदा मस्त रहते थे। बड़े त्यागी और बड़े ही निस्पृह। बाबाजी का औलियापना उनकी बानी से पूरा झलकता है।

बाबाजी जगन्नाथ स्वामी के भी बड़े भक्त थे। पुरी में आज भी 'मलूकदास का रोट' नित्य राजभोग में चढ़ाया जाता है।

बाबाजी के संबंध में अनेक अद्‌भुत चमत्कार प्रसिद्ध हैं, जैसे, एक अहीरिन के इकलोते बेटे को जिला देना, मलवे के नीचे दबे हुए मज़दूरों को ज़िंदा निकाल लेना, बादशाह आलमगीर के सामने अधर लटकते हुए भजन करना आदि।

बाबा मलूकदासजी ने संवत् १७३८ में अपना चोला छोड़ा १०८ वर्ष की अवस्था में।

बानी-परिचय

साखी, शब्द (पद) और कुछ कवित्त भी मलूकदासजी ने कहे हैं। अन्य कई संतों की तरह इन्होंने निर्गुण के साथ-साथ सगुण का भी गुण-गान किया है। प्रेम की लहलही लहर और पल-पल में रंग पलटनेवाली दुनिया के तईं मस्तीभरी लापर्वाही इनकी साध-बनी की खास खूबी है। "अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम। दास मलूका कहि गया, सबका दाता राम"—इनकी इस अखूट विश्वासमयी साखी का, यह तो प्रसिद्ध ही है कि, कितना ग़लत अर्थ लगाया जाता है।

भाषा मिली-जुली साधु-भाषा है। फ़ारसी के अनेक शब्दों और मुहाविरों का भी प्रयोग इनकी बानी में हुआ है। जानदार भाषा है।

आधार

१ बाबा मलूकदासजी की बानी—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ साध-संग्रह अथवा नूतन भक्तमाल—स्वामी बाग, आगरा

●

बाबा मलूकदास

सतगुरु व निजरूप

शब्द

नाम तुम्हारा निरमला, निरमोलक हीरा।
तू साहेब समरत्थ, हम मल-मूत्र कै कीरा॥
पाप न राखै देह में, जब सुमिरन करिये।
एक अच्छर के कहतहीं, भौसागर तरिये॥
अधम-उधारन सब कहैं, प्रभु बिरद तुम्हारा।
सुनि सरनागत आइया, तब पार उतारा॥
तुझ-सा गरुवा औ धनी, जामें बड़ई समाई।
जरत उबारे पांडवा, ताती बाव न लाई॥
कोटिक औगुन जन करै, प्रभु मनहिं न आनै।
कहत मलूकदास को अपना करि जानै॥१॥

सदा सोहागिन नारि सो, जाके राम भतारा।
मुख माँगे सुख देत हैं, जगजीवन प्यारा॥
कबहुँ न चढ़ै रंडपुरा, जानै सब कोई।
अजर अमर अबिनासिया, ताको नास न होई॥
नरदेही दिन दोय की, सुन सुरजन मेरी।
क्या ऐसों का नेहरा, मुए बिपति घनेरी॥
ना उपजै ना बीनसै, संतन सुखदाई।
कहै मलूक यह जानिके मैं प्रीति लगाई॥२॥

सतगुरु व निजरूप

१. कीरा=कीड़ा। बिरद=प्रसिद्धि, बड़ा नाम। गरुवा=महान्। बड़ई समाई=बड़ी ही सामर्थ्य। जरत उवारे पाण्डवा=लाक्षागृह में से, जिसे दुर्योधन ने पाण्डवों को जला देने की इच्छा से बनवाया था, विदुर ने पहले ही सूचना देकर पाण्डवों को उसमें से बाहर निकाल लिया। ताती बाव=गर्म हवा।

२. भतारा=भर्ता, पति। रंडपुरा=रँड़ापा। सुरजन=निश्चित मत। नेहरा=स्नेह।

विनती

अब तेरी शरण आयो राम।
जबै सुनिया साध के मुख, पतितपावन नाम॥
यही जान पुकार कीन्ही, अति सतायो काम।
विषय सेती भयो आजिज, कह मलूक गुलाम॥१॥

साँचा तू गोपाल, साँच तेरा नाम है।
जहँवाँ सुमिरन होय, धन्य सो ठाम है॥
साँचा तेरा भक्त, जो तुझको जानता।
तीन लोक को राज, मनै नहिं आनता॥
झूठा नाता छोड़ि, तुझे लव लाइया।
सुमिरि तिहारो नाम, परमपद पाइया॥
जिन यह लाहा पायो, यह जग आइकै।
उतरि गयो भव पार, तेरो गुन गाइकै॥
तुही मातु तुही पिता, तुही हितु बंधु है।
कहत मलूकदास, बिना तुझ धुंध है॥२॥

प्रेम

कौन मिलावै जोगिया हो, जोगिया बिन रह्यौ न जाइ॥टेक॥
मैं जो प्यासी पीव की, रटत फिरौं पिव पीव।
जो जोगिया नहिं मिलिहै हो, तो तुरत निकासूँ जीव॥
गुरुजी अहेरी मैं हिरनी, गुरु मारैं प्रेम का बान।
जेहि लागै सोई जानई हो, और दरद नहिं जान॥
कहैं मलूक सुनु जोगिनी रे, तनहिं में मनहि समाय।
तेरे प्रेम के कारने जोगी सहज मिला मोहिं आय॥१॥

बिनती

१. विषय सेती=विषय-सेवन के परिणामरूप दुःख से। आजिज=लाचार।
२. लाहा=लाभ। धुंध=द्वंद्व; झगड़ा।

प्रेम

१. जोगिया=प्यारा सतगुरु। अहेरी=शिकारी। जोगिनी=प्रेम की साधिका, जीवात्मा।

दर्द-दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लै रहे, ऐसे मन-धीरा॥
प्रेम-पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमते, मैगल माता हाथी॥
उनकी नजर न आवते, कोई राजा रंक।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते निहसंक॥
साहेब मिल साहेब भये, कछु रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गये, जहँ पवन न जाई॥२॥

भक्त-महिमा

सोइ सहर सुबस बसे, जहँ हरि के दासा।
दरस किये सुख पाइये, पूजै मन आसा॥
साकट के घर साधजन, सुपनैं नहिं जाहीं।
तेंइ-तेइ नगर उजाड़ हैं, जहँ साधू नाहीं॥
मूरत पूजैं बहुत मति, नित नाम पुकारैं।
कोटि कसाई तुल्य हैं, जो आतम मारैं॥
परदुख-दुखिया भक्त है, सो रामहिं प्यारा।
एक पलक प्रभु आपतें, नहिं राखैं न्यारा॥
दीनबंधु करुनामयी, ऐसे रघुराजा।
कहैं मलूक जन आपने को कौन निवाजा॥१॥

हमसे जनि लागे तू माया।
थोरे से फिर बहुत होयगी, सुनि पैहैं रघुराया॥
अपने में है साहेब हमरा, अजहूँ चेतु दिवानी।
काहू जन के बस परि जैहौ, भरत मरहुगी पानी॥
तर ह्वै चितय लाज करु जन की, डारु हाथ की फाँसी।
जन तें तेरो जोर न चलिहै, रच्छपाल अबिनासी॥२॥

---

२. अलमस्त=मतवाला, निर्द्वन्द्व। अकीदा=विश्वास। मैगल=मतवाला। निहसंक=निर्भय। तमाई=वासना।

भक्त-महिमा

१. साकट=शाक्त, वाममार्गी। आतम मारैं=आत्मा को कष्ट देते हैं। निवाजा=कृपा की, उद्धार किया।

२. बहुत होयगी=झगड़ा बहुत बढ़ जायगा। काहू जन के=किसी हरिभक्त के। तर ह्वै चितय=नीचे की ओर देख।

चेतावनी

राम मिलन क्यों पइये, मोहि राखा ठगवन घेरि, हो ॥
क्रोध तो काला नाग है, काम तो परघट काल।
आप आपको खैंचते, मोहि कर डाला बेहाल, हो ॥
एक कनक और कामिनी, यह दोनों बटपार।
मिसरी की छुरी गर लायके, इन मारा सब संसार, हो ॥
इन में कोई ना भला, सब का एक विचार।
पैंडा मारैं भजन का, कोइ कैसेके उतरै पार, हो ॥
उपजत बिनसत थकि पड़ा, जियरा गया उकताय।
कहै मलूक बहु भरमिया, मो पै अब नहिं भरमो जाय, हो ॥१॥

मुवा सकल जग देखिया, मैं तो जियत न देखा कोय, हो ॥
मुवा मुई को ब्याहता रे, मुवा ब्याह करि देइ।
मुए बराते जात हैं, एक मुवा बधाई लेइ, हो ॥
मुवा मुए से लड़न को, मुवा जोर लै जाइ।
मुरदे मुरदे लड़ि, मरे मुरदा मन पछिताइ, हो ॥
अंत एक दिन मरौगे रे, गलि गलि जैहै चाम।
ऐसी झूठी देह तें, काहे लेव न सांचा नाम, हो ॥
मरने मरना भांति है रे, जो मरि जानै कोइ।
राम्दुवारे जो मरे, वाका बहुरि न मरना होइ, हो ॥
इनकी यह गति जानिके, मैं जहँ-तहँ फिरौं उदास।
अजर अमर प्रभु पाइया, कहत मलूकदास, हो ॥२॥

उपदेश

आपा मेटि न हरि भजे, तेइ नर डूबे।
हरि का मर्म न पाइया, कारन कर ऊबे ॥

चेतावनी

१. ठगवन=ठगोने। परघट=प्रकट, प्रत्यक्ष। बटपार=राह में लूट लेनेवाले। मिसरी की छुरी=मोहिनी। पैंडा मारैं=रास्ते से भटका देते हैं। गया उकताय=ऊब गया।

२. भाँति=अंतर। उदास=विरक्त।

करैं भरोसा पुत्र का, साहेब बिसराया।
बूड़ गये तरबोर को, कहुँ खोज न पाया॥
साध-मंडली बैठिके, मूढ़ जाति बखानी।
हम बड़ हम बड़ करि मुए, बूड़े बिन पानी॥
तबके बाँधे तेई नर, अजहूँ नहिं छूटे।
पकरि-पकरि भलि भांति से, जमदूतन लूटे॥
काम को सब त्यागिके, जो रामै गावै।
दास मलूका यों कहै, तेहिं अलख लखावै॥१॥

गर्व न कीजे बावरे, हरि गर्बप्रहारी।
गर्वहिं ते रावन गया, पाया दुख भारी॥
जरन खुदी रघुनाथ के, मन नाहिं सोहाती।
जाके जिय अभिमान है, ताकी तोरत छाती॥
एक दया औ दीनता, ले रहिये भाई।
चरन गहो जाय साध के, रीझैं रघुराई॥
यही बड़ा उपदेस है, परद्रोह न करिये।
कह मलूक हरि सुमिरके भौसागर तरिये॥२॥

ना बह रीझै जप तप कीन्हें, ना आतम को जारे।
ना वह रीझै धोती टाँगे, काया के पखारे॥
दाया करै, धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।
अपना-सा दुख सबका जानै, ताहिं मिलैं अविनासी॥
सहै कुसब्द, बादहू त्यागै, छाँड़े गर्व गुमाना।
यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दिवाना॥३॥

मन में इतने भरम गँवावो।
चलत बिदेस बिप्र जनि पूछो, दिन का दोष न लावो॥
संझा होय करो तुम भोजन, बिनु दीपक के बारे।
जौन कहैं असुरन की बेरिया, मूढ़ दई के मारे॥

उपदेश

१. तरबोर=बिना थाह। जाति बखानी=ऊँचे कुल का बखान किया।

२. जरनि=जलन, ईर्ष्या। खुदी=अहंकार।

३. धोती टाँगे=छू जाने के भय से धोती ऊपर को उठाकर चलना। उदासी=अनासक्त। बाद हू=वाद-विवाद भी।

आप भले तो सबहि भलो है, बुरा न काहू कहिये।
जाके मन कछु बसै बुराई, तासों भागे रहिये॥
लोक बेद का पैंडा औरहि, इनकी कौन चलावे।
आतम मारि पषानैं पूजैं, हिरदै दया न आवै॥
रहो भरोसे एक राम के, सूरे का मत लीजै।
संकट पड़े हरज नहिं मानो, जिय का लोभ न कीजै॥
किरिया करम अचार भरम है, यही जगत का फंदा।
माया-जाल में बाँधि अँडाया, क्या जानै नर अन्धा॥
यह संसार बड़ा भौसागर, ताको देखि सकाना।
सरन गये तोहि अब क्या डर है, कहत मलूक दिवाना॥४॥

राम कहो राम कहो, राम कहो बावरे।
अवसर न चूक भोंदू, पायो भला दाँव रे॥
जिन तोको तन दीन्हो, ताको न भजन कीन्हो,
जनम सिरानो जात तेरो लोहे कैसो ताव रे॥
रामजी को गाव गाव, रामजी को तू रिझाव,
रामजी के चरनकमल चित्त माहिं लाव रे॥
कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस,
आनँद-मगन होइके, तैं हरिगुन गाव रे॥५॥

फुटकर

अब मैं अनुभव पदहिं समाना।
सब देवन को भर्म भुलाना, अविगति हाथबिकाना॥
पहला पद है देई-देवा, दूजा नेम-अचारा।
तीजे पद में सब जग बंधा, चौथ अपरम्पारा॥
सुन्न महल में महल हमारा, निरगुन सेज बिछाई।
चेला गुरु दोउ सैन करत हैं, बड़ी असाइस पाई॥

---

४. भरम=मिथ्या विश्वास। बारे=जलाये। जाने........मारै=जो यह कहें कि सन्ध्या तो राक्षसों का समय है, समझलो कि उन मूर्खों की बुद्धि मारी गई है। भागे=दूर। पैंडा=रास्ता। सूरे का मत लीजे=अंधे से उसके अपनी लकड़ी पर के भरोसे से पाठ सीखले। अँडाया=अटका दिया। सकाना=सकपकाया, डर गया।

५. भोंदू=मूर्ख। ताव=ताप, उतनी गर्मी जितनी किसी चीज़ को तपाने या पकाने के लिए पहुँचाई जाय।

एक कहै चल तीरथ जइये, (एक) ठाकुरद्वार बतावै।
परमजोति के देखे संतो, अब कछु नजर न आवै॥
आवागवन का संसय छूटा, काटी जम की फांसी।
कह मलूक मैं यही जानिके, मित्र कियो अविनासी॥१॥

दीनबंधु दीनानाथ मेरी तन हेरिये॥
भाई नाहिं बंधु नाहिं, कुटुम परिवार नाहिं,
ऐसा कोई मित्र नाहिं, जाके ढिग जाइये॥
सोने की सलैया नाहिं, रूपे को रुपैया नाहिं,
कौड़ी पैसा गाँठ नाहिं जासे कछु लीजिये॥
खेती नाहिं बारी नाहिं, बनिज व्यौपार नाहिं,
ऐसा कोई साहु नाहिं जासों कछु माँगिये॥
कहत मालूकदास, छोड़दे पराई आस,
रामधनी पायके अब काकी सरन जाइये॥२॥

कवित्त

भील कद करी थी भलाई जिया आप जान,
फील कद हुआ था मुरीद कहु किसका॥
गीध कद ज्ञान की किताब का किनारा छुआ,
व्याध और बधिक तारा, क्या निसाफ तिसका॥
नाग कद माला लैके बंदगी करी थी बैठ,
मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका॥
एते बदराहों की तुम बदी करी थी माफ़,
मलूक अजाती पर एती करी रिस का॥३॥

फुटकर

१. सुन्न महल=चित्त की शून्यावस्था, निर्विकल्प समाधि की स्थिति। असाइस= आसाइश, आराम।
२. तन=ओर। सलैया=सलाई, पाँसा। रूपे को=चाँदी का।
३. भील=शबरी से अभिप्राय है। कद=कब। फील=गजेन्द्र से तात्पर्य है, जिसे भगवान् ने ग्राह के फंद से बचाया था। मुरीद=चेला। गीध=जटायु से आशय है। निसाफ़=इन्साफ़, न्याय। नाग=गजेन्द्र। हिसका=स्पर्धा। रिस=नाराज़गी। का=क्या।

साखी

मलुका सोई पीर है, जो जानै पर-पीर।
जो पर-पीर न जानही, सो काफिर बेपीर ॥१॥

जहाँ-जहाँ बच्छा फिरै, तहाँ-तहाँ फिरै गाय।
कह मलूक जहँ संतजन, तहाँ रमैया जाय ॥२॥

भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।
दिल फकीर जे हो रहे, साहेब तिनके साथ ॥३॥

कह मलूक हम जबहिं तें लीन्ही हरि की ओट।
सोवत हैं सुखनींद भरि, डारि भरम की पोट ॥४॥

राम राम के नाम को, जहाँ नहीं लवलेस।
पानी तहाँ न पीजिये, परिहरिये सो देस ॥५॥

गांठी सत्त कुपीन में, सदा फिरै निःसंक।
नाम अमल माता रहे, गिनै इन्द्र को रंक ॥६॥

धर्महिं का सौदा भला, दाया जग व्योहार।
रामनाम की हाट ले, बैठा खोल किवार ॥७॥

औरहिं चिन्ता करन दे, तू मत मारे आह।
जाके मोदी राम-से, ताहि कहा परवाह ॥८॥

रामराय असरन सरन, मोहिं आपन करि लेहु।
संतन सँग सेवा करौं, भक्ति-मजूरी देहु ॥९॥

भक्ति-मजूरी दीजिये, कीजै भवजल पार।
बोरत है माया मुझे, गहे बाहँ बरियार ॥१०॥

प्रेम नेम जिन ना कियो, जीतो नाहीं मैन।
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन ॥११॥

साखी

१. पीर=सिद्ध, धर्मगुरु।
२. रमैया=राम।
४. पोट=गठरी।
६. कुपीन=कौपीन, लँगोटी।
८. मोदी=साहूकार।
१०. बरियार=ज़बरदस्ती।
११. मैन=मदन, काम-वासना।

रात न आवै नींदड़ी, थरथर काँपै जीव।
ना जानूँ क्या करैगा, जालिम मेरा पीव ॥१२॥

सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार।
मंदिर ढूँढ़त को फिरै, मिल्यो वजावनहार ॥१३॥

करै पखावज प्रेम का, हृदय बजावै तार।
मनै नचावै मगन ह्वै, तिनका मता अपार ॥१४॥

जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव।
अंतर्जामी जानिहै, अंतरगत का भाव ॥१५॥

माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाया बिसराम ॥१६॥

जेती देखौ आतमा, तेते सालिगराम।
बोलनहारा पूजिये, पत्थर से क्या काम ॥१७॥

देवल पुजे कि देवता, की पूजे पाहाड़।
पूजन को जाँता भला, जो पीस खाय संसार ॥१८॥

मक्का मदिना द्वारका, बद्री अरु केदार।
बिना दया सब झूठ है कहै मलूक बिचार ॥१९॥

हरी डारि ना तोड़िये लागै छूरा बान।
दास मलूका यों कहै, अपना-सा जिव जान ॥२०॥

जे दुखिया संसार में, खोवो तिनका दुक्ख।
दलिद्दर सौंप मलूक को, लोगन दीजै सुक्ख ॥२१॥

कुंजर चींटी पशू नर, तामें साहेब एक।
काटै गला खोदाय का, करै सूरमा लेख ॥२२॥

सब कोउ साहेब बन्दते, हिन्दू मूसलमान।
साहेब तिसको बन्दता, जिसका ठौर इमान ॥२३॥

---

१३. तार=सितार या वीणा।

१६. बिसराम=विश्राम, छुट्टी।

१७. आतमा=प्राणी।

१८. जाँता=चक्की।

२१. दलिद्दर=दरिद्रता, दुःख।

दया-धर्म हिरदै बसै, बोलै अमिरत बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन ॥२४॥
मलूक वाद न कीजिये, क्रोधै देहु बहाय।
हार मानु अनजान तें, बकबक मरै बलाय ॥२५॥
मूरख को का बोधिये, मन में रहो बिचार।
पाहन मारे क्या भया, जहँ टूटै, तरवार ॥२६॥
दुखदाई सबतें बुरा, जानत है सब कोय।
कह मलूक कंटक मुवा, धरती हलकी होय ॥२७॥
कोई जीति सकै नहीं, यह मन जैसे देव।
याके जीते जीत है, अब मैं पायो भेव ॥२८॥
तैं मत जानै मन मुवा, तन करि डारा खेह।
ताका क्या इतबार है, जिन मारे सकल बिदेह ॥२९॥
सुन्दर देही पायके, मत कोइ करै गुमान।
काल दरेरा खायगा, क्या बूढ़ा क्या ज्वान ॥३०॥
सुन्दर देही देखिके, उपजत है अनुराग।
मढ़ी न होती चाम की, तो जीवत खाते काग ॥३१॥
जेते सुख संसार के, इकठे किये बटोर।
कन थोरे काँकर घने, देखा फटक पछोर ॥३२॥
मलूक कोटा झाँझरा, भीत परी भहराय।
ऐसा कोई ना मिला, जो फर उठावै आय ॥३३॥
आदर मान महत्व सत, बालापन को नेह।
यह चारों तबहीं गये, जबहिं कहा 'कछु देह'॥३४॥
प्रभुताही कों सब मरैं, प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु कों मरै, तो प्रभुता दासी होय॥३५॥

●

---

२४. जिनके नीचे नैन=जो नम्र और शीलवान् हैं।
२६. बोधिये=उपदेश दे। पाहन=पत्थर।
२८. देव=दानव; देव का अर्थ फारसी में दानव हो गया है। भेव=भेद।
२९. खेह=मिट्टी। विदेह=महान् ज्ञानी, जिसे देह का भी मान न हो।
३०. दरेरा=रगड़ा, धक्का।
३२. कन=अन्न के दाने। काँकर=कंकड़। पछोर=सूप में रखकर अनाज साफ़ करना।
३३. झाँझरा=जर्जरित, बहुत पुराना। परी भहराय=ढह पड़ी; देहपात से अभिप्राय है।

बाबा धरनीदास

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१७१३ वि.

जन्म-स्थान—माँझी गाँव (ज़िला छपरा)

पिता—परसरामदास

माता—बिरमा

जाति—कायस्थ

गुरु—स्वामी विनोदानन्द

चोला-त्याग-संवत्—अज्ञात

बाबा धरनीदास ने वैष्णव-कुल में जन्म लिया था। इनके दादा टिकैतदास एक धर्मभीरु गृहस्थ थे, जिनकी धर्म-भावना का धरनीदास पर बहुत प्रभाव पड़ा था।

बड़े होने पर धरनीदासजी माँझी के राजा के यहाँ दीवान के ओहदे पर नियुक्त हुए। किन्तु संवत् १७१३ में पिता की मृत्यु हो जाने से इनका चित्त बहुत खिन्न हो गया। वैराग्य के संस्कार जागृत हो उठे। घर के तथा ज़मींदारी के काम-काज से मन ऊब गया, और भगवद्भजन की ओर खिंचने लगा। निदान, एक दिन कागज़ पत्रों का बस्ता छोड़कर यह कड़ी कहते हुए दफ़तर से चल दिये—

"लिखनी नाहिं करौं रे भाई, मोहिं रामनाम सुधि आई।"

माँझी के राजा ने बहुत समझाया, बहुत आग्रह किया, पर धरनीदासजी नौकरी पर लौटे नहीं। नक़द रुपया और ज़मीन भी उसने देनी चाही, पर कुछ भी लेने से साफ़ इन्कार कर दिया। अब वे 'पूरनधनी' की ऐसी नौकरी में पहुँच गये थे, जिसके आगे तीन लोक की मालिकी भी तुच्छ थी। हरि-प्रेम में मस्त होकर गाने लगे—

"एक धनी धन मोरा हो ॥
काहू के धन सोना रूपा, काहू के हाथी घोरा हो।
काहू के मनि मानिक मोती, एक धनी धन मोरा हो ॥"

बानी-परिचय

बाबा धरनीदासजी के रचे दो ग्रन्थ कहे जाते हैं—**सत्यप्रकाश और प्रेमप्रकाश।**

इन्होंने विविध अङ्गों पर अनेक छन्दों में कहा है—शब्द, साखी, कवित्त, सवैया आदि इनकी बानी में आये हैं। 'ककहरा' भी है, और 'अलिफ़ नामा भी'। 'बारहमासा' भी इनका विरह-रस का अनूठा घट है।

धरनीदासजी की बानी में वैराग्य, विरह और मिलन-उल्लास का रस पद-पद पर छलक रहा है। सूफ़ी रंग भी जहाँ-तहाँ दीखता है। अभ्यास-जन्य स्वानुभव की निर्मल झलक तो इनके अनेक शब्दों में मिलती है। बानी सचमुच ऊँचे घाट की है।

भाषा भी मधुर और सरल है। फ़ारसी के शब्दों के साथ-साथ अनेक नये-नये जनपदीय शब्दों का भी बड़ा सुन्दर प्रयोग हुआ है।

आधार

१ धरनीदासजी की बानी—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ साध-संग्रह अथवा नूतन भक्तमाल—स्वामीबाग़, आगरा

●

बाबा धरनीदास

शब्द

एक पिया मोरे मन मान्यों, पतिव्रत ठान्यों हो।
अवरो जो इन्द्र समान, तौ त्रन करि जान्यों हो॥
जहँ प्रभु बैसि सिंहासन, आसन डासब हो।
तहवाँ बेनियाँ डोलइबों, बड़ सुख पइबों हो॥
जहँ प्रभु करहिं लवासन, पवढ़हि आसन हो।
कर तें पग सुहरैवों, हृदय सुख पइबों हो॥
धरनी प्रभु चरनामृत, नितहिं अँचइबों हो।
सन्मुख रहिबों मैं ठाढ़ी, अनतै नहिं जइबों हो॥१॥

राग सारंग

भई कन्त-दरस बिनु बावरी।
मो तन ब्यापै पीर प्रीतम की, मूरुख जानै आवरी॥
पसरि गयो तरु प्रेम साखा सखि, बिसरि गयो चित चाव री।
भोजन भवन सिंगार न भावै, कुल करतूति अभाव री॥
खिन खिन उठि उठि पंथ निहारों, बारबार पछिताँव री।
नैनन अंजन नींद न लागै, लागै दिवस विभाव री॥
देह-दसा कछु कहत न आवै, जस जल ओछे नाव री।
धरनी धनी अजहुँ पिय पावों, तौ सहजै अनँद-बधाव री॥२॥

शब्द

१. अवरो=और कोई। डासब=बिछायेंगे। बेनियाँ डुलइबों=बेनी का चँवर डोलाऊँगी। लवासन=भोजन। पवढ़हि आसन=सेज पर लेटेंगे। सुहरैबों=सुहलाऊँगी। अँचइबों=पीऊँगी। अनतै=और जगह।

२. आवरी=कुछ और ही। खिन-खिन=पल-पल, क्षण-क्षण। विभाव=उदास।

राग सारंग

हित करि हरिनामहिं लाग रे।
घरी घरी घरियाल पुकारै, का सोवै उठि जाग रे॥
चोआ चन्दन चुपड़ तेलना, अरु अलबेली पाग रे।
सो तन जरै खड़े जग देखो, गूद निकारत काग रे॥
मात पिता परिवार सुता सुत, बन्धु-त्रिया-रस त्याग रे।
साधु के संगति सुमिर सुचित होइ, जो सिर मोटे भाग रे॥
सम्बत जरै बरै नहिं जबलगि, तबलगि खेलहु फाग रे।
धरनीदास तासु बलिहारी, जहँ उपजै अनुराग रे॥३॥

राग बिलावल

तब कैसे करिहौ रामभजन।
अबहिं करौ जब कछु करि जानौ, अवचक कीच मिलैगो तन॥
अन्त समौ कस सीस उठैहौ, बोल न ऐहै दसन रसन।
थकित नाटिका नैन स्रवन बल, बिकल सकल अँग नखसिख सन॥
ओझा बैद सगुनिया पंडित, डोलत आँगन द्वार भवन।
मातु पिता परिवार विलखि मन, तोरि लिये तन सब अभरन॥
बारबार गुनि गुनि पछतैहो, परबस परिहै तन मन धन।
धरनी कहत सुनो नर प्रानी, बेगि भजो हरिचरनसरन॥४॥

राग बिलाबल

मै निरगुनियाँ, गुन नहिं जाना। एक धनी के हाथ बिकाना॥
सोइ प्रभु पक्का, मैं अति कच्चा। मैं झूठा, मेरा साहिब सच्चा।
मैं ओछा, मेरा साहिब पूरा। मैं कायर, मेरा साहिब सूरा॥
मैं मूरख, मेरा प्रभु ज्ञाता। मैं किरपिन, मेरा साहिब दाता।
धरनी मन मान्यों इक ठाउँ। सो प्रभु जीवो, मैं मरि जाउँ॥५॥

---

३. चोआ=शीतल सुगंधित द्रव पदार्थ। अलबेली पाग=टेढ़ी बाँकी पगड़ी। गूद=गूदा, चरबी। सम्बत्=आयु से तात्पर्य है।

४. अवचक=यकायक। रसन=जीभ। नाटिका=नाड़ी। ओझा=झाड़ फूँक करनेवाला, सयाना। अभरन=आभरण, गहना।

५. निरगुनियाँ=मूर्ख। ओछा=अपूर्ण।

राग बिलावल

एक धनी धन मोरा हो।
काहू के धन सोना रूपा, काहू के हाथी घोरा हो।
काहू के मनि मानिक मोती, एक धनी धन मोरा हो॥
राज न हरै, जरै न अगिन ते, कैसहु पाय न चोरा हो।
खरचत खात सिरात कबहिं नहिं, घाट बाट नहिं छोरा हो॥
नहिं सँदूक नहिं भुइँ खनि गाड़ों, नहिं पट घालि मरोरा हो।
नैन के ओझल पलकनि राखों, साँझ-दिवस निसि-भोरा हो॥
जब धन लै मनि बेचन चाहे, तीन हाट टटकोरा हो।
कोई वस्तु नाहिं ओहिजोगे, जो मोलउँ सो थोरा हो॥
जा धन तें जन भये धनी बहु, हिन्दू तुरुक करोरा हो।
सो धन धरनी सहजहिं पायो, केवल सतगुरु के निहोरा हो॥६॥

राग टोड़ी

जब मेरो यार मिलै दिलजानी। होइ लवलीन करौं मेहमानी॥
हृदयकमल बिच आसन सारी। ले सरधा-जल चरन पखारी॥
हित कै चन्दन चरचि चढ़ायो। प्रीति कै पंखा पवन डोलायो॥
भाव के भोजन परसि जेंवायो। जो उबरा सो जूठन पायो॥
धरनी इत-उत फिरहि न भोरे। सन्मुख रहहि दोऊ कर जोरे॥७॥

राग नट

जौलों मन तत्तुहिं नहिं पकरै।
तौलों कुमति-किवार न टूटैं, दया नाहिं उघरै॥
काहे के तीरथ-बरत भटकि भ्रम, थाकि-थाकि थहरै।

---

६. रूपा=चाँदी। सिरात=चुकता है। छोरा=लुटता है। खनि=खोदकर। पट घालि मरोरा=कपड़े में रखकर गाँठ बांधी। तीन हाट=तीन लोक से तात्पर्य है। टटकोरा=खोजा। ओहिजोगे=उसके बदले में लेनेयोग्य।

७. सारी=डालकर, बिछाकर। चरचि=लेप करके। उबरा=बचा। भोरे=भूलकर भी।

८. तत्तुहिं नहिं पकरै=सार-तत्त्व, अर्थात् आत्मज्ञान को ग्रहण नहीं करता। नाहिं उघरै=दीखती नहीं है। मण्डप=मन्दिर से तात्पर्य है। अन=अन्न। अनल बरै=पंचाग्नि के बीच तप करता है। बलकरि=हठपूर्वक।

मंडप महजिद मुरति सुरति करि, धोखेहिं ध्यान धरै॥
काहे के अन तजि बन-फल तोरे, का पचि अनल बरै।
काहे के बलकरि जल पेर सोवै, भुइँ खनि खँदक परै॥
दान बिधान पुरान सुनै नित, तौ नहिं काज सरै।
धरनी भवजल तत्तु नाव री, चढ़ि-चढ़ि भक्त तरै॥८॥

राग गौरी

रे बन्दे, तू काहेके होत दिवाना।
एक अलाह दोस्त है तेरा, अवर तमाम बेगाना॥
कौल करार बिसारि बावरी, मान मनी मन माना।
आखिर नहिं दुनियाँ में रहना, बहुरि उहाँई जाना॥
जाहिर जीव जहान जहाँलगि, सब मों एक खोदाई।
बहुरि गनीम कहाँ ते आया, जापर छुरी चलाई॥
दूर नहीं है दिल का मालिक, बिना दरद नहिं पैहौ।
धरनी बाँग बुलन्द पुकारै, फिरि पाछे पछितैहौ॥६॥

राग विहागरा

पिय बड़ सुन्दर सखि, बनि गैला सहज सनेह॥
जे-जे सुन्दरि देखन आवैं, ताकर हरि ले ज्ञान।
तीन भुवन कै रूप तुलै नहिं, कैसेके करउँ बखान॥
जे अगुवा अस कइल धरतुई, ताहि नेवछावरि जावँ।
जे बाम्हन अस लगन विचारल, तासु चरन लपटाँव॥
चारिउ ओर जहाँ-तहँ चरचा, आनकै नाँव न लेइ।
ताहि सखी की बलि-बलि जैहौं, जे मोरि साइति देइ॥
झलमल झलमल झलकत देखो, रोम-रोम मन मान।
धरनी हरषित गुन-गन गावै, जुग-जुग करि रसपान॥१०॥

---

६. गनीम=वैरी। बाँग बुलन्द=ऊँचे स्वर की अज़ान; वह ऊँचा शब्द या मन्त्रोच्चारण जो नमाज़ का समय बताने के लिए मुल्ला मस्जिद में करता है।

१०. अगुआ=व्याह की बात चलानेवाले। धरतुई कइल=सगाई कराई। साइति=ब्याह का मुहूर्त। मन माना=मन मोहित हो गया है।

सवैया

जीवन थोर बचा, भा भोर, कहा धन जोरि करोर बढ़ाये।
जीवदया करु साधु की संगति, पैहौ अभय पद दास कहाये॥
जासन कर्म छपावत हौ, सो तो देखत है घट में घर छाये।
बेग भजो धरनी सरनी, ना तो आवत काल कमान चढ़ाये॥१॥
ज्ञान को बान लगो धरनी, जन सोवत चौंकि अचानक जागे।
छूटि गयो विषया-विष-बन्धन, पूरन प्रेमसुधारस-पागे॥
भावत वाद विवाद निखाद, न स्वाद जहाँलगि सो सबत्यागे।
मूँदि गई अँखियाँ तबतें, जबतें हिये में कछु हेरन लागे॥२॥

साखी

धरनी जहँलगि देखिये, तहँलों सबै भिखारि।
दाता केवल सतगुरु, देत न मानै हारि॥१॥

धरनि फिरहिं देसन्तरा, धरि-धरिके बहु भेस।
कोई-कोई देखिहै, अन्तर गुरु-उपदेस॥२॥

धूवाँ कै धवरेहरा, औ धूरी को धाम।
ऐसे जीवन जगत में, बिनु गुरु बिनु हरि-नाम॥३॥

गोरिया, गरब करेहु जनि, अपने गोरे गात।
काल्हि परों चलि जाइहै, जैसे पियरे पात॥४॥

धरनी चहुँदिसि चरचिया, करि-करि बहुत पुकार।
नाहीं हम हैं काहुके, नाहीं कोउ हमार॥५॥

सवैया

१. घर छाये=बसा हुआ, व्यापक।
२. निखाद=निषिद्ध। कछु हेरत लागे=अंतर में कुछ-कुछ ज्ञान-ज्योति का प्रकाश नज़र आने लगा।

साखी

२. देसन्तरा=देशान्तर, दूसरे-दूसरे देश।
३. धूरी=धूल, बालू।
४. काल्हि परों=कल या परसों, जल्दी ही।

धरनी परबत पर पिया, चढ़ते बहुत डेराँव।
कबहुँक पाँव जु डिगमिगै, पावों कतहुँ न ठाँव ॥६॥

धरनी धवल धरेहरहिं, चढ़ि-चढ़ि चहुँदिसि हेर।
आवत पिय नहिं दीखतो, भइली बहुत अबेर ॥७॥

धरनी पलक परै नहीं, पिय की झलक सोहाय।
पुनि पुनि पीवत परमरस, तबहूँ प्यास न जाय ॥८॥

धरनी खेती भक्ति की, उपजे होत निहाल।
खरचि खाइ निबरै नहीं, परै न दुक्ख-दुकाल ॥९॥

धरनी मन मिलबो कहा, तनिक माहिं बिलगाय।
मन को मिलन सराहिये, इक में इक होइ जाय ॥१०॥

बिनु पगु निरत करो तहाँ, बिनु कर दै-दै तारि।
बिनु नैनन छवि देखना, बिनु सरवन झनकारि ॥११॥

बहुत दुवारे सेवना, बहुत भावना कीन्ह।
धरनी मन संसय मिटी, तत्व परो जब चीन्ह ॥१२॥

धरनी तन में तख्त है, ता ऊपर सुलतान।
लेत मोजरा सबहिं को, जहँलौं जीव जहान ॥१३॥

लिखि-लिखि सिख-सिख का भयो, पढ़ि-गुन गाय-बजाय।
धरनी मूरति मोहिनी, जौलगि हिय न समाय ॥१४॥

धरनी धरमी बाम्हते, बसहिं भरम के देस।
करम चढ़ावहि आपु सिर, अवर जे लैं उपदेस ॥१५॥

करनी पार उतारिहै, धरनी कियो पुकार।
साकित बाम्हन नहिं भला, भक्ता भला चमार ॥१६॥

माँस अहारी बाम्हना, सो पापी बहि जाउ।
धरनी सूद्र बइसनवा, ताहि चरन सिर नाउ ॥१७॥

---

६. परबत=प्रेम की ऊँची-से-ऊँची ठौर।

७. भइली=हो गई। अबेर=देर।

११. निरत=नृत्य। तारि=ताली। सरवन=श्रवण, कान।

१३. मोजरा=मुजरा, अभिवादन या विनती सुनना।

१६. साकित=व्यक्ति, वाममार्गी, मद्य-मांस का सेवन करनेवाला।

१७. बहि जाउ=नाश हो जाय, धिक्कार है।

दामिनी ऐसी कामिनी, फाँसी ऐसो दाम।
धरनी दुइ तें बाचिये, कृपा करै जो राम ॥१८॥

धरनी काहि असीसिये, दीजै काहि सराप।
दूजा कतहुँ न देखिये, सब घट आपे-आप ॥१६॥

धरनी सो पंडित नहीं, जो पढ़ि-गुनि कथै बनाय।
पंडित ताहि सराहिये, जो पढ़ा बिसरि सब जाय ॥२०॥

धरनी कोउ निन्दा करै, तू अस्तुति करु ताहि।
तुरत तमासा देखिये, इहै साधु मत आहि ॥२१॥

माँस-अहारी जीयरा, सो पुनि कथै गियान।
नाँगी होइ घूँघट करै, धरनी देखि लजान ॥२२॥

बिष लागे दुनिया मरै, अमृत लागे साध।
धरनी ऐसो जानिहै, जाको मता अगाध ॥२३॥

धरनी आपन मरम को, कहिए नाहीं काहि।
जाननहार सो जानिहै, जैसो जो कछु आहि ॥२४॥

●

---

१६. सराप=शाप।

२१. तमासा=प्रेम अर्थात् अहिंसा का अद्‌भुत परिणाम।

२२. जियरा=जीव।

२३. अमृत लागे साध=आत्मज्ञान का अमृत प्राप्त होने संतजन देहासक्ति की ओर से मर जाते हैं।

२४. मरम=हृदय का भेद।

जगजीवन साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१७२७ वि.
जन्म-स्थान—सरदहा गाँव (ज़िला बाराबंकी)
जाति—चंदेल क्षत्रिय
गुरु—बुल्ला साहब
भेष—गृहस्थ
मृत्यु-संवत—१८१८ वि.
मृत्यु-स्थान—कोटवा (ज़िला बाराबंकी)

जगजीवन साहब के पिता खेती-बाड़ी करते थे। यह भी बचपन में अपने घर के गाय-बैलों को चराने ले जाया करते थे। पर इनका मन संसारी कामों में लगता नहीं था। बालपन से ही परमार्थ और सत्संग की ओर इनके चित्त का झुकाव था। कहते हैं कि एक दिन कहीं मैदान में जब यह बैल चरा रहे थे, दो महात्मा वहाँ अचानक पहुँचे—एक तो बुल्ला साहब और दूसरे गोविन्द साहब। उन्होंने जगजीवन से अपनी चिलम के लिए आग ले आने के लिए कहा। दौड़कर यह घर से आग तो लाये ही, कुछ दूध भी महात्माओं को पिलाने के लिए लोटे में ले आये। पर दूध को पिता से पूछकर नहीं लाये थे, इससे मन में कुछ डर रहे थे। बुल्ला साहब इसे भाँप गये। जगजीवन लौटकर जब घर आये तो दूध का बर्तन उन्होंने वैसे का वैसा भरा हुआ पाया। देखकर चकित हो गये। फिर दौड़कर वहीं पहुँचे। दोनों साधु तबतक वहाँ से चल दिये थे। किन्तु उन्हें कुछ दूर जाकर पकड़ लिया, और बड़ा आग्रह किया कि, 'मुझे आप अपना चेला बनालें।' बुल्ला साहब ने बालक के सिर पर हाथ रख दिया और उसके अन्तर का चोला पलट गया, उसपर प्रेम और वैराग्य का गहरा रंग चढ़ गया। दोनों साधु चलते समय बालक जगजीवन को अपना एक-एक चिह्न भी दे गये,—बुल्ला साहब ने अपने हुक्के में से तोड़कर एक काला धागा और गोविन्द साहब ने अपने हुक्के में से सफ़ेद धागा लेकर उसकी दाहिनी कलाई पर बाँध दिया। जगजीवन साहब के सत्तनामी पंथवाले अनुयायी आज भी इस दोरंगे धागे को अपनी कलाई पर बाँधते हैं और इसे वे 'आँदू' कहते हैं।

शंका उठाई जाती है कि बालक जगजीवन को चेतानेवाले महात्मा 'बावरी पथ' के प्रसिद्ध बुल्ला साहब थे या इसी नाम के कोई दूसरे संत, अथवा अवध के सत्तनामी पंथ के प्रवर्त्तक जगजीवन साहब से भिन्न बुल्ला साहब के शिष्य यह कोई दूसरे जगजीवन साहब होगें। सत्तनामियों का कहना है कि जगजीवन साहब किन्ही विश्वेश्वर पुरी के शिष्य थे जो काशी में रहते थे, पर ऐसे विवादों में पड़ना व्यर्थ है। ऊँची गति को प्राप्त संतों के मार्ग-दर्शक गुरु अनेक हो सकते हैं। बावरी पंथ के ही बुल्ला साहब से उपदेश पाकर सत्तनामी पंथ को जगजीवन साहब ने अवध में चेताया, या किसी दूसरे इसी नाम के अथवा अन्य नाम के संत से शब्द-उपदेश लेकर इस प्रकार के ऊहापोह में क्यों पड़ा जाये? पहुँचे हुओं का मत एक ही होता है और वह पंथों से कुछ भिन्न व परे भी हो सकता है, और होता है।

जगजीवन साहब ने गृहस्थ-आश्रम में ही रहकर हज़ारों लोगों को परमार्थ का गहरा उपदेश दिया। इनकी दिन-दिन बढ़ती हुई महिमा को देखकर सरदहा गाँव के लोगों के मन में ईर्ष्या होने लगी। इसलिए सरदहा को छोड़कर यह वहाँ से छह मील दूर कोटवा गाँव में जाकर बस गये। कोटवा में जगजीवन साहब की आज भी समाधि और गद्दी है, जहाँ हर साल उनकी याद में एक बड़ा मेला लगता है। कोटवा शाखा के सत्तनामियों का यह बहुत बड़ा स्थान है। जगजीवन साहब ने इसी कोटवा में संवत् १८१८ में चोला छोड़ा था।

बानी-परिचय

कहा जाता है कि जगजीवन साहब ने ७ ग्रन्थ रचे थे—ज्ञान-प्रकाश, महाप्रलय, शब्द-सागर, अघविनाश, आगम-पद्धति, प्रथम-ग्रन्थ और प्रेम-ग्रन्थ। पर इनमें से प्रकाश में केवल शब्द-सागर ही आया है, जो दो भागों में ''जगजीवन साहब की बानी'' के नाम से इलाहाबाद के वेलवेडियर प्रेस से निकला है।

इनकी बानी बड़ी सरस और ऊँचे घाट की है। प्रेम और विरह और विनय का निरूपण कई पदों में इन्होंने बड़ा सजीव किया है। सदाचारी जीवन पर बहुत ज़ोर दिया है। इनकी बानी में आत्मानुभूति की हम स्पष्ट झलक देखते हैं। वास्तव में जगजीवन साहब की बानी बहुत निर्मल और सुलझी हुई है। भाषा में स्वाभाविक प्रवाह और अच्छी सरसता है।

आधार

१ जगजीवन साहब की बानी (दोनों भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ उत्तरी भारत की संत परंपरा—परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भंडार, इलाहाबाद

●

जगजीवन साहब

शब्द

साईं, जब तुम मोहि बिसरावत।
भूलि जात भौजाल-जगत मां, मोहिं नाहिं कछु आवत॥
जानि परत पहिचान होत जब, चरन-सरन लै आवत।
तब पहिचान होत है तुमते, सूरति सुरति मिलावत॥
जो कोई चहै कि करौं बंदगी, बपुरा कौन कहावत।
चाहत खैचि सरन ही राखत, चाहत दूरि बहावत॥
हौं अजान अज्ञान अहौं प्रभु, तुमतें कहिंकै सुनावत।
जगजीवन पर करत हौ दाया, तेहिते नहिं बिसरावत॥१॥

तुमसों मन लागो है मोरा।
हम तुम बैठे रही अटरिया, भला बना है जोरा॥
सत की सेज बिछाय सूति रहि, सुख आनन्द घनेरा।
करता हरता तुमहीं आहहु, करौं मैं कौन निहोरा॥
रह्यौ अजान अब जानि पर्‍यो है, जब चितयो एक कोरा।
अब निर्वाह किये बनि आइहि, लाय प्रीति नहिं तोरिय डोरा॥
आवागमन निवारहु साईं, आदि-अंत का आहिउँ चोरा।
जगजीवन बिनती करि मांगै, देखत दरस सदा रहौं तोरा॥२॥

शब्द

१. माँ=में। सूरति सुरति मिलावति=जब निरन्तर की लय तुम्हारे रूप से मिला देती है। बपुरा=बेचारा। दूरि बहावति=परे फेंक देते हो।

२. जोरा=जोड़ा। सूति रहि=सोते हैं। आहहु=हो। निहोरा=विनती। एक कोरा=प्रेम की एक नज़र से। डोरा=प्रेम का धागा। आहिउँ=हूँ।

चेतावनी

हमरा देखि करै नहिं कोई।
जो कोई देखि हमारा करिहै, अंत फजीहति होई॥
जस हम चले चलै नहिं कोई, करी सो करै न सोई।
मानै कहा कहे जो चलिहै, सिद्ध काज सब होई॥
हम तो देह धरे जग नाचब, भेद न पाई कोई।
हम आहन सतसंगी-बासी, सूरति रही समोई॥
कहा पुकारि बिचारि लेहु सुनि, बृथा सब्द नहिं होई।
जगजीवनदास सहज मन सुमिरन, बिरले यहि जग कोई॥१॥

बौरे, जामा पहिरि न जाना।
को तैं आसि कहाँ ते आइसि, समुझि न देखसि ज्ञाना॥
घर वह कौन जहाँ रह बासा, तहाँ ते किहेउ पयाना।
इहाँ तौ रहिहौ दुई-चारदिन, अंत कहाँ-कहँ जाना॥
पाप-पुन्न की यह बजार है, सौदा करु मन माना।
होइहि कूच ऊँच नहिं जानसि, भूलसि नाहि हैवाना॥
जो जो आवा रहेउ न कोई, सबका भयो चलाना।
कोऊ फूटि टूटि गारत भा, कोउ पहुँचा अस्थाना॥
अब कि सँवारि सँभारि बिचारिले, चूका सो पछिताना।
जगजीवन दृढ़ डोरि लाइ रहु गहि मन चरन अडाना॥२॥

सुन सखि, तुमतें कहौं समुझाई॥
करु न गुमान बहुरि पछितैहै, काहे क परसि भुलाई।
तब तैं आइसि कौन कौल करि, अब कस सुधि बिसराई॥
जागि लागि लय नात नाह तें, देहु त्याग दुचिताई।
एहु घर दिन दुइ चार का नैहर, परिहौ परघर पछिताई॥

चेतावनी

१. हमरा देखि=हमारी देखादेखी, हमारी नकल। फजीहति=विडंबना। आहन=है। सूरति रही समोई=लय-ध्यान में हम तल्लीन हो गये हैं। सहज मन=सहज भाव से।

२. जामा=देह से तात्पर्य है। आसि=है। आइसि=आया। कहाँ कहँ=किस-किस योनि में। ऊँच=ऊँचा स्थान, ब्रह्मपद। हैवाना=पशु, मूढ़। अडाना=टिकाना, अटकाना।

३. भुलाई परसि=भूल पड़ी, भूल गई। नात=नाता, संबंध। नाह=नाथ, स्वामी।

हँसि कहि बात घात तुम जनिहहु, रहि मन महँ पछिताई।
जगजीवन सत पिउ अंतर मिलु काहेक जीवन डेराई ॥३॥

नाम सुमिर मन बावरे, कहा फिरत भुलाना हो॥
मट्टी का बना पूतला, पानी सँग साना हो।
इक दिन हंसा चलि बसै, घर बार बिराना हो॥
निसि अँधियारी कोठरी, दूजे दिया न बाती हो।
बाँह पकरि जम लैचलै, कोउ संग न साथी हो॥
गज रथ घोड़ा पालकी, अरु सकल समाजा हो।
इक दिन तजि चल जायेंगे, रानी औ राजा हो॥
सेमर पर बैठा सुवना, लाल फर देख भुलाना हो।
मारत टोंट भुआ उधिराना, फिरि पाछे पछिताना हो॥
गूलर कै तू भुनगा, तू का आव समाना हो।
जगजीवनदास बिचारि कहत, सबको वहाँ जाना हो ॥४॥

गुरु और शब्द-महिमा

सुनु सुनु सखि री, चरनकमल तें लागि रहु री।
नीचे तें चढ़ि ऊँचे पाउ। मंदिल गगन मगन है गाउ॥
दृढ़करि डोरि पोढ़िकरि लाव। इत-उत कतहूँ नाहीं धाव॥
सत समरथ पिय जीव मिलाव। नैन दरस रस आनि पिलाव॥
माती रहहु सबै बिसराव। आदि अंत तें बहु सुख पाव॥
सन्मुख है पाछे नहिं आव। जुग-जुग बाँधहु एहै दाँव॥
जगजीवन सखि बना बनाव। अब मैं काहुक नाहिं डेराँव ॥१॥

देखो री, जोगिया रहत कहाँ।
तीनि लोक महँ माया बसति है, चौथे लोक रहत है तहाँ॥

दुचिताई=दुविधा। अंतर मिलु=कपट छोड़कर हृदय से मिल।

४. बिराना=पाया। सुबना=तोता। फर=फल। टोंट=चोंच। उधिराना=उधड़ गया।

गुरु और शब्द-महिमा

१. गगन-मंदिल=शून्य मंदिर, निर्विकल्प लय की अवस्था। धाव=दौड़, डगमग हो। बनाव=अनुकूल अवसर।

अधर सिंहासन बनो अहै री, जोगी बैठि रहत है तहाँ।
जगजीवन संतन महँ खोजो, कर बिचार अपने मन महाँ ॥२॥

तीरथ-ब्रत की तजिदे आसा।
सत्तनाम की रटना करिकै, गगन-मंडल चढ़ि देखु तमासा॥
ताहि मँदिल का अंत नहीं कछु, रबी बिहून किरिन परगासा।
तहाँ निरास बास करि रहिये, काहेक भरमत फिरै उदासा॥
देउँ लखाउ छिपावहुँ नाहीं, जस मैं देखउँ अपने पासा।
ऐसा कोऊ सब्द सुनि समुझै, कटि अघ-कर्म होइ तब दासा॥
नैन चाखि दरसन-रस पीवै, ताहि नहीं है जम की त्रासा।
जगजीवनदास भरम तेहि नाहीं, गुरु क चरन करै सुक्ख-विलासा ॥३॥

कर्म-भर्म-निषेध

बहुतक देखादेखी करहीं।
जोग जुक्ति कछु आवै नाहीं, अंत भर्म महँ परहीं॥
गे भरुहाइ अस्तुति जेइ कीन्हा, मनहिं समुझि ना परई।
रहनी गहनी आवै नाहीं, सब्द कहे तें लरई॥
नहीं विवेक कहै कछु औरे, और ज्ञान कथि करई।
सूझि-बूझि कछु आवै नाहीं, भजन न एकौ सरई॥
कहा हमार जो मानै कोई, सिद्ध सत्त चित धरई।
जगजीवन जो कहा न मानै, भार जाय सो परई ॥१॥

बहु पद जोरि-जोरि करि गावहिं।
साधन कहा सो काटि-कपटिकै, अपन कहा गोहरावहिं॥
निंदा करहिं विवाद जहाँ-तहँ, वक्ता बड़े कहावहिं।
आपु अंध कछु चेतत नाहीं, औरन अर्थ बतावहिं॥

---

२. चौथा लोक=तीन अवस्थाओं से परे, चौथी तुरीयावस्था से तात्पर्य है। अधर=बिना आधार के, शून्य में।

३. तमासा=अद्भुत रहस्य-लीला। रबी बिहून=बिना सूर्य के। निरास=निवृत्त, तटस्थ।

कर्म-भर्म-निषेध

१. भरुहाइगे=फूल गये। सरई=बनता है। सिद्ध=पूर्ण, निःसंशय।

जो कोउ राम का भजन करत है, तेहिकाँ कहि भरमावहिं।
माला मुद्रा भेष किये बहु, जग परमोधि पुजावहिं॥
जहँते आये सो सुधि नाहीं, झगरे जन्म गँवावहिं।
जगजीवन ते निन्दक वादी, बास नर्क महँ पावहिं॥२॥

मन महँ जाइ फकीरी करना।
रहै एकंत तंत तें लागा, राग निर्त नहिं सुनना॥
कथा चारचा पढ़ै-सुनै नहिं, नाहिं बहुत बक बोलना।
ना थर रहै जहाँ तहँ धावै, यह मन अहै हिंडोलना॥
मैं तैं गर्व गुमान बिबादहिं, सबै दूर यह करना।
सीतल दीन रहै मरि अंतर, गहै नाम की सरना॥
जल पषान की करै आस नहिं, आहै सकल भरमना।
जगजीवनदास निहारि निरखिकै, गहि रहु गुरु की सरना॥३॥

बिरह व प्रेम का अंग

पैयाँ पकरि मैं लेहुँ मनाय।
कहौं कि तुम्हहीं कहँ मैं जानौं, अब हौं तुम्हरी सरनहिं आय।
जोरी प्रीत, न तोरी कबहूँ, यह छबि सुरति बिसरि नहिं जाय॥
निरखत रहौं निहारत निसु-दिन, नैन दरस-रस पियौं अघाय।
जगजीवन के समरथ तुमहीं, तजि सतसंग अनत नहिं जाय॥१॥

झमकि चढ़ि जाऊँ अटरिया री।
ए सखि पूँछों साँई केहिं अनुहरिया री॥
सो मैं चहौं रहौं तेहिं संगहिं, निरखि जाउँ बलिहरिया री।
निरखत रहौं पलक नहिं लाओं, सूतों सत्त-सेजरिया री॥

---

२. काटि-कपटिकै=काट छाँटकर। अपन कहा=अपना रचा हुआ। गोहरावहिं=कहते हैं, पुकारते हैं। परमोधि=प्रबोध या ज्ञान का उपदेश देकर। वादी=बकवादी।

३. तंत=तत्त्व=विचार। चारचा=चर्चा, वार्ता। रहै मरि अन्तर=अहंकार को मारकर। भरमना=भ्रम, धोखा।

बिरह व प्रेम का अंग

१. पइयाँ=पैर। अघाय=तृप्त होकर।

रहौं तेहिं सँग रँग-रसमाती, डारौं सकल बिसरिया री।
जगजीवन सखि पायन परिके, माँगि लेउँ तिन सनिया री ॥२॥

मैं तन मन तुम्ह पर वारा।
निसि-दिन लागि चरन की छहियाँ, सूनी सेज निहारा ॥
तुम्हरे दरस काँ भइ बैरागिन, माँगौं सरन करारा।
जगजीवन के सतगुरु साईं, तुमहीं पार उतारा ॥३॥

जोगिन भइउँ अँग भसम चढ़ाय।
कब मोरा जियरा जुड़इहौ आय ॥
अस मन ललकै, मिलौं मैं धाय।
घर-आँगन मोहिं कछु न सुहाय ॥
अस मैं ब्याकुल भइउँ अधिकाय।
जैसे नीर बिन मीन सुखाय ॥
आपन केहि तें कहौं सुनाय।
जो समुझौं तौ समुझि न आय ॥
सँभरि-सँभरि दुख आवै रोय।
कस पापी कहँ दरसन होय ॥
तन मन सुखित भयो मोर आय।
जब इन नैनन दरसन पाय ॥
जगजीवन चरनन लपटाय।
रहै संग अब छूटि न जाय ॥४॥

अब की बार तारु मोरे प्यारे, विनती करिकै कहौं पुकारे।
नहिं वसि अहै केतौ कहि हारे, तुम्हरे अब सब बनहि सँवारे ॥
तुम्हरे हाथ अहै अब सोई, और दूसरो नाहीं कोई।
जो तुम चाहत करत सो होई, जल थल महँ रहि जोति समोई ॥
काहुक देत हौ मंत्र सिखाई, सो भजि अंतर भक्ति दृढ़ाई।
कहौं तो कछू कहा नहिं जाई, तुम जानत, तुम देत जनाई ॥

---

२. झमकि=उमाह से ठुमककर। अनुहरिया=सूरत। सेजरिया=सेज, पलंग। सनिया=से; सनेह यह अर्थ भी हो सकता है।

३. निहारा=राह देखती रही। करारा=किनारा।

४. जुड़इहौ=ठंडा करोगे। ललकै=लालसा करता है। सुखाय=सूख जाती है। सँभरि-सँभरि=रह-रहकर, याद कर-कर।

जगत भगत केते तुम तारा, मैं अजान केतान बिचारा।
चरन सीस मैं नाहीं टारौं, निर्मल मूरत निरत निहारौं॥
जगजीवन काँ अब विस्वास, राखहु सतगुरु अपने पास॥५॥

अरी, मैं तो नाम के रंग छकी॥
जबतें चाख्यो बिमल प्रेमरस, तब तें कछु न सोहाई।
रैनि दिना धुनि लागि रही, कोउ केतौ कहै समुझाई॥
नाम पियाला घोंटिकै कछु और न मोहिं चही।
जब डोरी लागी नाम की, तब केहिकै कानि रही॥
जो यहि रंग में मस्त रहत है, तेहि कै सुधि हरना।
गगन-मँदिल दृढ़ डोरि लगावहु, जाहि रहौ सरना॥
निर्भय ह्वैकै बैठि रहौं अब, माँगौं यह बर सोई।
जगजीवन बिनती यह मोरी, फिरि आवन नहिं होई॥६॥

मैं तोहिं चीन्हा, अब तौ सीस चरन तर दीन्हा॥
तनिक झलक छवि दरस देखाय। तबतें तन मन कछु न सोहाय॥
कहा कहौं कछु कहि नहिं जाय। अब मोहि काँ सुधि समुझि न आय॥
होइ जोगिन अँग भस्म चढ़ाय। भँवर-गुफा तुम रहेउ छिपाय॥
जगजीवन छवि बरनि न जाय। नैनन मूरति रही समाय॥७॥

रहिउँ मैं निरमल दृष्टि निहारी।
ए सखि मोहिं ते कहिय न आवे, कस-कस करहुँ पुकारी॥
रूप अनूप कहाँलगि बरनौं, डारौं सब कुछु वारी॥
रवि ससि गन तेहिं छवि सम नाहीं, जिन केहु गठा बिचारी॥
जगजीवन गहि सतगुरु चरना, दीजै सबै बिसारी॥८॥

उपदेश का अंग

साधो नाम तें रहु लौ लाय, प्रगट न काहू कहहु सुनाय॥
झूठै परगट कहत पुकारि, तातें सुमिरन जात बिगारि॥
भजन बेलि जात कुम्हलाय, कौनि जुक्ति कै भक्ति दृढ़ाय॥
सिखि पढ़ि जोरि कहै बहु ज्ञान, सो तौ नाहिं अहै परमान॥

---

५. समोई=व्याप्त। केतान=क्या।

६. छकी=मतवाली, मस्त। डोरी=लय। कानि=लोक-मर्यादा। सुधि=होश।

७. चीन्हा=पहचान लिया। आय=है। भँवर-गुफा=ब्रह्म-रंध्र।

प्रीति-रीति रसना रहै गाय, सो तौ राम कों बहुत हिताय॥
सो तौ मोर कहावत दास, सदा बसत हौं तिनके पास॥
मैं मरि मन तें रहे हैं हारि, दिप्त जोति तिनकै उजियारि॥
जगजीवनदास भक्त भे सोइ, तिनका आवागवन न होइ॥१॥

अरे मन, रहहु चरन तें लाग, इत उत सकल देहु तुम त्याग॥
दुइ कर जोरिकै लीजै माँग, सोवत उठहु मोह तें जाग॥
नयन निरखि छवि रहु रसपाग, कर्म भर्म सब जैहहिं भाग॥
जगजीवन अस रहु अनुराग, जानु आपने तबहीं भाग॥२॥

निर्भय ह्वैके नाचु, नाम धुन लाव रे।
इतनी बिनती सुनि लेव मेरी, इत-उत कतहुँ न धाव रे॥
औसर बीति बहुरि पछितैहौ, याही बना बनाव रे॥
देखु बिचारि कोउ थिर नाहीं, कोऊ रहै न पाव रे॥
दुइ अच्छर अंतर रटि रहहू, तत्त सो मंत्र सुनाव रे॥
जगजीवन विस्वास आस गहु, चरनन सीस नवाव रे॥३॥

कलि की रीति सुनहु रे भाई।
माया यह सब है साईं की, आपुनि सब केहु गाई॥
भूले फूले फिरत आय, पर केहुके हाथ न आई।
जो है जहाँ तहाँ ही है सो, अंतकाल चाले पछिताई॥
जहँ कहुँ होय नामरस चरचा, तहाँ आइकै और चलाई।
लेखा-जोखा करहिं दाम का, पड़े अघोर नरक महँ जाई॥
बूड़हिं आपु और कहँ बोरहिं, करि झूठी बहुतक बकताई।
जगजीवन मन न्यारे रहिए, सत्तनाम तें रहु लय खाई॥४॥

उपदेश का अंग

१. जात बिगारि=बिगाड़ जाता है, विफल हो जाता है। जोरि=जोड़कर, कविता रचकर। परमान=प्रमाण, सत्य। हिताय=प्रिय लगती है।
२. रसपाग=आनन्दमग्न।
३. बनाव=अनुकूल अवसर। तत्त=साररूप। नवाव=झुकाओ।
४. और चलाई=और दूसरी चर्चा चलाते हैं। अघोर=घोर। बोरहिं=डुबाते हैं। बकताई=बकवास।

नाम बिनु नहिं कोउकै निस्तारा ॥
जान परतु है ज्ञान तत्त तें, मैं मन समुझि विचारा।
कहा भये जल प्रात अन्हाये, का भये किये अचारा ॥
कहा भये माला पहिरें तें, का दिये तिलक लिलारा।
कहा भये व्रत अन्नहिं त्यागे, का किये दूध-अहारा ॥
कहा भये पंचअगिन के तापे, कहा लगाये छारा।
कहा उर्धमुख धूमहिं घोंटें, कहा लोन किये न्यारा ॥
कहा भये बैठे ठाढ़ें तें, का मौंनी किहे अमारा।
का पंडिताई का बकताई, का बहु ज्ञान पुकारा ॥
गृहिनी त्यागि कहा बनबासा, का भये तन मन मारा।
प्रीतिविहूनि हीन है सब कछु, भूला सब संसारा ॥
मंदिल रहै कहूँ नहिं धावै, अजपा जपै अधारा।
गगन-मंडल मनि बरै देखि छवि, सोहै सबतें न्यारा ॥
जेहि विस्वास तहाँ लै लागि, तेहि तस काम सँवारा।
जगजीवन गुरुचरन सीस धरि, छूटि भरम कै जारा ॥५॥

आइ जग काहे मन बौराना।
जौन कौल करि ह्याँ ते आयो, समुझि देखु वह ज्ञाना ॥
तकि मायाबस भूलि परेसि तैं, सत्तनाम नहिं जाना।
जो उपजा सो विनसि जायगा, होइहै अंत चलाना ॥
सब चलि जाइ अचल नहिं कोई, सचर अचर ससि भाना।
जगजीवन सतगुरु समरथ के, चरन रहौ लपटाना ॥६॥

भेद का अंग

रँगि-रँगि चन्दन चढ़ावहु सांई के लिलार रे॥
मन तें पुहुप माल गूँथिंकै, सो लैकै पहिरावहु रे।
बिना नैन तें निरखु देखु छवि, बिन कर सीस नवावहु रे॥

---

५. निस्तारा=छुटकारा। अचारा=कर्मकाण्ड के अनुसार आचार। लिलारा=ललाट, माथा। छारा=भस्म। लोन किये न्यारा=नमक खाना छोड़ दिया। बिहूनि=बिना। हीन=तुच्छ, व्यर्थ। मन्दिल=घर। मनि=मणि, ब्रह्मज्योति से तात्पर्य है। जारा=जाल।

६. बौराना=पागल हो गया। कौल=प्रभु के नाम-स्मरण का प्रण। ह्याँ ते=वहाँ अर्थात् गर्भवास से। भूलि परेसि=भूल गया। भाना=भानु, सूर्य।

दुइ कर जोरिकै बिनती करिकै, नाम कै मंगल गावहु रे।
जगजीवन बिनती करि माँगै, कबहुँ नहीं बिसरावहु रे ॥१॥

सखि, बाँसुरी बजाय कहाँ गयो प्यारो ॥
घर की गैल बिसरिगै मोहितें, अंग न बस्त्र सँभारो।
चलत पाँव डगमगत धरनि पर, जैसे चलत पतवारो ॥
घर आँगन मोहिं नीक न लागै, सब्द-बान हिये मारो।
लागि लगन में मगन वाहिसों, लोक-लाज कुल-कानि बिसारो ॥
सुरति दिखाय मोर मन लीन्हों, मैं तौ चहों होय नहिं न्यारो।
जगजीवन छवि बिसरत नाहीं, तुमसे कहों सो इहै पुकारो ॥२॥

साध-महिमा

गऊ निकसि बन जाहीं, बाछा उनका घर ही माहीं ॥
तृन चरहिं चित्त सुत पासा। यहि जुक्ति साध जग-बासा ॥
साध तें बड़ा न कोई। कहि राम सुनावत सोई ॥
राम कही, हम साधा। रस एकमता औराधा ॥
हम साध, साध हम माहीं। कोउ दूसर जानै नाहीं ॥
जिन दूसर करि जाना। तेहिं होइहिं नरक निदाना ॥
जगजीवन चरन चित लावै। सो कहिके राम समुझावै ॥१॥

साध कै गति को गावै। जो अन्तर ध्यान लगावै ॥
चरन रहे लपटाई। काहू गति नाहीं पाई ॥
अन्तर राखै ध्याना। कोइ विरला करै पहिचाना ॥
जगत किहो एहि बासा। पै रहैं चरन के पासा ॥
जगत कहै हम माहीं। वै लिप्त काहु माँ नाहीं ॥
जस गृह तस उदयाना। वै सदा अहैं निरबाना ॥

भेद का अंग

१. रँगि-रँगि=रुचि से रच-रचकर। लिलार=ललाट। पुहुप=पुष्प, फूल। मंगल=स्वागत-गीत।
२. बाँसुरी=भँवर-गुफा के शब्द से तात्पर्य है। कानि=मर्यादा। सुरति=सूरत, रूप।

साध-महिमा

१. औराधा=आराधन किया। एकमता=अनन्य भाव से।

ज्यों जल कमल कै बासा। वै वैसे रहत निरासा॥
जैसे कुरम जल माहीं। वाकी स्त्रुति अंडन माहीं॥
भवसागर यह संसारा। वै रहैं जुक्ति तें न्यारा॥
जगजीवन ऐसें ठहराना। सो साध भया निरबाना॥२॥

मंगल

अरे, यहि जग आइके कहाँ गँवायो रे।
निर्गुन तें फुटि आनि धस्यो गुन, वह घर मन बिसरायो रे॥
कर्म फाँसि माँ सुख भा, सुद्धि भुलायो रे।
रचि-पचि मिलि माटी महँ सबै गँवायो रे॥
बहुत लागि हित माया, मन बौरायो रे।
भाई बन्धु कबीला सबै विचास्यो रे॥
जब तजि चलत है काया, सँग न सिधारे रे।
रोवत मोहबस माया, ह्वैगे न्यारे रे॥
जीवत कस नहिं त्यागहु, वृथा करि जानहु रे।
आपुनि सुरति सँभारि, नाम गहि आन्हु रे॥
रहहु जगत की संगति, मन तें न्यारे रे।
पुहमी पाँव उठावहु, रहहु बिचारे रे।
काँट गड़ै नहिं पावै, रहहु सँभारे रे॥
काल तें कोइ नहिं बाचहि, सबकाँ खाइहि रे।
नाम सुकृत नहिं गहहि, अन्त पछिताइहि रे॥
जस मोहिं समुझि परतु है, तस गोहरावौं रे।
सुनै बूझि मन समुझि, तौ पार उतारौं रे॥
अचरज आवत देखिके रे, मन समुझि रहायो रे।
मैं तौ कछु नहि जान्यों गुरु जनायो रे॥
रहौं बैठि तहवाँ मैं सुरति निहारौं रे।
चरन सदा आधार, सीस मैं वारौं रे॥

---

२. गति=भेद। उदयाना=वन। निरबाना=मुक्त। निरासा=अलिप्त। कुरम=कूर्म्म, कछवा। स्त्रुति=सुरति। सुरति=ध्यान। जुक्ति=सावधानी।

१. फुटि=फूटकर, छूटकर, विलग होकर। सुद्धि=सुध, याद। कबीला=स्त्री। न्यारे=अलिप्त। पुहमी पाँव उठावहु=धरती पर हलके पैर रखो, नम्रतापूर्वक चलो। गोहरावउँ=पुकारकर कहता हूँ।

जगजीवन के साँई, तुम सब जानहु रे।
दास आपना जान्हु, अवर न आन्हु रे॥१॥

बसंत व होरी

मोरे सतगुरु खेलत यह बसन्त, जाकी महिमा गावत साध-सन्त।
कोइ जल माँ रहिगे रैनि गँवाय, कोइ महि प्रदच्छिना दहिनि लाय॥
कोइ गृह तजि बन माँ किये वास, बिना नाम सब खूसखास॥
कोइ पंच अगिन तपि तन दहाय, कोइ उर्ध बाहु कर रहे उठाय।
कोइ निराधार रहि पवन-आस, बिना नाम सब खूसखास॥
कोइ दूधाधारी परघर चित्त, नग्न रहै कोइ लकड़ी नित्त।
कोइ पावक सूरति करि निवास, बिना नाम सब खूसखास॥
कोई एक आसन कबहूँ न डोल, को मवनी है कबहूँ न बोल।
कोइ गगन-गुफा महँ लिये बास, बिना नाम सब खूसखास॥
कोइ निसु-दिन रहिगे झूला झूल, कोइ स्वांस बन्द करि पकरि मूल।
जगजीवन एक नाम आधार, नाम नाव चढ़ उतरे पार॥१॥

यहि नगरी में होरी खेलौं री॥
हमरी पिया तें भेंट करावौ, तुम्हरे संग मिलि दौरौं री॥
नाचौं नाच खोलि परदा मैं, अनत न पीव हँसौं री।
पीव जीव एकै करि राखौं, सो छवि देखि रसौं री॥
कतहूँ न बहौं रहौं चरनन ढिग, मन दृढ़ होय कसौं री।
रहौं निहारत पलक न लावौं, सर्बस और तजौं री॥
सदा सोहाग भाग मोरे जागे, सतसंग सुरति बरौं री।
जगजीवन सखि सुखित जुगन-जुग, चरनन सुरति धरौं री॥२॥

यहि जग होरी, अरी मोहिं तें खेलि न जाई।
साँई मोहिं बिसराय दियो है, तब तें पर्यौं भुलाई॥
सुख परि सुद्धि गई हरि मोरी, चित्त चेत नहिं आई।
अनहित हित करि जानि बिषै महँ, रह्यो ताहि लपटाई॥

बसन्त व होरी

१. खूमखास=कूड़ा-करकट, तुच्छ। उर्ध=ऊपर को। मवनी=मौनीं।

२. रसौं=आनन्द मनाऊँ। बहौं=इधर-उधर भटकूँ। दृढ़ होय कसौं=दृढ़ता से वश में करूँ। सत्संग सुरति बरौं री=अपनी लय को सत्संग के साथ वरण करूँ।

यहि साँचे महँ पाँचौ नाचैं, अपनि अपनि प्रभुताई।
मैं का करौं मोर बस नाहीं, राखत हैं अरुझाई॥
गगन मँदिल चलि थिर ह्वै रहिये, तकि छबि छकि निरथाई।
जगजीवन सखि साँई समरथ, लैंहैं सबै बनाई॥३॥

अरी ए, नैहर डर लागै, सखी री कैसे खेलौं मैं होरी।
औगुन बहुत नाहिं गुन एकौ, कैसे गहों दृढ़ डोरी॥
केहिं काँ दोष मैं देउँ सखी री, सबै आपनी खोरी।
मैं तौ सुमारग चला चहत हौं, मैं तैं बिष माँ घोरी॥
सुमति होहि तब चढ़ौं गगन-गढ़, पिय तें मिलौं कर जोरी।
भीजौं नैनन चाखि दरस-रस, प्रीति-गाँठि नहिं छोरी॥
रहौं सीस दै सदा चरनतर, होउँ ताहिकी चेरी।
जगजीवन सत-सेज सूति रहि, और बात सब थोरी॥४॥

फुटकर शब्द

पंडित, काह करै पंडिताई।
त्यागदे बहुत पढ़ब पोथी का, नाम जपहु चित लाई॥
यह तो चार बिचार जगत का, कहे देत गोहराई।
सुनि जो करे तरे पै छिन महँ, जेहिं प्रतीति मन आई॥
पढ़ब पढ़ाउब बेधत नाहीं, बकि दिनरैन गँवाई।
एहि तें भक्ति होति है नाहीं, परगट कहौं सुनाई॥
सत्त कहत हौ बुरा न मानौ, अजपा जपै जो जाई।
जगजीवन सत-मत तब पावै, परमज्ञान अधिकाई॥१॥

तुमहीं सों चित लागु है, जीवन कछु नाहीं।
मात पिता सुत बंधवा, कोउ संग न जाहीं॥

---

३. सुख.......मोरी=मेरे ध्यान को विषय-सुख ने खींच लिया। साँचे महँ=शरीर के भीतर।

४. खोरी=दोष। मैं तैं विष माँ=मैं और तू इस द्वैतभावरूपी विष में। सुमति होहि=सुबुद्धि उपजे। गगन-गढ़=निर्विकल्प समाधि की शून्यावस्था। सूति रहि=लय-समाधि के आनन्द में अपने आपको लीन करलूँ।

फुटकर शब्द

१. चार=आचार। गोहराई=पुकारकर। प्रतीति=विश्वास। अजपा=उच्चारण न किया जानेवाला नाम-स्मरण, जो श्वास-प्रश्वास के गमनागमन-मात्र से होता रहता है। इस अजपा जप की संख्या एक दिन और रात में २१६०० मानी गई है।

सिद्धि साध मुनि गंध्रबा मिलि माटी माहीं।
ब्रह्मा बिस्नु महेस्वरा, गनि आवत नाहीं॥
नर केतानि को बापुरा, केहि लेखे माहीं।
जगजीवन बिनती करै, रहै तुम्हरी छाँहीं ॥२॥

आनँद के सिन्ध में आनि बसे, तिनको न रह्यौ तन को तपनो।
जब आपु में आपु समाय गये, तब आपु में आपु लह्यो अपनो॥
जब आपु में आपु लह्यो अपुनो, तब अपनो हो जाय रह्यो जपनो।
जब ज्ञान को भान प्रकास भयो, जगजीवन होय रह्यो सपनो ॥३॥

साखी

भूलु फूलु सुख पर नहीं, अबहूँ होहु सचेत।
साँई पठवा तोहि काँ, लावो तेहिं ते हेत ॥१॥

तजु आसा सब झूंठ ही, सँग साथी नहिं कोय।
केउ केहू न उबारिही, जेहि पर होय सो होय ॥२॥

कहँवाँ तें चलि आयहू, कहाँ रहा अस्थान।
सो सुधि बिसरि गई तोहिं, अब कस भयसि हेवान ॥३॥

काया-नगर सोहावना, सुख तबहीं पै होय।
रमत रहै तेहिं भीतरे, दुख नहिं व्यापै कोय ॥४॥

मृत-मंडल कोउ थिर नहीं, आवा सो चलि जाय।
गाफिल ह्वै फंदा पर्‌यो, जहँ तहँ गयो विलाय ॥५॥

●

---

२. गंध्रवा=गन्धर्व। बापुरा=बेचारा।

साखी

१. पठवा=भेजा, जन्म दिया। हेत=प्रेम।
२. केउ केहू न उबारही=कोई किसी को नहीं उबारता।
५. मृत-मण्डल=मर्त्यलोक।

यारी साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—अनुमानतः १७२५ वि.
जन्म-स्थान—संभवतः दिल्ली
क़ौम—मुसल्मान
गुरु—बीरू साहब
मृत्यु-संवत्—अनुमानतः १७८० वि.

यारी साहब का जीवन-परिचय इतने के अलावा, निश्चित रूप से, और कुछ भी नहीं मिलता है। संभवतः पहले इनका नाम यार मुहम्मद रहा होगा। यही भी कहा जाता है कि यह किसी शाही खानदान के थे।

दिल्ली की बावरी साहिबा के शिष्य बीरू साहब इनके गुरु थे, जिन्होंने इनको चेताकर शब्द-मार्ग का रहस्य बताया था।

'अमीघूँट' के रचयिता संत केशवदास इनके एक प्रमुख शिष्य थे। कहते हैं कि केशवदास तथा इनके तीन अन्य शिष्यों ने,—शेखन शाह, हस्त मुहम्मद शाह और सूफ़ी शाह ने दिल्ली की तरफ़ इनके संत-मत का प्रचार किया, और इनके गुरुमुख शिष्य बुल्ला साहब ने पंथ की एक शाखा भुरकुड़ा (ज़िला गाज़ीपुर) में स्थापित की।

पंथ परंपरा के अनुसार, बस, इतना ही यारी साहब का परिचय उपलब्ध हुआ है। पर यह स्पष्ट है कि यह एक ऊँचे दरजे के पहुँचे हुए फ़कीर थे।

बानी-परिचय

'रत्नावली' के नाम से यारी साहब का एक छोटा-सा संग्रह बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है। संपादक महोदय ने बड़ी खोज से दिल्ली, गाज़ीपुर और बलिया से इनकी बानी का संग्रह किया है। इनकी कुछ फुटकर बानी अन्य संग्रह-ग्रथों में भी मिलती है।

प्रायः सारी ही 'शब्द-मार्गी, बानी है—वही शब्द-मार्ग, जिसपर चलकर यह 'झिलमिल झिलमिल नूर' झरता हुआ देखते हैं, 'रुनझुन रुनझुन अनहद' बजता हुआ सुनते हैं, और

'रिमझिम, रिमझिम' मोती बरसते हुए पाते हैं।

शब्द इनके गूढ़ किन्तु सरस और श्रुति-मधुर हैं। साखियाँ भी सुन्दर हैं।

आधार

१ यारी साहब की रत्नावली—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ उत्तरी भारत की संत-परंपरा—परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भंडार, इलाहाबाद

यारी साहब

शब्द

बिरहिनी मंदिर दियना बार॥
बिन बाती बिन तेल जुगति सों बिन दीपक उँजियार॥
प्रान पिया मेरे गृह आयो, रचि-रचि सेज सँवार॥
सुखमन सेज परमतत रहिया, पिया निर्गुन निरकार॥
गावहु री मिलि आनँदमंगल, यारी मिलिके यार॥१॥

रसना राम कहत तें थाको।
पानी कहे कहुँ प्यास बुझत है, प्यास बुझै जदि चाखो॥
पुरुष-नाम नारी ज्यौं जानै, जानि बूझि नहिं भाखो॥
दृष्टी से मुष्टी नहिं आवै, नाम निरंजन वाको॥
गुरुपरताप साधु की संगति, उलट दृष्टि जब ताको॥
यारी कहै सुनो भाई संतो, बज्र बेधि कियो नाको॥२॥

निरगुन चुनरी निर्बान, कोउ ओढ़ै संत सुजा।
षट दरसन में जाइ खोजो, और बीच हैरान॥
जोतिसरूप सुहागिनि चुनरी, आव बधू धरि ध्यान॥
हद बेहद के बाहरे यारी, संतन को उत्तम ज्ञान॥
कोऊ गुरु गम ओढ़ै चुनरिया, निरगुन चुनरी निर्बान॥३॥

शब्द

१. दियना बार=दीपक जला; आत्म-ज्योति से तात्पर्य है। सुखमन सेज=सुषुम्ना नाड़ी की सेज; समाधिगत आनन्द की अवस्था। तत=तत्त्व। निरकार=निराकार। मिलिके यार=प्रियतम से मिलकर।

२. रसना.....थाको=वाणी राम-नाम रट-रटकर अब शांत हो गई, अब नाम-जाप अन्तर में ही हो रहा है। पुरुष....भाखो=पुराना रिवाज है कि स्त्री अपने पति का नाम मुहँ से नहीं लिया करती; इसी तरह प्रभु का नाम, जानते हुए भी, रसना नहीं लेती है। मुष्टी=मुट्ठी में, हाथ में। उलटि.......ताको=जब अन्तर्मुखी दृष्टि से देखा। नाको=रास्ता।

३. षट दरसन......हैरान=छह शास्त्रों में भले खोजो, पर होगी अधिक-अधिक हैरानी ही। बधू=साधनारत जीवात्मा से तात्पर्य है। गुरुगम=गुरु की सामर्थ्य से।

उडु उडु रे बिहंगम, चढु अकास।
जहँ नहिं चाँद सूर निसबासर, सदा अमरपुर अगम बास॥
देखै उरध अगाध निरंतर, हरष सोक नहिं जम कै त्रास॥
कह यारी उहँ बधिक-फाँस नहिं, फल पायो जगमग परकास॥४॥

कवित्त

आँधरे को हाथी हरि, हाथ जाको जैसो आयो,
बूझो जिन जैसो तिन तैसोई बतायो है॥
टकाटोरी दिनरैन हिये हू के फूटे नैन,
आँधरे कों आरसी में कहा दरसायो है॥
मूल की खबरि नाहिं जासों यह भयो मुलक,
वाकों बिसारि भोंदू डारेन अरुझायो है॥
आपनो सरूप रूप आपु माहिं देखै नाहिं,
कहै यारी आँधरे ने हाथी कैसो पायो है॥१॥

झूलना

बिन बंदगी इस आलम में, खाना तुझे हराम है रे।
बंदा करै सोइ बंदगी, खिदमत में आठो जाम है रे॥
यारी मौला बिसारिके, तू क्या लागा बेकाम है रे।
कुछ जीते बंदगी करले, आखिर को गोर मुकाम है रे॥१॥

गुरु के चरन की रजलैके, दोउ नैन के बीच अंजन दीया।
तिमिर माहिं उजियार हुआ, निरंकार पिया को देखि लीया॥

---

४. बिहंगम=पक्षी; मुक्त जीवात्मा से आशय है। उरध=ऊर्ध्व, उपर-ही ऊपर। बधिक=बहेलिया, काल से तात्पर्य है। जगमग परकास=आत्मा का नित्य प्रकाश।

कवित्त

१. टकाटोरी=टटोलना। मुलक=सारा पसारा। भोंदू=मूर्ख। डारेन अरुझायो है=डालों में उलझा हुआ है।

झूलना

१. आलम=संसार। मौला=स्वामी। गोर=क़ब्र।

कोटि सुरज तहँ छपे घने, तीनि लोक धनी धन पाइ पीया।
सतगुरु ने जो करी किरपा, मरिके यारी जुग-जुग जीया ॥२॥
तबलग खोजै चला जावै, जगलग मुद्दा नहिं हाथ आवै।
जब खोज मरै तब घर करै, फिर खोज पकरके बैठ जावै॥
आप में आप को आप देखै, और कहूँ नहिं चित्त जावै।
यारी मुद्दा हासिल हुआ, आगे को चलना क्या भावै ॥३॥

साखी

जोतिसरूपी आतमा, घट-घट रही समाय।
परमतत्त मनभावनो, नेक न इत-उत जाय ॥१॥
रूप रेख बरनौं कहा, कोटि सूर परगास।
अगम अगोचररूप है, (कोउ) पावै हरि को दास ॥२॥
नैनन आगे देखिये, तेजपुंज जगदीस।
बाहर भीतर रमि रह्यो, सो धरि राखो सीस ॥३॥
आठ पहर निरखत रहौ, सन्मुख सदा हजूर।
कह यारी घरहीं मिलै, काहे जाते दूर ॥४॥
आतम-नारि सुहागनि, सुंदर आपु सँवारि।
पिय मिलने को उठि चली, चौमुख दियना बारि ॥५॥

●

---

२. रज=धूल। तिमिर=माया-मोह का अँधेरा।
मरिके........जीया=अहंता को मार यारी अमर हो गया।
३. मुद्दा=सार। घर करै=निज स्थान को बनाले। भावै=अच्छा लगे।

साखी

१. भावनो=प्यारा।
२. सूर परगास=सूर्य का प्रकाश। अगोचर=इंद्रियों के ज्ञान से परे।
५. चौमुख=चारो ओर। दियाना बारि=दीपक जलाकर।

दूलनदासजी

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१७१७ वि.
जन्म-स्थान—समेसी ग्राम (ज़िला लखनऊ)
जाति—क्षत्रिय
गुरु—जगजीवन साहब
आश्रम—गृहस्थ
सत्संग-स्थान—कोटवा
चोला-त्याग-संवत्—१८३५ वि.

दूलनदासजी का जीवन-चरित, सिवा ऊपर के साधारण-से परिचय के, और कुछ अधिक नहीं मिलता। महात्मा जगजीवन साहब के यह पट्टशिष्य थे। सरदहा गाँव में जाकर इन्होंने जगजीवन साहब से परमार्थ का उपदेश लिया था। और पीछे, कोटवा में अनेक वर्ष सतगुरु के सत्संग में रहकर, रायबरेली ज़िले में धर्म्मे नाम का एक गाँव बसाया, और वहीं पर अन्ततक सत्संग कराते रहे। अन्य संत-महात्माओं की तरह दूलनदासजी के संबंध की भी अनेक चमत्कारपूर्ण कथाएँ प्रसिद्ध हैं।

बानी-परिचय

बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से संतबानी-पुस्तक-माला में दूलनदासजी की बानी प्रकाशित हुई है, जिसे उक्त माला के संपादक महोदय ने बहुत जतन से कितने ही स्थानों से संग्रहीत किया है।

चेतावनी, भेद, उपदेश, प्रेम और विनय इन अंगों पर दूलनदासजी के शब्द बड़े ही मार्मिक हैं। इनके 'झूलने' भी बड़े मस्तीभरे हैं।

साखियाँ भी इन्होंने विविध अंगों पर कहीं हैं। कितनी ही साखियाँ अंतर को सीधे बेधती हैं।

भाषा अवधी और कुछ शब्दों की थोड़ी भोजपुरी-सी है। ज़ोरदार मिठासभरी भाषा

है। फारसी शब्दों का भी जहाँ-तहाँ प्रयोग किया है।

आधार

दूलनदासजी की बानी—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

●

दूलनदासजी

नाम-महिमा

यह नइया डगमगि नाम बिना। लाइले सत्तनाम रटना ॥
इत उत भौजल अगम बना। अहै जरूर पार तरना ॥
मैं निगुनी गुन एकौ नाहीं। माँझ धार नहिं कोउ अपना ॥
दिहेउँ सीस सतगुरु-चरना। नाम-अधार है दुलन जना ॥१॥

चितावनी

पछितात क्या, दिन जात बीते, समुझ करु नर चेत रे।
अंध, तेरे कंध सिर पर, काल डंका देत रे॥
हुसियार ह्वै गुन गाव प्रभु के, ठाढ़ रहु गुरु-खेत रे।
ताके रहै छूटै नहीं जिमि राहु रवि, ससि केत रे॥
जमद्वार तर सब पीसिगे, चर अचर निन्दक जेत रे।
नहिं पियत अमृत नामरस भरि स्वास सुरत सचेत रे॥
मद मोह महुवा दाख दुख, विष का पियाला लेत रे।
जग नात-गोत बिसारि सब, हरदम गुरू से हेत रे॥
सगलऊ सुपन अपना नहीं, जिस रोज परत संकेत रे।
वह आइ सिरजनहार हरि सतनाम भा जल-सेत रे॥
जन दुलन सतगुरु चरन बंदत, प्रेम-प्रीति समेत रे॥१॥

नाम-महिमा

१. नइया=जीवनरूपी नाव। निगुनी=मूर्ख।

चितावनी

१. चेत=होशियार हो जा। गुरुखेत=सद्गुरु का दिखाया हुआ भक्तिसाधना का क्षेत्र। केत=केतु नक्षत्र। भरि स्वास सुरत=हर साँस में लय का तार लगाकर। नात=नाता, सबंधं। गोत=गोत्र। सगलऊ=सारी ही। संकेत=काल का बुलावा। सेत=सेतु, पार उतरने का पुल।

उपदेश

जग में जै दिन है जिंदगानी।
लाइ लेव चित गुरु के चरनन, आलस करहु न प्रानी॥
या देही का कौन भरोसा, उभसा भाठा पानी॥
उपजत मिटत बार नहिं लागत, क्या मगरूर गुमानी॥
यह तो है करता की कुदरत, नाम तू ले पहिचानी॥
आज भलो भजने को औसर, काल की काहु न जानी॥
काहुके हाथ साथ कछु नाहीं, दुनिया है हैरानी॥
दूलनदास बिस्वास भजन करु, यहि है नाम निसानी॥१॥

जोगी, चेत-नगर में रहो रे।
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया, मन-तसबीह गहो, रे।
अन्तर लाओ नामहि की धुनि, करम-भरम सब धो, रे॥
सूरत साधि गहो सतमारग, भेद न प्रगट कहो, रे।
दूलनदास के साई जगजीवन, भवजल पार करो, रे॥२॥

सब काहे भूलहु हो भाई, तूँ तो सतगुरु सबद समइले हो॥
ना प्रभु मिलिहै जोग जाप तें, ना पथरा के पूजे।
ना प्रभु मिलिहै पउआँ पखारे, ना काया के भूँजे॥
दया धरम हिरदे में राखहु, घर में रहहु उदासी।
आनकै जिव आपन करि जान्हु, तब मिलिहै अविनासी॥
पढ़ि पढ़िके पंडित सब थाके, मुलना पढ़ैं कुराना।
भस्म रमाइ जोगिया भूले, उनहूँ मरम न जाना॥
जोग जाग तहियाँ से छाड़ल, छाड़ल तिरथ-नहाना।
दूलनदास बंदगी गावै, है यह पद निर्बाना॥३॥

उपदेश

१. उभसा=बढ़ा हुआ; जवानी से तात्पर्य है। भाठा=उतरा हुआ; बुढ़ापे से तात्पर्य है। काल की=कल की बात।

२. चेतनगर=चित् अवस्था से तात्पर्य है। तसबीह=माला। भरम=भ्रम, संशय। सूरत=सुरत, ध्यान। भेद=स्वरूप का परिचय।

३. समइले हो=समा जाओ, लीन हो जाओ। भूँजे=घोर तप करके जला डालने से। उदासी=अनासक्त। आपनकरि=अपने ही समान। तहियाँ=वहीं से, जहाँ से कि सहजबोध प्राप्त हुआ है।

विनय का अंग

साई, तेरे कारन नैना भये बैरागी।
तेरा सत दरसन चहौं, कछु और न माँगी॥
निसबासर तेरे नाम की अंतर धुनि जागी।
फेरत हौं माला मनौं, अँसुवनि झरि लागी॥
पलक तजी इत उक्ति तें, मन माया त्यागी।
दृष्टि सदा सत सनमुखी, दरसन अनुरागी॥
मदमाते राते मनों दाधे विरह-आगी।
मिलु प्रभु दूलनदास के, करु परमसुभागी॥१॥

धन मोरि आज सुहागिन-घड़िया॥
आज मोरे अंगना संत चलि आये, कौन करौं मिहमनिया।
निहुरि-निहुरि मैं अँगना बुहारौं, मातौं मैं प्रेम-लहरिया॥
भाव के भात, प्रेम कै फुलका, ज्ञान की दाल उतरिया।
दूलनदास के साई जगजीवन, गुरु के चरन बलिहरिया॥२॥
सतनाम तें लागीं अँखियाँ, मन परिगै जिकिर-जँजीर हो॥
सखि, नैन बरजे ना रहैं, अब ठिरे जात वोहि तीर हो।
नाम-सनेही बावरे, दृग भरि भरि आवत नीर हो॥
रस मतवाले रस-मसे, यहि लागी लगन गँभीर हो।
सखि, इस्क पिया से आसिकाँ, तजि दुनिया दौलत भीर हो॥
सखि, गोपीचन्दा, भरथरी, सुलताना भयो फकीर हो।
सखि, दूलन का से कहै, यह अटपटी प्रेम की पीर हो॥३॥

पिया मिलन कब होइ, अँदेसवा लागि रही॥
जबलग तेल दिया में बाती, सूझ परै सब कोइ।
जरिगा तेल, निपटि गइ बाती, 'लै चलु लै चलु' होइ॥

विनय का अंग

१. मनौं=मन में ही। इति उक्ति तें=इधर जगत् की ओर से।
२. निहुरि निहुरि=शील से झुक-झुककर। मातौं=मतवाली हो रही हूँ।
३. मन.....जँजीर=मेरा चंचल मन प्रियतम के स्मरण की साँकल से बँध गया। ठिरे जात=ठिले या बरबस खिंचे जा रहे हैं। तीर=निकट। रसमसे=रस-विभोर।

बिन गुरु मारग कौन बतावै, करिये कौन उपाय।
विना गुरू के माला फेरैं जनम अकारथ जाय॥
सब संतन मिलि इकमत कीजै, चलिये पिय के देस।
पिया मिलैं तो बड़े भाग से, नहिं तो कठिन कलेस॥
या जग ढूढूँ वा जग ढूढूँ, पाऊँ अपने पास।
सब संतन के चरन-बन्दगी गावै दूलनदास॥४॥

झूलना

बर जे अठारह बरन में, बितपन्य है व्याकरन में।
पहिरे खराऊँ चरन में, जानै न स्वाद सरीर का॥
कुस-मुद्रिका कर राखते, जे देव-बानी भाखते।
नहिं अन्न आमिष चाखते, नित पान करते छीर का॥
धोती उपरना अंग में, रत वेद-विद्या रंग में।
विद्यारथी बहु संग में, जिन बास तीरथ-तीर का॥
सूतहिं सदा भुइँ सेज जे, पूरे तपस्या तेज के।
यह भी न दूलन खूब है, करु ध्यान श्रीरघुबीर का॥५॥

शब्द

जोगी जोग जुगत नहिं जाना॥
गेरु घोरि रँगे कपरा जोगी, मन न रँगे गुरु-ज्ञाना।
पढ़ेहु न सत्तनाम दुइ अच्छर, सीखहु सो सकल सयाना॥
साँची प्रीति हृदय बिनु उपजे, कहुँ रीझत भगवाना।
दूलनदास के साईं जगजीवन, मो मन दरस-दिवाना॥६॥

नीक न लागै बिनु भजन सिंगरवा॥
का कहि आयौ हियां बरत्यो नाहीं,
भूलि गयल तोरा कौल कररवा॥

---

४. अँदेसवा=डर। तेल=प्राण से तात्पर्य है। बाती=आयु से तात्पर्य है।

झूलना

५. बर=वर, श्रेष्ठ। बितपन्य=व्युत्पन्न, पारंगत पंडित। देवबानी=संस्कृत भाषा=आमिष=मांस। उपरना=दुपट्टा, चद्दर। सूतहिं=सोते हैं। खूब=विशेष बात है।

साँचा रँग हिये उपजत नाहीं,
भेष बनाये रंग लीन्हो कपरवा॥
बिन रे भजन तोरी ई गति होइहै,
बाँधल जैबै तू जम के दुवरवा।
दुलनदास के साई जगजीवन,
हरि के चरन पर हमरि लिलरवा॥७॥

साखी

गुरु ब्रह्मा गुरु बिस्नु हैं, गुरु संकर गुरु साध।
दूलन गुरु गोबिन्द भजु, गुरुमत अगम अगाध॥१॥

श्री सतगुरु-मुखचन्द्र तें, सबद सुधा-झरि लागि।
हृदय-सरोवर राखु भरि, दूलन जागे भागि॥२॥

दूलन गुरु तें बिषै बस, कपट करहिं जे लोग।
निर्फल तिनकी सेव है, निर्फल तिनका जोग॥३॥

दूलन यहि जग जनमिकै, हरदम रटना नाम।
केवल नाम-सनेह बिनु जन्म-समूह हराम॥४॥

सुनत चिकार पिपील की, ताहि रटहु मन माहिं।
दुलनदास बिस्वास भजु, साहिब बहिरा नाहिं॥५॥

चितवन नीची, ऊँच मन, नामहिं जिकिर लगाय।
दूलन सूझै परमपद, अंधकार मिटि जाय॥६॥

गुरूवचन बिसरै नहीं, कबहुँ न टूटै डोरि।
पियत रहौ सहजै दुलन, राम-रसायन घोरि॥७॥

---

७. कररवा=करार। कपरवा=कपड़ा। दुअरवा=द्वार। लिलरवा=ललाट, मस्तक।

साखी

३. विषै-बस=लोभ और मोह में पड़कर। सेव=सेवा।
५. चिकार=करुण पुकार। पिपील=चींटी।
६. जिकिर=स्मरण।
७. डोरि=लय।

बिपति-सनेही मीत सो, नीति-सनेही राउ।
दूलन नाम-सनेह दृढ़, सोई भक्त कहाउ ॥८॥

राम नाम दुइ अच्छरै, रटै निरंतर कोइ।
दूलन दीपक बरि उठै, मन परतीति जो होइ ॥९॥

चारा पील पिपील कौ, जो पहुँचावत रोज।
दूलन ऐसे नाम की, कीन्ह चाहिये खोज ॥१०॥

कोउ सुनै राग अरु रागिनी, कोउ सुनै जु कथा पुरान।
जन दूलन अब का सुनै, जिन सुनी मुरलिया तान ॥११॥

दूलन यह परिवार सब, नदी-नाव-संजोग।
उतरि परे जहँ-तहँ चले, सबै बटाऊ लोग ॥१२॥

दूलन यहिं जग आइके, काको रहा दिमाक।
चंदरोज को जीवना, आखिर होना खाक ॥१३॥

दूलन बिरवा प्रेम को, जामेउ जेहि घट माहिं।
पाँच पचीसौ थकितभे, तेहि तरवर की छाहिं ॥१४॥

धृग तन धृग मन धृग जनम, धृग जीवन जगमाहिं।
दूलन प्रीति लगाय जिन्ह, ओर निबाही नाहिं ॥१५॥

जा दिन संत सताइया, ता छिन उलटि खलक्क।
छत्र खसै, धरनी धसै, तीनेउँ लोक गरक्क ॥१६॥

कतहुं प्रगट नैनन निकट, कतहूँ दूरि छिपानि।
दूलन दीनदयाल, ज्यों मालव मारू पानि ॥१७॥

●

---

९. दीपकि बरि उठै=अंतर में ज्ञान का प्रकाश हो जाय।
१०. चारा=भोजन। पील=हाथी।
११. मुरलिया तान=अनाहत नाद से तात्पर्य है।
१२. बटाऊ=पंथी।
१३. दिमाक=दिमाग, अभिमान।
१४. बिरवा=पेड़। थकित=निर्बल।
१५. ओर=अंततक।
१६. खलक्क=खलक, सृष्टि। छत्र खसै=राजछत्र गिर पड़े। गरक्क=गरक, नष्ट।
१७. मालव मारू पानि=मालवा के प्रदेश में पानी नज़दीक मिल जाता है और मरुप्रदेश में बहुत देर पर।

दरिया साहब

(बिहारवाले)

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१७३१ वि.

जन्म-स्थान—धरकंधा (ज़िला आरा)

पिता—पीरनशाह (पूर्वनाम पृथुदास)

जाति—धर्मान्तरित मुसल्मान (पूर्वजाति क्षत्रिय)

भेष—गृहस्थ; वस्तुतः विरक्त

मृत्यु-संवत्—१८३७ वि., भादों बदी ४

दरिया साहब के पूर्वज उज्जैन के क्षत्रिय थे, जो वहाँ से उठकर बिहार में आ बसे थे। जगदीशपुर (ज़िला शाहाबाद) में ये लोग रहते थे, और इधर इनका राज भी था। महामहोपाध्याय पं. सुधाकर द्विवेदी की शोध के अनुसार दरिया साहब के पिता पृथुदास को औरंगजेब की बेगम की एक दर्ज़िन की लड़की के साथ बाध्यतः अपना दूसरा विवाह करना पड़ा था, और तभी से वह पृथुदास से पीरनशाह बन गये। अपनी नई ससुराल धरकंधा में जाकर वह बस गये। वहीं पर ननिहाल में दरियादास का जन्म हुआ।

नौ बरस की उम्र में इनका विवाह हो गया। पत्नी का नाम राममती था। पर पंद्रह बरस की उम्र में ही तीव्र वैराग्य हो जाने के कारण इन्होंने स्त्री का परित्याग कर दिया, गृहस्थी में नहीं फँसे। सहज साधना करते-करते इन्होंने ज्ञान और भक्ति का पूरा प्रकाश बीस बरस की अवस्था में ही पा लिया। तीस बरस के जब हुए, तब 'तख़्त' पर बैठ गये। सत्संग कराना और सोते हुए को जगाना-चेताना शुरू कर दिया। दरिया साहब ने सब को सत्तपुरुष का सच्चा भेद सुझाया, 'छपलोक' (आत्मा की परात्पर स्थिति) का मार्ग बताया, और सात्त्विकी शील-सदाचार का उपदेश दिया। कबीरदास की तरह दरिया साहब ने भी—अवतार, मूर्ति-पूजा, तीर्थाटन, जात-पांत वगैरा का खंडन किया है। कबीरदास के मत और तत्त्वज्ञान का इन पर पूरा प्रभाव पड़ा था, और कदाचित् इसीलिए इन्हें कबीर साहब का अवतारतक कहा जाता है।

दरिया पंथ की पाँच गद्दियाँ हैं। मुख्य गद्दी या तख़्त धरकंधा में है, जो डुमरांव से क़रीब १४ मील दूर है। दरिया साहब के ३६ चेलों में दलदासजी मुख्य थे।

दरिया-पंथियों के कई रिवाज मुसल्मानों से मिलते-जुलते हैं। प्रार्थना ये खड़े-खड़े झुककर करते हैं, जिसे 'कोरनिश' कहते हैं, और वंदना को 'सिरदा' याने सिजदा। इनके मूलमंत्र का नाम 'वेवाहा' है। इनके हरेक साधु के पास एक मिट्टी का हुक्का होता है जिसे ये 'रखना' कहते हैं, और पानी पीने के बर्तन को 'भरुका'।

बानी-परिचय

दरिया साहब की रची २० पुस्तकों का पता चला है, जिनका संक्षिप्त विषय-परिचय, डा. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री की शोध के अनुसार 'उत्तरी भारत की संत-परंपरा' में उसके विद्वान् लेखक श्री परशुराम चतुर्वेदी ने किया है। किन्तु प्रकाश में केवल 'दरियासागर' और 'ज्ञानदीपक' ये दो ही पुस्तकें आई हैं। दरियासागर का प्रकाशन इलाहाबाद के बेलवेडियर प्रेस ने किया है। इसी प्रेस से ''दरिया साहेब (बिहार वाले) के चुने हुए पद और साखी'' नाम का एक सुन्दर संग्रह भी निकला है।

शोध में जिन २० पुस्तकों का पता चला है, वे ये हैं :

(१) प्रेममूल, (२) ज्ञानरत्न, (३) भक्तिहेतु, (४) मूर्ति-उखाड़, (५) शब्द व बीजक, (६) ज्ञान-स्वरोदय, (७) विवेकसागर, (८) दरियासागर, (९) ज्ञानदीपक, (१०) ब्रह्मविवेक, (११) अमरसार, (१२) निर्भय ज्ञान, (१३) सहस्रानी, (१४) ज्ञानमाला, (१५) दरिया नामा, (१६) अग्रज्ञान, (१७) ब्रह्मचैतन्य, (१८) ज्ञानमूल, (१९) कालचरित्र, और (२०) यज्ञसमाधि।

दरिया साहब की बानी में हम प्रत्यक्ष अनुभूति की स्पष्ट झलक पाते हैं। 'छपलोक' अर्थात् सत्यपुरुष के रहस्य-लोक या ब्राह्मी स्थिति का वर्णन ऐसा सजीव इन्होंने किया है मानो उसे अपने सामने देख रहे हों। बाह्यजगत् तथा अंतर्जगत् को इन्होंने एक पारदर्शी की दृष्टि से देखा था। विनय और विरह के पदों में गहरे भावों को सरल व कोमल भाषा में व्यक्त किया है।

आधार

१ दरिया सागर—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ दरिया साहेब के चुने हुए पद और साखी— बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
३ उत्तरी भारत की संत-परंपरा—परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भंडार, इलाहाबाद

●

दरिया साहब

(बिहारवाले)

पद

अबरी के बार बकसु मोरे साहेब। तुम लायक सब जोग, हे ॥
गून बकसिहौ सब भ्रम नसिहौ। रखिहौ आपन पास, हे ॥
अछै-बिरछि तरि लै बैठैहौ। तहवाँ धूप न छाँह, हे ॥
चाँद न सुरज दिवस नहिं तहवाँ। नहिं निसु होत बिहान, हे ॥
अंमृतफल मुख चाखन दैहौ। सेज सुगन्ध सुहाय, हे ॥
जुग-जुग अचल अमर पद दैहौ। इतना अरज हमार, हे ॥
भवसागर दुख दारुन मिटिहैं। छुटि जैहैं कुल-परिवार, हे ॥
कह दरिया यह मंगल मूल। अनूप फुलैला जहाँ फूल, हे ॥१॥

अबरी के बार बकसु मोरे साहेब। जनम-जनम कै चेरि, हे ॥
चरनकमल मैं हृदय लगाइब। कपट-कागज सब फाड़ि, हे ॥
मैं अबला किछुओ नहिं जानौं। परपंचन के साथ, हे ॥
पिया-मिलन बेरी इन्ह मोरा रोकल। तब जिव भयल अनाथ, हे ॥
जब दिल में हम निहचे जानल॥ सूझि परल जमफंद, हे ॥
खूलल दृष्टि दिया मनि नेसल। मानहुँ सरद के चन्द, हे ॥
कह दरिया दरसन-सुख उपजल। दुख सुख दूरि बहाय, हे ॥२॥

पद

१. अबरी=अब, इस शब्द का अर्थ 'अबल' भी किया गया है, तब 'बार' का अर्थ 'बल' किया जाना चाहिए, अर्थात् 'अबल के बल'। पर यह खींचतान का अर्थ होगा। इसलिए 'अबरी के बार' का सीधा अर्थ 'अब की बार तो' यह ठीक है। बकसु=बख्श दो, माफ करदो। बकसिहौ=बख्शोगे, प्रदान करोगे। अछै-बिरिछ=जिस वृक्ष का कभी नाश न हो; सहज समाधि से अभिप्राय है। बिहान=सवेरा, दिन। सुहाय=सुन्दर। फुलैला=फूला हैं।

२. मोरा रोकल=मुझे रोक रखा। भयल=हुआ। परल=पड़ा। खूलल...खुलगई। नेसल=लेसल, जला दिया।

सुमिरहु सतपद प्रान-अधारा। सत्त सब्द लै उतरहु पारा॥
गुरु के बचन पावल जब बीरा। अचल अमर निहचै घर थीरा॥
हंसा जाय मिले करतारा। बहुरि न आवै एहि संसारा॥
तीनिलोक से न्यारे डेरा। पुरुष पुरान जहँ हंस घनेरा॥
गुरु के बचन सिष्य जो धरई। जाय छपलोक नरक नहिं परई॥
कह दरिया जब बीरा पावै। जाय सतलोक बहुरि नहिं आवै॥३॥

मैं कुलवंती खसम-पियारी। जाँचत तू लै दीपक बारी॥
गंध सुगंध थार भरि लीन्हा। चंदन चर्चित आरति कीन्हा॥
फूलन सेज सुगंध बिछायौं। आपन पिया पलँग पौढ़ायौं॥
सेवत चरन रैनि गइ बीती। प्रेम-प्रीति तुम ही सों रीती॥
कह दरिया ऐसो चित लागा। भई सुलछनि प्रेम अनुरागा॥४॥

संझा-आरति समरथ की है। सिर पर छत्र सुगंध सही है॥
नहि तहँ चोवा चन्दन पानी। अविगति जोति है अंमृत बानी॥
नहिं तहँ तिलक जनेऊ माला। पूरनब्रह्म अखंडित काला॥
नहिं तहँ जाति बरन कुल कोई। बरसत अंमृत चाखहिं सोई॥
अजर अमर घर लेहिं निवासा। नहिं तहँ काल कुबुधि कै त्रासा॥
आवन गवन गरभ नहिं बासा। कह दरिया सोइ सतगुरु दासा॥५॥

झूलना

प्रेम धगा यह टूटता ना,
गर टूटि कंठी फिर बाँधना क्या।
यह तत्त-तिलक सतनाम छापा करु,
और विविध है साधना क्या।
ग्यान का दंड न डगमगै कर,
दंड लिये काहू मारना क्या।

---

३. बीरा=बीड़ा; आज्ञा से आशय है। थीरा=स्थिर। हंसा=मुक्त जीव। छपलोक=गुप्तलोक; रहस्यमय ब्रह्म-पद।

४. खसम=स्वामी। जाँचत......बारी=अरे, तू मुझे दीपक जलाकर देखता-परखता है! चर्चित=लेपकर। सेवत=पलोटते या चाँपते हुए। सुलछनि=सुलक्षणी, सदाचारिणी।

५. चोवा=शीतल सुगन्धित द्रव पदार्थ। अविगति=जो कहा नहीं जा सके; अव्यक्त। काला=कला।

यह झूलना दरिया साहेब कहा,
सतनाम सही, बहु पेखना क्या ॥१॥

बसंत

मैं जानहुँ तुम दीनदयाल। तुम सुमिरे नहिं तपत काल ॥
ज्यों जननी प्रतिपालै सूत। गर्भबास जिन दियो अकूत ॥
जठर-अगिनि तें लियो है काढ़ि। ऐसी वाकी ठवर गाढ़ि ॥
गाढ़े जो जन सुमिरन कीन्ह। परघट जग में तेहि गति दीन्ह ॥
गरबी मारेउ गैब बान। संत को राखेउ जीव जान ॥
जल में कुमुदिनी इंदु अकास। प्रेम सदा गुरुचरननि पाय ॥
जैसे पपिहा जल से नेह। बुन्द एक बिस्वास तेह ॥
स्वर्ग पताल मृतमंडल तीनि। तुम ऐसो साहेब मैं अधीन ॥
जानि आयो तुम चरन पास। निज मुख बोलेउ कहेउ दास ॥
सतपुरुष बचन नहिं होहिं आन। बलु पुरब से पच्छिम उगहिं भान ॥
कहै दरिया तुम हमहिं एक। ज्यों हारिल की लकड़ी टेक ॥१॥

फुटकर पद

भीतर मैल चहल कै लागी, ऊपर तन का धोवै है।
अविगत मुरति महल के भीतर, वाका पंथ न जोवै है ॥

झूलना

१. धगा=धागा; संबंध। कंठी=छोटी-छोटी तुलसी की गुरियों की माला, जिसे वैष्णव गले में पहनते हैं। छापा=मुद्रा; शंख, चक्र आदि के चिह्न, जिन्हें वैष्णव अपने अंगों पर गरम धातु से अंकित कराते हैं। दंड=संन्यासी का दंड। पेखना=देखना।

बसंत

१. नहिं तपत=दाह या क्लेश नहीं देता है। सूत=सूत, पुत्र। अकूत=बेहिसाब, अत्याधिक। जठर=पेट। ठवर=ठौर; सामर्थ्य। गाढ़ी=संकट में। परघट=प्रकट होकर। गति=शरण; मुक्ति। गैब=अदृष्ट। मृत-मंडल=मर्त्यलोक। आन=अन्यथा, मिथ्या। बलु=बरु, भले ही। हारिल=किंवदन्ती है कि हाड़िल पक्षी बिना चंगुल में लकड़ी दबाये धरती पर पैर नहीं रखता है।

जुगति बिना कोइ भेद न पावै, साधु-संगति का गोवै है।
कह दरिया कुटने बे गीदी, सीस पटकि का रोवै है ॥१॥

बिहंगम, कौन दिसा उड़ि जैहौ।
नाम बिहूना सो परहीना, भरमि-भरमि भौ रहिहौ ॥
गुरुनिन्दक वद संत के द्रोही, निन्दै जनम गँवैहौ।
परदारा परसंग परस्पर, कहहु कौन गुन लहिहौ ॥
मद पी माति मदन तन व्यापेउ, अंमृत तजि बिष खैहौ।
ससुझहु नहिं वा दिन की बातें, पल-पल घात लगैहौ ॥
चरनकँवल बिनु सो नर बूडेउ, उभि चुभि थाह न पैहौ।
कहै दरिया सतनाम भजन बिनु, रोइ रोइ जनम गँवैहौ ॥२॥

बुधजन, चलहु अगम पथ भारी।
तुमते कहौं समुझ जो आवै, अबरि के बार सम्हारी ॥
काँट कूस पाह नहिं तहवाँ, नाहि बिटप बन झारी।
बेद कितेब पंडित नहि तहवाँ, बिनु मसि अंक सँवारी ॥
नहिं तह सरिता समुँद न गंगा, ग्यान के गमि उँजियारी।
नहिं तहँ गनपति फनपति बरह्मा, नहिं तहँ सृष्टि सँवारी ॥
सर्ग पताल मृतलोक के बाहर, तहवाँ पुरुष भुवारी।
कहै दरिया तहँ दरसन सत है, संतन लेहु बिचारी ॥३॥

साखी

बेवाहा के मिलन सों, नैन भया खुसहाल।
दिल मन मस्त मतवल हुआ, गूँगा गहिर रसाल ॥१॥

फुटकर पद

१. चहल=कीचड़; बुरी वासनाओं से अभिप्राय है। महल=हृदय। जोवै है=देखता है। जुगति=योग-युक्ति। भेद=रहस्य। गोवै=जी छिपाता है। कुटने=धूर्त। गोदी=कायर।
२. बिहूना=रहित। परहीना=बिना पंख के। भौ=भव, संसार। गुन=लाभ से आशय है। मदन=कामदेव।
३. अबरिके=अबकी। कूस=कुश। पाहन=पत्थर। झारी=झाड़ी। मसि=स्याही। फनपति=शेषनाग। भुवारी=भूपाल; राजा, स्वामी।

साखी

१. बेवाहा=दरियापंथियों का मूल मंत्र। मतवल=मतवाला।

भजन भरोसा एक बल, एक आस बिस्वास।
प्रीति प्रतीति इक नाम पर, सोइ संत बिबेकी दास ॥२॥

है खुसबोई पास में, जानि परै नहिं सोय।
भरम लगे भटकत फिरे, तिरथ बरत सब कोय ॥३॥

जंगम जोग सेवड़ा, पड़े काल के हाथ।
कह दरिया सोइ बाचिहै, सत्तनाम के साथ ॥४॥

बारिधि अगम अथाह जल, बोहित बिनु किमि पार।
कनहरिया गुरु ना मिला, बूड़त हैं मँझधार ॥५॥

निकट जाय जमराज नहिं, सिर धुनि जम पछिताय।
बुन्द सिंध में मिल रहा, कवन सकै बिलगाय ॥६॥

पाँच तत्त की कोठरी, तामें जाल जंजाल।
जीव तहाँ बासा करै, निपट नगीचे काल ॥७॥

दरिया तन से नहिं जुदा, सब किछु तन के माहिं।
जोग-जुगति सों पाइये, बिना जुगति किछु नाहिं ॥८॥

दरिया दिल दरियाव है, अगम अपार बेअंत।
सब महँ तुम, तुम में सभे, जानि मरम कोइ संत ॥९॥

दरिया-सागर

साखी

तीनि लोक के ऊपरे, अभय लोक बिस्तार।
सत्त सुकृत परवाना पावै, पहुँचै जाय करार ॥१॥

---

४. सेवड़ा=जैन यति। बाचिहै=बच सकेगा।

५. बोहित=जहाज। कनहरिया=कर्णधार, खेनेवाला।

६. बुंद.......बिलगाय=आत्मा जब परमात्मा में लीन हो गई, तब कौन उसे अलगा सकता है।

७. निपट नगीचे=अत्यंत निकट।

दरिया-सागर

१. अभय लोक=सत्यलोक, अथवा ब्राह्मी अवस्था; इसे दरिया साहब ने 'छपलोक' कहा है, अर्थात् गुप्तलोक। करार=तट, निर्दिष्ट स्थान।

जोतिहि ब्रह्मा बिस्नु हहिं, संकर जोगी ध्यान।
सत्तपुरुष छपलोक महँ, ताको सकल जहान ॥२॥
सोभा अगम अपार, हंसबंस सुख पावहीं।
कोइ ग्यानी करै विचार, प्रेमतत्तु जा उर बसै ॥३॥

चौपाई

जो सत सब्द बिचारै कोई। अभय लोक सीधारै सोई॥
कहन सुनन किमिकरि बनि आवै। सत्तनाम निजु परचै पावै॥
लीजै निरखि भेद निजु सारा। समुझि परै तब उतरै पारा॥
कंचल डाहै पावक जाई। ऐसे तन कै डाहहु भाई॥
जो हीरा घन सहै घनेरा। होइ हिरंबर बहुरि न फेरा॥
गहै मूल तब निर्मल बानी। दरिया दिल बिच सुरति समानी॥
पारस सब्द कहा समुझाई। सतगुरु मिलै त देहि दिखाई॥
सतगुरु सोइ जो सत्त चलावै। हंस बोधि छपलोक पठावै॥
घर घर ग्यान कथै बिस्तारा। सो नहिं पहुँचै लोक हमारा ॥४॥

चौपाई

छपलोकहि तें हम चलिआई। सार सबद गहिया सुख पाई॥
माया त्यागि सबद लव लावै। ता कहँ माथ जगत सब नावै॥
अदल चलावै यहि संसारा। सोई निजु है बंस हमारा ॥५॥

साखी

जो जिव फंदे नारि सों, नहिं बंस हमार।
बंस राखि नारी जो त्यागै, सो उतरै भवपार ॥६॥
माला टोपी भेष नहिं, नहिं सोना सिंगार।
सदा भाव सतसंग है, जो कोइ गहै करार ॥७॥

---

२. हहिं=हैं।

३. हंस-बंस=सिद्ध पुरुषों की परंपरा से तात्पर्य है।

४. सीधारै=पहुँचता है। डाहै=जलाता है। हिरंबर=शुद्ध हीरा। फेरा=संसार में फिर-फिर जन्म लेना। सुरति=लौ। बोधि=उपदेश देकर।

५. गहिया=ग्रहण किया। नावै=झुकता है। अदल=शासन। बंस=संत-परंपरा से आशय है।

६. बंस राखि=संतत्त्व को रखकर।

चौपाई

आतमदेव पुजहु तुम भाई। को जग पाती तोरहु जाई॥
पाति तोरि निर्गुन नहिं पाई। आतम जीवघात इन्ह लाई॥८॥

साखी

परआतम के पूजते, निर्मल नाम अधार।
पंडित पत्थल पूजते, भटके जम के द्वार॥९॥

चौपाई

सब घट ब्रह्म और नहिं दूजा। आतम देव क निर्मल पूजा॥
बादिहि जनम गया सठ तोरा। अंत कि बात किया तैं भोरा॥
पढ़ि-पढ़ि पोथी भा अभिमानी। जुगति और सब म्रिथा बखानी॥
जौ न जानु छपलोक के मरमा। हंस न पहुँचिहि एहि षटकरमा॥
सार सब्द जब दृढ़ता लावै। तब सतगुरु किछु आपु लखावै॥
दरिया कहै सब्द निरबाना। अबरि कहौं नहिं बेद बखाना॥
बेदै अरुझि रहा संसारा। फिर-फिर होहि गरभ अवतारा॥१०॥

साखी

सुमिरन माला भेख नहिं, नाहिं मसी को अंक।
सत्त सुकृत दृढ़ लाइकै तब तोरै गढ़ बंक॥११॥

ब्राह्मन औ संन्यासी, सबसौं कहा बुझाय।
जो जन सबदहि मानिहै, सइ संत ठहराय॥१२॥

चौपाई

हिन्दु तुरुक हम एकै जाना। जो एह मानै सब्द निसाना॥
साहब का एह सब जिव अहई। बूझि बिचारि ग्यान निजु कहई॥
अन पानी सब एकै होई। हिन्दु तुरुक दूजा नहिं कोई॥१३॥

---

८. पाती=बेल-पत्र, जिसे शिव पर चढ़ाते हैं।
९. पत्थल=पत्थर, देव-मूर्ति।
१०. बादिहि=व्यर्थ ही। जुगति=योग-युक्ति। म्रिथा=मिथ्या। मरमा=रहस्य। षटकरमा=ब्राह्मणों के छह कर्म; विविध कर्म-काण्ड। सब्द निरबाना=गुरुमुख द्वारा उपदिष्ट परमार्थ-ज्ञान से मोक्ष का रहस्य।
११. मसी को अंक=स्याही से लिखा अक्षर; कोरे पुस्तकी ज्ञान से आशय है। गढ़ बंक=माया का विकट क़िला।
१३. अन=अन्न।

चौपाई

हिन्दु तुरुक इमि दुनों भुलाना। दुनों वादि ही वादि बिलाना॥
वो हिरन वो गाइहिं खाई। लोहु एक दूजा नहिं भाई॥१४॥

चौपाई

दूजा दुविधा जेहि नहिं होई। भगत सुनाम कहावै सोई॥
ब्राह्मन सो जो ब्रह्महि चीन्हा। ध्यान लगाय रहै लवलीना॥
क्रोध मोह तृस्ना नहिं होई। पंडित नाम सदा है सोई॥१५॥

साखी

दरिया भवजल अगम अति, सतगुरु करहु जहाज।
तेहि पर हंस चढ़ाइकै, जाइ करहु सुखराज॥१६॥

चौपाई

धनि ओइ पंडित धनि ओइ ग्यानी। संत धन्न जिन्ह पद पहिचानी॥
धनि ओइ जोगी जुगुता मुकुता। पाप पुन्न कबहीं नहिं भुगुता॥
धनि ओइ सीख जो करै बिचारा। धनि सतगुरु जो खेवनहारा॥
धनि ओइ नारि पिया सँगि राती। सोइ सोहगिनि कुल नहिं जाती॥१७॥

चौपाई

भूले संपति स्वारथ मूढ़ा। परे भवन में अगम अगूढ़ा॥
संत निकट फिनि जाहिं दुराई। विषय-बासरस फेरि लपटाई॥
अब का सोचसि मदहिं भुलाना। सेमर सेइ सुगा पछताना॥
मरनकाल कोइ संगि न साथा। जब जम मसतक दीन्हेउ हाथा॥
मात पिता धरनी घर ठाढ़ी। देखत प्रान लियो जम काढ़ी॥
धन सब गाढ़ गहिर जो गोड़े। छूटेउ माल जहाँ लगि भाँड़े॥

---

१४. वादि ही वादि बिलाना=बहस में पड़कर दोनों ही सच्चे रास्ते से भटक गये और नष्ट हो गये, ईश्वर का अल्लाह का सच्चा भेद किसी को न मिला।

१५. दूजा=द्वैत-भाव।

१६. हंस=जीव।

१७. पद=ब्रह्म-पद; परमार्थ की अवस्था। जुगुता=युक्ति; साम्यावस्था को प्राप्त। मुकुता=मुक्त। सीख=शिष्य। खेवनहारा=संसार-सागर से पार लगाने वाला; अविद्या को नष्टकर परमार्थ का मार्ग दिखानेवाला। राती=प्रेम में रँगी हुई।

भवन भया वन बाहर डेरा। रोवहिं सब मिलि आँगन घेरा॥
खाट उठाइ काँध करि लीन्हा। बाहर जाइ अगिनि जो दीन्हा॥
जरि गई खलरी भसम उड़ाना। सोचि चारि दिन कीन्हेउ ग्याना॥
फिरि धंधे लपटाना प्रानी। बिसरि गया ओइ नाम निसानी॥
खरचहु खाहु दया करु प्रानी। ऐसे बुड़े बहुत अभिमानी॥
सतगुरु सबद साँच एह मानी। कह दरिया करु भगति बखानी॥
भूलि भरम एह मूल गँवावै। ऐसन जनम कहाँ फिरि पावै॥
धन संपति हाथी अरु घोरा। मरन अंत सँग जाहिं न तोरा॥
मातु पिता सुत बंधौ नारी। ई सब पाँवर तोहि बिसारी॥१८॥

साखी

कोठा महल अटारिया, सुनेउ स्रवन बहु राग।
सतगुरु सबद चीन्हें बिना, ज्यों पछिन महँ काग॥१९॥

●

१८. अगम अगूढ़ा=माया में बुरी तरह लिप्त, जिसे छोड़कर परमार्थ की ओर जाना जिन्हें अशक्य है। फिनि=पुनः। जाहिं दुराई=सामने से भाग जाते हैं। बास=वासना। सुगा=तोता। घरनी=स्त्री। खलरी=खाल; ठठरी। कीन्हेउ ग्याना=मन को समझा लिया। बुड़े=डूब गये, नष्ट हो गये। मूल=पूँजी; परमार्थ। बंधौ=भाई-बंधु। पाँवर=नीच; मूढ़।

दरिया साहब

(मारवाड़वाले)

चोला-परिचय

जन्म-संवत्–१७३३ वि.
जन्म-स्थान–जैतारन गाँव (मारवाड़)
जाति–धुनियाँ (मुसलमान)
पालनहारे–नाना कमीच व नानी कमीरा
गुरु–संत प्रेमजी
चोला-त्याग–संवत् १८१५ वि.
दरिया साहब जाति के धुनियाँ थे। उन्होंने स्वयं ही कहा है–
"जो धुनियाँ तौभी मैं राम तुम्हारा।
अधम कमीन जाति मतिहीना, तुम तौ हौ सिरताज हमारा।"

यह सात साल के थे, जब इनके पिता की मृत्यु हुई। रैन नाम के एक गाँव में, जो मेड़ता परगने में था, इनके नाना-नानी ने इनको पाला पोसा। यह पढ़े-लिखे नहीं थे। ईश्वर-भक्ति की पिपासा इनको बालपन से ही थी। कितने ही मुल्लों व पंडितों के द्वार खटखटाये, पर भक्तिरस का भेद कहीं भी नहीं पाया। वे सब के सब छूछे घड़े थे। अंत में दरिया साहब प्रेमजी महाराज के पास पहुँचे, जो एक पहुँचे हुए संत थे। यह खियानसर गाँव (बीकानेर राज्य) में रहते थे, और स्वामी दादूदयालजी के शिष्य थे। प्रेम का असली मार्ग उन्होंने इन्हें पकड़ा दिया। उनके चरणों में बैठकर दरिया साहब ने भरपूर भक्ति-रस पिया और पिलाया। जिस परमतत्त्व के विरह में बरसों से तड़प रहे थे, वह इन्हें सहज ही मिल गया, भेद पा लिया।

कतिपय दरियापंथी भक्तों का विश्वास है कि दरिया साहब महात्मा दादूदयाल के अवतार थे। उनका कहना है कि दादूजी महाराज ने दरिया साहब के प्रकट होने से सौ बरस पहले यह साखी कही थी–

"देह पड़ंताँ दादू कहै, सौ बरसाँ इक संत।
रैन नगर में परगटै, तारै जीव अनंत॥"

बानी-परिचय

महात्मा दादूदयाल तथा अन्य अनेक संतों की तरह दरिया साहब ने भी विविध अंगों पर साखियाँ कही हैं। प्रेम और विरह के पद भी इनके गहरे और टकसाली हैं। नाद-परिचय और ब्रह्म-परिचय की साखियों में सूक्ष्म अभ्यास और गहरा अनुभव झलकता है। कहने का ढंग सुलझा हुआ, और भाषा सरल और मधुर है। शब्द अभ्यासी संतों की बानियों में दरिया साहब की बानी ने खासा स्थान पाया है।

आधार

१ दरिया साहब (मारवाड़) की बानी और जीवन-चरित्र—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

●

दरिया साहब

(मारवाड़वाले)

सतगुरु का अंग

नमो नमो हरि गुरु नमो, नमो नमो सब संत।
जन दरिया बंदन करै, नमो नमो भगवंत ॥१॥

जन दरिया हरिभक्ति की, गुराँ बताई बाट।
भूला ऊँजाड़ जाय था, नरक पड़न के घाट ॥२॥

दरिया सतगुर सब्द सौं, मिट गई खैंचातान।
भरम अँधेरा मिट गया, परसा पद निरबान ॥३॥

नहिं था राम रहीम का, मैं मतिहीन अजान।
दरिया सुध बुध ग्यान दे, सतगुर किया सुजान ॥४॥

सोता था बहु जन्म का, सतगुरु दिया जगाय।
जन दरिया गुर सब्द सौं, सब दुख गये बिलाय ॥५॥

सतगुरु सब्दाँ मिट गया, दरिया संसय सोग।
औषद दे हरिनाम का तनमन किया निरोग ॥६॥

रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय।
सतगुर एकहि सब्द से, दीन्ही तुरत उड़ाय ॥७॥

सतगुरु का अंग

२. गुराँ=गुरुजी ने।

३. परसा=छूलिया, पालिया।

४. सुजान=ज्ञानवान्।

६. सब्दाँ=शब्दों से, उपदेशों से। सोग=शोक।

७. रंजी=रज, धूल। सास्तर=शास्त्र।

जैसे सतगुर तुम फरी, मुझसे कछू न होय।
बिष-भाँडे बिष काढ़कर, दिया अमीरस मोय ॥८॥

सब्द गहा सुख ऊपजा, गया अँदेसा मोहि।
सतगुर ने किरपा करी, खिड़की दीनीं खोहि ॥९॥

पान बेल से बीछुड़ै, परदेसाँ रस देत।
जन दरिया हरिया रहै, उस हरी बेल के हेत ॥१०॥

सुमिरन का अंग

राम बिना फीका लगै, सब किरिया सास्तर ग्यान।
दरिया दीपक कह करै, उदय भया निज भान ॥१॥

दरिया नर-तन पायकर, कीया चाहै काज।
राव रंक दोनों तरैं, जो बैठैं नाम-जहाज ॥२॥

मुसलमान हिंदू कहा, षट दरसन रंक राव।
जन दरिया हरिनाम बिन, सबपर जम का दाव ॥३॥

जो कोइ साधु गृही में, माहिं राम भरपूर।
दरिया कह उस दास की, मैं चरनन की धूर ॥४॥

दरिया सुमिरै राम को, सहज तिमिर का नास।
घट भीतर होय चाँदना, परमजोति परकास ॥५॥

सतगुर-संग न संचरा, रामनाम उर नाहिं।
ते घट मरघ सारिखा, भूत बसैं ता माहिं ॥६॥

---

८. दिया मोय=भर दिया।
९. अँदेसा=डर, संशय। दीनीं खोहि=खोलदी।

सुमिरन का अंग

१. किरिया=क्रिया, कर्मकाण्ड।
३. षट दरसन=छह शास्त्र।
४. जो कोई......भरपूर=जो विरक्त और गृहस्थ दोनों में ही राम को व्यापक देखता है।
६. संचरा=संचार हुआ, किया। घट=शरीर।

दरिया काया कारवी, मौसर है दिन चार।
जबलग साँस सरीर में, तबलग राम सँभार ॥७॥

दरिया आतम मल भरा, कैसे निर्मल होय।
साबन लागै प्रेम का, रामनाम-जल धोय ॥८॥

दरिया सुमिरन राम का देखत-भूली खेल।
धन धन हैं वे साधवा, जिन लीया मन मेल ॥९॥

फिरी दुहाई सहर में, चोर गये सब भाज।
सत्र फिर मित्र जु भया, हुआ राम का राज ॥१०॥

बिरह का अंग

दरिया हरि किरपा करी, बिरहा दिया पठाय।
यह विरहा मेरे साध को सोता लिया जगाय ॥१॥

दरिया बिरही साध का, तन पीला मन सूख।
रैन न आवै नींदड़ी, दिवस न लागै भूख ॥२॥

बिरहिन पिउ के कारने, ढूँढ़न बनखंड जाय।
निस बीती, पिउ ना मिला दरद रही लिपटाय ॥३॥

बिरहिन का घर बिरह में, ता घट लोहु न माँस।
अपने साहब कारने, सिसकै साँसों साँस ॥४॥

सूर का अंग

पंडित ग्यानी बहु मिले, बेद ग्यान परबीन।
दरिया ऐसा न मिला, रामनाम लवलीन ॥१॥

---

७. कारवी=मिथ्या। मौसर=अवसर। सँभार=स्मरण और ध्यानकर।

९. लीया मेल=लगा लिया, रमा लिया।

विरह का अंग

१. पठाय=भेज दिया। सूख=उदास, रसहीन।

३. दरद रही लिपटाय=अपने दर्द से चिपटकर वहीं सो गई।

बक्ता स्त्रोता बहु मिले, करते खैंचातान।
दरिया ऐसा ना मिला, जो सन्मुख झेलै बान॥२॥

दरिया बान गुरदेव का, कोइ झेलै सूर सुधीर।
लागत ही ब्यापै सही, रोम-रोम में पीर॥३॥

दरिया साँचा सूरमा, सहै सब्द की चोट।
लागत ही भाजै भरम, निकस जाय सब खोट॥४॥

सबहि कटक सूरा नहीं, कटक माहिं कोइ सूर।
दरिया पड़ै पतंग ज्यों, जब बाजै रन तूर॥५॥

भया उजाला गैब का, दौड़े देख पतंग।
दरिया आपा मेटकर, मिले अगिन के रंग॥६॥

दरिया प्रेमी आत्मा, रामनाम धन पाया।
निरधन था धनवँत हुआ, भूला घर आया॥७॥

साध सूर का एक अँग, मना न भावै झूठ।
साध न छांडै राम को, रन में फिरै न पूठ॥८॥

सूर न जानै कायरी, सूरातन से हेत।
पुरजा-पुरजा हो पड़ै, तहू न छांड़ै खेत॥९॥

दरिया सो सूरा नहीं जिन देह करी चकचूर।
मन को जीत खड़ा रहै, मैं बलिहारी सूर॥१०॥

दरिया साँचा सूरमा, अरिदल घालै चूर।
राज थापिया राम का, नगर बसा भरपूर॥११॥

सूर का अंग

२. खैंचातान=तर्क-वितर्क, नये-नये अर्थ लगाने में बाल की खाल खींचना। झेलै=अपने ऊपर ले।

५. कटक=सेना। तूर=तुरही, रण में बजाने का एक बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है।

६. उजाला गैब का=जो आँखों के सामने नहीं उस रहस्यमयी शून्यता में स्थित ब्रह्म ज्योति का अद्‌भुत प्रकाश। पतंग=पतिंगे; यहाँ प्रेमी साधकों से तात्पर्य है।

८. मना=मन को। फिरै न पूठ=पीठ नहीं दिखाता है।

९. पुरजा-पुरजा=टुकड़ा-टुकड़ा।

१०. चकचूर=चूर-चूर, टुकड़ा-टुकड़ा।

११. घालै चूर=मारकर चूर-चूर कर देता है।

नाद-परचे का अंग

रसना सेती ऊतरा, हिरदे कीया बास।
दरिया बरघा प्रेम की, षट ऋतु बारह मास ॥१॥

दरिया हिरदे राम से, जो कभु लागे मन।
लहरें उट्ठें प्रेम की, ज्यों सावन बरषा घन ॥२॥

जन दरिया हिरदा बिचे, हुआ ग्यान परगास।
हौद भरा जहँ प्रेम का, तहँ लेत हिलोरा दास ॥३॥

अमी झरत, बिगसत कँवल, उपजत अनुभव ग्यान।
जन दरिया उस देस का, भिन-भिन करत बखान ॥४॥

कंचन का गिर देखकर, लोभी भया उदास।
जन दरिया थाके बनिज, पूरी मन की आस ॥५॥

मीठे राचै लोग सब, मीठे उपजै रोग।
निरगुन कड़ुवा नीम सा, दरिया दुर्लभ जोग ॥६॥

ब्रह्म-परचे का अंग

रतन अमोलक परखकर, रहा जौहरी थाक।
दरिया तहँ कीमत नहीं, उनमुन भया अबाक ॥१॥

धरती गगन पवन नहिं पानीं, पावक चंद न सूर।
रात-दिवस की गम नहीं, जहँ ब्रह्म रहा भरपूर ॥२॥

नाद-परचे का अंग

१. रसना......बास=जिह्वा से नाम स्मरण छूटकर सीधा अंतर में चला गया, अर्थात् श्वास-प्रश्वास से सहज अजपा जप होने लगा।

३. हौद=हौज, कुंड। हिलोरा=लहर। भिन-भिन=भिन्न-भिन्न प्रकार से।

५. उदास=तृप्त। बनिज=साधना से तात्पर्य है।

६. राचै=खुश होते हैं। जोग=योगाभ्यास।

ब्रह्म-परचे का अंग

१. उनमुन=मौन। अबाक=निःशब्द, मौन।

पाप पुन्न सुख दुख नहीं, जहँ कोइ कर्म न काल।
जन दरिया जहँ पड़त है, हीरों की टकसाल ॥३॥

तज बिकार आकार तज, निराकार को ध्याय।
निराकार में पैठकर, निराधार लौ लाय ॥४॥

जीव जात से बीछुड़ा, धर पँचतत का भेख।
दरिया निज घर आइया, पाया ब्रह्म अलेख ॥५॥

प्रथम ध्यान अनुभौ करै, जासे उपजै ग्यान।
दरिया बहुते करत हैं, कथनी में गुजरान ॥६॥

आँखों से दीखै नहीं, सब्द न पावै जान।
मन बुधि तहँ पहुँचै नहीं, कौन कहै सेलान ॥७॥

पंछी ऊड़े गगन में, खोज मँडै नहिं माहिं।
दरिया जल में मीन गति, मारग दरसै नाहिं ॥८॥

मन बुधि चित पहुँचै नहीं, सब्द सकै नहिं जाय।
दरिया धन वे साधवा, जहाँ रहे लौ लाय ॥९॥

मावा तहाँ न संचरै, जहाँ ब्रह्म का खेल।
जन दरिया कैसे बनै, रवि रजनी का मेल ॥१०॥

जात हमारी ब्रह्म है, माता पिता है राम।
गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में बिसराम ॥११॥

हंस उदास का अंग

किरकाँटा किस काम का, पलट करै बहु रंग।
जन दरिया हंसा भला, जद तद एकै रंग ॥१॥

---

३. टकसाल=वह स्थान जहाँ सिक्के बनाये या ढाले जाते हैं।

५. जाति=असल जाति से अर्थात् ब्रह्मभाव से। तत=तत्त्व।

७. सेलान=निशान, रूप।

८. खोज मँडै नहिं माहिं=आकाश में निशान नहीं पड़ते हैं।

११. गिरह=गृह, घर।

हंस उदास का अंग

१. किरकाँटा=गिरगिट। जद तद=सदा।

दरिया बगुला ऊजला, उज्जल ही होय हंस।
ए सरवर मोती चुगैं, वाके मुख में मंस ॥२॥

जन दरिया हंसा तना, देख बड़ा व्यौहार।
तन उज्जल मन ऊजला, उज्जल लेत अहार ॥३॥

बाहर से उज्जल दसा, भीतर मैला अंग।
ता सेती कौवा भला, तन मन एकहि रंग ॥४॥

मानसरोवर बासिया, छीलर रहै उदास।
जन दरिया भज राम को, जबलग पिंजर साँस ॥५॥

सुपने का अंग

दरिया सोता सकल जग, जागत नाहीं कोय।
जागे में फिर जागना, जागा कहिये सोय ॥१॥

साध जगावै जीव को, मत कोइ उट्ठै जाग।
जागे फिर सोवै नहीं, जन दरिया बड़भाग ॥२॥

साध का अंग

दरिया लच्छन साध का, क्या गिरही क्या भेख।
निःकपटी निरसक रहि, बाहर भीतर एक ॥१॥

सत्त सब्द सत गुरमुखी, मत गजंद-मुखदंत।
यह तो तोड़ै पौलगढ़, वह तोड़ै करम अनंत ॥२॥

---

२. मंस=माँस।

४. ता सेती=उससे।

५. छीलर=छिछला तालाब।

सुपने का अंग

१. जागे में फिर जागना=ऐसा चेत जाना कि देह अनित्य है और निज स्वरूप या आत्मभाव ही नित्य है और फिर कभी देहासक्ति में न फँसना।

साध का अंग

१. गिरही=गृहस्थ। भेख=वैरागी।

२. मत=मत्त, मतवाला। पौलगढ़=क़िले की ड्योढ़ी का फाटक।

दाँत रहै हस्ती बिना, तो पौल न टूटै कोय।
कै कर धारै कामिनी, कै खेलाराँ होय॥३॥

मतबादी जानै नहीं, ततबादी की बात।
सूरज ऊगा उल्लुवा, गिनै अँधारी रात॥४॥

सीखत ग्यानी ग्यान गम, करै ब्रह्म की बात।
दरिया बाहर चाँदनी, भीतर काली रात॥५॥

अपारख का अंग

हीरा लेकर जौहरी, गया गँवारै देस।
देखा जिन कंकर कहा, भीतर परख न लेस॥१॥

दरिया हीरा क्रोड़ का (जाकी) कीमत लखै न कोय।
जबर मिलै कोइ जौहरी, तबही पारख होय॥२॥

उपदेश का अंग

दरिया बहु बकबाद तज, कर अनहद से नेह।
औंधा कलसा ऊपरे, कहा बरसावै मेह॥१॥

जन दरिया उपदेस दे, भीतर प्रेम सधीर।
गाहक को कोइ हींग का, कहा दिखावै हीर॥२॥

दरिया गैला जगत को, क्या की जै सुलझाय।
सुलझाया सुलझै नहीं, सुलझ-सुलझ उलझाय॥३॥

---

३. दाँत रहै हस्ती बिना=यदि केवल हाथी का दाँत हो, पर हाथी न हो; साधना के पक्ष में यह अर्थ होगा, कि यदि इन्द्रियों और मन का दमन न किया हो, केवल वाचनिक साधना हो। खेलाराँ=खिलौना।

४. मतबादी=भिन्न-भिन्न शास्त्रों के सिद्धान्तों की बात करनेवाले। ततबादी=तत्त्ववादी, शुद्ध आत्मज्ञानी।

उपदेश का अंग

२. सधीर=दृढ़, पक्का। हीर=हीरा।

३. गैला=गहिला, पागल।

दरिया गैला जगत को, क्या की जै समझाय।
रोग नीसरै देह में, पत्थर पूजन जाय ॥४॥

कंचन कंचन ही सदा, काँच काँच सो काँच।
दरिया झूठ सो झूठ है, साँच साँच सो साँच ॥५॥

कानों सुनी सो झूठ सब आँखों देखी साँच।
दरिया देखे जानिये, यह कंचन यह काँच ॥६॥

पारस का अंग

पारस परसा जानिये, जो पलटै अँग-अंग।
अंग-अंग पलटै नहीं, तौ है झूठा संग ॥१॥

पारस जाकर लाइये, जाके अँग में आप।
क्या लावै पाषन को, घस-घस होय संताप ॥२॥

दरिया बिल्ली गुरु किया, उज्जल बगु को देख।
जैसे को तैसा मिला, ऐसा जक्त अरु भेष ॥३॥

साध स्वाँग अस आँतरा, जेता झूठ अरु साँच।
मोती मोती फेर बहु, इक कंचन इक कांच ॥४॥

पाँच सात साखी कही, पद गाया दस दोय।
दरिया कारज ना सरै, पेट-भराई होय ॥५॥

मिश्रित साखी

बड़ के बड़ लागै नहीं, बड़ के लागै बीज।
दरिया नान्हा होयकर, रामनाम गह चीज ॥१॥

---

४. रोग=चेचक से तात्पर्य है। नीसरै=निकलता है। पत्थर पूजन जाय=माता कहकर देवी पूजने जाते हैं।

पारस का अंग

२. लाइए=छुआवे। आप=आब या जौहर।

३. जक्त=जगत, सांसारिक शिष्य से आशय है। भेख=सांसारिक साधु या गुरु से तात्पर्य है।

४. साध स्वाँग=सच्चा साधु और झूठा भेषधारी साधु। कंचन=असली से तात्पर्य है। काँच=नकली से तात्पर्य है।

माया माया सब कहै, चीन्है नाहीं कोय।
जन दरिया निज नाम बिन, सबही माया होय ॥२॥

नारी आवै प्रीत कर, सतगुर परसै आन।
दरिया हित उपदेस दे, माया बहिन धी जान ॥३॥

नारी जननी जगत की, पाल-पोस दे पोष।
मूरख राम बिसार कर, ताहि लगावै दोष ॥४॥

पद

राग भैरव

सब जग सोता सुध नहिं पावै। बोलै सो सोता बरड़ावै ॥टेक॥
संसय मोह भरम की रैन। अंधधुंध होय सोते ऐन ॥
जप तप संजम औ आचार। यह सब सुपने के ब्यौहार ॥
तीर्थ-दान जग प्रतिमा-सेवा। यह सब सुपना लेवा-देवा ॥
कहना सुनना हार औ जीत। पछा-पछी सुपनो बिपरीत ॥
चार बरन औ आस्त्रम चार। सुपना अंतर सब ब्यौहार ॥
षट दरसन आदि भेद-भाव। सुपना अंतर सब दरसाव ॥
राजा राना तप बलवंता। सुपना माहीं सब बरतंता ॥
पीर औलिया सबै सयाना। ख्वाब माहिं बरतैं बिध नाना ॥
काजी सैयद औ सुलताना। ख्वाब माहिं सब करत पयाना ॥
सांख जोग औ नौधा भकती। सुपना में इनकी इक बिरती ॥
काया कसनी दया औ धर्म। सुपने सुर्ग औ बंधन कर्म ॥
काम क्रोध हत्या परनास। सुपना माहीं नर्कनिवास ॥
आदि भवानी संकर देवा। यह सब सुपना लेवा-देवा ॥
ब्रह्मा बिस्नू दस औतार। सुपना अंतर सब ब्यौहार ॥
उद्भिज सेदज जेरज अंडा। सुपनरूप बरतै ब्रह्मंडा ॥
उपजै बरतै अरु बिनसावै। सुपने अंतर सब दरसावै ॥
त्याग ग्रहन सुपना ब्यौहारा। जो जागै सो सब से न्यारा ॥
जो कोइ साध जागिया चावै। सो सतगुर के सरनै आवै ॥

मिश्रित साखी

३. धी=लड़की, बेटी।

कृतकृत बिरला जोग सभागी। गुरमुख चेत सब्दमुख जागी॥
संसय मोह-भरम-निस नास। आतमराम सहज परकास॥
राम संभाल सहज धर ध्यान। पाछे सहज प्रकासै ग्यान॥
जन दरियाव सोइ बड़भागी। जाकी सुरत ब्रह्म सँग जागी॥१॥

राग भैरो

जाके उर उपजी नहिं भाई। सो क्या जानै पीर पराई॥टेक॥
ब्यावर जानै पीर की सार। बाँझ नार क्या लखै बिकार॥
पतिब्रता पति को ब्रत जानै। बिभचारिन मिल कहा बखानै॥
हीरा पारख जौहरि पावै। मूरख निरखके कहा बतावै॥
लागा घाव कराहै सोई। कोतगहार के दर्द न कोई॥
रामनाम मेरा प्रान-अधार। सोई रामरस-पीवनहार॥
जन दरिया जानैगा सोई। प्रेम की भाल कलेजे पोई॥२॥

राग भैरो

जो धुनियाँ तौ मैं भी राम तुम्हारा।
अधम कमीन जाति मतिहीना, तुम तौ हौ सिरताज हमारा॥टेक॥
काया का जंत्र, सब्द मन मुठिया, सुषमन ताँत चढ़ाई।
गगन-मंडल में धुनुआँ बैठा, मेरे सतगुर कला सिखाई॥
पाप-पान हरि, कुबुधि-काँकडा, सहज-सहज झड़ जाई।
घुंडी गांठ रहन नहिं पावै, इकरंगी होय आई॥
इकरँग हुआ भरा हरि चोला, हरि कहै, कहा दिलाऊँ?
मैं नाहीं मेहनत का लोभी, बकसो मौज भक्ति निज पाऊँ॥

पद

१. सुध=चेत, होश। ऐन=खूब। लेवा-देवा=लेन-देन, व्यवहार।
पछा-पछी=पक्ष और विपक्ष की बात। षट दरंसन=छह शास्त्र। बलवंता=घोर तपस्वी। ख्वाब=स्वप्न। साँख=सांख्य दर्शन। जोग=योग दर्शन। नौधा=नौ प्रकार की। बिरती=वृत्ति। कसनी=तपद्वारा वश में करना। सेदज=स्वेदज, पसीने से पैदा होनेवाले जीव। जेरज=जरायुज, पिण्डज। अण्डा=अण्डज। चावै=चाहे। कृतकृत=कृतकृत्य, सफल। सभागी=भाग्यवान। सुरत=लय।

२. ब्यावर=बच्चा देनेवाली, जच्चा। कोतगहार=तमाशा देखनेवाला, नक़ल करनेवाला। पोई=चुभी है, आरपार चली गई है।

किरपा करि हरि बोले बानी, तुम तौ हौ मम दास।
दरिया कहै मेरे आतम भीतर, मेलौ राम भक्ति-बिस्वास ॥३॥

राग भैरौ

आदि अनादी मेरा साँई ॥
द्रष्ट न मुष्ट है अगम अगोचर, यह सब माया उनहीं माईं ॥
जो बनमाली सींचै मूल, सहजै पिवै डाल फल फूल ॥
जो नरपति को गिरह बुलावै, सेना सकल सहज ही आवै ॥
जो कोई कर भान प्रकासै, तौ निस तारा सहजहि नासै ॥
गरुड़ पंख जो घर में लावै, सर्प जाति रहने नहिं पावै ॥
दरिया सुमरै एकहि राम, एक राम सारै सब काम ॥४॥

राग भैरो

आदि अंत मेरा है राम, उन बिन और सकल बेकाम ॥
कहा करूँ तेरा बेद पुराना। जिन है सकल जगत भरमाना ॥
कहा करूँ तेरी अनुभै-बानी। जिन तें मेरी सुद्धि भुलानी ॥
कहा करूँ ये मान बड़ाई। राम बिना सबही दुखदाई ॥
कहा करूँ तेरा साँख औ जोग। राम बिना सब बंदन रोग ॥
कहा करूँ इन्द्रिन का सुक्ख। राम बिना देवा सब दुक्ख ॥
दरिया कहै राम गुरमुखिया। हरि बिन दुखी राम सँग सुखिया ॥५॥

राग बिहंगडा

नाम बिन भाव करम नहिं छूटै ॥
साध संग औ रामभजन बिन, काल निरंतर लूटै ॥
मल सेती जो मल को धोवै, सो मल कैसे छूटै ॥

---

३. कमीन=नीच। जंत्र=धुनकी। सुषमन ताँत चढ़ाई=सुषुम्ना नाड़ी में प्राणों को लय करके। गगन-मण्डल=मन की शून्यावस्था अर्थात् निर्विकल्प समाधि की स्थिति। पाप-पान हरि=पापरूपी पत्ते निकालकर। कुबुधि काँकड़ा=दुर्बुद्धिरूपी बिनौला। भरा हरि चोला=घट में परमात्मा की व्यापकता प्रत्यक्ष हो गई। बकसौ मौज=आनन्दरस प्रदान करो।

४. मुष्ट=गुप्त। माईं=में। गिरह=गृह। करभान=भानुकर, सूर्य की किरण। नासै=छिप जाय। सारै=पूर्ण कर देता है।

५. भरमाना=भुलावै में डाल दिया। सुद्धि=सुध। साँख औ जोग=सांख्य और योगदर्शन।

प्रेम का साबुन नाम का पानी, दोय मिल ताँता टूटै ॥
भेद अभेद भरम का भाँडा, चौड़े पड़-पड़ फूटै ॥
गुरमुख सब्द गहै उर अंतर, सकल भरम से छूटै ॥
राम का ध्यान तूँ धर रे प्रानी, अमृत का मेंह बूटै ॥
जन दरियाव अरप दे आपा, जरा मरन तब टूटै ॥६॥

राग सोरठ

है को संत राम अनुरागी, जाकी सुरत साहब से लागी ॥
अरस-परस पिव के सँग राती, होय रही पतिबरता ॥
दुनिया-भाव कछू नहिं समझै ज्यों समुँद समानी सलिता ॥
मीन जायकर समुँद समानी, जहँ देखै तहँ पानी ॥
काल-कीर का जाल न पहुँचै, निर्भय ठौर लुभानी ॥
बावन चंदन भौंरा पहुँचा, जहँ बैठे तहँ गंधा ॥
उड़ना छोड़के थिर हो बैठा, निसदिन करत अनंदा ॥
जन दरिया इक रामभजन कर, भरम-बासना खोई ॥
पारस परस भया लोह कंचन, बहुर न लोहा होई ॥७॥

राग सोरठ

बाबल, कैसे बिसरा जाई।
जदि मैं पति सँग रल खेलूँगी, आपा धरम समाई ॥
सतगुरु मेरे किरपा कीनी, उत्तम बर परनाई।
अब मेरे सांई को सरम पड़ैगी, लेगा चरन लगाई ॥
थे जानराय मैं बाली भोली, थे निर्मल, मैं मैली।
थे बतलाओ मैं बोल न जानूं, भेद न सकूँ सहेली ॥
थे ब्रह्मभाव, मैं आतम-कन्या, समझ न जानूँ बानी।
दरिया कहै पति पूरा पाया, यह निश्चय कर जानी ॥८॥

---

६. ताँता=मल का लगाव; सत् से असत् का संबंध। चौड़ै=मैदान में, स्पष्ट ही। बूटै=बरसे।

७. अरस परस=देखकर और भेंटकर। राती=प्रेम में रँग गई। सलिता=सरिता, नदी। काल-कीर=मृत्युरूपी बहेलिया।

८. रल खेलूँगी=हिल-मिलाकर क्रीड़ा करूँगी। परनाई=ब्याह करा दिया। थे=तुम। जानराय=चतुर-शिरोमणि। बाली=लड़की। न सकूँ सहेली=समझ नहीं सकती।

राग केदारा

ऐसे साधू करम दहै।
अपना राम कबहुँ नहिं बिसरै, बुरी भली सब सीस सहै॥
हस्ती चलै भूँसैं बहु कूकर, ताका औगुन उन न गहै।
वाकी कबहूँ मन नहिं आनै, निराकार की ओर रहै॥
धन को पाय भया धनवंता, निरधन मिल उन बुरा कहै।
वाकी कबहुँ न मन में लावै, अपने धन सँग जाय रहै॥
पति को पाय भई पतिबरता, बहु बिभचारिन हाँस करै।
वाके संग कबहुँ नहिं जावै, पति से मिलकर चिता जरै॥
दरिया राम भजै जो साधू, जगत भेख उपहास करै।
वाका दोष न अंतर आनै, चढ़ (नाम) जहाज भौसागर तरै॥६॥

राग बिहंगड़ा

राम नाम नहिं हिरदे धरा। जैसा पसुवा तैसा नरा॥
पसुवा नर उद्यम कर खावै। पसुवा तो जंगल चरआवै॥
पसुवा आवै पसुवा जाय। पसुवा चरै व पसुवा खाय॥
रामध्यान ध्याया नहिं माईं। जनम गया पसुवा की नाईं॥
रामनाम से नाहीं प्रीत। यह सब ही पसुवों की रीत॥
जीवत सुख दुख में दिन भरै। मुवा पछे चौरासी परै॥
जन दरिया जिन राम न ध्याया। पसुवा ही ज्यों जनम गवाँया॥१०॥

●

६. भूँसैं=झूँकें। कूकर=कुत्ते, निन्दकों से आशय है। भेख=पाखण्डी, भेषधारी वैरागी। माईं=हृदय में। मुआ पछे=मरने के बाद।

गुलाल साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत्–१७५० वि. अनुमान से
जन्म-स्थान–तालुका बसहरि (ज़िला गाज़ीपुर) के अन्तर्गत भुरकुड़ा गाँव
जाति–क्षत्रिय
गुरु–बुल्ला साहब
सत्संग-स्थान–गाँव भुरकुड़ा (ज़िला गाज़ीपुर)
भेष–गृहस्थ
चोला-त्याग-संवत्–१८५० वि. अनुमान से

सिवा एक घटना के गुलाल साहब के विषय में और कुछ भी नहीं मिलता। परंपरा से सुनने में आता है कि गुलाल साहब जाति के क्षत्रिय थे। घर में साधारण-सी ज़मींदारी होती थी। पढ़े-लिखे नहीं थे, पर थे अच्छे संस्कारी। बुलाकीराम नाम का इनका एक हलवाहा था, जो भगवान् की भक्ति में सदा मस्त रहता था। बुलाकीराम एक दिन हल चलाने के लिए खेत पर पहुँचा। मालिक गुलाल भी पीछे-पीछे वहीं जा पहुँचे। देखते क्या हैं कि बैल तो हल लिये एक तरफ़ खड़े हैं, और बुलाकीराम आँख बंद किये ध्यान में मस्त एक पेड़ के नीचे बैठा है। यह देखकर मालिक को क्रोध आ गया और कामचोर नौकर को पीछे से एक लात जमादी। बुलाकीराम का ध्यान भंग हो गया। आँखों से प्रेम के आँसू बहने लगे, चेहरे पर प्रेम की आभा खिल उठी। शरीर रोमांचित था। प्रभु-प्रेम में मस्त हलवाहा नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर बोला–"ध्यान में मालिक, मैं साधुओं का मानसी भंडारा कर रहा था। केवल दही परोसना रह गया था। पर आपकी लात की ठोकर से दही की हंडिया हाथ से गिरकर फूट गई।" ज़मींदार गुलाल की आँखों पर से अज्ञान का आवरण हट गया, और उन्होंने सद्गुरु बुल्ला साहब के पैरों को रोते-रोते पकड़ लिया। गुलाल साहब उसी दिन बुल्ला साहब के गुरुमुख चेले हो गये। भुरकुड़ा गाँव में बुल्ला साहब का उनके अंत समय तक इन्होंने सत्संग किया।

बानी-परिचय

वैराग्य और प्रेम-भक्ति, अभ्यास और अनुभव के गहरे रंग में गुलाल साहब की बानी

रँगी हुई है। प्रियतम के मिलन के अति झीने मार्ग का बड़ा आकर्षक वर्णन इन्होंने किया है। उपमान और रूपक कई बिल्कुल नये और अनूठे हैं। तीव्र वैराग्य और ज्वलंत भक्ति की उत्सव-झलक इनके अनेक चोटीले शब्दों में मिलती है।

भाषा भी भावों के सर्वथा अनुरूप अकृत्रिम और सहज है।

आधार

१ गुलाल साहब की बानी—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ साध-संग्रह अथवा नूतन भक्तमाल—स्वामी बाग, आगरा

गुलाल साहब

उपदेश का अंग

राम मोर पुँजिया मोर धना, निसबासर लागल रहु रे मना॥
आठ पहर तहँ सुरति निहारी, जस बालक पालै महतारी॥
धन सुत लछमी रह्यो लोभायं, गर्भमूल सब चल्यो गँवाय॥
बहुत जतन भेष रच्यो बनाय, बिन हरिभजन इँदोरन पाय॥
हिंदू तुरुक सब गयल बहाय, चौरासी में रहि लपटाय॥
कहै गुलाल सतगुरु बलिहारी, जाति-पाँति अब छुटल हमारी ॥१॥

नगर हम खोजिलै चोर अबाटी।
निसबासर चहुँ ओर धाइलै, लुटत फिरत सब घाटी॥
काजी मुलना पीर औलिया, सुर नर मुनि सब जाती।
जोगी जती तपी संन्यासी, धरि मार्‌यो बहुभाँती॥
दुनिया नेम-धर्म करि भूल्यो, गर्व-माया-मद-माती।
देवहर पूजत समय सिरानो, कोऊ संग न जाती॥
मानुष जन्म पायकै खोइले, भ्रमत फिरै चौरासी।
दास गुलाल चोर धरि मरिलौं, जाँव न मथुरा कासी ॥२॥

कोउ नहिं कइल मोरे मन कै बुझरिया।
घरि घरि पल पल छिन छिन डोलत साफ अगरिया॥
सुर नर मुनि डहकत सब कारन, अपनी अपनी बेरिया॥
सबै नचावत कोउ नहिं पावत, मारत मुँह मुँह मरिया॥

उपदेश का अंग

१. पुँजिया=पूँजी। लागल रहु=लगा रह, तल्लीन रह। मना=हे मन। सुरति=ध्यान, सुध, लय। इँदोरन=एक फल, जो देखने में सुन्दर पर स्वाद में अत्यन्त कड़ुवा होता है। बहाय गयल=बह गये, भटक गये। चौरासी=चौरासी लाख योनियाँ।

२. अबाटी=कुमार्ग पर चलनेवाला। धाइलै=दौड़ते फिरे। सिरानो=बीता। धरि मरिलौं=पकड़कर मारूँगा।

अबकी बेर सुनो नर मूढ़ो, बहुरि न ल्यो अवतरिया ॥
कह गुलाल सतगुरु बलिहारी, भवसिंधु अगम गम तरिया ॥३॥

तन में राम और कित जाय। घर बैठल भेटल रघुराय ॥
जोगि जती बहु भेष बनावै। आपन मनुवाँ नहिं समुझावै ॥
पूजहिं पत्थल जल को ध्यान। खोजत धूरहिं कहत पिसान ॥
आसा तृस्ना करनै न थीर। दुविधा-मातल फिरत सरीर ॥
लोक पुजावहिं घर घर धाय। दोजख कारन भिस्त गँवाय ॥
सुर नर नाग मनुष औतार। बिनु हरिभजन न पावहिं पार ॥
कारन धैधै रहत बुलाय। तातें फिर फिर नरक समाय ॥
अबकी बेर जो जान्हु भाई। अवधि बिते कछु हाथ न आई ॥
सदा सुखद निज जान्हु राम। कह गुलाल न तौ जमपुरधाम ॥४॥

चेतावनी का अंग

करु मन सहज नाम व्यौपार, छोड़ि सकल ब्यौहार ॥टेक॥
निसुबासर दिन रैन ढहतु है, नेक न धरत करार।
धंधा धोख रहत लपटानो, भ्रमत फिरत संसार ॥
मात पिता सुत बंधू नारी, कुल कुटुम्ब परिवार।
माया-फाँसि बाँधि मत डूबहु, छिन में होहु सँघार ॥
हरि की भक्ति करी नहिं कबहीं, संत बचन आगार।
करि हंकार मद गर्व भुलानो, जन्म गयो जरि छार ॥
अनुभव घर कै सुधियो न जानत, कासों कहूँ गँवार।
कहै गुलाल सबै नर गाफिल, कौन उतारै पार ॥१॥

---

३. कइल=किया। बुझरिया=समाधान, शान्ति। अँगरिया=अंगार, आग (शान्त-शीतल करना तो दूर, उलटे सब जलाते रहते हैं।) मारत मुँह-सुँह मरिया=मुँह पर मार मारते हैं। अवतरिया=जन्म। अगम गम तरिया=जिसका पार करना असंभव था, उसे सद्गुरुने संभव कर दिया।

४. और कित जाय=खोजने और कहाँ जायें। धूरहिं=धूल को, फोकट को, असत्य को। पिसान=आटा, साररूप सत्य। थीर=स्थिर, शान्त। मातल=मतवाला। भिस्त=बहिश्त, स्वर्ग।

चेतावनी का अंग

१. ढहतु है=गिरता-पड़ता है। करार=निश्चय, स्थिरता। सँघार=संहार, विनाश। हंकार=अहंकार। सुधियो=सुध भी, ध्यान भी।

नाम-महिमा का अंग

नामरस अमरा है भाई, कोउ साध-संगति तें पाई ॥टेक॥
बिन घोटे बिन छाने पीवै, कौड़ी दाम न लाई।
रंग रँगीले चढ़त रसीले, कबहीं उतरि न जाई ॥
छके-छकाये पगे-पगाये, झूमि-झूमि रस लाई।
बिमल बिमल बानी गुन बोलै, अनुभव अमल चढ़ाई ॥
जहँ जहँ जावै थिर नहिं आवै, खोलि अमल लै धाई।
जल पत्थल पूजन करि भानत, फोकट गाढ़ बनाई ॥
गुरुपरताप कृपा तें पावै, घट भरि प्याल फिराई।
कहै गुलाल मगन ह्वै बैठे, मँगिहै हमरी बलाई ॥१॥

प्रेम का अंग

लागलि नेह हमारी पिया मोर ॥टेक॥
चुनि चुनि कलियाँ सेज बिछावौं, करौं मैं मंगलचार।
एकौ घरो पिया नहिं अइलै, होइला मोहिं धिरकार ॥
आठौ जाम रैनदिन जोहौं, नेक न हृदय बिसार।
तीनलोक कै साहब अपने, फरलहिं मोर लिलार ॥
सत्तसरूप सदा ही निरखौं, संतन प्रान-अधार।
कहै गुलाल पावौं भरिपूरन, मौजै मौज हमार ॥१॥

पिय सँग जुरलि सनेह सुभागी।
पुरुब प्रीति सतगुरु किरपा किय, रटत नाम बैरागी ॥
आठ पहर चित लगै रहतु है, दिहल दान तन त्यागी।
पुलकि पुलकि प्रभु सों भयो मेला, प्रेम जगो हिये भागी ॥

नाम-महिमा का अंग

१. अमरा=अमर करनेवाला। रस लाई=मस्ती लाता है। अमल=नशा। भानत=तोड़ देते हैं। फोकट गाढ़ बनाई=मुफ्त गढ़कर बनाया है। प्याल=प्याला।

प्रेम का अंग

१. नेह=प्रीति (स्त्रीलिंग में पूर्वी प्रयोग)। धिरकार=धिक्कार। जोहौं=ध्यान करती हूँ। फरलहिं मोर लिलार=मेरे भाग्य का उदय हुआ है। मौजै मौज=आनन्द-ही-आनन्द।

गगनमंडल में रास रचो है, सेत सिंघासन राजी।
कह गुलाल घर में घर पायो, थकित भयो मन पाजी ॥२॥

जौपै कोइ प्रेम को गाहक होई।
त्याग करै जो मन कि कामना, सीस-दान दै सोई॥
और अमल की दर जो छोड़ै, आपु अपन गति जोई।
हरदम हाजिर प्रेम-पियाला, पुलिक-पुलिक रस लेई॥
जीव पीव महँ पीव जीव महँ, बानी बोलत सोई।
सोइ सभन महँ हम सबहन महँ, बूझत बिरला कोई॥
वाकी गती कहा कोइ जानै, जो जिय साँचा होई।
कह गुलाल वे नाम समाने, मत भूले नर लोई ॥३॥

अँखियाँ प्रभु-दरसन नित लूटी।
हौं तुव चरनकमल में जूटी॥
निर्गुन नाम निरंतर निरखौं, अनंत कला तुव रूपी।
बिमल बिमल बानी धुन गावौं, कह बरनौं अनुरूपी॥
बिगस्यो कमल फुल्यौ काया बन, झरत दसहुँ दिस मोती।
कह गुलाल प्रभु के चरनन सों डोरि लागि भर जोती ॥४॥

बिनती और प्रार्थना का अंग

दीनानाथ अनाथ यह, कछु पार न पावै।
बरनों कवनी जुक्ति से, कछु उक्ति न आवै॥
यह मन चंचल चोर है, निसुबासर धावै।
काम क्रोध में मिलि रह्यो, ईहैं मन भावै॥

---

२. जुरलि सनेह=प्रेम जुड़ गया। सुभागी=सद्भाग्य से। रटत नाम बैरागी=सत्तनाम रटते-रटते संसार से वैराग्य हो गया। दिहल........त्यागी=देहासक्ति का दान दे दिया। मेला=मिलन, संयोग। भागी=बड़े भाग्य से। गगन-मंडल=शून्य वृत्ति। सेत सिंघासन=निर्मल शुद्ध निर्विकल्प अवस्था। राजी=विराजमान, शोभित। घर में घर पायो=इस घट में ही निजपद अर्थात् ब्रह्मपद प्राप्त हो गया। पाजी=शैतान।

३. दर=ठौर। पीव=प्रियतम, निज स्वामी। मत भूले=मत-मतांतरों में भटक गये। समाने=लीन हो गये।

४. जूटी=जुड़ी हुई है। अनुरूपी=यथार्थ रूप, जो वाणी का नहीं, किन्तु केवल अनुभवगम्य है। डोरि=लय। भर=तक।

करुनामय किरपा करहु, चरनन चित लावै।
सतसंगति सुख पायकै, निसुबासर गावै॥
अब कि बार यह अंध पर, कछु दाया कीजै।
जन गुलाल बिनती करै, अपनो कर लीजै॥१॥

तुम्हरी, मोरे साहब, क्या लाऊँ सेवा।
अस्थिर काहु न देखऊँ, सब फिरत बहेवा॥
सुर नर मुनि दुखिया देखों, सुखिया नहिं केवा।
डंक मारि जम लुटत है, लुटि करत कलेवा॥
अपने अपने ख्याल में सुखिया सब कोई।
मूल मंत्र नहिं जानहीं, दुखिया मैं रोई॥
अबकी बार प्रभु बीनती सुनिये दे काना।
जन गुलाल बड़ दुखिया, दीजै भक्ती-दाना॥२॥

अरिल छंद

निर्मल हरि को नाम ताहि नहिं मानहीं।
भर्मत फिरैं सब ठावँ कपट मन ठानहीं॥
सूझत नाहीं अंध ढूँढ़त जग सानहीं।
कह गुलाल नर मूढ़ साँच नहिं जानहीं॥१॥

माया मोह के साथ सदा नर सोइया।
आखिर खाक निदान सत्त नहिं जोइया॥
बिना नाम नहिं मुक्ति अंध सब खोइया।
कह गुलाल सत, लोग गाफिल सब सोइया॥२॥

विनती और प्रार्थना का अंग

१. मिलि रह्यो=भेदिये की भाँति मिला हुआ है। गावै=गुणानुवाद करे।
२. लाऊँ=करूँ। अस्थिर=स्थिर। बहेवा=इधर-उधर भटके हुए। केवा=किसी को भी। करत कलेवा=ग्रास बना लेता है।

अरिल छन्द

१. सानहीं=शान या घमंड में।
२. सोइया=अचेत पड़ा रहा। निदान=परिणाम। जोइया=देखा।

दुनिया बिच हैरान जात नर धावई।
चीन्हत नाहीं नाम भरम मन लावई॥
सब दोषन लिये संग सो करम सतावई।
कह गुलाल अवधूत दगा सब खावई॥३॥

साहब दायम प्रगट ताहि नहिं मानई।
हरदम करहिं कुकर्म भर्म मन ठानई॥
झूठ करहि ब्योहार सत्त नहिं जानई।
कह गुलाल नर मूढ़ हक्क नहिं मानई॥४॥

गर्ब भुलो नर आय सुझत नहिं साइँया।
बहुत करत संताप राम नहिं गाइया॥
पूजहिं पत्थल पानि जन्म उन खोइया।
कह गुलाल नर मूढ़ सभै मिलि रोइया॥५॥

भजन करो जिय जानिके प्रेम लगाइया।
हरदम हरि सों प्रीति सिदक तब पाइया॥
बहुतक लोग हेवान सुझत नहिं साइँया।
कह गुलाल सठ लोग जन्म जहँड़ाइया॥६॥

आसिक इस्क लगाय साहब सों रीझई।
हरदम रहि मुस्ताक प्रेम-रस पीजई॥
बिमल बिमल गुन गाइ सहजरस भीजई।
कह गुलाल सोइ यार सुरति सों जीजई॥७॥

आपु न चीन्हहिं और सबै जहँड़ाइया।
काम क्रोध को संगम सबै भुलाइया॥
रटत फिरै दिनरैन थीर नहिं आइया।
कह गुलाल हरि हेतु काहे नहिं गाइया॥८॥

---

३. सतावई=दुःख देता है। दगा=धोखा।

४. दायम=हमेशा। प्रगट=प्रत्यक्ष। भर्म मन ठानई=मन में भ्रम को स्थान देता है। हक्क=सत्य।

५. गर्ब भुलो=अहंकार में गाफ़िल। पानि=गंगा, गोदावरी आदि नदियाँ।

६. सिदक=सच्चाई। जहँड़ाइया=धोखे में पड़े रहे; धोखे में डाल रखा।

७. मुस्ताक=इच्छुक। भीजई=भीगा रहे, विभोर रहे। जीजई=जीवे।

८. थीर=स्थिरता, शान्ति।

खोलि देखु नर आँख अन्ध का सोइया।
दिन-दिन होतु है छीन अन्त फिर रोइया॥
इस्क करहु हरिनाम कर्म सब खोइया।
कह गुलाल नर सत्त पाक तब होइया॥६॥

बसंत

मन मधुकर खेलत बसंत। बाजत अनहद गति अनंत॥
बिगसत कमल भयो गुंजार। जोति जगामग कर पसार॥
निरखि निरखि जिय भयो अनंद। बाझल मन तब परल फंद॥
लहरि लहरि बहै जोति धार। चरनकमल मन मिलो हमार॥
आवै न जाइ मरै नहिं जीव। पुलकि पुलकि रस अमिय पीव॥
अगम अगोचर अलख नाथ। देखत नैनन भयो सनाथ॥
कह गुलाल मोरी पुजलि आस। जम जीत्यो भयो जोति बास॥१॥

चलु मोरे मनुवाँ हरि के धाम।
सदा सरूप तहँ उठत नाम॥टेक॥
गोरख, दत्त, गये सुकदेव। तुलसी, सूर, भये जैदेव॥
नामदेव, रैदास दास। वहँ दास कबीर कै पुजलि आस॥
रामानँद वहँ लिय निवास। धना, सेन, वहँ कृस्नदास॥
चतुरभुज, नानक, संतन गनी। दास मलूका सहज बनी॥
यारीदास वहँ केसोदास। सतगुरु बुल्ला चरनपास॥
कह गुलाल का कहौं बनाय। संत चरनरज सिर समाय॥२॥

बसंत

१. मन मधुकर=जैसे भ्रमर अनेक फूलों का रस लेता है, वैसे ही यह मन अनेक विषयों में लुब्ध रहता है। बाझल=बँध गया। परल फंद=फंदे में पड़ गया। जोति=परमचैतन्य-ज्योति। पुजलि=पूरी हो गई।

२. तहँ उठत नाम=वहाँ उस शून्यावस्था में निरंतर 'सोऽहं' धुन उठती रहती है। दत्त=दत्तात्रेय। तुलसी=गोसाई तुलसीदास तथा हाथरसवाले तुलसी साहब दोनों से ही आशय है। सूर=सूरदास। यारी=प्रसिद्ध मुसलमान सूफ़ी यारी साहब। केसोदास=संत केशवदास, जिनकी 'अमी घूंट' बानी प्रसिद्ध है।

होली

सतगुरु घर पर परलि धमारी, होरिया मैं खेलौंगी ॥टेक॥
जूथ जूथ सखियाँ सब निकरीं, परलि ग्यान कै मारी ॥
अपने पिय सँग होरी खेलौं, लोग देत सब गारी ॥
अब खेलौं मन महामगन है, छूटलि लाज हमारी ॥
सत्त सुकृत सों होरी खेलौं, संतन की बलिहारी ॥
कह गुलाल प्रिय होरी खेलैं, हम कुलवती नारी ॥१॥

फागुन समय सोहावन हो, नर खेलहु अवसर जाय ॥
यह तन बालू मंदिर हो, नर धोखे माया लपटाय ॥
ज्यों अजुँली जल घटत है हो, नेकु नहीं ठहराय ॥
पाँच पचीस बड़े दारुन हो, लूटहिं सहर बनाय ॥
भनुवाँ जालिम जोर है हो, डाँड़ लेत गरुवाय ॥
कह गुलाल हम बाँधल हो, खात है राम-दोहाय ॥२॥

को जाने हरिनाम की होरी ॥टेक॥
चौरासी में रमि रह पूरन, तीहुर खेल बनो री ॥
घूमि घूमिके फिरत दसोदिसि, कारन नाहिं छुटो री ॥
नेक प्रीति हियरे नाहीं आयो, नहिं सतसंग मिलो री ॥
कहे गुलाल अधम भो प्रानी, अवरे अवरि गहो री ॥३॥

रेखता

सरन सँभारि धरि चरनतर रहो परि,
काल अरु जाल कोउ अवर नाहीं ॥

होली

१. धमारी=नृत्य के साथ कोलाहलपूर्ण गाना-बजाना, धूम-धड़ाका; होली के उत्सव पर 'धमार' नाम का एक राग। होरिया=होली। जूथ=यूथ, झुंड। परलि ग्यान कै मारी=ज्ञान की धूम मची। कुलवंती=अनन्य प्रीतिवंती जीवात्माएँ जो ज्ञान की ऊँची साधना से निर्विकार हो चुकी हैं।

२. बालू-मदिर=क्षण में ढहजानेवाला, अनित्य। पाँच=पंचभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। गरुवाय डाँड़=भारी दंड। राम-दोहाय=राम की सौगंद।

३. तीहुर=तेहरा, त्रिगुण का। कारन=आवागमन का मूल कारण। अवरे अवरि=कुछ और ही और, कर्म में बाँधनेवाले अंटसंट उपाय।

प्रैम सों प्रीति करु, नाम को हृदय धरु,
जोर जम काल सब दूर जाहीं॥
सुरति संभारिकै नेह लगाइकै,
रहो अडोल कहुँ डोल नाहीं॥
कहै गुलाल किरपा कियो सतगुरु,
पर्‍यो अथाह लियो पकरि बाहीं॥१॥

भक्ति-परताप तब पूर सोइ जानिये,
धर्म अरु कर्म से रहत न्यारा॥
राम सों रमि रह्यो जोति में मिलि रह्यो,
दुंद संसार को सहज जारा॥
भर्म भव मारिकै क्रोध को जारिकै,
चित्त धरि चोर को कियो यारा॥
कहै गुलाल सतगुरु किरपा कियो,
हाथ मन लियो तब काल मारा॥२॥

ज्ञान उद्योत करि हृदय गुरुबचन धरि,
जोग संग्राम के खेत आवै॥
संत सो पूर है सूर मांड रहै,
कंच कुच आदि नहिं ओर जावै॥
अगम असाध यह मारि कैसे करै,
काटिके सीस आगे धरावै॥
कहैं गुलाल तब राम किरपा करैं,
जीति भा सूर खेत पावै॥३॥

रेखता

१. चरनतर=चरणों के नीचे। अवर=और, बाधक। सुरति=ध्यान। अडोल=स्थिर। बाहीं=हाथ।

२. पूर=पूरा। जोति में मिलि रह्यौ=आत्म-प्रकाश में लीन हो गया। जारा=जला दिया। भर्म भव=संसार का भ्रम, अविद्या। चित्त....यारा=चोर मन को पकड़कर अपने वश में कर लिया; शत्रु को मित्र बना लिया।

३. कंच-कुच=कनक और कामिनी। उद्योत=उदय, प्रकाश। असाध=असाध्य। सीस=अहंता से आशय है। खेत पावै=(जीवनरूपी) रणक्षेत्र पर कब्ज़ा कर लेता है।

आरती

ऐसी आरति करु मन लाय, महाप्रसाद ठाकुर के चढ़ाय ॥
प्रेम कै पतरी प्रीति लगाय, भाव के बिजंन रुचिर बनाय ॥
संत साध मिलि आरत गाया, प्रभु के सिर पर चँवर ढुराय ॥
सुर नर मुनि सब आस लगाय, गिरा परा किनका बिन खाय ॥
सिव ब्रह्मा जाको खोजत धाय, प्रभु को जूंठन भागहुँ पाय ॥
सतगुरु बुल्ले अलख लखाय, संतन सीत गुलालहुँ पाय ॥१॥

मिश्रित

सब्द सनेह लगावल हो, पावल गुरु रीती।
पुलकि-पुलकि मन भावल हो, ढहली भ्रम-भीती ॥१॥

सतगुरु कृपा अगम भयो हो, हिरदय बिसराम।
अब हम सब बिसरावल हो, निस्चय मन राम ॥२॥

छूटल जग ब्योहरवा हो, छूटल सब ठाँव।
फिरब चलब सब थाकल हो, एकौ नहिं गाँव ॥३॥

यहि संसार बेइलवत हो, भूलो मत कोइ।
माया बास न लागे हो, फिर अंत न रोइ ॥४॥

चेतहु क्यों नहिं जागहु हो, सोवहु दिनराति।
अवसर बीति जब जइहै हो, पाछे पछिताति ॥५॥

आरती

१. पतरी=पत्तल, जिसमें भोजन परोसते हैं। किनका बिन खाय=जूठन बीनकर खाले। बुल्ले=गुलाल साहब के सद्गुरु बुल्ला साहब। सीत=जूठन, प्रसादी।

मिश्रित

१. पावल गुरु-रीती=गुरुद्वारा निर्दिष्ट संतमार्ग पा लिया। भावल=भाया, प्रिय लगा। ढहली=ढह गई, गिर पड़ी। भीती=दीवार। बिसरावल=भुला दिया। थाकल=रुक गया, बंद हो गया। ठाँव-गाँव=मन के ठहरने के स्थान; इन्द्रियों के विषय। बेइलवत=उस बेलि या लता की तरह है, जो फैलती बहुत है, पर फूल जिसका जल्द मुरझा जाता है। माया

दिन दुइ रंग कुसुम है हो, जनि भूलो कोइ।
पढ़ि-पढ़ि सबहिं ठगावल हो, आपनि गति खोइ ॥६॥

सुर नर नाग ग्रसित भी हो, सकि रह्यो न कोइ।
जानि बूझि सब हारल हो, बड़ कठिन है सोइ ॥७॥

निस्चै जो जिय आवै हो, हरिनाम बिचार।
तब माया मन मानै हो, न तो वार न पार ॥८॥

संतन कहल पुकारी हो, जिन सूनल बानी।
सो जन जम तें बाचल हो, मन सारँगपानी ॥६॥

अवरि उपाव न एको हो, बहु धावत कूर।
आपुहि मोहत समरथ हो, नियरे का दूर ॥
प्रेम नेम जब आवे हो, सब करम बहाव।
तब मनुवाँ मन माने हो, छोड़ो सब चाव ॥
यह प्रताप जब होवे हो, सोइ संत सुजान।
बिनु हरिकृपा न पावे हो, मत अवर न आन ॥
कह गुलाल यह निर्गुन हो, संतन मत ज्ञान।
जो यहि पदहि बिचारे हो, सोइ है भगवान ॥१॥

सोइ दिन लेखे जा दिन संत मिलाहिं।
संत के चरनकमल की महिमा, मोरे बूते बरनि न जाहिं ॥
जल तरंग जल ही तें उपजैं, फिर जल माहिं समाहिं।
हरि में साध साध में हरि हैं, साध से अंतर नाहिं ॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस साध संग, पाछे लागे जाहिं।
दास गुलाल साध की संगति, नीच परमपद पाहिं ॥२॥

●

मन पानै=माया तब मन में हार मानती है। सूनल=सुनी। बाचल=बच सका। सारंगपानी=हाथ में धनुष लेनेवाले राम; निर्गुणी संतों ने इस नाम का प्रयोग भव-पाश छुड़ाने वाले राम के अर्थ में किया है। कूर=मूढ़। चाव=मोह, आसक्ति।

२. सोई दिन लेखे=वही दिन सफल समझना चाहिए। नीच=नीच कर्म करने वाले भी। परमपद पाहिं=मोक्षपद पाते हैं।

भीखा साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१७७० वि.
जन्म-स्थान—खानपुर बोहना गाँव, ज़िला आज़मगढ़
जाति—ब्राह्मण चौबे
गुरु—गुलाल साहब
सत्संग-स्थान—भुरकुड़ा गाँव, ज़िला गाज़ीपुर
चोला-त्याग—संवत् १८२० वि.

घरेलू नाम इनका भीखानन्द था। बालपन से ही सत्संग में रस लेने लगे थे। बारह वर्ष की अवस्था में ही घर त्याग दिया। सतगुरु की खोज में निकल पड़े काशी की ओर। पर वहाँ कुछ मिला नहीं। लौट पड़े। रास्ते में सुना कि भुरकुड़ा गाँव में गुलाल साहब नाम के एक पहुँचे हुए महात्मा परमार्थ को दोनों हाथों लुटा रहे हैं; जो भी भक्ति-रस का प्यासा उनके द्वार पर जाता है, वह अघाकर ही लौटता है। भक्ति-रस के प्यासे भीखानन्द भुरकुड़ा पहुँचे, और गुलाल साहब के गुरुमुख चेले हो गये। भीखा साहब ने इस सुन्दर घटना को अपने एक पद में विस्तार से इस प्रकार कहा है—

''बीते बारह बरस उपजी रामनाम सों प्रीति।
निपट लागी चटपटी मानो चारिउ पन गये बीति॥
नहिं खान-पान सुहात तेहिं छिन, बहुत तन दुर्बल हुआ।
घर ग्राम लाग्यो विषम, धन मनु सकल हार्‌यो है जुआ॥
ज्यों मृगा जूथ से फूटि परु, चित चकित ह्वै बहुतै डरो।
ढुँढ़त व्याकुल वस्तु जनु कै हाथ सों कछु गिरि परो॥
सतसंग खोजो चित्त सों जहुँ बसत अलख अलेख।
कृपा करि कब मिलहिंगे दहुँ कहाँ कौने भेख॥
कोउ कहेउ साधू बहु बनारस भक्ति-बीज सदा रह्यो।
तहँ सास्त्र मत को ग्यान है, गुरुभेद काहू नहिं कह्यौ॥

दिन दोय-चारि विचारि देख्यौं भरम करम अपार है।
बहु सेव पूजा कीरतन मन माया-रस ब्यौहार है॥
चल्यौं बिरह जगाय छिन-छिन उठत मन अनुराग।
दहुँ कौन दिन अरु घरी पल कब खुलैगो मम भाग।
बहु रेखता अरु कवित साखी सब्द सों मन मान।
सोइ लिखत सीखत पढ़त निसिदिन करत हरिगुन गान॥
इक ध्रुपद बहुत विचित्र सूनत, 'भोग' पूछेउ है कहाँ।
नियरे भुरकुड़ा ग्राम जाके सब्द आपे हैं तहाँ॥
चोप लागी बहुत जायके चरन पर सिर नाइया।
पूछेउ कहा फहि दियो आदर सहित मोहि बैसाइया॥
गुरुभाव बूझि मगन भयो मनु जन्म को फल पाइया।
लखि प्रीति दरद दयाल दरवे आपनो अपनाइया॥
आतमा निज रूप साँचो कहत हम करि कसम कै।
भीखा आपे आप घटघट बोलता सोहमस्मि कै॥''

इन शब्दों में कितनी गहरी और तीव्र सतगुरु से मिलने और उनसे अनमोल वस्तु पाने की विरह-व्याकुलता है। सोते हुए विरह को जगाकर, अनुराग की हिलोरों को उठाते हुए सतगुरु की खोज में भुरकुड़ा गाँव यह पहुँचे। अद्‌भुत ध्रुपद कहीं एक सुन लिया था, जिसकी आखिरी कड़ी में 'गुलाल' यह छाप पड़ती थी। गहरी प्रीति और विरह की भीतरी पीड़ देखते ही दयालु गुलाल साहब द्रवित हो गये, और तुरंत दरदवंत भीखा को अपना लिया। १६ बरस तक भीखा साहब ने भुरकुड़ा में बैठकर गुलाल साहब की खूब सेवा की और खूब सत्संग कमाया, और ५० बरस की अवस्था में वहीं गुरुधाम में चोला छोड़ा।

बानी-परिचय

भीखा साहब की बानी में साखियाँ, पद, रेखते, कवित्त और कुंडलियाँ विविध अंगों पर मिलती हैं। कहते है कि **'रामजहाज'** नाम का इनका रचा एक भारी ग्रन्थ है। और भी कई पुस्तकें हैं, जिनमें से बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित संतबानी पुस्तकमाला के शोध-प्रेमी संपादक ने भीखा साहब को बानी का संकलन किया है।

कोमल, मधुर अंतर को बेधनेवाली बानी है भीखा साहब की। अनेक शब्दों में मौज की ऊँची लहरें उठती दिखाई देती हैं। शब्द-रहस्य को खोला तब ऐसा लगता है मानों रस का निर्झर फूट पड़ा हो, गुलाल बिखर पड़ी हो।

भावों के अनुरूप अनेक अप्रयुक्त शब्दों का भी इन्होंने पटुतापूर्वक प्रयोग किया है।

सतगुरु से जो प्रसादी पाई थी उसे भीखा साहब ने बड़े जतन से सँवारा और अपनी गहरी बानी द्वारा जन-जन को दोनों हाथों लुटाया।

आधार

१ भीखा साहब की बानी—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ साध-संग्रह अथवा नूतन भक्तमाल—स्वामी बाग, आगरा

●

भीखा साहब

उपदेश

जग के करम बहुत कठिनाई, तातें भरमि-भरमि जहँड़ाई॥
ज्ञानवंत अज्ञान होत है, बूढ़े करत लरिकाई।
परमारथ तजि स्वारथ सेवहिं, यह धौं कौनि बड़ाई॥
बेद-बेदान्त कौ अर्थ विचारहिं, बहुबिधि रुचि उपजाई।
माया-मोह-ग्रसित निसबासर, कौन बड़ो सुखदाई॥
लेहिं बिसाहि काँच को सौदा, सोना नाम गँवाई।
अमृत तजि बिष अँचवन लागे, यह धौं कौनि मिठाई॥
गुरु-परताप साध की संगति करहु न काहे भाई।
अन्तसमय जब काल गरसिहै, कौन करौ चतुराई॥
मानुष-जनम बहुरि नहिं पैहौ, बादि चला दिन जाई।
भीखा कौ मन कपट कुचाली, धरन धरै मुरखाई॥१॥

समुझि गहो हरिनाम, मन तुम समुझि गहो हरिनाम।
दिन दस सुख यह तन के कारन, लपटि रहो धन धाम॥
देखु बिचारि जिया अपने, जत गुनना गुनन बेकाम।
जोग जुक्ति अरु ध्यान तें, निकट सुलभ नहिं लाम॥
इत उत की अब आसा तजिकै, मिलि रहु आतमराम।
भीखा दीन कहाँलगि बरनै, धन्य घरी वहि जाम॥२॥

राम सों करु प्रीति हे मन, राम सों करु प्रीति॥
राम बिना कोउ काम न आवै, अंत ढहो जिमि भीति॥

उपदेश

१. जहँड़ाई=धोखा खाते हैं। लेहिं बिसहि=खरीद लेते हैं। सोना नाम=सुवर्ण के जैसा हरिनाम। अँचवन लागे=पीने लगे। गरसिहै=ग्रस लेगा, पकड़ लेगा, निगल जायेगा। बादि=व्यर्थ। धरन=धारणा, टेक।

२. जत=जितना। लाम=लंबा, दूर। जाम=याम, पहर।

बूझि बिचारि देखु जिय अपनो, हरि बिन नहिं कोउ हीति ॥
गुरु गुलला के चरनकमल-रज, धरु भीखा उर चीति ॥३॥

गुरु व नाम-महिमा

गुरु दाता छत्री सुनि पाया। सिष्य होन द्विज जाचक आया ॥
देखत सुभग सुन्दर अति काया। बचन सप्रेम दीन पर दाया ॥
बूझि बिचारि समुझि ठहराया, तन मन सों चरनन चित लाया ॥
दिन-दिन प्रीति बढ़त गतमाया। कृपा करहिं जानहिं निज जाया ॥
साहब आपै आप निहाल। आतमराम को नाम गुलाल ॥
सब दान दियो रूप बिचारी। पाय मगन भयो बिप्र भिखारी ॥१॥

मोहिं डाहतु है मन-माया ॥
एकै सब्द ब्रह्म फिरि एकै, फिरि एकै जग छाया।
आतम जीव करम अरुझाना, जड़ चेतन बिलमाया ॥
परमारथ को पीठ दियो है, स्वारथ सनमुख धाया।
नाम नित्य तजि अनितै भावै, तजि अमृत बिष खाया ॥
सतगुरु कृपा कोउ कोउ बाचै, जो सोधै निज काया।
भीखा यह जग रतो कनक पर, कामिनि हाथ बिकाया ॥२॥

को लखि सकै राम को नाम।
देइ करि कौल करार बिसारो, जियना बिनु भजन हराम ॥
बरनत बेद बेदान्त चहूँ जुग, नहिं अस्थिर पावत बिसराम।
जोग जज्ञ तप दान नेम ब्रत, भटकत फिरत भोर अरु साम ॥

---

३. अंत........भीति=जैसे दीवार ढह पड़ती है, वैसे ही अंत में तुम्हारी देह भी गिर पड़ेगी। हीति=हितकारी। चीति=चेतकर।

गुरु व नाम-महिमा

१. छत्री=गुरु गुलाल साहब, जो क्षत्रिय थे। द्विज=भीखा साहब, जो ब्राह्मण थे। गतमाया=माया क्षीण होती जाती है। जाया=पैदा किया हुआ, पुत्र। निराल=निराला, विलक्षण, अलौकिक।

२. डाहतु है=तंग कर रही है। जगछाया=यह जगत् ब्रह्म का प्रतिविम्ब है। बिलमाया=ठहरा या रम लिया है। अनितै=अनित्य जगत् ही। बाचै=बच पाता है। रतो=अनुरक्त या मोहित है।

सुर नर मुनिगन पचि पचि हारे, अंत न मिलत बहुत सो लाम।
साहब अलख अलेख निकट हीं, घट घट नूर ब्रह्म को धाम॥
खोजत नारद सारद अस अस, जातु है समय दिवस अरु जाम।
सुगम उपाय जुक्ति मिलबे की, भीखा इह सतगुरु से काम॥३॥

साधो, सब महँ निज पहिचानी, जग पूरन चारिउ खानी॥
अविगत अलख अखंड अमूरति, कोउ देखे गुरु ज्ञानी॥
ता पद जाय कोउ कोउ पहुँचे, जोग जुक्ति करि ध्यानी॥
भीखा धन जो हरि-रँग-राते, सोइ हैं साधु पुरानी॥४॥

विनती

अस करिये साहब दाया।
कृपा कटाच्छ होइ जेहितें प्रभु, छूटि जाय मन-माया॥
सोवत मोह-निसा निसबासर, तुमहीं मोहिं जगाया॥
जनमत मरत अनेक बार, तुम सतगुरु होय लखाया॥
भीखा केवल एक रूप हरि, व्यापक त्रिभुवन-राया॥१॥

यार हो, हँसि बोलहु मोसों, भरम गाँठि छूटै प्रभु तोसों॥
पालन करि आये मोकहँ तुम, खाय जियाय कियो घर-पोसो॥
बचन मेटि मैं कहौं गरज बसि, दरदवंद प्रभु करौ न गोसो॥
हो करता करमन के दाता, आगे बुधि आवत नहिं होसो॥
तुम अंतरजामी सब जानो, भीखा कहा करहि अपसोसो॥२॥

---

३. अस्थिर=स्थिर। बिसराम=विश्राम, स्थिरता, शान्ति। भोर अरु साम=सवेरे से शाम तक सारा दिन। लाम=लंबा, दूर। नूर=प्रकाश।

४. निज=स्वरूप, अपनी आत्मा। चारिउ खानी=जीव के चारों प्रकार अर्थात् अंडज, स्वेदज, पिंडज और उद्भिज। अविगत=जो जाना न जाय।

विनती

१. त्रिभुवन-राया=तीन लोक के स्वामी।

२. पोसो=पोषण किया। गरज=स्वार्थ। दरदवंद=पीड़ित। गोसो=गुस्सा। होसो=होश। अपसोसो=अफसोस, पछतावा।

ए३ साईं, तुम दीनदयाला, आयहु करत सदा प्रतिपाला॥
केतिक अधम तरे तुम चरनन, करम तुम्हार कहा कहि जाला॥
मन उनमेख छुटत नहिं कबहीं, सौच तिलक पहिरे गल माला॥
तनिकौ कृपा करहु जेहिं जन पर, खूल्यो भाग तासुको ताला॥
भीखा हरि नटवर बहुरूपी, जानहिं आपु आपनी काला॥३॥

प्रेम-प्रीति

प्रीति की यह रीति बखानौ॥
कितनौ दुख सुख परै देह पर, चरन-कमल कर ध्यानो॥
हो चैतन्य बिचारि, तजो भ्रम, खाँड धूरि जनि सानौ॥
जैसे चात्रिक स्वाँति बुन्द बिनु, प्रान-समरपन ठानौ॥
भीखा जेहिं तन रामभजन नहिं, कालरूप तेहिं जानौ॥१॥

कहा कोउ प्रेम बिसाहन जाय।
महँग बड़ा गथ काम न आवै, सिर के मोल बिकाय॥
तन मन धन पहिले अरपन करि, जग के सुख न सोहाय।
तजि आपा आपुहिं ह्वै जीवै, निज अनन्य सुखदाय॥
यह केवल साधन को मत है, ज्यों गूंगे गुड़ खाय।
जानहिं भले कहै सो कासों, दिल की दिलहिं रहाय॥
बिनु पग नाच नैन बिनु देखै, बिनु कर ताल बजाया।
बिनु सरवन धुनि सुनै बिबिध बिधि, बिनु रसना गुन गाय॥
निर्गुन में गुन क्योंकर कहियत, व्यापकता समुदाय।
जहँ नाहीं तहँ सब कुछ दिखियत, अँधरन की कठिनाय॥
अजपा जाप अकथ को कथनो, अलख लखन किन पाय।
भीखा अविगत की गति न्यारी, मन बुधि चित न समाय॥२॥

---

३. करम=कृपा। कहि जाला=कहा जा सकता है। उनमेख=उन्मेष, खिलना; यहाँ मन की चंचलता से अभिप्राय है। काला=कला।

प्रेम-प्रीति

१. खाँड़-धूरि=शकर और धूल; सत् और असत्; ब्रह्मरस और विषय-रस। चात्रिक=चातक, पपीहा। ठानौ=निश्चय कर लिया।

२. गथ=पूँजी, गाँठ का धन। सरवन=श्रवण, कान। धुनि=अनहद नाद से अभिप्राय है। बिनु रसना='अजपा' जप से तात्पर्य है। समुदाय=सर्वत्र। अविगत=जो जाना न जा सके। समाय=पहुँच, गति।

आरती

नौबति ठाकुरद्वार बजावै। पाँचो सहित निरति करि गावै॥
सतगुरु कृपा जाहि तेहि पासे। आरति करत मिलन की आसे॥
ज्ञानदीप परकास सोहाती। दिव्य दृष्टि फेरत दिनराती॥
जाचक सुरति निरति पहँ जावो। दानसरूप आतमा पावो॥
भीखा एक दुइत का भयऊ। सर्प समाय रज्जु महँ गयऊ॥१॥

होली

हरिनाम भजन हठ कीजै हो, स्वाँसा ढरकत रंगभरी।
हो होइ समय जात मानो गनि-गनि सिर पर ठोकत काल घरी॥
फगुवा जग भकुवा खेलतु है, स्वारथरत होरी जु परी।
परमारत चेतन्न आतमा आइ सरूप गयो छरी॥
कहत है बेद बेदांत संत, को सांच भक्ति बिनु भव तरी।
परमारथ गुरु ज्ञान अनादर, लोकलाज कुल को डरी॥
जुग बरस मास दिन पहर घरी छिन, तन पर आय चढ़ी जरी।
बात कफ्फ पित कंठ गहो है, नैनन नीर लगो झरी॥
बिसर्‌यो गथ, औसानं बुझावत, जहँ-जह वस्तु रही धरी।
हाहाकार करत घर पुर जन, थकित भयो का कहि करी॥
चतुर प्रबीन बैद कोउ आवो, हाथ उठा देखो नरी।
भीखा बूझत कहत सबै अब, राम कृस्न बोलो हरी॥१॥

आरती

१. नौबति=समय-समय पर नगाड़े और शहनाई बजाना। पाँचो=पाँचों इन्द्रियों से अभिप्राय है। निरति=अत्यन्त प्रीति; नृत्य। दुइत=द्वैतभाव। सर्प.......गयउ=रस्सी में जो साँप का भ्रम हो गया था वह दूर हो गया; मिथ्या आरोप नष्ट हो गया।

होली

१. ढरकत=ढलती या बीतती जाती है। घरी=घड़ियाल। भकुवा=मूर्ख। सरूप=स्वरूप, निजरूप। गयो छरी=छला गया। जरी=ज्वर, तापा। गथ=बोल। औसन=सुध-बुध। नरी=नाड़ी।

रेखता

जहाँतक समुँद दरियाव जल कूप है,
लहरि अरु बुंद को एक पानी।
एक सूबर्न को भयो गहना बहुत,
देखु बीचारकै हेम खानी।
पिरथी आदि घट रच्यो रचना बहुत,
मिर्तिका एक खुद भूमि जानी।
भीखा इक आतमा रूप बहुतै भयो,
बोलता ब्रह्म चीन्है सो ज्ञानी ॥१॥

विविध

राखो मोहिं आपनी छाया। लगै नहिं रावरी माया ॥
कृपा अब कीजिये देवा। करौं तुम चरन की सेवा ॥
आसिक तुझ खोजता हारे। मिलहु मासूक आ प्यारे ॥
कहौं का भाग मैं अपना। देहु जब अजप का जपना ॥
अलख तुम्हारो न लख पाई। दया करि देहु बतलाई ॥
वारि वारि जावँ प्रभु तेरी। खबरि कछु लीजिये मेरी ॥
सरन में आय मैं गीरा। जानो तुम सकल परपीरा ॥
अंतरजामी सकल डेरो। छिपो नहिं कछु करम मेरो ॥
अजब साहब तेरी इच्छा। करो कछु प्रेम की सिच्छा ॥
सकल घट एक हौ आपै। दूसर जो कहै मुख कापै ॥
निरगुन तुम आप गुनधारी। अचर चर सकल नरनारी ॥
जानों नहिं देव मैं दूजा। भीखा इक आतमा पूजा ॥१॥

रेखता

१. हेम=सोना। खानी=खानि, उत्पत्ति-स्थान। मिर्तिका=मृत्तिका, मिट्टी। चीन्है=पहचाने।

विविध

१. रावरी=तुम्हारी। लगै नहिं=असर न कर सके। मासूक=प्रियतम, प्रेम-पात्र। वारि वारि=बलिहारी। गीरा=गिरा, आ पड़ा। डेरो=डेरा, निवास। मुख कापै=किस मुहँ से। गुनधारी=सगुण।

जान दे, करौं मनुहरिया हो ॥
अनेक जतन करिके समझावों, मानत नाहिं गँवरिया हो ॥
करत करेरी नैन बैन सँग, कैसेके उतरब दरिया हो ॥
या मन तें सुर नर मुनि थाके, नर बपुरा कित धरिया हो ॥
पार भइलों पिव पीव पुकारत, कहत गुलाल-भिखरिया हो ॥२॥

सब भूला किधौं हमहिं भुलाने। सो न भुला जाके आतमध्याने ॥
सब घट ब्रह्म बोलता आही। दुनिया नाम कहौं मैं काही ॥
दुनिया लोक बेद मत थापे। हमरे गुरु गम अजपा जापे ॥
हरिजन जे हरिरूप समावे। घमासान भये सूर कहावे ॥
कहे भीखा क्यों नाहीं नाहीं। जबलगि साँच झूँठ तन माहीं ॥३॥

उठ्यो दिल अनुमान हरिध्यान ॥टेक॥
भर्मकरि भूल्यो आपु अपान। अब चीन्हो निजपति भगवान ॥
मन बच क्रम दृढ़ मत परवान। वारों प्रभु पर तन मन प्रान ॥
सब्द प्रकास दियो गुरु दान। देखत सुनत नैन बिनु कान ॥
जाको सुख सोइ जानत जान। हरिरस मधुर कियो जिन पान ॥
निर्गुन ब्रह्मरूप निर्बान। भीखा जल ओला गलतान ॥४॥

कुण्डलिया

रामरूप को सो लखै, जो जन परम प्रबीन ॥
सो जन परम प्रबीन, लोक अरु बेद बखानै।
सतसंगति में भाव-भक्ति परमानँद जानै ॥
सकल विषय को त्याग बहुरि परबेस न पावै।
केवल आपै आपु आपु में आपु छिपावै ॥

---

२. मनुहरिया=विनती, हाहा खाना। धरिया=बिसात। भिखरिया=भिखारी; भीखा।

३. दुनिया.....काही=संसार यह नाम मैं किसे दूँ, जबकि सर्वत्र ब्रह्म-ही-ब्रह्म की सत्ता है, जगत की सत्ता तो कहीं है ही नहीं। घमासान=घोर युद्ध। नाहीं नाहीं=नेति नेति; ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, जैसा कि वाणी द्वारा ब्रह्म का निरूपण करते हैं।

४. आपु अपान=अपने आपको; आत्मस्वरूप को। परवान=प्रमाण। सब्द प्रकाश=नाद-ब्रह्म का परिचय। जल ओला गलतान=ओला जैसे गलकर जल में लीन हो जाता है, वैसे ही जीवात्मा ब्रह्म में लीन अर्थात् तद्रूप हो गई।

भीखा सब तें छोट होइ, रहै चरन-लवलीन।
रामरूप को जो लखै, सो जन परम प्रबीन ॥१॥

मन क्रम बचन बिचारिकै राम भजै सो धन्य॥
राम भजै सो धन्य, धन्य बपु मंगलकारी।
रामचरन-अनुराग परमपद को अधिकारी॥
काम क्रोध मद लोभ मोह की लहरि न आवै।
परमातम चेतन्यरूप महँ दृष्टि समावै॥
ब्यापक पूरनब्रह्म है भीखा रहनि अनन्य।
मन क्रम बचन बिचारिकै राम भजै सो धन्य॥२॥

धनि सो भाग जो हरि भजै, ता सम तुलै न कोइ॥
ता सम तुलै न कोइ, होइ निज हरि को दासा।
रहै चरन-लौलीन राम को सेवक खासा॥
सेवक सेवकाई लहै भाव-भक्ति परवान।
सेवा को फल जोग है भक्तबस्य भगवान॥
केवल पूरन ब्रह्म है, भीखा एक न दोइ।
धन्य सो भाग जो हरि भजै, ता सम तुलै न कोइ॥३॥
पाहुन आयो भाव सों, घर में नहीं अनाज॥
घर में नहीं अनाज, भजन बिनु खाली जानो।
सत्यनाम गयो भूल, झूठ मन माया मानो॥
महाप्रतापी रामजी, ताको दियो बिसारि।
अब कर छाती का हनो, गयो सो बाजी हारि॥
भीखा गये हरिभजन बिनु तुरतहिं भयो अकाज।
पाहुन आयो भाव सों, घर में नहीं अनाज॥४॥
बेद-पुरान पढ़े कहा, जो अच्छर समुझा नाहिं॥
अच्छर समुझा नाहिं, रहा जैसे का तैसा।
परमारथ सों पीठ, स्वार्थ सन्मुख होइ बैसा॥

कुण्डलिया

१. परबेस=प्रवेश, दखल; आवागमन।
२. बपु=शरीर। अनन्य=जहाँ दूसरा भाव न हो।
३. परवान=प्रमाण, सच्चा।
४. पाहुन=अतिथि; सतगुरु से अभिप्राय है। भाव=प्रेम। का हनो=क्या पीटते, क्या पछताते हो। बाजी=दाँव, अवसर। अकाज=हानि।

सास्तर मत को ज्ञान, करम भ्रम में मन लावै।
छुइ न गयो बिज्ञान परमपद को पहुँचावै॥
भीखा देखो आपुको, ब्रह्मरूप हिये माहिं।
बेद-पुरान पढ़े कहा,जो अच्छर समुझा नाहिं॥५॥

साखी

ब्राह्मन कहिये ब्रह्म-रत, है ताका बड़ भाग।
नाहिंन पसु अज्ञानता, गर डारे तिन ताग॥१॥

संत-चरन में लगि रहै, सो जन पावै भेव।
भीखा गुरु-परताप तें, काढ़ेव कपट-जनेव॥२॥

संत-चरन में जाइकै, सीस चढ़ायो रेनु।
भीखा रेनु के लागते, गगन बजायो बेनु॥३॥

बेनु बजायो मगन है, छुटी खलक की आस।
भीखा गुरु-परताप तें, लियो चरन में बास॥४॥

भीखा केवल एक है, किरतिम भयो अनंत।
एकै आतम सकलघट, यह गति जानहिं संत॥५॥

एकै धागा नाम का, सब घट मनिया माल।
फेरत कोई संतजन, सतगुरु नाम गुलाल॥६॥

●

---

५. अच्छर=अक्षर; आत्मा का स्वरूप, जिसका नाश नहीं होता है। बैसा=बैठा। सास्तर=शास्त्र। विज्ञान=ब्रह्मज्ञान।

साखी

१. गर=गले में। तिन ताग=तीन तागे अर्थात् जनेऊ।
२. जन=हरिभक्त। भेव=भेद, आत्मा का रहस्य-ज्ञान। जनेव=जनेऊ।
३. रेनु=रेणु, रज, धूल। गगन बजायो बेनु=शून्यावस्था अर्थात् समाधि में अनहद नाद किया।
४. खलक=दुनिया।
५. किरतिम=कृत्रिम, मिथ्या नाम-रूप का संसार।
६. मनिया=मनका, गुरिया।

चरणदासजी

चोला-परिचय

जन्म-संवत्–१७६० वि., भादों सुदी ३
जन्म-स्थान–डेहरा गाँव (मेवात, राजस्थान)
पिता–मुरलीधर
माता–कुंजी
जाति–ढूसर बनिया
गुरु–शुकदेवजी
भेष–विरक्त
सत्संग-स्थान–दिल्ली
मृत्यु-संवत्–१८३६ वि., अगहन सुदी ४
मृत्यु-स्थान–दिल्ली

चरणदासजी की पट्टशिष्या सहजोबाई ने एक पद में अपने गुरुदेव के जन्म-संवत् तथा कुल के विषय में कहा है–

"सखी री, आज धन धरती धन देसा।
धन डेहरा मेवात मँझारे, हरि आये जन-भेसा॥
धन भादों धन तीज सुदी है, धन दिन मंगलकारी।
धन ढूसर कुल बालक जनम्यौ, फुल्लित भये नरनारी॥
धन-धन माई कुंजो रानी, धन मुरलीधर ताता।
अगले दत्तव अब फल पाये, जिनके सुत भयौ ज्ञाता॥"

चरणदासजी का पूर्व नाम रणजीतसिंह था। पिता मुरलीधर का स्वर्गवास हो जाने पर यह अपने नाना के पास दिल्ली में आकर रहने लगे। कहते हैं कि १९ वर्ष की अवस्था में जब यह भगवान् के विरह में एक दिन रो रहे थे, जंगल में शुकदेव मुनि ने इन्हें दर्शन दिया और भगवद्भक्ति का उपदेश किया। चरनदासजी ने अपने सद्गुरु शुकदेवजी को व्यासदेव का पुत्र शुकदेव मुनि कहा है। किन्तु खोज के आधार पर यह पाया जाता है कि व्यासपुत्र शुकदेव मुनि कहना तो केवल श्रद्धा-भावना की बात है, असल में इनके मंत्र-गुरु बाबा सुखदेवदास या सुखानन्द नाम के एक महात्मा थे, जो मुज़फ़्फ़रनगर के

पास शूकरताल गाँव में रहते थे।

चरणदासजी ने अनेक तीर्थों का पर्यटन किया था, और ब्रज में भी यह कुछ काल रहे थे। श्रीमद्भागवत पर और विशेषकर उसके एकादश स्कन्ध पर इनकी भारी श्रद्धा-भक्ति थी। निर्गुणमार्गी महान् योगी होते हुए भी श्रीकृष्ण पर इनकी अगाध भक्ति थी। इन्हें हम योगमार्गी वैष्णव भी कह सकते हैं।

दिल्ली में बैठकर इन्होंने १४ वर्षतक योगाभ्यास किया था। दिल्ली को अपना सत्संग-स्थान बनाकर हज़ारों लोगों को इन्होंने हरि-भक्ति, ब्रह्म-ज्ञान और शब्द-योग का समन्वयात्मक उपदेश दिया और चेताया, इनके मुख्य शिष्य ५२ थे, जिनके नाम पर चरणदासी पंथ की ५२ शाखाएं आज भी प्रसिद्ध हैं।

बानी-परिचय

महात्मा चरणदास की २१ रचनाओं का पता लगा है, किन्तु प्रामाणिक रचनाएँ निस्संदिग्ध रूप से ये १२ कही जाती हैं :

१ ब्रज चरित्र
२ अष्टांगयोग-वर्णन
३ योग-संदेह-सागर
४ पंचोपनिषद्
५ भक्ति-पदार्थ-वर्णन
६ ब्रह्मज्ञान-सागर
७ धर्म-जहाज-वर्णन
८ अमरलोक-अखंडधाम-वर्णन
९ ज्ञान-स्वरोदय
१० मन-विकृतकरण गुटका सार
११ शब्द
१२ भक्ति-सागर

चरणदासजी की बानी बड़ी मधुर और सरस है। निर्गुण संतों की तथा सगुणी भक्तों की दोनों ही शैलियों का सुन्दर संगम इनकी बानी में हमें मिलता है। भाषा में जो माधुर्य और प्रसाद है वह भी अनूठा है। अनेक पदों में ऊँचा भक्ति-भाव और गहरा रहस्य भरा हुआ है। साखियाँ भी खूब चेतानेवाली हैं। इनकी बानी में भागवत-भक्ति, परमार्थ-ज्ञान तथा शब्द-योग का समन्वयात्मक निरूपण बड़ी सरस एवं सरल शैली और भाषा में किया गया है। चरणदासजी ने जो कुछ भी कहा 'तन्मय' होकर कहा, और यही कारण है जो उनके कितने ही पदों में हम अध्यात्म-रस का निर्मल निर्झर पाते हैं।

आधार

१ चरनदासजी की बानी (पहलाभाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ चरनदासजी की बानी (दूसरा भाग)— बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
३ चरनदासजी की बानी—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
४ उत्तरी भारत की संत-परंपरा—परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भंडार, इलाहाबाद

●

चरणदासजी

राग सीठना

टुक निर्गुन छैला सूँ, कि नेह लगाव री।
जाको अजर अमर है देस, महल बेगमपुर री॥
जहँ सदा सोहागिन होय, पिया सूँ मिलि रहु री।
जहँ आवागवन न होय, मुक्ति चेरी तेरी॥
कहै चरनदास गुरु मिले, सोई ह्वाँ रहु बौरी।
तब सुख-सागर के बीच, कलहरी ह्वै रहु री॥१॥

राग सीठना

तू सुन हे लंगर बौरी।
तू पाँचौ घेरि पचीसौ घेरी, विषै वासना की है चेरी।
बारी बारी दौरी॥
तै पिय भूली चौरासी डोली, अँग-अँग के सुख में फूली।
माया लाई ठौरी॥
तैं काम क्रोध सूँ नेह लगायो, मनमाना सब जग भरमायो।
मोह यार बाँको री॥
चरनदास सुकदेव बतावैं, निर्गुन छैला तोहि मिलावैं।
जो टुक चेतन हो, री॥२॥

राग बसंत

मेरे सतगुरु खेलत नित बसंत।
जाकी महिमा गावत साध संत॥
ज्ञान बिबेक के फूले फूल। जहँ साखा जोग, अरु भक्ति मूल॥
प्रेमलता जहँ रही झूल। सत-संगति सागर के कूल॥

---

१. छैला=सुन्दर (परम) पुरुष। बेगमपुर=जहाँ किसीकी गति या पहुँच नहीं। चेरी=दासी। कलहरी=प्रेम-मदिरा पीने व पिलानेवाली।

२. लंगर=मस्त, चपल। बारी बारी=बारबार जन्म-मरण के चक्कर में दौड़ती फिरी। चौरासी=८४ लाख योनियाँ। लाई ठौरी=टिक रही।

जहँ भर्म उड़त है ज्यों गुलाल। अरु चोवा चरचै निस्चय बाल॥
जहँ सील छिमा को बरसै रंग। काम क्रोध को मान भंग॥
हरिचरचा जित है नितअनंत। सुनि मुक्त होत सब जीव-जंत॥
आन धम सब जाहिं खोय। रामनाम की जै जै होय॥
तहं अपने पीव को ढूँढ़ि लेव। अरु चरनकवँल में सुरति देव॥
कहैं चरनदास दुख दुंद जाहिं। जब प्रीतम सुकदेव गहैं बाहिं॥३॥

होली

प्रेमनगर के माहिं होरी होय रही।
जबसों खेली हमहूँ चित दै, आपनहूँ का खोय रही॥
बहुतन कुल अरु लाज गवाई, रहो न कोई काम।
नाचि उठैं कभी गावन लागैं, भूले तन धन धाम॥
बहुतन की मति रंग रंगी है, जिनको लागो प्रेम।
बहुतन को अपनी सुधि नाहीं, कौन करै अस नेम॥
बहुतन की गदगद ही बानी, नैनन नीर ढराय।
बहुतन को बौरापन लागो, ह्याँ की कही न जाय॥
प्रेमी की गति प्रेमी जानै जाके लागी होय।
चरनदास उस नेहं-नगर की सुकदेवा कहि सोय॥४॥

मंगल

जग में दो तारन कूँ नीका।
एक तो ध्यान गुरु का कीजे, दूजे नाम धनी का॥
कोटि भाँति करि निस्चै कीयो, संसय रहा न कोई।
सास्तर बेद पुरान टटोले, जिनमें निकसा सोई॥
इनहीं के पीछे सब जानो, जागे जग्य तप दाना।
नौविधि नौधा नेम प्रेम सब, भक्तिभाव अरु ग्याना॥
और सबै मत ऐसे मानो, अन्न बिना भुस जैसे।
कूटत कूटत बहुतै कूटा, भूख गई नहिं तैसे॥

---

३. जोग=ज्ञानयोग, राजयोग, हठयोग आदि। भर्म=भ्रम, संशय। चोवा=एक प्रकार का शीतल सुगंधित द्रव पदार्थ। चरचै=लेप करे। सुकदेव=चरणदासजी के गुरुदेव।

४. आपन.........रही=अपने आपको भी प्रेम की नगरी में गँवा दिया, प्रेम में रोम-रोम विलीन कर दिया। नेम=रीत। ह्याँकी=उस प्रेमनगर की लीला।

थोथा धर्म वही पहिचानो, जामें ये दो नाहीं।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, समझि देख मन माहीं ॥५॥

राग बिलावल

साँचा सुमिरन कीजिये, जामें मीन न मेख।
ज्यों आगे साधुन कियो, बानी में लो देख॥
टेक गहो दृढ़ भक्ति की, नौधा हिय धारि।
संतन की सेवा करो, कुल-कानि निवारि॥
जासूँ प्रेमा ऊपजै, जग हरि दरसायँ।
आगे पीछे ही फिरैं, प्रभु छोड़ि न जायँ॥
चारि मुक्ति बाँदी, भँवें सिधि चरनन माहिं।
तीरथ सब आसा करै, अघ देखि नसाहिं॥
कहैं गुरु सुकदेवजी चरनदास गुलाम।
ऐसी साधन धारिये, रहिये निस्काम ॥६॥

राग बिलावल

करनी की गति और है, कथनी की औरे।
बिन करनी कथैं बकवादी बौरे॥
करनी बिन कथनी इसी, ज्यों ससि बिन रजनी।
बिन सस्तर ज्यों सूरमा, भूषन बिन सजनी॥
ज्यों पंडित कथि-कथि भले बैराग सुनावैं।
आप कुटुँब के फँद पड़े, नाहीं सुरझावैं॥
बाँझ झुलावै पालना बालक नहिं माहीं।
बस्तु बिहीना जानिये, जहँ करनी नाहीं॥
बहु डिंभी करनी बिंना कथि-कथिकरि मूए।
संतो कथि करनी करी, हरि के सम हूए॥

---

५. तारन कूँ=पार उतारने को। धनी=परमात्मा। नौधा=नौ प्रकार की भक्ति अर्थात् श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, सख्य, दास्य और आत्मनिवेदन। थोथा=सारहीन, फोकट।

६. मीन न मेख=संदेह के लिए स्थान नहीं। बानी=संतों की वाणी। निवारि=त्यागकर। प्रेमा=प्रेमभक्ति। चारिमुक्ति=मोक्ष के चार प्रकार अर्थात् सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य और सायुज्य। बाँदी=दासी। भँवें=घूमती रहती हैं।

कहैं गुरु सुकदेवजी चरनदास बिचारौ।
करनी रहनी दृढ़ गहौ, थोथी कथनी डारौ ॥७॥

राग सोरठ

अब घर पाया हो मोहन प्यारा ॥
लखो अचानक अज अविनासी, उघरि गये दृग-तारा।
झूमि रह्यो मेरे आँगन में, टरत नहीं कहुँ टारा ॥
रोम-रोम हिय मांहीं, देखो, होत नहीं छिन न्यारा।
भयो अचरज चरनदास न पैये, खोज कियो बहुबारा ॥८॥

राग कान्हरा

कुटुँब सँघाती स्वारथ लागे, तेरी काहू कूँ नहिं चीता ॥
तैं प्रभु ओरी सूँ मुख मोड़ा, झूँठे लोगन सूँ हित कीता।
अरु तैं अपनी आँखों देखा, कई बार दुख सुख हो बीता ॥
सम्पति में सबहीं घिरि आवैं, बिपति परे अधिको दुख दीता।
मूठी बाँधि जनम नर लायो, हाथ पसारि चलैगो रीता ॥
धरि-धरि स्वाँग फिरै तिन कारन, कपि ज्यों नाचत ताता थीता।
मुए न संगी होहिं तिहारे, बाँधि जलावैं देइ पलीता ॥
गुरुसेवा सतसंग न कीन्हा, कनक कामिनी सों करि प्रीता।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, मरत-मरत हरिनाम न लीता ॥९॥

मंगल

सोई सोहागिन नारि पिया मन भावई।
अपने घर को छोड़ि न परघर जावई ॥
अपने पिय का भेद न काहू दीजिये।
तन मन सुरति लगायके सेवा कीजिये ॥

---

७. इसी=ऐसी। सस्तर=शस्त्र, हथियार। सजनी=स्त्री। वस्तु=तत्त्व। बिहीना=निस्तार। डिम्भी=दंभी, पाखंडी। थोथी=सारहीन।

८. अज=अजन्मा। उघरि गये=खुल गये; ज्ञान का प्रकाश अंतर में उदय हो गया। आँगन में=हृदय में।

९. सँघाती=संगी, साथी। चीता=चिंता, चाह। कीता=किया। घिरि आवै इकट्ठे हो जाते हैं। दीता=दिया। रीता=खाली हाथ। ताता थीता=नृत्य में एक प्रकार का बोल। बाँधि=अर्थी पर बाँधकर। पलीता=कपड़े की मोटी बत्ती। लीता=लिया।

पति की अग्या चाल, पाल पिय को कहो।
लाज किये कुलवंत जतन हीं सूँ रहो॥
पिया कूँ चाहो रूप सिंगार बनाइये ।
पतिब्रता कुल दोय में सोभा पाइये॥
नौधा-बस्तर पहिरि दया रँग लाल है।
भूषन बस्तर धारि बिचित्तर बाल है॥
रंगमहल निरदोष ह्वाँ झिलमिल नूर है।
निरगुन-सेज बिछाय सभी करि दूर है॥
मन्दिर दीपक बाल बिन बाती घीवकी।
सुघर चतुर गुनरासि लाड़िली पीव की॥
कहै गुरु सुकदेव यों बालम मोहिये।
चरनदास ले सीख जो प्रेम समोइये॥१०॥

बिनती

राग बिलावल

तुम साहब करतार हो, हम बन्दे तेरे।
रोम-रोम गुनेगार हैं, बखसो हरि मेरे॥
दसों दुवारे मैल है, सब गंदमगंदा।
उत्तम तेरो नाम है, बिसरै सो अंधा॥
गुन तजिकै औगुन कियो तुम सब पहिचानो।
तुम सूँ कहा छिपाइये हरि घट की जानो॥
रहम करो रहमान सूँ यह दास तिहारो।
भक्ति-पदारथ दीजिये आवागवन निवारो॥
गुरु सुकदेव उबारिलो अब मेहर करीजै।
चरनदास गरीब कूँ अपनो करि लीजै॥११॥

राग बिहाग

राखो जी लाज गरीबनिवाज।
तुम बिन हमरे कौन सँवारे, सबहीं बिगरैं काज॥

११. गुनेगार=गुनहगार, अपराधी। बखसौ=माफ़ करो। निबारौ=छुटकारा देदो।

भक्तबछल हरि नाम कहावो, पतित उधारनहार।
करो मनोरथ पूरन जन को, सीतल दृष्टि निहार॥
तुम जहाज मैं काग तिहारो, तुम तजि अंत न जाऊँ।
जो तुम हरिजू मारि निकासो, और ठौर नहिं पाऊँ॥
चरनदास प्रभुसरन तिहारी, जानत सब संसार।
मेरी हँसी सो हँसी तुम्हारी, तुमहूँ देखु बिचार॥१२॥

राग कल्यान

सतगुरु, पाँचौ भूत उतारौ।
जनम-जनम के लागेहिं आये, दे मंतर अब तिन्हैं बिडारौ॥
काम, क्रोध, मोह, लोभ, गर्व ने मन बौराय कियो अपभायो।
जिनके हाथ परो जिव मेरो, घेरा घेरि बहुत दुख पायो॥
एक घरी मोहिं छोड़त नाहीं, लहरि चढ़ायकै बहुत निवायो।
कपि ज्यों घर-घर द्वार नचावै, उत्तम हरि को नाम छुटायो॥
अब की सरन गही है तुम्हारी चरनहिंदास अजाने॥
किरपा करि यह ब्याधि छुटावो, गुरु सुकदेव सयाने॥१३॥

राग सोरठ

गुरुदेव हमारे आवो जी।
बहुतदिनों से लगो उमाहो, आनँद-मंगल लावो जी॥
पलकन पंथ बुहारूँ तेरो, नैन परे पग धारो जी॥
बाट तिहारी निसदिन देखूँ, हमरी ओर निहारो जी॥
करूँ उछाह बहुत मन सेती, आँगन चौक पुराऊँ जी॥
करूँ आरती तन मन वारूँ, बारबार बलि जाऊँजी॥
दै पैकरमा सीस नवाऊँ, सुनि-सुनि बचन अघाऊँजी॥
गुरु सुकदेव चरन हूँ दासा, दरसन माहिं समाऊँजी॥१४॥

---

१२. सीतल=कृपा और करुणा से पूर्ण। अंत=अनत, दूसरी जगह।

१३. बिडारौ=मारकर भगादो। अपभायो=अपना मनचाहा। निवायो=झुकाया, नीचा दिखाया=अजानै=मूढ़।

१४. उमाहो=उछाह, उत्कण्ठा। नैन परे पग धारौ=आँखैं बिछी हैं, पधारो। पैकरमा=परिक्रमा। अघाऊँ=तृप्त होऊँ। समाऊँ=लीन हो जाऊँ।

राग बिलास

घट में तीरथ क्यों न नहावो ॥
इत-उत डोलो पथिक बनें हीं, भरमि भरमि क्यों जन्म गँवावो ॥
गोमती कर्म सुकारथ कीजै, अधरम-मैल छुटावो ॥
सील-सरोवर हितकरि न्हैये, काम-अगिन की तपन बुझावो ॥
रेवा सोई छिमा को जानो, तामें गोत लीजै ॥
तन में क्रोध रहन नहिं पावै, ऐसी पूजा चित दै कीजै ॥
सत जमुना, संतोष सरस्वती, गंगा धीरज, धारो ॥
झूँठ पटकि निर्लोभ होयकरि, सबहीं बोझा सिर सूँ डारो ॥
दया तीर्थ कर्मनासा कहिये, परसै बदला जावै ॥
चरनदास सुकदेव कहत हैं, चौरासी में फिर नहिं आवै ॥१५॥

राग सोरठ

जो नर इतके भये न उतके।
उतकी प्रेम-भक्ति नहिं उपजी, इत नहिं नारी सुत के ॥
घर सूँ निकसि कहा उन कीन्हा, घर-घर भिच्छा माँगी।
बाना सिंह, चाल भेड़न की, साध भये कै स्वाँगी ॥
तन मूँड़ा पै मन नहिं मूँड़ा, अनहद चित्त न दीन्हा।
इन्द्री स्वाद मिले विषयन सूँ, बकबक बकबक कीन्हा ॥
माला कर में, सुरति न हरि में, यह सुमरिन कहु कैसा।
बाहर भेख धारिके बैठे, अन्तर पैसा पैसा ॥
हिंसा अकस कुबुधि नहिं छोड़ी, हिरदे साँच न आया।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, बाना पहिरि लजाया ॥१६॥

राग बिलावल

ब्राह्मन सो जो ब्रह्म पिछानै। बाहर जाता भीतर आनै ॥
पाँचौ बस करि झूँठ न भाखै। दया-जनेऊ हिरदे राखै ॥

---

१५. सुकारथ=सुकृत; सार्थक। हितकरि=प्रेम से। रेवा=नर्मदा। बोझा=कर्मों का भार। परसै बदल जावै=स्पर्श करने या नहाने से काया-पलट हो जाता है। चौरासी=चौरासी लाख योनियाँ।

१६. इतके न उतके=न लोक के न परलोक के। बाना=भेष। मन नहिं मूँड़ा=मन को वश में नहीं किया। अंतर पैसा पैसा=अंदर पैठा हुआ है पैसा, पैसे का ध्यान लगा है; पैसा ही पैसा। अकस=वैर, विरोध।

आतम-बिद्या पढ़ै पढ़ावै। परमातम का ध्यान लगावै॥
काम क्रोध मद लोभ न होई। चरनदास कहैं ब्राह्मन सोई॥१७॥

राग बिलावल

थोथे सुमिरन कहा सरै॥
मन के रोग सोग नहिं खोये। हिंसा डूबे, अकस जरे॥
नारी सुत सूँ मोह कियो है, नेक न हरि के प्रेम अड़े॥
माला तिलक सुधारि सँवारे, राखत छल बल मकर घने॥
अंतर और निरंतर औरै, सिंह गऊमुख रहत बने॥
ऐसी भक्ति मुक्ति नहिं पावै, करम लगैं अरु नरक परे॥
जम को दंड दहक पावक की, जनम मरन यों नाहिं टरै॥
लच्छन प्रेम सहित जप कीजे, भीतर बाहर उघर नचै॥
चरनदास सुकदेव कहत हैं, हरि रीझैं जब व्याधि बचै॥१८॥

राग सोरठ

साधो, टेक हमारी ऐसी।
कोटि जतन करि छूटै नाहीं, कोउ करो अब कैसी॥
यह पग धरो संभाल अचल होइ, बोल चुके सोई बोले।
गुरु-मारग में लेन न देनो, अब इत उत नहिं डोले॥
जैसे सूर, सती अरु दाता, पकरी टेक न टारैं।
तन करि धन करि मुख नहिं मोड़ैं, धर्म न अपनो हारैं॥
पावक जारो, जल में बोरो, टूक-टूक करि डारो।
साध-संगति हरि-भक्ति न छोड़ूँ, जीवन-प्राण हमारो॥
पैज न हारूँ, दाग न लागै, नेक न उतरै लाजा।
चरनदास सुकदेव-दया से, सब विधि सुधरैं काजा॥१९॥

---

१७. बाहर जाता भीतर आनै=विषयों की ओर जाते हुए मन को अंतर्मुखी करले।

१८. सोग=शोक। अकस=वैर, विरोध। टहल=सेवा। मकर=धूर्तता। निरंतर=बाहर। सिंह गऊमुख=अंदर सिंहमुख अर्थात् हिंसक और बाहर गोमुख अर्थात् शीलवान्। लच्छन प्रेम=सबसे ऊँची प्रेम-लक्षणा भक्ति। व्याधि=भववाधा, मोहजनित दुःख।

१९. लेन न देनौ=संशय, शंका। पैज=प्रण। नेक......लाजा=जो टेक पकड़ चुका उसकी लाज ज़रा भी नहीं जाने दूँगा।

राग बरवा

या तन को कह गर्ब करत हैं, ओला ज्यों गलि जावै रे॥
जैसे बरतन बनो कांच को, ठपक लगे बिनसावै रे।
झूँठ कपट अरु छलबल करिकै, खोटे कर्म कमावै रे॥
बाजीगर के बांदर सा ज्यों, नाचत नाहिं लजावै रे।
जबलौं तेरी देह पराक्रम, तबलौं सबन सोहावै रे॥
माय कहै मेरा पूत सपूता, नारी हुकुम चलावै रे।
पल पल पल पल पलटै काया, छिन छिन माहि घटावै रे॥
बालक तरुन होइ फिर बूढ़ा, जरा मरन पुनि आवै रे।
तेल फुलेल सुगन्ध उबटनो, अम्बर अतर लगावै रे॥
नाना बिधि सूँ पिंड सँवारै, जरि बरि धूरि समावै रे।
कोटि जतन सूँ बचै न क्यूँहीं, देवी देव मनावै रे॥
जिनकूँ तू अपनो करि जानै, दुख में पास न आवै रे।
कोई झिड़कै कोइ अनखावै, कोई नाक चढ़ावै रे॥
यह गति देखि कुटुँब अपने की, इनमें मत उरझावै रे।
अबहीं जम सूँ पाला परिहै, कोई नाहिं छुड़ावै रे॥
औसर खोवै पर के काजे, अपनो मूल गँवावै रे।
बिन हरिनाम नहीं छुटकारो बेद पुराण बतावै रे॥
चेतनरूप बसै घट अंतर, भर्म सूल बिसरावै रे।
जो टुक ढूँढ़ खोज करि देखै, सो आपहिं में पावै रे॥
जो चाहे चौरासी छूटै, आवा-गवन नसावै रे।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, सत-संगति मन लावै रे॥२०॥

राग काफी

वह बोलता कित गया नगरिया तजिकै।
दस दरवाजे ज्यों के त्योंही कौन राह गया भजिकै॥
सूना देस, गाँव भया सूना, सूने घर के वासी।
रूप रंग कछु औरै हूआ, देही भई उदासी॥
साजन थे सो दुरजन हुए, तन को बाँधि निकारा।
चिता सँवारि लिटा करि तापै ऊपर धरा अँगारा॥

---

२०. ठपक=ठोकर, धक्का। सुहावै=प्रिय लगता है। घटावै=क्षीण होती जाती है। जरा=बुढ़ापा। अंबर=एक इत्र। पिंड=शरीर। समावै=सजाता है। धूरि समावै=मिट्टी में मिल जाता है। क्यूँही=किसी भी तरह। अनखावै=नाराज़ होता है।

ढह गया महल, चुहल थी जामें, मिल गया माटी माहीं।
पुत्र कलित्तर भाई बंधू, सबहीं ठोंक जलाहीं॥
देखत ही का नाता जग में, मुए संग नहिं कोई।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, हरि बिन मुक्त न होई॥२१॥

राग बिलावल

अजब फकीरी साहबी भागन सूँ पैये।
प्रेम लगा जगदीश का कछु और न चैये॥
राव रंक कूँ सम गिनैं, कुछ आसा नाहीं।
आठ पहर सिमिटे रहैं, अपने ही माहीं॥
बैर प्रीत उनके नहीं नहिं बाद-बिबादा।
रुठे से जग में रहैं, सुनैं अनहद नादा॥
जो बोलैं तौ हरि-कथा, नहिं मौनै राखैं।
मिथ्या कडुवा दुरबचन, कबहूँ नहिं भाखैं॥
जीव-दया अरु सीलता, नख-सिख सूँ धारैं।
पाँचौं दूतन बसि करैं, मन सूँ नहिं टारैं॥
दुख सुख दोनों के परे, आनँद दरसावैं।
जहाँ जायँ अस्थल करैं, माया पवन न जावैं॥
हरिजन हरि के लाड़िले, कोई लहै न भेवा।
सुकदेव कही चरनदास सूँ, कर तिनकी सेवा॥२२॥

राग बिलावल

भक्ति गरीबी लीजिये तजिये अभिमाना।
दो दिन जग में जीवना आखिर मरि जाना॥
पाप पुन्न लेखा लिखैं, जम बैठे थाना।
कहा हिसाब तुम देहुगे जब जाहि दिवाना॥
मात पित कोइ ह्वाँ नहीं सबही बेगाना।
द्रव्य जहाँ पहुँचै नहीं, नहिं मीत पिछाना॥

---

२१. बोलता=जीव। उदासी=फीकी। चुहल=रंगरेलियाँ। कलित्तर=कलत्र, स्त्री।

२२. चैइये=चाहिए। सिमटे........माहीं=सदा अंतर्मुखी रहते हैं अर्थात् सब विषयों से चित्तवृत्ति हटाकर अपनी आत्मा के ध्यान में ही लीन रहते हैं। रुठ-से=उदासीन। पाँचों दूतन=पाँचों ज्ञान-इन्द्रियों को। मनसूँ नहिं हारै=मन के वश में नहीं होते हैं। अस्थल करैं=आसन मानकर बैठ जाते हैं। माया पवन न जावै=माया की हवा भी नहीं पहुँचती।

एक सों एकहिं होयगी, ह्वाँ साँच तुलाना।
काहू की चालै नहीं छनै दूध अरु पाना॥
साहब की कर बन्दगी, दे भूखे दाना।
समुझावैं सुकदेवजी चरनदास अयाना॥२३॥

राग सोरठ

भाई रे, अवधि बीती जात।
अंजुलीजल घटत जैसे, तारे ज्यों परभात॥
स्वास-पूँजी गाँठि तेरे, सो घटत दिन-रात।
साधु-संगति पैंठ लागी, ले लगै सोइ हाथ॥
बड़ो सौदा हरि सँभारौ, सुमिर लीजे प्रात।
काम क्रोध दलाल हैं, मत बनिज कर इन साथ॥
लोभ मोह बजाज ठगिया, लगे हैं तेरि धात।
शब्द गुरु को राखि हिरदय, तौ दगा नहिं खात॥
आपनी चतुराइ बुधि पर, मत फिरै इतरात।
चरनदास सुकदेव चरननि परस तजि कुल जात॥२४॥

अष्टसिद्धियाँ

चौपाई

जोग किये आठौ सिधि पावै। कै भोगै कै चित्त न लगावै॥
जोग किये मन जीता जावै। पलटै जीव ब्रह्म गति पावै॥
जोगेसुर चाहे सो करै। भरी रितावै रीती भरै॥
जोगेसुर ईसुर ह्वै जाई। दिन दिन बाढ़ै कला सवाई॥
तजिये भोग जोग हीं करिये। तिरगुन परे ध्यान हीं धरिये॥
चौथे पद में करै निवासा। काहू बिधि का रहै न सांसा॥
जोग करै सोई परबीना। सुकदेव कहैं परगट कहि दीना॥१॥

---

२३. दिवाना=दीवान; कर्मों का लेखा रखनेवाले चित्रगुप्त से आशय है। बेगाना=पराये। पाना=पानी।
२४. घात=दाँव। दगा=धोखा। इतरात=गर्व करता हुआ।

अष्टसिद्धियाँ

१. चित न लगावै=ध्यान न दे, त्यागदे। रितावै=खाली करे। चौथे पद में=तुरीयावस्था, जो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति से परे हैं; मोक्षपद। साँसा=संशय। परबीना=प्रवीण, कुशल।

गुरुमुख-लच्छन

अब गुरु-मुख के लच्छन गाऊँ। जुदे जुदे करिकै समझाऊँ॥
इनकूँ समुझि धरे हिय कोई। पूरा गुरुमुख कहिये सोई॥
प्रथमहिं गुरु सूँ झूठ न बोलै। खोटी खरी करै सब खोलै॥
दूजे गुरु कूँ पै न लगावै। निस्चय गुरु के चरन मनावै॥
तीजे अज्ञाकारी जानो। इन लच्छन गुरुमुखी पिछानो॥
जो कोइ गुरु का लेवै नाम। ताकूँ निहुरि करै परनाम॥
जो कहुँ देखै गुरु का बाना। ताकूँ जानैं गुरू समाना॥
चरनदास सुकदेव बखानै। गुरु-भाई कू गुरुसम जानै॥

दोहा

गुरु-भाई को पूजिये, धरिये चरनन सीस।
चरनोदक फिरि लीजिये, गुरु मत बिसवा बीस॥१॥

चौपाई

जो कहुँ गुरु का बसतर पावै। हिये लगाय चूमि दृग छवावै॥
गुरु देस का मानुष आवै। दै परिकरमा सीस नवावै॥
कहाँ दया करि दरसन दीने। मेरे पाप भये सब छीने॥
जो अपने गुरुद्वारे जैये। देखत पौरि बहुत हरखैये॥
ह्वाँई सूँ दंडौत जु कीजे। दरसन करि-करि सर्बस दीजे॥
फिरि ठाढ़ो रह जोरे हाथा। बैठै जब आज्ञा दें नाथा॥
जो बोलैं सो मन में धरिये। अपने अवगुन सबही हरिये॥
चरनदास सुकदेव बतावै। ऐसा गुरुमुख राम रिझावै॥२॥

गुरुमुख-लच्छन

१. जुदे-जुदे करिकै=ब्यौरे के साथ। खोटी........खोलै=बुरा और भला जो भी काम करे सब गुरुको साफ़-साफ़ बतलादे, कुछ भी न छिपाये। पै लगावै=दोष लगाये या निकाले। पिछानों=पहचानों। निहुरि=झुककर। बाना=भेष। चरनोदक=पैरों का धोवन, चरणामृत। बिसवाबीस=निश्चय ही।

२. बसतर=वस्त्र। छीने=क्षीण, नष्ट। पौरि=ड्योढ़ी।

साखी

गुरु कहैं सो कीजिये, करैं सो कीजै नाहिं।
चरनदास की सीख सुन, यही राख मन माहिं ॥१॥

अबके चूके चूक है, फिर पछितावा होय।
जो तुम जन्म न छोड़िहौ, जक्त जायगो खोय ॥२॥

जग माहीं न्यारे रहो, लगे रहो हरि-ध्यान।
प्रथवी पर देही रहै, परमेसुर में प्रान ॥३॥

सब सूँ रख निरबैरता, गहो दीनता ध्यान।
अंत मुक्ति-पद पाइहौ, जग में होय न हानि ॥४॥

दया नम्रता दीनता, छिमा सील संतोष।
इनकूँ लै सुमिरन करै, निस्चय पावै मोष ॥५॥

मिटते सूँ मत प्रीत करि, रहते सूँ करि नेह।
झूठे कूँ तजि दीजिये, साँचे में करि गेह ॥६॥

ब्रह्म-सिन्ध की लहर है, तामें न्हाव सँजोय।
कलिमल सब छुटि जाहिंगे, पातक रहै न कोय ॥७॥

करै तपस्या नाम बिन, जोग जग्य अरु दान।
चरनदास यों कहत हैं, सबहीं थोथे जान ॥८॥

गई सो गई अब राखिले, एहो मूढ़ अयान।
निःकेवल हरि कूँ रटो, सीख गुरु की मान ॥९॥

साखी

१. करैं........नाहिं=जो काम गुरु करते हों, उसकी नक़ल नहीं करनी चाहिए।

२. जक्त=जगत्।

३. न्यारे=अनासक्त।

५. मोष=मोक्ष।

६. मिटते सूँ=अनित्य संसार से। रहते सूँ=नित्य आत्मा से।

८. थोथे=फोकट; निस्सार।

९. अयाने=अज्ञानी। निः केवल=विशुद्ध, माया-रहित।

जागै ना पिछले पहर, ताके मुखड़े धूल।
सुमिरै ना करतार कूँ, सभी गँवावै मूल ॥१०॥

पिछले पहरे जागकरि, भजन करै चित लाय।
चरनदास वा जीव की, निस्चै गति ह्वै जाय ॥११॥

पहिले पहरे सब जगैं, दूजे भोगी मान।
तीजे पहरे चोर ही, चौथे जोगी जान ॥१२॥

जो कोइ बिरही नाम के, तिनकूँ कैसी नींद।
सस्तर लागा नेह का, गया हिये कूँ बींध ॥१३॥

सोये हैं संसार सूँ, जागे हरि की ओर।
तिनकूँ इकरस हीं सदा, नहीं सांझ नहिं भोर ॥१४॥

सोवन जागन भेद की, कोइक जानत बात।
साधूजन जागत तहाँ, जहाँ सबन की रात ॥१५॥

जो जागै हरि-भक्ति में, सोई उतरै पार।
जो जागै संसार में, भवसागर में ख्वार ॥१६॥

सतगुरु से माँगूँ यही, मोहिं गरीबी देहु।
दूर बड़प्पन कीजिये, नान्हा हीं कर लेहु ॥१७॥

आदिपुरुष किरपा करौ, सब औगुन छुटि जाहिं।
साध होन लच्छन मिलैं, चरनकमल की छाहिं ॥१८॥

हिय हुलसो आनँद भयो, रोम-रोम भयो चैन।
भये पवित्तर कान ये, सुनि सुनि तुम्हरे बैन ॥१९॥

गुरु-महिमा

किसू काम के थे नहीं, कोइ न कौड़ी देह।
गुरु सुकदेव कृपा करी, भई अमोलक देह ॥१॥

---

१०. ताके मुखड़े धूल=उसे धिक्कार है।
११. गति=सद्गति, मोक्ष।
१२. भोगी=विषयी जीव।
१३. सस्तर=शस्त्र, हथियार। गया बींध=आरपार हो गया।
१४. सोये हैं संसार सूँ=सांसारिक विषय-सुखों की ओर से अचेत। भोर=सवेरा, दिन।
१५. कोइक=कोई बिरला ही।
१६. ख्वार=नष्ट।

सीधी पलक न देखते, छूते नाहीं छांहिं।
गुरु सुकदेव कृपा करी, चरनोदक ले जाहिं ॥२॥

दूसर के बालक हुते, भक्ति बिना कंगाल।
गुरु सुकदेव कृपा करी, हरिधन किये निहाल ॥३॥

बलिहारी गुरु आपने, तन मन सदके जावँ।
जीव ब्रह्म छिन में कियो, पाई भूली ठावँ ॥४॥

जाति बरन कुल मन गया, गया देह-अभिमान।
अपने मुखसूँ क्या कहूँ, जग ही करै बखान ॥५॥

सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट।
मोरे गोला प्रेम का, ढहै भ्रम्म का कोट ॥६॥

सतगुरु शब्दी तेग है, लागत दो करि देहि।
पीठ फेरि काथर भजे, सूरा सनमुख लेहि ॥७॥

सतगुरु शब्दी तीर है, तन मन कीयो छेद।
बेदरदी समझै नहीं, बिरही पावै भेद ॥८॥

सतगुरु शब्दी लागिया, नावक का सा तीर।
कसकत है निकसत नहीं, होत प्रेम की पीर ॥९॥

सतगुरु शब्दी बान है, अंग संग डारे तोड़।
प्रेम-खेत घायल गिरै, टाँका लगै न जोड़ ॥१०॥

ऐसी मारी खेंचकर, लगी वार गई पार।
जिनका आपा ना रहा, भये रूप ततसार ॥११॥

गुरु-महिमा

२. पलक=नज़र से। चरनोदक ले जाहि=अब लोग मेरे पाँवों का धोवन ले-ले जाते हैं।

३. हरिधन किये निहाल=हरिनाम का धन देकर भरपूर कर दिया।

४. सदके=बलिहारी। ठाँव=जीव का निजस्थान, ब्रह्म-पद।

६. भ्रम्म=भ्रम, अविद्या।

७. दो करि देहि=दो टुकड़े कर देती है। भजै=भाग जाता है। सूरा सनमुख लेहि=वार को सामने लेता है।

८. बेदरदी=दरद के भेद को न जाननेवाला; अनाधिकारी। भेद=मर्म, रहस्य।

११. आपा=अहंता, खुदी। ततसार=तदाकार, ब्रह्मरूप।

बचन लगा गुरुदेव का, छुटे राज के ताज।
हीरा, मोती, नारि, सुत, सजन, गेह, गज, बाज ॥१२॥

बचन लगा गुरु ज्ञान का, रूखे लागे भोग।
इन्द्रकि पदवी लौं उन्हें, चरनदास सब रोग ॥१३॥

उपदेश गुरु-भक्ति का

यह आपा तुम कूँ दिया, जित चाहौ तित राखि।
चरनदास द्वारे परो, भावै झिड़कौ लाखि ॥१॥

काचे भाँड़े सूँ रहै, ज्यों कुम्हार का नेह।
भीतर सूँ रच्छा करै, बाहर चोटै देह ॥२॥

अष्टपदी

गुरु बिन और न जान, मान मेरो कहो।
चरनदास उपदेस बिचारत ही रहो ॥
बेदरूप गुरु होहिं कि कथा सुनावहीं।
पंडित को धरि रूप के अर्थ बतावहीं ॥
कल्पबृच्छ गुरुदेव मनोरथ सब सरैं।
कामधेनु गुरुदेव छुधा तृस्ना हरैं ॥
गुरु ही सेस महेस तोहि चेतन करैं।
गुरु ब्रह्मा, गुरु बिस्नु होय खाली भरैं ॥
गंगा सम गुरु होय पाप सब धोवहीं।
सूरज सम गुरु होय तिमिर हरि लेवहीं ॥
गुरु ही को करि ध्यान नाम गुरु को जपौ।
आपा दीजै भेंट पुजन गुरु ही थपौ ॥

---

१२. सजन=संबंधी। बाज=वाजि, घोड़ा।

उपदेश गुरु-भक्ति का

१. भावै झिड़कौ लाखि=चाहे लाख बार दुतकारो।

२. काचे भाँड़े सूँ=कच्चे बरतन से। भीतर.........देह=बरतन के अन्दर हाथ देकर ऊपर से उसे पक्का करने के लिए ठोकता है।

समरथ श्री सुकदेव कहा महिमा करौं।
अस्तुति कही न जाय सीस चरनन धरौं ॥३॥

कनफूंका गुरु

दोहा

कनफूँका गुरु जगत का, राम-मिलावन और।
सो सतगुरु को जानिये, मुक्ति दिखावन ठौर ॥१॥

गुरु मिलते ऐसे कहैं, कछू लाय मोहिं देहु।
सतगुरु मिल ऐसे कहैं, नाम धनी का लेहु ॥२॥

सतगुरु

सतगुरु डंका देत हैं, भक्ति धनी की लेहु।
पहिले हमकूँ भेंट ही, सीस आपनो देहु ॥१॥

भक्त-महिमा

प्रभु अपने मुख सू कहेव, साधू मेरी देह।
उनके चरनन की मुझे, प्यारी लागै खेह ॥१॥

प्रेमी को रिनिया रहूँ, यही हमारो सूल।
चारि मुक्ति दइ ब्याज में, दै न सकूँ अब मूल ॥२॥

---

३. सरैं=पूरा करते हैं। तृस्ना=यहाँ तृषा अर्थात् प्यास से तात्पर्य है। आपा दीजै भेंट=चरणों पर अपने आपको चढ़ादो।

कनफूँका गुरु

१. कनफूँका=जो कान में फूँक मारकर व मंत्र सुनाकर चेला बना लेता है।

सतगुरु

१. डंका देत है=घोषणा करते हैं। धनी=मालिक, परमात्मा। सीस=अहंकार से तात्पर्य है।

भक्त-महिमा

१. खेह=धूल।

२. सूल=उसलू; प्रतिज्ञा।

भक्त हमारो पग धरै, तहाँ धरू मैं हाथ।
लारे लागो ही फिरूँ, कबहुं न छोडूं साथ ॥३॥

प्रिथवी पावन होत है, सब ही तीरथ आदि।
चरनदास हरि यौं कहैं, चरन धरैं जहँ साध ॥४॥

विरह और प्रेम

हिरदै माहीं प्रेम जो, नैनों झलकै आय।
सोइ छका हरि-रस-पगा, वा पग परसौ धाय ॥१॥

पीव बिना तो जीवना, जग में भारी जान।
पिया मिलै तौ जीवना, नहीं तो छूटै प्रान ॥२॥

वह बिरहिन बौरी भई, जानत ना कोई भेद।
अगिन बरै हियरा जरै, भये कलेजे छेद ॥३॥

मन और इन्द्रियां

बहु बैरी घट में बसैं, तू नहिं जीतत कोय।
निस-दिन घेरे ही रहैं, छुटकारा नहिं होय ॥१॥

या मन के जाने बिना, होय न कबहूँ साध।
जक्त-बासना ना छुटै, लहै न भेद अगाध ॥२॥

सरकि जाय बिष ओरहीं, बहुरि न आवै हाथ।
भजन माहिं ठहरै नहीं, जो गहि राखूँ नाथ ॥३॥

इन्द्री पलटै मन बिषै, मन पलटै बुधि माहिं।
बुधि पलटै हरि-ध्यान में, फेरि होय लय जाहिं ॥४॥

---

३. लारे=पीछे, साथ।

विरह और प्रेम

१. छका=मस्त। पगा=लीन, रँगा हुआ।

३. भेद=मर्म।

मन और इंद्रियाँ

२. अगाध भेद=आत्मज्ञान का गहरा रहस्य।

४. लै होय जाहिं=तद्रूप हो जाते हैं।

तन मन जारै काम हीं, चित कर डावाँडोल।
धरम सरम सब खोयके, रहै आप हिये खोल ॥५॥

मोह बड़ा दुखरूप है, ताकूँ मारि निकास।
प्रीत जगत की छोड़दे, जब होवै निर्बास ॥६॥

जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों अंबुज सर माहिं।
रहै नीर के आसरे, पै जल छूवत नाहिं ॥७॥

जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों जिह्वा मुख माहिं।
घीव घना भच्छन करै, तो भी चिकनी नाहिं ॥८॥

जा घट चिन्ता-नागिनी, ता मुख जप नहिं होय।
जो टुक आवै याद भी, उहीं जाय फिर खोय ॥९॥

आसा-नदिया में चलै, सदा मनोरथ-नीर।
परमारथ उपजै, बहै, मन नहिं पकरै धीर ॥१०॥

अभिमानी मीजे गये, लूट लिये धन बाम।
निरअभिमानी हो चले, पहुँचे हरि के धाम ॥११॥

चरनदास यों कहत हैं, सुनियो सन्त सुजान।
मुक्तिमूल आधीनता, नरकमूल अभिमान ॥१२॥

चौपाई

रूपवन्त गरबावै। कोइ मोसम दृष्टि न आवै ॥
तरुनापा गर्बाना। वह अँधरा होवै राना ॥
कहै धन-मद में परबीना। सब मेरे ही आधीना ॥
कहै कुल-अभिमानी सूचा। मैं सब जातिन में ऊँचा ॥
वह विद्या-गर्ब जो भारी। करै बाद-विबाद अनारी ॥
अरु भूप करै अभिमाना। उन आपै हीं कूँ जाना ॥

---

६. निर्वास=वासना-रहित।

७. अंबुज=कमल। सर=तालाब।

९. टुक=ज़रा-सा।

१०. नहिं पकरै धीर=निश्चल नहीं होता है।

११. मीजे गये=धूल में मिला दिये गये। बाम=वामा, स्त्री।

१२. आधीनता=नम्रता।

उन काल नहीं पहिचाना। सो मार करै घमसाना ॥
गुरु सुकदेव चितावैं। तोहि परगट नैन दिखावैं ॥
जम बाँधि पकरि ले जावैं। वै बहुतै त्रास दिखावै ॥
तब कहाँ जाय अभिमाना। मोर नीका सुन यह ताना ॥
फिर डारै नरक मँझारी। सुन चेतौ नर अरु नारी ॥
तौ मद मत्सर तजि दीजै। साधौं के चरन गहीजै ॥
हरिभक्ति करौ चित लाई। जब सकल व्याधि छुटि जाई ॥
करि जाति बरन कुल दूरा। हो सतसंगति में पूरा।
जब मुक्तिधाम कूँ पावै। फिर गर्भ-जोनि नहिं आवै ॥
कहै गुरु सुखदेव बखानो। यह चरनदास मति आनो ॥१३॥

नवधा भक्ति

दोहा

नवों अंग के साधते, उपजै प्रेम अनूप।
रनजीता यौं जानिये, सब धर्मन का भूप ॥१॥

अष्टपदी

वह जात बरन कुल खोवै। अरु बीज बिरह का बोवै ॥
जो प्रेम तनिक चित आवै। वह औगुन सबै नसावै ॥
प्रेम-लता जब लहरै। मन बिना जोग ही ठहरै ॥
कोई चतुर खिलारी खेलै। वह प्रेम-पियाला झेलै ॥
जो धड़ पै सीस न राखै। सोइ प्रेम पियाला चाखै ॥
तन मन सूँ जो बौराई। वह रहै ध्यान लौ लाई ॥
वह पहुँचै हरि के पासा। यों कहैं चरना ही दासा ॥२॥

---

१३. तरुनापा=तरुणाई, जवानी। सूचा=शुचि, पवित्र। अनारी=अनाड़ी, मूर्ख। मत्सर=ईर्ष्या, द्वेष। गहीजै=पकड़ले। चित लाई=मन लगाकर।

नवधा भक्ति

२. बिना जोग ही ठहरै=बिना योग साधे ही निश्चल हो जाय। खिलारी=प्रेम का साधक। प्रेम-पियला झेलै=प्रेम के नशे की लहर को सहन कर सके। बौराई=मस्त हो जाय।

पतिव्रता

दोहा

पतिव्रता वहि, जानिये, आज्ञा करै न भंग॥
पिय अपने के रँग-रतै, और न सोहै ढंग॥१॥

अपने प्रिय कूँ सेइये, आनपुरुष तजि देह।
परघर नेह निवारिये, रहिये अपने गेह॥२॥

आज्ञाकारी पीव की, रहै पिया के संग।
तन मन सूँ सेवा करै, और न दूजो रंग॥३॥

रंग होय तौ पीव को, आनपुरुष बिषरूप।
छाँहँ बुरी परघरन की, अपनी भली जु धूप॥४॥

अपने घर का दुख भला, परघर का सुख छार।
ऐसे जानै कुलबधू, सो सतवंती नार॥५॥

पति की ओर निहारिये, औरन सूँ क्या काम।
सबै देवता छोड़िकै, जपिये हरि का नाम॥६॥

खसम तुम्हारे राम है, इत उत रुख मत मारि।
चरनदास यों कहत है, यही धारना धारि॥७॥

●

पतिव्रता

५. छार=धूल के समान तुच्छ। सतवंती=सती, पतिव्रता।

७. रुख मत मारि=मन मत डिगा।

सहजो बाई

चोला-परिचय

जीवन-काल—अनुमानतः सं. १७४० से सं. १८२० वि.
जन्म-स्थान—डेहरा गाँव (मेवात, राजस्थान)
जाति—दूसर बनिया
पिता—हरिप्रसाद
भेष—ब्रह्मचारिणी
गुरु—महात्मा चरणदास

सहजोबाई का जीवन-वृत्त इससे अधिक कुछ नहीं मिलता। इन्होंने अपने गुरु चरणदासजी के विषय में तो अपने दो पदों द्वारा उनका जन्म-संवत् व तिथि, जन्म-स्थान, पिता का नाम, कुल आदि सब विवरण दिया है, पर अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा। पर यह निश्चित है कि यह आजीवन कुमारी ब्रह्मचारिणी रहीं। दिल्ली में यह तथा इनकी गुरु-बहिन दयाबाई महात्मा चरणदास की सेवा में सदा निरत रहा करती थीं। यह उच्चकोटि की साधिका थीं।

बानी-परिचय

कुछ फुटकर पदों और कुण्डलियों के अतिरिक्त इनकी प्रसिद्ध रचना 'सहज प्रकाश' है, जिसे लिखकर इन्होंने संवत् १८०० में परीक्षितपुर, दिल्ली में समाप्त किया था। गुरु का गुण-गान करने बैठी थीं, कुछ दोहे-चौपाई रचे थे, पर धीरे-धीरे सहज में ही वह एक पोथी बन गई—

> ''फाग महीना अष्टमी, सुकल पाख बुधवार।
> संवत अठारह सैं हुते, सहजो किया विचार॥
> गुरु-अस्तुति के करन कूँ, बाढ्यौ अधिक हुलास।
> होते-होते हो गई पोथी 'सहज-प्रकाश'॥''

गुरु-महिमा, वैराग-उपजावन, नाम, प्रेम, साध-महिमा आदि अनेक अंगों पर दोहे व चौपाइयाँ निरूपण के रूप में इन्होंने रची हैं। गुरु-भक्ति को सबसे अधिक दृढ़ाया है।

पद भी इनके अतिमधुर और सरस हैं। निर्गुण और सगुण दोनों ही पक्षों पर इनके रचे अनेक सुन्दर पद हैं। कृष्ण-भक्ति के कुछ पद तो मीराबाई के पदों से मिलते हैं। शैली मनोहर और भाषा सरल और प्रांजल है।

आधार

१. सहजोबाई की बानी—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

●

सहजो बाई

गुरु-महिमा

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ। गुरु के सम हरि को न निहारूँ ॥
हरि ने जन्म दियो जगमाहीं। गुरु ने आवागवन छुटाहीं ॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा ॥
हरि ने कुटँब-जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता-बेरी ॥
हरि ने रोग भोग उरझायौ। गुरु जोगी कर सबै छुटायौ ॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ। गुरु ने आतमरूप लखायौ ॥
हरि ने मोसूँ आप छिपायौ। गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ ॥
फिर हरि बंध मुक्ति गति लाये। गुरु ने सब ही भर्म मिटायो ॥
चरनदास पर तन मन वारूँ। गुरु न तजू हरि कूँ तजि डारूँ ॥१॥

दोहा

सब परबत स्याही करूँ, घोलूँ समुन्दर जाय।
धरती का कागद करूँ, गुरु-अस्तुति न समाय ॥२॥

सतगुरु दाता सर्ब के, तू किर्पिन कंगाल।
गुरु-महिमां जानै नहीं, फँस्यौ मोह के जाल ॥३॥

गुरु सूँ कछु न दुराइये, गुरु सूँ झूठ न बोल।
बुरी भली खोटी खरी, गुरु आगे सब खोल ॥४॥

परमेसर सूँ गुरु बड़े, गावत बेद पुरान।
सहजो हरि के मुक्ति है, गुरु के घर भगवान ॥५॥

गुरु-महिमा

१. गेरी=डाल दिया, फँसा दिया। बेरी=बेड़ी। बंध=बंधन।
२. न समाय=पूरी नहीं लिखी जा सकती।
३. किर्पिन=कृपाण, कंजूस।
४. दुराइये=छिपाये। खरी=सच्ची बात। खोल=साफ़-साफ़ कहदे या स्वीकार करले।

ज्ञानदीप सतगुरु दियौ, राख्यौ काया-कोट।
साजन बसि, दुर्जन भजे, निकस गई सब खोट ॥६॥

सहजो गुरु दीपक दियौ, देख्यौ आतमरूप।
तिमिर गयौ चाँदन भयौ, पायौ परघट भूप ॥७॥

सहजो गुरु परसन्न है, मेट्यौ मन सन्देह।
रोम-रोम सूँ प्रेम उठि, भीज गई सब देह ॥८॥

सहजो गुरु परसन्न है, मूँद लिये दोउ नैन।
फिर मोसूँ ऐसे कही, समझ लेहि यह सैन ॥९॥

सहजो गुरु किरपा करी, कहा कहूँ मैं खोल।
रोम-रोम फुल्लित भई, मुखे न आवै बोल ॥१०॥

चिउँटी जहाँ न चढ़ि सकै, सरसों ना ठहराय।
सहजो कूँ वा देस में, सतगुरु दई बसाय ॥११॥

सहजो सिष ऐसा भला, जैसे माटी मोय।
आपा सौंपि कुम्हार कूँ, जो कछु होय सो होय ॥१२॥

सहजो गुरु ऐसा मिलै, मेटै मन सन्देह।
नीच ऊँच देखै नहीं, सब पर बरसै मेह ॥१३॥

सहजो गुरु बहुतक फिरैं, ज्ञान ध्यान सुधि नाहिं।
तार सकैं नहिं एककूँ, गहैं बहुत की बाहिं ॥१४॥

बार बार नाते मिलैं, लख चौरासी माहिं।
सहजो सतगुरु ना मिलैं, पकड़ निकासैं बाहिं ॥१५॥

सहजो गुरु रँगरेज सा, सबहीं कूँ रँग देत।
जैसा तैसा बसन है, जो कोई आवै सेत ॥१६॥

---

६. कोट=किला। भजे=भाग गये। साजन=सज्जन; सत्य, संयम, प्रेम इत्यादि सद्‌गुणों से आशय है। दुर्जन=काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि से तात्पर्य है।

७. परघट=प्रकट। भूप=परमात्मा से अभिप्राय है।

९. सैन=संकेत; ध्यान में लव लगाकर निजरूप देखने की ओर इशारा।

१२. सिष=शिष्य। कुम्हार=सद्‌गुरु से अभिप्राय है। जो कछु होय सो होय=चाहे जैसा रूप घड़ दे।

१६. सेत=सफ़ेद, शुद्ध, निर्मल।

चरनदास के चरन पर, सहजो वारै प्रान।
जगत ब्याध सूँ काढ़ि कर, राख्यो पद निरबान ॥१७॥

साध-महिमा

साध मिले गुरु पाइया, मिटि गये सब सन्देह।
सहजो कूँ समही भयो, कहा गिरवर कहा गेह ॥१॥

जब चेतै तब ही भला, मोह-नींद सूँ जाग।
साधू की संगति मिलै, सहजो ऊँचे भाग ॥२॥

साध वृच्छ, बानी कली, चर्चा फूले फूल।
सहजो संगति बाग में, नाना फल रहे झूल ॥३॥

साध-संग में चाँदना, सकल अँधेरा और।
सहजो दुर्लभ पाइये, सतसंगत में ठौर ॥४॥

जो आवै सतसंग में, जाति बरन कुल खोय।
सहजो मैल कुचैल जल, मिलै सु गंगा होय ॥५॥

साध-लक्षण

चौपाई

साध सोइ जो काया साधै। तजि आलस औ बाद बिबादै ॥
गहै धारना सब गति भारी। तजै बिकलता अस्तुति गारी ॥
छिमावन्त धीरज कूँ धारै। पाँचो बस करि मन कूँ मारै ॥
त्यागै झूँठ साँच मुख बोलै। चित इस्थिर इत उत ना डोलै ॥
तन जग में मन हरि के पासा। लोकभोग सूँ सदा उदासा ॥
जतमत नखसिख सीतलताई। तनमन बचन सकल सुखदाई ॥

---

१७. निरबान=निर्वाण, मोक्ष।

साध-महिमा

१. समही भयो=सब एकसमान ही दीखने लगा।

३. रहे झूल=लटक रहे हैं।

४. चाँदना=प्रकाश।

निर्गुन ध्यानी ब्रह्म गियानी। मुख सूँ बोलै अंमृत बानी॥
समझ एकता भाव न दूजे। जिनके चरन सहजिया पूजे॥१॥

दोहा

निर्दुदी निर्बैरता, सहजो अरु निर्बास।
संतोषी निर्मल दसा, तकै न पर की आस॥२॥

ज्ञान मध्य इस्थिर दसा, ध्यान मध्य गलतांन।
सहजो साधू राम के, तजैं बड़ाई मान॥३॥

जो सोवैं तो सुन्न में, जो जागैं हरिनाम।
जो बोलैं तौ हरि-कथा, भक्ति करैं निहकाम॥४॥

तन मन मेटैं खेद सब, तज उपाधि की चाल।
सहजो साधू राम के, तजैं कनक औ बाल॥५॥

नित ही प्रेम पगे रहैं, छके रहैं निजरूप।
समदृष्टी सहजो कहै, समझैं रंक न भूप॥६॥

साध असंगी सँग तजैं, आतम ही को संग।
बोधरूप आनंद में, पियैं सहज को रंग॥७॥

मुए दुखी जीवत दुखी, दुखिया भूख अहार।
साध सुखी सहजो कहै, पायो नित्त बिहार॥८॥

ना सुख दारा सुत महल, ना सुख भूप भये।
साध सुखी सहजो कहै, तृस्ना-रोग गये॥९॥

साध लक्षण

१. साधै=संयम से वश में रखता है। पाँचों=पाँचों ज्ञान-इंद्रियों को। उदासा=विरक्त। जत=यत, संयत, निरुद्ध।
२. निर्वास=वासनारहित। निर्दुन्दा=अभेदभाव बर्तनेवाला।
३. गलतांन=लवलीन।
४. सुन्न में=समाधि में।
५. तन मन खेद=शारीरिक तथा मानसिक क्लेश। उपाधि=विकार। बाल=बाला, स्त्री।
७. असंगी=अनासक्त। संग=आसक्ति। बोध=ज्ञानरूप। सहज को रंग=सहज अवस्था का आनन्दरस।
८. नित्त विहार=सहज समाधि का आनन्द।
९. दारा=स्त्री। गये=नष्ट हो जाने से।

बैराग-उपजावन का अंग

जैसे सँड़सी लोह की, छिन पानी छिन आग।
ऐसे दुख सुख जगत के, सहजो तू मत पाग ॥१॥

जबलग चावल धान में, तबलग उपजै आय।
जग-छिलके कूँ तजि निकस, मुक्तिरूप ह्वै जाय ॥२॥

सहजो स्वारथ सब लगे, दारा सुत औ बीर।
जीवत जोतैं बैल ज्यों, मुए चढ़ावैं सीर ॥३॥

दरद बटाय सकैं नहीं, मुए न चालैं साथ।
सहजो क्योंकर आपने, सब नाते बरबाद ॥४॥

सहजो जीवत सब सगे, मुए निकट नहिं जायँ।
रोवैं स्वारथ आपने, सुपने देख डरायँ ॥५॥

स्वासा दीपक के बुझे, होत अँधेरी देह।
सहजो सूनी प्रान बिनु, तब कैसो हरिनेह ॥६॥

सहजो नौबत स्वास की, बाजत है दिन-रैन।
मूरख सोवत है महा, चेतन कू नहिं चैन ॥७॥

निस्चै मरना सहजिया, जीवन की नहिं आस।
कै टूटी सी झोंपड़ी, कै मन्दिर में बास ॥८॥

बैठि बैठि बहुतक गये, जग-तरवर की छांहिं।
सहजो बटाऊ बाट के, मिलि-मिलि बिछुड़त जाहिं ॥९॥

झुरि-झुरिके पिंजर भये, रोय गँवाये नैन।
मरे गये सो ना मिले, सहजो सुने न बैन ॥१०॥

बैराग-उपजावन का अंग

१. मत पाग=आसक्त मत हो।

३. बीर=भाई। मुये चढ़ावैं सीर=मरने पर अपनी स्वार्थ की खातिर मन्नत चढ़ाते हैं।

७. नौबत=पहर-पहर पर बजनेवाले नगाड़े और शहनाई। मूरख=अचेत। चेतन=जो चेत या जाग गया है।

१०. झुरि-झुरिके=सूख-सूखकर। पिंजर=हड्डियों की ठठरी।

जो रोये सूँ बाहुरै, तौ रोवौ दिन-रात।
तन छीजे वह ना मिलै, सहजो कूड़ी बात ॥११॥

देह निकट तेरे पड़ी, जीव अमर है नित्त।
दुइ में मूवा कौन सा, का सूँ तेरा हित्त ॥१२॥

आगे मुए सो जा चुके, तू भी रहै न कोय।
सहजो पर कूँ क्या झुरै, आपन ही कूँ रोय ॥१३॥

वृद्धावस्था

सेत रोम सब होगये, सूख गई सब देह।
सहजो वह मुख ना रहा, उड़ने लागी खेह ॥१॥

सहजो इन्द्रीं सब थकीं, तन पौरुष भयौ छीन।
आसा तृस्ना ना घटी; सहज बचन भये दीन ॥२॥

चार अवस्था खो दई, लियो न हरि का नाम।
तन छूटे जम कूटिहैं, पापी जम के ग्राम ॥३॥

आय जगत में क्या किया, तन पाला कै पेट।
सहजो दिन धंधे गया, रैन गई सुख लेट ॥४॥

नाम का अंग

पारस नाम अमोल है, धनवन्ते घर होय।
परख नहीं कंगाल कूँ, सहजो डारै खोय ॥१॥

सहजो सुमिरन कीजिये, हिरदे माहिं दुराय।
होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोइ पाय ॥२॥

---

११. बाहुरै=वापस आ जाय। कूड़ी=बेकार।

१२. हित्त=प्रेम।

१३. झुरै=शोक करता है।

वृद्धावस्था

२. पौरुष=पराक्रम, तेज।

३. कूटिहैं=पीटेंगें।

राम-नाम यों लीजिये, जानै सुमिरनहार।
सहजो कै कर्तार ही, जानै ना सन्सार ॥३॥

जागत में सुमिरन करै, सोवत में लौ लाय।
सहजो इकरस ही रहै, तार टूटि नहिं जाय ॥४॥

कामी मति भिष्टल सदा, चलै चाल बिपरीत।
सील नहीं सहजो कहै, नैनन माहिं अनीति ॥५॥

सदा रहै चित भंग ही, हिरदे थिरता नाहिं।
रामनाम के फल जिते, काम-लहर बहि जाहिं ॥६॥

सहजो क्रोधी अति बुरो, उलटी समझै बात।
सबही सू ऐठों रहै, करै बचन की घात ॥७॥

मन मैला तन छीन है, हरि सूँ लगै न नेह।
दुखी रहै सहजो कहै, मोह बसै जा देह ॥८॥

मोह-मिरग काया बसै, कैसे उबरै खेत।
जो बोवै सोई चरै, लगै न हरि सू हेत ॥९॥

द्रव्य हेत हरि कूँ भजे, धनही की परतीत।
स्वारथ ले सब सूँ मिलै, अन्तर की नहिं प्रीत ॥१०॥

प्रभुताई कूँ चहत है, प्रभु को चहै न कोइ।
अभिमानी घट नीच है, सहजो ऊँच न होय ॥११॥

नन्हा महाउत्तम का अंग

सीस कान मुख नासिका, ऊँचे-ऊँचे ठाँव।
सहजो नीचे कारने सब कोउ पूजै पाँव ॥१॥

नाम का अंग

४. तार=लय।

५. भिष्टल=भ्रष्ट। अनीति=बुरी वासना।

६. भंग=अस्थिर, डाँवाडोल। थिरता=स्थिरता, शान्ति।

९. मिरग=मृग। उबरै=बचे।

नन्हा महाउत्तम का अंग

१. ठाँव=स्थान।

नन्ही चींटी भवन में, जहाँ-तहाँ रस लेइ।
सहजो कुंजर अति बड़ो, सिर पै डारै खेह ॥२॥

बड़ा भये आदर नहीं, सहजो आँखिन देख।
कला सभी घट जायगी, कछू न रहसी रेख ॥३॥

बड़ा न जाने पाइहै, साहेब के दरबार।
द्वारे ही सूँ लागिहै, सहजो मोटी मार ॥४॥

भली गरीबी नवनता, सकै नहीं कोइ मार।
सहजो रुई कपास को, काटै ना तरवार ॥५॥

साहन कूँ तो भय घना, सहजो निर्भय रंक।
कुंजर के पग बेड़ियां, चींटी फिरै निसंक ॥६॥

प्रेम का अंग

प्रेम-दिवाने जो भये, मन भयो चकनाचूर।
छके रहैं घूमत रहैं, सहजो देख हजूर ॥१॥

प्रेम-दिवाने जो भये, पलटि गयो सब रूप।
सहजो दृष्टि न आवई, कहा रंक कहा भूप ॥२॥

प्रेम-दिवाने जो भये, जाति बरन गइ छूट।
सहजो जग बौरा कहै, लोग गये सब फूट ॥३॥

प्रेम-दिवाने जो भये, सहजो डिगमिग देह।
पाँव पड़ैं कितकै किती, हरि सम्हाल तब लेह ॥४॥

कबहू हकधक हो रहै, उठै प्रेम हित गाय।
सहजो आँख मुँदी रहैं, कबहूँ सुधि हो जाय ॥५॥

---

२. कुंजर=हाथी। खेह=मिट्टी।

३. कला.......रेख=पूर्णमासी के चन्द्र की कलाएँ एक-एककर सभी क्षीण हो जायेंगी। अमावस की रात को चिह्न भी नहीं रहेगा।

प्रेम का अंग

१. हजूर=मालिक, परमात्मा।

३. गये सब फूट=छोड़-छोड़कर अलग हो गये।

४. कितकै किती=कहीं के कहीं।

५. हकधक=हक्का-बक्का, चकित।

मन में तौ आनंद रहै, तन बौरा सब अंग।
ना काहू के संग है, सहजो ना कोइ संग ॥६॥

सत्त बैराग जगत-मिथ्या का अंग

कोटि बरस इक छिन लगै, ज्ञानदृष्टि जो होय।
बिसरि जगत औरै वनै, सहजो सुपने सोय ॥१॥

सहजो सुपने एक पल, बीतैं बरस पचास।
आँख खुलै जब झूठ है, ऐसे ही घट-बास ॥२॥

जगत तरैयाँ भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।
जैसे मोती ओस की, पानी अँजुली माहिं ॥३॥

धूवाँ को सो गढ़ बन्यो, मन में राज संजोय।
झाईं माई सहजिया, कबहूँ साँच न होय ॥४॥

ऐसें ही जग झूठ है, आतम कूँ नित जान।
सहजो काल न खा सकै, ऐसो रूप पिछान ॥५॥

निर्गुन सर्गुन संशय निवारण भक्ति का अंग

निराकार आकार सब, निर्गुन अरु गुनवन्त।
है नाहीं सूँ रहित है, सहजो यों भगवन्त ॥१॥

नाम नहीं औ नाम सब, रूप नहीं सब रूप।
सहजो सब कछु ब्रह्म है, हरि परगट हरि गूप ॥२॥

निर्गुन सू सर्गुन भये, भक्त-उधारनहार।
सहजो की दंडौत है, ताकू बारम्बार ॥३॥

सत्त वैराग जगत-मिथ्या का अंग

२. घटबास=देह में जीव का रहना।

३. मोती=बूँद से तात्पर्य है।

४. सँजोय=कल्पना से रचना करके। झाईं माईं=परछाईं में; भ्रांति में।

५. नित=नित्य, सत्य।

निर्गुन सर्गुन संशय-निवारण भक्ति का अंग

१. आकार=साकार। गुनबंत=सगुण।

२. गूप=गुप्त।

धन्य जसोदा, नन्द धन, धन ब्रजमंडल-देस।
आदि निरंजन सहजिया, भयो ग्वाल के भेष ॥४॥

चौपाई

नेत नेत कहि बेद पुकारै। सो अधरन पर मुरली धारै॥
जाकूँ ब्रह्मादिक मुनि ध्यावैं। ताहि पूत कहि नन्द बुलावैं॥
सिव सनकादिक अन्त न पावै। सो सखियन सँग रासरचावै॥
संजम साधन ध्यान न आवै। सो ग्वालन सँग खेल मचावै॥
अनन्त लोक मेटै उपजावै। सो मोहन ब्रजराज कहावै॥
निर्विकार निर्भय निर्वाना। कारन भक्त धरे तन नाना॥
निर्गुन सर्गुन भेद न दोई। आदि अंत मधि एकहि होई॥
गूँगे को सुपनो यह बाता। सहजो कहै कौन के साथा॥५॥

दोहा

निर्गुन सर्गुन एक प्रभु, देख्यौ समझ विचार।
सतगुरु ने आँखी दई, निस्चै कियौ निहार॥६॥

सहजो हरि बहु रंग हैं, वही प्रगट वहि गूप।
जल पाले में भेद ना, ज्यों सूरज अरु धूप॥७॥

चरनदास गुरु की दया, गयो सकल संदेह।
छूटे वाद-विवाद सब, भई सहज गति तेह॥८॥

मिश्रित पद

राग सोरठ

हमारे गुरुबचनन की टेक।
आन धरम कूँ नाहिं जानूँ, जपू हरि हरि एक॥
गुरु बिना नहिं पार उतरै, करौ नाना भेख।
रमौ तीरथ बर्त राखौ, होइ पंडित सेख॥

---

५. नेत नेत=नेति नेति; ऐसा नहीं, ऐसा नहीं (जैसा कि वाणी से ब्रह्म का निरूपण किया जाता है।) निर्वाना=मुक्त।

७. पाले में=बरफ में।

गुरु बिना नहिं ज्ञान-दीपक, जाय ना अँधियार।
काम क्रोध मद लोभ माहीं, उरझिया संसार॥
चरनदास गुरु दया करिकै, दिये मन्तर कान।
सहजो घट परगास हूवा, गयौ सब अज्ञान॥१॥

राग बिलावल

हरि बिनु तेरौ ना हितू, कोइ या जग माहीं।
अन्त समय तू देखिले, कोइ गहै न बाँहीं॥
जम सूँ कहा छुटा सकै, कोइ संग न होई।
नारी हू फटि रहि गई, स्वारथ कूँ रोई॥
पुत्र कलित्तर कौन के, भाई और बंधा।
सबहीं ठोक जलाइहैं, समझै नहिं अन्धा॥
महल दरब ह्याँही रहै, पचि पचि करि जोड़ा।
करहा गज ठाढ़े रहैं, चाकर और घोड़ा॥
परकाजे बहु दुख सहै, हरि-सुमिरन खोया।
सहजो बाई जम घिरैं, सिर धुनि-धुनि रोया॥२॥

राग असावरी

बाबा, काया-नगर बसावौ।
ज्ञानदृष्टि सूँ घट में देखौ, सुरति निरति लौ लावौ॥
पाँच मारि मन बसि कर अपने, तीनों ताप नसावौ।
सत सन्तोष गहौ दृढ़सेती, दुर्जन मारि भजावौ॥
सील छिमा धीरज कूँ धारौ, अनहद बंब बजावौ।
पाप बानिया रहन न दीजै, धरम-बजार लगावौ॥
सुबस बास होवै जब नगरी, बैरी रहै न कोई।
चरनदास गुरु अमल बतायौ, सहजो सँभलौ सोई॥३॥

मिश्रित पद

१. टेक=सहारा। सेख=शेख, मुसलमान उपदेशक। परगास=प्रकाश।

२. बाँहीं=हाथ। कलित्तर=कलत्र, स्त्री। दरब=दृव्य, धन-संपत्ति। करहा=ऊँट।

३. निरति=अत्यन्त प्रीति, लीन होने का भाव। दृढ़ सेती=मज़बूती से। बम्ब=दुंदुभी, डंका।

राग होरी

साधो, भवसागर के माहिं, काल होरी खेलाई॥
भाँति भाँति के रंग लिये हैं, करत जीवन की घात।
बूढ़ा बाला कछू न देखै, देखै ना दिन-रात॥
निहचै मौत लिये सँग रानी,नाना रंग सम्हार।
बड़े-बड़े अभिमानी नामी, सोभी लीन्हें मार॥
सुरज चंद वा भय तें काँपैं, स्वर्ग माहिं सब देव।
तनधारी सबही थर्रावैं, ज्ञानी जानत भेव॥
आपनकूँ देही नहिं जानै, जानत आतम साँच।
चरनदास कह सहजो बाई, ताहि न आवै आँच॥४॥

राग बसंत

सो बसंत नहिं बारबार। तैं पाई मानुष देह सार॥
यह औसर बिरथा न खोव। भक्तिबीज हिये-धरती बोव॥
सतसंगत को सींच नीर। सतगुरुजी सों करौ सीर॥
नीको बार बिचार देव। परन राख याकूँ जु सेव॥
रखवारी कर हेत-खेत। जब तेरी हौवै जैत जैत॥
खोट-कपट पंछी उड़ाव। मोह-प्यास सबही जलाव॥
सँभलैं बाड़ी नऊ अंग। प्रेमफूल फूलै अंग अंग॥
पुहुप गूँध माला बनाव। आदिपुरुषकूँ जो चढ़ाव॥
तौ सहजो बाई चरनदास। तेरे मन की पुरवै सकल आस॥५॥

राग होरी

सुमिर सुमिर नर उतरो पार। भौसागर की तीछन धार॥
धर्म-जिहाज माहिं चढि लीजै, सँभल सँभल तामें पग दीजै।
स्त्रम करि मन को संगी कीजै, हरिमारग को लागौ यार॥
बादवान पुनि ताहि चलावै, पाप भरे तो हलन न पावै।
काम क्रोध लूटन को आवै, सावधान ह्वै करौ सँभार॥
मान-पहाड़ी तहाँ अड़त है, आसा-तृस्ना-भँवर पड़त है।
पाँच मच्छ जहँ चोट करत हैं, ज्ञान-आँखि-बल चलौ निहार॥

---

४. मेव=भेद, मर्म।

५. सार=उत्तम। सीर=नमी, तरी। परन=प्रण, टेक। जैत जैत=जय-जय। नऊ अंग=नवधा भक्ति से; सब प्रकार से। पुरवैं=सफल करें।

ध्यान धनी का हिरदे धारे, गुरु किरपा सूँ लगै किनारे।
जब तेरी बोहित उतरै पारे, जन्म-मरन दुख-बिपता टार॥
चौथे पद में आनँद पावै, या जग में तू बहुरि न आवै।
चरनदास गुरुदेव चितावैं, सहजोबाई यही विचार॥६॥

राग भैरौं

हम बालक तुम माय हमारी। पल-पल माहिं करो रखवारी॥
निसदिन गोदी ही में राखो। इत वित बचन चितावन भाखो।
बिषै ओर जान नहिं देवो। ढुर ढुर जाउँ तो गहि गहि लेवो॥
मैं अनजान कछू नहिं जानूँ। बुरी भली को नहिं पहिचानूँ।
जैसी तैसी तुमही चीन्हेव। गुर ह्वै ध्यान-खेलौना दीन्हेव॥
तुम्हरी रच्छा ही से जीऊँ नाम तुम्हारा इंमृत पीऊँ।
दिष्टि तिहारी ऊपर मेरे। सदा रहूँ मैं सरनै तेरे॥
मारौ झिड़कौ तौ नहिं जाऊँ। सरक सरक तुमहीं पै आऊ।
चरनदास है सहजो दासी। हो रच्छक पूरन अबिनासी॥७॥

राग कड़खा

करो मोहिं दास जो आपनौ जानिकै, राखियो दृष्टि तुम सदा नीकी।
और कोइ आसरो धरूँ ना जगत में, मानियो साँच मैं कहूँ ठीकी॥
तुही मात औ पिता बंधू तुही, तुही कुल नात है गोत मेरा।
तुही धन धाम औ जीव इस देह का, तो बिना और दूजा न हेरा॥
जाप तेरा करूँ ध्यान हिरदे धरू, समुझि कै ज्ञान तोकू पिछानूँ।
सरन तेरी लई टेक ऐसी गही, तुम बिन आनकूँ नाहिं जानू॥
गही जब बाँह बिख्यात जग में भई, सकल लज्जा तुम्हैं है गोसाई।
कलू के काल में महा भयमान हूँ, चरन हूँ कँवल की राखि छाईं॥
कहत सहजो दोऊ हाथ कूँ जोरिकै, सीस नीचा किये दीन धारे।
चरनदास गुरु अरज सुनि लीजिये, तुही है इष्ट आसा हमारे॥८॥

●

---

६. लागौ=पकड़लो। पाँच मच्छ=काम, क्रोध, मोह, लोभ और अहंकार। बोहित=जहाज। चौथा पद=तुरीया अवस्था, समाधि की दशा।

७. इत बित बचन चितावन=इधर उधर सब ओर से बचने से, सावधान होने के लिए। ढुर ढुर=विचलित हो जाऊँ।

८. नात=जाति। हेरा=दिखाई दिया, पाया। कलू=कलि। दीन=दीनता।

दया बाई

चोला-परिचय

जीवन-काल—अनुमानतः सं. १७५० से सं. १८३० वि.

जन्म-स्थान—डेहरा गाँव (मेवात—राजस्थान)

जाति—दूसर बनिया

गुरु—महात्मा चरणदास

भेष—ब्रह्मचारिणी

सत्संग-स्थान—दिल्ली

यह सहजो बाई की गुरुबहिन थीं। दिल्ली में अपने गुरु चरणदासजी की सेवा में यह भी रहा करती थीं। 'दया-बोध' नामक अपना ग्रन्थ इन्होंने चैत्र सुदी ७, संवत् १८१८ को समाप्त किया था। बस, इतना ही इनका जीवनवृत्त मिलता है।

बानी-परिचय

'दया-बोध' में दया बाई ने गुरु-महिमा, सुमिरन, सूरमा, प्रेम, बैराग, साध आदि अनेक अंगों पर दोहे और कुछ चौपाइयाँ लिखी हैं। शैली और भाषा लगभग सहजो बाई की जैसी है। इनका अधिक बल्कि पूरा झुकाव भक्ति की तरफ़ रहा है। निर्गुण निरंजन, या त्रिवेणी और अजपा पर इन्होंने जो दोहे लिखे हैं, उनमें इनकी वैसी तन्मयता हम बहुत कम पाते हैं, जैसी कि भक्तिविषयक रचना में देखते हैं।

'विनय-मालिका' के दोहों में 'दयादास' की छाप आई है, पर वे दयाबाई के ही रचे हुए हैं, क्योंकि शैली और भाषा में कोई अन्तर नहीं आया है। भगवान् को अनेक नामों से संबोधन इसमें किया गया है। अनेक भक्तों का भी उल्लेख उनकी कथाओं के साथ इसमें आया है। मुख्यतः यह सगुण-उपासना-परक रचना है।

आधार

१ दयाबाई की बानी—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

●

दया बाई

गुरु-महिमा का अंग

दोहा

बंदों श्री सुखदेवजी, सब बिधि करो सहाय।
हरो सकल जग-आपदा, प्रेम-सुधा-रस प्याय ॥१॥

चरनदास गुरुदेवजू, ब्रम्हरूप सुख-धाम।
ताप-हरन सब सुख-करन, दया करत परनाम ॥२॥

अंधकूप जग में पड़ी, दया करम-बस आय।
बूड़त लई निकसि करि, गुरु-गुन-ज्ञान गहाय ॥३॥

सतगुरु सम कोउ है नहीं, या जग में दातार।
देत दान उपदेस सों, करैं जीव भव-पार ॥४॥

मनसा वाचा करि दया गुरुचरनों चित लाव।
जग-समुद्र के तरन कूँ, नाहिन आन उपाव ॥५॥

सतगुरु ब्रम्हसरूप हैं, मनुषभाव मत जान।
देहभाव मानैं दया, ते हैं पसू समान ॥६॥

सुमिरन का अंग

दोहा

हरि भजते लागै नहीं, काल-ब्याल दुख-झाल।
तातें राम सँभालिये, दया छोड़ जग-जाल ॥१॥

गुरु-महिमा का अंग

३. गहाय=ग्रहण कराकर, सौंपकर।

५. वाचा=वचन से। आन=अन्य, और।

सुमिरन का अंग

१. झाल=ज्वाला। सँभालिये=स्मरण व सेवा करे।

दयादास हरिनाम लै, या जग में यह सार।
हरि भजते हरि ही भये, पायौ भेद अपार ॥२॥

जे जन हरि सुमिरन-बिमुख, तासू मुखहूँ न बोल।
रामरूप में जे पगे, तासू अंतर खोल ॥३॥

रामनाम के लेतहीं, पातक झुरैं अनेक।
रे नर हरि के नाम की, राखो मन में टेक ॥४॥

नारायण के नाम बिन, नर नर नर जा चित्त।
दीन भयो बिल्लात है, माया-बसि ना थित्त ॥५॥

दया जगत में यह नफो, हरि-सुमिरन कर लेह।
छल-रूपी छिन-भंग है, पाँचतत्त की देह ॥६॥

सूर का अंग

दोहा

गुरु-सब्दनकूँ ग्रहन करि, बिषयनकूँ दे पीठ।
गोबिंदरूपी गदा गहि, मारो करमन डीठ ॥१॥

सूरा वही सराहिये, बिन सिर लड़त कबंद।
लोक-लाज कुल-कानकूँ, तोड़ि होत निर्बंद ॥२॥

सुनत सब्द नीसानकूँ, मन में उठत उमंग।
ज्ञान-गुरज हथियार गहि, करत जुद्ध अरि संग ॥३॥

---

२. भेद=आत्मज्ञान का रहस्य।

३. अन्तर खोल=हृदय की गुप्त-से-गुप्त बात स्पष्ट बतला दे।

४. झुरै=जल जाते हैं।

५. नर नर नर जा चित्त=जिसके चित्त में मनुष्य-ही-मनुष्य संबंधी विचार घूमते रहते हैं। बिल्लात है=आशा के वश गिड़गिड़ाता है। थित्त=स्थित, स्थिर।

सूर का अंग

१. डीठ=दृष्टि; बुरी नज़र।

२. कबंद=कबंद; बिना सिर का केवल धड़। कान=कानि, मर्यादा। निर्बन्द=बन्धन-रहित, मुक्त।

३. गुरज=गदा।

सूरा सम्मुख समर में, घायल होत निसंक।
यों साधू संसार में, जग के सहै कलंक ॥४॥

कायर काँपै देख करि, साधू को संग्राम।
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पावै निज ठाम ॥५॥

प्रेम का अंग

दोहा

दया प्रेम-उनमत्त जे, तन की तनि सुधि नाहिं।
झुके रहैं हरिरस-छके, थके नेम ब्रत माहिं ॥१॥

प्रेम-मगन जे साध जन, तिन गति कही न जात।
रोय रोय गावत हँसत, दया अटपटी बात ॥२॥

हरिरस-माते जे रहैं, तिनको मतो अगाध।
त्रिभुवन की संपति दया, तृनसम जानत साध ॥३॥

प्रेम-मगन गदगद बचन, पुलकि रोम सब अंग।
पुलकि रत्यो मन रूप में दया न ह्वै चित भंग ॥४॥

कहूँ धरत पग परत कहुँ, उमगि गात सब देह।
दया मगन हरिरूप में, दिन दिन अधिक सनेह ॥५॥

हँसि गावत रोवत उठत, गिरि-गिरि परत अधीर।
पै हरिरस-चसको दया, सहै कठिन तन पीर ॥६॥

विरह ज्वाल-उपजी हिये, राम-सनेही आय।
मन-मोहन सोहन सरल, तुम देखन दा चाय ॥७॥

काग उड़ावत थके कर, नैन निहारत बाट।
प्रेमसिन्ध में पर्‍यो मन, ना निकसन को घाट ॥८॥

---

५. ठाम=स्थान; लक्ष्य।

प्रेम का अंग

१. तनि=तनिक भी। झुके=मस्त। थके नेम व्रत माहिं=नियमों और व्रतों का जिन्हें ध्यान नहीं रहता, अर्थात् त्याग चुके हैं।

४. रत्यो=अनुरक्त हो गया। रूप=आत्म-स्वरूप। चित भंग=मन का डावाँडोल होना।

६. चसको=चसका, मज़ा।

७. दा=का (पंजाबी प्रयोग) चाय=चाह, लालसा।

बौरी ह्वै चितवत फिरूँ, हरि आवैं केहि ओर।
छिन उट्ठूँ छिन गिरि परूँ, राम-दुखी मन मोर ॥६॥

रे मन, तू निकसत नहीं, है तू बड़ा कठोर।
सुन्दर स्याम सरूप बिन, क्यों जीवत निस-भोर ॥१०॥

प्रेमपुंज प्रगटे जहाँ, तहाँ प्रगट हरि होय।
दया दया करि देतहैं, श्रीहरि दर्सन सोय ॥११॥

बैराग का अंग

दोहा

दयाकुँवर या जक्त में, नहीं रह्यो थिर कोय।
जैसो बास सराय को, तैसो यह जग होय ॥१॥

जैसो मोती ओस को, तैसो यह संसार।
बिनसि जाय छिन एक में, दया प्रभू उर धार ॥२॥

तात मात तुम्हरे गये, तुम भी भये तयार।
आज काल्ह में तुम चलौ, दया होहु हुसियार ॥३॥

छाँड़ौ बिषै-बिकारकूँ, रामनाम चित लाव।
दयाकुँवर या जगत में, ऐसो काल बिताव ॥४॥

तीनलोक नौखंड के, लिये जीव सब हेर।
दयाकाल परचंड है, मारै सबकूँ घेर ॥५॥

बड़ो पेट है काल को, नेक न कहूँ अघाय।
राजा राना छत्र-पति, सबकूँ लीले जाय ॥६॥

बिनसत बादर बात बसि, नभ में नाना भाँति।
इम नर दीसत कालबस, तऊ न उपजै साँति ॥७॥

---

१०. भोर=दिन।

वैराग का अंग

१. जक्त=जगत्।
२. मोती=बूँद से आशय है।
५. लिये हेर=खोज लिये।
६. लीले जाय=निगलता जा रहा है।
७. बात=वायु। साँति=शान्ति।

साध का अंग

दोहा

साध साध सब कोउ कहै, दुरलभ साधू सेव।
जब संगति है साध की, तब पावै सब भेव ॥१॥

दया दान अरु दीनता, दीना-नाथ दयाल।
हिरदै सीतल दृष्टि सम, निरखत करैं निहाल ॥२॥

काम क्रोध मद लोभ नहिं, षट विकार करि हीन।
पंथ कुपंथ न जानहीं, ब्रह्मभाव-रस-लीन ॥३॥

राम-टेक से टरत नहिं, आन भाव नहिं होत।
ऐसे साधूजनन की दिन-दिन दूनी जोत ॥४॥

साधसंग छिन एक को, पुन्न न बरन्यो जाय।
रति उपजै हरिनाम सूँ, सबही पाप बिलाय ॥५॥

साधू बिरला जगत में, हर्ष सोक करि हीन।
कहन सुनन कूँ बहुत हैं, जन-जन आगे दीन ॥६॥

साधसंग जग में बड़ो, जो करि जानै कोय।
आधो छिन सतसंग को, कलमख डारै खोय ॥७॥

अजपा का अंग

दोहा

पद्मासन सूँ बैठिकर, अंतर दृष्टि लगाव।
दया जाप अजपा जपौ, सुरति स्वाँस में लाव ॥१॥

साध का अंग

१. भेव=भेद, ब्रह्मज्ञान का गूढ़ रहस्य।

३. षट विकार=मन के छह दोष—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। करि=से।

४. जोत=ज्योति, ज्ञान का प्रकाश।

५. रति=प्रीति।

७. कलमख=पाप।

अजपा का अंग

१. सुरति=ध्यान, लय।

दया कह्यौ गुरदेव ने, कूरम को ब्रत लेहि।
सब इन्द्रिनकूँ रोकि करि, सुरत स्वाँस में देहि ॥२॥

बिन रसना बिन माल कर, अंतर सुमिरन होय।
दया दया गुरदेव की, बिरला जानै कोय ॥३॥

हृदयकमल में सुरति धरि, अजप जपै जो कोय।
बिमल ज्ञान प्रगटै तहाँ, कलमख डारै खोय ॥४॥

चरनदास गुरुकृपा तें, मनुवाँ भयो अपंग।
सुनत नाद अनहद दया, आठो जाम अभंग ॥५॥

जहाँ काल अरु ज्वाल नहिं, सीत उस्न नहिं बीर।
दया परसि निजधामकूँ, पायो भेद गँभीर ॥६॥

पिय को रूप अनूप लखि, कोटि भान उँजियार।
दया सकल दुख मिटि गयो, प्रगट भयो सुखसार ॥७॥

अनंत भान उँजियार तहँ, प्रगटी अद्भुत जोत।
चकचौंधी सी लगति है, मनसा सीतल होत ॥८॥

बिन दामिन उजियार अति, बिनघन परत फुहार।
मगन भयो मनुवाँ तहाँ, दया निहार निहार ॥९॥

आवन जान बनै नहीं, यह सब मायारूप।
मन बानी दृग सूँ अगम, ऐसो तत्त्व अनूप ॥१०॥

अबिनासी चेतन पुरुष, जग झूठो जंजाल।
हरि-चितवन में मन मगन, सुख पायो ततकाल ॥११॥

जग परनामी है मृषा, तन-रूपी भ्रमकूप।
तू चेतन्न सरूप है, अद्भुत आनँदरूप ॥१२॥

---

२. कूरम को व्रत=कछवा का अपने सब अंगों का सिकोड़ लेना; यहाँ इन्द्रियों को विषयों की ओर से अन्तर्मुखी कर लेने से अभिप्राय है।

५. अपंग=पंगु; निश्चल। जाम=याम, पहर। अभंग=एकतार, निरन्तर।

६. उस्न=उष्ण, गरम। ज्वाल=संसार का त्रिविध ताप; इस शब्द को 'ज़बाल' का अपभ्रंश मानकर इसका 'आफ़त' या 'झंझट' अर्थ भी किया गया है। बीर=भाई या सखी।

८. मनसा=मनोवृत्ति; हृदय

१२. परनामी=परिणामी; जो स्वभावतः सदा बदलता रहता है।

भोर भये गुरु ज्ञान सूँ, मिटी नींद अज्ञान।
रैन अविद्या मिटि गई, प्रगट्यो अनुभव-भान ॥१३॥

चरनदास की कृपा सूँ, मो मन उठी उमंग।
'दयाबोध' बरनन कियो, सुख की उठत तंरग ॥१४॥

चरनदास की कृपा तें, मन में उपज्यो चेत।
'दयाबोध' बरनन कियो, परमारथ के हेत ॥१५॥

विनयमालिका

दोहा

किस बिधि रीझत हौ प्रभू, का कहि टेरूँ नाथ।
लहर मेहर जबहीं करो, तबहीं होउँ सनाथ ॥१॥

भवजल नदी भयावनी, किस बिधि उतरूँ पार।
साहिब मेरी अरज है, सुनिये बारम्बार ॥२॥

तुम ठाकुर त्रैलोक-पति, ये ठग बस करि देहु।
दयादास आधीन की, यह बिनती सुनि लेहु ॥३॥

असंख जीव तरि तरि गये, लै लै तुम्हरो नाम।
अबकी बेरी बापजी, परो मुगध से काम ॥४॥

नहिं संजम नहिं साधना नहिं तीरथब्रत दान।
मात-भरोसे रहत है, ज्यों बालक नादान ॥५॥

लाख चूक सुत से परै, सो कछु तजि नहिं देह।
पोष चुचुक ले गोद में, दिन दिन दूनो नेह ॥६॥

जो मेरे करमन लखो, तौ नहिं होत उबार।
दयादास पर दया करि, दीजै चूक बिसार ॥७॥

---

१३. भोर=सवेरा।

विनयमालिका

३. ठग=काम, क्रोध, लोभ आदि मनोविकारों से आशय है।
४. बेरी=बार। मुगध=मुग्ध, मूढ़।
६. चुचुक=चुमकारकर

चकई कल में होत है, भान-उदय आनंद।
दयादास के दृगन लें, पल न टरो ब्रजचंद ॥८॥

बड़े-बड़े पापी अधम, तरत लगी ना बार।
पूँजी लगै कछु नंद की, हे प्रभु हमरी बार ॥९॥

और नजर आवै नहीं, रंक राव का साह।
चिरहटा के पंख ज्यों, थोथो काम देखाह ॥१०॥

तुमहीं सूँ टेका लगो, जैसे चन्द्र चकोर।
अब कासूँ झंखा करौं, मोहन नंदकिसोर ॥११॥

कब को टेरत दीन भो, सुनौ न नाथ पुकार।
की सरवन ऊँचौ सुनो, की दीन्हों बिरद बिसार ॥१२॥

तातें तेरे नाम की, महिमा अपरम्पार।
जैसे किनका अनल को, सघन बनौ दे जार ॥१३॥

जोग जग्य जप तप बरत, तीरथ नेम अचार।
चार बेद षट सास्त्र प्रभु, तुम किरपा की लार ॥१४॥

''बिनै माल'' जो कह सुनैं, तन मन धन अनुराग।
चार पदारथ पावहीं, दयादास बड़भाग ॥१५॥

●

---

८. कल=चैन
९. नंद की=श्रीकृष्ण के अभिभावक नंद बाबा; क्या मुझे तारने में तुम्हारे बाप की पूँजी खर्च होती है?
१०. चिरहटा=चिड़िया का नन्हा बच्चा, जो पंख फड़फड़ाता है, पर उड़ नहीं सकता।
११. टेका=टेक। झंखा=झीखना, कुढ़ना।
१२. बिरद=बाना; बड़ा नाम।
१४. लार=साथ, पीछे।

लालनाथजी

चोला-परिचय

जीवन-काल—१८ वीं विक्रमी शताब्दी

जन्म-स्थान—लालमदेसर (बीकानेर, राजस्थान)

परिचय केवल इतना ही जन-श्रुति के आधार पर मिलता है कि लालनाथजी मुकलावा (गौना) कराके घर जा रहे थे। रास्ते में लिखमादेसर गाँव पड़ा। यहाँ पर जसनाथ संप्रदाय के महात्मा श्रीकुंभनाथजी विराजते थे। लालनाथजी उनका दर्शन करने पहुँचे। श्रीकुंभनाथजी उस समय जीवित समाधि लेने का विचार कर रहे थे। कुंभनाथजी मतीरा (तरबूज) का प्रसाद बाँटने लगे, और बोले—"और है कोई लेनेहारा?" लालनाथजी ने प्रसाद ले लिया, और उसी क्षण वैराग्य का गहरा रंग उनपर चढ़ गया। साथियों ने ताना मारते हुए कहा—'तब फिर विवाह ही क्यों किया?' जवाब था—"बेहड़ा लिखिया ना टलै दीया अंट बुलाय।" विधाता ने जो लिख दिया था, वह कैसे टल सकता है? फेरे लेना तो लिखाही था।

नव विवाहिता स्त्री भी इनकी वहीं लिखमादेसर ग्राम में एक सिद्ध-स्थान पर तपस्या करने लगी।

बानी-परिचय

जिस 'जीव-समझोतरी' ग्रन्थ से हमने लालनाथजी महाराज की साखियाँ संकलित की हैं उसके विद्वान् संपादक श्रीहनुमानप्रसाद शर्मा 'प्रभाकर' तथा सूर्यशंकर पारीक 'भारती-भूषण' ने पुस्तक की भूमिका में इनके निम्नलिखित ग्रन्थों का उल्लेख किया है:—

१ हरिरस

२ वर्ण-विदा

३ हरिलीला

४ निकलंक परवाण

५ फुटकर सबद

६ जीव-समझोतरी

'जीव-समझोतरी' लालनाथजी की श्रेष्ठ रचना है। जीवात्मा को इसमें तत्त्वबोध दिया गया है आत्मानुभूति की मर्मवेधिनी वाणी द्वारा। लालनाथजी स्वयं लिखते हैं–

'जीव-समझोतरी' ग्यान है, सबद साची सैनाणी।
ब्रह्मग्यान सो घीव, और सब नीका पाणी॥

'जसनाथ संप्रदाय' की 'संतबानी' में लालनाथजी की बानी का बड़ा आदर है।

आधार

१ जीव-समझोतरी–पारीक-सदन, रतनगढ़ (राजस्थान)

लालनाथजी

साखी

ध्यानी नहीं शिव सारसा, ग्यानी सा गोरख।
रै ममै सूँ निसतिर्‌याँ, कोड़ अठासी रिख ॥१॥
हंसा तो मोती चुगैं, बुगला गार तलाई।
हरिजन हरिसूँ यूँ मिल्या, ज्यूँ जल में रस भाई ॥२॥
जुरा मरण जग जलम पुनि, अै जुग दुःख घणाई।
चरण सरेवाँ राजरा, राख लेव शरणाई ॥३॥
क्यूँ पकड़ो हो डालियाँ, नहचै पकड़ो पेड़।
गउवाँ सेती निसतिरो, के तारैली भेड़ ॥४॥
साधाँ में अधवेसरा, ज्यूँ घासाँ में लाँप।
जल बिन जौड़े क्यू बड़ो, पगाँ बिलूमै काँप ॥५॥
हुलका झीणा पातला, जमीं सूँ चौड़ा।
जोगी ऊँचा आभ सूँ, राई सूँ ल्होड़ा ॥६॥

साखी

१. सारसा=समान, सरीखा। रै ममै=रकार और मकार, अर्थात् राम (नाम)। निसतिर्‌याँ=तर गये, मुक्त हो गये। कोड़=करोड़। रिख=ऋषि।
२. गार=कीचड़। तलाई=तालाब। मिल्या=तद्रूप हो गये। रस=जल।
३. जुरा=जरा, बुढ़ापा। जलम=जन्म। घणाई=बहुत-से, असंख्य। सरेवाँ=छूते हैं। राजरा=आपके।
४. नहचै=निश्चय से। सेती=से; सहारे से। के=क्या? तारैली=पार करेगी।
आशय यह कि अनेक देवी-देवताओं की सेवा-पूजा छोड़कर तू तो एक परमात्मा की शरण पकड़ ले—गाय का सहारा लेकर पार हो जा; यह भेड़ें तुझे क्या पार करेंगी?
५. अधवेसरा=अधूरा। लाँप=एक प्रकार का घास, जिसे जानवर नहीं चरते। जौड़े=जोहड़, तालाब। बड़ो=बिंड़ते या पैठते हो। बिलूमैं=सन जाये। काँप=कीचड़।
साधुओं में अधूरा याने खाली भेषधारी साधु ऐसा अहितकारी है, जैसे घासों में लाँप घास, जिसे पशु भी नहीं खाते। बिना पानी के तालाब में पैठने से क्या लाभ; पैर उलटे कीचड़ में सन जायेंगे। भेषधारी साधु के पास भक्तिरस तो मिलेगा नहीं; उलटे उसके कुसंग में पड़कर विषयासक्ति ही बढ़ेगी।
६. हुलका=हलका। जमीं सूँ चौड़ा=पृथिवी से भी विस्तीर्ण। आभ=आकाश। ल्होड़ा=लघु।

होफाँ ल्यो हरनाँव की, अमी अमल का दौर।
साफी कर गुरुग्यान की, पियोज आठूँ प्होर ॥७॥
करसूँ तो वाँटै नहीं, बीजाँ सेती आड।
वै नर जासीं नारगी, चौरासी की खाड ॥८॥
काया में कवलास, न्हाय नर हर की पैड़ी।
बह जमना भरपूर, नितोपती गंगा नैड़ी ॥९॥
हरख जपो हरदुवार, सुरत की सैंसरधारा।
माहे मन्न महेश, अलिल का अंत फुँवारा ॥१०॥
टोपी धर्म दया, शील का सुरँगा चोला।
जत का जोग लँगोट, भजन का भसमी गोला ॥११॥
खँमा खड़ाऊ राख, रहत का डण्ड कमण्डल।
रैणी रह सतबोल, लोपज्या ओखा मण्डल ॥१२॥
खेलौ नौखण्ड माँय, ध्यान की तापो धूणी।
सोखौ सरब सुवाद, जोग की सिला अलूणी ॥१३॥

आशय यह कि योगी की गति अपरंपार है—वह महान् से भी महान् है, और लघु से भी लघु।

७. होफाँ=गाँजे की चिलम की कस। अमी अमल=अमृत के जैसा नशा। साफ़ी=वह छोटी-सी रूमाल, जिसे चिलम पर लपेटकर कस खींचते हैं। प्होर=पहर।

८. करसूँ=अपने हाथ से। बीजाँ सेती आड=दूसरों को भी नहीं देने देते; वाधा डालते हैं। जासीं नारगी=नरक जायेंगे। खाड=गड्ढा।

९. काया=पिंड (में ही)। कवलास=कैलाश। हर की पैड़ी=हरिद्वार का परम पवित्र घाट। नितोपती=नित्यप्रति। नैड़ी=निकट। यहाँ, योग-पक्ष में, यमुना और गंगा से आशय है इड़ा और पिंगला नाड़ी से; तथा निर्विकल्प समाधि की सर्वोच्च स्थिति को माना गया है कैलाश-शिखर।

१०. हरख=ब्रह्मानन्द (में निमग्न होकर) जपो=अनहद नाम का जप करो—यही हरिद्वार-वास है। सुरत=लय। सैंसरधारा=सहस्रधारा। माहे मन्न=चित्त के निरोध में। महेश=शिव। अलिल=परमानन्द। चित्त की आत्यंतिक निरोधावस्था में शिव का साक्षात्कार हो जायगा; और परमानन्द के निर्झर के नीचे तू ब्रह्म-कल्लोल करेगा।

११. सुरंगा=लाल; भगवा; सुन्दर। जत=संयम; ब्रह्मचर्य। भसमी=भस्म। गोरखपंथी साधु सदा अपने पास शिवापिंत भस्म का एक गोला रखते हैं।

१२. खँमा=क्षमा। रहत=शील। रैणी=संयमपूर्ण रहनी। लोपज्या=उसपार चला जा। ओखा मण्डल=विकट ब्रह्माण्ड।

१३. माँय=में। सोखौ=सोखलो; वश में करलो। सरब सुबाद=सब विषय-भोगों को।

बाँटो बिसवँत भाग, देव थानै दसवँत छोड़ी।
अवस जीव जा हार, टेकसी नहचै गोड़ी ॥१४॥
पीछै सूँ जम घेरसी, टेकरै काल किरोई।
कुण आरोगै घीव, जीमसी कूण रसोई ॥१५॥
साई बड़ो सिलावटो, जिण आ काया कोरी।
खूब रखाया काँगरा, नीकी नौ मोरी ॥१६॥
'लालू' क्यूँ सूत्याँ सरै, बायर ऊबो काल।
जोखो है इण जीवनै, जँवरो घालै जाल ॥१७॥
ऊमर तो बोली गई, आगैं ओछी आव।
बेड़ी समदर बीच में, किण बिद लँगसी न्याव ॥१८॥
'लालू' ओ जी आँधलो, आगैं अलसीड़ा।
झरपट बावै सरपणी, पिंड भुगतै पीड़ा ॥१९॥
निरगुण सेती निसतिया, सुरगुण सूँ सीधा।
कूड़ा कोरा रह गया, कोइ बिरला बीधा ॥२०॥
पिरथी भूली पीवकूँ, पड़्या समदराँ खोज।
मेरै हाँसे मैं हँसूँ, दुनिया जाणै रोज ॥२१॥

---

१४. बिसवँत=बीसवाँ। देवथानै=परमेश्वर के निमित्त। दसवँत=दसवाँ (ही)। अवस....... हार=जीव को मृत्यु के आगे गिरना ही होगा। नहचै=निश्चय ही। टेकसी=टेक देने होंगे। गोड़ी=पैर, घुटने।
आयु का दसवाँ नहीं तो बीसवाँ भाग तो ईश्वर के निमित्त अर्पित करना ही चाहिए यह आशय है।

१५. टेकरै=पुकारता है। किरोई=भीषण। आरोगै=भोगे। जीमसी=जीमेगा, खायेगा।

१६. सिलावटो=पत्थर के काम का कारीगर। कोरी=रची। काँगरा=कँगूर, जाली; देह के अंग-प्रत्यंग से आशय है। नौ मोरी=नौ द्वार (शरीर के)।

१७. सूत्याँ सरै=सोते रहने अर्थात् मोह-निद्रा में अचेत पड़े रहने से तेरा काम कैसे चलेगा, स्वरूप को तू कैसे पहचान सकेगा? बायर=बाहर; द्वार पर। ऊबो=खड़ा है, तैयार है। जँवरो घालै जाल=यम (काल) ने जाल फैला दिया है।

१८. ऊमर=उम्र, आयु। बोली=बहुत। ओछी=थोड़ी। आव=आयु। समदर=समुद्र। किण बिद=किस प्रकार। लँगसी न्याव=नाव पार लगेगी।

१९. अलसीड़ा=झाड़-झंखाड़वाली जगह। सरपणी=काल से आशय है। पिंड=पिंड; देह।

२०. सीधा=सिद्ध हो गये। कूड़ा=अनित्य संसार में फँसे हुए। बीधा=आत्मतत्त्व की ओर आकृष्ट हुए।

२१. पिरथी=संसार। पीव=आत्मतत्त्व से आशय है। पड़्या समदराँ खोज=अनित्य पदार्थों में नित्य आत्मतत्त्व का खोजना व्यर्थ प्रयास है यह आशय है। हाँसै=परमानन्द में।

भली बुरी दोनूँ तजो, माया जाणो खाक।
आदर जाकूँ दीजसी, दरगा खुलिया ताक॥२२॥
अवल गरीबी अँग बसै, सीतल सदा सुभाव।
पावस बूठा परेम रा, जल सूँ सींचो जाव॥२३॥
लागू हैं बोला जणा, घर घर माहीं दोखी।
गुज कुणा सूँ कीजिए, कुण है थारो सोखी॥२४॥
जोबन हा जद जतन हा, काया पड़ी बुढ़ाँण।
सूकी लकड़ी ना लुलै, किस बिध निकसै काण॥२५॥
लाय लगी घर आपणै, घट भीतर होली।
शील समँद में न्हाइये, जाँ हंसा टोली॥२६॥
स्वामी शिव साधक गुरु, अब इक बात कहूँ।
कूँकर हो हम आवणू, बिच में लागी दूँ॥२७॥
करमाँ सूँ काला भया, दीसो दूँ दाध्या।
इक सुमरण सामूँ करो, जद पड़सी लाधा॥२८॥
अलख पुरी अलगी रही, ओखी घाटी बीच।
आगैं कूँकर जाइये, पग पग माँगैं रीच॥२६॥
प्रेम कटारी तन बहै, ग्यान सेल का घाव।
सनमुख जूझैं सूरवाँ, से लोपैं दरियाव॥३०॥

●

रोज=रोना।

२२. दरगा=दरगाह; परमात्मा का पद। ताक=दरवाज़ा।

२३. अबल=अव्वल। परेम रा=प्रेम का। बूठा=बरसा। जाव='जाव समझोतरी' के टीकाकार ने 'जाव' का अर्थ लिखा है—वह खेत जिसमें कुएँ की सिंचाई से गेहूँ, जौ और चना पैदा होते हैं।

२४. लागू=लाग-डाँट रखनेवाले। बोला=बहुत सारे। गुज=गुप्त बात। सोखी=हितैषी; मित्र।

२५. हा=था। जतन=पुरुषार्थ। लुलै=लचकती या झुकती है। काण=टेढ़ापन; दोष।

२६. लाय=आग। जाँ=जहाँ। हंस=मुक्तपुरुष; संतजन।

२७. कूँकर=किस प्रकार, किस उपाय से। दूँ=दावानल।

२८. दीसो=दीखता है। दूँ दाध्या=दावानल से जला हुआ। जद=जब। लाधा=लाभ।

२६. अलगी=बहुत दूर; दृश्यमान जगत् से परे। ओखी=कठिन, भयंकर। कूँकर=किस प्रकार। रीच='जीव-समझोतरी' के टीकाकार ने इस शब्द का अर्थ 'खाली चिट्ठी' लिखा है।

३०. बहै=वार को लेता है। सेल=भाला। सूरवाँ=शूरवीर। से=वही। लोपैं दरियाव=संसार-सागर को पार कर सकते हैं।

पलटू साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—अज्ञात
जन्म-स्थान—नगपुर जलालपुर (ज़िला फैज़ाबाद)
जाति—काँदू बनिया
गुरु—गोविंद साहब
भेष—गृहस्थ; पीछे विरक्त
सत्संग-स्थान—अयोध्या
मृत्यु-संवत्—अज्ञात
काल—विक्रम की १९वीं शती के पूर्वार्द्ध में विद्यमान।

बस, पलटू साहब का इतना ही, और यह भी बहुत-कुछ आनुमानिक इतिवृत्त मिलता है। जन्म-स्थान का परिचय भी इनके भाई पलटूपरसाद ने अपनी 'भजनावली' में दिया है, और वह इस प्रकार—

नंगा जलालपुर जन्म भयो है, बसे अवध के खोर।
कहैं पलटूपरसाद हो, भयो जगत में सोर॥
चार बरन को मेटिके भक्ति चलाई मूल।
गुरु गोविंद के बाग में पलटू फूलेउ फूल॥
सहर जलालपुर मूँड़ मुँड़ाया, अवध तुड़ी करधनियाँ।
सहज करै व्योपार घटहि में पलटू निर्गुन बनियाँ॥

नगपुर जलालपुर का ही उल्लेख अपने रचे दोहे में पलटूपरसाद ने नंगा जलालपुर के नाम से किया है। जन्म पलटू साहब का नगपुर जलालपुर में हुआ था, पर बाद में रहने लगे थे अयोध्या में। मूँड़ अपने गाँव में ही मुँड़ा लिया था, पर करधनी या जनेऊ अयोध्या में जाकर तोड़ा था। गुरु इनके गोविंद साहब थे, जो प्रसिद्ध संत भीखा साहब के शिष्य थे। गोविन्द साहब पहले पलटूदासजी के पुरोहित थे।

अयोध्या में पलटू साहब ने सत्संग स्थापित किया, और वहीं अपना चोला भी त्यागा। अयोध्या में इनकी दिन-दिन बढ़ती हुई कीर्ति को देखकर मन्दिरों और अखाड़ों के वैरागी

इनसे बहुत जलते थे। पर यह उनकी परवा नहीं करते थे, हमेशा अपनी मौज में मस्त रहते थे। जहाँ एक तरफ़ वैरागी और पण्डित इनसे जलते थे, तहाँ बड़े-बड़े सेठ और अमीर-उमरा इनके द्वार पर बड़ी-बड़ी भेंटे लिये खड़े रहते थे। अपनी एक कुँडलिया में पलटू साहब कहते हैं:—

"लैलै भेंट अमीर नाम का तेज विराजा।
सब कोउ रगरैं नाक आइकै परजा राजा॥
सकलदार मैं नहीं, नीच फिर जाति हमारी।
गोड़ धोय षट करम बरन पीवैं लै चारी॥
बिन लसकर बिन फौज मुलुक में फिरी दुहाई।
जन-महिमा सतनाम आपु में सरस बड़ाई॥
सत्तनाम के लिहे से पलटू भया गँभीर।
हाथ जोरि आगे मिलैं लै-लै भेंट अमीर॥"

बानी-परिचय

पलटू साहब की बानी इलाहाबाद के बेलवेडियर प्रेस से तीन भागों में प्रकाशित हुई है। पहले भाग में कुण्डलियाँ हैं, दूसरे भाग में रेखते, झूलने, अरिल, कवित्त और सवैये, और तीसरे भाग में शब्द या पद और साखियाँ।

कुण्डलियाँ पलटू साहब की बहुत प्रसिद्ध हैं और बड़े मार्के की हैं। कई कुण्डलियाँ इन्होंने कबीरदास की साखियों पर भाष्यरूप में लिखी हैं, और कुछ कुण्डलियाँ लोकोक्तियों पर रची हैं।

इसी प्रकार झूलने और अरिल भी इनके खूब मस्तीभरे और ज़ोरदार हैं।

शब्द भी इनके ऊँचे घाट के हैं। साखियाँ भी सीधे चोट करती हैं।

इनके कहने का ढंग कबीर से खूब मिलता है। यह वैसे ही निडर और फक्कड़ आलोचक थे, जैसे कि कबीर साहब।

और साधना-पक्ष में भी यह बहुत गहरे उतरे थे। ब्राह्मी स्थिति का इन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव किया था। अपने एक शब्द में अपनी गहरी एवं मधुरतम आत्मानुभूति का वर्णन यह परमार्थी बनिया, राम का मोदी, इस प्रकार कर रहा है—

"कौन करै बनियाई अब मोरे, कौन करै बनियाई।
त्रिकुटी में है भरती मेरी, सुखमन में है गादी॥
दसयें द्वारे कोठी मेरी, बैठा पुरुष अनादी॥
इंगला पिंगला पलरा दूनौं, लागि सुरति की जोती।
सत्त सबद की डाँडी पकरौं, तौलौं भरि भरि मोती॥

चाँद सुरज दोउ करैं रखवारी, लगी सत्त की ढेरी।
तुरिया चढ़िके बेचन लागा ऐसी साहिबी मेरी॥
सतगुरु साहिब किया सिपारस, मिली राम-मोदियाई।
पलटू के घर नौबति बाजै, निति उठि होति सवाई॥''

इनकी बानी का सारा रंग और ढंग देखकर जो इनको दूसरा कबीर साहब कहा जाता है उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं, क्योंकि उसमें प्रायः वैसी ही स्पष्टवादिता, वैसी ही निर्भीकता, वैसी ही सरसता और लगभग वैसी ही शैली हम पाते हैं। भाषा भी अच्छी ज़ोरदार और सरल और सरस है।

आधार

१ पलटू साहब की बानी (पहला भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ पलटू साहब की बानी (दूसरा भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
३ पलटू साहब की बानी (तीसरा भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
४ उत्तरी भारत की संत-परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भण्डार, इलाहाबाद

●

पलटू साहब

कुण्डलियाँ

परस्वारथ के कारने संत लिया औतार।
संत लिया औतार, जगत को राह चलावैं।
भक्ति करैं उपदेस ज्ञान दे नाम सुनावैं॥
प्रीति बढ़ावैं जक्त में, धरनी पर डोलैं।
कितनी कहै कठोर, वचन वे अमृत बोलैं॥
उनको क्या है चाह, सहत हैं दुःख घनेरा।
जिव तारन के हेतु मुलुक फिरते बहुतेरा॥
पलटू सतगुरु पायकै, दास भया निरवार।
परस्वारथ के कारने संत लिया औतार॥१॥

नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार॥
कैसे उतरै पार पथिक बिस्वास न आवै।
लगै नहीं बैराग यार कैसेकै पावै॥
मन में धरै न ज्ञान, नहीं सतसंगति रहनी।
बात करै नहिं कान, प्रीति बिन जैसे कहनी॥
छूटि डगमगी नाहिं संत को वचन न मानै।
मूरख तजै विवेक, चतुरई अपनी आनै॥
पलटू सतगुरु सब्द का तनिक न करै बिचार।
नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार॥२॥

साहिब वही फकीर है, जो कोइ पहुँचा होय॥
जो कोइ पहुँचा होय, नूर का छत्र बिराजै।
सबर-तखत पर बैठि, तूर अठपहरा बाजै॥

कुण्डलियाँ

१. परस्वारथ=परहित। जक्त=जगत। जिव=जीव। निरवार=निश्चय करके।

२. यार=मित्र, परमात्मा। कान करै=ध्यान देकर सुने। डगमगी=अस्थिरता, दुविधा।

तम्बू है असमान, जमीं का फरस बिछाया।
छिमा किया छिड़काव, खुसी का मुस्क लगाया ॥
नाम खजाना भरा, जिकिर का नेजा चलता।
साहिब चौकीदार देखि इबलीसहुँ डरता ॥
पलटू दुनिया दीन में उनसे बड़ा न कोय।
साहिब वही फकीर है, जो कोइ पहुँचा होय ॥३॥

लहना है सतनाम का, जो चाहे सो लेय ॥
जो चाहै सो लेय जायगी लूट ओराई।
तुम का लुटिहौ यार गाँव जब दहिहै लाई ॥
ताकै कहा गँवार, मोटभर बाँध सिताबी।
लूट में देरी करै ताहि की होय खराबी ॥
बहुरि न ऐसा दाँव, नहीं फिर मानुष होना।
क्या ताकै तू ठाढ़, हाथ से जाता सोना ॥
पलटू मैं ऊरिन भया, मोर दोस जिन देय।
लहना है सतनाम का, जो चाहै सो लेय ॥४॥

दीपक बारा नाम का, महल भया उँजियार ॥
महल भया उँजियार, नाम का तेज बिराजा।
सब्द किया परकास, मानसर ऊपर छाजा ॥
दसो दिसा भई सुद्ध, बुद्ध भई निर्मल साची।
छुटी कुमति की गाँठि, सुमति परगट होय नाची ॥
होत छतीसो राग, दाग तिर्गुन का छूटा।
पूरन प्रगटे भाग, करम का कलसा फूटा ॥
पलटू अँधियारी मिटी, बाती दीन्हीं बार।
दीपक बारा नाम का, महल भया उँजियार ॥५॥

हाथ जोरि आगै मिलै, लै-लै भेट अमीर ॥
लै-लै भेट अमीर, नाम का तेज बिराजा।

---

३. नूर=ज्ञान का अखण्ड प्रकाश। सबर=संतोष। तूर=बाजे, नौबत। मुस्क=मुश्क, कस्तूरी; इत्र। जिकिर=अध्यात्म-चर्चा। नेजा=भाला। इबलीस=शैतान।

४. लहना=लाभ, धन। औराई जायगी=ख़त्म हो जायगी। मोट=गठरी। सिताबी=जल्दी।

५. बारा=जलाया। छाजा=शोभित हुआ। सुमति=शुद्ध बुद्धि। नाची=प्रफुल्लित हो गई। दाग=धब्बा, मैल। तिर्गुन=माया के तीन गुण सत्त्व, रज और तम। कलसा=घड़ा।

सब कोउ रगरै नाक, आइकै परजा राजा ॥
सकलदार मैं नहीं, नीच फिर जाति हमारी।
गोड़ धोय षटकरम बरन पीवैं ले चारी ॥
बिन लसकर बिन फौज मुलुक में फिरी दुहाई।
जन-महिमा सतनाम आपु में सरस बड़ाई ॥
सत्तनाम के लिहे से पलटू भया गँभीर।
हाथ जोरि आगे मिलैं लै-लै भेट अमीर ॥६॥

संत सासना सहत हैं, जैसे सहत कपास ॥
जैसे सहत कपास, नाय चरखी में ओटै।
रूई धर जब तुनै हाथ से दोउ निभोटै ॥
रोम रोम अलगाय पकरिकै धूनिया धूनी।
पिउनी नहँ दै कात, सूत ले जुलहा बूनी ॥
धोबी भट्टी पर धरी, कुन्दीगर मुगरी मारी।
दरजी टुक-टुक फारि जोरिकै किया तयारी ॥
परस्वारथ के कारने दुख सहै पलटूदास।
संत सासना सहत हैं, जैसे सहत कपास ॥७॥

हरि हरिजन को दुइ कहै, सो नर नरकै जाय ॥
सो नर नरकै जाय, हरिजन हरि अन्तर नाहीं।
फूलन में ज्यों बास, रहैं हरि हरिजन माहीं ॥
संतरूप अवतार, आप हरि धरिकै आवैं।
भक्ति करैं उपदेस, जगत को राह चलावैं ॥
और धरै अवतार रहै तिगुन संजुक्ता।
संतरूप जब धरै रहै तिर्गुन से मुक्ता ॥
पलटू हरि नारद सेती बहुत कहा समुझाय।
हरि हरिजन को दुइ कहै सो नर नरकै जाय ॥८॥

---

६. सकलदार=सुन्दर। गोड़.........चारी=छहो कर्म करनेवाले और चारों वर्णों के लोग पैर धो-धोकर पीते हैं। दुहाई=अमल। गँभीर=महान्।

७. सासना=कष्ट। नाय=डालकर। तुनै=रूई के रेशे अलग-अलग करता है। धूनी=धुनकी। पिउनी=पूनी। नहँदै=बढ़े हुए नाखून में छेद करके उसमें से बारीक-से-बारीक सूत निकालकर।

८. राह=सुमार्य, संतमार्ग। तिर्गुन से मुक्ता=माया के तीनों गुणों से रहित, गुणातीत। सेती=से।

क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत ॥
चाला जात बसंत, कंत ना घर में आये।
धृग जीवन है तोर, कंत बिन दिवस गँवाये ॥
गर्ब गुमानी नारि फिरै जोबन की माती।
खसम रहा है रूठि, नहीं तू पठवै पाती ॥
लगै न तेरो चित्त, कंत को नाहिं मनावै।
कापर करै सिंगार, फूल की सेज बिछावैं ॥
पलटू ऋतु भरि खेलिले, फिर पछतावै अंत।
क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत ॥९॥

चोला भया पुराना, आज फटै की काल ॥
आज फटै की काल, तेहुपै है ललचाना।
तीनों पनगे बीत, भजन का मरम न जाना ॥
नखसिख भये सपेद, तेहुपै नाहीं चेतै।
जोरि जोरि धन धरै, गला औरन का रेतै ॥
अब का करिहौ यार, कालने किया तकादा।
चलै न एकौ जोर, आय जो पहुँचा वादा ॥
पलटू तेहु पै लेत है माया मोह जँजाल।
चोला भया पुराना, आज फटै की काल ॥१०॥

भजन आतुरी कीजिये, और बात में देर ॥
और बात में देर, जगत में जीवन थोरा।
मानुष-तन धन जात, गोड़ धरि करौं निहोरा ॥
काँचे महल के बीच पवन इक पंछी रहता।
दस दरवाजा खुला उड़न को नित उठि चहता ॥
भजि लीजौ भगवान, एहि में भल है अपना।
आवागौन छुटि जाय, जनम की मिटै कलपना ॥
पलटू अटक न कीजिये, चौरासी घर फेर।
भजन आतुरी कीजिये, और बात में देर ॥११॥

---

९. माती=मतवाली। खसम=स्वामी, परमपुरुष परमात्मा से तात्पर्य है। कापर=किसे रिझाने के लिए।

१०. चोला=शरीर से तात्पर्य है। की=या। नखसिख भये सपेद=सारे शरीर के बाल सफ़ेद हो गये। रेतै=काटता है। तगादा=तक़ाज़ा, वसूली की माँग।

११. आतुरी=फौरन। गोड़ धरि करौ निहोरा=पैर पड़कर बिनती करता हूँ। दस दरवाजा=दसो इन्द्रियों के द्वार। अटक=टालटूल।

ज्यों-ज्यों सूखै ताल है, त्यों-त्यों मीन मलीन ॥
त्यों-त्यों मीन मलीन, जेठ में सूख्यो पानी।
तीनों पन गये बीति, भजन का मरम न जानी ॥
कँवल गये कुम्हिलाय, हंस ने किया पयाना।
मीन लिया कोउ मारि, ठाँव ढेला चिहराना ॥
ऐसी मानुष-देह वृथा में जात अनारी।
भूला कौल करार, आपसे काम बिगारी ॥
पलटू बरस औ मास दिन, पहर घड़ी पल छीन।
ज्यों-ज्यों सूखै ताल है, त्यों-त्यों मीन मलीन ॥१२॥

पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय ॥
आपुइ गई हिराय, कवन अब कहै सँदेसा।
जेकर पिय में ध्यान, भई वह पिय के भेसा ॥
आगि माहिं जो परै, सोउ अग्नी ह्वै जावै।
भृंगी कीट को भेंट आपुसम लेइ बनावै ॥
सरिता बहिकै गई, सिंध में रही समाई।
सिव सक्ती के मिले नहीं फिर सक्ती आई ॥
पलटू दिवाल कहकहा, मत कोउ झाँकन जाय।
पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय ॥१३॥
सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं ॥
सहज आसिकी नाहिं, खाँड खाने को नाहीं।

---

१२. ज्यों-ज्यों..........मलीन=आशय यह कि ज्यों-ज्यों शरीर जीर्ण-शीर्ण होता जाता है, त्यों त्यों मन की वृत्ति उदास होती है, जैसे तालाब का पानी सूखने पर मछली व्याकुल हो जाती है। कँवल गये कुम्हिलाय=आशय यह कि इन्द्रियाँ थकित हो गईं। हंस=जीव। ढेला चिहराना=पानी सूख जाने पर तली फटकर मिट्टी का थक्का बन गया। अनारी=अनाड़ी, मूर्ख। भूला कौल-करार=गर्भवास में हरिभजन करने का जो प्रण किया था उसे भूल गया।

१३. हिराय गई=खो गई, तदाकार हो गई। भेसा=रूप। कहकहा दिवाल=चीन देश को पन्द्रह सौ मील लम्बी पच्चीस फुट ऊँची और इतनी ही चौड़ी दीवार जिसे असल में मंगोल जातियों के हमले को रोकने के लिए बनवाया गया था, पर जिसके विषय में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि उसपर चढ़कर दूसरी ओर झाँकने से परिस्तान दीख पड़ता है और उसे देखकर इतना अधिक आनन्द है कि देखनेवाला हठात् उसपर कूद पड़ता है और वहाँ लापता हो जाता है।

झूठ आसिकी करै, मुलुक में जूती खाहीं॥
जीते-जी मरि जाय, करै ना तन की आसा।
आसिक का दिनरात रहै सूली पर बासा॥
मान बड़ाई खोय नींदभर नाहीं सोना।
तिलभर रक्त न माँस, नहीं आसिक को रोना॥
पलटू बड़े बेकूफ वे, आसिक होने जाहिं।
सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं॥१४॥

प्रेमबान जाके लगा, सो जानैगा पीर॥
सो जानैगा पीर, काह मूरख से कहिए।
तिलभर लगै न ज्ञान, ताहिसे चुप ह्वै रहिए॥
लाख कहै समुझाय, बचन मूरख नहिं मानै।
तासे कहा बसाय, ठान जो अपनी ठानै॥
जेहिके जगत पियार, ताहिसे भक्ति न आवै।
सतसंगति से बिमुख, और के सन्मुख धावै॥
जिनकर हिया कठौर है, पलटू धँसे न तीर।
प्रेमबान जाके लगा, सो जानैगा पीर॥१५॥

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं॥
खाला का घर नाहिं, सीस जब धरै उतारी।
हाथपाव कटि जाय, करै ना संत करारी॥
ज्यों-ज्यों लागै घाव, तेहुँ-तेहुँ कदम चलावै।
सूरा रन पर जाय, बहुरि ना जियता आवै॥
पलटू ऐसे घर महैं, बड़े मरद जे जाहिं।
यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं॥१६॥*

---

१४. सहज=आसान। आसिकी=प्रेम लगाना। बेकूफ़=बेवकूफ़, मूर्ख।

१५. पीर=पीड़ा, प्रेम की वेदना। लगै न=असर न करै। बसाय=वश, चारा। ठान=हठ। भक्ति न आवै=भक्ति करते नहीं बनती।

१६. खाला का घर=मौसी का घर, ऐसी जगह जहाँ बिना मेहनत के आसानी से चाहे जब चले गये। करारी=कराह, इनकार। कदम चलावै=आगे बढ़ता जाता है।

*कबीरदासजी की प्रसिद्ध साखी—"यह तौ घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं—" पर यह कुण्डलिया रची गई है।

लगन महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम॥
और बिगाड़ैं काम, साइत जनि सोधै कोई।
एक भरोसा नाहिं, कुसल कहवाँ से होई॥
जेकरे हाथै कुसल ताहिको दिया बिसारी।
आपन इक चतुराइ बीच में करै अनारी॥
तिनका टूटै नाहिं बिना सतगुर दाया।
अजहूँ चेत गँवार, जगत है झूठी काया॥
पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़े जब नाम।
लगन महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम॥१७॥

सबद छुड़ावै राज को, सबदै करै फकीर॥
सबदै करै फकीर, सबद फिर राम मिलावै।
जिनके लागा सबद, तिन्हैं कछु और न भावै॥
मरैं सबद के घाव, उन्हैं को सकै जियाई।
होइगा उनका काम, परी रोवै दुनियाई॥
घायल भा वह फिरै, सबद कै चोट है भारी।
जियतै मिरतक होय, झुकै फिर उठै सँभारी॥
पलटू जिनके सबद का लगा कलेजे तीर।
सबद छुड़ावै राज को, सबदै करै फकीर॥१८॥

सोई सती सराहिए, जरै पिया के साथ॥
जै पिया के साथ, सोइ है नारि सयानी।
रहै चरन चित लाय, एक से और न जानी॥
जगत करै उपहास, पिया का संग न छोड़ै।
प्रेम की सेज बिछाय, मेहर की चादर ओढ़ै॥
ऐसी रहनी रहै तजै जो भोग-बिलासा।
मारै भूख-पियास याद संग चलती स्वासा॥

---

१७. साइत=शुभ मुहूर्त। एक भरोसा नाहिं=एक परमात्मा पर विश्वास नहीं है। जेकर=जिसके। दाया=दया, कृपा।

१८. सबद=शब्द, संतों की अनभूत वाणी। मरे...जियाई=शब्द के घाव से मरकर फिर जी उठता है, आशय यह कि अहंता मर जाती है और विषयों का मारा हुआ शब्द चोट से जी उठता है। झुकै=मस्ती में झूमता है।

रैन-दिवस बेहोस पिया के रंग में राती।
तन की सुधि है नाहिं पिया संग बोलत जाती॥
पलटू गुरु-परसाद से किया पिया को हाथ।
सोई सती सराहिये, जरै पिया के साथ॥१९॥

तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेर॥
अपनी आप निबेर, छोड़ि गुड़ विष को खावै।
कूवाँ में तू परै, और को राह बतावै॥
औरन को उँजियार, मसालची जाइ अंधेरे।
त्यों ज्ञानी की बात मया से रहते घेरे॥
बेचत फिरै कपूर आप तो खारी खावै।
घर में लागी आग दौरिके घूर बुतावै॥
पलटू यह साँची कहै, अपने मन का फेर।
तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेर॥२०॥*

जो साहिब का लाल है, सो पावैगा लाल॥
सो पावैगा लाल जायके गोता मारै।
मरजीवा ह्वै जाय लाल को तुरत निकारै॥
निसिदिन मारै मौज, मिली अब बस्तु अपानी।
ऋद्धि सिद्धि और मुक्ति भरत हैं उन घर पानी॥
वे साहन के साह, उन्हैं है आस न दूजा।
ब्रह्मा बिस्नु महेस करैं सब उनकी पूजा॥
पलटू गुरु-भक्ती बिना भेष भया कंगाल।
जो साहिब का लाल है सो पावैगा लाल॥२१॥

खोजत हीरा को फिरै, नहीं पोत का दाम॥
नहीं पोत का दाम, जोहरि की गाँठ खुलावै।
बातन की बकवाद जौहरी को बिलमावै॥

---

१९. बेहोश=सांसारिक सुखों की ओर से अचेत। परसाद=प्रसाद, कृपा। हाथ किया=वश में कर लिया।

२०. निबेर=सुलझाना, निबटाना। मया=माया। खारी=खड़िया मिट्टी। घूर=कूड़े का ढेर। बुतावै=बुझाता है।

*कबीरदास जी की साखी—"तुझे पराई क्या परी"—पर यह कुंडलिया रची गई है।

२१. लाल=(१) प्यारा सेवक (२) ज्ञानरूपी रत्न। कंगाल=तुच्छ।

लम्बी बोलत बात, करै बातन की लदनी।
कौड़ी गाँठ में नहीं, करत है बातैं इतनी॥
लिहा जौहरी ताड़, फिरा है गाहक खाली।
थैली लई समेटि, दिहा गाहक को टाली॥
लोकलाज छूटै नहीं, पलटू चाहै नाम।
खोजत हीरा को फिरै, नहीं पोत का दाम॥२२॥

पलटू नीच से ऊँच भा नीच कहै ना कोय॥
नीच कहै ना कोय, गये जब से सरनाई।
नारा बहिकै मिल्यो गंग में गंग कहाई॥
पारस के परसंग, लोह से कनक कहावै।
आगि मँहे जो परै, जरै आगई होइ जावै॥
राम का घर है बड़ो, सकल ऐगुन छिपि जाई।
जैसे तिल को तेल फूल सँग बास बसाई॥
भजन केर परताप तें तन मन निर्मल होय।
पलटू नीच से ऊँच भा, नीच कहै ना कोय॥२३॥

मन मिहीन कर लीजिये, जब पिउ लागै हाथ॥
जब पिउ लागै हाथ नीच ह्वै सब से रहना।
पच्छापच्छी त्यागि ऊँच बानी नहिं कहना॥
मान बड़ाई खोय खाक मे जीते मिलना।
गारी कोउ दै जाय छिमाकरि चुपके रहना॥
सबकी करै तारीफ, आपको छोटा जानै।
पहिले हाथ उठाय सीस पर सब की आनै॥
पलटू सोइ सुहागनी, हीरा झलकै माथ।
मन मिहीन कर लीजिये सब पिउ लागै हाथ॥२४॥

माया की चक्की चलै, पीसि गया संसार॥
पीसि गया संसार, बचै ना लाख बचावै।

---

२२. पोत=काँच की गुरिया जो रँगबिरंगी होती है और जिसे गरीब स्त्रियाँ तागे में गूँथकर गले में पहनती हैं। बिलमावै=अटका रखता है। लदनी=लेन-देन।

२३. नारा=नाला। ऐगुन=अवगुण, दोष।

२४. मिहीन=क्षीण सूक्ष्म, अत्यन्त संयत। नीच=नम्र। पच्छापच्छी=अपना पक्ष और दूसरे का पक्ष; वादविवाद। ऊँच बानी=आवेश या क्रोधपूर्ण वाणी। सीस........आनै=सिर झुकाकर प्रणाम करे। पिउ लागै हाथ=प्रियतम वश में हो।

दोऊ पट की बीच कोऊ ना सावित जावै ॥
काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे।
तिरगुन डारै झोंक पकरिकै सवै निकारे ॥
तृस्ना बड़ी छिनारि, जाइ उन सब घर घाला।
काल बड़ा बरियार, किया उन एक निवाला ॥
पलटू हरि के भजन बिनु, कोऊ न उतरै पार।
माया की चक्की चलै, पीसि गया संसार ॥२५॥*

पानी काको देइ प्यास से मुवा मुसाफिर ॥
मुवा मुसाफिर प्यास, डोर औ लुटिया पासै।
बैठ कुवाँ की जगत, जतन बिनु कौन निकासै ॥
आगे भोजन धरा, थारि मैं खाता नाहीं।
भूख भूख करै सोर, कौन डारै मुखमाहीं ॥
दीया बाती तेल, आगि है नाहिं जरावै।
खसम सोया है पास, खसम को खोजन जावै ॥
पलटू डगरा सूध, अटकिकै परता गिर-गिर।
पानी काको देइ प्यास से मुवा मुसाफिर ॥२६॥

संत चरन को छोड़िकै पूजत भूत बैताल ॥
पूजत भूत बैताल मुए पर भूतइ होई।
जेकर जहवाँ जीव, अन्त को होवै सोई ॥
देव पितर सब झूठ, सकल यह मन की भ्रमना।
यही भरम में पड़ा, लगा है जीवन-मरना ॥
देई-देवा सेइ परमपद केहिने पावा।
भैरों दुर्गा सीव बाँधिकै नरक पठावा ॥
पलटू अंत घसीटिहै, चोटी धरि धरि काल।
संत-चरन को छोड़िकै, पूजत भूत बैताल ॥२७॥

---

२५. पीसि गया=पिस गया। साबित=पूरी। झोंक=मुट्ठी; मुट्ठीभर अनाज को चक्की में डालना। छिनारि=छिनाल, दुराचारिणी। बरियार=ज़बरदस्त। निवाला=कौर।

*कबीरदास की साखी—"चलती चक्की देखके दिया कबीरा रोइ"—पर यह कुंडलिया भाष्य के रूप में रची गई है।

२६. मुवा=मर गया। थारि=थाली। डगरा=रास्ता। सूध=सीधा।

२७. देई=देवी। सीव=शिव। बैताल=इस शब्द का अर्थ भाट या बन्दी होता है, पर यहाँ इसका प्रयोग प्रेत के अर्थ में हुआ है।

बनियाँ बानि न छोड़ै, पसँघा मारे जाय॥
पसँघा मारे जाय, पूर को मरम न जानी।
निसदिन तौलै घाटि खोय यह परी पुरानी॥
केतिक कहा पुकारि, कहा नहिं करै अनारी।
लालच से भा पतित, सहै नाना दुख भारी॥
यह मन भा निरलज्ज, लाज नहिं करै अपानी।
जिन हरि पैदा किया ताहि का मरम न जानी॥
चौरासी फिरि आयकै पलटू जूती खाय।
बनियाँ बानि न छाड़ै, पसँघा मारे जाय॥२८॥

सातपुरी हम देखिया, देखे चारो धाम॥
देखे चारो धाम, सबन माँ पाथर पानी।
करमन के बसि पड़े, मुक्ति की राह झुलानी॥
चलत चलत पग थके, छीन भइ अपनी काया।
काम क्रोध नहिं मिटे, बैठकर बहुत नहाया॥
ऊपर डाला धोय, मैल दिल बीच समाना।
पाथर में गयो भूल, संत का मरम न जाना॥
पलटू नाहक पचि मुए, सन्तन में है नाम।
सातपुरी हम देखिया, देखे चारो धाम॥२९॥

निन्दक जीवै जुगन-जुग, काम हमारा होय॥
काम हमारा होय, बिना कौड़ी को चाकर।
कमर बाँधिके फिरै, करै तिहुँ लोक उजागर॥
उसे हमारी सोच, पलकभर नाहिं बिसारी।
लगी रहै दिनरात, प्रेम से देता गारी॥
संत कहैं दृढ़ करै जगत का भरम छुड़ावै।
निन्दक गुरू हमार, नाम से वही मिलावै॥
सुनिके निन्दक मरि गया, पलटू दिया है रोय।
निन्दक जीवै जुगन-जुग, काम हमारा होय॥३०॥

---

२८. खोय=आदत।

२९. सातपुरी=सात पवित्र पुरियाँ—अयोध्या, मथुरा, मायावती (हरिद्वार), काशी, कांची, अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारावती। चारों धाम=जगन्नाथ पुरी, रामेश्वरधाम, द्वारिका और बदरीनाथ।

३०. उजागर=प्रसिद्ध। सोच=चिन्ता।

जैसे नद्दी एक है, बहुतेरे हैं घाट॥
बहुतेरे हैं घाट, भेद भक्तन में नाना।
जो जेहिं संगत परा, ताहिके हाथ बिकाना॥
चाहै जैसी करै भक्ति, सब नामहिं केरी।
जाकी जैसी बूझ, मारग सो तैसी हेरी॥
फेर खाय इक गये, एक ठौ गये सितावी।
आखिर पहुँचे राह, दिना दस भई खराबी॥
पलटू एकै टेक ना, जेतिक भेष तै बाट।
जैसे नद्दी एक है बहुतेरे हैं घाट॥३१॥

लेहु परोसिनि झोंपड़ा, नित उठ बाढ़त रार॥
नित उठि बाढ़त रार, काहिको सरबरि कीजै।
तजिये ऐसा संग, देस चलि दूसर लीजै॥
जीवन है दिन चारि, काहे को कीजै रोसा।
तजिये सब जंजाल, नाम कै करौ भरोसा॥
भीख माँगि बरु खाय, खटपटी नीक न लागै।
भरी गौन गुड़ तजै, तहाँ से साँझै भागै॥
पलटू ऐसन बूझिकै डारि दिहा सिर भार।
लेहु परोसिनि झोंपड़ा, नित उठि बाढ़त रार॥३२॥

जल पषान को छोड़िकै पूजौ आतमदेव॥
पूजौ आतमदेव, खास औ बोलै भाई।
छाती दैकै पाँव पथर की मुरत बनाई॥
ताहि धोय अन्हवाय बिंजन लै भोग लगाई।
साच्छात भगवान द्वार से भूखा जाई॥
काह लिये वैराग, झूँठ कै बाँधै बाना।
भाव-भक्ति को मरम कोइ है बिरले जाना॥
पलटू दोउ कर जोरिकै गुरु संतन को सेव।
जल पषान को छोड़िकै पूजौ आतमदेव॥३३॥

---

३१. ताहि के हाथ विकाना=उसी संत-मत का हो गया। बूझ=बुद्धि। हेरी=खोज लिया। फेरि=चक्कर। सिताबी=जल्दी। तै=उतनी।

३२. रार=झगड़ा। सरवरि=बराबरी, सामना। रोसा=रोष, क्रोध। नाम कै=रामनाम का। बरु=चाहे। गौन=खुर्जी, बोरा। साँझइ भागै=शाम को ही चलदे, एक रात भी न ठहरे।

३३. पषान=पाषाण, पत्थर की मूर्तियाँ। जल=गंगा, गोदावरी आदि नदियाँ। बाना=भेष।

झूलना

पीवता नाम सो जुगन जुग जीवता,
नाहिं वो मरै जो नाम पीवै।
काल ब्यापै नहीं अमर वह होयगा,
आदि और अन्त वह सदा जीवै॥
सन्तजन अमर हैं उसी हरिनाम से,
उसी हरिनाम पर चित्त देवै।
दास पलटू कहै सुधा-रस छोड़िकै,
भया अज्ञान तू छाछ लेवै॥१॥

बोलु हरि-नाम तू छोड़िदे काम सब,
सहज में मुक्ति होइ जाय तेरी।
दाम लागै नहीं काम यह बड़ा है,
सदा सतसंग में लाउ फेरी॥
बिलम ना लाइकै डारि सिर भार को,
छोड़ि दे आस संसार केरी॥
दास पलटू कहै यही सँग जायगा,
बोलु मुख राम यह अरज मेरी॥२॥

पूरब में राम है पच्छिम खुदाय है,
उत्तर औ दक्खिन कहो कौन रहता?
साहिब वह कहाँ है, कहाँ फिर नहीं है,
हिन्दू और तुरुक तोफान करता॥
हिन्दू और तुरुक मिलि परे हैं खैंचि में,
आपनी बर्ग दोउ दीन बहता।
दास पलटू कहै, साहिब सब में रहै,
जुदा ना तनिक, मैं साँच कहता॥३॥

झूलना

१. पीवता नाम=हरिनाम का रस जो पीता है।

२. छोड़िदे काम सब=सारी वासनाओं को त्यागदे। फेरी=चक्कर। विमल=विलम्ब, देर।

३. तोफान=झगड़ा। खैंचि=खींचतान।

बोलु हरिभजन को मगन है प्रेम से,
चुप्प जब रहो तब ध्यान धरना ॥१०॥

भेष भगवन्त के चरन को ध्याइकै,
ज्ञान की बात से नाहिं टरना।
मिलै लुटाइये तुरत कछु खाइये,
माया औ मोह की ठौर मरना॥
दुक्ख और सुक्ख फिरि दुष्ट औ मित्र को,
एकसम दृष्टि इकभाव भरना।
दास पलटू कहै राम कहु बालके,
राम कहु राम कहु सहज तरना ॥११॥

सुन्दरी पिया की पिया को खोजती,
भई बेहोस तू पिया कै कै।
बहुत-सी पदमिनी खोजती मरि गई,
रटत ही पिया पिया एक एकै॥
सती सब होति हैं जरत बिनु आगि से,
कठिन कठोर वह नाहिं झाँकै।
दास पलटू कहै सीस उतारिकै,
सीस पर नाचु जो पिया ताकै ॥१२॥

पूरब ठाकुरद्वारा पच्छिम मक्का बना,
हिन्दू और तुरुक दुइ ओर धाया।
पूरब मूरति बनी, पच्छिम में कबुर है,
हिन्दू और तुरुक सिर पटकि आया॥
मूरति औ कबुर ना बोलै ना खाय कछु,
हिन्दू औ तुरुक तुम कहा पाया।
दास पलटू कहै पाया तिन्ह आपमें,
मूए बैल ने कब घास खाया ॥१३॥

---

१०. वस्सि करना=वश में कर लेना। संग्रह औ त्याग में नाहिं परना=संग्रह और त्याग दोनों के ही झगड़े में न पड़ सहजवृत्ति से रहें।

११. भेष भगवंत के=संतजनों और भगवान के। मरना=मारदे। बालके=यहाँ बालक का अर्थ मूढ़ के अर्थ में किया गया है।

१२. कै कै=कह-कहकर, रट-रटकर। पदमिनी=सुन्दर स्त्रियाँ, यहाँ जीवात्माओं से आशय है। झाँकै=ध्यान देती है। ताकै=खोजे।

१३. कबुर=रसूल की क़ब्र।

देखि निन्दक कँहैं करौं परनाम मैं,
धन्य महराज, तुम भक्त धोया।
किहा निस्तार तुम आइ संसार में,
भक्त कै मैल बिन दाम खोया॥
भयो परसिद्ध परताप से आपके,
सकल संसार तुम सुजस बोया।
दास पलटू कहै निन्दक के मुये से,
भया अकाज मैं बहुत रोया॥१४॥

सील की अवध, सनेह का जनकपुर,
सत्त की जानकी ब्याह कीता।
मनहिं दुलहा बने आपु रघुनाथजी,
ज्ञान के मौर सिर बाँधि लीता॥
प्रेम-बारात जब चली है उँमगिकै,
छिमा बिछाय जनवाँस दीता।
भूप अहंकार के मान को मर्दिकै,
धीरता-धनुष को जाय जीता॥१५॥

बाह्मन तो भये जनेउ को पहिरि कै,
बाम्हनी के गले कुछ नाहिं देखा।
आधी सूद्रिनि रहै घरै के बीच में,
करै, तुम खाहु यह कौन लेखा॥
सेख की सुन्नति से मुसलमानी भई,
सेखानी को नाहिं तुम कहौ सेखा।
आधी हिन्दुइनि रहै घरैं के बीच में,
पलटू अब दुहुन के मारु मेखा॥१६॥

तुरुक लै मुर्दा की कब्र में गाड़ते,
हिन्दू लै आग के बीच जारैं।

---

१४. कँहै=को। धोया=निर्मल कर दिया। अकाज=हानि।

१५. कीता=किया। बाँधिलीता=बाँध लिया। मौर=ताड़पत्र और फूलों का मुकुट जिसे वर विवाह में अपने सिरपर पहनता है। जनवाँस=जनवासा, बारात का डेरा। दीता=दिया।

१६. करै तुम खाहु=वह रसोई बनाती है और तुम खाते हो। सुन्नति=खतना; मुसलमानी संस्कार जिसमें मूत्रेन्द्रिय के अग्रभाग का कुछ चमड़ा काट देते हैं। मारु मेखा=खतम करदे।

पूरब वै गये हैं वै पच्छूँ को,
दोऊ बेकूफ है खाक टारैं॥
वै पूजैं पत्थर को, कबर वै पूजते,
भटककै मुए दै सीस मारैं।
दास पलटू कहै साहिब है आपमें,
आपनी समझ बिनु दोउ हारैं॥१७॥

पराई चिंता की आगि महैं,
दिनराति जरै संसार है, जी।
चौरासी चारिउ खान चराचर,
कोऊ न पावै पार है, जी॥
जोगी जती तपी संन्यासी,
सबको उन डारा जारिहै, जी।
पलटू मैं भी हूँ जरत रहा,
सतगुरु लीन्हा निकारि है, जी॥१८॥

इक नाम अमोलक मिलि गया,
परगट भये मेरे भाग हैं, जी।
गगन की डारि पपिहा बोलै,
सोवत उठी मैं जागि हौं, जी॥
चिराग बरै बिनु तेल बाती,
नाहिं दीया नहिं अगि है, जी।
पलटू देखिके मगन भया,
सब छुट गया तिर्गुना-दाग है, जी॥१९॥

सन्तन के बीच में टेढ़ रहैं,
मठ बाँधि संसार रिझावते हैं।
दस बीस सिष्य परमोधि लिया,
सबसे वह गोड़ धरावते हैं॥

---

१७. पच्छूँ-पश्चिम। मुए दै सीस मारैं=बेजान के आगे माथा टेकते हैं।

१८. पराई चिंता=दूसरों की फिक्र। चौरासी=चौरासी लाख योनियाँ। चारिउखान=चारों आकर अर्थात् जीव की जातियाँ-अंडज, पिंडज, स्वेदज और उद्भिज।

१९. भाग परगट भये=भाग्य का उदय हुआ। गगन............बोलै=आशय है कि ब्रह्मरंध्र या शून्यमण्डल में अनहद नाद हो रहा है। चिराग बरै=ब्रह्मज्योति जगमग हो रही है। दाग=मैल।

सन्तन की बानी काटिके, जी।
जोरि-जोरिके आपु बनावते हैं॥
पलटू कोस चारि-चारि के गिर्द में, जी।
सोइ चक्रवर्ती कहलावते हैं॥२०॥

सच्चे साहिब के मिलने को,
मेरा मन लीहा बैराग है, जी।
मोह-निसा में मैं सोइ गई,
चौंक परी उठि जाग है, जी॥
दोउ नैन बने गिरि के झरना,
भूषन बसन किया त्याग है, जी।
पलटू जीयत तन त्यागि दिया,
उठी बिरह की आगि है, जी॥२१॥

साहिब के दास कहाय यारो,
जगत की आस न राखिये, जी।
समरथ स्वामी को जब पाया,
जगत से दीन न भाखिये, जी॥
साहिब के घर में कौन कमी,
किस बात को अंतै आखिये, जी।
पलटू जो दुख सुख लाख परै,
वहि नाम-सुधा-रस चाखिये, जी॥२२॥

घर घर से चुटकी माँगि के जी,
छुधा को चारा डारि दीजे।
फूटा इक तुम्बा पास राखौ,
ओढ़न को चादर एक लीजै॥
हाट बाट महजित में सोय रहौ,
दिनरात सतसंग का रस पीजै।

---

२०. टेढ़=ऐंठ से। बाँधि=बनाकर। परमोधिलिया=प्रबोध करा दिया; ज्ञान की कुछ बातें समझा दीं। गोड़ धरावते हैं=पैर पुजाते हैं।

२१. लीहा=लिया, धारण किया।

२२. दीन=दीनता के बचन। अंतै=किसी दूसरी जगह या द्वार पर। आखिये=कहे।

२३. चुटकी=मुट्ठीभर भीख। चारा=दाना। महजित=मस्जिद। पीजै=पीता रहे। सेती=ओर से। सिफत आवै=गुण या स्वाद कहे।

पलटू उदास रहौ जक्त सेती,
पहिले बैराग यहि भाँति कीजै ॥२३॥

जब मैं नाहीं, तब वह आया,
मैं, ना वह, यह कौन मानै।
गूँगे ने गुड़ खाइ लिया,
जबान बिना क्या सिफत आनै॥
दरियाव औ लहर तो दोय नाहीं,
समा औ रोसनी कौन छानै।
पलटू भगवान की गती न्यारी,
भगवान की गति भगवान जानै ॥२४॥

अरिल्ल

जीवन हैं दिन चार, भजन करि लीजिये।
तन मन धन सब वारि सन्त पर दीजिये॥
सन्तहिं से सब होइ, जो चाहे सो करैं।
अरे हाँ, पलटू संग लगे भगवान, संत से वे डरैं ॥१॥

ऋद्धि सिद्धि से बैर, सन्त दुरियावते।
इन्द्रासन बैकुण्ठ बिष्ठा सम जानते॥
करते अबिरल भक्ति, प्यास हरिनाम की।
अरे हाँ, पलटू संत न चाहैं मुक्ति तुच्छ केहिं काम की ॥२॥

आगम कहैं न सन्त, भड़ेरिया कहत हैं।
सन्त न औषधि देत, बैद यह करत हैं॥
झार फूँक ताबीज ओझा को काम है।
अरे हाँ, पलटू संत रहित परपंच राम को नाम है ॥३॥

---

२४. समा=शमा, मोमबत्ती। छानै=अलग-अलग करे।

अरिल्ल

२. दुरियावते=ठुकरा देते हैं। अविरल=सघन, निरंतर।

३. आगम=भविष्य की बातें, होनहार। भड़ेरिया=भड्डरी। ओझा=सयाना।

हरिजन हरि हैं एक सबद के सार में।
जो चाहैं सो करैं सन्त दरबार में॥
तुरत मिलावैं नाम एक ही बात में।
अरे हाँ, पलटू लाली मेंहदी बीच छिपी है पात में॥४॥

करते बट्टा ब्याज कसब है जगत का।
माया में हैं लीन, बहाना भगति का॥
कहौं तनिक नहिं छुई गया बैराग है।
अरे हाँ, पलटू जनमें पूत कपूत लगाया दाग है॥५॥

पगरी धरा उतारि टका छह सात का।
मिला दुसाला आय रुपैया साठ का॥
गोड़ धरे कछु देहि मुँड़ाये मूँड़के।
अरे हाँ, पलटू ऐसा है रुजगार कीजिये ढूँढ़िके॥६॥

मसक्कत ना ह्वै सकी मुंड़ाया मूंड़ तब।
सेंति-मेंति में खाय मिला औसान अब॥
तब नागा ह्वै लिहिन, रहे ना काम के।
अरे हाँ, पलटू मारि-पीटिके खाहिं सो बेटा राम के॥७॥

करामति नट खेल अन्त पछितायगा।
चटक-मटक दिन चारि, नरक में जायगा॥
भीर-भार, से सन्त भागि के लुकत हैं।
अरे हाँ, पलटू सिद्धाई को देखि सन्तजन थुकत हैं॥८॥

क्या लै आया यार कहा लै जायगा।
संगी कोऊ नाहिं अन्त पछितायगा॥
सपना यह संसार रैन का देखना।
अरे हाँ, पलटू बाजीगर का खेल बना सब पेखना॥९॥

---

४. एक ही बान में=एक ही सार शब्द में। पात में=(मेंहदी के) पत्ते में।

५. कसब=धंधा, व्यापार। दाग=कलंक।

६. मुँड़ के मुँड़ाये=दीक्षा लेने के समय। गोड़ धरे=पैर पुजाने में। ढूँढ़िके=प्रयत्न करके।

७. ह्वै लिहिन=हो लिये, बन गये।

८. भीरभार=भीड़-भाड़। लुकत हैं=छिपते हैं। सिद्धाई=करामात दिखाने की कला से तात्पर्य है। थुकत=थूकते हैं, तुच्छ समझते हैं।

९. पेखना=दृश्य।

जीवन कहिये झूठ, साच है मरन को।
मूरख, अजहूँ चेति, गहौ गुरु-सरन को॥
माँस के ऊपर चाम, चाम पर रंग है।
अरे हाँ, पलटू जैहै जीव अकेला कोउ ना संग है॥१०॥

भूलि रहा संसार काँच की झलक में।
बनत लगा दस मास, उजाड़ा पलक में॥
रोवनवाला रोया आपनि दाह से।
अरे हाँ, पलटू सब कोइ छेंके ठाढ़, गया किस राह से॥११॥

कच्चा महल उठाय, कच्चा सब भवन है।
दस दरवाजा बीच झाँकता कवन है॥
कच्ची रैयत बसै, कच्ची सब जून है।
अरे हाँ, पलटू निकरि गया सरदार, सहर अब सून है॥१२॥

हाथ गोड़ सब बने, नाहिं अब डोलता।
नाक कान मुख ओहि, नाहिं अब बोलता॥
काल लिहिसि अगुवाय, चलै ना जोर है।
अरे हाँ, पलटू निकरि गया असवार सहर में सोर है॥१३॥

आया मूठी बाँधि, पसारे जायगा।
छूछा आवत जात, मार तू खायगा॥
किते बिकरमाजीत साका बाँधि मरि गये।
अरे हाँ, पलटू रामनाम है सार सँदेसा कहि गये॥१४॥

जो जनमा सो मुआ नाहिं थिर कोइ है।
राजा रंक फकीर गुजर दिन दोइ है॥
चलती चक्की बीच परा जो जाइकै।
अरे हाँ, पलटू साबित बचा न कोइ गया अलगाइकै॥१५॥

---

११. काँचि की झलक=दर्पण में की परछाईं। छेंके ठाढ़=खड़े सब रोके रहे।

१२. जून=पुराना। सरदार=जीव से आशय है। सून=सूना, खाली।

१३. सब बने=सब वैसे के वैसे हैं। अगुवाय लिहिसि=आगे करके ले चला।

१४. छूछा=खाली हाथ, बिना सत्कर्मों की पूँजी के। बिकरमाजीत=विक्रमादित्य। साका बाँधि=संवत्‌रूपी कीर्ति-स्तंभ खड़ा करके।

१५. थिर=स्थिर, अमर। अलगाइकै=पिसकर, काल के ग्रास होकर।

टोप-टोप रस आनि मक्खी मधु लाइया।
इक लै गया निकारि सबै दुख पाइया॥
मोको भा बैराग ओहि को निरखिकै।
अरे हाँ, पलटू माया बुरी बलाय तजा मैं परखिकै॥१६॥

फूलन सेज बिछाय महल के रंग में।
अतर फुलेल लगाय सुनदरी संग में॥
सूते छाती लाय परम आनन्द है।
अरे हाँ, पलटू खबरि पूत को नाहिं काल कौ फन्द है॥१७॥

खाला कै घर नाहिं, भक्ति है राम की।
दाल-भात है नाहिं, खाये के काम की॥
साहिब का घर दूर, सहज ना जानिये।
अरे हाँ, पलटू गिरे तो चकनाचूर, बचन को मानिये॥१८॥

पहिले कबर खुदाय, आसिक तब हूजिये।
सिर पर कप्फन बाँधि, पाँव तब दीजिये॥
आसिक को दिनराति नाहिं है सोवना।
अरे हाँ, पलटू बेदर्दी मासूक दर्द कब खोवना॥१९॥

जो तुझको है चाह सजन को देखना।
करम-भरम दे छोड़ि जगत का पेखना॥
बाँध सुरत की डोरि सब्द में पिलैगा।
अरे हाँ, पलटू ज्ञानध्यान के पार ठिकाना मिलैगा॥२०॥

कडुवा प्याला नाम पिया जो, ना जरै।
देखा-देखी पिवै ज्वान सो भी मरै॥
धर पर सीस न होय, उतारै भुइँ धरै।
अरे हाँ, पलटू छोड़ै तन की आस सरग पर घर करै॥२१॥

---

१६. टोप-टोप=बूँद-बूँद।
१७. सुनदरी=सुन्दरी स्त्री। सूते छाती लाय=हृदय से लगाकर सोये। पूत=बच्चा; मौज में मस्त मूढ़ मनुष्य से आशय है।
१८. खाला कै घर=मौसी का घर; आसान बात। सहज=आसान।
१९. पाँव तब दीजिए=तब प्रेम-पंथ पर पैर रखे। मासूक=प्रेम-पत्र, प्रियतम।
२०. सजन=प्रियतम। सुरत=ध्यान, लय। पिलैगा=गहराई में उतरेगा।
२१. ज्वान=अभिमानी। धर=धड़। सीस=अहंता या खुदी से तात्पर्य है। भुइँ धरे=मिट्टी में मिलादे। सरग=ब्रह्मलोक; अधर।

राम के घर की बात कसौटी खरी है।
झूठा टिकै न कोय आजु की घरी लै॥
जियतै जो मरि जाय सीस लै हाथ में।
अरे हाँ, पलटू ऐसा मर्द जो होय परै यहि बात में॥२२॥

हरि-चरचा से बैर संग वह त्यागिये।
अपनी बुद्धि नसाय सवेरे भागिये॥
सरबस वह जो देइ तो नाहीं काम का।
अरे हाँ, पलटू मित्र नहीं वह दुष्ट जो द्रोही राम का॥२३॥

लोक-लाज जनि मानु बेद-कुल-कानि को।
भली-बुरी सिर धरौ भजो भगवान को॥
हँसिहै सब संसार तो माख न मानिये।
अरे हाँ, पलटू भक्त जक्त से बैर चारों जग जानिये॥२४॥

देव पित्र दे छोड़ि जगत क्या करैगा।
चला जा सूधी चाल, रोइ सब मरैगा॥
जाति-बरन-कुल खोइ करौ तुम भक्ति को।
अरे हाँ, पलटू कान लीजिये मूँदि, हँसै दे जक्त को॥२५॥

केतिक जुग गये बीति माला के फेरते।
छाला परि गये जीभ राम के टेरते॥
माला दीजे डारि, मनै को फेरना।
अरे हाँ, पलटू मुँह के कहे न मिलै, दिलै बिच हेरना॥२६॥

तीसो रोजा किया, फिरे सब भटकिकै।
आठों पहर निमाज मुए सिर पटकिकै॥
मक्के में भी गये, कवर में खाक है।
अरे, हाँ पलटू एक नबी का नाम सदा वह पाक है॥२७॥

---

२२. घरी लै=इस घड़ीतक। यहि बात में=प्रेम-पंथ की बात में।

२३. सवेरे=तुरन्त ही।

२४. माख=बुरा। भक्त जक्त से वैर=हरिभक्त और संसारी विषयी का कभी मेल नहीं हो सकता।

२५. पित्र=पितर। हँसै दे जक्त को=जगत को हँसने दे, तू परवा न कर।

२६. टेरते=पुकारते हुए। मनै को फेरना=मन को ही मोड़ना है विषयों की ओर से। हेरना=ध्यान लगाकर देखता है।

२७. नबी=पैगम्बर। पाक=पवित्र।

डाँड़ी पकरे ज्ञान, छिमा कै सेर है।
सुरत सबद से तौल मनै का फेर है॥
भला-बुरा एक भाव निबाहै ओर है।
अरे हाँ, पलटू सन्तोष की करै दुकान महाजन जोर है॥२८॥

करामात सब झूठ, बिस्वास को थापना।
जैसे स्वान को हाड़ लोहू है आपना॥
कहे सेती कंा मिलै, राँड़ कै गावना।
अरे हाँ, पलटू जो जस करै सो मिलै आपनी भावना॥२९॥

चलती चक्की देखि दिया मैं रोय है।
पीस गया संसार, बचा ना कोय है॥
अधबीचे में परा कोऊ ना निरबहा।
अरे हाँ, पलटू बचिगा कोऊ सन्त जो खूँटे लगि रहा॥३०॥

निकरे घर को त्यागि लराई करन को।
चले खेत से भागि डरे जब मरन को॥
दुइ नंगी तरवार किहा तिन्ह गरद है।
अरे हाँ, पलटू कनक कामिनी सेती बचै सो मरद है॥३१॥

दुरमति जेहि माँ बसै ज्ञान हर लेति है।
तुरत करत है नास बड़ा दुख देति है॥
तेजपुंज हर लेय बुद्धि बल भावना।
अरे हाँ, पलटू दुरमति बसे बिलाय गया है रावना॥३२॥

औंधे बासन नीर सो पिंड सँवारिया।
गर्भबीच दस मास मानुषा राखिया॥

---

२८. डाँडी=तराजू। सेर=एक सेर का बाँट। सुरत=ध्यान, लय। फेर=दुविधा, संकल्प-विकल्प।

२९. कहे सेती=कहने मात्र से।

३०. निरबहा=साबित बचा। जो खूँटे लगि रहा=चक्की की खूँटी के पास जो अनाज था वह पिसने से बच गया। इसी प्रकार भगवान् के चरणों की शरण जिसने पकड़ ली वह माया के चक्कर से बच गया।

३१. निकरे=निकले। खेत=रणक्षेत्र। गरद किहा=धूल में मिला दिया।

३२. दुरमति=कुबुद्धि। विलाय गया है रावना=रावण जैसे प्रतापी राजा का भी नाम-निशान न रहा।

भूला कौल करार राम से भेद है।
अरे हाँ, पलटू जेहि पतरी में खाय करै जग छेद है ॥३३॥

मुसलमान के जिबह, हिन्दू के मारैं झटका।
खाइ दोनों मुरदार, फिरत हैं दूनिउँ भटका॥
वै पूरब को जाहिं, पछिम वै ताकते।
अरे हाँ, पलटू महजिद देवल जाय दोऊ सिर मारते ॥३४॥

सवैया

पूरन ब्रह्म रहै घट में, सठ, तीरथ कानन खोजन जाई।
नैन दिये हरि-देखन को, पलटू सब में प्रभु देत दिखाई॥
कीट पतंग रहे परिपूरन, कहूँ तिल एक न होत जुदा है।
ढूँढ़त, अंध, गरंथन में, लिखि कागद में कहुँ राम लुका है ॥१॥

शब्द

चितावनी का अंग

कहवाँ से जिव आये, कहाँ समाने हो, साधो।
का देखि रहेउ भुलाय कहाँ लिपटाने हो, साधो॥
निर्गुन से जिव आये, सर्गुन समाने हो, साधो।
भूलि गये हरिनाम, माया लिपटाने हो, साधो॥
आठ काठ कै पिंजरा, दस दरवाजा हो, साधो।
कौनिक निकसा प्रान, कौन दिसि भागा हो, साधो॥
रोवत घर की नारि केस-लट खोले हो, साधो।
आज मंदिर भयो सून, कहाँ गये राजा हो, साधो॥

---

३३. औंधे..........सँवारिया=औंधे बरतन में पानी से मनुष्य-शरीर तैयार किया; गर्म में सिर नीचे को होता है, और पैर ऊपर को। भेद=कपट; विमुखता।

३४. जिबह=ज़बह, गला काटकर मारने की क्रिया। झटका=पशु-वध का वह प्रकार, जिसमें वह हथियार के एक ही आघात से काट डाला जाता है। फिरत हैं भटका=भ्रम में पड़े हैं।

सवैया

१. गरंथन में=वेद-पुराणादि ग्रन्थों में। लुका है=छिपा बैठा है।

आलहि बाँस कटाइन डँडिया फँदाइन हो, साधो।
पाँच पचीस बराती लेइ सब धाये हो, साधो॥
तीरे दिहिन उतारि, सकल नहवावैं हो, साधो।
करि सोरहो सिंगार, सबै जुरि आये हो, साधो॥
आलहि चँदन कटाइन, घेरि घर छाइन हो, साधो।
लोग कुटुँम परिवार, दिहिन पहुड़ाई हो, साधो॥
लाइ दिहिन मुख आगि, काठ करि भारा हो, साधो।
पुत्र लिये कर बाँस सीस गहि मारा हो, साधो॥
चहुँ दिसि पवन झकौरै, तरवर डोलै हो, साधो।
सूझत वार न पार, कौन दिसि जाना हो, साधो॥
हियवाँ नहिं कोइ आपन, जे से मैं बोलों हो, साधो।
जस पुरइिन कर पात अकेला मैं डोलों हो, साधो॥
विष बोयों संसार, अमृत कैसे पावों हो, साधो।
पुरब जनम कर पाप दोस केहि लावों हो, साधो॥
भौसागर की नदिया पार, कैसे पावौं हो, साधो।
गुरु बैठे मुख मोड़, मैं केहि गोहरावौं हो, साधो॥
जेहि बैरिन कर मूल ताहि हित मान्यो हो, साधो।
पलटूदास गुरु-ज्ञान सुनत अलगान्यो हो, साधो॥१॥

वृद्ध भये तन खासा, अब कब भजन करहुगे॥
बालापन बालक सँग बीता, तरुन भये अभिमाना।
नखसिख सेती भई सपेदी, हरि का मरम न जाना॥
तिरिमिरि, बहिर, नासिका चूवै, साक गरे चढ़ि आई।
सुत दारा गरियावन लागे, यह बुढ़वा मरि जाई॥
तीरथ बर्त एकौ ना कीन्हा, नहीं साधु की सेवा।
तीनिउ पन धोखेहीं बीते, नहिं ऐसे मूरुख देवा॥

चितावनी का अंग

१. सर्गुन=सगुण। कौनिक=किस द्वार से। आलहि=ताजे या गीले। डँडिया=अर्थी। बराती=मुर्दा ले जाने वाले। घर छाइन=चिता बना दी। पहुड़ाइ दिहिन=चिता पर लिटा दिया। हियवाँ=यहाँ; यमलोक। पुरइन=कमल का पत्ता। गोहरावौं=पुकारूँ। अलगान्यो=मुक्त हो गया।

पकरी आइ काल ने चोटी, सिर धुनि-धुनि पछिताता।
पलटूदास कोऊ नहिं संगी, जम के हाथ बिकाता ॥२॥

पाती आई मोरे पीतम की, साईं तुरत बुलायो हो ॥
इक अँधियारी कोठरी, दूजे दिया न बाती।
बाँह पकरि जम ले चले, कोइ संग न साथी॥
सावन की अँधियरिया, भादौं निज राती।
चौमुख पवन झकोरही, धड़कै मोरि छाती ॥
चलना तौ हमैं जरूर है, रहना यहँ नाहीं।
का लैके मिलब हजूर से, गाँठी कछु नाहीं ॥
पलटूदास जग आयके, नैनन भरि रोया।
जीवन जनम गँवायके, आपै से खोया ॥३॥

कै दिन का तोरा जियना रे, नर चेतु गँवार ॥
काची माटि कै घैला हो, फूटत नहिं बेर।
पानी बीच बतासा हो, लागै गलत न देर ॥
धूआँ कौ धौरेहर हो, बारू कै भीत।
पवन लगे झरि जैहै हो, तृन ऊपर सीत ॥
जस कागद कै कलई हो, पाका फल डार।
सपने कै सुख संपति हो, ऐसो संसार ॥
घने बाँस का पिंजरा हो, तेहि बिच दस हो द्वार।
पंछी पवन बसेरू हो, लावै उड़त न बार ॥
आतसबाजी यह तन हो, हाथे काल के आग।
पलटूदास उड़ि जैवहु हो, जब देइहि दाग ॥४॥

बैराग का अंग

जनि कोइ होवै बैरागी हो, बैराग कठिन है ॥
जग की आसा करै न कबहूँ, पानी पिवै न माँगी हो।
भूख पियास छुटै जब निन्द्रा, जियत मरै तन त्यागी हो ॥

---

२. भई सपेदी=बाल सब सफेद हो गये। मरम=भजन का भेद। साक=साँसु, दमा। तिरमिर=चकाचौंध लगना।

३. निजराती=घोर अँधेरी रात। हजूर=स्वामी।

४. जिपना=जीवन। घैला=घड़ा। बतासा=बुलबुला। धौरेहर=मीनार। सीत=सीथ, पके हुए अन्न का दाना। दाग देइहि=आग लगा देगा।

जाके धर पर सीस न होवै, रहै प्रेम-लौ लागी हो।
पलटूदास वैराग कठिन है, दाग दाग पर दागी हो ॥१॥

बिरह का अंग

जेकरे अँगने नौरँगिया, सो कैसे सोवै हो।
लहर लहर बहु होय, सबद सुनि रोवै हो॥
जेकर पिय परदेस, नींद नहिं आवै हो।
चौंकि-चौंकि उठै जागि, सेज नहिं भावै हो॥
रैन-दिवस मारै बान, पपीहा बोलै हो।
पिय पिय लावै सोर, सवति होइ डोलै हो॥
बिरहिन रहै अकेल, सो कैसेकै जीवै हो।
जेकरे अमी कै चाह, जहर कस पीवै हो॥
अभरन देहु बहाय, बसन धै फारौ हो।
पिय बिन कौन सिंगार, सीस दै मारौ हो॥
भूख न लागै नींद, बिरह हिये करकै हो।
माँग सेंदुर मसि पोछ, नैन जल ढरकै हो॥
केकहैं करै सिंगार, सो काहि दिखावै हो।
जेकर पिय परदेस सो, काहि रिझावै हो॥
रहै चरन चित लाइ, सोइ धन आगर हो।
पलटूदास कै सबद, बिरह कै सागर हो॥१॥
अब तो मैं बैरागभरी, सोवत से मैं जागि परी॥
नैन बने गिरि के झरना ज्यों, मुख से निकरै हरी हरी॥
अभरन तोरि बसन धै फारौं, पापी जिव नहिं जात मरी॥
लेउँ उसास सीस दै मारौं, अगिनि बिना मैं जाऊ जरी॥
नागिनि बिरह डसत है मोको, जात न मोसे धीर धरी॥

वैराग का अंग

१. जियत मरै तन त्यागी=जीतेजी देह की आसक्ति त्याग दे। सीस=अहंता या खुदी से तात्पर्य है।

बिरह का अंग

१. नौरंगिया=परम विरहासक्ति। अमी=अमृत। अभरन=आभरण, गहने। देहु बहाय=फेंक दो। धै=लेकर, पकड़कर। करकै=कसकता है, रह-रहकर पीड़ा देता है। मसि=अंजन, काजल। आगर=चतुर।

सतगुरु आइ किहिन बैदाई, सिर पर जादू तुरत करी ॥
पलटूदास दिया उन मोको, नाम सजीवन मूल जरी ॥२॥

प्रेमबान जोगी मारल हो, कसकै हिया मोर ॥
जोगिया कै लालि अँखियाँ हो, जस कँवल कै फूल।
हमरी सुरुख चुनरिया हो, दूनों भये तूल ॥
जोगिया कै लेउँ मिर्गछलवा हो, आपन पट चीर।
दूनौं कै सियब गुदरिया हो, होइ जाब फकीर ॥
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो, ताकिन्हि मोरी ओर।
चितवन में मन हर लियो हो, जोगिया बड़ चोर ॥
गंग-जमुन के बिचवाँ हो, बहै झिरहिर नीर।
तेहिं ठैयाँ जोरल सनेहिया हो, हरि ले गयो पीर ॥
जोगिया अमर मरै नहिं हो, पुजवल मोरी आस।
करम लिखा बर पावल हो, गावै पलटूदा ॥३॥

प्रेम का अंग

जल औ मीन समान, गुरु से प्रीति जो कीजै ॥
जल से बिछुरै तनिक एक जो, छोड़ि देति है प्रान।
मीन कँहै लै छीर में राखे, जल बिनु है हैरान ॥
जो कछु है सो मीन के जल है, उहिके हाथ बिकान।
पलटूदास प्रीति करै ऐसी, प्रीति सोइ परमान ॥१॥

---

२. बैदाई=वैद्यक, रोग का उपचार।

३. चुनरिया=लाल रँगी साड़ी जिसके बीच में थोड़ी दूर पर बुँदकियाँ होती हैं। तूल=तुल्य, एकसमान। मृगछलवा=मृगछाला, मृगचर्म। गुदरिया=गुदड़ी, कंथा। सिंगिया=तुरही, सींग का बाजा जिसे योगीजन फूंककर बजाते हैं। गगना में=भँवरगुफा में। गंग जमुन के बिचवाँ=पिंगला और इड़ा नाड़ियों के बीच सुषुम्ना नाड़ी, इसीसे होकर कुंडलिनी शक्ति ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। इन तीनों नाड़ियों का ब्रह्मरंध्र में संगम हुआ है, जिसे योगी प्रयाग कहते हैं। ठइयाँ=स्थान। जोरल=जोड़ा। पुजवल=पूरी की।

प्रेम का अंग

१. कँहै=को। परमान=प्रमाणरूप, सत्य।

विश्वास का अंग

मैं जग की बात न मानौंगी, ठान आपनी ठानौंगी॥
कहे सुने से खाँड़ आपनी नाहिं धूरि में सानौंगी॥
कहे सुने से हीरा आपनो, नाहिं काँच में आनौंगी॥
जग की ओर तनिक नहिं ताकौं, सतसंगति पहचानौंगी॥
पलटूदास कहे से का भा, जो जानौं सो जानौंगी॥१॥

बनत बनत बनि जाइ, पड़ा रहै संत के द्वारे॥
तन मन धन सब अरपन कै कै, धका धनी को खाय।
मुरदा होय टरै नहिं टारे, लाख कहै समुझाय॥
स्वान-बिरित पावै सोइ खावै, रहै चरन लौ लाय।
पलटूदास काम वनि जावै, इतने पर ठहराय॥२॥

उपदेश का अंग

मितऊ देहला न जगाय, निंदिया बैरिन भैली॥
की तो जागै रोगी, की चाकर की चोर।
की तो जागै संत बिरहिया, भजन गुरू कै होय॥
स्वारथ लाय सभै मिलि जागैं, बिन स्वारथ ना कोय।
परस्वारथ को वह नर जागै, किरपा गुरु की होय॥
जागे से परलोक बनतु है, सोये बड़ दुख होय।
ज्ञान खरग लिये पलटू जागै, होनी होय सो सोय॥१॥

को खोलै कपट-किवरिया हो, बिन सतगुरु साहिबा हो॥
नैहर में कछु गुन नहिं सीख्यो, ससुरे में भई फुहरिया हो॥

विश्वास का अंग

१. ठान=पक्का, निश्चय। आनौंगी=मिलाऊँगी।

२. मुरदा=निश्चेष्ट। स्वान-बिरित=श्वानवृत्ति, कुत्ते की तरह दरवाजे पर पड़े रहना और जो मिल जाये सो संतोष से खा लेना।

उपदेश का अंग

१. मितऊ=मित्र ने, प्रियतम ने। देहला न जगाय=जगा न दिया, चेताया नहीं।
बिरहिया=बिरही। लाय=के लिए।

अपने मन की कुलवंती, छुए न पावै गगरिया हो ॥
पाँच पचीस रहै घट भीतर, कौन बतावै डगरिया हो।
पलटूदास छोड़ि कुल जतिया, सतगुरु मिले सँघतिया हो ॥२॥

साहिब से परदा का कीजे, भरि-भरि नैन निरखि लीजै ॥
नाचै चली घूँ घट क्यों काढ़ै, मुख से अंचल टारि दीजै ॥
सती होय का सगुन बिचारै, कहि के माहुर क्या पीजै ॥
लोक-बेद तन-मन की डर है, प्रेम-रंग में क्या भीजै ॥
पलटूदास होय मरजीवा, लेहि रतन नहिं तन छीजै ॥३॥

चलहु सखी वहि देस, जहवाँ दिवस न रजनी ॥
पाप पुन्न नहिं चाँद सुरज नहिं, नहीं सजन नहिं सजनी ॥
धरती आग पवन नहिं पानी, नहिं सूतै नहिं जगनी ॥
लोक बेद जंगल नहिं बस्ती, नहिं संग्रह नहिं त्यगनी ॥
पलटूदास गुरू नहिं चेला, एक राम रम रमनी ॥४॥

शान्ति का अंग

चित मेरा अलसाना, अब मोसे बोलि न जाइ ॥
देहरी लागै परबत मोको, आँगन भया है बिदेस ॥
पलक उघारत जुग सम बीतै, बिसरि गया सन्देस ॥
विष के मुए सेती मनि जागी, बिल में साँपु समाना ॥
जरि गया छाछ भया घिव निरमल, आपुइ से चुपियाना ॥
अब ना चलै जोर कछु मेरा, आन के हाथ बिकानीं।
लोन की डरी परी जल भीतर, गलिके होइ गइ पानी ॥
सात महल के ऊपर अठएँ, सबद में सुरति समाई।
पलटूदास कहौं मैं कैसे, ज्यों गूँगैं गुड़ खाई ॥१॥

---

२. फुहरिया=फूहड़, अनाड़िन। डगरिया=डगर, रास्ता। जतिया=जातपाँत। संघतिया=साथी।

३. माहुर=ज़हर। सूतै=सोना।

४. त्यगनी=त्याग। रमनी=जीवात्मा से तात्पर्य है।

शान्ति का अंग

१. अलसाना=निश्चल हो गया, वृत्तियों का निरोध हो गया। विष के....समाना=वृत्तियों का निरोध हो जाने अथवा वासनाओं के नष्ट हो जाने से आत्मा की ज्योति प्रकट हो गई

वाचक ज्ञान का अंग

वाचक ज्ञान न नीका ज्ञानी, ज्यों कारिख का टीका ॥
बिनु पूँजी को साहु कहावै, कौड़ी घर में नाहीं।
ज्यों चोकर के लड्डू खावै, का सवाद तेहि माहीं ॥
ज्यों सुवान कुछ देखिकै भूँकै, तिसने तो कछु पाई।
वाकी भूँक सुने जो भूँकै, सो अहमक कहवाई ॥
बातन सेती नहीं होइ राजा, नहिं बातन गढ़ टूटै।
मुलुक मँहे तब अमल होइगा, तीर तुपक जब छूटै ॥
बातन से पकवान बनावै, पेट भरे नहिं कोई।
पलटूदास करै सोइ कहना, कहे सेती क्या होई ॥१॥

मन का अंग

मन बनिया बान न छोड़ै ॥
पूरा बाट तेरे खिसकावै, घटिया को टकटोलै।
पसँगा माँहै करि चतुराई, पूरा कबहुँ न तौलै ॥
घर में वाके कुमति बनियाइन, सबहिन को झकझोलै।
लड़िका वाका महाहरामी, इमरित में बिष घोलै ॥
पाँचतत्त का जामा पहिरे, ऐंठा-गुइँठा डोलै।
जनम-जनम का है अपराधी, कबहूँ साच न बोलै ॥
जल में बनिया थल में बनिया, घट घट बनिया बोलै।
पलटू के गुरू समरथ साईं, कपट गाँठि जो खोलै ॥१॥

और तृष्णा विलीन हो गई। चुपियाना=पड़पड़ाने का शब्द शान्त हो गया। डरी=डली। सात महल के ऊपर अठएँ=सिद्ध योगियों की आठ पुरियाँ जिन्हें सिद्धलोक भी कहते हैं। नौ और दस लोकों का भी उल्लेख है। वास्तव में ये योग की परात्पर अवस्थाएँ हैं।

वाचक ज्ञान का अंग

१. वाचक=शाब्दिक, कथनीमात्र। सुवान=श्वान, कुत्ता। अहमक=मूर्ख। अमल=अधिकार।

मन का अंग

१. वात=आदत। तरे=नीचे को। टकटोरै=खोजता है। झकझोलै=झगड़ती है। ऐंठा-गुइंठा=अभिमान से अकड़ा हुआ।

मिश्रित शब्द

जहाँ कुमति कै बासा है, सुख सपनेहुँ नाहीं ॥
फोरि देति घर मोर तोर करि, देखै आपु तमासा है ॥
कलह काल दिन रात लगावै, करै जगत उपहासा है ॥
निर्धन करै खाये बिनु मारै, अछत अन्न उपवासा है ॥
पलटूदास कुमति है भोंड़ी, लोक परलोक दोउ नासा है ॥१॥

है कोइ सखिया सयानी, चलै पनिघटवा पानी ॥
सतगुरु घाट गहिर बड़ा सागर, मारग है मोरी जानी।
लेजुरी सुरति सबद कै घेलन, भरहु तजहु कुलकानी ॥
निहुरिके भरै घयल नहिं फूटै, सो धन प्रेम-दिवानी।
चाँद सुरुज दोउ अंचल सोहैं, बेसर लट अरुझानी ॥
चाल चलैं जस मैगर हाथी, आठ पहर मस्तानी।
पलटूदास झमकि भरि आनी, लोक-लाज ना मानी ॥२॥

माया तू जगत पियारी वे, हमरे काम की नहिं।
द्वारे से दूर हो लंडी रे, पइठु न घर के माहीं ॥
माया आपु खड़ी भइ आगे, नैनन काजर लाये।
नाचै गावै भाव बतावै, मोतिन माँग भराये ॥
रोवै माया खाय पछारा, तनिक न गाफिल पाऊँ।
जब देखौं तब ज्ञान ध्यान में, कैसे मारि गिराऊँ ॥
ऋद्धि सिद्धि दोउ कनक समाजी, बिस्तु डिगन को भेजा।
तीन लोक में अमल तुम्हारा, यह घर लगै न तेजा ॥
तू क्या माया मोहिं नचावै, मैं हौं बड़ा नचनियाँ।
इहवाँ बानिक लगै न तेरी, मैं हौं पलटू बनियाँ ॥३॥

मिश्रित शब्द

१. फोरि देति=फूट डाल देती है। कलह काल=झगड़ा। अछत=होते हुए। भोंड़ी=दुष्ट।

२. लेजुरी=रस्सी। घेलन=घड़ों से। निहुरिके=शील और विनय के साथ। चाँद सुरुज=इड़ा और पिंगला नाड़ी से आशय है। बेसर=सुषुम्ना नाड़ी से आशय है। मैगर=मतवाला। झमकि=उमंग से ठमककर।

३. लंडी=लौंड़ी। लाए=लगाए हुए। डिगन=डिगाने व फँसाने को। तेजा=ज़ोर। बानिक=दाँव।

पाप कै मोटरी बाम्हन भाई, इस सबही जग को बगदाई॥
साइत सोधिकै गाँव बेढ़ावैं, खेत चढ़ाय के मूँड़ कटावैं॥
रास वर्ग गन मूर को गाड़ि घर कै विटिया चौके राँड़ि॥
और सभन को गरह बतावै, अपने गरह को नाहिं छुड़ावै॥
मुक्ति के हेतु इन्हें जग मानै, अपनी मुक्ति कै मरम न जानै॥
औरन को कहते कल्यान, दुख माँ आपु रहैं हैरान॥
दूध-पूत औरन को देते, आप जो घर-घर भिच्छा लेते॥
पलटूदास की बात को बूझै, अन्धा होय तेहुको सूझै॥४॥

भलि मति हरल तुम्हार, पाँड़े बम्हना॥
सब जातिन में उत्तम तुमहीं, करतब करौ कसाई।
जीव मारिकै काया पोखौ, तनिकौ दरद न आई॥
रामनाम सुनि जूड़ी आवैं, पूजौ दुर्गा चंडी।
लम्बा टीका काँध जनेऊ, बकुला जाति पखंडी॥
बकरी भेड़ा मछरी खायौ, काहे गाय बराई।
रुधिर माँस सब एकै पाँड़े, थू तोरी बम्हनाई॥
सब घट साहिब एकै जानौ, यहिमाँ भल है तोरा।
भगवतगीता बूझि बिचारौ, पलटू करत निहोरा॥५॥

साखी

गुरु का अंग

संत संत सब बड़े हैं, पलटू कोउ न छोट।
आतम दरसी मिहीं है, औ चाउर सब मोट॥१॥

पलटू ऐना संत है, सब देखैं तेहि माहिं।
टेढ़ सोझ मुँह आपना, ऐना टेढ़ा नाहिं॥२॥

---

४. बगदाई=भ्रम में डालकर बरबाद कर दिया। बिढ़ावैं=नाश करें। रास........राँड=राशि, वर्ग, गण और मूल से जन्मपत्री को मिलाकर विवाह कराते हैं, पर कहाँ गया उनका ज्योतिष जब कि मण्डप के नीचे ही लड़की विधवा हो जाती है? गरह=ग्रह।
५. जूड़ी आवै=जैसे शीतज्वर चढ़ आता है। बराई=बचादी। निहोरा=विनती।

साखी
१. मिहीं=महीन, पतले, बढ़िया जाति के।
२. ऐना=आईना, दर्पण। सोझ=सीधा।

पलटू यहि संसार में, कोऊ नाहीं हीत।
सोऊ बैरी होत है, जाको दीजै प्रीत ॥३॥

जो दिन गया सो जान दे, मूरख अबहूँ चेत।
कहता पलटूदास है, करिले हरि से हेत ॥४॥

पलटू नर-तन जातु है, सुन्दर सुभग सरीर।
सेवा कीजै साध की, भजि लीजै रघुबीर ॥५॥

पलटू ऐसी प्रीति करु, ज्यों मजीठ को रंग।
टूक-टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़ै संग ॥६॥

आठ पहर जो छकि रहै, मस्त अपाने हाल।
पलटू उनसे सब डरैं, वो साहिब के लाल ॥७॥

पलटू सीताराम से, हम तो किहे हैं प्रीति।
देखि-देखि सब जरत हैं, कौन जगत की रीति ॥८॥

पलटू बाजी लाइहौं, दोऊ बिधि से राम।
जो मैं हारौं राम को, जो जीतौं तौ राम ॥९॥

पलटू लिखा नसीब का, संत देत हैं फेर।
साँच नहीं दिल आपना, तासे लागै देर ॥१०॥

लगा जिकर का बान है, फिकर भई छैकार।
पुरजे-पुरजे उड़ि गया, पलटू जीति हमार ॥११॥

बखतर पहिरे प्रेम का, घोड़ा है गुरुज्ञान।
पलटू सुरति कमान लै, जीति चले मैदान ॥१२॥

सोइ सिपाही मरद है, जग में पलटूदास।
मन मारे सिर गिरि पड़ै, तन की करै न आस ॥१३॥

---

३. हीत=हितकारी।

६. मजीठ=पक्का लाल रंग।

९. लाइहौं=लगाऊँगा।

१०. देत हैं फेर=पलट देते हैं।

११. जिकर=नाम-स्मरण, सुरति, लय। छैकार=नष्ट।

१२. बखतर=कवच। कमान=धनुष।

ना मैं किया न करि सकौं, साहिब करता मोर।
करत करावत आपु है, पलटू पलटू सोर ॥१४॥

पलटू हरिजन मिलन को, चलि जइये इक धाप।
हरिजन आये घर महैं, तो आये हरि आप ॥१५॥

वृच्छा बड़ परस्वारथी, फरै और के काज।
भवसागर के तरन को, पलटू संत जहाज ॥१६॥

पलटू तीरथ को चला, बीच मां मिलिगे संत।
एक मुक्ति के खोजते, मिलि गइ मुक्ति अनंत ॥१७॥

पलटू मन मूआ नहीं, चले जगत को त्याग।
ऊपर धोये क्या भया, भीतर रहिगा दाग ॥१८॥

सीस नवावै संत को, सीस बखानौं सोय।
पलटू जे सिर ना नवै, बेहतर कद्द होय ॥१९॥

सुनिलो पलटू भेद यह हँसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख में नरक निदान ॥२०॥

बिन खोजे से ना मिलै, लाख करै जो कोय।
पलटू दूध से दही भा, मथिबे से घिव होय ॥२१॥

गारी आई एक से, पलटे भई अनेक।
जो पलटू पलटै नहीं, रहै एक की एक ॥२२॥

जल पषान के पूजते, सरा न एकौ काम।
पलटू तन करु देहरा, मन करु सालिगराम ॥२३॥

कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरवर फरै, केतिक सींचो नीर ॥२४॥

वृच्छा फरै न आपको, नदी न अँचवैं नीर।
परस्वारथ के कारने, संतन धरैं सरीर ॥२५॥

---

१४. पलटू पलटू सोर=यह तो योंही शोर मच गया है कि यह चमत्कार पलटू ने किया है, वह चमत्कार पलटू ने किया है।

१५. धाप=टप्पा, एक साँस में जितना लम्बा दौड़ा जा सके; उमंग से उतावला होकर।

१६. बखानौं=असल में उसीको कहता हूँ। कद्दू=कुम्हड़ा।

२३. देहरा=देव-मंदिर। सरा=पूरा होय।

२५. अँचवै=पीती है।

बड़े बड़ाई में भुले, छोटे हैं सिरदार।
पलटू मीठो कूप-जल, समुँद पड़ा है खार ॥२६॥

हिरदे में तो कुटिल है, बोलै बचन रसाल।
पलटू वह केहि काम का, ज्यों नारुन-फल लाल ॥२७॥

सब तीरथ में खोजिया, गहरी बुड़की मार।
पलटू जल के बीच में, किन पाया करतार ॥२८॥

पलटू जहवाँ दो अमल, रैयत होय उजाड़।
इक घर में दस देवता, क्योंकर बसै बजार ॥२९॥

हिन्दू पूजै देवखरा, मुसलमान महजीद।
पलटू पूजै बोलता, जो खाय दीद बरदीद ॥३०॥

चारि बरन को मेटिकै, भक्ति चलाया मूल।
गुरु गोविंद के बाग में, पलटू फूला फूल ॥३१॥

कमर बाँधि खोजन चले, पलटू फिरै उदेस।
षट दरसन सब पचि मुए, कोउ न कहा सँदेस ॥३२॥

सिष्य सिष्य सबही कहैं, सिष्य भया ना कोय।
पलटू गुरु की बस्तु को, सीखै सिष तब होय ॥३३॥

खोजत गठरी लाल की, नहीं गाँठि में दाम।
लोक-लाज तोड़ै नहीं, पलटू चाहे राम ॥३४॥

मरनेवाला मरि गया, रोवै जो मरि जाय।
समझावै सो भी मरै, पलटू को पछिताय ॥३५॥

●

---

२७. नारुन=इन्द्रायन, इनारू; इसका लाल फल देखने में सुन्दर पर चखने में बड़ा कड़ुआ होता है।

२८. बुड़की=डुबकी।

२९. अमल=शासन, राज।

३०. देवखरा=देवालय। दीद बरदीद=नज़र के सामने।

३२. उदेस=विशेष। षटदरसन=छह शास्त्र।

३३. वस्तु=तत्त्वज्ञान।

तुलसी साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१८१७ वि. (मतान्तर से संवत् १८४५)

जन्म-स्थान—अज्ञात

सत्संग-संवत्—हाथरस (उत्तर प्रदेश) के समीप जोगिया गाँव

भेष—विरक्त

मृत्यु-स्थान—१८६६ वि. (मतान्तर से सं. १९००, जेठ सुदी २)

तुलसी साहब का परिचय निश्चित रूप से कुछ भी नहीं मिलता है। इतना ही पता चलता है कि हाथरस के आसपास और दूर-दूर भी एक काला कंबल ओढ़े और हाथ में डंडा लिये यह चले जाया करते थे। यह एक अलमस्त पहुँचे हुए संत थे।

इनके जीवन-परिचय के संबंध में यह कथा प्रचलित है कि पूना के पेशवा बाजीराव द्वितीय के यह बड़े भाई थे, और नाम इनका श्यामराव था। किन्तु वैराग्य का ऐसा गाढ़ा रंग चढ़ा कि पेशवाई का लोभ छोड़कर फकीरी का बाना ले लिया, और हाथरस में जाकर बैठ गये। यह भी कहा जाता है कि जब बाजीराव द्वितीय को सं. १८७६ में गद्दी से उतार कर विठूर भेज दिया गया था, तब ४२ बरस बाद तुलसी साहब उनसे वहाँ मिले थे।

किन्तु इस कथा या प्रवाद के पीछे कोई ऐतिहासिक पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। बाजीराव के बड़े भाई का उल्लेख इतिहास-ग्रन्थों में अमृतराव के नाम से किया गया है, श्यामराव के नाम से नहीं। यह अमृतराव भी असल में रघुनाथराव पेशवा के दत्तक पुत्र थे।

तुलसी साहब के पूर्वजन्म की भी कथा इनकी 'घट रामायन' में मिलती है। उसके अनुसार पूर्वजन्म में 'रामचरित मानस' के रचयिता गोसाईं तुलसीदास यही थे। लिखा है कि 'घट रामायन' का लिखना इन्होंने संवत् १६१८ को आरम्भ किया था। पर उसमें प्रकट किये गये इनके विचारों को तब काशी के पंडितों ने पसंद नहीं किया, और इनका भारी विरोध हुआ, इसलिए इन्होंने 'घट रामायन' को तब गुप्त कर दिया, और साधारण जनता के लिए 'रामचरित मानस' रच दिया।

मालूम यह होता है कि तुलसी साहब के किसी 'बेहद भक्ति' से प्रेरित अनुयायी ने

'घट रामायन' में इस विचित्र कथा को पीछे से जोड़ दिया है। क्षेपक-जोड़कों के लिए ऐसा करना बहुत सहज है।

अपने रचे 'रत्नसागर' में कलियुग के प्रभाव का वर्णन करते हुए स्वयं तुलसी साहब ने गोसाईं तुलसीदास की रामायण को प्रमाण माना है। उन्होंने कहा है:—

'बड़ा कलूजुग सब कहैं संत वचन के मायँ।
रामायन के बाक में तुलसी कही बनाय॥'

प्रमाणरूप में उन्होंने तुलसी-कृत रामायण (रामचरित-मानस) में से इस चौपाई को और इस दोहे को थोड़े-से पाठ-भेद के साथ यहाँ उद्धृत भी किया है:—

'कलिकर एक पुन्न परतापू। मानस पुन्न होय नहिं पापू॥'

(शुद्ध पाठ— कलिकर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्न होहिं नहिं पापा॥)

'कलिजुग सम नहिं आन जुग, जो नर करै विस्वास।
नाम डारि गहि भव तरै, जा मन तुलसीदास॥'

(शुद्ध पाठ— कलिजुग सम जुग आन नहिं, जौ नर कर विस्वास।
गाइ राम गुनगन विमल, भव तर बिनहि प्रयास॥)

समझ में नहीं आता कि इस प्रकार की विचित्र कथाओं और क्षेपकों को जोड़कर भक्त अनुयायियों को आख़िर क्या लाभ होता है।

तुलसी साहब एक ऊँची रहनी के संत थे, भगवद्विरह और भगवत्प्रेम में हर हमेशा मस्त रहनेवाले। शब्दयोग के गहरे साधक थे। स्वभाव के बड़े फक्कड़ थे।

कहते हैं कि एक बार आप घूमते हुए एक धनाढ्य के दरवाजे पर पहुँचे। उसने बड़ा सत्कार किया, और हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि, मुझे दया करके एक पुत्र बख्शा जाय। तुलसी साहब ने अपना सोंटा उठाया और यह कहते हुए चल दिये कि 'संतों की दया तो यह है कि अगर उनके दास के औलाद मौजूद भी हो तो उसे उठालें, और अपने दास को निर्बन्ध करदें।'

तुलसी साहब का कोई गुरु नहीं था। पर सद्गुरु की तलाश अथवा कहना चाहिए कि सद्गुरुरूप अपने 'स्वरूप' की ही तलाश में वे विरहातुर रहा करते थे, जैसा कि उनकी इस कड़ी से प्रकट होता है —

"मिलै कोइ संत फिरौं तेहि लारे।"

बानी-परिचय

तुलसी साहब के रचनाओं के रूप में तीन ग्रन्थ मिले हैं—'घट रामायन', 'रत्न-सागर' और 'शब्दावली'। ये तीनों ही ग्रन्थ बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में हमने 'शब्दावली' में से इनके कुछ मधुर पदों का संकलन किया है। कुछ दोहे

'रत्न-सागर' में से भी लिये हैं।

तुलसी साहब की अतिसरस रचना 'शब्दावली' में ही मिलती है। ऐसी सरसता न 'घट रामायन' में मिलती है, न 'रत्न-सागर' में ही। कभी-कभी तो पढ़ते-पढ़ते यहाँ तक लगने लगता है कि कहीं ये कृतियाँ दो भिन्न संतों की रची तो नहीं हैं। पर ऐसी बात असल में है नहीं। 'घट रामायन' और 'रत्न-सागर' में रूपकों और संवादों द्वारा वेदान्त और योग का जिस शैली में निरूपण किया गया है, वह स्वभावतः वैसी सरस हो नहीं सकती। अन्य अनेक संतों और कवियों की रचनाओं में भी बहुधा इसी प्रकार का अंतर देखा गया है। मुक्तिक पदों में जहाँ रस-व्यंजना का मुक्त क्षेत्र कवि को मिलता है, तहाँ प्रबंधात्मक रूपकों और संवादात्मक निरूपणों से रस की धारा स्वतः अवरुद्ध-सी हो जाती है। विरह और प्रेम के पद इनके बड़े ही मर्मभरे और सरस हैं, जो अंतर पर सीधे चोट करते हैं। 'गैव घर' की झिलमिल झाँकी का, वहाँ की जगमग जोति का और मुरली की अनहद तान का वर्णन बड़ा ही सरस इन्होंने किया है।

रेखते, गज़लें, अरिल, कुंडलियाँ, झूलने, सवैये, कवित्त, लावनी, पश्तों आदि कितने ही छन्दों में तुलसी साहब ने सरस रचना की है। पद तो अनेक रागों में हैं ही।

भाषा बड़ी मीठी और जोरदार है, फ़ारसी शब्दों का भी इन्होंने कितने ही पदों और दूसरों छंदों के बहुलता से प्रयोग किया है।

आधार

१ तुलसी साहिब की शब्दावली—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ घट रामायन (दोनों भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
३ रत्न-सागर—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
४ उत्तरी भारत की संत-परंपरा—परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार, इलाहाबाद

●

तुलसी साहब

शब्द

कोइ सतगुर देव री बताइ, चरन गहूँ ताहिके ॥
चहुँ दिसि ढूँढ़ि फिरी कोइ भेदी, पूछत हौं गुहराइ।
उनसे कहूँ बिथा सब अपनी, केहि बिधि जीव जुड़ाइ ॥
जो कोइ सखी सुहागिन होवै, कहे तन तपन बुझाइ।
पिउ की खोल खबर कहै मोसे, मरूँ री बिकल कर हाइ ॥
जो न्यामत दुनिया दौलत की, सो सब देउँ बहाइ।
बारम्बार वार तन डारूँ, यह कहा मोल बिकाइ ॥
बिन स्वामी सिंगार सुहागिन, लानत तोबा ताइ।
पिय बिन सेज बिछावे ऐसी, नारि मरै बिष खाइ ॥
सतगुरु बिरहिन बान कलेजे, रोवै औ चिल्लाइ।
हाय हाय हिये में निसबासर, हरदम पीर पिराइ ॥
इह झुंड में कोइ पाक पियारी, पिया-दुलारी आहि।
मैं दुखिया हौं दर्द-दिवानी, प्रीतम-दरस लखाइ ॥
तुलसी प्यास तौ बुझै प्यार से, चढ़ घर अधर समाइ।
किरपावंत संत समझावैं, और न लगै उपाइ ॥१॥

प्यारे पिया पैहौं कौने भेस, मैं तो हारी ढूँढ़ि सारा देस ॥
जोग-जुगति जोगी ठगे, ब्रह्मा विस्नु महेस।
बेद-बिधी बंधन भये, देव मुनी औ सेस ॥
ब्रह्मचार बैराग लौ, संन्यासी दुरवेस।
परमहंस बेदांत को पढ़ि भाषत ब्रह्म नरेस ॥

शब्द

१. गुहराइ=पुकारकर। जुड़ाइ=ठंडा हो, शान्ति मिले। लानत=धिक्कार। तोबा=तौबः; यहाँ पर घृणा प्रकट करने के अर्थ में प्रयोग हुआ है। ताइ=उसको। पिराइ=कसकती है। पाक=पवित्र, सती।

तीरथ बरत अन्हान को, चार बरन परवेस।
काल करम करता करै, बाँधै जम धर केस॥
जगत-जाल-जंजाल से, कोइ नहिं पावत पेस।
मैं सतगुर सरना लिया, तुलसी सकल तजि ऐस॥२॥

ग़ज़ल

मक्का महजीत कोऊ हज्ज को जाते।
बदन खूब महजित में मन नहिं लाते॥
तन मन महजीत खुद खुदाइ बनाई।
तुलसी ईमान नहीं लावे भाई॥१॥
तन के तत-मंदर को देखौ जाई।
आतम-सा देव जाहि पूजौ भाई॥
पाहन की मूरत का झूठ पसारा।
तुलसी पूजै बेहोस जन्म बिगारा॥२॥
तेरा है यार तेरे तम के माईं।
कहते सब संत साध सास्तर भाई॥
पूजन आतम आदि सबने गाई।
भूखे को देख दीन देना जाई॥
तुलसी यह तत्त मत्त चीन्हे नाहीं।
चीन्हे जिन भेद पाइ बूझे साईं॥३॥
ऐ बेहोस प्यारे, तैं यार बिसारा।
खिलकत का खेल जान सबै झूठ पसारा॥
इक पल में फना होत देख जक्त असारा।
यह नैनों से देख तेरा को है प्यारा॥

---

२. दुरवेस=दरवेश, फकीर। परवेस=प्रवेश; अधिकार। नरेस=त्रिलोक के नाथ से आशय है। धर केस=चोटी पकड़कर। पावत पेस=जीत सकता है। ऐस=ऐश, भोग-विलास।

ग़ज़ल

१. हज्ज=हज, क़ाबे के दर्शन की तीर्थयात्रा। खुदाइ=खुदा ने ही।
२. तत्त-मंदर=तत्त्व-मंदिर। पसारा=जंजाल।
३. माईं=अन्दर। सास्तर=शास्त्र। मत्त=मत, सिद्धान्त। बूझे=समझ लिया।

तेरी तू आदि देख कहाँ से आया।
उस यार को बिसारके लौ कहँको लाया॥
हमने दिल बीच यार अंदर पाया।
उस बिरहिन के तन में रोम-रोम में छाया॥
वह मरती बेहाल पिया पिया पुकारै।
तन मन में नहीं होस नहीं बदन निहारै॥
ऐसी बेहोस सूल सहै कटारी।
जैसै तन बीच सेल तेगा मारी॥
ऐसी बिरहिन के बीच बिरह सँवारी।
सोई बिरहिन तो लगी पिउ को प्यारी॥
जिसका यह हाल सोई अधर सिधारी।
तुलसी सो नारि भई जग से न्यारी॥४॥

कुण्डलिया

सतगुर दीनदयाल बिन, जुग-जुग मारे जायँ॥
जुग-जुग मारे जायँ, खायँ फिर जम की लाती।
ऐसे मूरख लोग, चलैं वाही के साथी॥
सुन-सुन कथा पुरान जानकर जनम बिगारा।
सिम्रित सास्तर बेद काल ने किया पसारा॥
तुलसी सतसँग संत बिन फिर-फिर खेही खायँ।
सतगुर दीनदयाल बिन, जुग-जुग मारे जायँ॥१॥

जग बेहोस बूझै नहीं संतमते की बात॥
संतमते की बात, लात जम तातें मारै।
चोटी धरि-धरि काल पकड़ि चौरासी डारै॥
मद-माया के माहिं बात, चित नेक न लावै।
ऐसा बड़ा अयान जानकर ज्ञान न भावै॥

---

४. यार=प्रियतम, परमात्मा। खिलकत=सृष्टि। फना=नष्ट। सेल=बरछा, भाला। तेगा=खांडा। अधर=बिना आधार का स्थान, शून्य पद; निर्विकल्प समाधि की अवस्था। न्यारी=निराली; अलौकिक।

कुण्डलिया

१. लाती=लात, ठोकर। सिम्रित=स्मृति, धर्मशास्त्र। खेही खायँ=धूल चाटते हैं।

तुलसी बूझ बिचारले, अंत किया नहिं साथ।
जग बेहोस बूझै नहीं, संत-मते की बात ॥२॥

जग जग कहते जुग भये, जगा न एको बार॥
जगा न एको बार, सार कहु कैसे पावै।
सोवत जुग-जुग भये, संत बिन कौन जगावै॥
पड़े भरम के माहिं बंद से कौन छुड़ावै।
जो कोइ कहै बिबेक ताहि की नेक न भावै॥
तुलसी पंडित भेष से सब भूला संसार।
जग जग कहते जुग भये, जगा न एको बार॥३॥

तन पाये तत ना लखा, चखा न गुरपद-सार।
चखा न गुरपद सार, पार कहु कैसे पावैं॥
जम के हाथ बिकाय, लिये चौरासी धावै॥
जुग-जुग भरमत जाय, काल से बाजी हारा।
ऐसा जगत अचेत भरम मैं किया पसारा॥
तुलसी सतगुर संत बिन करम न काटनहार।
तन पाये तत ना लखा, चखा न गुरपद सार॥४॥

झूलना

अरे, देख निहार बजार है रे, जगबीच न काम कोइ आवता है॥
सुत मात पिता नर नार त्रिया, देख अंत कोउ संग न जावता है॥
तुलसी बिचार जमफाँस है रे, बिधि बाँधिके काल चबावता है॥१॥

हाय हाय जहान में मौत बुरी, काल जाल से रहन नहिं पावता है॥
दिन चार संसार में कार करले, फिर जालके खाक मिलावता है॥
तुलसी कर ख्वाब का ज्वाब दूरी, लख लाभ जो यार को पावता है॥२॥

---

२. अयान=अज्ञानी, मूढ़। साथ=सत्संग।

३. जग जग=जाग जाग। बंद=बंधन। भेष=बाहर का रूप और आचार।

४. तत=तत्त्व, आत्मस्वरूप।

झूलना

१. विधि बाँधिके=मौका पाकर।

२. रहन नहिं पावता है=छूट नहीं सकता। कार=काम। जालके=जलाकर। ज्वाव=जवाब।

अरे, देख निहार बिचार करो, जग-जार न पार कोई पावता है ॥
भवकूप असार को पार किया, भ्रम-भूल के भार उठावता है ॥
तुलसी को जानके सूझ परा, सोइ आदि अनादि को गावता है ॥३॥

लावनी

पिया दरस बिना दीदार दरद दुख भारी।
बिना सतगुरु के धृग जीवन संसारी ॥
क्या जनम लिया जगमाहिं मूल नहिं जाना।
पूरनपद को छाँड़ि किया जुलमाना ॥
जुग-जुग में जीवन-मरन, आज नरदेही।
सुख-संपति में पारपुरुष नहिं सेई ॥
जग में रहना दिन चार बहुरि मरना री।
बिना सतगुरु के धृग जीवन संसारी ॥१॥

यह नरतन दुरलभ माहिं हाय नहिं लाई।
जाले अँखियों में पड़े करम दुखदाई ॥
पिया है हरदम हिये माहिं परख नहिं पाई।
बिन सतगुरू के कौन कहै दरसाई ॥
खोजत रही री दिनरात ढूँढ़कर हारी।
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी ॥२॥

अरी, यह मट्टी तन्न-साज, समझ, बिनसैगा।
छिन में छूटै बदन काल गिरसैगा ॥
आसा बंधन जग रोज जन्म धरना री।
दुख सुख बेड़ी बिषम भोग करना री ॥
भुगतै चौरासी खान जुगन जुग चारी।
बिना सतगुरु के धृग जीवन संसारी ॥३॥

---

३. जार=जाल।

लावनी

१. मूल=जड़ की बात; स्वरूप का ज्ञान। पारपुरुष=परम पुरुषपरमात्मा।

२. यह.........लाई=हाय! इस दुर्लभ नर-देह में प्रभु से लौ नहीं लगाई।

३. गिरसैगा=ग्रस लेगा, निगल जावेगा। विषमभोग करना=कठिन दंड भोगना है।

सुत मात पिता नर पुरुष जगत का नाता।
यह सब संसय का कोट कुटँब दुखदाता॥
टुक जीवन है जग माहिं, काल की बाजी।
इन बातों में परमपुरुष नहिं राजी॥
पिउ परमारथ सँग साथ सहज तरना री।
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी॥४॥

कोई भेटै दीनदयाल डगर बतलावै।
जेहि घर से आया जीव तहाँ पहुँचावै॥
दरसन उनके उर माहिं करै बड़भागी।
उनके तरने की नाव किनारे लागी॥
कहिं वे दाता मिल जायँ करैं भवपारी।
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी॥५॥

सतसँग करना मन तोड़ सरन संतन की।
अंदर अभिलाषा लाग रहै चरनन की॥
सूरति तन मन से साँच रहै रस पीती।
कोइ जावै सज्जन कुफर काल को जीती।
अंमृत हरदम कर पान चुवै चौधारी॥
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी॥६॥

मंगल

देखो नर की भूल सूल तासे सहै।
जीवन मारै जीव प्रान उसके लहै॥
देवी बकरा काट सीस उसपै धरै।
बूझ न अंध अचेत जिवत जिव जो मरै॥
पूत पराया मारि दरद नहिं लावही।
कुसल कहाँ से होइ जनम दुख पावही॥

---

४. टुक=ज़रा-सा।

५. डगर=रास्ता। भवपारी=संसार से पार।

६. मन तोड़=जी तोड़कर, पूरा साधन करके। कुफर=इसका असल अर्थ है मुसलमानी मत से भिन्न अन्य मत; पर यहाँ अधर्मी या दुष्ट से अभिप्राय है। चौधारी=चारों ओर से। चुवै=चूता है, टपकता है।

देवी दुरगा झूठ भवानी पूजती।
काटि गला बलि देइ आँखि नहिं सूझती॥
छवना सुअरी केर नौतिया से कहा।
मारे जाइ चढ़ाइ नहीं उसके दया॥
जो कोइ नारि निकाम हटक मानै नहीं।
पूजि भवानी भूत भटकि भूतिनि भई॥
घर-घर पवन बयार लगे यहि भाँति से।
अपने करम निहारि किया जोइ हाथ से॥
तुलसी कहै पुकारि जीवत जिनि मारि हो।
सबमें आतमराम सुनो नर-नारि हो॥

सावन

प्रथम सरन सतगुरु गहो, निरखो नैन निहार।
वारपार परखत रहो, गुरुपद-पदम अधार॥
संतचरन चित हित करो, सूरति संध सँवार।
आदि अंत घर लखि परै, सूझै पिउ-दरबार॥
अब जग की गति मति कहूँ, बिन सतसँग अँधियार।
मन इंद्री गुन-लोभ में, बिन सतनाम अधार॥
यह भव-सिंध अगाध है, बूड़े भवजल-धार।
बिन सतगुरु भरमत फिरै, कैसे उतरैं पार॥
सुरति-सहर घर आदि है, पावैं सुरजन साध।
दुरजन दुख सुख में रहैं, करमबंद बहै वाद॥
जग-रचना जमकाल की, फँसि-फसि मुए अजान।
ज्ञान गली चीन्हे बिना, भरमत सकल जहान॥
पिउ परचे पाये बिना, निसदिन फिरत बेहाल।
जुगन जुगन भटकत फिरै, निज घर सुरति न चाल॥
पिय की सेज सूनी पड़ी, कीन्ह और लगवार।
तासु पुरुष घर ना मिले, भयउ करम भवभार॥

मंगल

धरै=चढ़ता है। जिवत=जीवित। मरै=मारता है। छवना=छौना, बच्चा। नौतिया=ओझा। निकाम=खराब। हटक=मना करना।

जिन पिय की बिरहा बसै, छिन-छिन छीन सरीर।
नैन नीर ढुरि-ढुरि बहै, कसकै तन मन पीर॥
प्रेम-प्रीति-नदिया बहै, सावन भादों मास।
राति-दिवस लागी रहै, बरसै झड़ि निस-बास॥
पिय की पीर पलपल बसै, सूरति अंत न जाइ।
जैसे चंद्र चकोर को, निरखत नाहिं अघाइ॥
गरज घुमर बदरी बहै, चमकै चमचम बीज।
मोर सोर पिउ पिउ करै, तड़फ तड़फ तन छीज॥
घन सुनि धीर न आवही, पाति लिखूँ पिय पास।
मन सूरत कासिद करूँ, पहुँचै अगम निवास॥
खबर खुसी पिय की सुनूँ, हरखत हिया हित मोर।
तुलसी तलब पिय की लगी, जग तिनका अस तोर॥१॥

मोरे पिय छाड्यो बिदेस में, सइयाँ संग भयो री बिछोह॥टेक॥
बैरन नींद न आवही, सखि सुख भोर न होइ।
रोइ रैन अँखियाँ बहीं, सखि भरि साँसो साँस॥
बिरह-लहर-नागिन डसै, बिन सइयाँ तड़प उचाट।
चमक उठै जस बीजुली, छतियन धड़क समात॥
प्रबल अगिनि हिय में उठै, एरी धूआँ प्रगट न होइ।
सोई अकेली सेज पै, पूरब लिख्यौ री बिजोग॥
खबर खोज कासे कहौं, पतियाँ लिखौं केहि देस।
अंग भभूति रमाइहौं, करिहौं मैं जोगिनि-भेस॥
सतगुर सोधि सरने रहौं, गहौं पिय डगर निमाप।
मोर मनोरथ सुरति से, तुलसी मिलन मिलाप॥२॥

सावन

१. सूरति-संघ=सुरति अर्थात् लय-ध्यान का मेल। सुरजन=सज्जन। बंद=बंधन। बहैं वाद=वाद-विवाद में भटकते हैं। जग-रचना जम काल की=सारी ही सृष्टि मरणशील है। लगवार=यार। अंत=अन्यत्र, और जगह। वहै=घुमड़ती है। बीज=बिजली। कासिद=सँदेसा ले जाने वाला। तलब=चाह। तिनका अस तोर=तृण की तरह तोड़कर। विदेस=कर्म-लोक से आशय है, जो देह-संबंध का कारण है।

२. उचाट=उदासी, विरक्ति। बिजोग=वियोग। डगर=रास्ता। निमाप=बिना माप या ओरछोर।

चितावनी

क्या सोवत गाफिल चेत, सिर पर काल खड़ा ॥
जोर जुलम की रीति बिचारी, करि माया से हेत।
जम की जबर खबर नहिं जानी, बाँधि नरक दुख देत ॥
बिनसै बदन अगिन बिच जारैं, खीर खाँड़ रस लेत।
फिरि फिरि काल कमान चढ़ावै, मार लेत खुल खेत ॥
बिष-रस-रंग संग बहु कीन्हा, करि-करि बैस बितेत।
बृद्ध बनाय बूढ़ तन भइया, कारे केस सपेत ॥
सुत दारा आदर अलसाने, बुढ़वा मरे परेत।
छल बल माया करि-करि गई रे, ये दुनिया के हेत ॥
मनी मान से धनी न चीन्हा, चिड़ियाँ चुग गईं खेत।
तुलसी चरन सरन सतगुर बिन, ग्रासत रबि जस केत ॥१॥

जिंदड़ी दा साहिब बेली वे।
काहू लगाया बाग बगीचा, काहू लगाया चमेली वे ॥
काहू ने जोड़ा माल खजाना, काहू चुनाई हवेली वे ॥
तुलसी सोध बोध सतगुर को, यह संगत अलबेली वे ॥२॥

टप्पा

कौन बिधि कहा करों री दइया, हियरे उठत हिलोर ॥
पिय की पीर नीर मछरी ज्यों, मै तड़फों बिन तोर ॥
तुलसी मौत देवै बिरहन को, जियरा सहै दुख मोर ॥१॥

चितावनी

१. रसलेत=स्वाद लेता। खुल खेत=सामने खुले मैदान में। विष=विषय। बैस बितेत=उम्र बितादी। आदर अलसाने=सम्मान करने में आलस्य किया। ग्रासत=ग्रस लेता है, निगल जाता है। केत=केतु।

२. दा=का (पंजाबी प्रयोग)। बेली=सहायक, सहारा।

टप्पा

१. हिलोर=दर्द की मरोड़।

२. बहुरि=फिर, तब।

बहुरि मोरी कौन सुने रे सैयाँ, दुख जग मेंघ नघोर ॥
बिष की बेल बढ़ी करमन से, यह पापी मन चोर ॥
तुम बिन बिदित करै को तुलसी, पावे न ठीका ठौर ॥२॥

सुरति मोरी छाय रही री गुँइयाँ, गगना में करत किलोल।
निरखत नैन खुले नेहड़े के, मगन मधुर सुन बोल ॥
गाउँ री गवन भवन तुलसी का, अधर अकंथ अमोल ॥३॥

प्यारे पिया परदेसा, हो गुँइयाँ री ॥
सइयाँ देस बिदेस बिरानी, कासे कहों री सँदेसा ॥
कौन उपाय करौं मोरी सजनी, करिहौं मैं जोगिन-भेसा ॥
हिये नहिं चैन, रैन नहिं निद्रा, बिरह-बिथा तनलेसा ॥
भेजौं भौन कौन बिधि पाती ग्यानी-गुन-उपदेसा ॥
तुलसी निरखि जात-नरदेही, जोवन गयो अली ऐसा ॥४॥

होली

थिर न कोइ या जग में री, सौदागर लादि चले री ॥
जो कुछ माल भरो भरती में, दुख-सुख करम करे री ॥
भीषम करन द्रोन जरजोधन, भावीबस भरमि मरे री ॥
राज रनखेत लरे री ॥

रावन लंकपती पै हतो, सो रती नहिं बास बसे री।
पंडौ पाँच गये तजि देही, सोई हाड़ हिमाले गले री।
डगर जम ने घटघेरी ॥

जो-जो देह धरे तनधारी, राजा रंक रचे री ॥
को नर नारि पसू गति गावे, भव-सुख-सोक-पके री ॥
लखे नहिं आदि अजे री ॥

---

३. गुँइयाँ=सखी। गगना=शून्यमंडल, निर्विकल्प समाधि की अवस्था। नेहड़े के=स्नेहभरे। अधर=बिना आधार। अकंथ=अकथनीय।

४. बिरानी=पराया, अन्य; इस देश या लोक से परे। भौन=प्रियतम का घर। अली=सखी।

होली

१. जरजोधन=दुर्योधन। रती=थोड़ा-सा भी। घटघेरी=चारों ओर से घेर ली। भव-सुख-

पंडित भेष भगति नहिं जाने, ग्यान के मान भरे री ॥
सतगुर सोध बोध बिन मारग, जमपुर फाँस फँसे री ॥
भली तुलसी मति फेरी ॥१॥

कोइ पूछो री या सतगुर से।
बाल तरुन बिरधापन बीता, प्रीत करी सोइ रीत रखी नहिं धुर से ॥
जोग ग्यान बैराग बिरह नहिं, घटत स्वास नित सुर से ॥
बीतत बदन बिषय-रस मांहीं, भेंट नहीं पिया-पुर से ॥
हिये में हिलोर पिया बिन प्यारी, उठत अगिनि जिया झुरसे ॥
तुलसी ताप तपैदिक माहीं, मरत जिया बिन जुर से ॥२॥

शब्द

कछू न सुहाय मोकों पिया के बियोगी ॥
बिरह की बेली हेली फैली चहु दिस कूँ, दरद-दुखी जस रोगी ॥
अस री हिलोर मोर मन आवै, तन तजि अब न जियोंगी ॥
हार-सिंगार सखि नीको न लागै, माहुर घोर पियोगी ॥
रैन न चैन दिवस दुख बीते, आवत नींद न औंगी ॥
तुलसी तलब मिटै सतगुर से, चित धर चरन छुवोंगी ॥१॥

बिहाग

मुसाफिर जागो, क्या सोवत बीती है रैन ॥
जो सोये तिन सरबस खोये, जागे जोइ बड़भाग रे ॥
सतगुर मूल मरम-घर भूले, फूले फिरत अभाग रे ॥
माया मोह मान गसे गाढ़े, बढ़ी कुमति की लाग रे ॥
नरतन सार समझ यहि औसर, अब सब बंधन त्याग रे ॥
तुलसी तीर भीर भवसागर, हंस बसो तजि काग रे ॥२॥

सोक-पके=संसार के सुख-दुःख में पचते रहे। अजे=अजेय; अजन्मा भी अर्थ हो सकता है। भेष=भेषधारी साधु। मान=अभिमान।

२. बीतत=क्षीण होता जा रहा है। पिया-पुर=प्रियतम का नगर; ब्रह्मलोक। हिलोर=दर्द की कसक या मरोड़। झुरसे=झुलसता है। तपैदिक=क्षयरोग। जुर=ज्वर।

शब्द

१. हेली=हे सखी। माहुर=विष। औंगी=चुप्पी, चैन। तलब=चाह, गहरी खोज।

२. मरम-घर=रहस्य का लोक। गसे गाढ़े=ज़ोर से पकड़ लिया है। लाग=संबंध, प्रीति।

धनासरी

एरी आली, संत-चरन सुखबास ॥
अंत सखी सुख नेक न पैहो, सहिहो री जम की त्रास ॥
भाई बंद कुटुँब सुत नारी इन सँग रहो री उदास ॥
यह सब समझ-बूझ भवसागर, लख चौरासी-फाँस ॥
जुग-जुग जनम धरे तन तुलसी, आवागवन-निवास ॥३॥

सोहागिन सुन्दरी, तुस बसहु पिया के देस ॥
नैहर-नेह छाँड़ि देवो री, सुन सतगुर-उपदेस।
कोटि करो इहाँ रहन न पैहो, क्या धनि रंक नरेस ॥
प्रभु के देस परम सुख पूरन, निरभय सुनत सँदेस।
जरा-मरन तन एक न ब्यापै, सोक मोह नहिं लेस ॥
सब से हिलमिल बैर बिसन तज, परम प्रतीत प्रबेस।
दम पर दम हरदम प्रीतम सँग, तुलसी मिटा कलेस ॥४॥

दोहा

तन मन से साँचा रहै, गहै जो सतगुरु बाँह।
काल कधी रोकै नहीं, दे बताइ धुर राह ॥१॥

अब समझे से का भयो, चिड़ियाँ चुग गईं खेत।
चेत किया नहिं आपमें, रहे कुटुँब के हेत ॥२॥

की अपनी करनी करै, की गुरु-सरन उबार।
दूनौं में कोइ एक नहिं, नाहक फिरत लबार ॥३॥

आँखी में जाले पड़े, काढ़ै कौन निकारि।
जब सथिया नस्तर भरै, सुरति-सलाई डारि ॥४॥

---

४. नैहर=मायका, पीहर; माया का लोक। बिसन=व्यसन, बुरे कर्म।

दोहा

१. कधी=कभी। धुर=सही, ठीक-ठिकाने की।

३. लबार=झूठा, लफंगा।

४. सथिया=जर्राह। नस्तर भरै=चीरा लगाता है।

कलूकाल की का कहूँ, नर नारी मतिहीन,
दीनभाव दरसै नहीं, जहँ-तहँ बुद्धि मलीन ॥५॥

जुलमी की जाली पड़े, बड़े-बड़े उमराव।
दाँव कधी लागै नहीं, भागन कवन उपाव ॥६॥

खाय पिये उतना रखै, बाकी रखै न पास।
और आस ब्यापै नहीं, सतगुरु का बिस्वास ॥७॥

मन की ममता ना घटी, लटी न छूटी चाल।
हाल हाथ से दे कोई, ले झोली में डाल ॥८॥

विस्वामित्र वसिष्ठ को, भयो परस्पर बाद।
उन तप को कीन्हा बड़ा, इन सतसंग अगाध ॥९॥

जल मिसरी कोइ ना कहै, सरबत नाम कहाय।
यों घुलके सतसँग करै, काहे भरम समाय ॥१०॥

सूरा रन में सीस को, धरै हथेली माहिं।
सरा सती ज़रि जाय जो, पिल पैठै घर माहिं ॥११॥

मुरसिद सतगुर चरन का, आठ पहर अनुराग।
सो भागे भव-चक्र से, उनको लगा न दाग ॥१२॥

नरतन दुरलभ ना मिलै, खिलै कँवल रसमाँय।
खाय अमर फल अगम के, जो सतगुरु सरनाय ॥१३॥

●

---

५. कलूकाल=कलियुग। दीनभाव=निरहंकारिता, नम्रता।

६. जाली=जाल, फंदा।

७. बाकी=अतिरिक्त वस्तु। और आस ब्यापै नहीं=दूसरों की आशा नहीं सताती।

८. लटी=बुरी, नीच।

९. उन......अगाध=विश्वामित्र ने तप को बड़ा बताया, और वसिष्ठ ने सत्संग को बड़ा कहा।

१०. समाय=पड़े।

११. सरा=अग्नि, चिता। पिल=हिम्मत के साथ घुसकर। घर=प्रियतम (परमात्मा) के सत्यलोक से आशय है।

१२. दाग=(माया का) कलंक।

१३. कँवल=हृदय-कमल से आशय है। रसमाँय=ब्रह्मानन्द में। अमर-फल=मोक्ष।
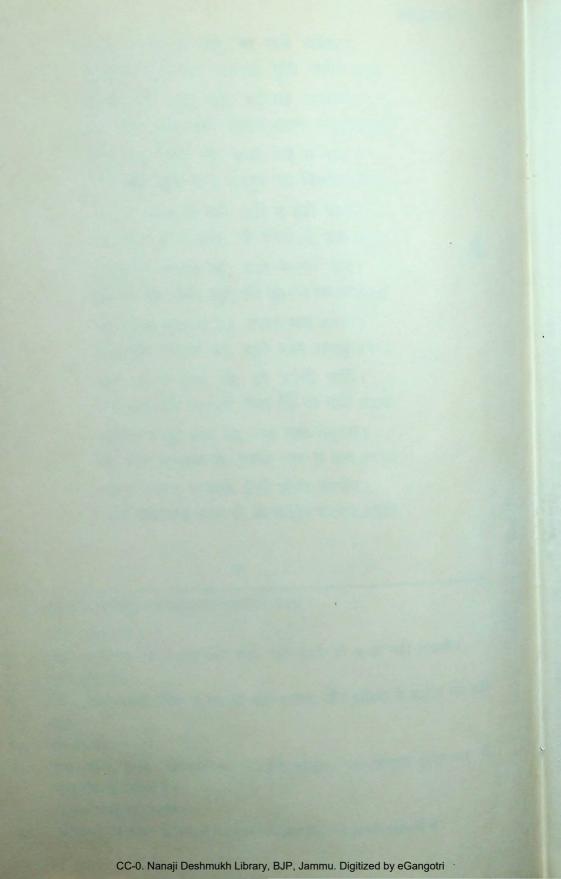
संत-सुधा-सार

का माँगू कुछ थिर न रहाई, देखत नैंन चल्या जग जाई।
इक लष पूत सवा लष नाती, ता रावन धरि दीवा न बाती।।

बेचै राम तो राखै कौन, राखै राम तो बेचै कौन ।।

—कबीर

हरि-सा हीरा छाँडिकै करै आन की आस ।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास ।।
थोथी काया थोथी माया। थोथा हरि बिन जनम गँवाया ।।
थोथी पंडित थोथी बानी। थोथी हरि बिन सबै कहानी ।।

—रैदास

रे मेन डीगि ना डोलिए सीधे मारगि धाउ ।
पाछै बाधु डरावणे आगे अगनि तलाउ ।।
सरवरू हंस न जाणिआ काम कुपंखी संगि ।
साकत सिउ ऐसी प्रीति हैं बूझहु गिआनी रंगि ।।

—नानक

काहे कौं दुख दीजिए, सांई है सब मांहि ।
दादू एकै आत्मा, दूजा कोई नाहिं ।।

—दादू

गुरु ग्याता परजापती, सेवक माटी रूप ।
रज्जब रज सूँ फेरिकै धड़ि ले कुम्भ अनूप ।।

—रज्जब

इन तथा ऐसे ही ३७ संतों की अमृत-वाणी
इस ग्रंथ में पढ़िये।

'मण्डल' द्वारा प्रकाशित

धर्म-अध्यात्म-दर्शन साहित्य

- विनय पत्रिका
- भागवत धर्म
- जागे मंगल प्रेरणा
- निर्मल धारा धर्म की
- मानव और धर्म
- गीतामाता
- अनासक्ति योग
- उपनिषदों का बोध
- हमारी परम्परा
- बुद्धवाणी
- बुद्ध जीवन और दर्शन
- बुद्ध और बौद्ध साधक
- संतवाणी
- सहस्रधारा
- स्थितप्रज्ञ दर्शन
- संत-सुधा-सार

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन